સમયસાર વૈભવ

ભાગ–૧

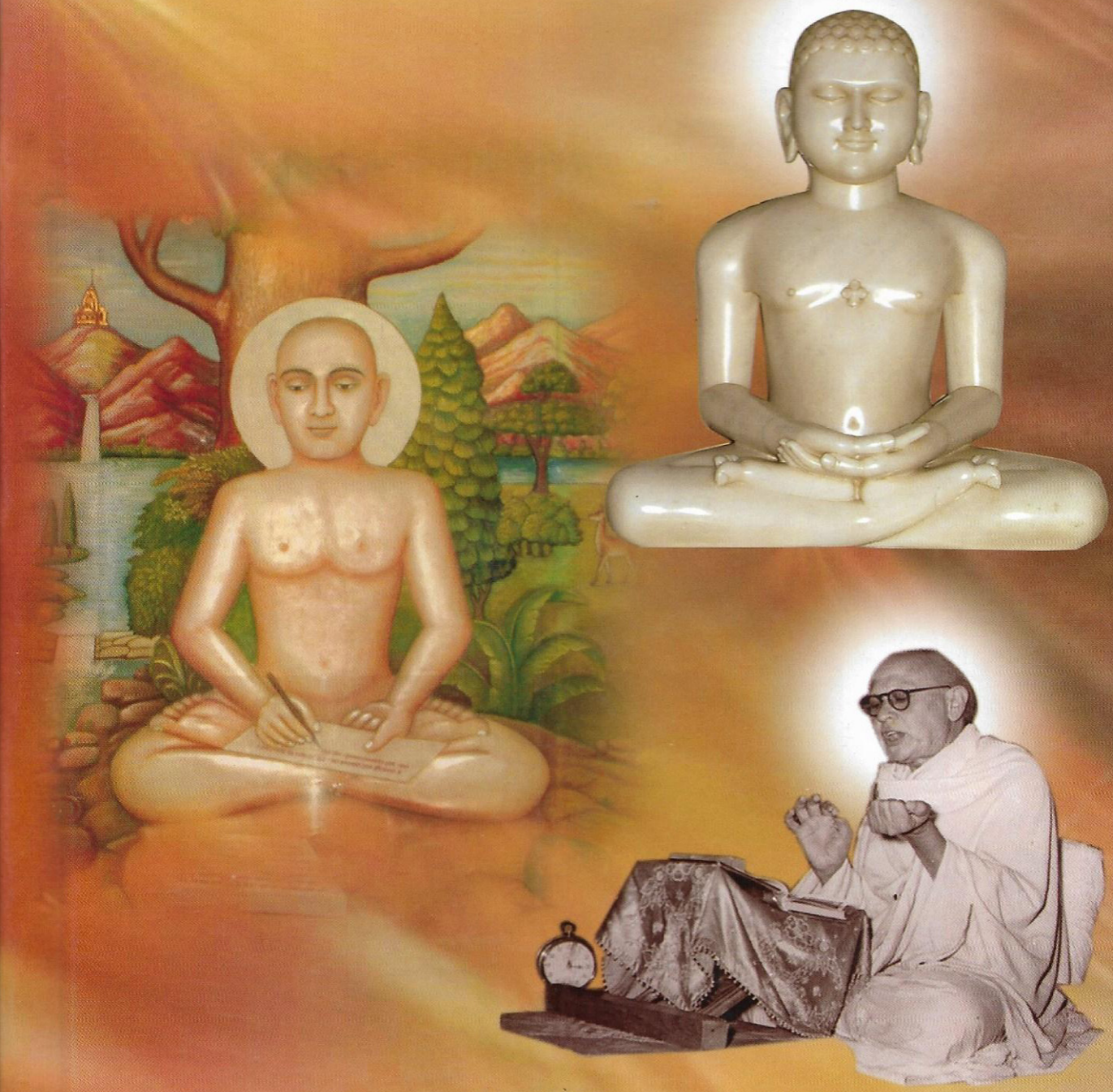

પ્રકાશક

શ્રી સીમંધર કુંદકુંદ કહાન આધ્યાત્મિક ટ્રસ્ટ

રાજકોટ

ॐ

परमात्मने नमः

समयसार वैभव

परमपूज्य श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव रचित समयसार परमागम पर
अध्यात्मयुगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
15वीं बार के धारावाही शब्दशः प्रवचन
(गाथा 1 से 7, कलश 1 से 3, प्रवचन 1 से 29)
[भाग - 1]

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

विक्रम संवत
2082

वीर संवत
2552

ई. सन
2025

—: प्रकाशन :—

श्री महावीर भगवान मोक्ष कल्याणक

(कार्तिक कृष्ण अमावस्या)

दिनांक 21 अक्टूबर 2025

के शुभ अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046
www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :
विवेक कम्प्यूटर
अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

महाविदेहक्षेत्र में विराजमान त्रिलोकनाथ वीतराग-सर्वज्ञ परम देवादिदेव श्री सीमन्धर भगवान की दिव्यदेशना का अपूर्व संचय करके भरतक्षेत्र में लानेवाले, सीमन्धर लघुनन्दन, ज्ञान साम्राज्य के सम्राट, भरतक्षेत्र के कलिकालसर्वज्ञ, शुद्धात्मा में निरन्तर केलि करनेवाले, चलते-फिरते सिद्ध - ऐसे आचार्यश्री कुन्दकुन्ददेव हुए, जो संवत् 49 में सदेह महाविदेहक्षेत्र में गये और आठ दिन वहाँ रहे थे। महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव के श्रीमुख से प्रवाहित श्रुतामृतरूपी ज्ञानसरिता का तथा श्रुतकेवलियों के साथ हुई आध्यात्मिक सूक्ष्म चर्चाओं का अमूल्य भण्डार लेकर भरतक्षेत्र में पधारकर पंच परमागम आदि आध्यात्मिक शास्त्रों की रचना की। उनमें से एक श्री समयसारजी, द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट अध्यात्म शास्त्र है। जिसमें श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने 415 मार्मिक गाथाओं की रचना की है। यह शास्त्र सूक्ष्म दृष्टिप्रधान ग्रन्थाधिराज है।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य के पश्चात् एक हजार वर्ष बाद अध्यात्म के प्रवाह की परिपाटी में इस अध्यात्म के अमूल्य खजाने के गहन रहस्य को स्वानुभवगत करके श्री कुन्दकुन्ददेव के ज्ञानहृदय को खोलनेवाले श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव ने सिद्धपद-साधक मुनिसम्पदा को आत्मसात करके, निजस्वरूप के अलौकिक अनुभव से, सिद्धान्त शिरोमणि शास्त्र समयसार की 415 गाथाओं की टीका करने का सौभाग्य प्राप्त किया है। उन्होंने श्रीसमयसारजी में निहित सूक्ष्म और गम्भीर रहस्य को, अपूर्व शैली से आत्मख्याति नामक टीका बनाकर, स्पष्ट किया है; साथ ही 278 मंगल कलश तथा परिशिष्ट की रचना भी की है।

इस शास्त्र का भावार्थ जयपुर निवासी सूक्ष्म ज्ञानोपयोगी पण्डित श्री जयचन्दजी छाबड़ा ने किया है।

वर्तमान इस काल में मोक्षमार्ग प्राय: लुप्त हो गया था, सर्वत्र मिथ्यात्व का घोर अन्धकार छाया हुआ था, जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त का अभ्यास छूट गया था, परमागम विद्यमान होने पर भी उनके गूढ़ रहस्यों को समझानेवाला कोई नहीं था - ऐसे विषम काल में जैनशासन के गगन मण्डल में एक महाप्रतापी वीर पुरुष, अध्यात्ममूर्ति, अध्यात्मदृष्टा, आत्मज्ञ सन्त, अध्यात्म युगपुरुष, निष्कारण करुणाशील, भवोदधि तारणहार, भावी तीर्थाधिनाथ परमपूज्य सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी का उदय हुआ। जिन्होंने इन आचार्यों के ज्ञानहृदय में संचित गूढ़ रहस्यों को अपने ज्ञान-वैभव द्वारा

रसपान करके आचार्यों की महा सूक्ष्म गाथाओं में विद्यमान अर्थ गाम्भीर्य को स्वयं के ज्ञान प्रवाह द्वारा सरल सुगम भाषा में चरम सीमा तक मूर्तिवन्त किया।

मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिए एक तेजस्वी अध्यात्म दीपक का स्वर्णमय उदय हुआ, जिसने अपनी दिव्यामृत चैतन्य रसीली वाणी द्वारा अध्यात्म सिन्धु के अस्खलित सातिशय शुद्ध प्रवाह को आगे बढ़ाया। आपश्री जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्तों को अति स्पष्टरूप से, अति दृढ़तापूर्वक भवताप विनाशक और परम शान्ति प्रदायक प्रवचन गंगा द्वारा फैलाते रहे; विरोधियों के विरोध का भी, जंगल में विचरते केशरी सिंह की तरह, अध्यात्म के केशरी सिंह बनकर निडररूप से, तथापि निष्कारण करुणावन्त भाव से झेलते रहे। विरोधियों को भी 'भगवान आत्मा' है – ऐसी दृष्टि से देखकर जगत् के जीवों के समक्ष अध्यात्म के सूक्ष्म न्यायों को प्रकाशित करते रहे।

श्री समयसारजी शास्त्र, पूज्य गुरुदेवश्री के कर-कमल में विक्रम संवत् 1978 के फाल्गुन माह में आया था। इस समयसारजी शास्त्र के हाथ में आते ही कुशल झवेरी की पारखी नजर समयसार के सूक्ष्म भावों पर पड़ी और सहज ही अन्तर की गहराई में से भावनाशील कोमल हृदय बोल उठा – 'अरे! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।' अनादि का अप्रतिबुद्ध जीव प्रतिबुद्ध कैसे हो? – उसका सम्पूर्ण रहस्य और शुद्धात्मा का सम्पूर्ण वैभव इस परमागम में भरा है।

इस शास्त्र का रहस्य वास्तव में तो अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के हाथ में यह शास्त्र आने के पश्चात् ही चरम सीमा से प्रकाशित और प्रदर्शित हुआ है। पैंतालीस वर्ष तक स्वर्णपुरी / सोनगढ़ में अध्यात्म की मूसलधार वर्षा हुई है जो सर्व विदित है। पूज्य गुरुदेवश्री ने विक्रम संवत् 1978 से 1991 – इस तरह तेरह वर्षों तक गूढ़ मन्थन करके जिनवाणी का सम्पूर्ण निचोड़ इस शास्त्र में से ढूँढ़ निकाला और फरमाया है कि —

- समयसार तो द्वितीय श्रुतस्कन्ध का सर्वोत्कृष्ट / सर्वोच्च आगमों का भी आगम है।
- समयसार तो सिद्धान्त शिरोमणि, अद्वितीय अजोड़ चक्षु और अन्धे की आँख है।
- समयसार तो संसार विष-वृक्ष को छेदने का अमोघ शस्त्र है।
- समयसार तो कुन्दकुन्दाचार्य से कोई ऐसा शास्त्र बन गया; जगत् का भाग्य कि ऐसी चीज भरतक्षेत्र में रह गयी। धन्य काल!
- समयसार की प्रत्येक गाथा और आत्मख्याति टीका ने आत्मा को अन्दर से डुला दिया है। समयसार की आत्मख्याति जैसी टीका दिगम्बर में भी दूसरी किसी शास्त्र में

नहीं है। इसके एक-एक पद में इतनी गम्भीरता (कि) खोलते-खोलते पार न आये - ऐसी बात अन्दर है।

- समयसार तो सत्य का उद्घाटक है! भारत का महारत्न है!! समयसार.... जिसके थोड़े शब्दों में भावों की अद्भुत और अगाध गम्भीरता भरी है!
- समयसार तो भरतक्षेत्र का प्रवचन का सर्वोत्कृष्ट बादशाह है, यह सार शास्त्र कहलाता है।
- समयसार तो जगत् का भाग्य.... समयसाररूपी भेंट जगत् को दिया, स्वीकार नाथ! अब स्वीकार! भेंट भी दे वह भी नहीं स्वीकारे?
- समयसार तो वैराग्य प्रेरक परमात्मस्वरूप को बतलानेवाली वीतरागी वीणा है।
- समयसार में तो अमृतचन्द्राचार्य ने अकेला अमृत बहाया है, अमृत बरसाया है।
- समयसार एक बार सुनकर ऐसा नहीं मान लेना कि हमने सुना है, ऐसा नहीं बापू! यह तो प्र... वचनसार है अर्थात् आत्मसार है, बारम्बार सुनना।
- समयसार भरतक्षेत्र की अन्तिम में अन्तिम और उत्कृष्टतम सत् को प्रसिद्ध करनेवाली चीज है। भरतक्षेत्र में साक्षात् केवलज्ञान सूर्य है। समयसार ने केवली का विरह भुलाया है।
- समयसार की मूलभूत एक-एक गाथा में गजब गम्भीरता! पार न पड़े ऐसी चीज है। एक-एक गाथा में हीरा-मोती जड़े हैं।
- समयसार में तो सिद्ध की भनकार सुनायी देती है। यह तो शाश्वत् अस्तित्व की दृष्टि करानेवाला परम हितार्थ शास्त्र है। समयसार तो साक्षात् परमात्मा की दिव्यध्वनि / तीन लोक के नाथ की यह दिव्यध्वनि है।

ऐसे अपूर्व समयसार में से पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने निज समयसाररूपी शुद्धात्मा का अनुभव करके फरमाया कि आत्मा आनन्द का पर्वत है; ज्ञायक तो मीठा समुद्र / आनन्द का गंज और सुख का समुद्र है। न्यायों का न्यायाधीश है, धर्म का धोध ऐसा धर्मी है, ध्रुव प्रवाह है, ज्ञान की धारा है, तीन लोक का नाथ चैतन्यवृक्ष-अमृत फल है, वास्तविक वस्तु है। सदा विकल्प से विराम ही ऐसी निर्विकल्प जिसकी महिमा है - ऐसा ध्रुवधाम ध्रुव की धखती धगश है। भगवान आत्मा चिन्तामणि रत्न, कल्पवृक्ष और कामधेनु है, चैतन्य चमत्कारी वस्तु है, अनन्त गुणों का गोदाम, शक्तियों का संग्रहालय और स्वभाव का सागर है।

सनातन दिगम्बर मुनियों ने परमात्मा की वाणी का प्रवाह जीवन्त रखा है। जैनधर्म सम्प्रदाय-बाड़ा-गच्छ नहीं; अपितु वस्तु के स्वरूप को जैनधर्म कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री ने शास्त्र का अर्थ करने की जो पाँच प्रकार की पद्धति — शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ, और भावार्थ है, उसे अपनाकर कहाँ, किस अपेक्षा से कथन किया जाता है – उसका यथार्थ ज्ञान अपने को–मुमुक्षु समुदाय को कराया है। इस प्रवचन गंगा से बहुत से आत्मार्थी अपने निजस्वरूप को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करते हैं, बहुत से स्वरूप के निकट आये हैं और इस वाणी के भाव ग्रहण करके बहुत से आत्मार्थी अवश्य आत्मदर्शन को प्राप्त होंगे ही – यह सुनिश्चित है।

पूज्य गुरुदेवश्री समयसार में फरमाते हैं कि समयसार दो जगह है – एक अपना शुद्धात्मा है वह समयसार है और दूसरा उत्कृष्ट निमित्तरूप समयसारजी शास्त्र है। इस शास्त्र में अपना निज समयसाररूपी शुद्धात्मा बतलाया गया है। प्रत्येक गाथा का अर्थ करते हुए पूज्य गुरुदेवश्री ऐसे भावविभोर हो जाते हैं कि उसमें से निकलना उन्हें सुहाता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री समयसार पर प्रवचन करते हुए फरमाते हैं कि पंचम काल के अन्त तक जो कोई जीव सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा, उसे यह वीतराग की वाणी निमित्त होगी, यह सीधी सीमन्धर भगवान की वाणी है, इसमें एक अक्षर फिरे तो सब फिर जायेगा।

पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन, अपने वचनामृत में पूज्य गुरुदेवश्री के सम्बन्ध में फरमाती हैं कि पूज्य गुरुदेवश्री का द्रव्य तो अलौकिक और मंगल है; उनका श्रुतज्ञान और वाणी आश्चर्यकारक है। आपश्री मंगलमूर्ति, भवोदधि तारणहार और महिमावन्त गुणों से भरपूर हैं। उन्होंने चारों ओर से मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उनका अपार उपकार है, वह कैसे भूला जाये? पूज्य गुरुदेवश्री को तीर्थंकर जैसा उदय वर्तता है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अन्तर से मार्ग प्राप्त किया, दूसरों को मार्ग बतलाया; इसलिए उनकी महिमा आज तो गायी जाती है परन्तु हजारों वर्षों तक गायी जाएगी।

पूज्य निहालचन्दजी सोगानी, जिनको पूज्य गुरुदेवश्री का एक ही प्रवचन सुनते हुए भव के अभावरूप सम्यग्दर्शन की प्राप्ति सोनगढ़ / स्वर्णपुरी में हुई – वे फरमाते हैं कि पूज्य गुरुदेव के एक घण्टे के प्रवचन में पूरी–पूरी बात आ जाती है। सभी बात का स्पष्टीकरण पूज्य गुरुदेवश्री ने तैयार करके दिया है; इस कारण कोई बात का विचार नहीं करना पड़ता, वरना तो साधक हो तो भी सब तैयारी करनी पड़ती है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने सभा में समयसार उन्नीस बार पढ़ा और एकान्त में तो सैंकड़ों बार पढ़ा है, तो उन्हें इसमें कितना माल दिखता होगा! कभी डेढ़ वर्ष, कभी दो वर्ष, कभी ढाई वर्ष; इस प्रकार उन्नीस बार पैंतालीस वर्षों में सार्वजनिक पढ़ा है। प्रस्तुत ग्रन्थ में पूज्य गुरुदेवश्री के पन्द्रहवीं बार के प्रवचन अक्षरशः प्रकाशित किये जा रहे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री के उपलब्ध 9500 प्रवचनों में समयसार परमागम पर 13, 15, 16, 17, 18, 19वीं बार के प्रवचन उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम तो इन प्रवचनों को रिकॉर्डिंग कराने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई सी. झवेरी, जो कि उस समय सोनगढ़ ट्रस्ट में प्रमुखरूप से थे, उनका बहुत-बहुत आभार मानते हैं। प्रस्तुत 15वीं बार के 591 प्रवचन 21 भागों में प्रकाशित करने की भावना श्री सुधीरभाई शाह (डेलीवाला) परिवार, सूरत को हुई। उनकी भावना अनुसार उन्होंने अक्षरश: प्रवचन कम्प्यूराईज्ड करवाये। इन प्रवचनों को उन्होंने स्वयं निज स्वाध्याय के अर्थ जाँचा और फिर से जाँचने का कार्य सुनीलभाई शाह, भायंदर तथा अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा गुजराती भाषा में किया गया।

सम्पूर्ण प्रवचनों को हिन्दी भाषा में अनुवादित करके तथा सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) ने किया है। तदर्थ संस्था सभी सहयोगियों का सहृदय आभार व्यक्त करती है।

ग्रन्थ के मूल अंश को बोल्ड टाईप में दिया गया है।

प्रस्तुत प्रवचन — ग्रन्थ के टाईप सेटिंग के लिए श्री विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

अनादि काल से मोह अग्नि में सुलग रहे जीवों को यह प्रवचन ग्रन्थ के निमित्त से समाधि सुख और शाश्वत् परमानन्द की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त हो, ऐसी हमारी भावना है। अन्तत: पूज्य गुरुदेवश्री के भवताप विनाशक प्रवचनों का प्रत्येक मुमुक्षु लाभ लेकर आत्महित साधे यही भावना है।

प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ ... www.vitragvani.com तथा vitragvani app पर उपलब्ध हैं।

निवेदक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़

एवं

ट्रस्टीगण, श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव

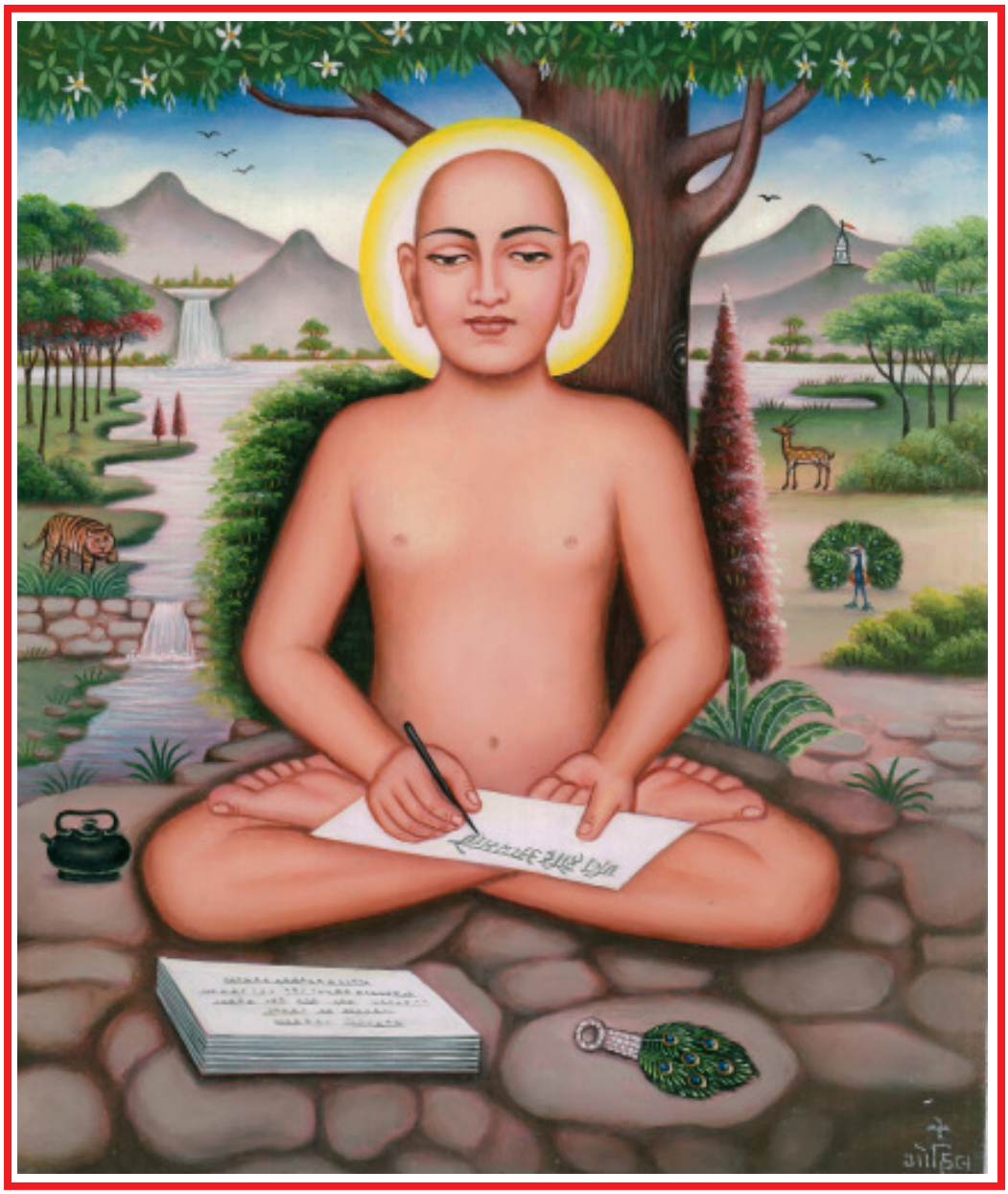

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

श्री समयसारजी-स्तुति

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करुणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! ते संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करुणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुन्दकुन्द रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी ऊतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीड़ित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथीसाधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।

(वसंततिलका)

सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तुं रुचतां जगतनी रुचि आळसे सौ,
तुं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।

(अनुष्टुप)

बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म**

का श्रावक हूँ। सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्‌गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य

विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार

ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-

निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
१	२८-०७-१९६६	श्लोक-१, २	००१
२	२९-०७-१९६६	श्लोक-१	०२४
३	३०-०७-१९६६	श्लोक-२	०४४
४	३१-०७-१९६६	श्लोक-२, ३	०६४
५	०२-०८-१९६६	गाथा-१	०८६
६	०३-०८-१९६६	गाथा-१	१०८
७	०४-०८-१९६६	गाथा-१, २	१२८
८	०५-०८-१९६६	गाथा-२	१५२
९	०६-०८-१९६६	गाथा-२	१७३
१०	०७-०८-१९६६	गाथा-२	१९३
११	०८-०८-१९६६	गाथा-३	२१०
१२	१०-०८-१९६६	गाथा-३	२३२
१३	११-०८-१९६६	गाथा-३	२५३
१४	१२-०८-१९६६	गाथा-३	२७३
१५	१३-०८-१९६६	गाथा-३, ४	२९३
१६	१४-०८-१९६६	गाथा-४	३१४
१७	१५-०८-१९६६	गाथा-४	३३३
१८	१६-०८-१९६६	गाथा-४	३५२
१९	१७-०८-१९६६	गाथा-४, ५	३६९
२०	१८-०८-१९६६	गाथा-५	३९०

२१	१९–०८–१९६६	गाथा–५, ६	४०९
२२	२०–०८–१९६६	गाथा–६	४३१
२३	२१–०८–१९६६	गाथा–६	४४८
२४	२२–०८–१९६६	गाथा–६	४६४
२५	२३–०८–१९६६	गाथा–६	४८१
२६	२४–०८–१९६६	गाथा–६	४९८
२७	२५–०८–१९६६	गाथा–६, ७	५१७
२८	२६–०८–१९६६	गाथा–७	५३८
२९	२७–०८–१९६६	गाथा–७	५५५

ॐ

परमात्मने नमः

समयसार वैभव

(भाग-1)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत परमागम समयसार पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
15वीं बार के धारावाही शब्दशः प्रवचन)

पूर्वरंग

श्रीमदमृतचन्द्रसूरिकृता आत्मख्यातिः।

(अनुष्टुभ्)

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे ।।1 ।।

श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव कृत मूल गाथायें और श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि कृत आत्मख्याति नामक टीका की

हिन्दी भाषा वचनिका

श्री परमातम को प्रणमि, शारद सुगुरु मनाय।
समयसार शासन करूं देशवचनमय, भाय।।1।।
शब्दब्रह्मपरब्रह्म के वाचकवाच्यनियोग।
मंगलरूप प्रसिद्ध ह्वै, नमों धर्मधनभोग।।2।।
नय नय लहइ सार शुभवार, पय पय दहइ मार दुखकार।
लय लय गहइ पार भवधार, जय जय समयसार अविकार।।3।।
शब्द, अर्थ अरु ज्ञान-समयत्रय आगम गाये,
मत, सिद्धान्त रु काल-भेदत्रय नाम बताये;

इनहिं आदि शुभ अर्थ समय वच के सुनिये बहु,
अर्थसमय में जीव नाम है सार, सुनहु सहु;
तातैं जु सार बिनकर्ममल शुद्ध जीव शुध नय कहै,
इस ग्रन्थ माँहि कथनी सबै समयसार बुधजन गहै।।4।।
नामादिक छह ग्रन्थमुख, तामें मंगल सार।
विघन हरन नास्तिक हरन, शिष्टाचार उचार।।5।।
समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिनवैन।
मुद्रा जिन निरग्रन्थता, नमूं करै सब चैन।।6।।

प्रथम, संस्कृत टीकाकार श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गल के लिये इष्टदेव को नमस्कार करते हैं–

श्लोकार्थ – [नमः समयसाराय] 'समय' अर्थात् जीव नामक पदार्थ, उसमें सार–जो द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित शुद्ध आत्मा, उसे मेरा नमस्कार हो। वह कैसा है? [भावाय] शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है। इस विशेषणपद से सर्वथा अभाववादी नास्तिकों का मत खण्डित हो गया। और वह कैसा है? [चित्स्वभावाय] जिसका स्वभाव चेतनागुणरूप है। इस विशेषण से गुण–गुणी का सर्वथा भेद माननेवाले नैयायिकों का निषेध हो गया है। और वह कैसा है? [स्वानुभूत्या चकासते] अपनी ही अनुभवरूप क्रिया से प्रकाशमान है, अर्थात् अपने को अपने से ही जानता है–प्रगट करता है। इस विशेषण से, आत्मा को तथा ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले जैमिनीय–भट्ट–प्रभाकर के भेदवाले मीमांसकों के मत का खण्डन हो गया; तथा ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है, स्वयं अपने को नहीं जानता–ऐसा माननेवाले नैयायिकों का भी प्रतिषेध हो गया। और वह कैसा है? [सर्वभावान्तरच्छिदे] अपने से अन्य सर्व जीवाजीव, चराचर पदार्थों को सर्व क्षेत्र काल सम्बन्धी, सर्व विशेषणों के साथ, एक ही समय में जाननेवाला है। इस विशेषण से, सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले मीमांसक आदि का निराकरण हो गया। इस प्रकार के विशेषणों (गुणों) से शुद्ध आत्मा को ही इष्टदेव सिद्ध करके (उसे) नमस्कार किया है।

भावार्थ : यहाँ मङ्गल के लिये शुद्ध आत्मा को नमस्कार किया है। यदि कोई यह प्रश्न करे कि किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया? तो उसका समाधान इस प्रकार है – वास्तव में इष्टदेव का सामान्य स्वरूप सर्वकर्मरहित, सर्वज्ञ,

वीतराग, शुद्ध आत्मा ही है, इसलिए इस अध्यात्मग्रन्थ में 'समयसार' कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया। तथा एक ही नाम लेने में अन्यमतवादी मतपक्ष का विवाद करते हैं, उन सबका निराकरण, समयसार के विशेषणों से किया है। और अन्यवादीजन अपने इष्टदेव का नाम लेते हैं, उसमें इष्ट शब्द का अर्थ घटित नहीं होता, उसमें अनेक बाधाएँ आती हैं और स्याद्वादी जैनों को तो सर्वज्ञ वीतरागी शुद्ध आत्मा ही इष्ट है। फिर चाहे भले ही उस इष्टदेव को परमात्मा कहो, परमज्योति कहो, परमेश्वर, परब्रह्म, शिव, निरंजन, निष्कलंक, अक्षय, अव्यय, शुद्ध, बुद्ध, अविनाशी, अनुपम, अच्छेद्य, अभेद्य, परमपुरुष, निराबाध, सिद्ध, सत्यात्मा, चिदानन्द, सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हत्, जिन, आप्त, भगवान, समयसार इत्यादि हजारों नामों से कहो; वे सब नाम कथञ्चित् सत्यार्थ हैं। सर्वथा एकान्तवादियों को भिन्न नामों में विरोध है, स्याद्वादी को कोई विरोध नहीं है। इसलिए अर्थ को यथार्थ समझना चाहिए।

प्रगटै निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप।
सब-ज्ञाता लखिकें नमौं, समयसार सब-भूप।।1।।

प्रथम श्रावण शुक्ल ११, गुरुवार, दिनांक - २८-०७-१९६६
श्लोक - १-२, प्रवचन - १

समयसार, कुन्दकुन्दाचार्य कृत। सभा में चौदह बार पहले से शुरु होकर पूरा हो गया है। यह पन्द्रहवीं बार चलता है। और इसमें पहला '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' पहला आता है न? सिद्ध को नमस्कार—चौदह गुणस्थान के पार को नमस्कार किया है न? इसका शुरुआत के पृष्ठ पर है। '**ॐ श्री सर्वज्ञ वीतरागाय नमः**' देखो! ॐ भगवान की ध्वनि है। सर्वज्ञ परमेश्वर अभेद पूर्ण वीतरागदशा को प्राप्त हुए, इसलिए उनकी ध्वनि ॐ निकलती है। वह ॐ पाँच पदरूप है अथवा ॐ ध्वनि ही निकलती है। 'ॐकार ध्वनि सुनि अर्थ गणधर विचारे' यह बनारसीदास में आता है। ॐ ऐसी आवाज अन्दर से पूरे शरीर से (आती है)। यह होंठ आदि हिलते नहीं। पूरी अखण्ड वस्तु प्रगट हुई है, इसलिए आवाज भी पूरे शरीर में से ॐ ध्वनि आती है। फिर उसे निरक्षरी कहो, साक्षरी कहो, जैसे उसे कहना हो, वह (कहो)।

'**ॐ सर्वज्ञ वीतरागाय नमः**' श्री स्वरूपलक्ष्मी को प्राप्त सर्वज्ञ परमेश्वर जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष ज्ञात हो गये हैं, ऐसे वीतराग—राग के नाशवाले, सर्वज्ञ की पर्याय पूर्ण प्रगट हुई, उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। धर्म का मूल सर्वज्ञदेव हैं। समझ में आया ? ॐ ध्वनि से भगवान की वाणी में (धर्म) निकला, इसलिए पहला ॐ और सर्वज्ञदेव धर्म के मूल हैं। क्योंकि उन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा ही ज्ञान का और आत्मा का स्वरूप है। इसलिए वह आत्मा जिन्हें ऐसी प्रगट दशा हुई, उन्हें पहला नमस्कार किया।

शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भिक मंगलाचरण :

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः॥१॥

बिन्दु सहित ॐकार को योगी नित्य ध्याते हैं। काम के देनेवाले अर्थात् ? जहाँ अभी अपूर्ण वीतरागदशा होती है, पुण्य आदि को देनेवाला भी ॐ कार है। और तीर्थंकरपद आदि पद देनेवाला है। '**मोक्षदं**' और आत्मा की पूर्ण आनन्ददशा को भी देनेवाला है, ऐसा जो ॐकार। '**ॐकाराय नमो नमः**' ऐसे ॐकार को नमोनमः, नमस्कार हो, नमस्कार हो! भगवान की ॐध्वनि समवसरण के मध्य में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में निकलती है। ऐसे ॐ को स्मरण करके इसे नमस्कार करते हैं।

अविरलशब्दघनौघप्रक्षालितसकलभूतलकलंका।
मुनिभिरूपासिततीर्था सरस्वती हरतु नो दुरितान्॥२॥

'**अविरलशब्दघनौघ**' जिसके शब्द की धारा में विरल अर्थात् फूटता-टूटता नहीं। भगवान की वाणी या सन्तों की वाणी जो निकली, '**अविरलशब्द**' विरल नहीं, पृथक-पृथक् — ऐसा नहीं, थोड़ा नहीं। एक घन जैसे वर्षा मूसलाधार बरसती हो, वैसे भगवान की वाणी दिव्यध्वनि मूसलधार की भाँति बरसती है। ऐसे '**अविरलशब्दघनौघ-प्रक्षालितसकलभूतल**' इस जगत के भूतल के अर्थात् लोक के, मलरूपी कलंक उसने धो डाला है। मूसलाधार बरसात। भगवान की वाणी, सर्वज्ञ परमेश्वर की ऐसी वाणी निकली कि जगत के मलरूपी कलंक धो डाले हैं। संसार का मैल, वीतरागी परमात्मा

के आनन्द के आश्रय से उस वाणी में यह आया, इसलिए उस वाणी ने मल धो डाला है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया?

'**मुनिभिरूपासिततीर्थां**' वह तीर्थस्वरूप है। सन्तों ने सरस्वती की सेवा की है। वाणी सर्वज्ञ अनुसारिणी है, इसलिए वाणी को भी तीर्थरूप से मुनियों ने सेवा की है, ऐसा कहते हैं। '**सरस्वती**' ऐसी वाणी। '**हरतु नो दुरितान्**' '**नो**' हमारे '**दुरित**' को हरो। वह तो अपनी भावना है न! मल के परिणाम हमारे निर्मलानन्द के आश्रय से टलो, ऐसा सरस्वती शास्त्र को वन्दन करके नमस्कार करके भावना की है।

अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरून्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥३॥

गुरु। '**अज्ञानतिमिर**' देखो! ॐकार में पहले देव आये। उसमें शब्द शास्त्र आये, अब गुरु आये। देव-शास्त्र-गुरु तीन, ऐसा आता है न पूजा में भी? देव-शास्त्र-गुरु तीन। अर्थात् देव आये ॐकार में, शास्त्र आये शब्द में, अज्ञानतिमिर में आये गुरु। ऐसी पद्धति चली आती है। '**अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया**' जहाँ अज्ञानरूपी अन्धकार से जो अन्ध थे, उनके नेत्र जिन्होंने ज्ञानरूपी अंजनशलाका द्वारा धो डाले हैं— खोल डाले हैं। '**चक्षुरून्मीलितं**' चक्षु जो ढँकी हुई थी, उसे खोल डाला है। उसे '**येन तस्मै श्रीगुरवे नमः**' ऐसे सन्तों को, गुरु को हम नमस्कार करते हैं।

'**श्रीपरमगुरवे नमः**' परमगुरु सर्वज्ञदेव को नमस्कार। '**परम्पराचार्य गुरवे**' परम्परा से जो आचार्य आये, उन सब गुरुओं को नमस्कार।

'**सकलकलुषविध्वसंकं**' यह शास्त्र सकल कलुषितता का विध्वंस करनेवाला है। '**श्रेयसां परिवर्धकं**' श्रेय का '**परिवर्धकं**'। श्रेय को समस्त प्रकार से वरदान बढ़ानेवाला है। '**धर्मसम्बन्धकं**' धर्म का सम्बन्ध करानेवाला है। वीतराग दशा द्वारा आत्मा को सम्बन्ध करानेवाला है। '**भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं**' भव्य जीव के मन को प्रतिबोधकारक है। भव्य अर्थात् योग्य जीव के मन को प्रतिबोध करनेवाला है। '**पुण्यप्रकाशकं**' पुण्य का प्रकाशक है। पुण्य के दो अर्थ हैं। पवित्रता का प्रकाशक है और पुण्य का भी वास्तविक स्वरूप क्या है, उसे प्रकाशित करनेवाला है। और धर्मात्मा

को पुण्य का रस उत्कृष्ट बँधता है। अज्ञानी को ऐसा रस कभी होता नहीं। स्थिति घट जाती है, परन्तु पुण्य का उत्कृष्ट रस, यहाँ जैसे आत्मा रस में, आनन्द में बढ़े, उसी प्रकार वहाँ अन्दर में पुण्य प्रकृति में रस बढ़ता है। ऐसे रस को, यहाँ शुद्ध उपयोग को, ऐसे रस को और पवित्रता को प्रकाशित करनेवाला है।

'**पापप्रणाशकमिदं**' पाप का नाश करनेवाला है। '**इदं शास्त्रं श्रीसमयसारनामधेयं, अस्य मूल ग्रन्थकर्तारः श्रीसर्वज्ञदेवा**' इस शास्त्र के मूल कर्ता सर्वज्ञदेव हैं। उत्तरकर्ता '**अस्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः**' सब अस्ति बताते हैं। सर्वज्ञदेव इसके कर्ता, पश्चात् गणधरदेव, वे सब थे, उस वाणी में ऐसा समयसार आया है। यह देव, गणधर और शास्त्र। उनकी प्रतीति कराते हैं और यह वस्तु इस प्रकार से चली आती है। '**प्रतिगणधरदेवास्तेषां**' उसके पश्चात् गणधर, सन्तों के झुण्ड और आचार्यादि से चला आता है। उनके वचन के अनुसार ग्रहण करके '**आचार्य श्रीकुन्दकुन्दाचार्यदेवविरचितं**' आचार्य भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महा इस शासन में अभी तीसरे नम्बर में कहे जाते हैं। मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गोतमोगणी, मंगलं कुंदकुंदार्यो। ऐसे कुन्दकुन्दाचार्य से विरचितं। '**श्रोतारः सावधानतया श्रुणवन्तु**' हे श्रोताओ! देखो! सावधानी से, प्रमाद रहित (होकर) इस बात को सुनो। हम समयसार कहेंगे।

मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गौतमो गणी।
मंगलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलं॥३॥

वीर भगवान मंगलरूप है, गौतम गणधर मंगलरूप हैं, आर्य कुन्दकुन्दाचार्य मंगलरूप हैं और जैनधर्म जगत में महामंगलरूप है।

सर्वमंगलमांगल्यं सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां जैनं जयतु शासनं॥४॥

सर्व मंगल में मंगलरूप सर्व कल्याण करनेवाला, सर्व धर्मों में प्रधान। सर्व धर्मों में प्रधान अर्थात्? आत्मा के अनेक प्रकार के वीतरागी धर्मों में यह जैनधर्म महा प्रधान है। अन्य धर्मों में भी यह धर्म प्रधान है। दूसरे में यह है ही नहीं, हों! वापस कोई प्रधान कहकर (और ऐसा माने कि) दूसरे में कुछ थोड़ा है, ऐसा नहीं। प्रधान कहा न? कि

यह प्रधान है तो उसमें कुछ थोड़ा होगा। ऐसा नहीं।

जैनशासन जयवन्त वर्तता है। '**जैनं जयतु शासनं**' आहाहा! महाविदेहक्षेत्र में परमात्मा त्रिलोकनाथ सीमन्धरप्रभु दिव्यध्वनि द्वारा बरसात (वर्षा रहे हैं)। धर्मधोरी धुरन्धर देवा, धर्म के धोरी, धर्म को हाँकनेवाले। जैसे बड़े गाड़ा को हाँकनेवाला बड़ा बैल होता है, उसी प्रकार धर्म के धोरी भगवान हैं। आता है न अपने? समवसरण (स्तुति में) पहली लाईन। 'धोरी धर्म धुरंधरा'। हमारे पण्डितजी ने (बनायी है)। धोरी धर्म धुरन्धरा। यह बीस तीर्थंकर भगवान विराजते हैं। उसमें अपने यहाँ सीमन्धर भगवान हैं। कहो, समझ में आया?

अब कहते हैं, मंगल शुरुआत करते हैं। आदि कहेंगे। आदि मंगल में शिष्य को लघु... हो इसलिए आदिमंगल कहा जाता है। मध्यमंगल में उसकी व्युच्छिति न हो, अव्युच्छिति रहे, धारावाही रहे इसलिए और अन्तमंगल में निर्मलानन्द का पार पड़े। तीन प्रकार के मांगलिक कहे जाते हैं। उसमें यह मांगलिक करते हैं, देखो!

ॐ श्री परमात्मने नमः श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य विरचित श्री समयसार। 'जीव-अजीव अधिकार।' अब यह अर्थ करनेवाले जयपुर के पण्डित जयचन्द्र थे। उन्होंने यह हिन्दी भाषा में वचनिका की। उनका यह पहला एक मांगलिक है।

श्री परमातम को प्रणमि, शारद सुगुरु मनाय।
समयसार शासन करू देशवचनमय, भाय॥ १॥

परमात्मा को प्रणमीने। अहो! परमात्मा पूर्ण सर्वज्ञदेव है, उनकी सत्ता का स्वीकार करके। उनकी सत्ता का स्वीकार अन्दर में किया, उसे प्रणमीने अर्थात् नमस्कार किया कहलाता है। **शारद...** शास्त्र। शारद (अर्थात्) शास्त्र ज्ञान। और **सुगुरु...** गुरु। तीनों आ गये। देव, शास्त्र और गुरु तीनों एक लाईन में आ गये। उन्हें नम कर। देव को, गुरु को और शास्त्र को नमस्कार करके।

समयसार शासन करू... शासन अर्थात् शास्त्र। समयसार शास्त्र करूँ। स्वयं समयसार शास्त्र नहीं करते कहीं। **देशवचनमय...** भाई! प्रचलित भाषा में इस समयसार को करता हूँ, ऐसा कहते हैं।

शब्दब्रह्मपरब्रह्मकैं वाचकवाच्यनियोग।
मंगलरूप प्रसिद्ध ह्वै, नमों धर्मधनभोग॥ २॥

शब्दब्रह्म और परब्रह्म का वाचक-वाच्य सम्बन्ध है। जैसे शक्कर शब्द है, शक्कर वह वाचक है। वह शक्कर पदार्थ को बतलाता है। शक्कर वह वाच्य है और शक्कर शब्द वह वाचक है। उसी प्रकार यह समयसार शब्द, वह वाचक है। वाच्य आत्मा है। उसे वह बताता है। समझ में आया? **शब्दब्रह्मपरब्रह्मकैं...** परमब्रह्म और शब्दब्रह्म का **वाचकवाच्य...** वाचक शब्दब्रह्म है और परमब्रह्म उसका वाच्य है। उसका नियोग अर्थात् सम्बन्ध है।

मंगलरूप प्रसिद्ध ह्वै,... ऐसा यह मंगलरूप। वाच्य परमात्मा भी मंगलरूप है और यह वाणी भी मंगलरूप है। **नमों धर्मधनभोग।** मेरे धर्म की लक्ष्मी के अनुभव के लिये। धर्म का धन। मेरा आनन्दस्वरूप जो धन, उसके अनुभव के लिये मैं उसे नमन करता हूँ। लो, इसमें पहली लक्ष्मी आयी। यह लक्ष्मी आयी। पूरे दिन पैसा-पैसा करते हैं न? धन आया, धर्मधन आया।

मुमुक्षु : धन तो आया न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नाम तो आवे ही न! परन्तु कौन सा धन? आत्मा रागरहित वीतरागी चिदानन्द प्रभु है। उसका अन्तर में श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति वह आत्मा का धन है। उसके अनुभव के लिए मैं यह वाणी करता हूँ। दूसरा मुझे कुछ काम है नहीं। आहाहा!

नय नय लहइ सार शुभवार,... यह चौपाई है। पहले दोहा था। **पय पय दहइ मार दुखकार। लय लय गहइ पार भवधार, जय जय समयसार अविकार।** भगवान अविकारी परमानन्दमूर्ति समयसार शास्त्र और समयसार आत्मा। अविकारी आत्मा स्वयं भगवान, वह कैसा है? और शास्त्र कैसा है? दोनों। **नय नय...** नये-नये। निश्चयनय, व्यवहारनय, भेदनय, अभेदनय आदि से जितने कथन वे **नय नय लहइ सार शुभवार,...** उस-उस समय में उस-उस नय में से सार और लाभ ही निकले, ऐसा है। व्यवहार जाने तो भी लाभ, निश्चय जाने (तो भी लाभ)। जाने तो, हों!

पय पय दहइ मार दुखकार। मरणरूपी दु:खकार जो मरण है जो मरण है, उसे पद-पद शास्त्र के पद-पद, वाक्य का मेल करके पद मार और दहकार—मार डालता है। दु:खकार मरण जो है, उसे मारकर समाधिमरण प्रगट कराते हैं। **लय लय गहइ पार भवधार,...** लीन होने पर भव के धारने का पार ग्रहता है। भवधारण भवधारण करना ऐसे आत्मा के स्वरूप में लीन होने पर उस भव के धारण का नाश करता है। **जय जय समयसार अविकार।** ऐसा समयसार आत्मा और वाणी, दोनों जयकार जय जय हो!! काम और मरण दोनों को यहाँ लिया है।

शब्द अर्थ अरु ज्ञान समय त्रय आगम गाये
मत सिद्धान्त रु काल भेदत्रय नाम बताये।

यह छप्पय है। क्या कहते हैं? एक शब्द को भी समय कहते हैं, अर्थ को समय कहते हैं और ज्ञान को समय कहते हैं। पंचास्तिकाय में आता है न? अर्थसमय, ज्ञानसमय, शब्दसमय। शब्द को समय कहा जाता है, पदार्थ को समय कहा जाता है और ज्ञान को समय कहा जाता है। पंचास्तिकाय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने मूलपाठ में लिया है। **समय त्रय आगम गाये।** आगम में तीनों को समय कहा गया है और दूसरे प्रकार से काल को समय कहा जाता है। मत को समय कहा जाता है कि इसका मत यह है। और सिद्धान्त को समय कहा जाता है। **भेदत्रय नाम बताये।**

इनहिं आदि शुभ अर्थसमयवचके सुनिये बहु... यह सबमें अर्थ जो है न? उन सबमें से शुभ अर्थ-पदार्थ समय। समयसार ऐसा जो पदार्थ उसकी कथनी **सुणीअे बहु।** उसकी कथनी इसमें करूँगा। अर्थसमय में भी पदार्थ में भी **जीव नाम है सार सुनहु सहु।** भगवान आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने सार तो आत्मा कहा है। उस सार की बात सुनना।

तातैं जु सार बिन कर्ममल... जीव में भी कर्ममलरहित जो शुद्धनय शुद्ध जीव कहे। कर्ममल रहित भगवान आत्मा। शुद्धनय जो शुद्ध जीव कहे। **इस ग्रंथ माँहिं कथनी सबै,...** इस ग्रन्थ में सब कथनी। देखो! **समयसार बुधजन गहै।** ज्ञानी ऐसे समयसार में शुद्धनय से शुद्ध जीव कर्मरहित कहा, उसे ग्रहण करे। लाख बात अन्दर लिखी हो

(परन्तु) सार यह ग्रहण करे। भगवान आत्मा शुद्ध ब्रह्म आनन्दकन्द है, कर्म के मल रहित है, इस प्रकार से आत्मा को अन्दर ग्रहण करना। यह सारे समयसार का सार है। पश्चात् उसकी सब व्याख्या है। बुधजन कहा है न? ज्ञानी ऐसा ग्रहे।

नामादिक छह ग्रन्थमुख,... छह नाम हैं। मंगल, निमित्तकारण, शास्त्र का प्रयोजन, परिमाणसंख्या, नाम क्या और शास्त्र के कर्ता। यह छह बोल आते हैं।

नामादिक छह ग्रन्थमुख, तामें मंगल सार।
विघन हरन नास्तिक हरन, शिष्टाचार उचार॥५॥

यह मांगलिक करने का कारण विघ्नहरण है। विघ्न आवे नहीं। **नास्तिकहरण...** नास्तिकपने का नाश हो। **शिष्टाचार...** उत्तम पुरुष के आचरण का पालन हो। उत्तम पुरुषों ने जो आचरण किया है, शिष्टाचार, उसका उच्चार। उसके पालन के लिये यह मांगलिक पहले किया।

समयसार जिनराज है,... इसमें भी देव, शास्त्र, गुरु (लेंगे)। उसमें भी देव, शास्त्र, गुरु। **समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिनवैन।** समयसार आत्मा है, वह देव है, वह जिनराज है। **स्याद्वाद जिनवैन।** कथंचित् नित्य, कथंचित् अनित्य आदि की स्याद्वाद भाषा और अनेकान्त उसका स्वरूप कहा। **जिनवैन...** उस जिनवेण को नमस्कार करता हूँ।

मुद्रा जिन निर्ग्रंथता,... वीतराग निर्ग्रन्थ मुनि दिगम्बर सन्त। देव, शास्त्र और गुरु। **नमूं करै सब चैन।** लो, तीनों आ गये। पहली गाथा से शुरु किया था, अन्त में वापस यह ले लिये। देव, शास्त्र और गुरु।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके श्रीकुन्दकुन्दाचार्य कृत गाथाबद्ध समयप्राभृत ग्रन्थ की श्रीमद् अमृतचन्द्रसूरि कृत आत्मख्याति नामक टीका है उसकी देशभाषा वचनिका लिखते हैं।

प्रथम, संस्कृत टीकाकार श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगल के लिये इष्टदेव को नमस्कार करते हैं :— यह श्लोक महामांगलिक है।

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे॥१॥

पण्डितजी! परम अध्यात्म तरंगिणी में आठ अर्थ घटित किये हैं। आठ अर्थ! समयसार का सामान्य अर्थ, पश्चात् विशेष में पाँच पद घटित किये हैं। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु। एक समयसार शब्द में से सब घटित किये हैं और सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। सम्+अय। समय है न? समय। सम्यक्, वह दर्शन। अय वह, ज्ञान। समय, समय सार। सार, यह चारित्र। टीका में घटित किया है। परम अध्यात्म तरंगिणी है न? अपने तब शुरु किया था। चार वर्ष शुरु हुए उसमें से किया है। है या नहीं? कहाँ गया? सब घटित किये हैं, हों! थोड़ा-थोड़ा पढ़ा था। मांगलिक किया था न? देखो! यह भी है।

'**रत्नत्रयपक्षे सं सम्यक्त्वं, अयो ज्ञानं, सरणं सारः चरित्रं**' अमृतचन्द्राचार्य समयसार—दर्शन-अय, ज्ञान और चारित्र, रत्नत्रय की व्याख्या, उसे समयसार कहते हैं। और पहले में तो समयसार सम्यक्त्व सत् लक्षणे... है न? जिनपक्षे कहा है। उसमें भी बहुत अर्थ घटित किये हैं। सिद्धपक्ष में घटित किये हैं, आचार्य में घटित किये हैं। '**सं सम्यक्, अयनं—गमनं यतं चरेदित्यादिलक्षणं चरणं येषां ते समयाते योगिनस्तेषु सारः—आचार्यः**' आचार्य में घटित किया है। उपाध्याय में भी ऐसा घटित किया है, '**समयः सिद्धांतः स्त्रियते, प्राप्यते येन स तथोक्त**' ऐसा करके। पश्चात् '**साधुपक्षे - समयेषु कालावलिषु सारः साधुः शेषः पूर्ववत्।**' आठ अर्थ घटित किये हैं, तथापि कहते हैं कि '**एवमर्थाष्टकं व्याख्यातं अत्याक्षिप्यमाणां बहुशोऽर्थेन व्याख्यायते, विस्तरभयान्नेक्षितं पद्यं।**' इससे बहुत अर्थ होते हैं, परन्तु विस्तार के कारण से कहे नहीं। शास्त्र है न यह तो और वह भी सन्तों के मुख में से निकली हुई वाणी। ओहोहो! एक शब्द में अनन्त आगम समाते हैं, भाई! ऐसी बात है।

आत्मा जहाँ आनन्दस्वरूप से परिणमकर उसमें चारित्र का आनन्द तो प्रचुर स्वसंवेदन, उसके आनन्द के झूले में झूलता भगवान, उसकी वाणी हो, उसका क्या कहें? आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य ने अकेले अमृत को प्रवाहित किया है। इसलिए इस टीका का नाम 'आत्मख्याति' रखा है। आत्मा की प्रसिद्धि। भगवान आत्मा जैसा है, उसकी प्रसिद्धि। इस टीका का आत्मख्याति (नाम) दिया। भगवान आत्मा पूर्ण शुद्ध

आनन्दकन्द है, उसे श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति द्वारा प्रगट करना, प्रसिद्धि करना कि यह आत्मा, उसे यहाँ आत्मख्याति टीका कहते हैं। उसमें बहुत अर्थ घटित किये हैं। अपने को कहीं बहुत संस्कृत नहीं आती। थोड़ा-थोड़ा उसमें लिखा हुआ (पढ़ा है)। समझ में आया? अब इसका अर्थ करते हैं, देखो!

'**नमः समयसाराय**' एक नमः शब्द पड़ा रहा है, उसमें अध्धर से अर्थ करते हैं। (समय अर्थात्) **जीव नामक पदार्थ...** समय अर्थात् जीव नाम का यह पदार्थ, **उसमें सार जो द्रव्यकर्म,...** अर्थात् आठ कर्म के रजकण। ज्ञानावरणीय (आदि) के आठ कर्म जो जड़ हैं, उनसे भगवान आत्मा पृथक् है। **भावकर्म...** पुण्य और पाप के भाव होते हैं, वह विकारी परिणाम है, उससे यह आत्मा ज्ञानानन्द प्रभु भावकर्म से भिन्न है। भीखाभाई! यह समयसार की शुरुआत (हुई)। तुम कुदरती आयी हो। पहली-पहली होती है। वहाँ घर में रखा होगा परन्तु ऐसा का ऐसा रखकर जाते होंगे। यह हिम्मतभाई धीरे-धीरे आते हैं।

भाई! यह तो परमात्मा सर्वज्ञदेव वीतरागदेव की वाणी में जो आत्मा आया, वह आत्मा सन्तों ने ... चारित्रसहित का। ओहोहो! उनकी वाणी में पहला मांगलिक का महा श्लोक है। नमः समय। समय अर्थात् यह आत्मा, सार—जड़कर्म; भावकर्म वह पुण्य-पाप के भाव; नोकर्म, वह शरीर, वाणी — उनसे रहित उसे मैं नमता हूँ। मेरा झुकाव, मेरा नमना, मेरा आदर ऐसा जो आत्मा है, उसमें मेरा नमन है। पुण्य-पाप और शरीर आदि को मैं नमता (नहीं) अर्थात् आदर देता नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द के तेज का पूर है, वह आत्मा चैतन्य का पूर है, वह आनन्द का घन है। वह आत्मा जड़कर्म, जो आठ कर्म के रजकण जो ज्ञानावरणीय (आदि) वह तो अजीवतत्त्व है। उस अजीवतत्त्व से यह भगवान निराला है।

मुमुक्षु : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। कब की कहाँ बात चलती है? वस्तु है न? परन्तु अजीव, वह जीव है? अजीव, वह जीव है? आठ कर्म तो अजीव है। कहो, इतना समझ में आता है या नहीं?

मुमुक्षु : जीव को आठ कर्म है या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आठ कर्म कर्म को है। जीव को है, यह तो निमित्त से कथन है। जीव को अजीव है, इसका अर्थ क्या ? जीव को आठ कर्म है न ? जीव को अजीव है। भाई! यह तो निमित्त के कथन हैं। अजीव में जीव नहीं, जीव में अजीव नहीं। आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा में जड़ का तीन काल में जड़पना नहीं। एक (बात हुई)।

नोकर्म यह वाणी और शरीर। उसमें कहाँ था ? वह भी अजीव है। वह भी अजीव है और वह भी अजीव है। वह अजीव जीव में कहाँ थे ? दो (बातें हुईं)। अब रहा पुण्य और पाप का भाव, शुभ-अशुभभाव, वह तो आस्रवतत्त्व है। वह आस्रवतत्त्व जीव में कहाँ आया ? जिसे जीव कहते हैं, उसमें आस्रव कहाँ आया ? समझ में आया ? आस्रवसहित कहना अर्थात् निर्मलानन्द प्रभु वीतराग स्वरूप से विराजमान आत्मा, वह आस्रववाला। अनास्रवी वस्तु आस्रववाला, वह तो निमित्त के व्यवहार के कथन हैं। उनका ज्ञान कराते हैं, वस्तु में वे हैं नहीं। आहाहा! समझ में आया ? हिम्मतभाई! समझ में आया यह ? थोड़ा थोड़ा, ठीक कहते हैं। आहाहा!

परमेश्वर त्रिलोक के नाथ हुए कहाँ से ? और उन सर्वज्ञ ने इस आत्मा को देखा कैसा ? सब आत्मा को, अनन्त आत्मा को। आत्मा को आत्मारूप से भगवान ने देखा वह आत्मा कैसा देखा ? आत्मा ऐसा देखा उन्होंने कि पुण्य, पाप है, वह आत्मा है—ऐसा देखा है ? कर्म, वह आत्मा है—ऐसा भगवान ने देखा ? शरीर वह आत्मा—ऐसा देखा ? भगवान सर्वज्ञदेव ने ऐसा देखा है और वैसा तू देख, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा वीतरागी कन्द प्रभु, अविकारी रस का पूरा तत्त्व वह आत्मा। उसमें पुण्य-पाप का विकार, वह तो विकारवाला कहना, अविकारी तत्त्व विकारवाला (ऐसा हुआ)। वह तो वर्तमान निमित्त के सम्बन्ध का ज्ञान कराने के लिये है, वस्तु में वह है नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

कहते हैं, यह द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित शुद्ध आत्मा, शुद्ध आत्मा। एक बार कहा नहीं था ? एक देवचन्दजी (हो गये हैं)। 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल... प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता हो लाल... निज सत्ता से शुद्ध सहुने

पेखता हो लाल...' हे सर्वज्ञदेव! परमेश्वर! हे वीतराग! आपने सारे जगत को ज्ञान में देखा। 'प्रभु तुम जाणग रीति' तुम्हारी जानने की पद्धति ही प्रभु! ऐसी है। 'सौ जग देखता... निज सत्ता से शुद्ध सहुने पेखता...' आहाहा! इसे भरोसा नहीं आता। ऐसा भगवान स्वयं परन्तु इसे भरोसा आया नहीं। इसे भरोसा (ऐसा है कि) यह रागवाला और या कर्मवाला और या यह वाला और या यह वाला या दोषवाला। अरे! परन्तु भगवान को दोष होगा? यह तो व्यवहार का ज्ञान कराने को है। वह तो व्यवहारनय का विषय है। वस्तुरूप से भगवान आत्मा, शुद्ध आत्मा, उसे मेरा नमस्कार। प्रगट हुए परमात्मा को कहते हैं। आहाहा! कोई नाम निकालकर नहीं कहा कि नमो महावीराय, नमो यह... ऐसा आत्मा है। ऐसा ही आत्मा का स्वरूप है। शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड, यह द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित, उसे यहाँ समयसार कहते हैं। उसे मेरा नमस्कार हो। समयसार भावाय नमः। ऐसा पदार्थ, ऐसा जो पदार्थ, उसे मेरा नमस्कार। ओहोहो! एक मांगलिक में तो... समझ में आया?

अर्थात् कि पूर्णानन्द के नाथ पूर्ण स्वरूप को प्राप्त हुए, ऐसा ही, मैं भी ऐसा ही हूँ। मैं भी मेरे आत्मा को नमता हूँ। विकार का आदर? निर्दोष भगवान को विकार का आदर? मिथ्याभ्रम है वह तो। भगवान ज्ञानमूर्ति शुद्ध चैतन्य, उसे कर्म-अजीव का आदर? जीव को अजीव का आदर? भ्रम है वह। समझ में आया? आदर कहो या नमना कहो। भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वरूप—जो जड़कर्म, पुण्य-पाप के भावकर्म, नोकर्मरहित उसे मैं नमता हूँ। उसमें मेरा उपादेयपना है। उसका मैं आदर करता हूँ। वह आत्मा को—समयसार को नमा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा!

देखो! इस श्लोक में अकेली अस्ति लेंगे। अजीव की बात नहीं करेंगे, आस्रव-बन्ध की नहीं करेंगे। करेंगे मात्र आत्मा, उसकी पूर्ण दशा मोक्ष और '**स्वानुभूत्या चकासते**' अन्तर की अनुभूति की संवर, निर्जरा की क्रिया से प्रकाशित हो, इतना। जीव, सत्ता, उसका स्वभाव, उसकी दशा से प्रगटे, पूर्ण को प्राप्त करे, ऐसे तत्त्व की इतनी बात करेंगे। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा जो आत्मा, वह कैसा है? **शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है।** देखो!

भावाय कहा। भावाय। अस्ति है, अस्ति है, शुद्ध सत्तारूप वस्तु है। समझ में आया? **इस विशेषण से सर्वथा अभाववादी नास्तिकों का मत खण्डित हुआ।** सर्वथा अभाव। पर की अपेक्षा से अभाव है, वह बराबर है, परन्तु सर्वथा अभाव ही है, ऐसा नहीं। पर की अपेक्षा से अभाव है, परन्तु स्वसत्ता के भाव की अपेक्षा से सद्भाव है। समझ में आया? यह आत्मा या परमात्मा सिद्ध आदि, परपदार्थ की अपेक्षा से अभाव है परन्तु वह पर की अपेक्षा से अभाव है, स्व की अपेक्षा से भाव है। एकान्त अभाव के माननेवाले, भावरूप वस्तु है, उसे नहीं माननेवाले, उनका यहाँ खण्डन हो गया। समझ में आया? **शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु... 'भावाय'** कहा न?

अब, **'चित्स्वभावाय'** देखो! 'जिसका स्वभाव चेतनागुणरूप है।' **'भावाय'** कहा। वस्तु **'भावाय'।** उसका गुण क्या तब? वह तो पदार्थ हुआ। गुण चेतनास्वरूप। जानना-देखना उसका स्वरूप है। **'चित्स्वभावाय'** ज्ञान **'स्वभावाय'।** ज्ञान सर्वस्व जिसका भाव त्रिकाल है। ज्ञान और दर्शन जिसका सर्वस्व त्रिकाल भाव है। स्व-भाव। **'चित्स्वभावाय'** आत्मा सर्वस्व चैतन्य ज्ञान-दर्शन स्वरूप। सर्वस्व उसका वही है। राग, पुण्य, वह उसका है ही नहीं। समझ में आया? सर्वस्व भाव। सर्व स्व-भाव। सर्वस्व, उसका सर्वस्व-सब हो वह, वह चेतनस्वरूप ही उसका सर्वस्व है। समझ में आया? अभी तो उन पैसेवालों को ऐसा कहते हैं कि तुम्हारे पैसा नहीं। तब पैसे किसके थे? कल कोई कहता था, पन्द्रह मिनिट बैठा था। एक ही बात। धूल... धूल... और धूल। आहाहा! अब उसे कब सुनना?

मुमुक्षु : धूल बिना ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल बिना ही चला है। कौन कहता है नहीं चला? उसमें लिखा, देखो! एक तत्त्व में दूसरे तत्त्व का अभाव है। इस एक तत्त्व ने दूसरे के अभाव से चलाया—चलाया है। बोलो लाओ! पण्डितजी! चलाया है, समझे? चलाया है। एक तत्त्व स्वयं से है और दूसरे अनन्त से नहीं। पर से नहीं, इस प्रकार से टिक रहा है। इसलिए पर बिना उसने चलाया है। लाओ प्रश्न (होवे तो)। समझ में आया? शशीभाई! यह बात हमारे बहुत हुई थी। एक भाई थे न? (वे कहे), महाराज! पैसे बिना कहीं

चलता है ? बोटाद के। (संवत्) २०१० के वर्ष में । बहुत लोग (आवे)। इस अँगुली ने इस अँगुली बिना ही चलाया है। इस अँगुली में यह अँगुली नहीं। इसलिए इसके बिना ही यह टिक रही है। इसलिए इसके अभाव से टिक रही है। इसकी नास्ति से टिक रही है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा पर अनन्त द्रव्य के अभाव से टिक रहा है। वह पर के अभावस्वरूप से ही टिक रहा है, अर्थात् पर बिना ही टिक रहा है। पर बिना नहीं चलता, उसकी मान्यता अन्दर खोटी है। उसे पर बिना नहीं चलता, ऐसी मान्यता बिना चलाया नहीं। समझ में आया ? ...भाई ! समझ में आता है या नहीं ?

मुमुक्षु : पैसे बिना ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे बिना क्या, इस शरीर बिना, यहाँ तो राग बिना चलाया है। राग और पुण्य-पाप इसमें है नहीं, अभाव है। निर्विकारी भगवान पूर्णानन्द प्रभु में विकार का अभाव है। उस वस्तु ने विकार बिना ही चलाया है। अजीव बिना ही चलाया है। उसकी मान्यता ऐसी है कि इसके बिना चलता नहीं। बस ! यह उसका भ्रम है। शशीभाई ! समझ में आया ? समझ में आया या नहीं इसमें ?

मुमुक्षु : आप समझाते हो तो समझ में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी चीज़ का स्व तत्त्व में अभाव है और अभाव से वह भाव अपनी चीज़ को बनाये रखा है। इसका अर्थ है कि पर के बिना ही उसने चलाया है। मान्यता बिना चलाया नहीं, मान्यता बिना चलाया नहीं। उसके बिना कैसे चले ? मान्यता बदल गयी (बाद में भी) जैसा है, वैसा है। मैं तो मुझसे हूँ, पर बिना ही मैंने चलाया है। आस्रव बिना मैं रहा हूँ और कर्म बिना मैं रहा हूँ। यह मान्यता हुई, उसने सम्यग्दर्शन को चलाया कि मैं पर बिना ऐसा का ऐसा हूँ। समझ में आया ? अरे ! ऐसा आत्मा ? परन्तु इसे ऐसी लप अन्दर घुस गयी है न। ... बिना चले ? सब्जी बिना चले ? स्त्री बिना चले ? देश बिना चले ? सब बिना चला ही है न, नहीं चले, नहीं चले (यह बात कहाँ है ?) समझ तो सही। न्यालभाई ! आहाहा !

यहाँ जिसका स्वभाव चेतनागुण है। स्व में क्या है ? जिसका सर्वस्व चेतनागुण

है। भगवान आत्मा, वह भाव-पदार्थ हुआ। जिसका सर्वस्व चेतनास्वरूप है। ... दूसरे अनन्त गुण भले रहे, यहाँ तो प्रधानपना लेना है न? '**चित्स्वभावाय भावाय**' '**भावाय**' (उसमें) द्रव्य लिया '**भावाय**'। '**चित्स्वभावाय**' उसका गुण लिया। उसका सर्वस्व तो चेतनागुणस्वरूप ही सर्वस्व है। आस्रव और पर उसमें है ही नहीं। उसका वह गुण नहीं, उसकी वह वास्तव में पर्याय नहीं। वास्तव में पर्याय, हों! गुण की जो पर्याय हो, वह उसकी पर्याय कहलाती है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! आत्मा अर्थात् क्या? ओहोहो! भगवान आत्मा अर्थात् कि जड़कर्म का अजीवपना, भावकर्म का मलपना और नोकर्म का अजीवपना, उससे रहितपना आत्मा का है। यहाँ तो भले भगवान आत्मा को याद किया है। ... परन्तु वह आत्मा ही ऐसा है।

मुमुक्षु : .... ऐसा हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके बिना कहाँ से हुआ? समझ में आया? ऐसे आत्मा को अन्दर में ऐसा यह, ऐसे अन्दर में झुक जाना-नम जाना, वह आत्मा को-समयसार को नमस्कार किया कहलाता है। आदर नहीं, आदर नहीं। राग और कर्म और नोकर्म का आदर नहीं। ज्ञान भले हो। है, उसका ज्ञान हो, जाना हुआ। परन्तु आदर नहीं। वह नहीं। यह है और यह नहीं। समझ में आया? आहाहा! कहो, समझ में आया?

देखो! यह समयसार की टीका करते हुए टीकाकार पहला मांगलिक करते हैं। आचार्य स्वयं गाथा में बाद में करेंगे। यह तो टीकाकार अमृतचन्द्राचार्यदेव, शब्दों का स्पष्टीकरण करने में पहला मांगलिक अन्दर के उल्लसित वीर्य से करते हैं। अहो! आत्मा! तुझे मेरा नमस्कार! भले परमात्मा को किया। समझ में आया? आहाहा!

'**चित्स्वभावाय**' ऐसा कहकर उसका सर्वस्व भाव ही ज्ञानानन्द है अथवा ज्ञान, दर्शन स्वभाव ही उसका है, दूसरा उसका स्वभाव नहीं। विकार नहीं, कर्म नहीं, किसी का करना, वह नहीं। भाई! लो और आया। यह और यह कहते थे, इसमें क्यों नहीं आता? यह सब आता है। पर का करना, यह उसका स्वभाव ही नहीं। '**चित्स्वभावाय**' राग का करना, वह स्वभाव नहीं। जानना, ज्ञान-दर्शन उसका स्वभाव है। राग हो, उसे जाने, चित् स्वभाव को जाने, शरीर को जाने। ज्ञान की अस्ति में रहकर, ज्ञान की

मौजूदगी में रहकर स्व को और पर को जाने, ऐसा वह चित् स्वभाव उसका स्वभाव है। समझ में आया?

मुमुक्षु : जानना वह स्वभाव है, ऐसा न? करना, वह नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : करना, वह स्वभाव ही नहीं। किसे करे? राग करना, ऐसा स्वभाव नहीं। चित् स्वभाव में क्या करना आया? कि जानना-देखना आया? जानना-देखना भगवान आत्मा का स्वभाव है।

'**भावाय**' यह द्रव्य। द्रव्य अर्थात् कोई वस्तु हो, उसका स्वभाव नहीं होगा? तो स्वभाव क्या? कि परमाणु जड़। उसका स्वभाव क्या? कि मूर्त आदि। वर्ण, गन्ध आदि। आत्मा वह '**भावाय**', (उसका) गुण क्या? '**चित्स्वभावाय**'। चित्स्वभावाय— ज्ञान-दर्शन गुण पूरे आत्मा में व्याप्त है और वास्तव में तो उसका गुण उसकी पर्याय में व्यापे, तब '**स्वानुभूत्या**' कहेंगे। यह क्रिया कहेंगे। समझ में आया? आहाहा! **इस विशेष से गुण-गुणी का सर्वथा भेद माननेवाले नैयायिकों का निषेध हो गया।** नामभेद से, लक्षणभेद से भेद है। '**भावाय**', '**चित्स्वभावाय**' अभेद कहा। '**चित्स्वभावाय**'। सर्वथा गुण-गुणी का भेद है, ऐसा नहीं। नाम लक्षण से भेद है, स्वरूप से अभेद है। उसके असंख्य प्रदेश में जहाँ आत्मा है, वहाँ ही उसका चैतन्यगुण है। इसलिए प्रदेश तो अभेद ही है। नाम लक्षण से जरा भेद हो। समझ में आया? इसलिए कहा कि सर्वथा गुण-गुणी का भेद माननेवाला... उसका कोई भी मत का वस्तु में ऐसा नहीं, इससे विरुद्ध मत का खण्डन हो गया, ऐसा (कहना है)। यह द्रव्य-गुण लिये।

'**स्वानुभूत्या चकासते**' यह अब पर्याय ली। कैसा है आत्मा? **अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाश करता है अर्थात् अपने को अपने से ही जानता है-प्रगट करता है।** भगवान आत्मा '**चित्स्वभावाय भावाय**'—द्रव्य का स्वभाव। अब यह कहते हैं कि यह आत्मा है, ऐसा प्रसिद्ध किस प्रकार होता है? यह आत्मा '**चित्स्वभावाय भावाय**', '**चित्स्वभावाय भावाय**' प्रसिद्ध किस प्रकार होता है? कहीं द्रव्य-गुण से प्रसिद्ध नहीं होता। पर्याय से प्रसिद्ध होता है। तो कहते हैं, कौन सी पर्याय? '**स्वानुभूत्या चकासते**'। भगवान आत्मा, उसके ज्ञान-दर्शन की अनुभवन क्रिया, अनुभवन क्रिया,

उसे यहाँ संवर, निर्जरा कहा। '**भावाय**' जीवद्रव्य लिया, '**चित्स्वभावाय**' गुण लिया, और यह उसकी क्रिया में संवर, निर्जरा तत्त्व लिया। यह संवर, निर्जरा अर्थात् पर से हटकर चैतन्यस्वभाववान भगवान, उसकी क्रिया ज्ञान का अनुभवना, श्रद्धा का होना, आनन्द का होना, उस स्व-अनुभूति से वह प्रकाशित होता है। राग द्वारा, निमित्त द्वारा, संयोग द्वारा प्रकाशित होता है, यह उसका स्वभाव ही नहीं। उसका यह स्वभाव ही नहीं। '**स्वानुभूत्या चकासते**' यह उसका स्वरूप है। पर्याय द्वारा — निर्मल ज्ञानानन्द द्वारा, उसे शास्त्र भाषा से संवर, निर्जरा कहा। आस्रव से विमुख होकर, पर्याय ने स्वभाव का आश्रय लिया, उस पर्याय को संवर, निर्जरा कहते हैं। उस शुद्ध पर्याय द्वारा यह आत्मा है, ऐसा प्रकाशमान, प्रसिद्धमान प्रगट यह आत्मा है, ऐसा अनुभूति से प्रसिद्ध होता है।

देखो! आत्मख्याति टीका करते हैं और टीका के श्लोक में मांगलिक करते हैं। आत्मख्याति—आत्मप्रसिद्धि कैसे हो? '**स्वानुभूत्या**' यह आत्मा का भरोसा, प्रतीति कैसे हो? कि वह भगवान आत्मा अन्तर में स्वसन्मुख की — पर से विमुख की, विकार और संयोग से विमुख की; विमुख की बात ली नहीं, यहाँ अस्ति की ही बात ली है। अस्ति के बोल लिये हैं। सत्ता ऐसी है। 'स्वानुभूत्या चकासते'। राग से प्रकाशित नहीं होता, यह बात नहीं ली। यह उसमें आ जाता है। परन्तु मूल यह है।

वस्तु है भगवान, उसका चेतन ज्ञान-दर्शन स्वभाव भरपूर भाव है। उसमें एकाकार होना। वह निर्मल ज्ञान, दर्शन, शान्ति ऐसी अनुभूति-स्व-अनुभूति से स्व-अनुभूति से यह आत्मा प्रसिद्ध होता है। देखो! इसका अस्तिभाव लिया। संवर, निर्जरा से प्रसिद्ध होता है, ऐसा अस्तिभाव लिया है। आस्रव और बन्ध को अटकावे तो प्रसिद्ध होता है, यह नास्ति से बात ली नहीं। अस्ति से लेनी है। मूल तो पूरा अस्ति तत्त्व का जोर देना है एकदम। क्योंकि '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'। अस्ति महा पदार्थ का आश्रय करने से सम्यग्दृष्टि होता है। यह अस्ति से है। समझ में आया? ग्यारहवीं गाथा वस्तु के प्राण है, जैनशासन का है न? साधन अर्थात् वस्तुस्वरूप। '**भूदत्थमस्सिदो खलु।**' भगवान आत्मा '**भावाय**'। '**चित्स्वभावाय**' उसका आश्रय करने से, यह आश्रय

वह स्वानुभूति क्रिया। आश्रय द्रव्य का, क्रिया स्वानुभूति, उस द्वारा आत्मा है, ऐसा प्रसिद्ध होता है। आहाहा! भारी कठिन बात।

बापू! तू है ऐसा, अब उसका करना क्या? तू राग से प्रसिद्ध हो, ऐसा तेरा स्वरूप ही नहीं। अब उसमें क्या करे? पहले से अमृतचन्द्राचार्य ने यह मांगलिक डाला। भाई! तू प्रभु है न! तेरी प्रभुता की पर्याय द्वारा तू प्रभु! प्रसिद्ध हो ऐसा है। राग और रंक, राग और विकल्प तो भिखारी है, अचेतन है। पुण्य-पाप के भाव तो अन्धकार है। चैतन्य के तेज के नूर का जिसमें अभाव है। शरीर परमाणु तो अचेतन है परन्तु दया, दान, कषाय की मन्दता, व्यवहार का रत्नत्रय का राग भी अचेतन है, उसमें चैतन्य के प्रकाश के नूर के अंश का अभाव है। समझ में आया? आहाहा! मुझे मुझसे ... ? नहीं, बापू! कुछ लकड़ी चाहिए, पंगु है। पंगु हो न? लकड़ी के सहारे चला जाये। परन्तु चलने की क्रिया तेरी, वह सहारा क्या करे? मुर्दे को हाथ में लकड़ी दो।

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! तेरा स्वभाव ही हम यह एक (कहते हैं)। नमः समयसाराय। आहाहा! **'स्वानुभूत्या चकासते' अपनी ही अनुभवनरूप... 'ही'** है न? **अनुभवनरूप क्रिया...** लो, यह पर्याय, यह क्रिया। यह क्रिया धार्मिक क्रिया। वीतराग के मार्ग की यह क्रिया। क्रिया के प्रकार क्या? क्रिया पर्याय का फिरना। जड़ की पर्याय का फिरना (बदलना) जड़क्रिया। राग का फिरना, वह विभाविकक्रिया। भगवान चैतन्यस्वभाव का ऐसे फिरना, यह हुआ ज्ञान। वह चैतन्य की क्रिया। समझ में आया? वे कहे, सोनगढ़वाले (ऐसा कहते हैं)। भाई! सोनगढ़ को रहने दे। यह भगवान को कह, जो भगवान ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : भगवान ने क्रिया कही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कही न क्रिया। **'स्वानुभूत्या चकासते'।** भगवान आत्मा उसके स्व अनुभव से। स्व-अनुभव-स्व को अनुसरकर होकर वह प्रकाशित होता है। राग को अनुसरकर, निमित्त को अनुसरकर प्रकाशित होता है, (ऐसा नहीं)। ऐसा नहीं ऐसा तो यहाँ लिया ही नहीं। ऐसा है, बस। ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? तकरार... तकरार... अरे! भगवान! रहने दे, बापू! यह तकरार का काल ही नहीं। यह

तो तकरार तोड़ने का काल है। अरे! ऐसा देह मिला, बापू! आँखें मिच जायेंगी, भाई! कोई शरण नहीं होगा, हों! तू वाद-विवाद करके बड़ी बात ऊँची रखेगा परन्तु उसमें कुछ नहीं होगा। भगवान आत्मा को तूने मान नहीं दिया, बहुमान नहीं दिया और मान दूसरे को दिया तो अन्दर शरण है, वहाँ जा नहीं सकेगा। समझ में आया? शरीर में बीमार पड़े हुए रोग हो। णमो अरिहंताणं करो, भाई! णमो अरिहंताणं के सामने देखे, वह तो विकल्प हुआ।

एक व्यक्ति था नहीं? पोरबन्दर का एक था न? वे भाई गुजर गये। बहुत सामायिक और प्रौषध किये। फिर गोला उठा, गोला। गोला कहलाये न? वायु का गोला नहीं कहते? पवन का गोला... क्या नाम? भूल गये। गिरधरभाई के पास पैसे-बैसे हुए, मकान बनाये, गृहस्थ व्यक्ति। अब अपने निश्चिन्तता से धर्मध्यान करेंगे। हम वहाँ थे। वहाँ ही उसे गोला उठा। वहीं का वहीं मर गया। दूसरे एक भाई थे, कच्छी थे न? (वे कहे), भाई! तुम महावीर... महावीर करो। बापू! महावीर करने का अवसर अभी नहीं। इतनी पीड़ा है। परन्तु अभी तक तुमने क्या किया? वे गिरधरभाई थे। बाजार में मकान है न? साठ हजार का मकान बनाया हुआ। तब, (संवत्) १९८२ के वर्ष में, १९८२ के वर्ष में। चौबीस वर्ष हुए।

मुमुक्षु : सिर दुखता हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु सिर दुःखे किसे? सिर सिर में रहा। वह तो यहाँ कहते हैं। सिर की पर्याय अजीव है, वह आत्मा में नहीं। सिर की यह पर्याय क्या है? वह अजीव है। वह द्रव्य अजीव, गुण अजीव और अवस्था अजीव। आत्मा में है नहीं। सिर में कुछ होता है तो मुझे कुछ हुआ। शरीर में कुछ हुआ तो मुझे हुआ। मुझे हुआ, मुझे हुआ। वहाँ हो तो (कहे), मुझे हुआ। यह भूल ही तेरी बड़ी भ्रम की है। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, यह तो मिट्टी है, जड़ है, अजीव रजकण है, उसकी यह पर्याय है। अजीव की पर्याय जीव की पर्याय में आ जाती होगी?

मुमुक्षु : प्रभाव होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभाव डालती होगी अन्दर? ऐसी कुछ अन्दर किरण डालती

होगी किरण? यह पर्याय की किरण वहाँ जाती होगी? भाई! तुझे खबर नहीं। तेरा सर्वस्व तुझमें समाहित है। तेरा कहीं बाहर में नहीं और बाहर का कुछ तुझमें नहीं। आहाहा! अरे! परन्तु इस दृष्टि को कैसे समेटे? समेटना आता नहीं और दृष्टि ऐसे पसरावे। चित्त पसरावे। आहाहा!

कहते हैं, **अपने को अपने से ही जानता है...** देखो! कोई ऐसा कहे कि भाई! ज्ञान ज्ञान को स्वयं अपने को जाने? दूसरा ज्ञान इसे जाने। नहीं, प्रगट हुआ ज्ञान ज्ञान को जाने। स्वयं से ज्ञात हो, ऐसा तो कहा, परन्तु जो ज्ञान प्रगट हुआ, और प्रगट हुआ प्रगट हुए को जाने और प्रगट हुआ स्व को पूरे को जाने। समझ में आया? भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु..! यह समयसार की अमृतचन्द्राचार्य की टीका के मांगलिक में ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

भगवान! तू तो बड़ा है न, प्रभु! उस बड़े में ऐसा पामर नहीं समाता, भाई! तुझमें नहीं समाता। यह विकार और शरीर और कर्म सब भिखारी पामर हैं। वे प्रभु के समक्ष नहीं आ सकते। समझ में आया? तूने माना है, इसलिए तुझे लगता है। प्रभु के पास झांई न डाल सके, ऐसा वह भगवान है। तुझे बैठता नहीं। ऐसा आत्मा? '**स्वानुभूत्या चकासते**' वह आत्मा ऐसा है। जिसका द्रव्य '**भावाय**', जिसका गुण — '**चित्स्वभावाय**'। '**स्वानुभूत्या**' यह पर्याय ली। द्रव्य, गुण और पर्याय तीनों आ गये। ऐसा जैनदर्शन के अतिरिक्त अन्यत्र हो नहीं सकता। सर्वज्ञ से कहा हुआ, देखा हुआ, जाना हुआ, अनुभव किया हुआ। अनुभवी को अनुभव में आवे ऐसा। समझ में आया? आहाहा! यह पर्याय—'**स्वानुभूत्या चकासते**'। रागादि की पर्याय गयी और स्वभाव की अनुभूतता की जो पर्याय हुई, उसके द्वारा वह ज्ञात हो, ऐसा है, उस द्वारा वह प्रसिद्ध होता है, उस द्वारा यह आत्मा — ऐसा प्रगट होता है। समझ में आया? ऐसा करके कोई ऐसा कहे कि यह अपने को ज्ञात हो? यह कहीं अपने को खबर पड़े? भगवान जाने। भगवान जाने, अपने को सम्यग्दर्शन हुआ या नहीं, यह भगवान जाने। यह क्या कहते हैं यहाँ? '**स्वानुभूत्या चकासते**' क्या कहते हैं? समझ में आया? गड़बड़ का पार नहीं होता। यह कहे कि, अपने को निश्चय समकित की खबर पड़े नहीं।

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन की खबर पड़े नहीं और चारित्र की खबर पड़े...

पूज्य गुरुदेवश्री : चारित्र अर्थात् उसका माना हुआ क्रियाकाण्ड व्यवहार। उसकी खबर पड़े कि यह व्रत हम पालते हैं और यह त्याग करते हैं।

मुमुक्षु : न खबर पड़े, उसमें क्या बाधा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! न खबर पड़े, इसकी बात ही कहाँ है ? समझ में आया ? यह और उसमें अन्तिम आया, लो। स्वयं अपने को जाने। '**स्वानुभूत्या**' होकर जाने और स्वयं अपने को खबर पड़े, ऐसा आत्मा पर्याय से प्रगट हो सकता है। निर्मल शान्ति और श्रद्धा-ज्ञान से प्रगट हो सके, ऐसा है। ऐसा उसका स्वरूप विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण शुक्ल १२, शुक्रवार, दिनांक - २९-०७-१९६६
श्लोक - १, प्रवचन - २

इष्टदेव को नमस्कार करते हैं। उसमें आया कि '**नमः समयसाराय भावाय चित्स्वभावाय**'। समयसार अर्थात् आत्मा वस्तु, वह द्रव्यकर्म अर्थात् कर्म के रजकण, भावकर्म अर्थात् विकारीभाव परिणाम और नोकर्म-शरीर, वाणी इत्यादि, वह जो स्वरूप में नहीं, ऐसे परमात्मा हुए, उन्हें इष्टदेवरूप से मांगलिक में नमस्कार करते हैं और ऐसा ही स्वरूप अभी आत्मा का भी है। समझ में आया? द्रव्यकर्म जड़, भावकर्म, नोकर्म रहित। और '**भावाय**' शुद्ध सत्तास्वरूप आत्मा है। शुद्ध सत्तास्वरूप आत्मा, परमात्मा का आत्मा भी शुद्ध सत्तास्वरूप है। यह आत्मा भी शुद्ध सत्तास्वरूप है। '**चित्स्वभावाय**' उसका स्वभाव सर्वस्व सर्वज्ञ परमेश्वर का सर्वस्व ज्ञान-दर्शन स्वभाव है। यह आत्मा का भी सर्वस्व जानन-देखन स्वभाव त्रिकाल है।

'**स्वानुभूत्या चकासते**' यह आत्मा अपनी अन्तर की अनुभवक्रिया से ही प्रसिद्ध और प्रगट हुआ है। जो परमात्मा हुए, वे आत्मा भाव और उसका स्वभावभाव, उसकी एकाग्रता द्वारा '**स्वानुभूत्या**' अन्तर में आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, उसमें ज्ञानप्रधान से यह बात है। '**स्वानुभूत्या**' ज्ञान की अनुभूति से अन्तर की एकाग्रता द्वारा वह प्रगट हो सकती है। इस प्रकार अनन्त परमात्मा प्रगट हुए हैं, और यह आत्मा भी '**स्वानुभूत्या**' अन्तर की ज्ञान, श्रद्धा, स्थिरता की क्रिया द्वारा आत्मा प्रसिद्ध - प्रगट होता है। समझ में आया? यह क्रिया कही। '**स्वानुभूत्या**' पर्याय कही। पर्यायतत्त्व कहीं नौ तत्त्व में तो आना चाहिए न? जीव स्वयं '**भावाय**' ज्ञान-दर्शन स्वभाव, वह तो द्रव्य में गया, वह तो द्रव्य में समावेश हुआ। '**स्वानुभूत्या चकासते**' यह पर्याय आयी। वह वीतरागी निर्दोष ज्ञान की क्रिया, उसे यहाँ संवर, निर्जरा शुद्धता की पर्याय द्वारा आत्मा प्रगट होता है। उस शुद्धता को संवर और निर्जरा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष — चार में तत्त्व समाहित कर देते हैं।

कितने ही ऐसा कहते हैं कि ज्ञान जानता हुआ ज्ञान को उत्पन्न होता हुआ ज्ञान कैसे जाने ? आत्मा का ज्ञान सर्वज्ञ का, जो सर्वज्ञपर्याय उत्पन्न हुई अथवा '**स्वानुभूत्या**' अन्तर की क्रिया आत्मा के ज्ञान और दर्शन द्वारा उत्पन्न हो, वह उत्पन्न हुआ उत्पन्न को कैसे जाने ? समझ में आया ? कहा कि, ज्ञानस्वरूप भगवान अपने में एकाग्र हो, वह उत्पन्न होता अपने को जाने, ऐसा ही उसका स्वभाव है।

मुमुक्षु : अजीव ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा, देखो न ! **इस विशेषण से, आत्मा को तथा ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले जैमिनीय-भट्ट-प्रभाकर के भेदवाले मीमांसकों के मत का खण्डन हो गया। तथा ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है—स्वयं अपने को नहीं जानता, ऐसा माननेवाले नैयायिकों का भी प्रतिषेध हो गया।** प्रवचनसार में आगे भी आता है।

मुमुक्षु : वह तो नैयायिक को ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नैयायिक कहाँ ? कोई भी माने। वह तो बात की है। प्रवचनसार में आगे आ गया है। मनुष्य कहीं कन्धे, सिर पर चढ़े ? यहाँ कन्धे-कन्धे कहलाये न ? क्या कहलाता है वह ? है न वह ? इसी प्रकार ज्ञान उत्पन्न होता ज्ञान को जाने ? प्रवचनसार में आया है। कहते हैं, हाँ, उत्पन्न होता जाने। समय-समय में नया उत्पन्न हो और वह उत्पन्न होता, उसे ही जानता हुआ उत्पन्न होता है। समझ में आया ? किसमें है यह ? श्लोक में है ?

मुमुक्षु : पण्डित हेमराजजी का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु है न अन्दर ? पाठ में भी है न ? उत्पन्न हुआ, वह अपने से होता है न ? हेमराजजी ने तो स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया ? स्वयं अपने से उत्पन्न होता है, ऐसा है। परन्तु उत्पन्न होता जानता हुआ उत्पन्न होता है। यह विशेष है। उसकी दशा ज्ञान, ज्ञान को उत्पन्न करे और वह ज्ञान उसे न जाने, ऐसा नहीं है। समझ में आया ? उस ज्ञान की पर्याय में भी प्रमेयत्वगुण व्याप्त है। प्रमेयत्वगुण जो है, वह द्रव्य में, गुण में और पर्याय तीनों में व्याप्त है। तो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई,

उसमें प्रमेयत्वगुण व्याप्त है। वह पर्याय जाने और प्रमेय हो, ऐसा उस पर्याय का धर्म है।

मुमुक्षु : डबल जाने इतना है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना। है न अन्दर ? उस ओर है, उस ओर के भाग में। समझ में आया ? भाई ! उसकी—चैतन्य की लीला, लोगों ने ईश्वर की लीला (कल्पित कर ली है), वह नहीं। यह तो चैतन्य भगवान अपनी लीला करता है। ऐसे समय-समय में अपने ज्ञान की एकाग्रता से ज्ञान उत्पन्न हो, तब (कोई) कहे कि यह उत्पन्न हुआ उसे नहीं जानता। दूसरा उसे जानता है। और दूसरा उत्पन्न होते को तीसरा जानता है। यह कहीं मेल रहा नहीं। ऐसा नहीं होता।

भगवान आत्मा द्रव्यस्वभाव शक्तिवान, शक्ति स्वभाव गुणवान—गुणस्वरूप, उसकी जो पर्याय अन्तर में प्रगट हुई, उस-उस पर्याय को ज्ञान जानता हुआ (उत्पन्न होता है)। दूसरे गुणों की पर्याय भले हो, वह स्वयं को न जाने। समझ में आया ? परन्तु अपना अस्तित्व उस समय में ज्ञान में ज्ञात होता है। दूसरे गुण की पर्याय का अस्तित्व ज्ञान में ज्ञात हो और ज्ञान का अस्तित्व ज्ञान में ज्ञात हो। उत्पन्न होता अस्तित्व ज्ञान, ज्ञान को जाने और प्रमाण करे और प्रमेय हो। आहाहा ! समझ में आया ? है कहीं। दृष्टान्त दिया है। यह यहाँ स्पष्टीकरण किया है। कहो, समझ में आया इसमें ? भगवान आत्मा देखो ! ऐसा आत्मा है, ऐसा इसे श्रद्धा में (आना चाहिए)।

मुमुक्षु : ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन पहला अधिकार...

पूज्य गुरुदेवश्री : ३६ गाथा, ऐसा न ? **कोई पर्याय स्वयं अपने में से उत्पन्न नहीं हो सकती....** यह। **यहाँ पर कोई प्रश्न करे कि आत्मा अपने को जानता है, यह बात असम्भव है। जैसे कि नटकला में अत्यन्त चतुर नट आप अपने कन्धे पर नहीं चल सकता।** आहाहा !

मुमुक्षु : चाहे जैसा सीखा हो तो भी स्वयं अपने कन्धे पर नहीं चल सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : हो सकता है ? बैठकर जाये और नाचे, ऐसा नहीं हो सकता, ऐसा एक तर्क किया। नहीं, यह (तर्क) यहाँ लागू नहीं पड़ता। यहाँ तो ज्ञान, ज्ञान में स्वयं अपने को प्रगट करता हुआ (जान रहा है)। वस्तु ऐसी है। ज्ञान, ज्ञान में प्रमाणगुण

स्वयं है—प्रमाण होना और ज्ञानगुण में वापस प्रमेयगुण है न ? प्रत्येक गुण में वह व्याप्त है। इसलिए ज्ञान स्वयं प्रगट होता हुआ अपने को जानता हुआ प्रगट होता है। नहीं था और हुआ तो भी होते समय जानता हुआ प्रगट होता है। भाई ! ऐसा स्वभाव है। समझ में आया ? अलौकिक वस्तु ही ऐसी है। वह स्वयं चैतन्य अपनी पर्याय प्रगट करे और उसे न जाने, न जाने तो उसमें प्रमेयत्व कहाँ आया ? प्रमेयत्व विभुरूप से सर्व गुणों में व्याप्त है। विभु नाम का एक गुण है न ? भाई ! सर्व गुण में व्याप्त है ऐसे। ४७ शक्ति में सब वर्णन आ गया है। ऐसे व्याप्त है। तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द, स्वानुभूति...

भगवान आत्मा इष्ट है दृष्टि में, परमात्मा इष्ट है पररूप से इस आत्मा को, व्यवहाररूप से वर्णन किया है। ऐसे सर्वज्ञ परमेश्वर, उनकी जो क्रिया, सर्वज्ञ होने की स्वानुभूत्या की क्रिया, वह क्रिया उत्पन्न होने पर उत्पन्न होते को जानता हुआ उत्पन्न होता है। ज्ञान में ऐसी सामर्थ्य है। समझ में आया ? यह पहले समय में प्रमाण प्रमेय न करे तो वह प्रमाण दूसरे समय में करे, इसका अर्थ क्या ?

मुमुक्षु : दूसरे समय में तो दूसरी हो गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी दशा हो गयी। आहाहा ! यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : यह तो दूसरा जाने, इसे खबर न पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसे खबर न पड़े तो अन्धा ज्ञान है ? यही कहते हैं। समझ में आया ?

ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है, स्वयं अपने को नहीं जानता - झूठी बात है। भाई ! ज्ञान का स्वभाव... यहाँ तो स्वानुभूत्या समय की बात की है, हों ! पूर्ण समय की तो बाद में कहेंगे। भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप अनन्त गुण का धाम है। उन अनन्त गुणों में एक विभु नाम का गुण है और उसमें एक प्रमेयत्व नाम का गुण है। ऐसे व्यापक सब गुण में है। इसलिए जब भगवान आत्मा अपनी अन्तर की अनुभूति की क्रिया—श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट करे, उस समय उस ज्ञान को ज्ञान जाने और उन श्रद्धा आदि गुणों को भी वह ज्ञान जाने। जानता हुआ उत्पन्न हुए को वह जानता हुआ

ज्ञान उत्पन्न होता है, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? सूक्ष्म बातें हैं, बापू! यह तो चैतन्य बादशाह की बात है, भाई! वह स्वयं ही ऐसा है, अभी। समझ में आया? लो, यहाँ तक आया था।

केवलज्ञान को सिद्ध करते हैं। आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव है, वह त्रिकाल है। वह सर्वज्ञस्वभाव सब तीन काल-तीन लोक के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को जानने की सामर्थ्य रखता है। परन्तु स्वानुभूत्या से अन्तर की क्रिया द्वारा जब केवलज्ञान प्रगट हुआ, साधक स्वभाव द्वारा साध्य द्रव्य को लक्ष्य में लेता हुआ जो सिद्धदशा प्रगट हुई, वह कैसी है? मोक्षतत्त्व डाला। आत्मा, आत्मा का स्वभाव अर्थात् भाव-स्वभाव, संवर, निर्जरा और मोक्ष अस्तिरूप से चार तत्त्व को सिद्ध किया है। आचार्य की शैली कोई अलौकिक है! यह तो आचार्य मुनि सन्त हैं। महा अन्तर के चारित्र से रमणता करते, आनन्द में रमते मुनि हैं। यह रमते-रमते यह विकल्प आया है और यह शास्त्र रच गये हैं। बापू! यह कहीं कोई कल्पना की बात है कि ऐसा होगा या ऐसा होगा, ऐसा नहीं। ऐसा है।

मुमुक्षु : भगवान की महिमा के लिये बताया है?

पूज्य गुरुदेवश्री : महिमा नहीं, वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया? आहाहा! आता है न पीछे के कलश में, नहीं? समयसार में पीछे के कलश में (आता है), अद्भुतात् अद्भुतम्। आत्मा अद्भुत है एक जगह ऐसा आया है और फिर अद्भुतात् अद्भुतम् (कहा)। बाद के कलश में, समयसार के पीछे के कलश में आता है। वस्तु ही माहात्म्यवाली ऐसी चीज़ है। अद्भुतात् अद्भुताम्, आता है न पीछे? देखो! मिथ्यादृष्टि को पहले तो लगे कि ऐसा यह सम्भवता होगा? ऐसा होगा। ऐसा लिखा है न अन्दर? कलश २७३। उसमें अद्भुतम्। और २७४ में अद्भुता अद्भुतम्। २७३-२७४ (कलश)।

कषायकलिरेकतः स्खलति शान्तिरस्त्येकतो।
भवोपहतिरेकतः स्पृशति मुक्तिरप्येकतः।
जगत्त्रितयमेकतः स्फुरति चिच्चकास्त्येकतः
स्वभावमहिमात्मनो विजयेऽद्भुताद्भुतः ॥२७४॥

यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। परमेश्वर ही ऐसा है—स्वयं ही ऐसा है। समझ में आया? दूसरे को तो ऐसा लगे कि ऐसा होगा? देखो! उसमें है न? (कलश-२७३, भावार्थ)। **अज्ञानियों के ज्ञान में आश्चर्य उत्पन्न करता है कि यह तो असम्भव सी बात है! यद्यपि ज्ञानियों को वस्तु स्वभाव में आश्चर्य नहीं होता, फिर भी उन्हें कभी नहीं हुआ, ऐसा अद्भुत परमानन्द होता है,...** लो, २७३ का अर्थ किया। अर्थ करनेवाले ने बहुत सरस अर्थ किया है। समझ में आया?

अब क्या सिद्ध करते हैं? एक श्लोक में तो बहुत सिद्ध किया। वस्तु, वस्तु का स्वभाव, उसकी धार्मिक क्रिया और उसके फलरूप से सर्वज्ञपद। समझ में आया? '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' उसके (कलश टीका में) दो अर्थ किये। यहाँ अपने सर्वज्ञ (ऐसा) एक ही अर्थ है। स्वयं अपने से '**सर्वभावान्तरच्छिदे**'। सर्व भाव अन्तर। अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य जो सर्व भाव हैं, अपने से **अन्य सर्व जीवाजीव,...** अनन्त जीव और अनन्त अजीव। **चराचर पदार्थ...** कोई गतिमान और स्थिर हो, उन सब पदार्थों को **सर्व क्षेत्र काल सम्बन्धी...** भगवान आत्मा '**सर्वभावान्तरच्छिदे**'। अपना आत्मा तो जानने की बात की। परन्तु इसके अतिरिक्त अन्य-अन्य अनन्त आत्मा और अनन्त परमाणु। चराचर यह बात की। पहली तो गति, स्थित और गति, ऐसा लिया। कितने ही गतिवान हैं और कितने ही स्थिर हैं। एक। जीव-अजीव। दो। **सर्व क्षेत्र काल सम्बन्धी...** ऐसे पदार्थ को सर्व क्षेत्र और सर्व काल सम्बन्धी। **सर्व विशेषणों सहित,...** सर्व गुणों सहित। उनकी सब शक्तियाँ जितनी अनन्तानन्त एक-एक हैं, उन सहित, **एक ही समय में...** विशेषण में गुण और पर्याय दोनों अन्दर आ गये। एक ही समय में। भाई! ज्ञान किसे कहे? आहाहा! वह ज्ञान अक्रम से न पहुँचे तो दिव्य ज्ञान किसे कहना? पहुँचता ही है न! वस्तु का स्वभाव है, भाई! वस्तुस्थिति है।

भगवान आत्मा अपना इष्ट स्वरूप परमानन्द। प्रवचनसार शास्त्र में इतना लिया है। इष्ट आत्मा के गुण इष्ट। अनिष्ट कौन? विकारभाव। बस। प्रवचनसार पहले अधिकार में (लिया है)। इष्ट प्रभु आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड। अनिष्ट विकार। इष्ट प्रभु के अन्दर एकाकार की स्तुति अथवा क्रिया करने से अनिष्टपना टल जाये। अकेला इष्टपना

प्रगट हो जाता है। वह प्रगट हुए इष्टदेव का यहाँ मांगलिक किया है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, यह सब विशेषणसहित **एक ही समय में जाननेवाला है।** भगवान '**सर्वभावान्तरच्छिदे।**' यह आत्मा, इसके अतिरिक्त के सर्व '**सर्वभावान्तर**'। अन्तर अर्थात् अन्य। इसके अतिरिक्त अन्य सब। उसका द्रव्य, क्षेत्र, उसका काल-समय और उसके भाव और तीन काल, सबको एक ही समय में जाननेवाला है। भाई! ज्ञान का स्वरूप एक समय में न जाने तो वह ज्ञान पूरा किसका? और जिसका स्वभाव है, उसे दो समय जानने में चाहिए ही नहीं। और दो समय नहीं चाहिए और एक में पूरा न जाने तो वह स्वभाव ही नहीं कहलाता। वस्तु ऐसी है। ऐसी है। भगवान, वे तो सब जानते हैं। एक समय में वे क्या न जानें? सर्व।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह चार बोल है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव। चार है। प्रवचनसार में चार बोल है न! समझ में आया? सर्व को सर्वदा सर्व से पूर्ण सब एक समय में भगवान जानते हैं।

मुमुक्षु : कितना ही जाने और कितना ही न जाने तो अनेकान्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने और बिल्कुल उसमें जानना न ही हो, न ही हो जानपना, उसका नाम अनेकान्त है। पूर्ण जाने और अजानपना बिल्कुल नहीं। '**सत्थं ण याणदे किंचि**' शब्द नहीं लिया पीछे? (गाथा ३९० से ४०४) १५ गाथायें। '**सत्थं ण याणदे किंचि**' शास्त्र कुछ जानता नहीं। भगवान कुछ जाने बिना रहता नहीं। दो बात गुलांट खाकर की है। समझ में आया? वे कहे, शास्त्र जड़? अरर! '**सत्थं ण याणदे किंचि**' शास्त्र बिल्कुल नहीं जानते, ऐसा कहा है। तब सामने भगवान....

मुमुक्षु : पुद्गल क्या जाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु पुद्गल की पर्याय क्या जाने? यह तो शास्त्र पुद्गल की पर्याय है, वीतराग की वाणी पुद्गल की पर्याय है। किंचित् न जाने। किंचित् न जाने का अर्थ बिल्कुल उसमें अजानपने का स्वभाव जड़ में है। तब भगवान का बिल्कुल जानने

का स्वभाव पूरा है। उसमें कुछ कम नहीं और उसमें जरा भी कुछ जानना है, ऐसा भाव नहीं। समझ में आया? अरे! ऐसा आत्मा है, उसे अभी श्रद्धा में तो ले। श्रद्धा करे तो फिर अनुभव हो सकता है। श्रद्धा का फल फिर अनुभव है और अनुभव का फल फिर स्थिरता करके केवलज्ञान है। समझ में आया? यह वस्तु ऐसी है, भाई!

कहते हैं, 'एक ही समय में जाननेवाला है। इस विशेषण से,...' देखो! सर्व क्षेत्र-काल। सर्व क्षेत्र अर्थात् यह सब अनन्त क्षेत्र... उसका एक तर्क। अनन्त को अनन्त जाने, इसलिए अनन्त नहीं, ऐसा करके तर्क किया है कुछ।

मुमुक्षु : अनन्त को जाना, फिर अन्त आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई अन्त आया नहीं, किसका अन्त आवे? इस मुठ्ठी में हाथ में एक प्याज आया। डुंगळी को क्या कहते हैं? प्याज। ऐसे हाथ में आया। अब उसमें कितने जीव हैं? अनन्तानन्त। अनन्तानन्त जीव। सिद्ध से अनन्तानन्त। ऐसे क्षेत्र से ऐसे आ गये, परन्तु संख्या से कितने हैं? समझ में आया? अनन्तानन्त जीव। और एक-एक जीव में आकाश के प्रदेश (की अपेक्षा) अनन्तानन्त गुण। ऐसे इतने क्षेत्र में आये और ज्ञान में नहीं आये? ज्ञान में आ गये हैं कि यह इतने हैं। यहाँ ज्ञान में आता है। समझ में आया या नहीं? यह आलू लो, प्याज लो, लहसुन लो। एक कली इतनी लो तो क्षेत्र में आया। परन्तु वह तो क्षेत्र में आया, परन्तु उसका भाव? अनन्त जीव और अनन्त जीवों के एक-एक के अनन्त-अनन्त गुण हैं। ऐसे क्षेत्र में ख्याल आ गया और उसमें इतना है, यह भी ज्ञान ख्याल ले लेता है। उसमें प्रमेयपना है और इसमें प्रमाणपना और प्रमेयपना दोनों है। आत्मा प्रमाण और प्रमेय दोनों है। इसके अतिरिक्त दूसरे द्रव्यों में अकेला प्रमेयपना है, प्रमाण नहीं अचेतन को। समझ में आया? और वह प्रमेय, प्रमेयरूप से न ज्ञात हो तो प्रमेय नहीं और प्रमाण, प्रमाणरूप से ज्ञान न जाने तो वह प्रमाण नहीं। आहाहा! भाई! यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

भगवान एक समय में तीन काल की विशेष दशा सहित, सामान्य और विशेष, जिस समय जहाँ जिस प्रकार से निमित्त और नैमित्तिक की अवस्था जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस योग से होनेवाली है, वह भगवान के ज्ञान में एक समय में पहले से आ गयी है। पहले से आ गयी है।

मुमुक्षु : पहले से अर्थात्? पहले नहीं थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं थी, केवलज्ञान से पहले नहीं थी। केवलज्ञान पहले नहीं थी। केवलज्ञान के पहले समय में सब आ गया। पूरा चौसला। तीन काल-तीन लोक की व्यवस्थित अवस्था, द्रव्य-गुण-पर्याय ऐसे ज्ञान में एक समय की पर्याय में पहले ही समय में आ गयी। पश्चात् दूसरे समय में वह तो गुलाँट खाता है, परिणमन करता है। उसका स्वभाव। पश्चात् तो वहाँ जो वर्तमान पर्याय थी, वह भूत होती जाती है। और भविष्य की ऐसे होती जाती है। इतना अन्तर। इतना यहाँ परिणमन स्वयं के कारण से होता है, इतनी बात। वस्तु तो पूरा चौसला ऐसे आ गया। भाई! ऐसा ही मोक्षतत्त्व है। सिद्धतत्त्व ही ऐसा है। वह मोक्षतत्त्व ही ऐसा है। सात तत्त्व की श्रद्धा में मोक्षतत्त्व ऐसा है। सात तत्त्व की श्रद्धा आवे न? तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। उसमें मोक्षतत्त्व ऐसा है। ऐसे-ऐसे मोक्षतत्त्व के अनन्त तत्त्व को पेट में रखनेवाला आत्मतत्त्व है। अनन्तानन्त मोक्षपर्याय को रखनेवाला। भूतकाल की पर्याय तो अनन्त बहुत थोड़ी है। केवलज्ञान की पर्याय तो उससे अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्तगुणी है। वह तो अन्त आया और यह तो अन्त आनेवाला नहीं। इतनी अधिक अनन्तगुनी पर्याय जिसके ध्रुवपने में है, ऐसा इष्ट प्रभु आत्मा है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि को आत्मा इष्ट है। व्यवहार से सर्वज्ञ परमेश्वर इष्ट हैं। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, **एक ही समय में जाननेवाला है। इस विशेषण से, सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले मीमांसक आदि...** मीमांसक आदि की तो बात की है। जैन में भी जितने सर्वज्ञ को नहीं मानते, उनका निराकरण किया है। निराकरण अर्थात् खण्डन हुआ कि सर्वज्ञ है, ऐसा तू समझता नहीं। सर्वज्ञ की एक समय की पर्याय... भाई! तीन काल। अनन्त काल होगा और अन्त नहीं, उस द्रव्य की पर्याय का। अन्त कब? कोई परमाणु या जीव की पर्याय का अन्त कब? ऐसा का ऐसा है, वह सब ज्ञान ने एक समय में जान लिया है। जाना, इसलिए वहाँ अन्त हो गया है, (ऐसा नहीं है)।

मुमुक्षु : .... परिणमन बिना की हो जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... पर्याय ऐसी की ऐसी है.. है... है। जैसे द्रव्य है, है... है।

द्रव्य के बिना की पर्याय होगी ? और पर्याय न हो और फिर द्रव्य रहे ? ऐसे द्रव्य है... है... है... वैसे पर्याय है... है... है... ऐसा है। है, उसमें फिर नहीं कब होगा ? है, उसमें नहीं होगा, वैसा ज्ञान केवलज्ञान में एक समय में आ गया है। आहाहा! ऐसी सब सूक्ष्म बातें हैं, बापू! ऐसा आत्मा स्वीकार करना, वह तो निर्विकल्प प्रतीति से स्वीकार होता है। उसे शंका न रहे, सन्देह न रहे और नि:शंक आत्मा ज्ञायकस्वभाव एक समय में जगत के तलिया का तल ले, ऐसा वह आत्मा है। समझ में आया ?

नहीं कहते थे ? पहले हम जब लड़कों का खेलते न ? कुएँ में ऐसे गिरे। कोसिया पड़े। समझे न ? सीधा। फिर वे लड़के बेचारे खड़े हों परन्तु उनकी चतुराई बतलाना हो न! नीचे से रेत ले आवे। रेती समझे न ? कुएँ के नीचे। कुएँ को क्या कहते हैं ? कुआँ। पानी होता है न ? फिर ऐसे पड़े तो गहरे न जाये। उसे उभो कोसियो हमारे कहते हैं। लड़कों को कहते, उस समय की बात है। जैसे कोस पड़े न ? जैसे कोस होता है न खोदने का ? ऐसे पड़े और जाकर नीचे से रेत (ले आवे)। ऐसा कि नीचे से कुएँ का तल ले आया हूँ। लड़कों को खबर होगी या नहीं ? धीरुभाई! अब नहीं परन्तु वे थे। वे तो पुराने हैं या नहीं ? वे कहाँ नये हैं। छोटेपन की बात है न यह। यह तो उन लोगों को अब खबर नहीं होती। पालेज में कहाँ ऐसा कुआँ था, कौन पड़े वहाँ। साठ-साठ हाथ के कुएँ। बहुत गहरे। साठ हाथ के। हमारी दुकान के साथ में ही था। वहाँ कौन नीचे गिरे ? यह तो पहले की बात है।

इसी प्रकार तलिया रहित ज्ञान की पर्याय तीन काल-तीन लोक के... तलिया की जैसे रेत लेकर कहे कि देखा! मैं नीचे पहुँच गया हूँ। उसी प्रकार भगवान का ज्ञान सबके तल में पहुँच गया है। समझ में आया ? आहाहा! अरे! ऐसी उसकी एक समय की दशा, ऐसी अनन्त दशा का धारक एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का धारक भगवान आत्मा, उसकी प्रतीति हो और परमेश्वर न हो, ऐसा नहीं होता। समझ में आया ? परन्तु यह बात इसे भरोसे में अन्तर निर्विकल्प में आनी चाहिए। समझ में आया ?

भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने इस श्लोक में तो गजब बातें रखी है! ऐसी ही कोई मंगल बात निकल गयी है। '**नमः समयसाराय**'। मैं तो यहाँ अन्दर लेता हूँ, हों! भगवान

को नमस्कार करते हैं। मेरा आत्मा ऐसा, उसे मैं नमता हूँ। राग और विकार में मेरा आदर नहीं है। है, भाव है द्रव्य। स्वभाव है ज्ञान-दर्शन। अनुभूति क्रिया से मेरा सर्वज्ञपना मुझे प्रगट होगा। समझ में आया? जीव। उसका भाव-स्वभाव... स्वभावभावभूत, ऐसा लिया है न? नहीं? पहली गाथा में आयेगा न? '**वंदित्तु सव्वसिद्धे**' में। '**धुवम**' का अर्थ। ध्रुव का अर्थ ऐसा आता है न? '**धुवम**' अर्थात् स्वभावभावभूततया। संस्कृत में ऐसा है न? संस्कृत में है। स्वभावभावभूत, स्वभावभावरूप, स्वभावभावरूप। पर्याय को स्वभावभावरूप लिया है। पण्डितजी! सिद्ध की पर्याय को। '**वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवम**' ध्रुव अर्थात् कि वह पर्याय स्वभावभावभूततया—स्वभावभावरूप है। पर्याय, हों! गुण तो त्रिकाल है। जैसा स्वभावभाव है, वैसी पर्याय। अमृतचन्द्राचार्य ने टीका की है। आयेगी पहली गाथा। उनकी टीकायें तो हद! इस भरतक्षेत्र में ऐसी टीका कोई है नहीं कहीं। यह टीका... आहाहा! केवलज्ञानी के पेट (अभिप्राय) प्रवाहित किया है। पर्याय ध्रुव, ध्रुव पर्याय—अर्थात् क्या? सिद्ध की पर्याय ध्रुव अर्थात् क्या? गुण ध्रुव होता है। सुन तो सही, भाई! ध्रुव स्वरूप जो है न स्वभावभूत ध्रुव, उसमें से प्रगट हुई पर्याय को हम स्वभावभूत, स्वभावभावरूप कहते हैं। स्वभावभावरूप कहते हैं। वह स्वभावभावरूप ही पर्याय, केवलज्ञान वह स्वभावभाव है। समझ में आया? ऐसी अनन्त पर्याय स्वभावभावभूत है। स्वभावभावरूप है, स्वभावभावरूप है। स्वभावभाव-भूततया स्वभावभावरूप है। अपने पहले साधारण अर्थ किया था। स्वभाव से उत्पन्न होती है, ऐसा अर्थ किया था। स्वभाव से उत्पन्न हो, ऐसा इसमें किया था, भाई! मूल बाद में पाठ के साथ स्वभावभावभूततया शब्द है। अपने जो स्वभाव से उत्पन्न हुई है, ऐसा किया था। ध्रुव का अर्थ किया था। परन्तु ऐसा नहीं। स्वभावभावभूततया। स्वभावभावरूप है। ओहोहो! क्या गुण या द्रव्य?

मुमुक्षु : पहला शब्द है।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला शब्द है। संस्कृत में पहला है, स्वभावभूत। समझ में आया?

कहते हैं, यह आत्मा जहाँ केवलज्ञान आदि अनन्त पर्याय प्रगट हो गयी, वह

स्वभावभावरूप है, स्वभावभावरूप है। जो उसका स्वभाव था, वैसी ही पर्याय उसकी (स्वभावभावभूत हो गयी)। भले उसका काल एक समय है, इसका त्रिकाल है। परन्तु वह हो गयी तो स्वभावभावरूप। आहाहा! समझ में आया? ऐसी स्वभावभावरूप पर्याय का क्या माप? एक समय में सबका तल ले लिया। तीन काल-तीन लोक, अलोक। जैसे यहाँ काल का अन्त नहीं, वैसे क्षेत्र का अन्त नहीं। ऐसे एक-एक द्रव्य के अनन्तानन्त गुण का अन्त कहाँ है? यहाँ अन्त नहीं तो उससे अनन्तगुणे तो गुण हैं। सबका तल ले लिया है। केवलज्ञान ने सबका पेट अपनी पर्याय को जानते हुए ज्ञात हो गया है। यह जानते हुए, ऐसा नहीं। ऐसा भगवान '**सर्वभावान्तरच्छिदे**'। अपने अतिरिक्त के अनन्त... वे कहते हैं न कि अपने और अपने को जाने, पर को जाने वह व्यवहार है। ऐसा कहते हैं न कितने ही? पर को जाने, वह व्यवहार है, इसलिए अभूतार्थ है। अरे! भगवान! क्या तुझे कहना है? यहाँ तो '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' उसका स्वरूप है, ऐसा कहा। सर्व भाव लिया। अपने अतिरिक्त के अन्य अनन्त। उन्हें जानना, वह तो उसका निश्चयस्वरूप है। उसे जानता है, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। उसे जाने, ऐसा। बाकी सब स्वरूप जानता है, वह स्वभावभावभूत होकर जानता है। अपनी पर्याय प्रमेयरूप से और अपनी पर्याय प्रमाणरूप से। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा... भाई! यह बात, यह वस्तु की स्थिति ऐसी है। परमेश्वर ने कहीं की नहीं। परमेश्वर ने तो ऐसा स्वरूप है, ऐसा जाना और अपना था, वैसा प्रगट किया। ऐसा ज्ञात हुआ। भाई! आत्मा तो ऐसा है न, भाई! उस आत्मा को ऐसा न माने तब तक तेरी प्रतीति होती नहीं। प्रतीति होती नहीं तो रमणता जहाँ करनी है, उसकी तो प्रतीति होती नहीं। जिसमें रमणता करनी है — चारित्र, वह जिसमें रमणता करनी है, उसकी तो सच्ची प्रतीति नहीं, रमणता आयेगी कहाँ से? करनी कहाँ परन्तु? इतना बड़ा भगवान आत्मा, जिसके एक समय में... आहाहा! '**सर्वभावान्तरच्छिदे।**' ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य ९०० वर्ष पहले भरतक्षेत्र में चलते सिद्ध जैसे! वह कहीं शरीर उनका नहीं था, राग उनका नहीं था। वे आत्मा थे, उस आत्मा का आत्मा था। समझ में आया? उसे वाणी के कहनेवाले रूप से पहिचानना, वह तो निमित्त की बातें हैं। समझ में आया?

आत्मा एक समय में हमारी अनुभूति की क्रिया द्वारा हम सर्वज्ञ होंगे और ऐसे सर्वज्ञ स्वानुभूति क्रिया से अनन्त हुए हैं, उन्हें हम नमस्कार करते हैं। समझ में आया? हमारा झुकाव, नमन वहाँ है। हम दूसरे को नमते नहीं, ऐसा कहते हैं। अन्यमति में आता है न? तुलसी (दास का) आता है। श्रीकृष्ण ने दर्शन दिये। महाराज! सिर नहीं नमेगा। तब? धनुष बाण लो हाथा। धनुष बाण और रामचन्द्रजी का रूप लो तो नमूँगा, बाकी नहीं नमेंगे। ऐसी एक (बात आती है)। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानने का पर्यायवाला आत्मा है, ऐसे जो मानकर स्थिर हो उसमें, हमारा सिर नमेगा, अन्यत्र नमेगा नहीं। समझ में आया? यह आता है, हों! श्लोक भी आते हैं। श्लोक आते हैं। 'धनुष बाण लो हाथ'। ऐई! शशीभाई! सुना है या नहीं तुमने? तुम तो वैष्णव हो, सब सुना होगा न! हमने तो ऊपर से अद्धर से सुना हो। ऐसे राम के अतिरिक्त हम दूसरे को नमेंगे नहीं।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, हमारा आत्मा और दूसरे का आत्मा, जिसने स्वानुभूति की क्रिया द्वारा, यह क्रिया द्वारा जिसने ऐसी पर्याय प्रगट की, वह हमारे व्यवहार से इष्टदेव हैं। निश्चय से हमारा आत्मा ही इतना है, वह इष्टदेव है। समझ में आया? इस प्रकार **इस प्रकार के विशेषणों (गुणों) से शुद्ध आत्मा को ही इष्टदेव सिद्ध करके (उसे) नमस्कार किया है।** लो। शुद्ध आत्मा को इष्टदेव सिद्ध करके। टीका में थोड़ा अर्थ दूसरा है। उस परम अध्यात्म तरंगिणी में। '**सर्वभावान्तरच्छिदे**'। अर्थात् अपने स्वभाव से अन्य विकारी भाव थे, उन्हें पृथक् कर डाले। इतना जरा अन्तर है। ऐसा अर्थ किया है। हो सकता है, उसमें कुछ नहीं। भगवान आत्मा अपना स्वभाव अनन्त गुण आदि शुद्ध है। उससे अन्य भाव विकल्प, विकारादि हैं उन्हें छेद डाला, नाश कर डाला। स्वभाव की उत्पत्ति हुई, विकार का नाश किया और ध्रुव तो त्रिकाल है। ऐसा कहकर ऐसा भी एक अर्थ किया है।

शुद्ध आत्मा को ही इष्टदेव सिद्ध करके (उसे) नमस्कार किया है। ओहोहो! परम मांगलिक यह भी..! परमेश्वर को उतारा है। प्रभु! आओ हमारे पास, आये बिना नहीं चलेगा। आहाहा! रामचन्द्रजी का आता है न? रामचन्द्रजी छोटी दो वर्ष की उम्र के

थे न! तब ऊपर पूर्णिमा का चन्द्रमा देखा। पूर्णिमा। ओहोहो! ऐसे तो मोक्षगामी हैं, मोक्ष जाना है। इस चन्द्रमा को जेब में डालो। ऐसा कि सिद्ध ऊपर हैं, उन्हें नीचे उतारो। जरा रोये। दशरथ, दीवान से कहते हैं, दीवान! पुरुषोत्तम पुरुष रामचन्द्रजी क्यों रोते हैं? अन्नदाता! मैं राज का भी काम करूँ और लड़के को भी खिलाऊँ, ऐसे दोनों काम करूँ? किसलिए रोते हैं? उत्तम पुरुष हैं। वे उत्तम पुरुष हैं, बलदेव हैं। उनके पिता को खबर है, यह बलदेव है। बलदेव को स्वर्ग और मुक्ति के अतिरिक्त दूसरी गति नहीं होती। यह तो मुक्तिगामी जीव, अन्तिम शरीर है। क्यों रोते हैं? रोते हैं, उसका क्या करूँ? जाँच करो। वहाँ बैठे थे। रामचन्द्रजी के हाथ में एक दर्पण दिया। चन्द्र आया उसमें, डाला जेब में। गुंजा समझते हो? जेब में डाला। भगवान को उतारा यहाँ। यह खेल थे रामचन्द्रजी के बालकपने में भी परमात्मा के साथ। भगवान नीचे उतरो, हमारे पास आओ। हमारी जेब में यहाँ आ जाओ। समझ में आया? आता है न? सुना है या नहीं? ... नहीं, जेब में (चाहिए)। रोना बन्द हो गया। दशरथ कहते हैं, रोना बन्द कैसे हुआ? चन्द्रमा जेब में (आया इसलिए)। यह तो गायन में भी आता है, नहीं? जेब में डालो रे चन्द्रमा... ऐसा गायन आता है। 'माडी मने चांदलियो व्हालो, चांदलियो नाखो...' इतना तो सब ... जेब में डालो। चन्द्र को जेब में लाओ। वहाँ परमात्मा विराजते हैं प्रकाशमय अनन्त भगवान, उन्हें मेरे ज्ञान में लाओ, यहाँ लाओ। समझ में आया? देखो! सिद्ध भगवान को तो नमस्कार करेंगे, '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' में। यह तो स्वयं ऐसा कहते हैं, परमात्मा प्रभु हमारे समीप में तो विराजता है, हों! हम आपको इष्टदेवरूप से मानते हैं। दूसरे को हम मानते नहीं। हमारा इष्ट आत्मा है न! वह अभी साधकरूप से है, आपको पूर्ण दशा प्रगटी है, इससे हम साधकजीव सिद्ध को नमस्कार करते हैं, इष्टदेव को नमस्कार करते हैं। लो, यह एक गाथा का मांगलिक हुआ।

यह चार अस्तिरूप से सिद्ध किया। नास्ति की बात ली नहीं। ऐसा जिसका स्वभाव। क्यों? कि ऐसा जानने से संवर, निर्जरा की पर्याय से आत्मा को साधने से आस्रव और बन्ध उसमें नहीं, ऐसा ज्ञान उसमें आ जाता है। दूसरा सिद्धान्त कहें तो निश्चय का ज्ञान करने से व्यवहार का ज्ञान उसमें आ जाता है। व्यवहार का ज्ञान नया

करना नहीं पड़ता। अस्तिरूप से जहाँ आत्मा ऐसा है और स्वानुभूति की क्रिया द्वारा मोक्ष होता है। जीव, जीव का भाव, संवर, निर्जरा और मोक्ष, यह चार तत्त्व लिये। इनका भान होने पर उसमें अजीव और पुण्य-पाप और आस्रव साधकरूप से भी नहीं, उसका ज्ञान निश्चय का ज्ञान होने से आ जाता है। व्यवहार का ज्ञान होने से निश्चय का नहीं आता। स्व का भान होने से उसमें पर का आ जाता है। ऐसा उसका स्व-परप्रकाशक स्वभाव है। समझ में आया?

इस श्लोक में अकेली अस्ति की ही बात की है। जीव, जीव का भाव, स्वानुभूति की क्रिया और पूर्ण मोक्ष। जीव, गुण अर्थात् जीव में आ गये। संवर, निर्जरा और मोक्ष। शुद्ध तीन तत्त्व और द्रव्य, चार बातें ली। समझ में आया? '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' इसमें आ गया। दूसरे अन्य का ज्ञान यहाँ अस्ति में करते हैं। ज्ञान की पर्याय में सब अन्य हैं, उनका ज्ञान करते हैं, ऐसा आया, भाई! देखो! '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' है न? यह भगवान आत्मा की वह पर्याय ही ऐसी है, ऐसा कहते हैं। पर्याय ही इतनी है कि अनन्त को जाने। इसे जानते हुए वह अनन्त को जाने, ऐसा ही उसका स्वभाव है। समझ में आया? यह अमृतचन्द्राचार्य ने आत्मख्याति की टीका शुरु करते हुए ऐसा पहला मंगलाचरण किया। कहो, समझ में आया इसमें? अब इसका भावार्थ पण्डित जयचन्द्रजी थोड़ा लेते हैं। कहो, इसमें समझ में आया या नहीं? ऐई! नटुभाई, छोटाभाई! यह सब नये आये हैं न, मुश्किल-मुश्किल से कभी। यह क्या? सामायिक करें, प्रोषध करें (तो समझ में तो आये)। यह तो सादी बात है, बापू! इसमें कहीं ऐसी उलझनवाली नहीं। संसार में उलझन का पार नहीं होता। वह उलझन समझे? गुंच... गुंच। सूत में गुंच (उलझन) पड़ती है न? सूत में उलझन पड़ जाये तो खोलना कठिन पड़े। यह तो सीधा सरल मार्ग है। नहीं आया था उसमें? योगसार। सिद्ध के महल तक पहुँच जाये, ऐसी यह सड़क है। आया था या नहीं? सिद्ध की पर्याय तक पहुँच जाये, ऐसी आत्मा के अनुभव की क्रिया है। वह सीधी सड़के। एकदम पूर्णानन्द को प्राप्त कर ले। समझ में आया? इसमें आया था। गली-बली नहीं, ऐसा शब्द आया था उसमें। दूसरी गली-बली है नहीं, सीधी गली है। लोग ऐसा कहे, इस गली से चले जाओ, देखो! यह अन्तिम मकान आयेगा। फलाना।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने पूर्ण अनन्त स्वभाव का ज्ञान करता हुआ एकरूप का ज्ञान करता हुआ, एकरूप की श्रद्धा करता हुआ, इसमें स्थिर होता हुआ सीधी सड़क से केवलज्ञान प्राप्त करेगा। समझ में आया? उसे दूसरी गति नहीं, दूसरा भाव नहीं, दूसरा भटकने का तीन काल में होता नहीं।

भावार्थ :- यहाँ मंगल के लिये शुद्ध आत्मा को नमस्कार किया है। है न भावार्थ? **कोई यह प्रश्न करे कि किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया?** णमो महावीराणं, णमो ऋषभदेवाणं।

उसका समाधान इस प्रकार है :- वास्तव में इष्टदेव का सामान्य स्वरूप... इष्टदेव का प्रियकर करनेवाला परमात्मा, उसका स्वरूप **सर्व कर्मरहित, सर्वज्ञ, वीतराग शुद्ध आत्मा ही है,...** तीन विशेषण दिये... सर्वकर्मरहित, सर्वज्ञ। देखो! यहाँ सर्वकर्मरहित हुआ, क्योंकि सर्वज्ञ हुआ। नास्ति से बात की। सर्वकर्मरहित, यहाँ सर्वज्ञ। परन्तु सर्वज्ञ के साथ वीतराग, वह 'शुद्ध आत्मा ही है...' शुद्ध आत्मा ही ऐसा होता है, परमेश्वर ही ऐसे होते हैं। सिद्ध भगवान ही ऐसे होते हैं। ऐसा ही अन्दर आत्मा का स्वरूप है, ऐसा ले लेना। **इसलिए इस अध्यात्म ग्रन्थ में समयसार कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया।** समयसार कहने से इष्टदेव आ गये। द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित—ऐसा जो समयसार, उसमें ही यह आ गया।

तथा एक ही नाम लेने में अन्यमतवादी मतपक्ष का विवाद करते हैं। एक ही नाम लेना नहीं, फलाना नहीं। **उन सबका निराकरण समयसार के विशेषणों...** समयसार के विशेषण कहे। **वर्णन कर किया।** समयसार कैसा है? जड़कर्म, भावकर्म, नोकर्म रहित है। भाववाला है, द्रव्य है, स्वभाववाला है, स्वानुभूति की क्रिया से पूर्णता को प्राप्त करता है। ऐसा समयसार का स्वरूप उसके विशेषण वर्णन करके कहा। **और अन्यवादीजन अपने इष्टदेव का नाम लेते हैं, उसमें इष्ट शब्द का अर्थ घटित नहीं होता।** भगवान... भगवान करे, परन्तु भगवान की पूर्णता, उनकी पर्याय की वीतरागता, उनकी सर्वज्ञता और सर्व कर्म के लेपरहितता, यह उसके नाम वे लोग कहते हैं, उसमें वह सिद्ध नहीं होता। बाधा आती है, विरोध आता है।

स्याद्वादी जैनों को... अपेक्षा से परमेश्वर को कहनेवाले **तो सर्वज्ञ वीतरागी शुद्ध आत्मा ही इष्ट है।** सर्वज्ञ वीतराग। एक समय का ज्ञान पूरा और जिसकी स्थिरता वीतरागी पूरी। ऐसा शुद्ध आत्मा ही जिसे इष्ट अर्थात् प्रिय है। **फिर चाहे भले ही...** 'वह' ऐसा लेना। यहाँ वजन है। **फिर चाहे भले ही 'वह'...** ऐसा उसमें आया था न? भाई! योगसार में। 'तो' जैसे परमात्मा को वर्णन किया, उसे इष्ट ईश्वर कहो, ... वह। ऐसा कहा उसे। लोग कहे उसे ऐसा नहीं। इसलिए उसमें आया था। यहाँ 'वह' शब्द प्रयोग किया है। ऐसे परमेश्वर जिनका आत्मा पूर्ण सर्वज्ञरूप से परिणमा है, वीतरागदशा पूरी हो गयी है, पूर्ण आनन्द आदि को प्राप्त है और कर्म के एक रजकण का भी लेप जिसे बिल्कुल रहा नहीं। **उस इष्टदेव को...** ऐसे इष्टदेव को **परमात्मा कहो...** ऐसे इष्टदेव को परमात्मा कहो। परमस्वरूपी हुए न वे। **पमरज्योति कहो,...** परन्तु उसे। उसे परमज्योति कहो। **परमेश्वर,...** कहो। वह परमेश्वर है। जैन परमेश्वर नहीं मानते, ऐसा नहीं, परन्तु ऐसे को परमेश्वर मानते हैं। समझ में आया? कोई कर्ता-हर्ता, यह वस्तु के स्वरूप में है नहीं। अर्थात् कि दूसरा कर्ता-हर्ता परमेश्वर नहीं। परन्तु परमेश्वर नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया? 'कर्ता ईश्वर कोई नहीं, ईश्वर शुद्ध स्वभाव।' श्रीमद् ने आत्मसिद्धि में कहा न? 'कर्ता ईश्वर कोई नहीं, ईश्वर शुद्ध स्वभाव।' समझ में आया? शुद्ध स्वभाव। पूर्ण जिसकी दशा प्रगट हुई है, वह ईश्वर है। शक्तिरूप से तो सभी भगवान ईश्वर है। परन्तु प्रगटरूप से ईश्वर शुद्ध परमात्मदशा जिसे प्रगट हुई, उसे परमेश्वर कहो।

परब्रह्म,... कहो। नये में प्रकाशित हुआ है, पुराने में रह गया है। परमब्रह्म-परब्रह्म-उत्कृष्ट आनन्दस्वरूप। समझ में आया? 'अनुभवीने अेटलुं रे आनन्दमां रहेवुं रे...' ऐसा दस वर्ष की उम्र में सुनते थे। हमारे साथ ब्राह्मण रहते थे। प्रतिदिन नहावे। (उनको) हम मामा कहते थे। हमारे माता हो न ननिहाल के। 'अनुभवीने अेटलुं रे आनन्दमां रहेवुं रे, भजवा परिब्रह्मने बीजुं कांई न कहेवुं रे...' ऐसा बारम्बार बोलते। वे तो बेचारे समझते भी नहीं हों। परन्तु तब का हमारे अन्दर में घुस गया। यह कुछ कहते हैं। परब्रह्म। परब्रह्म वह स्वयं, हों! परब्रह्म कोई कर्ता-बर्ता, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : वे तो पर दूसरे।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे तो पर ईश्वर। उन्हें तो यह था न। समझ में आया?

वैसे, जैसा ऊपर कहा, वह परमब्रह्म है। इसलिए तो यह शब्द (प्रयोग किया है)। **फिर भले उस इष्टदेव को...** यह कहो, किसी भी शब्द से लागू करो। **शिव...** कहो। परन्तु उसे शिव कहो। ऐसे स्वरूप को। पूर्ण स्वरूप भाववान स्वभाववाला निर्मल पर्याय से पूर्ण को प्रगट करे, ऐसे जो परमेश्वर, उसे शिव कहो। उसे शिव कहो। शिव को यह कहो, ऐसा नहीं। वे शिव हैं, उन्हें यह कहो, ऐसा नहीं। इसे शिव कहो। समझ में आया? उसे **निरंजन...** कहो। अंजन जरा भी नहीं। पूर्णानन्द की प्राप्ति परमात्मा को हुई, उसे अंजन नहीं। **निष्कलंक,...** कहो। उसे कलंक नहीं। जहाँ निष्कलंक पूर्ण दशा प्रगट हुई।

अक्षय,... कहो, अब क्षय होने का नहीं। वह तो ऐसी की ऐसी दशा रहनेवाली है। **अव्यय,...** कहो। किसी अंश से भी नाश होने का नहीं। सम्पूर्ण तो नाश नहीं परन्तु अव्यय अर्थात् थोड़ा भी नाश होने का नहीं। **शुद्ध...** यह परमेश्वर ऐसे जो कहे, **'नमः समयसाराय भावाय स्वानुभूत्या चकासते सर्वभावान्तरच्छिदे'।** ऐसे स्वरूप को शुद्ध कहो, **बुद्ध,...** कहो। उसे बुद्ध कहो। उन बुद्ध को बुद्ध कहो, ऐसा नहीं। इसे बुद्ध कहो। समझ में आया? यह अपने आप बराबर समझ में आये ऐसा नहीं। छोटाभाई! है न? ऐसा लगता है या नहीं? घर में रखी होगी, पुस्तक तो होगी। होगी न? कान्ताबेन है तो ले तो गये होंगे न! आहाहा!

यह समयसार अर्थात् परमेश्वर का वाचक। परमेश्वर वाच्य और यह वाचक। यह शब्द कहेंगे। साक्षात् परमेश्वर की दशा प्रगट हुई है और आत्मा वैसे स्वरूप से त्रिकाल है। उसे बतलानेवाला वह यह समयसार वाचक है। कहते हैं कि **अविनाशी,...** कहो। ऐसे स्वरूप को अविनाशी (कहो)। नाश होने का नहीं। आगे ध्रुव लेंगे। **अनुपम...** कहो। उपमा क्या कहलाये? उसकी उसे उपमा हो, उसे दूसरे की उपमा नहीं होती। सिद्ध को सिद्ध की उपमा। आहाहा! ऐसा अनुपम परमेश्वर, ऐसा आत्मा भी शक्ति से-स्वरूप से ले लेना। यह पर्याय से प्रगट (हुए हैं)।

अच्छेद्य,... है। छिदता नहीं। टुकड़े नहीं होते। अच्छेद्य अर्थात् टुकड़े नहीं होते,

अभेद अर्थात् चूरा नहीं होता, भुक्का। भुक्का समझते हो? चूर्ण करते हैं न? अभेद है। **परमपुरुष...** है। भगवान ही परमपुरुष है। परमपुरुष अवतरित हुए थे और यह किया और जगत को बनाते थे। वे कोई परमपुरुष नहीं। आहाहा! पुरुषोत्तम पुरुष, रामचन्द्रजी को कहते हैं या नहीं? उनका आत्मा ऐसा है। वह पूर्णपने को प्राप्त हुए, इसलिए पमरपुरुष कहलाते हैं। **निराबाध...** जिन्हें कोई बाधा नहीं। उस ऐसे स्वरूप को बाधा कोई है नहीं। **सिद्ध,...** कहो। **सत्यात्मा,...** सत्य आत्मा। वह सच्चा आत्मा पर्याय से परिणम गया। जैसा उसका सत्य स्वरूप था, वैसा पर्याय में परिणमा, सत्य आत्मा वह है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : असत्य आत्मा अज्ञान और राग-द्वेष असत्य आत्मा है। और निर्मल पर्याय का आत्मा एक समय की पर्याय हुई, एक समय की भी व्यवहार। पूरा द्रव्य सहित का पूरा सत्य आत्मा होता है।

चिदानन्द... कहो। ज्ञानानन्द। चिदानन्दरूपी आनन्द के अमृत का पूर है, ऐसा नहीं आया था कल? चिदानन्दरूपी आनन्दामृत का पूर भगवान है। आहाहा! जैसे पानी का पूर सामने आता हो न, वैसे पूरा आनन्द का पूर पड़ा है अन्दर। यह पूर पड़ा है, भाई! तेरी नजर तो कर, नजर तो कर वहाँ। वह आनन्द का पूर बहता है वहाँ। आहाहा! पाररहित आनन्द है, अपार आनन्द है। ऐसा स्वभाव तेरा है, उसे प्रगट हुआ परमात्मा को पर्याय में पूर्ण हो जाता है। **सर्वज्ञ,...** कहो। उसे सर्वज्ञ (कहो)। उसे सर्वज्ञ, हों! लोग कल्पित करे कि ऐसा है, ऐसा नहीं। **वीतराग,... अर्हत्...** कहो। अर्हत शब्द है, हों! पूजनेयोग्य। पूजनेयोग्य हो तो ऐसा आत्मा, जिसे स्वानुभूति की क्रिया से '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' हो गया। उसे **जिन,...** कहो, **आप्त...** कहो। हित के लिये माननेयोग्य। **भगवान...** कहो। उसे भगवान कहो। उस नमः समयसार को। **इत्यादि हजारों नामों से कहो...** लो। १००८ नाम तो आते हैं।

उसे पुण्यवन्त कहो। उसे पुण्यवन्त कहा जाता है। पुण्य अर्थात् पवित्रवन्त। पुण्य वह नहीं। अपने पवित्रता के सुधारस को पूर्ण कहते हैं। समझ में आया? प्याला है।

सिद्ध भगवान आनन्द का प्याला है। समझ में आया? प्याऊ। यह पानी पीने का। क्या कहते हैं? पानी की प्याऊ। '...कांठे पंथ भयो' यह जेठालालभाई बोलते। जेठालालभाई न? वे बहुत बोलते। 'प्यावा कांठे पंथ भयो छे आ तो।' पानी पीने के किनारे पंथ मिला है। पानी पी-पीकर चले जाओ।

यहाँ कहते हैं, उस भगवान को किसी भी नाम से कहो, परन्तु उसके गुणवाचक उसके नाम को लागू पड़ना चाहिए। होवे, उसे लागू पड़ना चाहिए। उसमें न हो और अध्धर से बातें करे, उसे परमेश्वर नहीं कहा जाता। वह कथंचित् सर्व सत्यार्थ है। कथंचित् सर्व सत्यार्थ। क्योंकि अनन्त नाम हैं सही न! उन **सर्वथा एकान्तवादियों को भिन्न नामों में विरोध है, स्याद्वादी को कोई विरोध नहीं है। इसलिए अर्थ को यथार्थ समझना चाहिए।** सहजानन्दी आत्मा उसे भी कहा जाता है। तब वह कहे, सहजानन्दी स्वामी नारायण में होता है। अरे... सुन न! एक बार ऐसा हुआ कि सहजानन्दी शुद्ध स्वरूपी है। तब एक सेठानी कहे, अपने सहजानन्दी कहाँ से आये? सहजानन्द तो स्वामी नारायण में होता है। स्वयं सहज स्वरूप का स्वामी है। वह स्वामी नारायण यह आत्मा अपना स्वरूप उसे कहा जाता है। उसे सहजानन्द (कहा जाता है)। चाहे जो उसके गुणनिष्पन्न नाम से याद करो तो इष्टदेव का नाम लागू पड़ता है। उसे मांगलिकरूप से कहा गया है, लो।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक - ३०-०७-१९६६
श्लोक - २, प्रवचन - ३

समयसार। जीव-अजीव अधिकार शुरु करते हुए अमृतचन्द्राचार्य मांगलिक करते हैं। उसमें पहली गाथा (कलश) का मांगलिक किया, उसका हिन्दी, यहाँ अपने गुजराती किया है।

प्रगटै निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप।
सब-ज्ञाता लखिकें नमौं, समयसार सब-भूप॥१॥

समयसार, नमः समयसार का संक्षिप्त किया। हिन्दी में भाई ने पण्डित जयचन्द्रजी ने किया है। **प्रगटे निज अनुभव करे,...** कैसा है आत्मा? कि स्वयं अपने अनुभव से प्रगट हो, ऐसा यह आत्मा है। '**स्वानुभूत्या चकासते**' आया था न? समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध अनन्त गुण का धाम, वह स्वयं अपनी अनुभूति की क्रिया, अनुभव द्वारा वह प्रगट होता है। **सत्ता चेतनरूप...** और वह सत्तारूप भाव है और उसका गुण चैतन्य है, यह आ गया है। '**भावाय चित्स्वभावाय**' इसकी संक्षिप्त व्याख्या की।

सौ-ज्ञाता लख के नमुं... यह आत्मा सर्व को—तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला। '**सर्वभावान्तरच्छिदे**' ऐसा यह तत्त्व है। ऐसा यह **समयसर सहु-भूप।**' यह आत्मा सबका भूप अर्थात् राजा है। जानने की अपेक्षा से। सब तीन काल-तीन लोक के पदार्थ को जानता है, ऐसा आत्मा महा समयसार भूप-राजा है। उसे नमस्कार मांगलिकरूप से किया है।

★ ★ ★

कलश - २

(अनुष्टुप्)

अनन्त-धर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्त-मयी मूर्तिर्नित्य-मेव प्रकाशताम्।।2।।

अब सरस्वती को नमस्कार करते हैं-

श्लोकार्थ : [अनेकान्तमयी मूर्तिः] जिनमें अनेक अन्त (धर्म) हैं, ऐसे जो ज्ञान तथा वचन उसमयी मूर्ति [नित्यम् एव] सदा ही [प्रकाशताम्] प्रकाशरूप हो। कैसी है वह मूर्ति? [अनन्तधर्मणः प्रत्यगात्मनः तत्त्वं] जो अनन्त धर्मोंवाला है और जो परद्रव्यों से तथा परद्रव्यों के गुणपर्यायों से भिन्न एवं परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विकारों से कथञ्चित् भिन्न एकाकार है, ऐसे आत्मा के तत्त्व को, अर्थात् असाधारण-सजातीय विजातीय द्रव्यों से विलक्षण-निजस्वरूप को, [पश्यन्ती] वह मूर्ति अवलोकन करती है।

भावार्थ : यहाँ सरस्वती की मूर्ति को आशीर्वचनरूप से नमस्कार किया है। लौकिक में जो सरस्वती की मूर्ति प्रसिद्ध है, वह यथार्थ नहीं है; इसलिए यहाँ उसका यथार्थ वर्णन किया है। सम्यक्ज्ञान ही सरस्वती की यथार्थ मूर्ति है। उसमें भी सम्पूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है, जिसमें समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष भासित होते हैं। वह अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है, इसलिए वह सरस्वती की मूर्ति है। और उसी के अनुसार जो श्रुतज्ञान है, वह आत्मतत्त्व को परोक्ष देखता है, इसलिए वह भी सरस्वती की मूर्ति है। और द्रव्यश्रुत वचनरूप है, वह भी उसकी मूर्ति है, क्योंकि वह वचनों के द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बतलाती है। इस प्रकार समस्त पदार्थों के तत्त्व को बतानेवाली ज्ञानरूप तथा वचनरूप अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है; इसीलिए सरस्वती के वाणी, भारती, शारदा, वाग्देवी इत्यादि बहुत से नाम कहे जाते हैं। यह सरस्वती की मूर्ति अनन्तधर्मों को 'स्यात्' पद से एक धर्म में अविरोधरूप से साधती है, इसलिए वह सत्यार्थ है। कितने ही अन्यवादीजन सरस्वती की मूर्ति को अन्यथा (प्रकारान्तर से) स्थापित करते हैं, किन्तु वह पदार्थ को सत्यार्थ कहनेवाली नहीं है।

यहाँ कोई प्रश्न करता है कि आत्मा को अनन्तधर्मवाला कहा है, सो उसमें वे अनन्त धर्म कौन कौन से हैं? उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि – वस्तु में अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व, प्रदेशत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, मूर्तिकत्व, अमूर्तिकत्व इत्यादि (धर्म) तो गुण हैं; और उन गुणों का तीनों काल में समय–समयवर्ती परिणमन होना, पर्याय है, जो कि अनन्त हैं। और वस्तु में एकत्व, अनेकत्व, नित्यत्व, अनित्यत्व, भेदत्व, अभेदत्व, शुद्धत्व, अशुद्धत्व आदि अनेक धर्म हैं। वे सामान्यरूप धर्म तो वचनगोचर हैं, किन्तु अन्य विशेषरूप अनन्त धर्म भी हैं, जो कि वचन के विषय नहीं हैं, किन्तु वे ज्ञानगम्य हैं। आत्मा भी वस्तु है, इसलिए उसमें भी अपने अनन्त धर्म हैं।

आत्मा के अनन्त धर्मों में चेतनत्व असाधारण धर्म है, वह अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है। सजातीय जीवद्रव्य अनन्त हैं, उनमें भी यद्यपि चेतनत्व है, तथापि सबका चेतनत्व निजस्वरूप से भिन्न–भिन्न कहा है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य के प्रदेशभेद होने से वह किसी का किसी में नहीं मिलता। वह चेतनत्व अपने अनन्त धर्मों में व्यापक है, इसलिए उसे आत्मा का तत्त्व कहा है। उसे यह सरस्वती की मूर्ति देखती है और दिखाती है। इस प्रकार इसके द्वारा सर्व प्राणियों का कल्याण होता है, इसलिए 'सदा प्रकाशरूप रहो' इस प्रकार इसके प्रति आशीर्वादरूप वचन कहा।।2।।

कलश- २ पर प्रवचन

अब सरस्वती को नमस्कार दूसरे श्लोक में (करते हैं)। वह भी नमस्कार करके मांगलिक किया है। नमस्कार करके उस प्रकार का मांगलिक किया है।

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्॥२॥

अब, यह मांगलिक किया। '**नित्यमेव प्रकाशताम्**' —नित्य प्रकाश करो। कायम रहो। केवलज्ञान, श्रुतज्ञान और वीतराग की वाणी, तीनों लेंगे। द्रव्यश्रुतरूप से सरस्वती-वाणी, भावश्रुतरूप से ज्ञान और केवलज्ञान। वह ज्ञान की मूर्ति है। '**नित्यमेव प्रकाशताम्**' कायम रहो। ऐसा कहकर मांगलिक किया गया है।

श्लोकार्थ :- जिनमें अनेक अन्त (धर्म) हैं, ऐसे जो ज्ञान... जिसमें अनन्त धर्म

हैं, ऐसा ज्ञान **तथा वचन...** देखो! ज्ञान के दो अर्थ लेंगे — श्रुतज्ञान और केवलज्ञान। **उसमयी मूर्ति सदा ही प्रकाशरूप हो।** सर्वज्ञ ज्ञान जो अनन्त धर्मवाला है, श्रुतज्ञान भी अनन्त धर्मवाला है, वाणी भी अनन्त धर्मवाली है। वह मूर्ति सदा प्रकाशरूप हो, रहो। ऐसा कहकर अपना साधक स्वभाव कायम रहो, जिससे सिद्धपद हो, वह भी कायम रहो और वीतराग की वाणी भी कायम रहो। ऐसे तीन प्रकार से कहकर मांगलिक-सरस्वती को वन्दन करके मांगलिक किया है।

कैसी है वह मूर्ति ? कौनसी मूर्ति? ज्ञान और वाणी। वह कैसी है? **जो अनन्त धर्मोंवाला है...** अब (कहते हैं), कैसी है? ऐसे आत्मा को वह देखती है, जानती है और बताती है। ऐसा कहा है न? **कैसी है वह मूर्ति ?** कैसी है वह मूर्ति अर्थात् ज्ञान और वाणी? - कि जो अनन्त धर्मवाला आत्मा है, उसे वह ज्ञान और वाणी बताते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **अनन्त धर्मोंवाला है और जो परद्रव्यों से...** भिन्न है। कौन? आत्मा। **तथा परद्रव्यों के गुणपर्यायों से भिन्न...** भगवान आत्मा अनन्त धर्मवाला है और परद्रव्यों से अत्यन्त भिन्न है और परद्रव्य के गुण और पर्यायों से भी आत्मा भिन्न अर्थात् पृथक् है।

तथा परद्रव्य के निमित्त से होनेवाले अपने विकारों से... देखो! परद्रव्य के निमित्त से होते। वह अपना स्वभाव नहीं। निमित्त के आश्रय से होते अपने विकार। अपने में जो विकार होता है — शुभ-अशुभभाव, उससे **कथंचित् भिन्न...** सर्वथा भिन्न नहीं। परद्रव्य से सर्वथा भिन्न। परद्रव्य के गुण-पर्याय से सर्वथा भिन्न और विकार से कथंचित् भिन्न। क्योंकि द्रव्य की अपेक्षा से भिन्न परन्तु पर्याय की अपेक्षा से कथंचित् भिन्न **एकाकार...** वापस। द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से विकार भिन्न, परन्तु पर्याय के विकार की अपेक्षा से वह अभिन्न। विकार उसके एक समय का तादात्म्यरूप है। एक समय का। स्वभाव की अपेक्षा से भिन्न, पर्याय की अपेक्षा से अभिन्न। अर्थात् तादात्म्य अनित्य राग। ऐसा एकाकार है। तथापि उन सब गुण-पर्याय का पिण्ड का एकरूप ऐसा द्रव्य है। ऐसे आत्मा में, **ऐसे आत्मा के तत्त्व को...** यहाँ से यह लिया है, हों! वह मूर्ति ऐसे आत्मा के तत्त्व को (प्रकाशित करती है)।

मुमुक्षु : 'प्रत्यगात्मनः' ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में। यह '**प्रत्यगात्मनः**' अलग।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, '**प्रत्यक्**' पर से भिन्न। उसमें (-समयसार कलश में) '**प्रत्यक्**' का अर्थ परमात्मा किया है। '**प्रत्यक्**' पूरा आत्मा है न! यहाँ परद्रव्य से भिन्न '**प्रत्यक्**'। पर से भिन्न। पर से भिन्न का अर्थ — परद्रव्य से भिन्न, परद्रव्य के गुण-पर्याय से भिन्न, पर के निमित्त से होते विकार से कथंचित् भिन्न। सर्वथा भिन्न हो तो पर्याय में न हो और सर्वथा अभिन्न हो तो द्रव्य में साथ भी अभिन्न हो जाये। देखो! यह स्वतन्त्र द्रव्य ऐसा है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

ऐसे आत्मा के तत्त्व को, अर्थात् असाधारण... मूल तो वापस चेतन लेना है उसे। असाधारण निजस्वरूप यहाँ लेना है। आत्मा के तत्त्व को अर्थात् कि निजस्वरूप को। बीच में थोड़ी लम्बी व्याख्या करते हैं। **ऐसे आत्मा के तत्त्व को, अर्थात् असाधारण-सजातीय विजातीय द्रव्यों से विलक्षण-...** चैतन्यस्वरूप। यह असाधारण सजातीय दूसरे आत्मा हों तो भी उनसे आत्मा का ज्ञानस्वरूप भिन्न है। सबका ज्ञानस्वरूप भिन्न है। विजातीय आत्मा जड़ परमाणुओं से भी विलक्षण है। जिसका लक्षण अत्यन्त पृथक् है। बस, इतना। **ऐसे आत्मा के तत्त्व को,...** अर्थात् कि निजस्वरूप को, ऐसा लेना। बीच में यह सब उसके विशेषण आये।

वह मूर्ति... वह मूर्ति अर्थात् ज्ञान और वाणी **अवलोकन करती है-देखती है।** समझ में आया? है न सामने? पाठ है या नहीं सामने? अभी भावार्थ करेंगे विशेष। अनन्त धर्मवाला। ज्ञान का भी अनन्त धर्मस्वभाव है। फिर श्रुतज्ञान की पर्याय हो या केवलज्ञान की हो, वह अनन्त धर्मवाला है। और वाणी का भी अनन्त धर्म को बतलाने का धर्म है। और वह ज्ञान तथा वाणी अनन्त धर्मवाला ऐसा जो आत्मा,... वहाँ आत्मा है वापस। वह ज्ञान और वाणी अनन्त धर्मवाली। अब आत्मा अनन्त धर्मवाला, वह कैसा है? कि परवस्तु से भिन्न—'**प्रत्यक्**'। और परद्रव्य के गुण-पर्याय से भिन्न। परन्तु अपने में पर के लक्ष्य से होता विकार, उससे कथंचित् भिन्न। सर्वथा भिन्न नहीं। सर्वथा भिन्न हो तो वह विकारी पर्याय एक समय भी उसमें तादात्म्य नहीं हो सकती। न्यालभाई! ध्यान तो रखते हैं परन्तु यह सूक्ष्म बहुत, भाई! समझ में आया या नहीं इसमें?

आत्मा को अनेकान्तमय मूर्ति अनन्त धर्मवाले तत्त्व को दिखलाती और प्रकाशित करती है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। अनन्त धर्मवाले आत्मा को अनन्त धर्मवाली मूर्ति ज्ञान और वाणी, वह ऐसे अनन्त धर्मवाले आत्मा को '**पश्यन्ती**' दिखलाती है। इसका अर्थ किया कि अनन्त जिसमें ज्ञान और वाणी में भी धर्म है। वह अनेकान्तमय मूर्ति है।

अब '**अनन्तधर्मणस्तत्त्वं**' जो आत्मा अनन्त धर्मवाला तत्त्व है। अनन्त धर्म। तत्त्व कहेंगे, उन अनन्त धर्म में व्यापक चैतन्य है। चैतन्य अनन्त धर्म में व्यापक है। ऐसे अनन्त धर्मवाले निजस्वरूप को वह सम्यग्ज्ञान श्रुतज्ञान और केवलज्ञान प्रत्यक्ष बतलाता है और वाणी उसे दिखलाती है। समझ में आया इसमें? शशीभाई! समझ में आया या नहीं इसमें? थोड़ा-थोड़ा लगता है। यह भी थोड़ा-थोड़ा। बुद्धिवाले व्यक्ति को थोड़ा-थोड़ा? दो बार तो ऐसे स्पष्ट किया।

'**अनन्तधर्मणस्तत्त्वं**' अनन्त धर्मवाला तत्त्व अर्थात् आत्मा। वह तत्त्व देखे वहाँ चेतन। आत्मा का मूल तत्त्व चेतन। परन्तु वह अनन्त धर्मवाला आत्मा, उन सबमें वह चेतन व्यापक है। ऐसे अनन्त धर्मवाला तत्त्व '**पश्यन्ती**' प्रत्यक्ष भिन्न आत्मा को। कौन? अनेकान्तमय मूर्ति। सम्यग्ज्ञान श्रुतज्ञान साधकदशा में। केवलज्ञान साध्य में और वीतराग की वाणी। यह ज्ञान उसे बतलाता है। अनन्त धर्मवाले चैतन्य तत्त्व को, जो चेतन अनन्त धर्म में व्यापक (है), ऐसे आत्मा के तत्त्व को वह सम्यग्ज्ञान बतलाता है, केवलज्ञान बतलाता है, सम्यक् श्रुतज्ञान (बतलाता है)। केवलज्ञान बतलाता है और वाणी उसे दिखलाती है। समझ में आया? लो।

सजातीय विजातीय द्रव्यों से विलक्षण... भाषा देखो! सजातीय आत्मा, उसका भी जो ज्ञानस्वरूप है, उससे यह ज्ञान विलक्षण है। भाई! ऐसा लिया। क्या कहा? दूसरे अनन्त आत्माओं का सजातीयपना जो ज्ञान आदि है, उससे यह ज्ञानस्वरूप, उसके सजातीय ज्ञान से विलक्षण है। इसका लक्षण ही अलग प्रकार का है। इसके ज्ञान का लक्षण इसके पास रहा, उसके ज्ञान का लक्षण वहाँ रहा। विलक्षण का अर्थ किया वापस। आत्मा के तत्त्व को अर्थात् कि असाधारण निजस्वरूप को अर्थात्? असाधारण अर्थात् क्या? दूसरे सजातीय आत्माओं में भी ज्ञान है, तथापि उनसे यह ज्ञान अनन्त धर्म

में व्यापक, ऐसा जो तत्त्व, वह दूसरे ज्ञान की अपेक्षा इसका लक्षण विलक्षण है, क्योंकि यह ज्ञान लक्षण आत्मा—इसका है, वह दूसरे का ज्ञान लक्षण उसका है। इसलिए कहते हैं कि असाधारण (अर्थात्) दूसरे में नहीं। असाधारण की व्याख्या ऐसी भी करेंगे कि आत्मा के अनन्त गुण हैं, उनमें भी यह असाधारण एक है—ज्ञान। समझ में आया? और वह ज्ञान दूसरे जड़ में भी नहीं, इसलिए भी असाधारण। परन्तु अनन्त गुणों में का एक ज्ञानगुण ऐसा तत्त्व है कि असाधारण ऐसे कोई गुण है नहीं। चैतन्य आत्मा का तत्त्व चेतन अनन्त धर्म में व्यापक है। अपने जितने अनन्त धर्म हैं, उनमें व्याप्त है। ऐसे आत्मा के तत्त्व को जो कि पर से भिन्न है, परद्रव्य-गुण-पर्याय से भिन्न है, परद्रव्य के निमित्त से होती विकृत अवस्था कथंचित् भिन्न है। क्योंकि पर्याय में अनित्य तादात्म्य वह विकार है। द्रव्य के कारण से स्वभाव की अपेक्षा से भिन्न है। ऐसे विकार सहित पर्याय और चैतन्य का व्यापक अनन्त धर्मवाला, उसे ज्ञान जो अनन्त धर्मवाला तत्त्व है, ज्ञान भी अनन्त धर्मवाला है, उसे जानता है न? इतनी सामर्थ्य है, वह श्रुतज्ञान उसे बतलाता है। श्रुतज्ञान, वह आत्मा को बतलाता है कि ऐसा है। विकार उसकी एक समय की पर्याय में तादात्म्य है। द्रव्य में नहीं। ऐसे श्रुतज्ञान ऐसे तत्त्व को बतलाता है। इसलिए श्रुतज्ञान भी अनेकान्तमय मूर्ति हुई। और अनेकान्त चैतन्यतत्त्व चैतन्य में अनन्त धर्मवाला व्यापक, उसे वह ज्ञान बतलाता है। केवलज्ञान उसे बतलाता है, वाणी उसे दिखलाती है। ज्ञान में इतनी सामर्थ्य है, ऐसा कहते हैं।

केवलज्ञान तो देखे। श्रुतज्ञान, अपना द्रव्य, अपने गुण और चेतन अनन्त धर्म में व्यापक है और विकार, वह कृत्रिम क्षणिक अनित्य तादात्म्यरूप से है, ऐसा श्रुतज्ञान ऐसे आत्मा को दिखलाता है कि यह आत्मा। भाई! समझ में आया? आहाहा! देखो! पर की अपेक्षा कुछ आयी नहीं कि पर को देखता है या नहीं। पर के लक्ष्य से हुई विकृत अवस्था अनित्य तादात्म्यरूप उसके अस्तित्व में है। गुण स्वभाव में नहीं, ऐसा जो आत्मा पर से अत्यन्त भिन्नवाला, विकार अवस्था भी पर से भिन्न, पर से भिन्न—ऐसे आत्मा को श्रुतज्ञान देखता है, केवलज्ञान देखता है, वाणी दिखलाती है। भावार्थ में विस्तार करेंगे, यह कहा उसका विस्तार करते हैं।

यही नमस्कार आया है। ऐसे रहो, ज्ञान '**नित्यमेव प्रकाशताम्**' है या नहीं? क्या

आया ? देखो ! अन्तिम शब्द क्या है ? '**नित्यमेव प्रकाशताम्**' ऐसा ज्ञान शाश्वत् रहो, ऐसा केवलज्ञान शाश्वत रहो, वह वाणी भी शाश्वत रहो। इस प्रकार उसकी अस्ति का कायम टिकना, वह उसका मांगलिक किया जाता है। तत्त्वज्ञान। समझ में आया ? जगत में उसकी अस्ति ऐसी है, वैसी रहो, यही मांगलिक है। श्रुतज्ञान साधकभाव में ऐसा रहो, नित्य रहो। साधक में से बाधक न होओ और साधक में से सिद्ध होओ। दोनों ऐसे रहो। उसे बतलानेवाली वाणी वाचक भी रहो। यह तो शास्त्र है, भाई ! समझ में आया ?

मुमुक्षु : बहुत गूढ़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गूढ़ है। यह तो सन्तों की वाणी है। उस कबीर में कहते हैं या नहीं ? कबीर की उल्टी वाणी। ऐसा नहीं। यह तो सुल्टी वाणी में गम्भीरता बहुत है।

मुमुक्षु : गोरख की उल्टी वाणी।

पूज्य गुरुदेवश्री : गोरख की उल्टी। परन्तु यह तो अलौकिक चैतन्य की वाणी है। आत्मा होकर आत्मा एकबार बोल, ऐसा कहा है। समझ में आया ? ... एक पत्र आता है, भाई ! आत्मा होकर आत्मा एक बार बोले, आत्मा होकर अर्थात् ?

मुमुक्षु : उस रूप परिणमकर।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी वाणी सम्यक् ही निकले। समझ में आया ?

ज्ञानसमय आत्मा होकर, अर्थसमय को बतलावे शब्दसमय द्वारा। पण्डितजी ! यह आता था न ? पंचास्तिकाय में। शब्दसमय और एक ... में लिया है न ? उस द्वारा। यहाँ ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के लिये... (गाथा-३ की) टीका है। **ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय कहने का (श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव का) इरादा है।** समझ में आया ? यह अन्तिम शब्द है न ? '**तद्त्र ज्ञानसमयप्रसिद्धयर्थं शब्दसमयसम्बन्धेनार्थसमयोऽभिधातुमभिप्रेतः**' ज्ञानसमय की प्रसिद्धि, सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि करने के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय को बतलाते हैं। ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का इसमें अभिप्राय है। तीनों आ गये। देखो ! ज्ञानसमय, शब्दसमय और अर्थसमय। ज्ञान-सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय

बतलाते हैं। अब इसकी व्याख्या करते हैं। पण्डित जयचन्द्रजी स्वयं विस्तार करते हैं न! सामान्य जो किया, उसमें जरा विशेष (भावार्थ कहते हैं)।

भावार्थ :- यहाँ सरस्वती की मूर्ति को... लो, आया। **आशीर्वचनरूप से नमस्कार किया है।** है? आशीर्वचन अर्थात् आशीर्वाद कहो या आशीर्वचन कहो। आशीर्वाद नहीं कहते? इनका हमको आशीर्वाद है। वाद अर्थात् वचन। आशीर्वचन—आशीर्वाद। नहीं कहते? हमारे आशीर्वाद चाहिए। आशीर्वाद। वाद अर्थात् आशीर्वचन। **यहाँ सरस्वती की मूर्ति को आशीर्वचन...** अर्थात् आशीर्वादरूप नमस्कार किया है। ठीक! आशीर्वादरूप नमस्कार किया है। हे ज्ञानमूर्ति! हे केवलज्ञान! हे श्रुतज्ञान! वाणी! तुम रहो। ऐसा आशीर्वादरूप से नमस्कार किया है। समझ में आया?

लौकिक में जो सरस्वती की मूर्ति प्रसिद्ध है, वह यथार्थ नहीं है,... लोग कहते हैं न? मोर के ऊपर बैठती है और हाथ में वीणा है। मूर्ति ऐसा कहना चाहते हैं कि जैसे मोर सर्प को खाता है, सपूंछो। मोर होता है न मोर? वह सर्प को पहले पूँछ से पकड़ता है। इतनी सामर्थ्य है। मुख से नहीं पकड़ता। ऐसे चला जाता हो तो पूँछ पकड़े। वहाँ वह स्थिर हो जाये अन्दर। पूरे शरीर में सर्प आ जाये। ऐसे सरस्वती का वाहन वे लोग कहते हैं, परन्तु उसका अर्थ यह है कि सम्यग्ज्ञानरूपी सरस्वती अज्ञान के जहर को निगलकर मार डालती है। ज्ञान को सरस्वती कहा जाता है। समझ में आया? मोर सपूंछो खाये। ऐसे सब श्लोक आते हैं, हों! पढ़े हुए हैं। मोर सपूंछो खाये। मोर सर्प को सपूंछो खाये। ऐसे पूँछ से खाये। मुख से नहीं। जहाँ पूँछ पकड़े, वहाँ वह ऐसे उसके मुख में वह पूँछ व्यवस्थित समा जाये, ऐसा मोर का मुख होता है। पूँछ व्यवस्थित दब जाये। ऐसे उसके प्रमाण में। वहाँ वह ढीला पड़ जाये। उसके मुख में पूँछ ऐसे पकड़ में आये, ऐसा गोलाकार खाली भाग ऐसा हो। खाली भाग मुख में (ऐसा होता है कि) पूँछ ऐसे व्यवस्थित हो जाये। ... कहीं ऐसे हिलने की स्थिति अन्दर न हो, ऐसा उसका स्थान होता है। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान अज्ञान और राग-द्वेष के जहर को मार डालकर, मार डालकर जीवित चैतन्य है। ऐसी सरस्वती यहाँ वर्णन की है। यह ज्ञान सरस्वती है, हों!

मुमुक्षु : साँप का फण या फुंफकार काम नहीं आते?

पूज्य गुरुदेवश्री : फुंफकार क्या? फिरे नहीं। कहा नहीं? ऐसा बराबर समा जाये न। मुख का भाग ही ऐसा होता है। देखा है? कभी ऐसे ... ऊपर से देखना न। ... क्या है वह। मुख ऐसा का ऐसा (होता है), इसलिए बीच में इतनी (जगह) खाली हो कि उसमें बराबर व्यवस्थित समा जाये। उसमें कहीं हिल सके नहीं जरा भी। मोर सपूंछो खाये। मोर सर्प को पूँछ सहित खाये, ऐसी कहावत है।

इसी प्रकार सरस्वती ज्ञान—सम्यक् श्रुतज्ञान, केवलज्ञान जहर को मार डालकर अमृत बना दे आत्मा को। वाणी भी ऐसी ही, हों! वीतराग की वाणी भी ऐसी है। जहर को मारकर अनेकान्तमय वस्तु.. है न? पंचास्तिकाय में आता है, नहीं? प्रवचनसार में। अनेकान्त। पहले कहीं आता है। पहले श्लोक में शुरुआत में आता है। पश्चात् अमृतचन्द्राचार्य की टीका में आता है।

मुमुक्षु : एकान्त और अनेकान्त।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है। यह तो दूसरी टीका।

मुमुक्षु : अस्ति-नास्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अस्ति-नास्ति में आता है, यह अनेकान्त। वह तो आता है, वह अनेकान्त नहीं। ... चौदह बोल। किसमें हैं वे? पंचास्तिकाय? प्रवचनसार। स्यात्कार रूपी अमोघ मंत्र पद जकार में रहे हुए समस्त विरोधविष के मोह को दूर करता है। सप्तभंगी। सम्यक् प्रकार से सप्तभंगी सतत सम्यक् रीति से उच्चारण किये जाते हुए स्यात्काररूपी अमोघ मन्त्रपद द्वारा जकार में रहे हुए—एकान्त में रहे हुए समस्त विरोधविष के मोह को दूर करता है। ज्ञान भी ऐसा है और वाणी भी ऐसी है। दोनों ऐसे हैं। देखो! उच्चारण किये जाते हुए, ऐसा कहा है न? शास्त्र में तो बहुत भरा है, बहुत भरा है! ओहोहो!

यहाँ कहते हैं, **लौकिक में जो सरस्वती की मूर्ति प्रसिद्ध है, वह यथार्थ नहीं है, इसलिए यहाँ उसका यथार्थ वर्णन किया है।** समझ में आया? **सम्यग्ज्ञान ही सरस्वती की यथार्थ मूर्ति है।** जो सम्यग्ज्ञान है, जो आत्मा के सारे (-पूरे) पूर्ण स्वरूप जैसा पर से भिन्न है, विकार क्षणिक आदि, स्वभाव अनन्त गुण, ऐसा वह ज्ञान बराबर बतलाता

है। समझ में आया? ४७ नय में ऐसा आया न? श्रुतज्ञान कर्ता है, विकार है। वह नय बतलाता है न? अपना कर्तापना। विकार का परिणमन मेरा परिणमन है, मेरा है। मैं पराधीन हूँ, ... मेरा स्वयं ऐसा धर्म है। ऐसे धर्म को श्रुतज्ञान बतलाता है। वहाँ भी श्रुतज्ञान लिया है न? श्रुतज्ञान ऐसा बतलाता है। यहाँ भी यह लिया है। यथार्थ वर्णन (किया है)। सम्यग्ज्ञान वही सच्ची मूर्ति है।

उसमें भी सम्पूर्ण ज्ञान तो केवलज्ञान है, जिसमें समस्त पदार्थ प्रत्यक्ष भासित होते हैं। ओहोहो! केवलज्ञान एक समय की दशा कि जिसमें सम्पूर्ण पदार्थ—परपदार्थ प्रत्यक्ष भासित होते हैं। कहो, समझ में आया यह? ऐसा केवलज्ञान '**नित्यमेव प्रकाशताम**', '**नित्यमेव प्रकाशताम**'। आहाहा! ऐसा केवलज्ञान सदा ही रहना। उसकी प्रतीति में कितना आया है! समझ में आया? यह केवलज्ञान प्राप्त हुए... क्योंकि तीन काल में तीन काल को जाननेवाले का विरह तीन काल कभी नहीं होता। क्या कहा? तीन काल में तीन काल को जाननेवाले का विरह तीन काल में कभी नहीं होता। तीन काल में, हों! तीनों काल में तीन काल को जाननेवाले का तीनों काल में कभी विरह नहीं होता।

मुमुक्षु : एक....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही सिद्धान्त कहा न! तीन काल में तीन काल को देखनेवाले का एक समय विरह नहीं होता। क्या कहा इसमें? शशीभाई! ऐसा ज्ञान सदा ही रहो। तीनों काल, हों! वापस। तीनों काल में कौन सा काल एक समय है कि जिसमें तीन काल के जाननेवाले तीनों काल में न हों? आहाहा! सब पूर्ण ज्ञेय है तो पूर्ण जाननेवाला अनादि ही है। ऐसा सब है, ऐसा सब ऐसा का ऐसा अनादि है। आहाहा! समझ में आया? ऐसे केवलज्ञान की प्रतीति... बापू! उसे कहते हैं कि सदा ही रहो। आहाहा! मेरे गुण में से वह पर्याय प्रगट होनेवाली है। मैं साधक हूँ, ऐसा श्रुतज्ञान में कहते हैं न! ऐसा रहो, श्रुतज्ञानी कहता है न? ऐसे रहो। केवलज्ञान रहो, साधक श्रुतज्ञान रहो। समझ में आया?

एक प्रश्न ऐसा उसमें—श्वेताम्बर में आता है। साधु को मारनेवाले को अनन्तगुना पाप लगता है। क्योंकि साधु साधक है। वह साधक जीव का अभाव करना चाहता है,

वह महापापी है। संसारीजीव बाधकवाले हैं। वे तो मारते हैं तो उन्हें पाप (लगता है)। परन्तु जिसे आत्मा के स्वरूप का साधकपना प्रगट हुआ है, उसे मार डालने का भाव, इसका अर्थ कि वह साधकपना जगत में न रहो। तीन काल में साधकपना न रहो, ऐसी उसकी—मारनेवाले की मान्यता में है। समझ में आया इसमें? भगवती (सूत्र) में एक लेख था, उसमें से ऐसा निकालते थे। वहाँ तो सब साधारण था। परन्तु अन्दर से थोड़ा-थोड़ा (निकालते थे)। एक साधक जीव है स्वरूप का साधनेवाला, जिसकी अल्पकाल में साध्यदशा पूर्ण होनेवाली है। उसको जिसे मार डालने का भाव है, उसके साधकभाव का अभाव करना चाहता है। अभी नहीं परन्तु तीन काल के जीव जो साधक हों, उनका अभाव करना चाहता है। साधकपना न हो और महामिथ्यात्व का बाधकपना हो, ऐसे निगोद का आराधक, वह साधक को मारकर अभाव करना चाहता है। समझ में आया?

इसी प्रकार जगत में केवलज्ञानी न हो, केवलज्ञानी न हो। आहाहा! एक समय में जाननेवाला। तीनों काल में तीन काल में तीन लोक को जाननेवाले का विरह कभी नहीं। इसमें ऐसा कहते हैं कि ऐसा केवलज्ञान न हो। अनन्त आत्मा की शक्ति की व्यक्तता का अभाव हो जगत में, ऐसा वे कहना चाहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : केवलज्ञान है, ऐसा माने और नियत....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही खोटी है। केवलज्ञान अर्थात् क्या! भाई! आहाहा! ऐसे सब व्यवस्थित है। एक समय में उस पर्याय को जानते हुए वह ज्ञात हो जाता है। ऐसी वस्तु पर्याय का धर्म है। उसका धर्म व्यवस्थित जो है, वह सब ज्ञात हो जाता है। तीनों काल में तीन लोक में, तीन काल में तीन लोक के अन्दर में, लोक के अन्दर में तीन काल में कभी तीन काल को जाने बिना का जगत रहे, वह जगत रहेगा ही नहीं। जगत नहीं रहेगा। क्योंकि जगत अनादि सब ज्ञेयरूप पड़ा है, उसका जाननेवाला साक्षी न हो तो यह ज्ञेय है, उसका अस्तित्व है, वह जाना किसने? दोनों ऐसे के ऐसे अनादि हैं। समझ में आया?

आचार्य यहाँ आशीर्वाद देते हैं। आहाहा! कहते हैं, सम्पूर्ण ज्ञान **वह अनन्त धर्म सहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है,...** आत्मा का अनन्त धर्मवाला तत्त्व अर्थात्

चैतन्य, ऐसा मूल तत्त्व यहाँ अर्थ में गिनेंगे। वह चैतन्य अनन्त धर्म में व्यापक है, उसे केवलज्ञान प्रत्यक्ष देखता है। यह समयसार है। वे तुम्हारे कहते हैं न? क्या? भागवत की पारायण मांडते हैं। यह तो बड़ी पारायण परमात्मा की है। आहाहा! परमेश्वर के अतिरिक्त—सर्वज्ञ के अतिरिक्त ऐसी पारायण कहीं नहीं हो सकती। समझ में आया?

कहते हैं, जो **वह अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखता है,** अनन्त धर्मसहित आत्मतत्त्व को, वापस ऐसा लिया न? भाई! अनन्त धर्मोंसहित आत्मतत्त्व को प्रत्यक्ष देखती है। **इसलिए वह सरस्वती की मूर्ति है।** केवलज्ञान, वह सरस्वती की मूर्ति है। सरस्वती... सरस्वती। स्वरसवती। केवलज्ञान आनन्द के रसवती केवलज्ञान है। कहाँ का कहाँ गया। ऐसा सरस। सरस-वती। सरस-वती। ऐसी केवलज्ञान की मूर्ति। यह केवलज्ञान की व्याख्या की। समझ में आया? '**अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम**'। उसमें अनेकान्तमय में पहला केवलज्ञान निकाला। समझ में आया? उसे 'सदा रहो' ऐसा आशीर्वचन कहा।

तद्नुसार जो श्रुतज्ञान है... तद्-अनुसार श्रुतज्ञान है न?

मुमुक्षु : तद्नुसार....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पूरा। श्रुतज्ञान भी पूरा। पण्डितजी को... नहीं? स्याद्वाद और केवलज्ञान में जरा भी कुछ अन्तर नहीं। परोक्ष - प्रत्यक्ष का अन्तर है। श्लोक आता है न? हाँ, वह। इनको तो बहुत सब... स्याद्वाद, वह केवलज्ञान है। परोक्ष-प्रत्यक्ष का अन्तर, बाकी कुछ अन्तर नहीं। साधक श्रुतज्ञान किसे कहे? समझ में आया?

तद्नुसार जो श्रुतज्ञान है... केवलज्ञानी जैसा जानता है, तद्अनुसार श्रुतज्ञान भी जानता है।

मुमुक्षु : केवलज्ञानी क्रमबद्ध जाने, श्रुतज्ञानी....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात ही सब (खोटी)। कुछ वस्तु की ऐसी स्थिति है? यह अन्दर में से हाथ आना... अन्दर के कोई महान पुरुषार्थ बिना यह (हाथ नहीं आता)। या संस्कार चाहिए और या कोई गुरुगम चाहिए। इसके बिना जैनदर्शन समझ में आये, ऐसा नहीं है। पूर्व में कोई गुरुगम किया हो और या अभी गुरुगम हो, इसके अतिरिक्त

यह तत्त्व बैठे, ऐसा नहीं है। 'पावे नहीं गुरुगम बिना यही अनादि स्थित।' श्रीमद् कहते हैं न? 'पावे नही गुरुगम बिना यही अनादि स्थित।' इसके पहले शब्द हैं न? 'बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात। बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात।' आँख ... की बातें।

बिना नयन पावे नहीं, बिना नयन की बात,
पावे नहीं गुरुगम बिना यही अनादि स्थित।

मुमुक्षु : सेवे सद्गुरु के चरण तो पावे साक्षात्।

पूज्य गुरुदेवश्री : साक्षात्। यह शब्द है।

बुझी चाहत जो प्यास को, है बुझन की रीत,
पावे नहीं गुरुगम बिना यही अनादि स्थित।

ऐसा आता है। श्रीमद् ने अन्दर बहुत रचे हुए। संक्षिप्त शब्द परन्तु बहुत समाहित किया है।

कहते हैं, ओहो! भगवान आत्मा... श्रुतज्ञान भी केवलज्ञान के अनुसार। श्रुतज्ञान भी ऐसा ही जानत है। जयपुर की चर्चा में मूल में तो ऐसा आया है। मूल में लिखा उसमें। केवलज्ञानी तो उस-उस पर्याय को स्वकाल में जानते हैं, वही बराबर है। वरना केवलज्ञान नहीं। ऐसा चर्चा में आया है। परन्तु उसमें अभी वापस बदला कि केवलज्ञानी ऐसे नहीं, केवलज्ञानी भी नियत-अनियत को जाने, श्रुतज्ञानी भी नियत-अनियत को जाने। अभी लेख आते हैं, उनमें ऐसा आता है। पहले में ऐसा आया। यहाँ तो वह भी पूरा पढ़ा है न! क्या कहलाता है तुम्हारे? जयपुर की चर्चा सब पढ़ी है, पूरी पढ़ी है। सब छपाया है न! पण्डितजी यहाँ थे न तब? पूरा देने में वे यहाँ थे मौके से। पूरा यहाँ आया था न? पण्डितजी! पूरा ही यहाँ आया था। तुमने यहाँ से भेजा पूरा। वे मध्यस्थ थे न। लोगों को वहम पड़े कि वहाँ गये। वहाँ पूरा हुआ। वे तो सहज आये थे। वह कहीं .... नहीं था। खबर भी नहीं थी उस समय यहाँ पूरा आयेगा और यहाँ से पण्डितजी को भेजना पड़ेगा। लोगों को मध्यस्थता से देखना चाहिए। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, 'श्रुतज्ञान है, वह आत्मतत्त्व को परोक्ष देखता है...' लो! उसमें

प्रत्यक्ष दिखलाता है, कहा था। है न दोनों शब्द ? ऊपर प्रत्यक्ष दिखलाता है, कहा। (यहाँ) परोक्ष दिखलाता है। उसमें कम-ज्यादा — ऐसा नहीं। मात्र प्रत्यक्ष और परोक्ष, बस, इतनी बात है। **इसलिए वह भी सरस्वती की मूर्ति है।** श्रुतज्ञान भी सरस्वती की मूर्ति है। आहाहा! श्रुतज्ञान-यह भावश्रुतज्ञान की बात चलती है, हों! द्रव्यश्रुत बाद में लेंगे। कहो, समझ में आया ?

और द्रव्यश्रुत वचनरूप है,... यह तीसरी बात आयी। **वह भी उसकी मूर्ति है,...** द्रव्यश्रुत वचन है, वह भी सरस्वती की ही निमित्तरूप से मूर्ति है। सरस्वती की मूर्ति है। श्रुतज्ञान सरस्वती की मूर्ति, केवलज्ञान सरस्वती की मूर्ति। केवलज्ञान प्रत्यक्ष देखता है। वह व्यवहार उपचार है। **क्योंकि वह वचनों के द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बतलाती है।** वाणी में स्व-पर कहने की सामर्थ्य है। स्वत: स्वभाव वाणी में, हों! आत्मा के अतिरिक्त। वाणी में स्व-पर कथा कहने की वाणी की पर्याय में सामर्थ्य है। वह सामर्थ्य चैतन्य के कारण वाणी में आती है, ऐसा नहीं। समझ में आया ? और भगवान आत्मा स्व-पर को जानने की सामर्थ्य रखता है। वह सामर्थ्य पर से नहीं आती और वाणी में स्व-पर कहने की सामर्थ्य है, वह केवलज्ञान के कारण से उसमें आती है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? वस्तु ऐसी, भाई! वस्तु की स्थिति है, ऐसी होगी या नहीं ? स्व-पर वार्ता कहने की वाणी में सामर्थ्य है। कहा है न ? प्रवचनसार में कहा है अन्त में। हे जीवों! मोह से न नाचो। मैंने शब्द कहे और शब्द तुमको समझाते हैं, ऐसे मोह से न नाचो। अमृतचन्द्राचार्य प्रवचनसार में (कहते हैं), मोह से ऐसे नहीं, मिथ्यात्व में नहीं नाचो, भाई! वह शब्द स्वतन्त्र परिणमते हैं। मैं तो ज्ञान में गुप्त हूँ। वह ज्ञान गुप्तपर्याय वाणी में आ गयी है ? गुप्त अन्दर पड़ी है। वाणी की पर्याय से पार अन्दर पड़ी है। वह पर्याय यहाँ वाणी में कैसे आवे ? इसलिए मैं वाणी करनेवाला और शब्द ज्ञेयों को बतलानेवाले और ज्ञान करानेवाले, ऐसा कहाँ है ? ऐसा कहाँ है ? भाई! तेरा ज्ञान तुझसे होता है। शब्दों में स्व-पर को निमित्तरूप से कहने की सामर्थ्य है। ज्ञानस्वरूप को स्व-पर जानने की सामर्थ्य है। और तेरी सामर्थ्य भी स्व-पर को जानने की योग्यता तुझमें है। आहाहा! समझ में आया ?

वचनों के द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बतलाती है। अनेक धर्म हैं, हों!

उसके अन्दर। सब थोड़ी बात करेंगे। **इस प्रकार समस्त पदार्थों के तत्त्व को बतानेवाली...** इस रीति से इस प्रकार सर्व पदार्थों के तत्त्व को अर्थात् उनके स्वरूप को बतलानेवाली **ज्ञानरूप तथा वचनरूप...** तीसरे पद का (चलता है)। **'अनेकान्तमयी मूर्ति'। अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है;...** वह है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानमय मूर्ति केवलज्ञान है, श्रुतज्ञानरूपी सरस्वती है, वाणी भी है। तीनों काल तीन काल में इन तीन का विरह कभी होता नहीं। श्रुतज्ञान का विरह होगा? केवलज्ञान का होगा? वाणी के कहनेवाले को वाणी का विरह होगा? महाविदेह में तीर्थंकर विराजते हैं। दिव्यध्वनि निकलती है। चार-चार घड़ी, सवेरे-दोपहर-शाम और रात्रि में। चार समय निकलती है। समझ में आया? शाश्वत प्रतिमा भी वीतराग की है, शाश्वत इस जाति की वाणी का प्रवाह (भी है)। आता है न श्रुतप्रवाह? आगम आयेगा न अपने? **'वंदित्तु सव्व सिद्धे'** में। आगम प्रवाहरूप से अनादि है। समझ में आया? अनादि है। कहीं नया उसे कोई करता नहीं। आयेगा तब बात।

वचनों के द्वारा अनेक धर्मवाले आत्मा को बतलाती है। कौन? वाणी। सरस्वती की मूर्ति अर्थात् वाणी। वापस और कितने ही ऐसा कहते हैं। यह लोग कहते हैं न? कि वाणी में यह भगवान के कहे हुए सब भाव भरे हैं। भगवान के कहे हुए। इसलिए वाणी पूज्य है, मूर्ति पूज्य नहीं। अरे! जगत को भी कुछ कल्पनाओं में कुछ कल्पना। मूर्ति जैसे पर है, वैसे वाणी भी पर है। वाणी में भगवान के भाव उसमें भरे हैं? वाणी में तो उसके द्रव्य-गुण-पर्याय है। उसके द्रव्य-गुण-पर्याय है। भगवान की पर्याय यहाँ आ गयी है? दिव्यध्वनि में भगवान की पर्याय आती है? अर्थात् ... को मूर्ति उत्थापित करनी है न, इसलिए उसके लिये वाणी पूज्य है, वाणी पूज्य है, वाणी को पूजें तो उसमें से ज्ञान मिले। यहाँ से क्या मिले? परन्तु वहाँ से कहाँ ज्ञान मिले? वह तो जड़ की पर्याय है। अरे! जो द्रव्य जड़ है, उसके गुण हैं, उसकी पर्याय-जड़ की पर्याय है वह तो। उसका भाव तो गुण-पर्याय उसका भाव है। उसके गुण-पर्याय का भाव उसमें है। भगवान का भाव उसमें आता है? कितने ही कहते हैं, यह वाणी है न? देखो! वाणी है, उसमें वह भाव आता है या नहीं? ऐसा नहीं। आहाहा! गुण कैसे आवे? उस वाणी का स्वभाव ऐसा है, उस काल में। समझ में आया? कि जो कहने का ज्ञान है, उस प्रकार

से वाणी में अपने कारण से परिणमकर वाणी वह परिणमकर बात करते हैं। अरे! कठिन बात, भाई! उसमें से कैसे निकलता नहीं? और एक व्यक्ति ऐसा कहता था। भाई! वहाँ आगे उसकी भाषा का काल हो, तब ज्ञान का ऐसा ही वहाँ आगे निमित्त (होता है)। परन्तु निमित्त है, वह कर्ता नहीं। ज्ञान निमित्त की व्याख्या ही ऐसी है कि निमित्त एक प्रत्यक्ष चीज़ है, परन्तु कर्ता नहीं। उसके कारण से वहाँ हुआ है, ऐसा नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में भी ऐसी गड़बड़ हुई है न। निमित्त कहे सही, वापस उसे सिद्ध करे कर्ता-कर्म सम्बन्ध। ऐसा नहीं। ज्ञान निमित्त है। तब नैमित्तिक परमाणु की पर्याय स्वत: अपनेरूप से स्व-पर कहने की सामर्थ्य से परिणम रही है। निमित्त के कारण से नहीं।

सर्वज्ञ भगवान की वाणी में तो एकसाथ सब आता है। सुननेवाले सबको एकसाथ सब परिणमता है? गणधर को ऐसे परिणमे, दूसरे को ऐसे परिणमे, और यह नारद पूछने गये। प्रद्युम्न कब आयेंगे? सोलह वर्ष में। उन्हें ऐसे परिणमा। उन्हें इतना ज्ञान। जिसकी जितनी योग्यता, उसे उतना निमित्त कहा जाता है। वरना वह तो पूरा बड़ा प्रपात निकलता है एकसाथ। वहाँ कहाँ (ऐसा है कि) पहले धर्मास्तिकाय को खोलूँ, फिर अधर्मास्तिकाय को। ऐसा कहाँ है? वहाँ तो एकसाथ वाणी निकलती है। जिसकी योग्यता जितनी क्षयोपशम की है उपादान की, उतने को उस वाणी का निमित्त कहा जाता है। उतने को निमित्त कहा जाता है। अधिक समझे उसे इतने में। वह तो उसका आधार हुआ। समझ में आया?

अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है;... समस्त पदार्थों के तत्त्व को बतानेवाली ज्ञानरूप तथा वचनरूप अनेकान्तमयी सरस्वती की मूर्ति है; इसीलिए सरस्वती के वाणी, भारती, शारदा,... लो, बहुत नाम है न उसके? **वाग्देवी,...** वाग्देवी। वागेश्वरी, वागेश्वरी। उसमें आया था न? नमो जैन वागेश्वरी। तब वह कहे, यहाँ वागेश्वरी कहाँ से आ गयी? उस बाघ पर सरस्वती (दिखलाते हैं)। यहाँ वाघेश्वरी नहीं, वाकेश्वरी है। एक व्यक्ति ऐसा कहता था, हों! वाघेश्वरी आया न। वाघ के ऊपर बैठती है। परन्तु वह वाघ नहीं, यहाँ तो वाकेश्वरी। वाणी में ईश्वर-भगवान की वाणी बड़ी वाणी दिव्यध्वनि।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... आता है परन्तु उसे भी आता है। सरस्वती को आता है, बहुतों को आता है। अन्यमती को कहाँ कुछ ठिकाना है ? जहाँ-तहाँ रच दे। किसी को मुर्गे का वाहन। नहीं आता ? यह तो वस्तु परमसत्य है, उसकी बात है। कल्पित करके पृथक् करे, इससे कहीं वस्तु सच्ची होगी ?

इत्यादि बहुत से नाम कहे जाते हैं। यह सरस्वती की मूर्ति अनन्त धर्मों को 'स्यात्' पद से... कथंचित् पद से **एक धर्मी में...** एक वस्तु में अनेक धर्मों को **अविरोधरूप से...** विरोध न हो उस प्रकार से **साधती है...** एक वस्तु में। अनन्त वस्तु नहीं। उसमें हो न, उसमें उसका हो, उसे स्थापित करे या नहीं ? समझ में आया ? **इसलिए वह सत्यार्थ है। कितने ही अन्यवादीजन सरस्वती की मूर्ति को अन्यथा (प्रकारान्तर से) स्थापित करते हैं, किन्तु वह पदार्थ को सत्यार्थ कहनेवाली नहीं है।** इसलिए यह श्लोक यहाँ लिया।

देखो ! यहाँ पहला देव का लिया, यह शास्त्र का। देव-शास्त्र-गुरु तीन। गुरु में नहीं लिया। भाई ! स्वयं मुनि है न। नमः समयसाराय देव की व्याख्या हो गयी। यह शास्त्र की हुई। अब गुरु की। अमृतचन्द्राचार्य स्वयं गुरु हैं न। वे स्वयं अपनी बात करेंगे, तीसरे श्लोक में। यह तो कुदरत ही सहज ऐसा ही आ जाता है। वे कुछ करते नहीं। सहज ऐसा ही है। ऐसी शैली की कथा, श्लोकों की रचना और प्रकार सब सहज बन गया है। सहज बनता है। कर्ता-बर्ता होकर नहीं। वस्तु की स्थिति है, भाई ! भगवान तो ज्ञाता है। जाननेवाला कहाँ राग में आ जाता है ? जाननेवाला वाणी में आ जाता है ? आहाहा ! ऐसा भगवान चैतन्यस्वरूप गुप्त है। वह गुप्त राग में आता नहीं तो वाणी में कहाँ से आवे ? ऐसा आत्मा का स्वरूप है, उसका निर्णय करना चाहिए।

कोई प्रश्न करता है कि आत्मा को अनन्तधर्मवाला कहा है,... धर्म, समझे न ? स्वभाव, हों ! धर्म अर्थात् स्वभाव। अनन्त धर्मवाला अर्थात् अन्य का धर्म और फलाने का धर्म, वह यहाँ बात नहीं। एक जैनधर्म और एक स्वामी नारायण धर्म और वैष्णव धर्म, वह यहाँ बात नहीं। यहाँ तो उस पदार्थ में रहे हुए अनन्त स्वभाव, उसे धर्म कहा

जाता है। समझ में आया? **सो उसमें वे अनन्त धर्म कौन कौन से हैं?** ऐसा पूछते हैं। पण्डित जयचन्द्रजी स्वयं प्रश्न उठाकर पूछते हैं।

उसका उत्तर :- वस्तु में... अभी सामान्य बात करते हैं, हों! आत्मा की बाद में अन्तिम लाईन में करेंगे। कोई भी वस्तु है जगत में छह द्रव्य हैं, उनमें **सत्पना...** यहाँ से शुरु किया, देखो! सत्पना, यहाँ से शुरु किया। सत्पना—होवे, उसकी व्याख्या होगी न? न हो उसकी क्या व्याख्या? होवे, उसके कितने गुण, होवे, उसकी कितनी पर्याय और होवे वह कितना काल, तो वह हो उसकी व्याख्या होगी न! षट्खण्डागम में सत् प्ररूपणा पहले ली। विद्यमान पदों को-पदार्थ को हम कहते हैं। सत्पदपना। प्रत्येक वस्तु में अस्तित्व का गुण है। **वस्तुपना...** अनन्त गुण को रखती है, ऐसी प्रत्येक वस्तु है, वस्तु है, वस्तु। गुण बसे हुए, ऐसी प्रत्येक वस्तु है। प्रत्येक, हों! यह छहों द्रव्यों की बात है।

प्रमेयपना... प्रत्येक द्रव्य में वस्तु में कोई भी ज्ञान का विषय होने के योग्य उस काल में प्रमेयपना सदा होता है। वस्तु में उस काल में सदा ही प्रमेयपना है तो सदा ही प्रमाण करनेवाला भी जगत में सदा ही होता है। ऐसा प्रमेय धर्म प्रत्येक द्रव्य में स्वतन्त्र धर्म है। समझ में आया? आत्मा में प्रमेय धर्म है। वह आत्मा अपने ज्ञान द्वारा द्रव्य-गुण-पर्याय में प्रमेय-व्याप्त है, उसे जान सकता है। प्रमेयगुण तीन में व्याप्त है। द्रव्य में, गुण में और पर्याय में। वस्तु एक परन्तु व्याप्त तीनों में। तब ज्ञानपर्याय जो प्रगट है, प्रगट, शक्तिरूप से है, वह नहीं; प्रगट जो पर्याय प्रमाणरूप है, प्रमाण उसे कहना न? प्रगट है उसे, वह प्रमाण है, वह तीनों को प्रमेय करती है। द्रव्य, गुण और पर्याय को प्रमेय करती है। ज्ञान, द्रव्य-गुण-पर्याय विकारी या अविकारी, उसे बराबर प्रमेय करती है। जैसा है, वैसा वह जानती है। प्रमेय होने का धर्म है और प्रमाण करने का भी अपने में अपना धर्म है। दूसरे सबमें अकेला प्रमेय है। प्रमाणज्ञान जड़ में नहीं। प्रमेयपना, वह प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव है। यहाँ तो कहते हैं कि वह द्रव्य-गुण-पर्याय ज्ञात न हो, ऐसा द्रव्य में नहीं। समझ में आया? लोगों को ऐसा (होता है कि) अरे! यह ज्ञात नहीं होता। परन्तु उस द्रव्य में ऐसा प्रमेयपना है। न ज्ञात हो, ऐसा द्रव्य नहीं। न ज्ञात हो, ऐसा गुण और पर्याय नहीं। आहाहा! प्रमेयपना लिया न?

प्रदेशपना... प्रत्येक वस्तु में उसके प्रदेश होते हैं। भले परमाणु एक प्रदेशी है। वह प्रदेश है न। यह आता है न? प्रदेश बिना का और... बिना का द्रव्य, वह द्रव्य होता नहीं। प्रवचनसार। होता नहीं। **चेतनपना...** एक उसका धर्म है। यहाँ तो समुच्चय बात करनी है न! **अचेतनपना...** जड़ में। **मूर्तिकपना, अमूर्तिकपना...** पाँच (द्रव्यों में)। **इत्यादि (धर्म) तो गुण हैं।** इत्यादि धर्म तो गुण कहलाते हैं। **और उन गुणों का तीनों काल में समय-समयवर्ती परिणमन होना पर्याय है,...** देखो! यह वस्तु। समय-समयवर्ती परिणमन। दो समय की पर्याय कभी कहीं इकट्ठी होती नहीं। पर्याय का एक समयवर्ती का धर्म है। व्यतिरेक है। है न १०७ गाथा में, नहीं? द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। यह सत् का विस्तार है। १०७ गाथा (प्रवचनसार) ज्ञेय अधिकार। द्रव्य सत्—वस्तु। गुण सत्—शक्ति। पर्याय सत्—एक समय की। परन्तु एक समय का भी सत् है। एक समय की है, इसलिए नहीं, ऐसा नहीं। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं तीनों सत् हैं। तीनों सत् हैं न? व्यय भी सत् है, उत्पाद भी सत् है, ध्रुव भी सत् है। प्रत्येक गुणों के तीनों काल में समय-समयवर्ती एक-एक समय में वर्तनेवाला परिणमन होना, वह उसकी पर्याय है। चाहे तो विकाररूप परिणमो, चाहे तो अविकाररूप परिणमो। समय-समयवर्ती ही उसका परिणमन है। समझ में आया? **जो अनन्त है।** समझ में आया? उन्हें गुण कहा है वहाँ, हों! समझ में आया? अब दूसरे धर्म कहेंगे, अपेक्षित धर्म। आलाप पद्धति में आते हैं न? ९७ पृष्ठ पर। गुण को अपेक्षा से धर्म कहलाते हैं परन्तु धर्म, वे गुण नहीं होते। आलापपद्धति में आता है। गुण को अपेक्षा से धर्म कहा जाता है परन्तु धर्म को अपेक्षित गुण नहीं कहा जाता, धर्म को गुण नहीं कहा जाता। बीच में है। वे अनन्त हैं।

और वस्तु में... यह गुण की व्याख्या हुई। **और वस्तु में एकपना,...** यह धर्म है। समझ में आया? उनको तो सबको पर्याय होती है। यह एकपना है, इसे पर्याय नहीं होती, यह तो धर्म है। स्वयं भावार्थ डाला है। समझ में आया? उन अनन्त धर्म का बताया है। अनन्त धर्म जो डाला है न? उसका स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं। ऐसे-ऐसे अनन्त धर्म हैं। गुण कहे। अब धर्म हैं, उनकी व्याख्या बाकी। धर्म सिद्ध करना है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण शुक्ल १४, रविवार, दिनांक - ३१-०७-१९६६
श्लोक - २,३, प्रवचन - ४

जीव अधिकार में मंगलाचरणरूप से पहले तीन श्लोक हैं। उनमें पहले श्लोक में देव की स्तुति हुई। दिव्यस्वरूप ऐसे परमात्मा कैसे हैं, और उन्हें पहिचानकर नमस्कार किया है। यह नमः समयसार देव। दूसरे में शास्त्र।

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्॥२॥

इसकी व्याख्या यहाँ तक आ गयी है। एक-एक द्रव्य के अन्दर अनन्त धर्म हैं। धर्म अर्थात् स्वभाव। एक-एक पदार्थ के विषे। उसमें पहले कितने ही गुणों की व्याख्या हो गयी। अब धर्म की व्याख्या करते हैं। देखो! यह अस्तित्व ऐसा है, ऐसे अनन्त धर्मवाला आत्मतत्त्व कि जो ज्ञानस्वरूप है, वह ज्ञान आत्मा के अनन्त गुणों में व्याप्त है, इसलिए उस आत्मा के चैतन्य को आत्मतत्त्व कहा जाता है। आत्मा में अनन्त गुण हैं। उनमें चैतन्य उसका वास्तविक तत्त्व है। वह चैतन्यतत्त्व आत्मतत्त्वरूप से आत्मा का वह तत्त्वस्वरूप है, ऐसा कहा। वह चेतन आत्मा के अनन्त गुण में व्यापक है; इसलिए चैतन्य को आत्मतत्त्व कहा जाता है। वह अनन्त धर्मवाला आत्मा। उसे अनन्तधर्मस्वरूप ऐसा ज्ञान देखता है, जानता है। समझ में आया?

अनन्त धर्मवाला ज्ञान। ज्ञान का एक धर्म नहीं, उसमें अनन्त धर्म-स्वभाव है। वह अनन्त धर्मवाला श्रुतज्ञान या अनन्त धर्मवाला केवलज्ञान, वह अनन्त धर्म में व्याप्त चैतन्यरूप ऐसे आत्मतत्त्व को श्रुतज्ञान देखता है और केवलज्ञान देखता है और वाणी उसे दिखलाती है। तीनों को सरस्वती कहा जाता है। लोग कहते हैं, वह सरस्वती नहीं। समझ में आया? तब कहा कि इसमें धर्म कितने? ऐसे कितने ही गुण की बात सामान्य कह गये।

अब, **और वस्तु में...** यहाँ से आया है। **एकपना...** ऐसा एक धर्म है। समझ में आया? आलाप पद्धति का श्लोक है। '**स्वभावनाम एकाधारत्वात एक स्वभावः**' संस्कृत है, आलाप पद्धति। यह उसके ऊपर से लिखा है। आलाप पद्धति है न? यह क्या है? उसमें है। एक की व्याख्या है। '**स्वभावनाम एकाधारत्वात एक स्वभावः**' यह प्रत्येक तत्त्व की बात है, हों! अभी आत्मा की बाद में कहेंगे। प्रत्येक रजकण, प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति और काल, ये सब तत्त्व, इनमें 'एक' धर्म है, एक धर्म। एक गुण है, वह अलग, यह अलग। ४७ शक्ति में एक गुण वर्णन करते हैं, वह अलग चीज़ है। वह गुण तो त्रिकाली। उसकी पर्याय हो वापस। इस एक को पर्याय होती नहीं। यह तो अपेक्षित धर्म है। समझ में आया? जैसे आत्मा में ज्ञानगुण है, उसकी पर्याय है। यह एक धर्म है, इसकी कोई पर्याय नहीं। ऐसा एक स्वभाव है। स्वभाव अर्थात् सर्व स्वभाव के एक आधार की अपेक्षा से उसे एक स्वभाव गिनने में आया है। यह एक स्वभाव गुण है और फिर उसकी पर्याय है, ऐसा नहीं। ऐसा एक स्वभाव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण नहीं, यह धर्म। ऐसा तुमने कहाँ कहा ऐसा यहाँ? यह बात तो कल कही गयी थी। गुणों को अपेक्षा लगाकर धर्मा भवंति। परन्तु धर्म हैं, वे गुण नहीं होते। यह एक आदि धर्म है। एक आदि गुण नहीं। ज्ञान, दर्शन (गुण है)। वस्तु सत्पना, वस्तुपना, प्रमेयपना, प्रदेशपना, वे सब गुण हैं। समझ में आया? भाई! यह तो तत्त्व है न! पण्डितजी ने स्वयं बहुत अच्छा स्पष्टीकरण किया है। '**अनन्तधर्मणस्तत्त्वं**' अनेकान्तमयी मूर्ति उसे देखती है। अनेकान्तमय धर्म भी वाणी में, श्रुतज्ञान में और केवल (ज्ञान) में अनन्त धर्म है। ऐसे अनन्त धर्मवाली वाणी, अनन्त धर्मवाला श्रुत और केवलज्ञान, वह अनन्त धर्मवाले तत्त्व को ऐसा जानता है और देखता है। ऐसे कितने ही गुण हैं और कितने ही अपेक्षित धर्म हैं। आहाहा! भारी कठिन! समझ में आया? गुण जो है ज्ञान, दर्शन, आनन्द और एक गुण जो ४७ शक्ति में कहा, वह तो एक गुण है और उसकी पर्याय समय-समय में होती है। यह तो एक अपेक्षित स्वभाव है। सबके आधारभूत एकस्वभावत्वात् एक गुण-एक स्वभाव। भारी सूक्ष्म! है न? '**स्वभावानाम एकाधार**' की अपेक्षा से एक स्वभाव है।

ऐसे **अनेकपना...** समझ में आया ? यह भी '**एकस्याति अनेकस्वभाव उपलंभात् अनेकस्वभावः**' यह आलाप पद्धति का सिद्धान्त है। एक में भी अनेक धर्म प्राप्ति है, इसलिए उसे अनेक नाम का एक धर्म अनन्त पदार्थ में प्रत्येक में गिनने में आया है। समझ में आया इसमें ? क्या कहते हैं परन्तु यह ? ऐसा क्या कहते हैं ? समझ में आया ऐसा न कहे तो क्या कहे ? नहीं समझ में आया कहे ?

मुमुक्षु : हम तो सीखते यह द्रव्य है, गुण है, पर्याय है, यह तो...

पूज्य गुरुदेवश्री : चौसला नहीं। यह एकपना, अनेकपना इसके अपेक्षित धर्म हैं। (जैसे) इसके गुण हैं और गुण की पर्याय है, उसी प्रकार यह अपेक्षित धर्म है, ऐसा। वापस उन अपेक्षित धर्म को पर्याय हो, ऐसा नहीं। सबके आधारभूत एकपना ऐसा एक धर्म। और एक में भी अनेक धर्म की प्राप्ति ऐसा अनेक धर्म। भाई! यह तो मार्ग-तत्त्व की ऐसी बात है, भाई! समझ में आया ? पण्डितजी!

मुमुक्षु : धर्म (में) पर्याय क्यों नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म, वह स्वभाव है, गुण भी नहीं। धर्म, वह गुण नहीं। एक स्वभाव है, अपेक्षित स्वभाव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह गुण है। वह तो एक धर्म है। धर्म है, उसे पर्याय नहीं। अथवा यह परमाणु, लो! एक परमाणु के वर्ण, गन्ध, रस गुण है। परन्तु उसके स्वभाव का आधारपना एक है, इसलिए एक स्वभाव है, वह गुण नहीं। अपेक्षित धर्म है। समझ में आया ? भाई! इसे विचार करना पड़ेगा, बापू! तत्त्व ऐसा है। यह बाद में कहेंगे, 'आत्मा भी वस्तु है, उसमें भी अपने अनन्त धर्म हैं।' यह अन्त में कहेंगे। यह तो सब तत्त्वों का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया ?

नित्यपना,... पदार्थ में नित्यपना, ऐसा एक धर्म है। नित्यपना कोई गुण और नित्यपने की वापस पर्याय (हो), ऐसा नहीं है। शाश्वत टिकने की अपेक्षा से उसे नित्यधर्म गिनने में आया है। ऐसी बात है। समझ में आया ? और, नित्य एक गुण है, (ऐसा होवे तो) गुण हो तो फिर पर्याय होगी। तो उसकी पर्याय अनित्य है ? नित्यगुण

की पर्याय अनित्य? ऐसा नहीं। वापस अनित्यपना भी एक धर्म है। बदलता है, ऐसा एक धर्म है, ऐसा। अपेक्षित बदलने की अपेक्षा से उसे अनित्य कहा। टिकने की अपेक्षा से उसे नित्य कहा। ऐसा कोई गुण नहीं, अपेक्षित उसका धर्म हुआ। समझ में आया? टिकने की अपेक्षा से नित्य धर्म। पलटने की अपेक्षा से अनित्य धर्म। अनित्य धर्म है, उसे वापस कोई पर्याय है, ऐसी वह वस्तु नहीं। धर्म अर्थात् स्वभाव। उसमें उसकी लायकात की योग्यतावाला स्वभाव। स्वस्य भवनं स्वभाव। उसका भाव... भाव-स्वभाव। गुणरूप, ऐसा नहीं। अपेक्षा लागू पड़ी न उसे? कायम रहना, इतनी अपेक्षा लागू पड़ी। उसका नाम नित्य धर्म। परन्तु नित्य कोई गुण है और उसकी वापस अनित्य पर्याय है, अनित्य कोई गुण है और उसकी वापस कोई पर्याय है, ऐसा नहीं। ऐसा नहीं होता, ऐसा। समझ में आया? और सूक्ष्म आया। ऐई! बल्लभदासभाई!

मुमुक्षु : भावनगर का हक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भावनगर का हक है, कहते हैं। आवे तब सूक्ष्म आवे, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

नित्यपना, अनित्यपना वह एक स्वभाव है। उसका स्वभाव—उसकी उस जाति की योग्यता है। **भेदपना...** लो। समझ में आया? है न? पदार्थ में गुण-गुणी संज्ञा आदि के भेद से उसका भेद धर्म है। धर्म वापस गुण है, ऐसा नहीं। गुणी और गुण, ऐसे भेद की संज्ञा, उसके लक्षण लक्षणभेद से भेद ऐसा एक उसका धर्म-भेदधर्म है। समझ में आया? प्रत्येक द्रव्य का गुण और गुणी अथवा पर्याय ऐसे लक्षणभेद से भेद, एक ऐसा उसका एक धर्म है। गुण नहीं। अपेक्षित धर्म है। **अभेदपना...** प्रत्येक द्रव्य में अपने, जिसके जो प्रदेश हैं, वे एकरूप अभेद हैं। गुण के प्रदेश के भेद नहीं। इस अपेक्षा से गुण के सब प्रदेश एक हैं, इस अपेक्षा से उसे अभेद धर्म कहा जाता है। अपने तो यह पहले से शुरुआत की है न! अभी तीन दिन हुए, चौथा दिन है। ग्यारस से शुरु किया है। राजकोटवाले चौथे दिन आये यहाँ। कहो, अमरचन्दभाई! अभेदपना।

शुद्धपना... शुद्ध है। जो द्रव्य शुद्ध है, वह उसका एक धर्म है। **अशुद्धपना...** वह भी उसका एक धर्म है। अशुद्धपना, वह कोई शाश्वत गुण है और उसकी पर्याय (होती

है), ऐसा नहीं। विभावपना दो द्रव्यों में होता है, चार में तो है नहीं। पुद्गल और जीव में विभावरूप होने का अशुद्धपना ऐसा उनका एक धर्म है। और शुद्धपना भी ऐसा उनका धर्म है। **आदि अनेक धर्म हैं। वे सामान्यरूप धर्म तो वचनगोचर हैं,...** कितने ही सामान्य धर्म वचनगम्य है, **किन्तु अन्य विशेषरूप अनन्त धर्म भी हैं जो कि वचन के विषय नहीं हैं, ऐसे भी अनेक धर्म हैं, जो ज्ञानगम्य हैं।**

प्रत्येक पदार्थ में सामान्य गुण अनन्त हैं और विशेष गुण भी अनन्त हैं। और ऐसे धर्म भी अनन्त हैं। और क्या कहा? प्रत्येक पदार्थ आत्मा हो या परमाणु हो या कालाणु हो, यहाँ सामान्य छह, वह तो वाणी में आया, इतनी बात की। अस्तित्व आदि सामान्य गुण कहे न? बाकी प्रत्येक द्रव्य में सामान्य गुण... गुण, हों! धर्म दूसरे। सामान्य गुण, जिन्हें पर्याय होती है; विशेष गुण जिन्हें पर्याय होती है, ऐसे प्रत्येक द्रव्य के गुण सामान्य है और विशेष—दूसरे में न हो, ऐसे एक-एक में विशेष भी अनन्त गुण हैं। तदुपरान्त ऐसे अपेक्षित अनन्त धर्म हैं। समझ में आया? ऐसा पदार्थ बड़ा।

आत्मा भी वस्तु है,... अब कहा। भाई! वह तो स्वभाव का सागर आत्मा। एक परमाणु भी स्वभाव का सागर है न! परमाणु इसलिए क्षेत्र छोटा, इसका प्रश्न नहीं। उसके स्वभाव का दल वह परमाणु है। एक मूर्त स्वभाव का दल, वह परमाणु है, ऐसा लेना चाहिए। यह कद के कारण इतना, इसलिए ऐसा प्रश्न नहीं। ऐसे अनन्त गुण सामान्य और अनन्त विशेष। परमाणु में भी अनन्त विशेष (गुण हैं), हों! वर्ण, गन्ध आदि अनन्त विशेष गुण हैं और अनन्त अपेक्षित धर्म नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि ऐसे भी अनन्त धर्म का पिण्ड एक इतना रजकण है। वह स्वाभाविक छह स्वभाववाले छह पदार्थ हैं। छह स्वभाववाले छह पदार्थ। समझ में आया? **उसमें भी अपने अनन्त धर्म हैं।** आत्मा में अनन्त धर्म हैं। देखो! आया। वह आत्मतत्त्व कहा है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भी धर्म अनन्त हैं। गुण अनन्त हैं। सामान्य-विशेष अनन्त हैं। धर्म अनन्त हैं। अशुद्धता भले न हो, उसके साथ यहाँ सम्बन्ध नहीं। एक कालाणु इतना है एक रजकण जितना। उसमें सामान्य गुण अनन्त, विशेष गुण अनन्त

अशुद्ध भले न हो, परन्तु धर्म अपेक्षा से अपेक्षित धर्म अनन्त हैं। एक पदार्थ अनन्त पदार्थ के, एक पदार्थ एक अन्य पदार्थ के नास्तिरूप जैसे टिक रहा है, अपने अस्तित्व से, ऐसे अनन्त पदार्थों के मध्य में अनन्ता अनन्त के मध्य में अनन्ता अनन्त के अभावरूप टिका रहे, ऐसे उसमें अनन्त धर्म हैं। भाई! यह तो वस्तु किसे कहे? पदार्थ किसे कहे? आहाहा! एक आत्मा दूसरे आत्मा के अभावरूप से टिका, ऐसे अनन्त आत्मा के अभावरूप से टिका, ऐसे अनन्त रजकण के अभावरूप से टिका। तो एक-एक के अभावरूप धर्म ऐसे अनन्त के अभावरूप धर्म, उसमें अनन्त धर्म हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त हैं न! व्यावृत्त है न। उनसे व्यावृत्त तो इससे व्यावृत्त। एक से व्यावृत्त है तो अनन्त से व्यावृत्त है। आहाहा! भाई! महान पदार्थ है। उसका क्षेत्र इतना बड़ा, ऐसा नहीं लेना चाहिए। वह वस्तु स्वभाव ही अनन्त... अनन्त... अनन्त... बेहद संख्या का पिण्ड वस्तु है।

आत्मा भी ऐसे अनन्त सामान्य गुणों का पिण्ड, अनन्त विशेष गुण। ज्ञान, दर्शन आदि थोड़े कहने में आये हैं। परमात्मप्रकाश की टीका में है न? भाई! परमात्मप्रकाश की टीका में लिया है कि एक-एक पदार्थ में अनन्त सामान्य गुण और अनन्त विशेष गुण हैं। समझ में आया? टीका में (लिया है)। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञान, दर्शन, आनन्द ऐसे गुण भले थोड़े गिनने में आवें, परन्तु वस्तु में तो ऐसे विशेष गुण भी आत्मा में अनन्त हैं। जो परमाणु में ऐसे नहीं। परमाणु में भी वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श अनन्त गुण विशेष हैं कि जो आत्मा में नहीं। समझ में आया? ऐसा इसे श्रद्धा में बैठे, तब आत्मा भी इतना है। इतने अनन्त-अनन्त सामान्य-विशेष गुण, (इनको) वह श्रुतज्ञान की पर्याय जानती है। आहाहा! श्रुतज्ञान प्रमाण है और यह सब गुण प्रमेय है इसके। अपना गुण भी प्रमेय है और स्वयं भी प्रमाण है। श्रुतज्ञान की पर्याय स्वयं भी प्रमेय है और स्वयं प्रमाण भी है। और दूसरे इतने सब जो गुण हैं, वे श्रुतज्ञान प्रमाण में प्रमेय है। श्रुतज्ञान की कितनी सामर्थ्य! समझ में आया?

इसीलिए तो १५वीं गाथा में कहा न? '**पस्सदि जिणसासणं सव्वं।**' जो अबद्धस्पृष्ट

कहा। भगवान आत्मा ऐसा सामान्य और विशेष रहित। विशेष अर्थात् कि भेद, यह नहीं। वस्तु सामान्य अर्थात् एकरूप ध्रुव, एकरूप सामान्य। समझ में आया? अपना। अपना और अपना, हों! दूसरे का सामान्य उसके घर में रहा। ऐसी एकरूप वस्तु, उसे विशेषरहित का अर्थात् सामान्यरूप से अबद्धस्पृष्ट आदि देखता है, वह '**पस्सदि जिणसासणं**'। भावश्रुत को शासन कहा है। भावश्रुतरूपी दशा को शासन कहा है। द्रव्य-गुण को नहीं। समझ में आया? भावश्रुतज्ञान—सम्यक् श्रुतज्ञान की पर्याय, जिसे यहाँ सरस्वती कहा है, सरस्वती। ऐसे भावश्रुत को १५वीं गाथा में जैनशासन कहा है। वह भावश्रुत, पूरा ऐसा आत्मा अनन्त गुण सामान्य, विशेष और धर्म, उन्हें वह जानता है। ऐसे ज्ञान में अनन्त धर्म हुए। ज्ञान में अनन्त धर्म हैं। अनन्तानन्त को जाने, ऐसी सामर्थ्यवाली ज्ञान की पर्याय अनन्त धर्मवाली हुई। आहाहा! जैनदर्शन स्वभाव का स्वरूप बतलाता है। समझ में आया? इसीलिए भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (कृत) पंचास्तिकाय में धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश की बात चली '**लोकस्वभाव श्रुण...**' लोक के स्वभाव को सुननेवाले श्रोता समवसरण में थे, उन्हें भगवान ऐसा फरमाते थे। पंचास्तिकाय में आता है। '**लोकस्वभाव श्रुण...**' लोक का स्वभाव। लोक शब्द से प्रत्येक द्रव्य का स्वभाव, गुण का स्वभाव, पर्याय स्वभाव। लोक का सब स्वभाव। लोक के स्वभाव को सुननेवाले श्रोता जो समवसरण में भगवान के निकट विराजते थे, उन्हें भगवान ने ऐसा कहा था। लोक स्वभाव के सुननेवालों को। समझ में आया?

इसकी ज्ञान की एक समय की पर्याय, प्रभु! कितनी सामर्थ्य! आहाहा! गुण का तो क्या कहना! ज्ञानगुण में तो अनन्त केवलज्ञान की पर्याय पड़ी है। परन्तु ऐसे साधक की श्रुतज्ञान की साधक पर्याय जो असंख्य होती हैं। अनन्त नहीं होती। श्रुतज्ञान की पर्याय सम्यक्रूप से रहे तो असंख्य पर्यायरूप से ही रहती है। फिर अनन्त केवलज्ञान हो जाये। ऐसी एक-एक साधक की, श्रुतज्ञान की एक-एक पर्याय अनन्त धर्मवाली। ऐसे अनन्त गुण—विशेष-सामान्य और धर्मों को जाने, इतनी सामर्थ्य एक पर्याय में है। आहाहा! समझ में आया? ऐ.. छोटाभाई! यहाँ कभी सुना न हो। क्या है यह वह? कमाने का भाव कैसे होता है? पुण्य से मिले, ऐसा माने तो भी। ऐ... नटुभाई! यह राग है। राग की उसकी योग्यता के कारण ऐसा भाव हो। मिलना कहीं राग के आधार से

बाहर की चीज़ मिलती है ? प्रत्येक स्वतन्त्र पदार्थ है, प्रत्येक की पर्याय स्वतन्त्र है, ऐसा भगवान आत्मा का ज्ञान श्रुत (ज्ञान) जानता है। केवलज्ञान तो परिपूर्ण प्रत्यक्ष जानता है। यह (श्रुतज्ञान) परोक्ष जानता है। समझ में आया ? आहाहा!

एक भाव ऐसा भी उसमें आया कि यह जीव अमुक काल में—थोड़े काल में मुक्ति प्राप्त करेगा, ऐसा एक अन्दर में प्रमेयपना है, उसे ज्ञान जान लेता है। ऐई! सब प्रमेय में यह एक प्रमेय आया या नहीं ? धीरे से समझने जैसी बात है, हों! यह श्रुतज्ञान की पर्याय साधकरूप से अमुक समय तक रहेगी और फिर आत्मा सिद्ध हो जायेगा... वह सब प्रमेय को यह केवलज्ञान की पर्याय जान लेती है। श्रुतज्ञान की पर्याय, श्रुतज्ञान की पर्याय (जान लेती है)। समझ में आया ? इसे भरोसा नहीं आता। ऐसा बड़ा आत्मा होगा ? समझ में आया ? एक समय की पर्याय इतनी। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना स्वरूप है इसका। समझ में आया ?

एक बार कहा था न ? भाई! (संवत्) १९७७ में प्रश्न हुआ था। देवीलालभाई घेवडिया थे न ? श्रीमद् ऐसा कैसे कहते हैं ? एकावतारी हूँ, एकभवतारी। क्या है ? सुनना है तुम्हारे ? किसके तर्क करते हो ऐसे ? लिखा है न उन्होंने —

अशेष कर्म का भोग है, भोगना अवशेष रे...
इससे देह एक धारकर, जाऊँगा स्वरूप स्वदेश रे...

मुमुक्षु : क्षायिक समकित नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक समकित नहीं था, क्षायिक का क्या काम है तुम्हारे ? यहाँ तो आत्मा की निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह केवलज्ञान को लेनेवाली है, ऐसी सामर्थ्य यहाँ है। क्षायिक हो या दूसरा हो। यहाँ तो श्रुत की पर्याय की कितनी सामर्थ्य है! समझ में आया ? यह (संवत्) १९७७ में प्रश्न लाये थे। देवीलाल घेवडिया। ऐसा कैसे ? क्या है ? सुनना है तुम्हारे ? भगवती सूत्र में लेख है, कहा, लाओ। 'श्रुतज्ञान सव्वं दव्वं, सव्वं क्षेत्रं, सव्वं कालं, सव्वं भावं जाणियो' ऐसा पाठ है। श्रुतज्ञान सर्व द्रव्य को, सर्व क्षेत्र को, सर्व काल को, सर्व भाव को जानता है, ऐसा पाठ है। तत्त्वार्थसूत्र में तो

अभी, पण्डितजी! ऐसा है न? सर्व पर्याय अनन्त भाग में। कितनी ही पर्याय को जानता है, ऐसा है। उसमें तो सब जाने, ऐसा एक लेख है। भगवती (सूत्र) में लेख है। देखो! श्रुतज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य देखो! सर्व द्रव्य, सर्व क्षेत्र, सर्व काल, सर्व भाव परोक्ष रीति से जानता है। सर्व काल, सर्व भाव में क्या बाकी रह गया अब? समझ में आया? स्वरूप की दृष्टि हुई, मिथ्या भ्रान्ति गयी और स्थिरता द्वारा ढीला-ढीला पड़ गया। इन्होंने स्वयं ऐसा एक दृष्टान्त दिया है न? ऐसे हाथ का। डोरी बाँधी हो, यहाँ से गाँठ छोड़ दी तो यहाँ से ऐसे ढीला पड़ने लगता है, ऐसे करते-करते। ऐसा ढीला पड़कर छूट जायेगा अल्पकाल में, ऐसा विश्वास नहीं आता बन्धनवाले को? समझ में आया? इसी प्रकार राग की अस्थिरता का भाग थोड़ा रहा है। पृथक्, पृथक्, पृथक् हो गया। थोड़ा अस्थिरता का बन्ध भी छूटा और यह शिथिल पड़ा और ढीला पड़कर अल्प काल में छूट जायेगा। ऐसी श्रुतज्ञान की पर्याय अपने भाव को भी बराबर जान सकती है। समझ में आया? इसमें यह कहा।

अनन्तधर्मणस्तत्त्वं पश्यन्ती प्रत्यगात्मनः।
अनेकान्तमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम्॥

महा मांगलिक है। यह शास्त्र तो सन्तों की वाणी है। समझ में आया? यह कहीं कोई कल्पित की हुई या कोई अज्ञानी की कविता को कवि रच डाले कि 'जहाँ न पहुँचे रवि, वहाँ पहुँचे कवि', ऐसा यह नहीं है। समझ में आया? ओहो! ऐसा चैतन्यप्रभु...

कहते हैं कि **आत्मा के अनन्त धर्मों में चेतनत्व असाधारण धर्म है...** असाधारण धर्म है। देखो! इसके गुण की बात, इसकी पर्याय की बात क्या कहना! कहते हैं। **अन्य अचेतन द्रव्यों में नहीं है।** ऐसा इसका चैतन्य का गुण और इसका पर्यायधर्म ऐसा है। **सजातीय जीवद्रव्य अनन्त हैं,...** अपनी जाति जैसे जीवद्रव्य अनन्त हैं। **उनमें भी यद्यपि चेतनत्व है, तथापि सबका चेतनत्व निजस्वरूप से भिन्न-भिन्न कहा है,...** किसी का चेतन एक है नहीं। सबका भिन्न-भिन्न है। समझ में आया? एक ही व्यापक, एक ही व्यापक पाखण्ड है? ... निकाला था न पण्डितजी ने? ... पन्द्रहवाँ बोल। पाखण्ड है। ऐसा तत्त्व एक अखण्ड अनन्त गुण का धाम, उसे तू सबको एक ही ठहरा देता है।

कहते हैं कि चेतन प्रत्येक का भिन्न है। प्रत्येक का भिन्न और प्रत्येक का सामर्थ्य भी भिन्न। भाई! आत्मा की प्रतीति होना, वह तो अनन्त पुरुषार्थ है। वह कहीं खेल नहीं कि यह जरा लड्डू खा लिया और खाया और पेट भर गया, जाओ! अनन्त आत्मा निर्विकल्प निरालम्बी प्रभु, उसकी प्रतीति निर्विकल्पदशा से होना, वह कहीं कम बात है? वह तो मुक्ति का भणकार बज गया। समयसार में एक कलश में तो, मुक्त ही है — ऐसा कहा है, लो! मुक्त ही है। रागपने का भाव थोड़ा रहा, वह तो ज्ञेय में जाता है। अपनी ज्ञानदशा में वह राग-बाग आता नहीं, ज्ञेय में जाता है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा नहीं मानना कि हम बालक हैं और स्त्री का देह है। आत्मा बालक, स्त्री है ही नहीं। समझ में आया? हमको नहीं समझ में आता, ऐसा लेना ही नहीं। भगवान केवलज्ञान लेने की तैयारीवाला अन्तर्मुहूर्त में ले, ऐसी सामर्थ्य है। सुनते हुए ऐसा नहीं कि यह हमको नहीं समझ में आता, ऐसी बात निकाल डालना। हमको नहीं समझने दे, यह शल्य इसे नहीं समझने देती। नवरंगभाई! उसे बेचारे को (नहीं समझ में आता)। अरे! बेचारा नहीं, प्रभु है तू। इनकार मत कर। पामरता न ले, पामरता न ओढ़। प्रभुता को ओढ़ न! समझ में आया? 'रण में चढ़ा रजपूत छुपे नहीं' वह छिपता होगा? चैतन्य का स्वरूपवीर्य स्वरूप की रचना करने जगा। वीर्य का गुण यह है। स्वरूप रचना करे, उसे वीर्य कहते हैं। विकार रचना करे, वह क्या वीर्य है? समझ में आया?

प्रत्येक चैतन्य का स्वरूप अनन्त-अनन्त धर्मवाली वस्तु है। यहाँ तो कहेंगे, चैतन्य अनन्त धर्म में व्यापक है, ऐसा कहेंगे। **क्योंकि प्रत्येक द्रव्य के प्रदेशभेद होने से...** देखो! प्रत्येक का क्षेत्र भिन्न है, प्रदेशभेद भिन्न हैं। **किसी का किसी में नहीं मिलता।** आहाहा!

मुमुक्षु : कर्म का....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म-फर्म उसके घर में रहे। कर्म कब यहाँ घुस गया था? कोई मिलता नहीं। कर्म की पर्याय का उदय वहाँ उसकी पर्याय स्वतन्त्र (होती है)। उसका भी एक-दूसरे की पर्याय में प्रवर्तन नहीं होता। इसकी अपनी एक समय की पर्याय, दूसरे समय की पर्याय, ऐसे प्रवर्तन है। अप्रवर्तन रूप से प्रत्येक की पर्याय स्वतन्त्र है। समझ में आया?

कहते हैं, वह कोई किसी में मिलता नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि एक समय की पर्याय दूसरे समय में मिलती नहीं, प्रवर्तती नहीं, रहती नहीं। ऐसा एक-एक पर्याय का धर्म है। चिद्विलास में है, भाई! चिद्विलास में भाई ने लिखा है। यह १०१ वीं गाथा है। एक पर्याय दूसरी पर्याय के धर्म के साथ मिलती नहीं। एक-एक पर्याय भिन्न (धर्मवाली) है। भले विकारी हो या अविकारी, स्वतन्त्र भिन्न धर्मवाली है। समझ में आया?

दीपचन्दजी ने बहुत लिखा। दीपचन्दजी (जैसे) दिगम्बरों में ऐसे पहले पण्डित पके हैं। रहस्य गूढ़ बातों को प्रकाशित किया है। भले चारित्र में अन्तर हो, मुनि और उनमें। दर्शन और ज्ञान में कुछ अन्तर नहीं होता। चारित्र में अन्तर होता है। यह महा चारित्रवन्त सन्त! उनकी दशा (अलौकिक है)! परन्तु चारित्र के अन्तर से श्रद्धा-ज्ञान में कुछ अन्तर है, (ऐसा नहीं)। श्रद्धा तो जैसी तिर्यंच को होती है, वैसी श्रद्धा सिद्ध को और सिद्ध की श्रद्धा जैसी तिर्यंच को (होती है)। समझ में आया?

ऐसा भगवान आत्मा कहते हैं, **किसी का किसी में मिलता नहीं।** यहाँ चेतन का लिया। वहाँ और वह याद आया (कि) कोई पर्याय किसी में मिलती नहीं। अपनी, हों! पर की तो बात ही नहीं यहाँ। समझ में आया? यह चिद्विलास में है। जहाँ पर्याय की व्याख्या है न! पर्याय का कारण पर्याय, पर्याय का कारण उसका वीर्य। उसका वीर्य, हों! पर्याय का वीर्य। पर्याय का वीर्य। उसका क्षेत्र पर्याय, उसका भाव पर्याय। उस पर्याय का प्रवर्तन स्वयं से है। दूसरे में ऐसा है नहीं। प्रत्येक का समय-समय का स्वभाव भिन्न-भिन्न है।

ऐसा चेतनपना, **वह चेतनत्व अपने अनन्त धर्मों में व्यापक है,...** आत्मतत्त्व कहा है न? '**अनन्तधर्मणस्तत्त्वं**' ऐसा कहा था न? अर्थात् '**अनन्तधर्मणस्तत्त्वं**'। तत्त्व, वह आत्मा का स्वरूप, ऐसा कहा। और आत्मा का स्वरूप—तत्त्व अर्थात् ज्ञान। और वह ज्ञानपना अपने अनन्त धर्मों में व्यापक होने से **उसे आत्मा का तत्त्व कहा है।** देखो! चेतन को ही आत्मा का तत्त्व कहा। समझ में आया? यह तो गुण की व्याख्या है। आहाहा! **उसे यह सरस्वती की मूर्ति देखती है...** यह ज्ञान लेना। दिखाती है, वह वाणी लेना। उसे

भगवान सम्यग्ज्ञान-श्रुतज्ञान, अपना ऐसा चैतन्य एक गुण अनन्त धर्मों में व्यापक है, उन सबको यह श्रुतज्ञान की पर्याय जानती है। केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है। और वाणी दिखलाती है। वाणी में दिखलाने की सामर्थ्य है। यह बात भारी कठिन पड़ती है। वाणी में ऐसा? वाणी जो सरस्वती—वाणी, वह दिखलाती है। अपनी शक्ति को और पर की शक्ति को दिखलाने की परमाणु की वाणी की पर्याय में सामर्थ्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब बतावे, सब। दूसरे का अनुमान करावे परन्तु बताया या नहीं इस प्रकार से? इस प्रकार से बताया या नहीं? ऐसे अनुमान गम्य अनन्त हैं, ऐसा करके भी बताया या नहीं वाणी ने? बापू! यह तो जैनदर्शन है, अलौकिक बात है। समझ में आया?

इस प्रकार इसके द्वारा सर्व प्राणियों का कल्याण होता है... श्रुतज्ञान से, केवल (ज्ञान) से और वाणी—निमित्त से। '**सदा प्रकाशरूप रहो**'। लो, यह मांगलिक है। है न? '**नित्यमेव प्रकाशताम्**'। '**नित्यमेव प्रकाशताम्**' का अर्थ किया। '**सदा प्रकाशरूप रहो**'। महा मांगलिक! ऐसा भावश्रुतज्ञान जो आत्मा के चेतनतत्त्व को अन्तरंग में व्यापकवाले को जो श्रुतज्ञान जाने, केवलज्ञान जाने, वाणी दिखलावे, वह सदा रहो। **ऐसा आशीर्वादरूप...** आशीर्वाद अर्थात् आशीर्वचन। **आशीर्वादरूप वचन...** देखो! पहले में शुरुआत में आशीर्वचन था। वह वचन कहो या वाद कहो। **वचन उसे कहा है।** ओहोहो! देखो न! पण्डित जयचन्द्रजी ने भी कैसे अर्थ भरे हैं न! पहले के वे लोग बहुत भवभीरु और अन्तर की किस प्रकार से वास्तविक स्थिति है, उस प्रकार से बात करनेवाले। दूसरी आड़ी-टेढ़ी करनेवाले नहीं। दो (श्लोक) हुए, लो। देव और शास्त्र को वन्दन किया। अब, गुरु तो अमृतचन्द्राचार्य स्वयं हैं। देव-शास्त्र-गुरु तीन, ऐसा आता है न सर्वत्र?

★ ★ ★

कलश - ३

(मालिनी)

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परम-विशुद्धिः शुद्धचिन्मात्र-
मूर्तेर्भवतु समयसार-व्याख्ययैवानुभूतेः ।।3।।

अब टीकाकार इस ग्रन्थ का व्याख्यान करने का फल चाहते हुए प्रतिज्ञा करते हैं-

श्लोकार्थ : श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं कि [समयसारव्याख्यया एव] इस समयसार (शुद्धात्मा तथा ग्रन्थ) की व्याख्या (टीका) से ही [मम अनुभूतेः] मेरी अनुभूति की अर्थात् अनुभवनरूप परिणति की [परमविशुद्धिः] परम विशुद्धि (समस्त रागादि विभावपरिणति रहित उत्कृष्ट निर्मलता) [भवतु] हो। कैसी है यह मेरी परिणति? [परपरिणतिहेतोः मोहनाम्नः अनुभावात्] परपरिणति का कारण जो मोह नामक कर्म है, उसके अनुभाव (उदयरूप विपाक) से [अविरतम् अनुभाव्य-व्याप्ति-कल्माषितायाः] जो अनुभाव्य (रागादि परिणामों) की व्याप्ति है, उससे निरन्तर कल्माषित अर्थात् मैली है। और मैं कैसा हूँ? [शुद्ध-चिन्मात्रमूर्तेः] द्रव्यदृष्टि से शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ।

भावार्थ : आचार्यदेव कहते हैं कि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से तो मैं शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ। किन्तु मेरी परिणति मोहकर्म के उदय का निमित्त पा करके मैली है- रागादिस्वरूप हो रही है। इसलिए शुद्ध आत्मा की कथनीरूप इस समयसार ग्रन्थ की टीका करने का फल यह चाहता हूँ कि मेरी परिणति रागादि रहित शुद्ध हो, मेरे शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो। मैं दूसरा कुछ भी-ख्याति, लाभ, पूजादिक-नहीं चाहता। इस प्रकार आचार्य ने टीका करने की प्रतिज्ञागर्भित उसके फल की प्रार्थना की है।।3।।

कलश- ३ पर प्रवचन

अब टीकाकार इस ग्रन्थ का व्याख्यान करने का फल चाहते हुए प्रतिज्ञा करते हैं —

परपरिणतिहेतोर्मोहनाम्नोऽनुभावा-
दविरतमनुभाव्यव्याप्तिकल्माषितायाः।
मम परम-विशुद्धिः शुद्धचिन्मात्र-
मूर्तेर्भवतु समयसार-व्याख्ययैवानुभूतेः ॥3॥

भाषा, वजन देखो! '**समयसारव्याख्ययैव**'।

मुमुक्षु : स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्ट है, वह इसमें विवाद क्या है? क्या कहा, समझ में आया? क्या कहा? ऐ... नवरंगभाई! समयसार की व्याख्या करते हुए मेरी शुद्धि होगी, ऐसा कहा। कैसे स्पष्ट हाँ पाड़ते हो तुम? समयसार की मैं टीका करता हूँ, उसके कारण मेरी आत्मशुद्धि होगी, ऐसा कहते हैं। इसका अर्थ समझना चाहिए या नहीं? '**समयसारव्याख्ययैवानुभूतेः भवतु मम परमविशुद्धिः**'। भाई! इसका अर्थ ऐसा है कि यह अभी मेरा घोलन चलता है कि ऐसा है, ऐसा है, ऐसा है। है भले विकल्प, परन्तु उसके पीछे घोलन में मेरी जो एकाग्रता है, इस टीका के काल में ही मेरी एकाग्रता बढ़कर शुद्धि हो जायेगी। समझ में आया?

इसकी टीका (आलोचना) करते हैं, देखो! '**तद्गुणलब्धये**' पण्डितजी! यह आता है या नहीं? मोक्षशास्त्र। '**वन्दे तद्गुणलब्धये**'। देखो! वहाँ यह बात करते हैं। देखो! भाई! भगवान को वन्दन करने से उनके गुण अपने को प्राप्त होते हैं। उस जाति के अपने। कोई कहे कि भगवान को वन्दन करने से विकल्प और पुण्य है। देखो! '**तद्गुणलब्धये**' (कहा है)। अरे.. भगवान! इसका अर्थ समझना चाहिए, भाई! ऐसी बात है। '**तद्गुणलब्धये**' यह गुण है, वे मुझमें भरे हैं, उन्हें मेरी एकाग्रता द्वारा मैं वन्दन करता हूँ। परन्तु एकाग्रता द्वारा वह गुण की मुझे प्राप्ति होओ। पर का वन्दन करना, वह

तो विकल्प है, राग है, पराश्रित व्यवहार है। पराश्रित व्यवहार में संवर, निर्जरा होगी? समझ में आया? क्या हो? अर्थ में बहुत अन्तर पड़ जाता है। शास्त्र में जिस भाव से शास्त्र कहना चाहता है, उस भाव से उसका अर्थ न करके दूसरा करे, तो पूरी बात बदल जाये। तकरार करने बैठे तो यह रहा। रामजीभाई जैसे वकील को सौंपो यह बात। शब्द का अर्थ क्या होता है? लो। ऐई!

'**समयसारव्याख्ययैव**' ऐसा है। उसके उपदेश से हमको परम विशुद्धि होओ। क्या आचार्य झूठ बोलते हैं? अरे! परन्तु भाई! सुन न, बापू! व्याख्या में विकल्प है, वह तो पराश्रित है, भाई! समझ में आया? और पराश्रित भाव तो बन्ध का कारण है। दो चीज़ें ही भिन्न है। स्वाश्रय निर्जरा का कारण है, पराश्रय बन्ध का कारण है। परन्तु मेरा स्वाश्रयपना ऐसे विकल्प के काल में जितना स्वाश्रयपना वर्तता है, उसमें मेरी एकाग्रता का घोलन है। उस एकाग्रता के घोलन में मेरी शुद्धि होओ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ही '**एव**' है न? है भाई सब, सुनो न! देखो! पद्मप्रभमलधारिदेव कहते हैं न! अभी हमारा मन नियमसार की टीका होने में बारम्बार आया करता है। बारम्बार आया करता है। ऐसा पहले श्लोक में है या नहीं? अभी हमारा मन... है न? नियमसार। यह है। विकल्प आया करता है परन्तु पीछे हमारा घोलन है। देखो! **इस समय हमारा मन...** छठवाँ श्लोक है।

अस्माकं मानसान्युच्चैः प्रेरितानि पुनः पुनः।
परमागमसारस्य रुच्या मांसलयाऽधुना॥६॥

इस समय हमारा मन परमागम के सार की पुष्ट रुचि से पुनः-पुनः अत्यन्त प्रेरित हो रहा है। ऐसा विकल्प आया ही करता है कि इसकी टीका हो, नियमसार की टीका हो, ऐसा विकल्प आया करता है। इसलिए यह टीका होने का प्रसंग लगता है। समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य भी ऐसा कहते हैं। हमारा मन (ऐसा है कि) इसकी टीका आत्मख्याति हो, ऐसा हो। हमारा घोलन है न? यह घोलन इस काल में हमारी शुद्धि हो जायेगी। समझ में आया? भाई! उसे माहात्म्य अपनी शुद्धता के ऊपर न देकर राग के

ऊपर के माहात्म्य से निर्जरा होगी? समझ में आया? यह तो वे लोग कहते हैं, यह देवचन्दजी ऐसी बात करते हैं। वे लोग कहते हैं, भगवान की पूजा से आस्रव टलते हैं और संवर बढ़ता है। आस्रव चाल टले और संवर बढ़े। भाई! ऐसा नहीं होता। परद्रव्याश्रय से विकल्प शुभभाव होता है, पुण्यभाव-पुण्यास्रव होता है, परन्तु उसके आश्रय से आस्रव टले—(ऐसा नहीं)। अशुभ टले, इतनी अपेक्षा कहे तो अलग बात है। परन्तु वहाँ संवर होता है, (ऐसा नहीं)। एक भी न्याय पलटने से पूरा तत्त्व का चक्कर घूम जाता है।

यहाँ आचार्य प्रकार करते हैं, **श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्यदेव कहते हैं कि इस समयसार (शुद्धात्मा तथा ग्रन्थ)...** दो लिये। देखो! यहाँ शुद्धात्मा और यह वाचक। वाचक और वाच्य। **की व्याख्या... इसकी कथनी (टीका) से ही** ऐसा है, देखो! **'व्याख्ययैव'।** है न? यही शब्द पड़ा है न। **मेरी अनुभूति की अर्थात् अनुभवनरूप परिणति की...** मेरे अनुभवनरूप शुद्ध दशा, जो स्वभाव के आश्रय से शुद्ध परिणति वर्तती है, उसकी **परम विशुद्धि (समस्त रागादि विभावपरिणति रहित उत्कृष्ट निर्मलता) हो। 'णियमेण य जं कज्जं'** हमारा कार्य शुद्धस्वभाव में एकाग्र होना, वह हमारा कार्य है। उसमें एकाग्रता से शुद्धि होओ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भाई! शब्द की शैली में आचार्यों का अभिप्राय है, वह निकालना चाहिए। शब्द में अकेले शब्द के सीधे अर्थ करने जाये... समझ में आया? न्याय नहीं मिले और वस्तु नहीं मिले।

कैसी है यह मेरी परिणति? परपरिणति का कारण जो मोह नामक कर्म है,... निमित्त कहते हैं। **उसके अनुभाव (उदयरूप विपाक) (निमित्त) से जो अनुभाव्य (रागादि परिणामों) की व्याप्ति है,...** मुझमें। राग की व्याप्य-व्याप्ति तो मुझमें है परन्तु उसका निमित्तपना कर्म का निमित्त है। **उससे निरन्तर कल्माषित अर्थात् मैली है।** मेरी दशा... देखो! मुनि कहते हैं। छठवें गुणस्थान में विराजमान है। विकल्प उठते हैं। जितना विकल्प है न, वह मलिन है, वह मैं जानता हूँ। विकल्प है, वह मलिन है, मेरी दशा है, मुझमें है, निमित्त मोहकर्म का पाक है। नैमित्तिक मेरी दशा है। समझ में आया? ऐसी कल्माषित है।

मुमुक्षु : ज्ञेय में नहीं लगता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दृष्टि की अपेक्षा से ज्ञेय में, ज्ञान की अपेक्षा से पर्याय के परिणमन में। चारित्र की अपेक्षा से राग को जहर (कहते हैं)। तीन अपेक्षा है। दृष्टि की अपेक्षा से वह पर; ज्ञान की अपेक्षा से ज्ञान की परिणति मुझमें वह अशुद्ध है, ऐसा ज्ञान जानता है; चारित्र की अपेक्षा से राग को जहर मानता है। बापू! उसकी जो स्थिति है, ऐसी देखनी चाहिए न! मोक्ष अधिकार में भगवान ने क्या लिया? प्रतिक्रमण आदि जहर लिया। क्योंकि चारित्र का अधिकार है। वह विकल्प उठे, वह जहर है। दृष्टि की अपेक्षा से कहा कि मुझमें जहर नहीं। ज्ञान की अपेक्षा से कहा कि ज्ञान की परिणति मुझमें है, ऐसा मैं जानता हूँ। मुझमें है। ४७ नय में आया या नहीं? प्रवचनसार। कर्ता-भोक्ता मैं हूँ, ऐसा, हों! मेरी पर्याय में। आहा! ऐसा श्रुतज्ञान जानता है। श्रुतज्ञान जानता है। ज्ञान का स्व-परप्रकाशक सबका डबल स्वभाव जानने का है न उसका। खींचतान नहीं होती। भाई! यह तो जैसी वस्तु है, उसे वहाँ सत् को सत् रूप से खड़े रखना चाहिए। तोड़-मरोड़कर घर के अर्थ करना, ऐसा वस्तु को रास नहीं आता।

कहते हैं, उस कर्म के पाक के कारण अनुभाव्य अर्थात् कि मेरे स्वभाव के कारण विकार का पाक नहीं। ऐसे पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, उतना मुझमें रागादि (होते हैं)। द्वेषादि लिया, रागादि लिया न साधारण। ... एक अंश स्थापते हैं न कि ऐसा नहीं होता। ऐसा नहीं होता, भाई! ऐसा मार्ग नहीं होता। इतना द्वेष का अंश है। भले प्रशस्त है। भगवान अकेले चैतन्य के नेत्रवाला, उसे यह इतना कहाँ रास आवे? यह मार्ग ऐसा नहीं। छद्मस्थ को, हों! केवली को तो सब इच्छा बिना (ज्ञात होता है)। यह मार्ग ऐसा नहीं। समझ में आया? इतना द्वेष का अंश है। भले प्रशस्त है, पुण्यबन्ध का कारण है। छद्मस्थ है, रागी है, मोही है न, इस अपेक्षा से वहाँ ऐसा भाव आता है। स्थापते हैं कि यह ऐसा है। इतना राग के कारण से, हों! विकल्प का, राग का उत्थान है, कषाय है। कहते हैं, इतना मलिन भाव है। आहाहा!

भगवान आत्मा में, यह सत्य को मैं टीका में लिखता हूँ, यह विकल्प है, वह मलिन है। योग्यता भले मेरी, निमित्त है कर्म पाक। उसमें—कलशटीका में तो ऐसा लिखा है न? जो पूर्व में मैंने राग किया था, उस राग का निमित्त पाकर जो कर्म हुआ था,

वही कर्म वर्तमान में मेरे राग में निमित्त होता है, दूसरा नहीं। कलशटीका में ऐसा लिया है। वह कलशटीका में। कहाँ गयी कलशटीका?

मुमुक्षु : परम्परा....

पूज्य गुरुदेवश्री : परम्परा की सन्धि करते हैं। है न? भाई! पाठ। यह पूरा वाँचन हो गया है। देखो! **कैसा है मोहनामक कर्म? 'परपरिणतिहेतोः'** इसकी ऐसी व्याख्या की है कि **अशुद्ध जीव के परिणाम जिसका कारण है...** मोहकर्म ऐसा कर्म था कि जिसमें मेरा राग निमित्त था। **भावार्थ इस प्रकार है—जीव के अशुद्ध परिणाम के निमित्त से ऐसा रस लेकर मोहकर्म बँधता है, पश्चात् उदयसमय निमित्तमात्र होता है।**

मुमुक्षु : उसमें भी निमित्त....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें भी निमित्त होने की योग्यता है। पंचाध्यायी में है न। समझ में आया? पूर्व में (मेरा) राग था। निमित्त पाकर कर्म उपादानरूप से हुआ। वही जब उदय में आया तो वह उदय मेरे वर्तमान राग में निमित्त होगा। समझ में आया? यह **'परपरिणतिहेतोः'** का ऐसा अर्थ किया है वहाँ। यहाँ किया है सामान्य अर्थ कि परपरिणति का हेतु-निमित्त कर्म। बस इतना।

मुमुक्षु : निरन्तर कल्माषित....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो यहाँ किया है परन्तु उसने तो इस प्रकार से निरन्तर कल्माषित में भी पूर्व में मैंने कल्माषित की थी, उसकी सन्धि की। कल्माषित हुई, मैली थी, वह कर्म के निमित्त से हुआ और वह कर्म उदय वर्तमान कल्माषित मैं करूँगा तो उसमें वह निमित्त होगा।

यहाँ सीधी बात ली है कि **उससे निरन्तर...** ऐसा है न यहाँ तो? मोह से निरन्तर। **व्याप्ति है, उससे निरन्तर कल्माषित अर्थात् मैली है।** मेरी पर्याय निरन्तर मुझमें व्यापती है। मलिनता यहाँ निरन्तर है, छूटी नहीं। एकता टूटी है, अस्थिरता टूटी नहीं। अस्थिरता अनादि की चली आती है, वह अस्थिरता है। समझ में आया? एकता टूट गयी है, अस्थिरता तो जो अनादि की चलती है, उस जाति की ही अस्थिरता है, निरन्तर चली आती है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कम का कहाँ प्रश्न है यहाँ। यह तो पर्याय है, वह कभी नाश हो गयी थी? नाश हो गयी हो तो वीतराग हो गया हो। एकत्व नाश हो गया है, एकत्व (टूटकर) भान, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हो गया है। परन्तु जो लाईन अनादि से ऐसी की ऐसी पर्याय चलती है, वह पर्याय कभी टूट गयी है और वीतराग हो गया है, (ऐसा नहीं है)। इस अपेक्षा से बात करते हैं। समझ में आया?

और मैं कैसा हूँ? ले। मेरी परिणति ऐसी है, ऐसा करके (अब कहते हैं), मैं **द्रव्यदृष्टि से शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ।** मैं तो द्रव्य-वस्तु से... है न? '**शुद्धचिन्मात्रमूर्तेः**' आहाहा! शुद्ध चिन्मात्रमूर्ति। वस्तु तो यह है। पर्याय में कलुषितता जरा आयी है, आगन्तुक। निमित्त के लक्ष्य से आगन्तुक है, मेहमानरूप से है, रहने की नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : परपरिणति का अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : परपरिणति का अर्थ विकार परिणाम। अपने विकार परिणाम को परपरिणति कहा। उसका हेतु कर्म का निमित्त। परिणति तो अपनी है। परपरिणति-विकार, उसका नाम परपरिणति। है न? देखो न! **परपरिणति का कारण जो मोह नामक कर्म...** परपरिणति कैसी है? कि राग-द्वेषवाली है। निरन्तर कल्माषित है मेरे अपने में।

मुमुक्षु : परपरिणति का हेतु मोह....

पूज्य गुरुदेवश्री : मोह। और वह मेरी परपरिणति कैसी है? कि मुझमें व्याप्ति है। इसलिए कहा न? **अनुभाव्य (रागादि परिणामों) की व्याप्ति है, उससे निरन्तर कल्माषित अर्थात् मैली है।** मेरी पर्याय में निरन्तर कल्माषित है। वह तो निमित्त है। उसे परपरिणति कहने में आया है। है तो उसकी पर्याय, परन्तु स्वभाव नहीं न, इसलिए परपरिणति कहने में आयी है। है तो उसकी पर्याय। विकार को परभाव कहा है, इसका अर्थ? परभाव अर्थात् कि वह स्वभाव में नहीं, परन्तु उत्पन्न हुआ मेरी पर्याय में है। त्रिकाल की अपेक्षा से उसे परभाव कहा है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर के निमित्त से अपने में हुई, ऐसा। अपने कल आया था न? भाई नहीं? कल आया था। उसमें आया था। नियमसार में कहीं आया था। समझ में आया? विकार की दशा तो उदयभाव जीव के स्वतत्त्व में है। जीव के स्वतत्त्व में अस्ति में है। वह कहीं रजकण नहीं। विकार कोई रजकण नहीं। अरूपी विकारी विभावदशा है, वह रजकण नहीं कहीं, रस, गन्ध नहीं। परन्तु उसका हेतु मेरा स्वभाव नहीं। मेरा स्वभाव उसका कारण नहीं।

मुमुक्षु : पुद्गल कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पुद्गल इस प्रकार से पुद्गल परिणाम कहा। अपनी जाति के भाव नहीं, इसलिए पुद्गल परिणाम। पुद्गल परिणाम अर्थात् क्या वह रजकण है? रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाले परिणाम हैं वे? गले और उत्पन्न हो, गले और उत्पन्न हो पुद्गल, इस अपेक्षा से उन्हें पुद्गल परिणाम कहा है। स्वभाव में कहाँ है? इस अपेखा से कहा है। समझ में आया?

दो बातें ली। मेरी पर्याय मलिन है, यह मैं जानता हूँ। देखो न! सन्धि तो देखो आचार्य की! ओहोहो! व्यवहार उस काल में जाना हुआ प्रयोजनवान है। १२वीं गाथा में कहेंगे। मेरी पर्याय में विकार है, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। है, है, है। ऐसे देखें तो नहीं, ऐसे देखें तो है। कषाय कलिंत, पीछे आता है न? एक ओर देखें तो कषाय, एक ओर देखें तो अकषाय, एक ओर देखें तो मुक्ति स्पर्शती है, एक ओर देखें तो संसार दिखता है। ऐसा अपने में और अपने में, हों! उसके अस्तित्व में। समझ में आया? यह तो ध्यान रखे तो समझ में आये, ऐसा है, वरना लड़कों को नींद आवे ऐसा है। कल नहीं थी, एक को नींद आ गयी थी? ध्यान रखना। नहीं समझ में आता ऐसा अपने को मानना नहीं, लड़कों को। लड़के कोई है ही नहीं। भगवान आत्मा है न सभी। वर्तमान सिवाय भविष्य का समय कौन लाया है अभी? लाओ। सब अनादि-सान्त अभी ही है। इस काल में सब समान हैं, ऐसे अनादि से। बड़ा है कौन? छोटा है कौन? समझ में आया? इतने लड़के छोटी उम्र के दस वर्ष के, बारह वर्ष के, पन्द्रह वर्ष के।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई छोटा-बड़ा है ही नहीं। अनादिकाल से किसे भविष्य का समय वर्तमान में आया है ? सबको वर्तमान समय तक है। ऐसा इसे देखना चाहिए। मैं द्रव्य से तो शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ। पर्याय में जरा मलिनता है, ऐसा ज्ञान करना चाहिए कि जिससे आगे स्वभाव में एकाग्रता होकर उसे टाला जा सके। समझ में आया ?

भावार्थ :- आचार्यदेव कहते हैं कि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से तो मैं... देखो ! द्रव्यार्थिक अर्थात् यह द्रव्य कौनसा ? सामान्य। त्रिकाल सामान्य। वरना द्रव्य तो सामान्य और विशेष दो होकर द्रव्य कहलाता है। प्रमाण का विषय। प्रत्येक उत्पाद-व्यय पर्याय और ध्रुव, दो होकर प्रमाण। उसे द्रव्य कहना वह तो प्रमाण के विषय का द्रव्य। परन्तु यह द्रव्यार्थिक जो है, वह सामान्य जो ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... उत्पाद-व्यय बिना का।

मुमुक्षु : वर्तमान पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान पर्याय नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : वर्तमान पर्याय लें तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वर्तमान पर्याय गौण कर डाली। व्यवहारनय का विषय गौण कर डाला। अकेला शुद्ध को मुख्य कर डाला। शुद्ध चैतन्यमूर्ति, चैतन्यमूर्ति। सामान्य अर्थात् एकरूप, ऐसा सामान्य। अपना एकरूप, हों ! द्रव्य का। द्रव्य अर्थात् वस्तु यह सामान्य।

शुद्ध द्रव्य अर्थात् सामान्य। अर्थिक—उसके प्रयोजनवाला नय। ऐसे। **शुद्ध द्रव्यार्थिकनय की दृष्टि से...** शुद्ध सामान्य त्रिकाल चैतन्य ध्रुव को देखनेवाली दृष्टि से तो **मैं शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कहा न वह '**तत्त्वं**'। उसमें सब समाहित हो गया।

व्यापक हो गया। यह तो पहले से कह गये। '**अनन्तधर्मणस्तत्त्वं**'। चैतन्यतत्त्व अनन्त धर्म में रहता। समझ में आया?

किन्तु मेरी परिणति... देखो! अर्थ लिया है। **मेरी परिणति...** वहाँ ऐसा भी कहा है न, परपरिणति का कारण... **कैसी है यह मेरी परिणति? परपरिणति का कारण जो मोह नामक कर्म है, उसके अनुभाव (उदयरूप विपाक) से जो अनुभाव्य (रागादि परिणामों) की व्याप्ति है, उससे निरन्तर कल्माषित अर्थात् मैली है।** यह मेरी दशा मैली है। समझ में आया? **रागादिस्वरूप हो रही है। इसलिए शुद्ध आत्मा की कथनीरूप इस समयसार ग्रन्थ की टीका करने का फल यह चाहता हूँ कि मेरी परिणति रागादि रहित शुद्ध हो, मेरे शुद्धस्वरूप की प्राप्ति हो। मैं दूसरा कुछ भी-ख्याति, लाभ, पूजादिक-नहीं चाहता। इस प्रकार आचार्य ने टीका करने की प्रतिज्ञागर्भित उसके फल की प्रार्थना की है।**

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - १

अथ सूत्रावतार: –

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचल–मणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड–मिणमो सुदकेवली–भणिदं।।1।।

वन्दित्वा सर्वसिद्धान् ध्रुवामचलामनौपम्यां गतिं प्राप्तान्।
वक्ष्यामि समयप्राभृतमिदं अहो श्रुतकेवलिभणितम्।।1।।

अथ प्रथमत एव स्वभावभावभूततया ध्रुवत्वमवलम्बमानामनादिभावान्तरपरपरिवृत्ति–विश्रान्तिवशेनाचलत्वमुपगतामखिलोपमानविलक्षणाद्भुतमाहात्म्यत्वेनाविद्यमानौपम्यामप–वर्गसञ्ज्ञिकां गतिमापन्नान् भगवत: सर्वसिद्धान् सिद्धत्वेन साध्यस्यात्मन: प्रतिच्छन्दस्थानीयान् भावद्रव्यस्तवाभ्यां स्वात्मनि परात्मनि च निधायानादिनिधनश्रुतप्रकाशितत्वेन निखिलार्थ–सार्थसाक्षात्कारिकेवलिप्रणीतत्वेन श्रुतकेवलिभि: स्वयमनुभवद्भिरभिहितत्वेन च प्रमाण–तामुपगतस्यास्य समयप्रकाशकस्य प्राभृताह्वयस्यार्हत्प्रवचनावयवस्य स्वपरयोरनादिमोहप्रहाणाय भाववाचा द्रव्यवाचा च परिभाषणमुपक्रम्यते।।1।।

अब मूल गाथा सूत्रकार श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गलपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं–

(हरिगीतिका छन्द)

ध्रुव अचल अरु अनुपम गति पाये हुए सब सिद्ध को।
मैं वंद श्रुतकेवलिकथित कहूँ समयप्राभृत को अहो।।1।।

गाथार्थ : [ध्रुवाम्] ध्रुव, [अचलाम्] अचल और [अनौपम्यां] अनुपम–इन तीन विशेषणों से युक्त [गतिं] गति को [प्राप्तान्] प्राप्त हुए [सर्वसिद्धान्] सर्व सिद्धों को [वन्दित्वा] नमस्कार करके [अहो] अहो! [श्रुतकेवलिभणितम्] श्रुतकेवलियों के द्वारा कथित [इदं] यह [समयप्राभृतम्] समयसार नामक प्राभृत [वक्ष्यामि] कहूँगा।

टीका : यहाँ (संस्कृत टीका में) 'अथ' शब्द मङ्गल के अर्थ को सूचित करता

है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में सर्व सिद्धों को भाव-द्रव्यस्तुति से अपने आत्मा में तथा पर के आत्मा में स्थापित करके इस समय नामक प्राभृत का भाववचन और द्रव्यवचन से परिभाषण (व्याख्यान) प्रारम्भ करते हैं – इस प्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। वे सिद्ध भगवान, सिद्धत्व के कारण, साध्य जो आत्मा उसके प्रतिच्छन्द के स्थान पर हैं – जिनके स्वरूप का संसारी भव्यजीव चिन्तवन करके, उनके समान अपने स्वरूप को ध्याकर, उन्हीं के समान हो जाते हैं और चारों गतियों से विलक्षण पञ्चम गति-मोक्ष को प्राप्त करते हैं। वह पञ्चम गति स्वभावभावस्वरूप है, इसलिए ध्रुवत्व का अवलम्बन करती है। चारों गतियाँ परनिमित्त से होती हैं, इसलिए ध्रुव नहीं किन्तु विनश्वर हैं। 'ध्रुव' विशेषण से पञ्चम गति में इस विनश्वरता का व्यवच्छेद हो गया। और वह गति अनादिकाल से परभावों के निमित्त से होनेवाले पर में भ्रमण, उसकी विश्रान्ति (अभाव) के वश अचलता को प्राप्त है। इस विशेषण से, चारों गतियों में पर निमित्त से जो भ्रमण होता है, उसका पञ्चम गति में व्यवच्छेद हो गया। और वह जगत में जो समस्त उपमायोग्य पदार्थ हैं, उनसे विलक्षण-अद्भुत महिमावाली है, इसलिए उसे किसी की उपमा नहीं मिल सकती। इस विशेषण से चारों गतियों में जो परस्पर कथञ्चित् समानता पायी जाती है, उसका पञ्चम गति में निराकरण हो गया। और उस गति का नाम अपवर्ग है। धर्म, अर्थ और काम – त्रिवर्ग कहलाते हैं; मोक्षगति इस वर्ग में नहीं है, इसलिए उसे अपवर्ग कही है। – ऐसी पञ्चम गति को सिद्ध भगवान प्राप्त हुए हैं। उन्हें अपने तथा पर के आत्मा में स्थापित करके, समय का (सर्व पदार्थों का अथवा जीव पदार्थ का) प्रकाशक जो प्राभृत नामक अर्हत् प्रवचन का अवयव है उसका, अनादि काल से उत्पन्न हुए अपने और पर के मोह का नाश करने के लिए परिभाषण करता हूँ। वह अर्हत् प्रवचन का अवयव अनादिनिधन परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से, सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात् करनेवाले केवली भगवान् सर्वज्ञदेव द्वारा प्रणीत होने से और केवलियों के निकटवर्ती साक्षात् सुननेवाले तथा स्वयं अनुभव करनेवाले श्रुतकेवली गणधरदेवों के द्वारा कथित होने से प्रमाणता को प्राप्त है। यह अन्य वादियों के आगम की भाँति छद्मस्थ (अल्पज्ञानियों) की कल्पना मात्र नहीं है कि जिससे अप्रमाण हो।

भावार्थ : गाथासूत्र में आचार्यदेव ने 'वक्ष्यामि' कहा है, उसका अर्थ टीकाकार

ने 'वच्–परिभाषणे' धातु से परिभाषण किया है। उसका आशय इस प्रकार सूचित होता है कि चौदह पूर्वों में से ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व में बारह 'वस्तु' अधिकार हैं; उनमें भी एक–एक के बीस–बीस 'प्राभृत' अधिकार हैं। उनमें से दशवें वस्तु में समय नामक जो प्राभृत है, उसके मूलसूत्रों के शब्दों का ज्ञान पहले बड़े आचार्यों को था और उसके अर्थ का ज्ञान आचार्यों की परिपाटी के अनुसार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव को भी था। उन्होंने समयप्राभृत का परिभाषण किया–परिभाषासूत्र बनाया। सूत्र की दश जातियाँ कही गयी हैं, उनमें से एक 'परिभाषा' जाति भी हैं। जो अधिकार को अर्थ के द्वारा यथास्थान सूचित करे, वह 'परिभाषा' कहलाती है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव समयप्राभृत का परिभाषण करते हैं–अर्थात् वे समयप्राभृत के अर्थ को ही यथास्थान बतानेवाला परिभाषासूत्र रचते हैं।

आचार्य ने मङ्गल के लिए सिद्धों को नमस्कार किया है। संसारी के लिए शुद्ध आत्मा साध्य है और सिद्ध साक्षात् शुद्धात्मा है, इसलिए उन्हें नमस्कार करना उचित है। यहाँ किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया? इसकी चर्चा टीकाकार के मङ्गलाचरण पर की है, उसे यहाँ भी समझ लेना चाहिए। सिद्धों को 'सर्व' विशेषण देकर यह अभिप्राय बताया है कि सिद्ध अनन्त हैं। इससे यह माननेवाले अन्यमतियों का खण्डन हो गया कि 'शुद्ध आत्मा एक ही है।' 'श्रुतकेवली' शब्द के अर्थ में (1) श्रुत अर्थात् अनादिनिधन प्रवाहरूप आगम और केवली अर्थात् सर्वज्ञदेव कहे गये हैं, तथा (2) श्रुत–अपेक्षा से केवली समान ऐसे गणधरदेवादि विशिष्ट श्रुतज्ञानधर कहे गये हैं; उनसे समयप्राभृत की उत्पत्ति बतायी गयी है। इस प्रकार ग्रन्थ की प्रमाणता बतायी है, और अपनी बुद्धि से कल्पित कहने का निषेध किया है। अन्यवादी छद्मस्थ (अल्पज्ञ) अपनी बुद्धि से पदार्थ का स्वरूप चाहे जैसा कहकर विवाद करते हैं, उनका असत्यार्थपन बताया है।

इस ग्रन्थ के अभिधेय, सम्बन्ध और प्रयोजन तो प्रगट ही हैं। शुद्ध आत्मा का स्वरूप अभिधेय (कहनेयोग्य) है। उसके वाचक इस ग्रन्थ में जो शब्द हैं, उनका और शुद्ध आत्मा का वाच्यवाचकरूप सम्बन्ध है, सो सम्बन्ध है। और शुद्धात्मा के स्वरूप की प्राप्ति का होना प्रयोजन है।।1।।

प्रथम श्रावण कृष्ण १, मंगलवार, दिनांक - ०२-०८-१९६६
गाथा - १, प्रवचन - ५

समयसार। जीव-अजीव अधिकार। जीव अधिकार शुरु करते हुए कुन्दकुन्दाचार्य पहली गाथा में मांगलिकपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं। मूल सूत्र का अवतार करते हुए **अब मूल गाथा सूत्रकार श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गलपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं —** मांगलिक करके मैं समयसार कहूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचल-मणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड-मिणमो सुदकेवली-भणिदं॥१॥

ध्रुव अचल अरु अनुपम गति पाये हुए सब सिद्ध को।
मैं वंद श्रुतकेवलिकथित कहूँ समयप्राभृत को अहो॥१॥

जब गाथा के परमाणुरूप से परिणमने का उसका काल था, तब यह शब्द की ध्वनि अन्दर विकल्प आया अपने कारण से, उस समय यह गाथा ऐसे ध्वनि में उठी है अन्दर कुन्दकुन्दाचार्य को।

वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचल-मणोवमं गदिं पत्ते।
वोच्छामि समयपाहुड-मिणमो सुदकेवली-भणिदं॥१॥

आचार्य कहते हैं... पहले थोड़ा अन्वयार्थ लेते हैं। शुरुआत है न!

गाथार्थ :- आचार्य कहते हैं :- मैं... आचार्य यह व्यक्ति है, एक आत्मा है, ऐसा वहाँ सिद्ध करते हैं। कथन करनेवाले अध्धर से मफतलाल नहीं, ऐसा कहते हैं। मैं... प्रवचनसार में आया न? भाई! मैं वन्दन करनेवाला। ज्ञान-दर्शनस्वरूप से स्वसंवेदनवाला आत्मा, वह तीर्थंकरों को वन्दन करता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : 'यह'।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। 'यह' स्वसंवेदन कहा न? स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। यह मैं

स्वसंवेदनप्रत्यक्ष आत्मा ज्ञान-दर्शन सम्पन्न वह मैं, अनन्त तीर्थंकरों को भूत, वर्तमान, भावि सबको सामान्य को और प्रत्येक-प्रत्येक एक-एक व्यक्ति को लक्ष्य में लेकर सामान्य-विशेष दोनों प्रकार से वन्दन करते हैं।

ऐसा यहाँ कहते हैं कि **मैं ध्रुव,...** सिद्धगति कैसी है? कि ध्रुव। देखो! यहाँ से पहला शब्द शुरु हुआ है। इसमें अन्वयार्थ में, हों! पाठ में '**वंदित्तु**' से शुरु हुआ है। '**वंदित्तु**' में से अमृतचन्द्राचार्य ने यह निकाला है कि हम सिद्ध को हमारे आत्मा में स्थापित करते हैं, यही वन्दन है। '**वंदित्तु**' में से निकाला है। हमारे आत्मा में उसकी पर्याय में अल्पज्ञता और राग होने पर भी, हम आत्मा में सिद्ध भगवान को स्थापित करते हें। और श्रोताओं '**वंदित्तु**' कहने से, हे श्रोता! तुम्हारे ज्ञान की दशा में भी हम सिद्ध को स्थापित करते हैं। यह '**वंदित्तु**' में से निकाला है। इसका अर्थ कि यह सिद्ध परमात्मा जो है, उनका हम अन्तर में आदर करते हैं। और श्रोताओं को कहते हैं कि हे श्रोताओं! तुम्हारे ज्ञान में भी मैं स्थापन करता हूँ। ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा!

जिसे सिद्ध भगवान अन्तर में स्थापित हुए, परमेश्वर पर्याय में पधारे। हमने परमेश्वर का आदर किया है अर्थात् हमने आत्मा की दशा में उन्हें स्थापित किया है, उनका हमको आदर है। हमको निमित्त का, विकल्प का, अल्पज्ञता का आदर नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह तो महासिद्धान्त है। हमें और श्रोताओं को कहते हैं, स्थापित करते हैं। दो बोल '**वंदित्तु**' में से निकाले हैं। मेरे आत्मा में और तुम्हारे आत्मा में मैं सिद्ध भगवान को स्थापित करता हूँ। वह सिद्ध भगवान कैसे हैं? कि ध्रुव हैं। इसका अर्थ टीका में आयेगा।

अचल... हैं। अस्ति की है, फिर नास्ति की है। विश्रान्ति है चार गति के अभाव की। **अनुपम...** हैं। उन्हें कोई उपमा नहीं। समझ में आया? ध्रुव के सामने अध्रुव नहीं वह। अचल के सामने अब उन्हें नाश होना नहीं। अनुपम—उपमावाले पदार्थों से ये अनुपम सिद्ध भगवान हैं। टीका में सब लेंगे। **इन तीन विशेषणों से युक्त गति को...** गति के लिये त्रिवर्ग निकालेंगे। धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग है। उससे गति, वह अपवर्ग है, ऐसा निकालेंगे। शब्दों में से निकाला है। समझ में आया? **प्राप्त हुए, सर्व सिद्धों को...** सर्व सिद्धों को वापस, हों! एक सिद्ध नहीं, अनन्त सिद्ध हैं। ओहो! जब

से वन्दन करते हैं, वहाँ तक के जितने सिद्ध हुए, पश्चात् भी पाँच-पच्चीस वर्ष में जब श्रोता सुनते हैं और कहना चाहते हैं, वहाँ भी जितने सिद्ध हैं, उन **सर्व सिद्धों को नमस्कार करके...** नमस्कार के दो अर्थ निकालेंगे। भाव और द्रव्य (नमस्कार)।

अहो! श्रुतकेवलियों के द्वारा कथित... इसमें से दो निकालेंगे। श्रुतकेवली में से दो निकालेंगे। एक सर्वज्ञ और श्रुतकेवली। और उसमें से तीसरा निकालेंगे—आगम निकालेंगे। श्रुत अर्थात् यह प्रवाह, यह आगम। केवली में से दो निकालेंगे। **यह समयसार नामक प्राभृत कहूँगा।** कहूँगा में से दो निकालेंगे-भाववचन और द्रव्यवचन। पाठ में से ही निकाला है, हों! आचार्य ने मूल पाठ में जो ध्वनि है न, उसकी ही टीका (की है)। टीका तो उसकी ही हो न। होवे उसमें से (निकाले)। भैंस के आँचल में दूध हो, उसे चतुर महिला अंगूठा लगाकर निकाले। आउ समझते हो? आँचल में अन्दर में दूध होता है न? अन्दर में है वह निकालते हैं न? वह भी दुहने की एक कला है। दोहने में ऐसा नहीं खींचे वह। यह अँगूठा यहाँ रखे और आँचल रखे बीच में। इसलिए यह भाग उसे दबे। ऐसे निकले। इसी प्रकार यह टीका... समझ में आया? अमृतचन्द्राचार्य ने अपने ज्ञान और वीर्य के जोर के बल से उसमें क्या कहना है, ऐसी टीका की है। वह अलौकिक टीका! यह टीका भरतक्षेत्र में अभी कहीं है नहीं। आहाहा! समझ में आया? इतना अपने शब्दार्थ किया, हों! अब इसका अर्थ-टीका लेते हैं।

यहाँ (संस्कृत टीका में) 'अथ' शब्द... पड़ा है। **'अथ'। 'अथ'** यह मांगलिकता को सूचित करता है। साधकपना नया शुरु होता है, ऐसा सूचित करता है। **'अथ' शब्द मंगल के अर्थ को सूचित करता है।** समझ में आया? इसका अर्थ—ध्वनि ऐसी है अन्दर में कि वस्तुस्वरूप का शुद्ध साधन शुरु होता है—साधकपना। यह वहाँ से उसकी मांगलिक दशा शुरु होती है। अथवा यह टीकाकार साधकजीव है। मांगलिकपना उनकी दशा में प्रगट हुआ है, वह नया है। अनादि का नहीं था। समझ में आया? इसलिए टीकाकार भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने **'अथ'** शब्द कहा है, वह मंगल के अर्थ में, मांगलिक है। यह सुख की प्राप्ति और दुःख का नाश। दो होते हैं न मंगल में? मंग अर्थात् पवित्रता और ल अर्थात् प्राप्ति। अथवा ममं अर्थात् पाप और गल अर्थात् गलना। यह अस्ति-नास्ति प्रत्येक में दो-दो उठती है। ऐसा यह मंगल में अशुद्धता का नाश और

शुद्धता की प्राप्ति। ऐसे वह अपने भाव में सूचित करता है। हमारा भाव शुद्ध की पर्याय की प्राप्ति मांगलिक है, अशुद्धता का नाश, वह भी एक मांगलिक है। समझ में आया?

ग्रन्थ के आदि में... भले इसमें प्रथम शब्द नहीं डाला। समझे न? प्रथम का अर्थ किया है न? आदि। अर्थात्। उसमें—हिन्दी में प्रथम अर्थात्, ऐसा किया है। यह प्रथम आ गया। **ग्रन्थ के आदि में सर्व सिद्धों को...** यह शब्द पड़े हैं। सर्व सिद्ध। परमात्मदशा प्राप्त अनन्त हैं। कोई कहे एक है। परमात्मा हो, फिर अलग चूल्हा किसका? चौका अलग (किसका)? संसार में चौका अलग हो। जीव सत्ता (अलग हो) परन्तु मुक्त होने के बाद भी अलग? ज्योति में ज्योत मिल गयी, ऐसा नहीं है। समझ में आया? या ऐसा कहते हैं, मत है न? बड़ा मत है। पूर्ण सिद्ध होने के बाद क्या? यह हमारे पानाचन्द के पिता ने पूछा था। बरवाळा में (संवत्) १९८३ के वर्ष, ८३। यह मोक्ष होता है, उसमें फिर अलग सत्ता क्या रहे? वे बहुत वेदान्त में चढ़ गये हुए। उनके पिता बहुत चढ़े हुए। पाँच-पाँच घण्टे, छह-छह घण्टे ध्यान में रहे। तीन से ग्यारह तक ऐसे आठ-आठ घण्टे। खोटा, हों! वस्तु की कुछ खबर नहीं होती। क्यों बात सच्ची है या नहीं? वेदान्त में इसके पिता चढ़ गये। मस्त व्यक्ति, मस्त, हों! दरकार नहीं। लड़कों का कैसे होगा, उसकी दरकार नहीं। बस, मस्त। परन्तु मूल तत्त्व मिला नहीं। हमारे प्रति प्रेम बहुत अधिक, परन्तु यहाँ रहे नहीं बहुत। वे पूछते थे कि अलग टोला क्या? भाई! सिद्ध हो वहाँ... टोला समझे न? भिन्न सत्ता।

मुमुक्षु : उसे पूछो सिद्ध की पर्याय का क्या काम है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो और साधारण। वह तो और यह भाई पूछते थे कि सिद्ध हो तो भी अभी पर्याय लागू पड़ गयी? अभी पर्याय ने छोड़ा नहीं उसे? और ऐसा प्रश्न करते थे। यह और एक यहाँ थे। बड़ी दाढ़ीवाला और बहुत भाषण दे। नाम नहीं देते। समझ में आया? वे कहे, सिद्ध को अभी पर्याय ने छोड़ा नहीं? सिद्ध को भी? पर्याय मानो कोई लप होगी। भाषण दे, हों! हजारों लोगों में भाषण दे। बहुत लाखोंपति लोग और त्यागी बाबा जैसे लगे। वे पूछते थे। जैन दिगम्बर। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, सर्व सिद्ध। एक-एक सिद्ध अनादि के अनन्त सिद्ध हैं। सत्ता शुद्ध

अनन्त है। निर्मल हुई प्रत्येक सत्ता अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से भिन्न रखती है। सिद्ध हुए तो एक होते हैं, ऐसा नहीं है। ऐसा करके सर्व सिद्धों कहकर अनन्त सिद्धपना पृथक् है, यह सिद्ध किया है। कोई एक कहता हो तो खोटा है।

अब '**वोच्छामि**' में से यह निकाला। भाव-द्रव्य स्तुति से। देखो! यह '**वोच्छामि**' के दो निकाले। भाव अन्दर क्षयोपशम का भाव शुरु हुआ है और द्रव्य... अन्दर भाव नमस्कार शुरु हुआ है। स्तुति। रागरहित निश्चय से आराध्य-आराधक, वह मैं ही हूँ— ऐसी निर्विकल्प नमस्कार दशा अन्दर प्रगट हुई है, उसे भावस्तुति कहते हैं। और द्रव्य-वाणी निकाली वह। असद्भूतव्यवहारनय से उसमें वाणी निकली। ऐसे भाव-द्रव्य स्तुति से दो शब्द निकाले। फिर '**वंदित्तु**' में से यह निकाला। यह '**वोच्छामि**' में से निकाला।

अब, **अपने आत्मा में तथा पर के आत्मा में स्थापित करके...** यह '**वंदित्तु**' में से निकाला है। आदर करते हैं, वन्दन करते (हैं)। वन्दन अर्थात् कि ऐसा। आहाहा! हमारी पर्याय अल्प है, उसमें जरा राग है। आगे कहेंगे। मोह नाश के लिये कहते हैं न? भाई! दो-दो बोल हैं, दो-दो बोल, हों! आमने-सामने। मेरे और पर के मोह के नाश के लिये। यह भी अनादि शब्द प्रयोग करेंगे। क्योंकि भले मुनि को अस्थिरता का राग है, वह अनादि की है, वह कहीं नयी नहीं। इसलिए शब्द भले मोह पड़ा है। परन्तु मुनि को मोह नहीं। परन्तु वह अस्थिरता का मोह है, उसे ध्वनि करके (कहते हैं)। है न? '**अनादिमोहप्रहाणाय**' यह शब्द है। अनादि के मोह के नाश के लिये। मुझे भी अभी असावधानी का थोड़ा भाव है, उसके नाश के लिये और श्रोताओं के अनादि मिथ्यात्व और अज्ञान के नाश के लिये। समझ में आया? यहाँ (पर के) आत्मा में और अपने आत्मा में स्थापित करके। देखो! पर के आत्मा में स्थापित करके, हों! हम सिद्ध समान पर्याय में सिद्ध को स्थापित करते हैं। ऐसी जिसे अन्तर में लक्ष्य दशा हुई, उसे अल्पज्ञ और राग का आदर रहता नहीं, उसे स्वभाव का आदर रहता है। श्रोता को भी कहते हैं, श्रोताओ! हमारा श्रोता ऐसा होता है कि जिसकी पर्याय में सिद्ध को समाहित किया जा सकता है। समाहित करने पर उसका लक्ष्य शुद्ध के ऊपर होता है। अल्पज्ञ और राग का उसे आदर नहीं। उसे हम समयसार कहते-कहते उसकी एकाग्रता होगी और उसका

मोह नष्ट हो जायेगा और परमात्मपद को प्राप्त करेगा, ऐसा कहते हैं। होगा ही। यहाँ एक ही बात है। न हो, यह प्रश्न है ही नहीं। समझ में आया? कहो, जयकुमारजी! तुम और पहली गाथा में आ गये। शुरुआत की दो गाथा। आज हुआ, ऐसे चार दिन से वाँचन होता है। चार दिन से वाँचन होता है, परन्तु शुरु तो ग्यारस से किया है। वहाँ और दोनों पहुँच गये। आहाहा!

प्रभु! कहते हैं, अरे! परन्तु सामने के श्रोता की कितनी योग्यता कि तुम उसे सीधे सिद्धपने स्थापित करते हो? सुन न प्रभु! हमारे श्रोता तो ऐसे हैं... यह पाँचवीं (गाथा) के अन्त में कहेंगे, **'तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जदि दाएज्ज पमाणं'** गाथा का प्रमाण करना। ऐसा यहाँ लिया है। आहाहा! यह तो अलौकिक शास्त्र है। समझ में आया? इसमें कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् भगवान को मिले हुए। भरतक्षेत्र के मानव ने महाविदेहक्षेत्र की यात्रा (की)! आहाहा! समझ में आया? सदेह, हों! वापस। आहारकशरीर नहीं। चौदह पूर्व कहे, वह आहारकशरीर, वह नहीं था। ऐसी लब्धि ही थी। साक्षात् भगवान समवसरण में परमात्मा वर्तमान विराजमान हैं। उस काल में विराजमान थे। वहाँ भगवान के पास गये थे। आठ दिन रहे थे।

अहो! मेरे आत्मा में सिद्धपद को स्थापित करता हूँ। महामांगलिक किया! समझ में आया? प्रवचनसार में आता है न? भाई! स्वयंवर मंडित, नहीं आता? स्वयंवर। तीसरी गाथा में। स्वयंवर। हमारी दीक्षा स्वयंवर। मोक्षलक्ष्मी को उपादेय करके हमने हमारी दीक्षा का स्वयंवर माँडा है। प्रवचनसार में ऐसा लिखा है। हे सिद्धों! हे परमात्माओं! हमारे स्वयंवर मण्डप में पधारो। विवाह करने जाते हैं न? तो बड़े लोगों को साथ में ले जाते हैं। कदाचित् वह लड़की का पिता पाँच-दस हजार के लिये कम पड़े (तो) बड़े लोगों को देना पड़े। आठ बजे कन्या क्यों नहीं आयी? उसका होता है न? क्या कहलाता है? हस्तमिलाप का टाईम होता है। क्यों नहीं आयी? कुछ गड़बड़ हुई। पाँच मिनिट (देरी से आवे), वहाँ सेठिया को शंका पड़े। कैसे है? वहाँ एकान्त में कोई कहे, कन्या के पिता को दस हजार चाहिए है। अरे! यह क्या? अन्दर जाये। क्या है? हार निकालकर दे। मैं साथ में (हूँ), इसकी कन्या फिरे नहीं। यह बड़ों को ले जाते थे पहले, हों! बड़ों को ले जाते। यह सब पहली पद्धति थी। पहले ऐसा होता ही था।

अन्दर वे (कन्या पक्षवाले) अवसर पर दबाव डाले, हों! अवसर पर कहाँ जायेगा? वरना इसका नाक जायेगा।

ऐसा कहते हैं कि हे नाथ! हमारी स्वयंवर दीक्षा हमारे मोक्ष के साधन में आपको—सिद्ध को साथ में रखा है, हों! साथ में रखा। हमारा मोक्ष प्रभु! नहीं फिरे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! सिद्ध को यहाँ स्थापित करते हैं। परन्तु ऊपर है न? ऊपर है वह यहाँ स्थापित करते हैं। हम यहाँ स्थापित कर वहाँ आनेवाले हैं। समझ में आया? देखो! तो वहाँ ध्वनि इनकी! जंगल में बैठे होंगे, जब यह ध्वनि उठी है। आहाहा! वहाँ पण्डित यह कहते, पौन्नूरहिल में यह समयसार आदि लिखे गये हैं। पौन्नूरहिल है न? मद्रास से अस्सी मील। हम दो बार गये थे न? वहाँ आगे से भगवान के पास आठ दिन गये थे। (वहाँ से) आकर फिर (यह शास्त्र बनाये हैं)। लाखों ताड़पत्र हैं अभी। अभी, हों! उस समय ताड़ बहुत थे। साथ में एक धवलगिरि है। धवलगिरि। वहाँ से दिखता है। वहाँ धवल, महाधवल लिखे गये हैं। साथ में ही है। व्यवहार के वहाँ और निश्चय के वहाँ (लिखे गये)। तब बात की थी वहाँ। तुम थे? दूसरी बार नहीं थे। वहाँ अभी शंकर का देवल हो गया। है जैन का मूल तो धवलगिरि। धवल ग्रंथ वहाँ लिखा गया। अभी शंकर का मन्दिर है। यह खाली है।

यहाँ कहते हैं, वहाँ ऐसी अन्दर में ध्वनि उठी होगी। **'वंदित्तु'**। अनन्त सिद्ध को हमारे अन्तर में स्थापित कर, तुम्हारे आत्मा में स्थापित कर, हम भाव-द्रव्यस्तुति से अन्तर आनन्द के नमस्कार द्वारा अन्तर में नमकर और वाणी तथा विकल्प सब इकट्ठा लेकर, असद्भूतव्यवहारनय से, उससे हम नमस्कार करते हैं, स्तुति करते हैं, स्तुति। **इस समय नामक प्राभृत का भाववचन...** अर्थात् क्षयोपशम। **द्रव्यवचन...** अर्थात् वाणी। उससे **परिभाषण शुरु करते हैं...** इस परिभाषण में से अर्थकार पण्डित जयचन्द्रजी निकालेंगे, भाई! पाठ में है न? **'परिभाषणमुपक्रम्यते'**। परिभाषण का अर्थ करेंगे। ऐसे सूत्र में बहुत पाठ-नाम हैं, उनमें एक परिभाषण है। यथास्थान में जो भाव चाहिए, वहाँ उसे रचना, वह परिभाषा सूत्र कहलाता है। ऐसा हम **परिभाषण (व्याख्यान) प्रारम्भ करते हैं - इस प्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं।** कहो, समझ में आया?

(१) भाव-द्रव्यस्तुति से एक-दो आये। (२) अपने और पर के आत्मा में स्थापित करके दो आये और (३) भाववचन और द्रव्यवचन आये। डबल डबल भाव। ऐसा तो ध्रुव और उसमें डबल है, वह अलग बात है। और एक (४) आयेगा त्रिवर्ग और अपवर्ग और (एक) आयेगा, मेरे और तुम्हारे मोह के (नाश के लिये)। लो, पाँच डबल भाव कहे हैं अन्दर। समझ में आया? **इस प्रकार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं।**

वे सिद्ध भगवान, सिद्धत्व के कारण, साध्य जो आत्मा उसके प्रतिच्छन्द के स्थान पर हैं... देखो! सामने दो उठाये। सिद्ध भगवान कैसे हैं? कि हमको आदर्श हैं। प्रतिच्छन्द... प्रतिच्छन्द। पडघो समझे? प्रतिच्छन्द। बड़ा मकान होता है न? (उसमें जाकर) तू सिद्ध (ऐसा बोले तो) सामने आवाज आवे, तू सिद्ध। यह प्रतिच्छन्द कहलाता है। पडघो-प्रतिघात, प्रतिघात। आवाज आवे, तू सिद्ध। सामने आवाज आवे, तू सिद्ध। ऐसी प्रतिध्वनि। यह पडछन्द। उसमें आदर्श शब्द रखा है, भाई! हिन्दी में। यह प्रतिच्छन्द शब्द है न? उसका अर्थ वहाँ प्रतिच्छन्द के स्थान पर है अर्थात् आदर्श है, ऐसा हिन्दी में लिखा है। वे आदर्श हैं न? आदर्श है न! प्रतिध्वनि। हे भगवान! तुम पूर्णानन्द हो। सामने आवाज (आवे), हे भगवान! तुम पूर्णानन्द हो। आहाहा! यह सिद्ध भगवान साध्य जो आत्मा, उसके प्रतिच्छन्द-पडघा के स्थान पर है।

जिनके स्वरूप का... जिनके स्वरूप का-सिद्ध का। जो सिद्ध में नहीं, वह मुझमें नहीं। जो सिद्ध में है, उतना मुझमें है। समझ में आया? आदर्शरूप से है। **सिद्ध भगवान, सिद्धत्व के कारण, साध्य जो आत्मा उसके प्रतिच्छन्द के स्थान पर हैं - जिनके स्वरूप का संसारी भव्यजीव...** संसारी भव्य जीव। संसारी भव्य जीव। समझ में आया? प्रतिच्छन्द के स्थान पर। इसका हो गया भव्य। भव्य ध्यान करते हैं न, दूसरा कौन करे? ऐसा कहते हैं। अभव्य को होता नहीं। सिद्ध... तू सिद्ध। उसकी ध्वनि यहाँ भव्य में झिलती है, ऐसा कहते हैं। अभव्य को होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **उनके समान अपने स्वरूप को ध्याकर,...** ध्यान करके। उन समान। दो आये वापस। उनके समान मैं हूँ, उनके समान मैं हूँ। यह वह किस दृष्टि का जोर कहे? परन्तु यहाँ राग है न? अल्पज्ञता है न? नहीं। वह नहीं। सिद्ध समान मैं हूँ। समझ में आया?

ऐसे साधकजीव श्रोता को स्वयं साधक कहते हैं कि हे श्रोताओं! इस प्रमाण तुम निर्णय करो।

सिद्ध समान **अपने स्वरूप को ध्याकर, उन्हीं के समान हो जाते हैं...** कोलकरार हो जाती है, ऐसा। नहीं हो, वह हमारे चोपड़ा में नहीं। समझ में आया? **उन्हीं के समान हो जाते हैं...** कहा न? प्रतिस्थान का अर्थ क्या हुआ? यह भगवान है, यह भगवान है। उनके जैसा हो जाते हैं। समझ में आया? सिद्ध भगवान पूर्ण केवलज्ञान अनन्त चतुष्टय प्राप्त और उसमें अल्पज्ञता नहीं, रागादि नहीं। वैसा ही मैं हूँ। ऐसा मैं हूँ, ऐसा धर्मात्मा अपने आत्मा को सिद्ध समान ध्यान करके, एकाग्र होकर और उन सिद्ध समान ध्यान करके सिद्ध हो जाता है। स्वयं भी सिद्ध हो जाता है। समझ में आया? आहाहा! मांगलिक वह मांगलिक है न गाथा! इसमें कुन्दकुन्दाचार्य...

और चारों गतियों से विलक्षण... गति शब्द है न? **पञ्चम गति-मोक्ष को प्राप्त करते हैं।** चार गति से विलक्षण। चार गति का लक्षण और सिद्ध का लक्षण ही विलक्षण है। कोई उसके साथ मिलान खाये, ऐसा नहीं। आहाहा! सर्वार्थसिद्धि की गति तो उससे सिद्धगति विलक्षण है। समझ में आया? जहाँ सर्वार्थसिद्धि के देव उनकी बारह योजन ही मात्र सिद्ध हैं। एकावतारी और कितने ही चौदह पूर्व के पाठक हैं। वहाँ भी। बारह योजन दूर है परन्तु उन्हें मनुष्यपना आकर प्राप्त हो, ऐसा है, वहाँ ऐसे जाकर प्राप्त हो, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? वहाँ जाकर मनुष्यपना पाकर यह सिद्ध समान ध्यान करूँगा, तब हम सिद्ध होंगे। वहाँ सिद्ध के पड़ोसी हैं, नजदीक हैं, लो, बहुत नजदीक कहलाते हैं वे तो। उनके पास निगोद रहता है, वह और अलग। जहाँ सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ निगोद विराजता है। निगोद है या नहीं? उनके पेट में निगोद है। पण्डितजी! पूरे लोक में निगोद है न। उन्हें और उन्हें क्या सम्बन्ध? यह समकिती ज्ञानी है। कितने ही देव तो चौदह पूर्व के पढ़े हुए हैं। यहाँ से मुनि होकर चौदह पूर्व लेकर गये हैं। तो भी अन्तराल यहाँ बारह योजन क्षेत्र से है, भाव से अन्तराल बहुत है। यह मनुष्यपने में प्राप्त होकर सिद्ध जैसे वहाँ ध्यान करेंगे और हम सिद्ध होंगे। समझ में आया? वहाँ तो समकिती पहले से कहता है कि नहीं, नहीं, तुम सिद्ध समान नहीं,

सिद्ध समान नहीं। ऐसे साधारण प्राणी को बेचारों को सिद्ध समान स्थापित करते हो सीधे पहले धड़ाके ? कितने ही ऐसा कहते हैं, लो। सीधे ऐसा ऊँचा उपदेश ? यह क्या कहते हैं ? सुननेवाले को कहते हैं कि हम तुम्हारे आत्मा में सिद्ध को स्थापित करते हैं। इनकार करना नहीं। विकल्प करना नहीं, नकार करना नहीं कि ऐसा कैसे है, ऐसा प्रश्न उठाना नहीं। चिमनभाई! यह तो बड़े वीरपने की सभा में जाने की बात है। वीर बैठे हों, उनकी सभा में जाये तो शूरवीरता हो, (वह जाये या) तेजहीन पामर होकर ऐं...ऐं... करते (जाये) ? कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा!

कहते हैं, **पञ्चम गति-मोक्ष को प्राप्त करते हैं।** एक ही बात है। '**वंदित्तु**' जिसने आदर किया सिद्ध का, वह सिद्ध जैसा हो जाता है, ऐसा कहते हैं। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' सिद्धों को वाँधा अर्थात् अन्दर स्थापित किया, ऐसा इसका अर्थ है यहाँ। आदर किया पर्याय में अन्दर में, हों! वह सिद्ध ही हो जाता है। वह सिद्ध हुए बिना रहता नहीं। आहाहा! यह वह कहीं बात करते हैं! शुरु हुए, शुरु हुए की ही बात करते हैं। पामर के जैसी बात, हमारे से नहीं होगा भाईसाहब। पाँचवें काल के प्राणी हैं। यह पाँचवें काल के प्राणी को कहते हैं। किसे कहते हैं यह ? चौथे काल को कहते हैं ? किसे कहते हैं ? पण्डितजी! आहाहा! भाई! पहली बात में ? पहली बात में सिद्ध ? सीधे सिद्ध हमारे ज्ञान में स्थापित करो ? भाईसाहब थोड़ा पात्र तो होने दो। थोड़ा-थोड़ा ऐसा। अरे! भगवान! बापू! तू तो पात्र है, प्रभु! तुझे पात्रता की कीमत नहीं। आत्मा परमात्मस्वरूप है। उसकी पर्याय में सिद्ध को स्थापित करने की पात्रता प्रगट कर और वह प्रगट करने के लिये तू लायक है। ना मत कर, ना मत कर। ऐसी बड़ी बात हमको कैसे करे ? यह तर्क न कर। अभी देखो न चिल्लाहट मचाते हैं। अरे! अध्यात्म का ऐसा उपेदश ? अब सुन न! पामर होकर तुझे सुनना है ? प्रभुता कब प्राप्त करेगा ? समझ में आया ?

वह पंचमगति को प्राप्त करेगा। यह '**वंदित्तु**' में से गति प्राप्त हो गयी, जाओ! वह सिद्ध तो गति को प्राप्त है, परन्तु जिसने वन्दन किया, जिसने आत्मा में उनका स्थापन किया, वह सिद्ध होगा, निश्चित होगा। आहाहा! इतना तो '**वंदित्तु**' में से निकाला है। समझ में आया ? स्वयंभूस्तोत्र में कहा, प्रभु! आपको... सत् नहीं नमे। पण्डितजी!

आता है न ? ... सत् नहीं नमे, नहीं नमे। क्योंकि राग की एकता है, उसे सिद्धपना किसी प्रकार से पर्याय में नहीं बैठता। यहाँ कहते हैं कि हम आदर करते हैं सिद्ध का और वन्दन करते हैं पूर्णानन्द प्राप्त को। समझ में आया ? हमारा आदर राग में, व्यवहार विकल्प में, अल्पज्ञ में हमारा आदर नहीं। ओहोहो ! समयसार शुरु करते हुए सुननेवाले और स्वयं कहनेवाले, दोनों हम इस प्रमाण हैं। हमारे संगाथी भी सिद्धपद को ही प्राप्त करेंगे, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? इतना महान मांगलिक। **'वंदित्तु सव्व सिद्धे'।** स्थापित किया है भगवान को, वह भगवान हुए बिना रहेगा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

यह वह नहीं करते ? वह क्या कहलाता है ? कहीं जाते हैं, नहीं ? काल अकाल हो न ? भाई ! प्रस्थाना रखते हैं न ? प्रस्थाना। बाहर जाना हो, मंगलवार या ऐसा वार हो... अपने को बहुत खबर नहीं पड़ती, ऐसा वार न हो तो कहे, नहीं निकला जाता। दो-चार कवार हो न ? दो-चार दूसरे हों (तो) अन्यत्र प्रस्थाना रखकर आवे। रखकर आवे, फिर जब आना हो तब दूसरे दिन ले जाये। इसी प्रकार अभी केवलज्ञान का थोड़ा कवार है। परन्तु स्थापन किया है सिद्ध भगवान को इस काल में हमने। कवार है, इसलिए जब गति को प्राप्त करने का होगा मनुष्यभव होगा तब, हम केवलज्ञान लेकर पूर्ण हो जायेंगे। परन्तु हम तो अभी से सिद्ध को स्थापित करते हैं। हमने प्रस्थाना रखा है, ऐसा कहते हैं। प्रस्थाना कहते हैं ? पण्डितजी ! तुम्हारे हिन्दी में कुछ चलता है ? प्रस्थाना रखते हैं। प्रस्थाना रखे, ऐसा हमारे में कहते हैं। बाहर जाना हो न ? वह रखते हैं। ऐसे जाना हो परन्तु कुछ वार ठीक न हो तो पहले रख आवे। फिर जाये। जा आया, इतना शुरु कर दिया। है या नहीं ? ... भाई ! ऐसा प्रस्थाना है या नहीं तुम्हारे ? इसी प्रकार यह प्रस्थाना रखते हैं। हमने प्रस्थाना रखा है। सिद्धपने को स्थापित किया है। हमारी गति भले इस काल में सिद्ध नहीं, परन्तु हमने सिद्ध होने का यह प्रस्थाना रखा है, ऐसा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

अब पंचम गति कैसी है ? इसके विशेषण (कहते हैं)। जिसे वन्दन किया है, जिसे यहाँ स्थापित किया है, वे कैसे है, उसका ज्ञान करके स्थापित किया है, ऐसा

कहते हैं। उनकी पहिचान करके स्थापित किया है, हों! '**ध्रुवम**' का अर्थ है। **स्वभावभावरूप है...** ध्रुव का अर्थ। '**स्वभावभावभूततया**' यह पहला शब्द है। '**स्वभावभावभूततया**' यह शब्द है न इसमें? '**स्वभावभावभूततया**'। अर्थ में क्या है? अर्थ में। स्वभाव से उत्पन्न हुई है, ऐसा लिखा है। परन्तु यह '**स्वभावभावभूततया**'। क्या कहते हैं? '**स्वभावभावभूततया**'। वह स्वभावभावरूप ही है। सिद्धगति स्वभावभावरूप है। स्वभावभाव पर्याय की बात है, हों! सिद्धगति स्वभावभावरूप है। अस्ति से स्थापन किया। ध्रुव... ध्रुव। कैसा? स्वभावभावरूप है। स्वभावभावरूप हो तो ध्रुव ही रहे। समझ में आया?

देखो! सिद्धगति-मोक्षगति स्वभावभावभूत है। '**स्वभावभावभूततया।**' समझ में आया? पहले में अपने जरा अर्थ में अन्तर हो गया है। हिन्दी में ऐसा का ऐसा लिखा है उन्होंने भी। वापस कुछ बदले नहीं। यह छपाया न दिल्ली से। जरा भी वाँचते नहीं। नया छपावे परन्तु कुछ निर्णय तो करना चाहिए कि यह क्या है, कैसे है। पंचमगति स्वभाव से उत्पन्न हुई है, इसलिए ध्रुवरूप का अवलम्बन करती है। अपने जो पहले लिखा है, पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा था, ऐसा लिखा है। स्वभाव से उत्पन्न हुई है। परन्तु यहाँ ऐसा नहीं। यहाँ तो स्वभावभूत है। पहले के अर्थ जो भरे, वे ऐसे के ऐसे हाँक रखते हैं। परन्तु कुछ विचार (करते नहीं)।

'**ध्रुवम**' स्वभावभावरूप है, वर्तमान है। उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं। स्वभावभावभूत सिद्ध की पर्याय है। जैसे द्रव्य स्वभाव है, जैसे गुण स्वभाव है, उसी प्रकार पर्याय भी स्वभावभावरूप है। समझ में आया? अस्ति से अस्ति सिद्ध किया है। द्रव्य-गुण तो अस्ति स्वभावरूप है, परन्तु पर्याय भी स्वभावरूप है, स्वभावभावरूप है। पर्याय स्वभावभावरूप है। पर्याय को साधारण कर डालते हैं न कि पर्याय अर्थात् क्या? यह पर्याय स्वभावभावरूप है। सुन न! तुझे क्या खबर पड़े? आहाहा! ऐसी एक समय की पर्याय स्वभावरूप है। समझ में आया? पर्याय अर्थात् क्या? पर्याय अर्थात् कुछ नहीं। परन्तु वह पर्याय वस्तु का स्वरूप है। और सिद्ध को जो पर्याय प्रगट हुई, वह स्वभावभावरूप, वह वर्तमान है। स्वभावभावरूप है। तीनों ही स्वभावभावरूप हो गये।

द्रव्य स्वभावभावरूप था, गुण स्वभावभावरूप थे, पर्याय स्वभावभावरूप रही, हो गयी। तीनों एकाकार हो गये। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! ओहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने कितने भाव भरे हैं अन्दर! और अमृतचन्द्राचार्य उसका स्पष्टीकरण करते हैं। वे उनके गणधर थे। तीर्थंकर जैसे — पंचम काल में कुन्दकुन्दाचार्य ने तो पंचम काल की अपेक्षा से तीर्थंकर जैसा काम किया है और अमृचन्द्राचार्य ने उसका पेट (रहस्य) खोला है। इतना सब यदि नहीं होता तो एकदम निकाल नहीं सकते। इतनी टीका में अन्तर के उत्साह से, होंश से जितना उनका वीर्य (था) उतना किया। समझ में आया?

(लौकिक में) कहते हैं न? विवाह होता है न? भाई! सभी रिश्तेदारों को लिखे। तुम्हारे आने से मण्डप की शोभा (बढ़ेगी)। लिखे, तुम्हारे भी लिखते तो होंगे। कोई पुत्री हो, दामाद हो। दूर हो न? दूर परदेश में। भाई का विवाह है, तुम्हारे आने से मण्डप की शोभा (बढ़ेगी)। यहाँ कहते हैं, प्रभु! आप यहाँ पधारो तब हमारे साधक की शोभा है। पधारो, यहाँ पधारो। स्वयं पधराता है, हों! कोई (दूसरा) पधराता (नहीं)। हमारे मोक्षमार्ग की शोभा, प्रभु! आप यहाँ हमारे में विराजो, उसमें हमारी शोभा है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ प्रवचनसार में स्वयंवर दीक्षा ली है। हमारा स्वयंवर। हम स्वयं वरण करते हैं। हमारे मोक्ष को और साधकदशा को, दीक्षा को हम वरते हैं। कोई दूसरा नहीं। स्वयं-वर हैं हम, ऐसा कहते हैं। मोक्षलक्ष्मी का हम वरण करते हैं। स्वयंवर स्वयं वरे या दूसरा पास करे तो वरे तो स्वयंवर कहलाये? यह प्रवचनसार में आचार्य ने ऐसा लिया है। हम स्वयं मोक्ष वरते हैं। हमारे शुद्धस्वरूप को साधन करके हमारी सिद्धपद दशा ही पर्याय में स्थापित की है। हम स्वयं अपने से स्थापन करते हैं और स्वयं फिर सिद्ध को वरण करते हैं। समझ में आया? किसी के आधार से-आश्रय से निमित्त से, राग से, उसके आधार से हमारी मोक्षगति नहीं है। हमारी दीक्षा भी ऐसी नहीं। आहाहा! यह तो दिगम्बर सन्त बात करते हैं यह। समझ में आया?

मुमुक्षु : इतनी अधिक बात हमको तो आपके द्वारा सुनने को मिली।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह है, उसमें से कहते हैं न! इसमें है या नहीं? देखो न! परन्तु देखो न! आहाहा!

पंचम गति, जिसे हमने यहाँ हमारी पर्याय में, स्थापित की है, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने। हमको मनुष्यगति है न? हमको मनुष्यगति है न? नहीं। गति-फति रहने दे। ज्ञानचन्दजी! क्या? मनुष्यगति को छोड़ दे। गति सिद्धगति है। सिद्ध को स्थापित कर। हम सिद्ध को स्थापित करते हैं और तू ना किसलिए करता है? तेरे आत्मा की ही ऐसी योग्यता है कि सिद्ध जैसा आत्मा है, बापू! इनकार नहीं करना, हों! हाँ पाड़कर स्थिर होना। (पाँचवीं गाथा में) प्रमाण में यह कहते हैं न वहाँ? कहूँगा। '**दाएज्ज पमाणं**' नहीं करना कि ऐसी कुछ बात नहीं। '**छलं ण घेत्तव्वं**' कोई शब्दों में हमारी भूल पड़े, बोलने में तो हमारा लक्ष्य (वहाँ) नहीं, हमारा तो अनुभव प्रमाण है। '**छलं ण घेत्तव्वं**' दुर्जनवत् है न उसमें? भाई! जयसेनाचार्य में। उसमें ऐसा लिखा है। बहुत लिखा है। आचार्य ने भी कहा है न! वाँचा है न। '**छलं ण घित्तव्वं तहिं छलं न ग्राह्यं दुर्जनवदिति**' जयसेनाचार्य की संस्कृत टीका है। हमारा आशय वस्तु का अनुभव और आत्मा की पूर्ण शक्ति की प्रगटता कैसे हो, यह हम स्थापित (करते हैं)। अनुभव की बात, साधक की बात करते हैं, उसमें तेरा लक्ष्य होना चाहिए। यह व्याकरण में ऐसे भूल गये और फलाना ऐसा भूल गये, (ऐसा नहीं होना चाहिए)। कदाचित् तेरा क्षयोपशम हो उसका और तेरे ख्याल में बात आवे तो वहाँ खड़ा रहना नहीं। दुर्जनवत् निकालना नहीं कि ले, यहाँ भूले। अब भूले नहीं, सुन न! समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ आचार्य कहते हैं, ओहो! एक तो सिद्ध की पर्याय, उसे स्वभावभूतपना! अन्यमति तो चिल्लाहट मचा जाये। पर्याय और स्वभावभावपना! पर्याय को ही अभी मानते नहीं। यहाँ तो कहते हैं, पर्याय '**स्वभावभावभूततया**' मांगलिक यहाँ से किया पहला। '**अथ प्रथमत एव स्वभावभावभूततया**'। संस्कृत टीका का पहला शब्द ही यहाँ से शुरु होता है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय है। सिद्ध एक पर्याय है, मोक्ष गति है, पर्याय है। तो फिर पर्याय को स्वभावपना? पर्याय तो विषमपना हो या अस्थिरपना हो या दुःखरूप हो। पर्याय क्या? एक व्यक्ति नहीं कहता था? वह बेचारा कहता था, अभी सिद्ध को पर्याय चिपटी रही? क्या कहते हो तुम? कहा। इतने वर्ष हुए, क्या करते हो यह? वह एक पण्डित आया था, नहीं? पर्याय से... इतना बड़ा पण्डित। क्या नाम? सुवैया शास्त्री। व्यक्ति नरम व्यक्ति, हों! परन्तु बीसपंथी

का आग्रह बहुत था। सुनकर तो... यह योग्यता और पर्याय की बात तो हमने... परन्तु तुम पण्डित हो न? सुवैया शास्त्री कहीं अपने को मिले थे, नहीं? वहाँ आये थे। पर्याय एक समय की स्वतन्त्र शुद्ध और वह अपनी योग्यता से हुई। वह पर्याय और योग्यता.. ? पर्याय का तुम नया कहते हो। कार्य तो पर्याय में है, द्रव्य-ध्रुव में कार्य कब था? मोक्षमार्ग पर्याय में, संसारमार्ग पर्याय में, सिद्धपना पर्याय में। सब है पर्याय में। अब उसकी पर्याय की स्वतन्त्रता की ही खबर नहीं, वहाँ क्या हो?

यहाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने ध्रुव शब्द में से यह निकाला है। सिद्धगति ध्रुव? ध्रुव तो द्रव्य-गुण होते हैं। समझ में आया? इसलिए पहला शब्द भगवान ने (यह कहा), '**वंदित्तु सव्व सिद्धे धुवम**'। सिद्ध पर्याय है, परन्तु ध्रुव है। कुन्दकुन्दाचार्य ने ध्रुव कही। परन्तु ध्रुव तो प्रभु! द्रव्य-गुण हो। सुन न! यह पर्याय स्वभावभावभूत है, इसलिए ध्रुव है। समझ में आया? वीतरागी परमानन्द की परिणति पारिणामिकभाव की पर्याय पूरी हो गयी। पारिणामिक जैसा वह द्रव्य और गुणरूप से था, वैसी उसकी पर्याय ज्ञायक की—पारिणामिक की पूरी हो गयी। वह उसका स्वभावभूत है। आहाहा! चिल्लाहट मचाये। वे एक आत्मा को माननेवाले और पर्याय को नहीं माननेवाले,... उसमें और अनन्त सिद्धों की एक-एक की पर्याय स्वभावभूत। सर्व सिद्धों को डाला न, वापस उन सिद्ध की एक-एक पर्याय को स्वभावभूत (कहा)। बापू! यह वस्तु है। समझ में आया? आहाहा!

पंचमगति **स्वभावभावरूप है... 'स्वभावभावभूततया'** उसका रूप है, रूप है। भगवान आत्मा जैसा सिद्धस्वरूप से शक्ति में था, वैसी ही पर्याय व्यक्तरूप से सिद्ध स्वभावभूत हो गयी। उसे मोक्ष और उसे सिद्ध और उसे ध्रुव कहा जाता है। समझ में आया? इस पर्याय को ध्रुव कहा। आहाहा! यह तो एक न्याय से ऐसी की ऐसी रहनेवाली है न। यहाँ तो वर्तमान स्वभावभूत है। एक समय की पर्याय स्वभावभूत है, ऐसा सिद्ध करना है। और रहेगी, भले रहे वह। समझ में आया? आहाहा! वस्तु की स्थिति ऐसी है, भाई!

स्वयं परमात्मा पूर्णानन्दस्वरूप, उसका ज्ञान करने से, सिद्ध का ध्यान करने से

सिद्ध जैसी पर्याय हो। सिद्ध की स्वभावभूत पर्याय है। तेरी पर्याय भी ध्यान करने से स्वभावभूत हो जायेगी। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? ऐई! छोटाभाई! कभी कहीं सुनने को मिला न हो। एकेन्द्रिय की दया पालो, सामायिक करो, प्रोषध करो, प्रतिक्रमण करो। ऐ.. भगवानजीभाई! अरे! भगवान! बापू! मूल वर है कौन, उसे तो देख! वररहित बारात? वररहित बारात कहते हैं न? दूल्हारहित की। दूल्हारहित की बारात जोड़ दी। (गुजराती में) जान कहते हैं? बारात। बारात... बारात। यहाँ तो वर पहला लिया—सिद्ध भगवान। ऐसा तू स्वयं है, ऐसा कहते हैं।

ध्रुवत्व का अवलम्बन करती है... स्वभावभावरूप है, इसलिए... ऐसा कहा न? '**स्वभावभावभूततया ध्रुवत्वमलम्बमाना**' आहाहा! भगवान सिद्ध प्रभु जिनका द्रव्य और गुण स्वभाव स्वभावभूतरूप से ध्रुव है, ऐसी सिद्ध भगवान की पर्याय स्वभावभूतरूप के कारण ध्रुव को अवलम्बती है। समझ में आया? कारण देकर सिद्ध किया है। '**स्वभावभावभूततया ध्रुवत्वमलम्बमाना**' ध्रुव का अवलम्बन कैसे है? कि स्वभावभूत है इसलिए। आहाहा! समझ में आया? इसे भरोसा... बापू! यह तो इसके चोसले बात बैठनी चाहिए। समझ में आया? एक बार दृष्टान्त दिया था न? ऐसा बड़ा तपेला होता है न? (उसमें) पानी भरा हो। फिर लकड़े का डट्टा करके उसमें अन्दर डाले (तो) पानी सब निकल जाये। तपेला समझते हो? बर्तन। इतना तपेला हो न? मण-दो मण पानी भरा हो। उतना लकड़े का डाटो (डाले)। डाटो समझे न? लकड़े का। जितना बर्तन है, उतना अन्दर लकड़े का डाटो डाले (तो) पानी सब निकल जाये। इसी प्रकार तेरी पर्याय में सिद्ध को अन्दर डाल (तो) यह सब विकार और अल्पज्ञता टल जायेगी। ऐसा कहते हैं इसमें पहला। समझ में आया?

यह तो सिद्धान्त है। महामन्त्र हैं। यह कहीं कोई वार्ता-कथा नहीं। यह तो एक-एक शब्दों में महा आगम भरे हैं, बड़े आगम! एक-एक सिद्धपर्याय स्थापित की स्वभावभूत। द्रव्य-गुण स्वभाव। पहला स्वभाव नहीं था, विभाव था, वह टलकर यह दशा हुई है। यह दशा ऐसी की ऐसी रहती है। ऐसे अनन्त सिद्ध हैं तो उससे अनन्तगुणे दूसरे आत्मायें हैं। अनन्त काल में जब इतने अनन्त हुए, वे थोड़े काल में सिद्ध होते हैं।

असंख्य समय में सिद्ध होते हैं। सिद्ध होने में अनन्त काल नहीं चाहिए। इतने अनन्त की संख्या, (उसमें) तू भी सम्मिलित हो न, भाई! चल न! तुझे सामूहिक निमन्त्रण देते हैं। सागमटे समझे? सबको। यह अन्त में आता है न? '**मज्जन्तु**', ऐसा शब्द आता है। नहीं? अन्तिम श्लोक। सब आओ। अन्त में ३८ (गाथा का ३२वाँ श्लोक)।

मज्जन्तु निर्भरमयी सममेव लोका
आलोकमुच्छलति शान्तरसे समस्ताः।
आप्लाव्य विभ्रमतिरस्करिणीं भरेण
प्रोन्मग्न एष भगवानवबोधसिन्धुः॥३२॥

देखो! यह कहते हैं, हों! **यह ज्ञानसमुद्र भगवान आत्मा विभ्रमरूपी आड़ी चादर को समूलतया डुबोकर (दूर करके) स्वयं सर्वांग प्रगट हुआ है; इसलिए अब यह समस्त लोक उसके शान्त रस में एकसाथ ही...** देखो! सामूहिक निमन्त्रण। सभी पूरी दुनिया यहाँ शान्तरस में आ जाओ। '**मज्जन्तु निर्भरमयी सममेव लोका**' देखो न! अमृतचन्द्राचार्य ३८ गाथा पूरी करके (कहते हैं), समस्त आत्मायें प्रभु! सब आओ न। शान्तरस में सब डूब जाओ न! वापस एक साथ, हों! **समस्त लोक उसके शान्त रस में एकसाथ ही अत्यन्त मग्न हो जाओ।** आहाहा! **कैसा है शान्त रस? समस्त लोकपर्यन्त उछल रहा है।** अर्थात् लोकालोक का ज्ञान जिसमें हो जाता है। उसमें आओ, प्रभु! उसमें आओ। सम्पूर्ण दुनिया आ जाओ। यहाँ हमारे कहाँ निमन्त्रण में... भगवान की पुत्री का विवाह है, कहते हैं। सभी आ जाओ। भाईसाहब! परन्तु बीमार हो और न आवे तो? तो उनके घर में रहे। समझ में आया? परन्तु हम तो समस्त लोक को कहते हैं, आओ.. आओ यहाँ। ऐ... न्यालभाई!

मुमुक्षु : बड़े के घर में विवाह होने का हो तो राह देखते हों।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान की पुत्री का विवाह है यहाँ तो। आहाहा! परिणति।

कहते हैं, वह सिद्ध की पर्याय स्वभावभावरूप, इसलिए ध्रुव को अवलम्बती है। कारण दिया। '**स्वभावभावभूततया ध्रुवत्वमलम्बमाना**' एक ध्रुव का पहला इतना अर्थ किया। समझ में आया? आहाहा! सिद्ध का महाविनय करके... आहाहा! जो ऊपर

विराजते हैं, उन्हें अपनी पर्याय में स्थापित करके, नीचे लाकर। आहाहा! रामचन्द्रजी का नहीं कहा था? चन्द्रमा को जेब में डालो। उसी प्रकार यह कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, हमारी पर्याय की जेब में अनन्त सिद्ध को यहाँ डाला है, हों! आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : भगवान की बातें उनके जैसी ही हो न!

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान बड़ा। इसके जैसा बड़ा दुनिया में कौन है? इसके जैसा बड़ा कौन है? जो दूसरे को महत्ता दे, उसकी महत्ता की बात क्या करना? आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा, जिसे सिद्ध भगवान सिद्धपने के—ध्रुवपने को अवलम्बते हैं, स्वभावभूतपने के कारण। ऐसा सिद्धपना जिन्हें अन्दर बैठा। उन्हें स्वभाव के ऊपर लक्ष्य जाकर अस्थिरता और अल्पज्ञता टलकर सर्वज्ञ और स्थिर वीतराग हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। कोलकरार स्वयं करते हैं। हम सिद्ध होनेवाले हैं। पाँचवाँ काल जरा काल है, इसलिए अभी स्वर्ग में जायेंगे। समझ में आया? वहाँ से मनुष्य होकर सिद्ध होनेवाले हैं, ऐसी पुकार करते हैं। समझ में आया?

चारों गतियाँ परनिमित्त से होती हैं, इसलिए ध्रुव नहीं... अस्ति-नास्ति कहा। बात अस्ति से उठायी है, हों! ध्रुव अर्थात् स्वभावपना, बस इतना। पश्चात् स्पष्टीकरण करने के लिये (कहते हैं), **चारों गतियाँ परनिमित्त से होती हैं, इसलिए ध्रुव नहीं...** परनिमित्त से होती है, वे कहीं स्थिर रहे? यह तो स्वभावपनारूप से होकर स्वभावभूत दशा हो गयी, इसलिए ध्रुव हो गयी। चार गति में तो चाहे जो स्थिति हो, स्वर्ग आदि हो। वह कहीं अमर नहीं। अमर तो बहुत काल रहते हैं, इसलिए कहते हैं। बाकी तो पर्याय (देव की) जहाँ पूरी हो, तो हो गया। ओहो! अठारह सागर बात नहीं की थी? आठवें देवलोक की अठारह सागरोपम की स्थिति और मिथ्यादृष्टि जीव कोई पुण्य करके आया। स्थिति पूरी हो गयी। हाय..! कहाँ जाऊँगा? अठारह सागर में कहीं मरना भासित नहीं होता था। असंख्यात अरब वर्ष में ऐसे... असंख्यात अरब वर्ष तो पल्योपम में जाते हैं। ऐसे-ऐसे दस क्रोड़ाक्रोड़ी का सागरोपम और ऐसे अठारह सागर। कहीं ऐसा भासित नहीं होता था। ऐसा जहाँ भासित हुआ... हाय... हाय..! अब? अब क्या? जाओ वहाँ। यह कहाँ स्वभावभूत गति थी। वह वापस कितने ही तिर्यंच में जाये। कोई

मनुष्य हो वह अलग। आहाहा! आठवें देवलोक का देव आत्मा के भान बिना ध्रुव स्वरूप चिदानन्द प्रभु, उसके भान बिना ढोर में जाये वापस। पशु पंचेन्द्रिय, हों! पंचेन्द्रिय हो, एकेन्द्रिय नहीं होगा। आहाहा! कहाँ क्षण पहले आठवाँ स्वर्ग और कहाँ क्षण के बाद तिर्यंच। यह सब अस्थिर दशा है। यह तो चार गति परनिमित्त से होती होने से स्थिर नहीं होती। यह अठारह (सागरोपम) भी पूरे हो गये, इकतीस (सागरोपम) भी पूरे हो गये। नौवें ग्रैवेयक। मिथ्यादृष्टि अनन्त बार ३१ सागरोपम में गया। आत्मा शुद्ध अन्तर सच्चिदानन्द प्रभु के अन्तर भान बिना इसने ऐसा क्रियाकाण्ड अनन्त बार किया। नौवे ग्रैवेयक में ३१ सागर में गया, उसका अन्त आ गया। गति है न, वह कहाँ वस्तु है। पर के निमित्तवाली गति पूरी हो गयी। वह मनुष्य में आवे। नौवें ग्रैवेयकवाला मनुष्य में आवे। हाय... हाय..! बस! हो गया? कहाँ गया सब? गया सब। था कब शाश्वत? समझ में आया?

चार गति पर के निमित्त से उत्पन्न होती होने से। बड़ा राजा-महाराजा यहाँ हुआ, लो न! करोड़ पूर्व की आयुष्यवाला, लो न! महाविदेहक्षेत्र में वे थे। अभी भगवान का करोड़ पूर्व का आयुष्य है। भगवान, 'सीमन्धर' भगवान। यहाँ करोड़ पूर्व का आयुष्य था। ऋषभदेव का चौरासी लाख पूर्व का। परन्तु उस समय के दूसरे मनुष्य का करोड़ पूर्व का। करोड़ पूर्व—एक पूर्व में सत्तर लाख छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ऐसे-ऐसे करोड़ पूर्व। अब वह कितना काल परन्तु? वह जहाँ पूरा हुआ... हाय... हाय..! यह सब मनुष्यगति, देवगति, नारकीगति और पशुगति परनिमित्त से (होती) होने से **'ध्रुव नहीं, विनाशीक है; ध्रुव विशेषण से पंचमगति में इस विनाशीकता का व्यवच्छेद हुआ।'** ऐसा करके ध्रुव शब्द में सब समाहित कर दिया है। ध्रुव कहकर सिद्ध भगवान की स्थिति बतलायी। दूसरे शब्द की बाद में आयेगी।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण २, बुधवार, दिनांक - ०३-०८-१९६६
गाथा - १, प्रवचन - ६

समयसार शुरु करते हुए भगवान कुन्दकुन्दाचार्य सिद्ध को नमस्कार करके समयप्राभृत शुरु करते हैं। सिद्ध को नमस्कार में देखो! ऐसे शब्द तो ऐसा आया है कि सर्व सिद्ध को नमस्कार करता हूँ। परन्तु भावनमस्कार सिद्ध को ऐसा कहलाता है कि स्वयं अपने में एकाकार होकर आराध्य और आराधक मैं ही, आराधक करनेवाला मैं, आराधन करनेवाला और आराध्य मैं, ऐसा चैतन्यस्वरूप, उसके अन्तर में राग के संगरहित स्वरूप की शुद्धता में एकाग्रता जो निर्विकल्प शान्ति अथवा श्रद्धा, ज्ञान और रमणता (हो), उसे यहाँ सिद्ध को भावनमस्कार किया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया या नहीं इसमें?

फिर से। यहाँ तो पहली गाथा में '**वंदित्तु**' से शुरु किया है। एक '**वंदित्तु**' में से इतना निकाला, वन्दन करता हूँ, इसका अर्थ सिद्ध भगवान ऐसे हैं (उन्हें नमस्कार करता हूँ)। ऐसा नहीं। परन्तु वन्दन करता हूँ, इसका अर्थ कि जो सिद्धस्वरूप परमात्मा है, ऐसा मेरा अन्तर स्वरूप है। ऐसा सिद्ध स्वभाव मेरा है, उसमें मैं एकाकार होकर और भाव आराधनारूपी नमस्कार होना, निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति (होना), उसे यहाँ सिद्ध को भावनमस्कार किया, ऐसा कहा जाता है। कहो, इसमें लम्बा कहाँ हुआ? यहाँ तो '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' (ऐसा है)। सर्व सिद्ध तो अनन्त हैं।

मुमुक्षु : सर्व सिद्ध को नमता हूँ, सीधा सट्ट।

पूज्य गुरुदेवश्री : यही कहते हैं न। सीधा सट्ट। यह सब विवाद उठे हैं न यह। कितने ही ऐसा बोलते हैं, वे श्वेताम्बर के साधु, कि कानजीस्वामी कहते हैं, वह निश्चय कहते हैं, वह बात तो सच्ची परन्तु यह व्यवहार करते-करते होगा (ऐसा नहीं कहते)। अरे! परन्तु सुन न! सच्ची निश्चय (की बात) तुझे बैठी है ही कहाँ? निश्चय हो उसे व्यवहार हो तब उसको व्यवहार कहा जाता है। अकेले निश्चय बिना के व्यवहार-

फ्यवहार, वह व्यवहार तो अन्धा है। अन्धे को जाननेवाला जगे बिना व्यवहार है, (ऐसा) जानेगा कौन? समझ में आया? बड़ा विवाद। बाहर ऐसा सत्य आया, इसलिए लोगों को जरा कहना पड़ा कि निश्चय की बात तो सच्ची। परन्तु निश्चय अर्थात् सत्य। व्यवहार अर्थात् आरोपित उपचारित कथन और उपचारित भाव। उपचारी हो तो यह निश्चय अनुपचारी तत्त्व प्रगटे, ऐसा है ही नहीं।

इस पहले श्लोक में ही ऐसा कह दिया कि सिद्ध को भाव-द्रव्य से मैं नमस्कार करता हूँ, इसका अर्थ, सिद्ध भगवान जैसे हैं, उन्हें मैंने मेरे लक्ष्य में सिद्ध स्वरूप मैं हूँ, ऐसा लिया है। और लेकर मैंने मेरी एकाग्रता में शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति द्वारा मैंने आत्मा का आराधन किया, यही भाव सिद्ध को भावनमस्कार किया, ऐसा कहा जाता है। ऐसे भावनमस्कार के काल में विकल्प जो हमको उठा है और वाणी निकलती है, वह असद्भूतव्यवहारनय से द्रव्यनमस्कार किया है। इसका अर्थ हुआ कि भाव हो, तब यह द्रव्य होता है। ऐसी साथ की साथ बात ली है। यह तो शास्त्र है। उसमें भी कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र। सर्वज्ञ से भेंट करके आये हुए, उनके लिखे हुए हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : भावस्तुति और द्रव्यश्रुत....

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यश्रुत कहाँ कहा? भावस्तुति और द्रव्यस्तुति कहा। यह क्या कहा?

मुमुक्षु : इसमें तो '**वंदामी**' इतना ही लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : '**वंदामी**' का अर्थ यही निकाला। अमृतचन्द्राचार्य, '**वंदामी**' का अर्थ यह है, ऐसा कहते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य '**वंदित्तु**' कहते हैं, उसका अर्थ यह है। ऐई! यह वस्तु ऐसी है। वन्दन अर्थात् महा अनन्त सिद्ध केवलज्ञान प्राप्त परमात्मा, उसका जहाँ स्वीकार अन्दर हो, तब उसकी दृष्टि अन्दर निर्विकल्पस्वभाव में जाये, तब वह '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' को भाव से नमस्कार किया, ऐसा कहा जाता है। कुन्दकुन्दाचार्य का हृदय यह है। अमृतचन्द्राचार्य ने उनका हृदय खोला है। समझ में आया इसमें? आहाहा! गजब बात, भाई! शब्द के पीछे कथन का आशय क्या है, वह न समझे तो उसमें एक भी अर्थ समझे नहीं। कथन तो बहुत प्रकार के होते हैं। यहाँ तो कहते हैं,

'**वंदित्तु**' में से यह निकाला। मैं '**भावद्रव्यस्तवाभ्यां स्वात्मनि परात्मनि**'। पश्चात् यह जरा प्रश्न उठा, परन्तु हमारे दो में से एक भी पण्डित बोले नहीं। स्पष्ट किया नहीं। अपने को कुछ संस्कृत आती नहीं। भाव की सन्धि करते हैं। संस्कृत का शब्द तो...

ऐसा कहा न अभी? कि '**भावद्रव्यस्तवाभ्यां स्वात्मनि**' यह तो बराबर है। अपने आत्मा में भाव से स्थापित करता हूँ—निर्विकल्प और द्रव्य अर्थात् विकल्प और वाणी से स्तुति करता हूँ। अब स्वआत्मा में तो द्रव्य-भाव करके स्थापित करता हूँ। परन्तु परात्मा में? उसे भाव-द्रव्यस्तुति लागू पड़ी न, कहते हैं? कि मैं भाव-द्रव्य स्तुति करके समयसार के अवयव को कहूँगा। समयसार अर्थात् प्रवचन के अवयव को। ऐसा है न अन्तिम? अन्तिम शब्द ऐसा है न? '**भाववाचा द्रव्यवाचा च परिभाषणमुपक्रम्यते**'। यह भाववचन और द्रव्यवचन उसे—कहनेवाले को लागू पड़ते हैं। भाई! क्या कहता हूँ, समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य को लागू पड़ते हैं। वह कहीं श्रोता को लागू नहीं पड़ता। है न अन्तिम शब्द? '**भाववाचा द्रव्यवाचा**' कहनेवाले को लागू पड़ते हैं। '**भावद्रव्यस्तवाभ्यां**' यह अपने को लागू पड़ा। कहनेवाला है, मैं कहता हूँ, भगवान सिद्ध की स्तुति करके, अर्थात् मैं स्वयं निर्विकल्प दृष्टि और शान्ति में हूँ, वह मेरा भावनमस्कार सिद्ध को है। ऐसा द्रव्यनमस्कार का विकल्प उठा, उसे व्यवहारनमस्कार—द्रव्यनमस्कार कहा जाता है, ऐसा मैं अब समयसार प्रवचन का एक अवयव, उसे मैं कहना चाहता हूँ। अर्थात् कहनेवाला ऐसा होता है, ऐसा भी वहाँ स्थापित किया। भान बिना का अन्दर हो और समयसार के प्रवचन के अवयव को कहे, वह हो नहीं सकता, ऐसा भी सिद्ध किया, भाई!

दूसरे प्रकार से—पंचास्तिकाय में कहा कि ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय को मैं कहूँगा। यहाँ कहते हैं ऐसा स्वरूप जो मुझे ज्ञात हुआ है, वह मैं प्रवचन के अवयव ऐसा समयसार कहूँगा। अर्थात् कहनेवाला ऐसा होता है। जिसे श्रद्धा-ज्ञान का अन्तर भान नहीं और वह इस समयसार के अंश को कहे, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध उसे हो नहीं सकता। समझ में आती है बात? यह तो सभा में पन्द्रहवीं बार चलता है। कुछ अधिक स्पष्ट तो होना चाहिए न थोड़ा। क्यों ज्ञानचन्दजी! ओहोहो!

प्रभु ने रेलमछेल की है। भाई! तू परमात्मा है न, प्रभु! तू सर्वसिद्ध में मिलनेवाला है न! थोड़े काल में बाह्य से मिलनेवाला है। अर्थात् इस क्षेत्र में (मिलनेवाला है)। यहाँ सिद्ध को नमस्कार करते हुए स्वयं कहते हैं कि भावनमस्कार सर्वसिद्ध को, परद्रव्यको। कितने ही कहते हैं कि यह सर्व सिद्ध को नमस्कार किया, यह कुन्दकुन्दाचार्य ने व्यवहार किया है। कहते हैं या नहीं? ... आया था प्रश्न। देखो! इन्होंने नमस्कार ऐसे किया है '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' का अर्थ उसमें—पत्रों में आता है। उन्होंने—कुन्दकुन्दाचार्य ने भी पहले व्यवहार सिद्ध किया है। सर्व सिद्ध को नमस्कार किया, वह व्यवहार सिद्ध किया है, ऐसा वे कहते हैं। भाई! ऐसा नहीं है। बापू! तुझे इसके अर्थ की खबर नहीं। ऐसा कि '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**' कहा, तो सिद्ध तो व्यवहार है, पर है। तो उन्होंने पहले व्यवहार सिद्ध किया है। ऐसा वे कहते हैं। ऐसा नहीं। समझ में आया? यह आता है, पत्रों में आता है। पत्रों में तो बहुत ऐसा तुम लिखे जाओ, बापू! ऐसा नहीं चलता। यह तो सर्वज्ञ का पंथ है। वीतरागमार्ग है, भाई! यह वीतराग की दृष्टि बिना यह वीतराग के भाव के अर्थ समझने में नहीं आते। ऐसा का ऐसा लिखे जाये और कहता जाये, ऐसा नहीं होता।

इसलिए वहाँ पंचास्तिकाय में भी कहा न कि हम अर्थसमय को शब्दसमय के सम्बन्ध से ज्ञान होने के लिये कहेंगे। तो वह स्वयं को अर्थसमय यथार्थ भान प्रगट हुआ है, वह शब्दसमय के सम्बन्ध से ज्ञान को कहूँगा। शब्द से ज्ञान को कहूँगा कि यह वस्तु आत्मा है। और इसमें बहुत आया है न? भाई! वीतराग नहीं लिया? क्या कहलाता है? शब्द भी राग बिना के शब्द होते हैं। ऐसा आता है पंचास्तिकाय में। राग-द्वेष विकृति बिना का पाठ है। वहाँ ऐसा पाठ है। पण्डितजी! पंचास्तिकाय (गाथा ३ में) है। पाठ ऐसा है। देखो! उसकी शैली कोई गजब की है! '**सम' अर्थात् मध्यस्थ अर्थात् राग-द्वेष से विकृत नहीं बना हुआ; 'वाद' अर्थात् वर्ण (अक्षर)...** देखो! शब्दों में वीतराग की बात आयेगी। यह विकृतपने में राग है, वह शब्दों में नहीं आवे। यह तो पंचास्तिकाय में है। पण्डितजी को दो, पण्डितजी को दो। हमारे पण्डितजी मुश्किल से यहाँ कभी (रहते हैं)। ९ पृष्ठ पर है। पृष्ठ ९। तीसरी गाथा है न? देखो! ९ पृष्ठ।

यहाँ (इस गाथा में) शब्दरूप से, ज्ञानरूप से और अर्थरूप से (-शब्दसमय,

ज्ञानसमय और अर्थसमय)—ऐसे तीन प्रकार का 'समय' शब्द का अर्थ कहा है तथा लोक-अलोकरूप विभाग कहा है। 'अमिओ लोओ अलोओ' 'सम' अर्थात् मध्यस्थ अर्थात् राग-द्वेष से विकृत नहीं बना हुआ; 'वाद' अर्थात् वर्ण (अक्षर)। पद (शब्द) और वाक्य के समूहवाला पाठ। देखो, भाषा! जो वीतरागभाव कहते हैं, अपना वीतरागभाव है। तो वाणी में भी वीतरागभाव का स्थापन आता है। ऐसे यह विकार से बना हुआ पाठ या राग की एकत्वबुद्धिवाला जो जीव है, उसके शब्दों में रागवाला ही पाठ आता है। समझ में आया? यह तो कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र अर्थात् साक्षात् केवली के वचनों की सन्धि करनेवाले हैं! देखो!

विकृत नहीं बना हुआ; 'पाठ'... एक तो अक्षर, फिर पद-शब्द और उनका समूह। वह **पाँच अस्तिकाय का 'समवाद' अर्थात् मध्यस्थ (-रागद्वेष से विकृत नहीं बना हुआ) पाठ (-मौखिक या शास्त्रारूढ़ निरूपण)...** मुख से कहो या शास्त्र में लिखा हुआ कहो, परन्तु उसमें वीतरागभाव का स्थापन होता है। वीतरागभाव वाणी में आता है। समझ में आया? वहाँ पूरा कथन वीतराग का वीतरागभाव की वाणी है। चाहे जो अनुयोग कहो, कोई भी अनुयोग (हो), परन्तु वीतरागभाव से गुँथा हुआ वह पाठ होता है। समझ में आया? यह शब्दसमय। **अर्थात् कि शब्दागम, वह शब्द समय है। (२) मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर, इस पंचास्तिकाय का ही सम्यक् अवाय अर्थात् सम्यक् ज्ञान, वह ज्ञानसमय है,...** देखो! मिथ्यात्व का नाश होकर जो ज्ञान प्रगट हुआ, उसे ज्ञानसमय कहते हैं और उसमें कहा हुआ वीतरागी शब्द-पाठ, उसे वीतरागी शब्दसमय कहते हैं। विशिष्टता तो देखो! ओहोहो! समझ में आया?

मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर, इस पंचास्तिकाय का ही सम्यक् अवाय... देखो! नीचे भाई ने (अर्थ) किया है। **सम्यक्ज्ञान, जत्था, समूह (इस पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र में यहाँ कालद्रव्य कि जो द्रव्य होने पर भी अस्तिकाय नहीं, इसलिए उसे विवक्षा में गौण करके...)** ऐसा कुछ नहीं। अपने यहाँ से मूल तो वीतरागपना लेना है। **मिथ्यादर्शन के उदय का नाश होने पर, इस पंचास्तिकाय का अवाय अर्थात् सम्यक्ज्ञान वह ज्ञानसमय है। (३) कथन के निमित्त से ज्ञात हुए उस पंचास्तिकाय का ही वस्तुरूप से समवाय अर्थात् जत्था, वह अर्थसमय है। अर्थात् कि सर्वपदार्थ**

समूह वह अर्थसमय है। उसमें, यहाँ ज्ञानसमय की प्रसिद्धि के लिये शब्दसमय के सम्बन्ध से अर्थसमय कहने का (श्रीमद्भगवतकुन्दकुन्दाचार्यदेव का) इरादा है। ओहोहो! एक श्लोक में तो कितना कहा!

शब्द भी राग से विकृत बने हुए नहीं। शब्द, वे तो जड़ हैं न। पीछे भाव है वीतरागपना कहना है। उन शब्दों में वीतरागपने का ही स्थापन आता है। उसे शब्दआगम कहते हैं, उसे शास्त्र कहते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। शास्त्र उसे कहते हैं कि वीतरागदृष्टिवाला वीतराग समभाव प्रगट हुआ है, वह जो उसकी वाणी निकलती है, उस वाणी को शब्द आगम वीतराग—राग से विकृत नहीं बने हुए पाठ को यह कहनेवाले ऐसे हैं, इसलिए शब्द को वीतरागपना लागू पड़ता है। उसे शब्दसमय कहा जाता है। आहाहा!

यहाँ भाव में वीतरागपना है, इसलिए शब्द में वीतरागपने का ही स्थापन आता है। राग करनेयोग्य है, राग से लाभ (होगा), यह शब्द शास्त्र के नहीं हैं। यह शास्त्र के शब्द ही नहीं हैं। ऐसा पुकारते हैं। आहाहा! शास्त्र के शब्द ऐसे होते हैं कि राग के रहित स्थापनवाला जो जीव है, वीतराग दृष्टि और ज्ञानादि स्थिरता प्रगट हुई है, उस वीतरागपने का स्थापन करते हैं। वीतरागपना वह करनेयोग्य है। राग करनेयोग्य है और राग से वीतरागपना प्राप्त होगा, यह शब्द शास्त्र में नहीं आते, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! देखो! कितनी टीका कैसी सरस! आहाहा!

भाई! उसे हम शब्दसमय कहते हैं कि जो भावआगम से जो अन्दर सम्यग्ज्ञान प्रगट हुआ, उसकी जो वाणी हुई, उसे शब्दआगम (कहते हैं)। क्योंकि उसमें राग से विकृत बना हुआ पाठ आयेगा ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह पंचास्तिकाय है। बापू! पंचास्तिकाय अर्थात् क्या? पंचास्तिकाय को सिद्ध कौन करेगा कि ऐसी वस्तु है। जिसे एक ज्ञान में एक समय में छह द्रव्य को जानने का स्वभाव है। ऐसी ज्ञान की पर्याय का अनन्त गुण अनन्त-अनन्त पर्याय, वह गुण है, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है। ऐसी जहाँ अन्तर में निर्विकल्प, रागरहित दृष्टि, ज्ञान और रमणता हुई, वह जो वाणी कहता है, उस वाणी में राग से विकृत बना हुआ पाठ हो सकता नहीं। समझ में आया? भगवान! यह तो परमात्मा की पैढ़ी है। यह कहीं रंक—भिखारी की पैढ़ी नहीं। अरबों का व्यापार करनेवाला हो तो २५ रुपये के वेतनवाला नौकर रखता होगा? ऐसा मुनीम

होगा उसका ? अरबों का व्यापार करता हो, उसका नौकर तेली रखता होगा ? २५रुपये का वेतनवाला ? उसके पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार का महीने का वेतन हो। इसी प्रकार भगवान की पेढ़ी के कहनेवाले सन्त कैसे हैं, देख तो सही। सर्वज्ञ को स्थापित करते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ का कहा हुआ वीतरागभाव, कहते हैं कि हम कहनेवाले ऐसे वीतरागभाववाले हैं। उनके मुख में से वाणी निकले और वह वाणी फिर शास्त्र में लिखी जाये, वह राग से विकृत नहीं बने हुए पाठ को शब्दआगम कहते हैं। पण्डितजी ! आहाहा !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह शब्द भी शब्द की पर्याय में स्व-पर कहने की सामर्थ्यवाले यह शब्द हैं। और उसमें स्व-पर में वीतरागपना स्थापन करने की उनमें सामर्थ्य है। आत्मा के कारण से नहीं। यहाँ तो शब्दआगम किसे कहना ? (राग) रहित वीतरागता से बना हुआ। उसमें राग हो नहीं सकता। विकल्प की वृत्ति है, वह वस्तु का स्वरूप नहीं। और उस वाणी में कोई (भी) चार अनुयोग वीतराग की वाणी में राग से—विकार से बना हुआ स्थापन शास्त्र में हो सकता ही नहीं। क्योंकि स्वयं वीतराग और सर्वज्ञ हुए तो उनकी वाणी में वीतराग और सर्वज्ञपना होने का ही आता है। राग और अल्पज्ञपना का रहना, रखना है, यह वाणी में आता ही नहीं। समझ में आया ?

यह बात एक बार की थी। तीर्थंकर को विकल्प ऐसा उठा कि मैं पूर्ण होऊँ। बन्धन पड़े तब पूर्ण होने की वाणी की ध्वनि अस्तिरूप से ऐसी ही आवे। तुम वापस गिर जाओगे और राग करनेयोग्य है, यह बात हो नहीं सकती। समझ में आया ? अपने साधकपने में सहज ऐसा विकल्प उठा था कि मैं पूर्ण होऊँ। उसका बन्ध पड़ गया, परमाणु का। उन परमाणुओं की ध्वनि ही ऐसी आयेगी। जगत को वीतरागपने की उत्पत्ति और वीतरागता की वृद्धि करे, ऐसे शब्द होंगे। बापू ! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई ! कहो, समझ में आया इसमें ?

यहाँ तो जरा अपने आत्मा में भावनमस्कार सिद्ध को किया। अरे, प्रभु ! परन्तु सिद्ध तो परद्रव्य हैं न ! हम कहते हैं कि स्वद्रव्य की आराधकदशा से ही सिद्ध को

भावनमस्कार कहने में आता है। परन्तु प्रभु! हम पूछते हैं, तुम कहते हो कि सिद्ध को नमस्कार करते हैं। परद्रव्य को। तुम एक ओर कहो कि परद्रव्य पराश्रित व्यवहार, स्वआश्रित निश्चय। पराश्रित व्यवहार तो भगवान को नमस्कार (करो)। वह तो पराश्रित व्यवहार विकल्प हो गया। सुन न भाई! उन सिद्ध को हमने अन्तर में समाहित किया है, अन्तर मेरा स्वरूप ही सिद्ध स्वरूप, ऐसा भान किया है, उसमें एकाकार है। उन सिद्ध को नमस्कार स्व-आश्रय किया, उसने पर को किया, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया?

अब यह द्रव्य-भाव में '**स्वात्मनि-परात्मनि**'। वास्तव में तो अपना ही है इसमें। परात्मा को अभी कहते हैं और मैं ऐसा अवयव कहूँगा। निर्विकल्प दृष्टिसहित,... यह कहा, सिद्ध को स्थापित करता हूँ, ऐसा कहा। तथापि कैसा शब्दार्थ निकले, यह तुम व्याकरणवाले जानो। इसीलिए तो पूछा। '**भावद्रव्यस्तवाभ्यां स्वात्मनि-परात्मनि**' दोनों लागू पड़ते हैं या अपने को ही अकेला (लागू पड़ता है)? द्रव्य-भाव स्तुति मैं करता हूँ। तुम्हारे आत्मा में सिद्धपने को स्थापित करता हूँ। यह तो बात है। समझ में आया या नहीं? बाद में विचारना। पण्डितजी को थोड़ा अवसर देते हैं। आहाहा!

यह वह क्या किया है, देखो न! '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**'। यह वन्दन-वन्दन मेरा सर्व सिद्धों को! ओहो! तेरी पर्याय अल्पज्ञ, मति-श्रुत की पर्याय अल्पज्ञ और अनन्त केवलज्ञान को प्राप्त हुए को तू मतिज्ञान का अल्प ज्ञानी, वह ऐसे अनन्त को नमस्कार (करे)? ऐसे अनन्त किस प्रकार तेरी पर्याय में समायेंगे? स्थापित किये हैं न ऐसे? स्थापित किये हैं। मेरी पर्याय में अनन्त सिद्ध को स्थापित करता हूँ। इसका अर्थ अनन्त-अनन्त केवलज्ञान मेरी पर्याय में (स्थापित) किये तो वह पर्याय द्रव्य में ढल गयी है। स्वभाव के ऊपर ढली हुई निर्विकल्प दृष्टि की स्थिरता हुई, उसे हम सिद्धों को भाव से नमस्कार करते हैं, ऐसा लागू पड़ता है। और विकल्प जो उठा है और वाणी (निकलती है), वह द्रव्यनमस्कार है। परन्तु ऐसा हो, उसे ऐसा होता है। भावनमस्कार द्रव्यनमस्कार से प्राप्त होता है, ऐसा नहीं और भावनमस्कार बिना का अकेला द्रव्यनमस्कार हो, ऐसा नहीं। ऐसे इतने सिद्धान्त इसमें निकलते हैं। समझ में आया?

ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य पंचम काल के तीर्थंकर! धर्मधुरन्धर धर्म के स्तम्भ, धर्म के स्तम्भ, आकाश को स्तम्भ नहीं होते। यह तो धर्म के स्तम्भ! आहाहा! भाई! वे

कहें कि देखो! सिद्धों को नमस्कार (किया है)। प्रभु! सुन, भाई! यह व्यवहार निकालना चाहते हैं। परजीव है न? पर। देखो! उन्होंने पहले सिद्ध को नमस्कार किया है। इसलिए अपने को नमस्कार नहीं किया। भाई! इसका अर्थ तू समझा नहीं। इतने सब अनन्त सिद्ध, छह महीने और आठ समय में ६०८ मुक्ति पाते हैं, ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन के सिद्ध, अनन्त पुद्गलपरावर्तन के। भूतकाल अनन्त पुद्गलपरावर्तन। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी जाती है। एक पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी जाती है। ऐसा एक पुद्गलपरावर्तन। ऐसे-ऐसे एक चौबीसी में असंख्य मोक्ष जाते हैं। चौबीसी का काल क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम है न! छह महीने और आठ समय में ६०८ जाते हैं। उसमें असंख्यात एक चौबीसी में मोक्ष जाते हैं। ऐसे-ऐसे पुद्गलपरावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त चौबीसी, ऐसा एक पुद्गलपरावर्तन। ऐसे अनन्त पुद्गलपरावर्तन के सिद्ध, उन सबको यहाँ समाहित किया है। आस्था की। इतने हुए, इतने हैं, संख्या इतनी है। इतनी सब संख्या को यहाँ सामहित कर देता हूँ। वह पर्याय में दृष्टि रहे तो समाये नहीं। समझ में आया?

मेरा भगवान आत्मा सर्वज्ञ के पेट में पूरा सर्वज्ञ—पेट पड़ा है मेरा। अनन्त सिद्ध उसमें पड़े हैं। मेरी एक-एक सिद्धपर्याय जो होनेवाली है, ऐसी अनन्त सिद्धपर्यायें, अनन्त सिद्धपर्यायें मेरे अन्दर में पड़ी हैं। उन्हें अन्दर झुककर नमस्कार किया, वह अनन्त सिद्ध को भावनमस्कार किया, ऐसा कहने में आता है। कहो, छोटाभाई! ओहोहो! **वे सिद्ध भगवन्त, सिद्धत्व के कारण साध्य जो आत्मा, उसके प्रतिच्छन्द...** पडघो। हिन्दी में क्या कहते हैं? प्रतिध्वनि। प्रतिघात कहते हैं न? पडघो। आदर्श हो परन्तु यह प्रतिघात। शब्द प्रतिघात (पावे)। पडछन्दों अपने नहीं कहते? पडछन्दो पड़ा। पहले यहाँ बहुत पड़ता था। यहाँ बोले तब। यह मकान नया था न (तब)। बड़े मकान में बहुत प्रतिध्वनि ऐसे सामने उठे। प्रतिध्वनि। उसी प्रकार सिद्ध भगवान हे परमात्मा! तुम पूर्णानन्द अनन्त हो। हे परमात्मा! तू पूर्णानन्द अनन्त है। समझ में आया?

इसी प्रकार आचार्य कहते हैं, उन सिद्ध समान **अपने स्वरूप को ध्याकर, उन्हीं के समान हो जाते हैं...** यह चार गति से (विलक्षण) पंचमगति मोक्ष को पाते हैं। अब **कैसी है यह पंचम गति?** एक बोल का अर्थ हो गया है। **स्वभावभावरूप है...** गति, हों!

पर्याय। उन अनन्त सिद्धों की वर्तमान पर्याय ध्रुव है। ध्रुव अर्थात् स्वभावभावरूप है। स्वभावभावरूप है। जैसा उनका स्वभाव था, उसरूप उनकी दशा में हो गया है। समझ में आया? पारिणामिकस्वभाव से भाव था, वह पर्याय में क्षायिकभाव आया, वह क्षायिकभाव भी स्वभावभावरूप है, ऐसा कहा यहाँ तो। समझ में आया? **'इसलिए ध्रुवत्व का अवलम्बन करती है।' स्वभावभावरूप है, इसलिए ध्रुवत्व का अवलम्बन करती है।**

चारों गतियाँ परनिमित्त से होती हैं, इसलिए ध्रुव नहीं... विभाव है न! कर्म का निमित्त और निमित्त के अवलम्बन से जो विकार हो, वह ध्रुवपने को अवलम्बे नहीं। वह तो नाशवान पदार्थ है, वह **विनाशीक है...** चार गति विनाशीक है। स्वर्ग की गति भी विनाशीक है। **'ध्रुव' विशेषण से पञ्चम गति में इस विनश्वरता का व्यवच्छेद हो गया।** भगवान सिद्धपर्याय, वह अविनाशी है। चार गति की पर्याय विनाशीक है। सर्वार्थसिद्धि का ३३ सागर का भव हो, लो। अन्त में विनाशीक। यह तो पर्याय प्रगटी, जैसा स्वभाव अन्दर में था, वैसी ही पर्यायरूप परिणमकर ऐसे एकाकार अभेद हो गयी। द्रव्य-गुण-पर्याय अकेले स्वभावरूप हो गये। चार गति का जो निमित्तपना आधीन था, उसका नाश किया। यह एक बोल कहा — ध्रुव।

अब, **'ध्रुवमचलम'।** जयसेनाचार्य की टीका में **'अमलं अचलं'** दो शब्द पड़े हैं। इसमें अचल शब्द अकेला है। अचल है। **और वह गति कैसी है?** सिद्धगति। आहाहा! भगवान ही याद किया है यहाँ तो। राग कैसा, विकल्प कैसा, निमित्त कैसा। भगवान बसते हैं न, प्रभु! तेरे पेट में, तेरे गर्भ में—तेरे ध्रुवपने में। यह ध्रुव ऐसा कहा और यह ध्रुव यहाँ पड़ा है तेरा। आहाहा! ऐसे ध्रुव में से पर्याय प्रगटी, उसे ध्रुवपने का आरोप कहा जाता है। ध्रुवपने का भाव ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव (कहा जाता है)। उसे—केवलज्ञान को कथंचित् कूटस्थ कहा, लो! ऐसे सदृश... सदृश... सदृश... (रहता है इसलिए)। ऐसे उसे ध्रुव कहा। पंचास्तिकाय में अमृतचन्द्राचार्य ने कूटस्थ कहा है।

अनादिकाल से परभावों के निमित्त से होनेवाले पर में भ्रमण,... अनादि काल से परभाव के निमित्त से विकार के कारण से होता जो पर में भ्रमण-भटकना, **उसकी विश्रान्ति...** पहले में—ध्रुव में अस्ति स्थापित की है, दूसरे में अभाव स्थापित किया

है—नास्ति स्थापित की है। समझ में आया? **विश्रान्ति (अभाव) के वश अचलता को प्राप्त है।** अचल। अब चलने का नहीं। चलने का अभाव। ध्रुवभाव, चलने का अभाव। समझ में आया? ऐसे अनन्त सिद्ध गतिरूप से अर्थात् परिणमनरूप से परिणमित हुए स्थित हैं। समझ में आया? गति का अर्थ कहीं है ऐसा, हों! कहीं है। कहाँ हो, सब कहीं याद होता है? गति का अर्थ परिणाम... कुछ है। समझे न? उसमें है, देखो! सिद्धगति-सिद्धपरिणति। जयसेनाचार्य की टीका। गति शब्द है न? '**गदिं**' शब्द है। सिद्धगति-सिद्धपरिणति। गति का अर्थ परिणति किया है। संस्कृत देखो। गति। कहना है यह (कि) गति अर्थात् परिणमन हो गया है। सिद्धपने का परिणमन हो गया है। उसको विषम परिणमन चार गति में विकार का था। उसका अभाव हुआ। यह गतिरूप से परिणमन हुआ, वह ध्रुव रहा। अचल—चलने का नहीं। अभाव हो गया। चलने का अभाव हो गया है। पर्याय में अस्ति-नास्ति सिद्ध की। पर्याय में, हों! सादि-अनन्त।

मुमुक्षु : एक पर्याय में दो?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त। दो क्या, अनन्त। अनन्त पूर्व की पर्यायों का उसमें अभाव। भविष्य की अनन्त का अभाव और विकारी पर्याय तथा गति का उसमें अभाव, पूरे गुण का उसमें अभाव। एक पर्याय में अनन्त सप्तभंगी उठती है। आहाहा! एक पर्याय में अनन्त सप्तभंगी। ऐसा एक पर्याय का अनन्त सप्तभंगी उठना, वह उसका स्वभाव-धर्म है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म, हों! नटुभाई! पालेज में कहीं सुनाई दे, ऐसा नहीं। समझ में आये नहीं और यहाँ कभी आवे उसमें वापस टिके नहीं। कौन जाने कैसा है? यह वह क्या होगा? बापू! यह तेरी बात है, भाई! तेरे घर की बात है। घर में तू इतना बड़ा है। कहते हैं कि सिद्ध हुए, उन सिद्ध के योग्य तू आत्मा है। उन सिद्ध को नमस्कार करनेवाला सिद्ध जैसा होने के लिये तैयार हुआ है। आहाहा! हम उसे नमते हैं, राग और अल्पज्ञता को, निमित्त को हम नमते नहीं। नमते नहीं अर्थात् जानते अवश्य हैं, आदर करते नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

पर में भ्रमण, उसकी विश्रान्ति (अभाव) के वश अचलता को प्राप्त है। समझ में आया? देखो! पाठ है। '**परिवृत्तिविश्रान्तिवशेनाचलत्वमुपगताम**' लो, यह संस्कृत है। किसकी बात चलती है यह? अनन्त सिद्धों को वन्दन किया, वे सिद्ध कैसे? और

वे सिद्ध मेरे भावनमस्कार में आ जाते हैं। मैं आ गया, उसमें वे आ गये, ऐसा कहते हैं। प्रवचनसार में नहीं कहा? यह ज्ञान-दर्शन सम्पन्न स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष ऐसा मैं, ऐसा शुरु किया है। पाँच गाथा में। ऐसा मैं। भगवान अनन्त तीर्थंकर ऐसे अनन्त ज्ञान-दर्शन आदि, उन्हें नमस्कार। नमस्कार करनेवाला कौन? मैं रागवाला, ऐसा नहीं, रागवाला—ऐसा नहीं। दर्शन-ज्ञान सामान्य ऐसा मैं यह प्रत्यक्ष संवेदनवाला वह मैं। राग, व्यवहार और विकल्प, वह मैं नहीं। आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य (कृत) और अमृतचन्द्राचार्य ने टीका की है। समझ में आया? मैं अर्थात् कौन? मैं अर्थात् क्या विकल्प? मैं अर्थात् वाणी? मैं तो ज्ञान-दर्शन सामान्य त्रिकाल स्वरूप यह प्रत्यक्ष, प्रत्यक्ष। स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष होनेवाला मैं। वह मैं। परोक्ष रहूँ, वह मैं नहीं — ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! प्रकाशगुण है न उसमें? बारहवाँ गुण (शक्ति) है प्रकाश। प्रकाश अर्थात् प्रत्यक्ष हो, यह उसका गुण है। परोक्ष रहना, वह आत्मा का गुण है ही नहीं। वह इसने कृत्रिम खड़ा किया है। समझ में आया? भगवान आत्मा अपने स्वसंवेदनज्ञान से प्रत्यक्ष ऐसा मैं, बस। उसमें कहनेवाले का विकल्प और वाणी वह मैं, उसमें हूँ? उसमें मैं कहीं हूँ नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : मति-श्रुत में प्रत्यक्ष है?

पूज्य गुरुदेवश्री : मति-श्रुत में प्रत्यक्ष है। केवलज्ञान कहाँ था यहाँ? अवधि, मन:पर्यय तो एक ऋद्धि है। वह कहाँ साधक है? अवधि, मन:पर्यय तो बीच में आती एक ऋद्धि है। साधकपने में अवधि, मन:पर्यय काम नहीं करता। समझ में आया? मति-श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष? वे विवाद उठाते हैं कि प्रत्यक्ष नहीं कहा जाता।

मुमुक्षु : तत्त्वार्थसूत्र में परोक्ष लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्वार्थसूत्र में भाई ने लिखा है बराबर। सुन न! यह तो अपवादिक बात लिखी है। अन्दर अपवादिक बात रह जाती है। उत्सर्ग बात एकदम कर दी। साधारण परद्रव्य को जाने, इसलिए परोक्ष कह दिया। परन्तु मति-श्रुत अपने को जानने में प्रत्यक्ष है। राग के अवलम्बन से जाने, वह आत्मा ज्ञात हो? आहाहा! वह तो पर की अपेक्षा से है, पर की अपेक्षा है। स्व में नहीं। समझ में आया?

ऐसे अचलपने को प्राप्त **चारों गतियों में पर निमित्त से जो भ्रमण होता है, उसका**

पञ्चम गति में व्यवच्छेद हो गया। लो, दो (विशेषण) हुए। '**ध्रुवमचलम**' दो बात हुई।

अब, अनुपमं। **और वह कैसी है ? जगत में जो समस्त उपमायोग्य पदार्थ...** लो! जगत में जो कोई इसके जैसा यह और इसके जैसा यह, ऐसे पदार्थों की कोई उपमा सिद्ध को लागू नहीं पड़ती। चार गति में भी उपमा है, कहते हैं। है न ? चार गति में उपमा है, आयेगा अन्दर। **समस्त उपमायोग्य पदार्थ हैं, उनसे विलक्षण-अद्भुत महिमावाली है, इसलिए उसे किसी की उपमा नहीं मिल सकती।** आहाहा! सिद्ध भगवान की पर्याय की बात चलती है, हों! गुण-द्रव्य का तो क्या कहना! आहाहा! गति प्राप्त परिणमन, ऐसा उनका स्वरूप है—ऐसे सिद्धों को हम भाव से-द्रव्य से नमस्कार पहिचानकर करते हैं, ऐसा का ऐसा अन्धी दौड़ से नहीं, ऐसा कहते हैं। पहिचानकर करना पड़े या नहीं ? क्या है तब ? पहिचाने बिना करते होंगे ? माल लेने जाये तो पहिचाने बिना जाता होगा ? सब्जी (दो)। कौन सी ? यह मुझे खबर नहीं। मूर्ख लगता है यह। कहो। वहाँ जानने की आवश्यकता है, यहाँ धर्मकाम में अन्ध चलता होगा ? सब्जी लेने गया। दो रुपये की सब्जी देना। दो रुपये की। मेरे पिता ने दो रुपये की सब्जी (मँगायी है)। शाक समझते हो न ? तरकारी। दो रुपये की सब्जी। परन्तु कौनसी ? यह मुझे खबर नहीं। यह पचास प्रकार की सब्जियाँ हैं, उनमें कौनसी ? यह मुझे खबर नहीं। परन्तु क्या ले जायेगा तू ? यह सब्जी और यह नहीं, ऐसा इसके ज्ञान बिना क्या लेगा ? इसी प्रकार आत्मा यह ज्ञानानन्द, वह आत्मा और राग, वह नहीं। ऐसे दोनों को भिन्न किये बिना लेगा, उठायेगा किसमें ? स्थिर किसमें होगा ? छोड़ेगा किसे ? समझ में आया ? लो!

उपमा नहीं मिल सकती। देखा! यह (सिद्ध) भगवान को उपमा ? अनुपम पदार्थ, अनुपम पदार्थ। उनकी उपमा उन्हें, उनकी उपमा उन्हें। पर की उपमा क्या लागू पड़े ? कहाँ केवलज्ञान! आहाहा! एक समय की पर्याय में अनन्त केवली समाहित हो गये। पर्याय में! वह कहीं गाडा भरे हैं ? एक व्यक्ति पूछता था कि इतने गाड़े भरे पर्याय में ? अरे भगवान! भाई! तुझे खबर नहीं पड़ती ? यहाँ ज्ञान की पर्याय में तुझे कितना ख्याल आ जाता है। कितना ख्याल आ जाता है। अनन्त-अनन्त। एक लकड़ी ले, एक पत्ता ले नीम का। ऐसा ख्याल आने पर वे असंख्य जीव हैं, उनमें तैजस, कार्मण है। कार्मण, तैजस के अनन्त रजकण हैं, एक-एक रजकण को अनन्त गुण हैं, एक-एक

गुण की अनन्त पर्याय है। एक पत्ते का लक्ष्य करे तो इतना ज्ञान तेरे ख्याल में आ जाये। वर्तमान। राग बिना। यह राग ख्याल करता है? राग में कहाँ सामर्थ्य थी? ज्ञान (ख्याल करता है कि) यह पत्ता (इतना है)।

(संवत्) १९७८ में यह प्रश्न बहुत चला था। हमारे नारणभाई बीच में। १९७८ के वर्ष। राणपुर के उपाश्रय में ऊपर बैठे थे कमरे में। सामने पीपल था। १९७८ की बात है, ४४ वर्ष हुए। पीपल का पत्ता ऐसा था। लम्बी शेड होती है न? लम्बी। पत्ता चौड़ा और इतनी लम्बी उसकी शेड होती है। वह आता है, यह बात भी इसमें आती है। वह कौन सा? वीरबल का आता है। वीरबल को सुनते-सुनते नींद आ गयी। फिर दरबार कहे कि सुना यह? नींद भी आयी नहीं। तब क्या था? मैं विचार करता था कि पीपल का पत्ता बड़ा होगा या उसकी शेड लम्बी बड़ी होगी? तर्कबाज थे। दोनों लम्बे हों। दूसरी बार जब नींद आये तब कहे, क्या करते थे? साहेब! गिलहरी की पूँछ लम्बी या उसका शरीर समान लम्बा? गिलहरी आती है न? क्या कहते हैं? ऐसे टें... टें... बोले। पूँछ इतनी लम्बी हो। गिलहरी। गिलहरी कहते हैं न? हमारे (गुजराती में) खिसकोली कहते हैं। उसके विचार में ऐसा तर्क करता था। था तो नींद में। उसको पूछा, क्या साहेब! साहेब! विचार में था। तुमने विचार किया है ऐसा? मैं यह विचार करता था।

यहाँ पत्ते में ऐसा देखा। ऐसी नजर पड़ी। नारणभाई तो तर्कबाज बहुत थे न हमारे। १९७८ के वर्ष। साहेब! देखो! यह पत्ता है। कितने जीव? असंख्य। एक-एक जीव को तैजस, कार्मण के इतने रजकण। एक-एक परमाणु। इतने में इतना समाहित हुआ, वह ज्ञान ख्याल कर लेता है। ज्ञान की पर्याय तीन काल-तीन लोक के पदार्थों का ख्याल कर लेती है, ऐसा पदार्थ की पर्याय का धर्म है। समझ में आया? यह तो (संवत्) १९७८ में यह सब विचार चलते थे। यह पत्ते का था। बाद में एक मोढ का घर है। उस मोढ के घर के सामने है। दिखता है या नहीं यहाँ? भले आगम प्रमाण। परन्तु आगम ने ऐसा कहा है, ऐसी अस्ति है, ऐसा है।

यहाँ यह सिद्ध करते हैं। अनन्त सिद्ध हैं। मुक्ति को प्राप्त हुए हैं। ध्रुव है, अचल है, उन्हें किसी की उपमा नहीं। ऐसी वस्तु है या नहीं? ऐसा का ऐसा मानना, ऐसा नहीं।

इस प्रकार अस्ति-सत्ता है। इतनी सत्ता का स्वीकार करनेवाला आत्मा मोक्षतत्त्व का स्वीकार करने जाता है तो उसकी पर्याय का स्वीकार अकेले द्रव्य के ज्ञान बिना स्वीकार नहीं हो सकता। उसका ज्ञायकस्वरूप भगवान आत्मा की प्रतीति, भान होने पर मोक्षपर्याय की प्रतीति और श्रद्धा द्रव्य के भान से पर्याय का भान होता है। समझ में आया? ऐसी अनुपम है, कहते हैं। ओहो! इन सिद्ध भगवान को उपमा क्या? उपमा क्या? समझ में आया?

कहते हैं, **इस विशेषण से चारों गतियों में जो परस्पर कथञ्चित् समानता पायी जाती है,...** लो। गति परस्पर मिलती है या नहीं? कोई बादर है, कोई सूक्ष्म है, कोई फलाना है, ऐसा करके भी समानपना है। यह पंचेन्द्रिय है। पंचेन्द्रियपना लो न। सर्वार्थसिद्धि को पंचेन्द्रियपना, नारकी को पंचेन्द्रियपना। इस अपेक्षा से समान दिखता है। इनको—सिद्ध को तो किसी के साथ समानता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, पंचमगति में व्यवच्छेद हुआ। **कथञ्चित् समानता पायी जाती है,...** ऐसा पंचमगति में रहा नहीं। अकेली अपनी दशा। उसे किसकी उपमा देना? उसे तो बादरपना मिला, पंचेन्द्रियपना मिला, इसको भी मिला है। (बादर को) सबको होता है। एक सूक्ष्म के अतिरिक्त। सूक्ष्म में भी पर्याप्तपना होता है, अपर्याप्तपना होता है। पर्याप्ति, अपर्याप्ति गतिवाले को। इतनी तो प्रत्येक गति में समानता के बोल बहुत से हैं। सिद्ध की पर्याय को कोई समानपना है नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे सिद्ध को लक्ष्य में लेकर आत्मा के ओर की एकाग्रता करना, उसे सिद्ध को वन्दन किया और आत्मा में स्थापित किया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

अब एक बोल रह गया है। गति शब्द है न, उसमें से निकाला है। गति है न? अनुपम और गति। '**धुवमचलमणोवमं गदिं**', '**गदिं**' में से यह बोल निकाले हैं। गति में से यह निकाला है। गति परिणमन है, वह अपवर्ग है और यह दूसरे हैं, वे त्रिवर्ग हैं। देखो! दो निकाले इसमें से। **उस गति का नाम अपवर्ग है।** गति का, हों! अपवर्ग। अपवर्ग अर्थात् सिद्धगति—पर्याय। अपवर्ग के सामने त्रिवर्ग। **धर्म, अर्थ और काम...** धर्म अर्थात् पुण्य; अर्थ अर्थात् पैसा; काम अर्थात् विषयवासना। दो पाप, एक पुण्य। यह अपवर्ग सिद्धगति त्रिवर्ग से दूसरी जाति है पूरी। समझ में आया? धर्म, अर्थ, काम। देखो! कितने बोल गुलाँट मार-मारकर निकालते हैं। **ये त्रिवर्ग कहलाते हैं।**

मोक्षगति इस वर्ग में नहीं है,... मोक्षगति पुण्य में नहीं, लक्ष्मी में नहीं, काम में नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म कब था लक्ष्मी? वे पूछते थे, लक्ष्मी से पुण्य होता है। पण्डितजी के साथ बात हुई थी या नहीं? वहाँ शत्रुंजय। जीवाभाई। सब सेठिया पैसा खर्च करे। पाँच-दस हजार, पचास हजार। हो गया धर्म। धूल में भी नहीं, सुन न! पैसेवाले को ऐसा अभिमान होता है कि हम पैसेवाले हैं, इसलिए यह धर्म टिकता है। हमारी शोभा है। धूल में भी नहीं, सुन न अब। बाहर में ऐसे मन्दिर बनाना, फलाना करना, यह सब पैसेवाले (करते हैं)। धूल भी नहीं किया तूने, सुन न! वह तो पुद्गल की पर्याय से वहाँ हुए, कौन करता है उसे? पूछा था पण्डितजी को। एकान्त में क्या पूछा था? तुम पुण्य मानते हो न? पुण्य मानते हो? ऊपर पूछा था न। मोदी के घर में। पुण्य मानते हो? पुण्य मानते हो तो क्या होगा? पुण्य के कारण से पैसे मिले और पैसे के कारण से वापस धर्म होगा।

मुमुक्षु : पहले ऐसा पूछा कि क्रिया में मानते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्रिया में मानते हो? पहले ऐसा पूछा। ऐसे के ऐसे प्रमुख सब। वह नहीं? कैसे? क्या कहलाते हैं? जीवा प्रताप। बड़ा सेठिया। नवकार गिनता। नौ लाख। नौ लाख जपंता नरक निवारे। धूल में भी नहीं, सुन न! नौ लाख (क्या), अनन्त बार नवकार गिने। वह तो शुभभाव है, पुण्यबन्ध है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, धर्म से-पुण्य से मोक्षगति अलग जाति है और पाप से भी अलग जाति है। यह पुण्य का फल नहीं, पाप का फल नहीं। आहाहा! त्रिवर्ग से अपवर्ग, वह अलग जाति है पूरी। आहाहा!

मुमुक्षु : वर्ग अर्थात् समूह....

पूज्य गुरुदेवश्री : समूह नहीं आता तुम्हारे? एकड़िया का वर्ग, दो वर्ग नहीं कहते? त्रिवर्ग—तीन प्रकार का समूह-धर्म, अर्थ और काम। अपवर्ग—वर्ग में से निकल गयी। अनन्त सिद्ध वर्ग से रहित हो गये। अपवर्ग हैं, अपवर्ग हैं। धर्म अर्थात्

पुण्य-पाप के फल। धर्म अर्थात् पुण्य और अर्थ अर्थात् पाप। दोनों का फल यह नहीं और यह दो चीज़ भी नहीं। वर्तमान दो चीज़ भी नहीं कि दो का फल भी नहीं। वह तो अपवर्ग चीज़ है। क्योंकि धर्म, अर्थ और काम से भिन्न चीज़ है। ऐसे सिद्ध भगवान, जिन्हें उपमा नहीं, जिनका अविनाशीपना ध्रुव है—स्वभावभूत है, जो अचल है, उपमा नहीं और त्रिवर्ग में से निकलकर अपवर्ग है।

ऐसी पञ्चम गति को सिद्ध भगवान... लो! **मोक्षगति इस वर्ग में नहीं है, इसलिए उसे अपवर्ग कही है। - ऐसी पञ्चम गति को सिद्ध भगवान प्राप्त हुए हैं।** अनन्त आत्मा संसारीरूप से थे, वे इस प्रकार से सिद्धपने की पर्याय को प्राप्त हुए हैं। ध्रुवरूप से आत्मा वे रहे हैं। संसारी पर्याय का व्यय हुआ है, सिद्धपर्याय अपवर्गरूप से उत्पन्न हुई है। समझ में आया? यह तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है। उसका प्रयत्न ज्ञान में चाहिए। समझ में आया? राग में प्रयत्न, वह कहीं आत्मा का प्रयत्न है? वे ऐसे सिद्ध भगवन्त, वे अपने वीर्य से परिणमन को प्राप्त हुए हैं। अनन्त स्वरूप को जिन्होंने धार रखा है, ऐसा परिणमन है। **उनको...** ऊपर कहा था परन्तु फिर से लिया, वह मेल करने को। वस्तु तो एकबार कही है टीका में।

अपने तथा पर के आत्मा में स्थापित करके,... लो। ऐसे मेरे आत्मा में और पर के आत्मा में स्थापित करके। अहो! मैं यह सिद्ध भगवान को वन्दन करके और ऐसे सिद्ध को मेरी पर्याय में मैंने (स्थापित किया है)। सिद्धपना वह राग में स्थापित होता होगा? राग है न विकल्प, उसमें—राग में सिद्ध स्थापित हो? विकार में अविकारी पर्याय स्थापित हो? राग बिना की जो ज्ञानपर्याय है, वह निर्मल है क्षयोपशमभाव से, उसें अनन्त सिद्ध निर्मलरूप से स्थापित किये हैं। समझ में आया? यह हम स्थापित करके दूसरे जीव को भी... कहते हैं, पर के आत्मा में स्थापित करते हैं। भगवान ऐसे हैं, भाई! ध्रुव हैं, अचल हैं, अनुपम हैं, अपवर्ग हैं। गति को प्राप्त हैं। ऐसे सिद्ध को तुम्हारे आत्मा में स्थापित करता हूँ। अब मैं समयसार कहूँगा। यह श्रवण करते-करते तेरी एकाग्रता बढ़ जायेगी और अनएकाग्रता टल जायेगी, यह ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

समय का (सर्व पदार्थों का अथवा जीव पदार्थ का) प्रकाशक जो प्राभृत

नामक... समयप्राभृत है न? **अर्हत् प्रवचन का अवयव...** है यह तो एक। यह कहीं पूरा प्रवचन नहीं। बारह अंग पूरा नहीं। यह तो अर्हत्प्रवचन का एक भाग-अवयव है। आहाहा! **(सर्व पदार्थों का अथवा जीव पदार्थ का)....** उसमें सब आ जाता है। **ऐसा जो प्राभृत नामक अर्हत् प्रवचन...** अर्हतप्रवचन... अर्हतप्रवचन। इन्द्रों को पूजनेयोग्य ऐसे भगवान अर्हत, उनका प्रवचन-उनकी जो वाणी-ध्वनि, उसका एक अंश है यह तो। समयप्राभृत... समयप्राभृत, वह तो भगवान के प्रवचन का एक अवयव-अंश है। आहाहा! **(अंश) उसका,...** किसलिए कहूँगा? **अनादि काल से उत्पन्न हुए...** अनादि काल से उत्पन्न हुए। अपना जो राग है, वह अनादि काल का है, वह कहीं नया नहीं। पंचास्तिकाय में आता है न? अनादि से... यह वह शैली है। अमृतचन्द्राचार्य। व्यवहार... अनादि वासित बुद्धि... है न यह? यह वह शब्द है। ७२। अनादिवासित बुद्धि। अनादिवासित बुद्धि अर्थात् वह राग अनादि का है न, ऐसा। निश्चय का भान है, परन्तु व्यवहार राग बीच में आया। यह तो यहाँ से सीधे डाला न। **अनादि काल से उत्पन्न हुए अपने...** अब स्वयं तो मुनि हैं। परन्तु अभी समकितमोहनीय का भाग बाकी है, क्षायिक हुआ नहीं। समझ में आया? और जरा अस्थिरता का विकल्प बाकी है। उसे यहाँ मोह शब्द से वर्णन किया है। इतना पतला परन्तु अभी मोह मुझे अनादि का है। समझ में आया? कभी मोह टूट गया हो और मोह हो, ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया? बिल्कुल मोहरहित हो और फिर मोह हो, ऐसा नहीं होता। यह धारा मैंने स्वभाव की एकता द्वारा तोड़ी है, परन्तु यह अस्थिरता की धारा समकितमोहनीय आदि थोड़ा है, वह तो ऐसा का ऐसा प्रवाह अनादि का है, नया नहीं। समझ में आया?

अपने और पर के मोह का नाश करने के लिए... पाठ तो इतना ही है। समझ में आया? '**अनादिमोहप्रहाणाय**'। बस। उसने अज्ञान और मिथ्यात्व डाला न? परन्तु वह कुछ आवश्यकता नहीं। वास्तविक रीति से मोह। मोह डालने से अपना भाव भी अस्थिर है, वह भी आ जाता है और मोह डालने से सामनेवाले को मिथ्यात्व और अज्ञान हो तो वह भी आ जाता है। दोनों के नाश के लिये यह कहूँगा। समझ में आया? **अपने और पर के मोह का नाश करने के लिए...** एक ही बात। अर्हतप्रवचन का अवयव मोह के नाश के लिये है। मोह के रखने के लिये यह प्रवचन और इसका अंश

नहीं है। व्यवहार है, वह नाश करने के लिये है। प्रवचन ऐसा कहता है, नाश करने के लिये है। समझ में आया? ज्ञानी को व्यवहार का राग बाकी है अभी। राग न हो तो वीतराग हो गया हो, परन्तु वह व्यवहार का राग भी नाश करने के लिये इस प्रवचन का अंश है। समझ में आया? परन्तु यह व्यवहार कुछ करे, व्यवहार हो तो निश्चय हो। भाई! ऐसा नहीं होता। राग हो तो अराग दशा हो, ऐसा नहीं होता। दोनों विजात है, दोनों विजात है। समझ में आया? ऐसा वीतरागमार्ग है। भगवान आत्मा राग के अवलम्बन बिना त्रिकाल चैतन्य के वीतरागी पिण्ड को अवलम्बित जो पर्याय प्रगट होती है, वह वीतरागीदशा होती है और जो राग बाकी है अनादि का, उसे तो नाश के लिये यह अर्हतप्रवचन का अवयव है। रखने के लिये, करने के लिये, करनेयोग्य है, इसलिए यह प्रवचन का अंश नहीं।

मुमुक्षु : मोह-चारित्रमोह?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, चारित्रमोह। समकितमोह भी बाकी है न थोड़ा। थोड़ा समकितमोह भी बाकी है न। क्षायिक समकित नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कौन कहता है?

मुमुक्षु : ब्रह्मचारी चुन्नीलाल।

पूज्य गुरुदेवश्री : चुन्नीलाल। उसे कहाँ (खबर है)।

यहाँ तो मोह शब्द प्रयोग किया है। थोड़ा असावधानी का अंश है, असावधानी। राग है न? वह समकितमोहनीय। क्षयोपशम समकिती को क्षायिक लेने की तैयारी है। भगवान के पास गये थे। यहाँ तो मोह शब्द से जरा अस्थिरता। अब उसे क्या खबर! यह भगवान के पास गये नहीं थे, यह कहाँ है? फलाना... यह है। पंचास्तिकाय की टीका में है, देखो! है या नहीं पंचास्तिकाय में वह संस्कृत नहीं? जयसेनाचार्य की टीका में है। तुझे आचार्य का आधार चाहिए हो तो। कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे। है न पंचास्तिकाय में? है न। और दर्शनसार में देवचन्दजी (देवसेनाचार्य) में है। अरे! यदि पद्मनन्दि नाथ

भगवान के पास न गये होते तो हमको मुनि को... यह अपने लिखा है इसमें। है न? यह श्लोक है न? दर्शनसार।

जइ पउमणंदिणाहो सीमंधरसामिदिव्वणाणेण।
ण विवोहइ तो समणा कहं सुमग्गं पयाणंति॥

और जयसेनाचार्य में है। लाओ न, देखो! '**अथ श्रीकुमारनन्दिसिद्धान्तदेवशिष्यैः प्रसिद्धकथान्यायेन पूर्वविदेहं गत्वा**' जयसेनाचार्यदेव कहते हैं। '**वीतरागसर्वज्ञसीमंधरस्वामी तीर्थंकर परमदेवं दृष्टवा तन्मुखकमलविनिर्गतदिव्यवाणीश्रवणावधारितपदार्थाच्छुद्धात्मतत्त्वादिसार्थं गृहीत्वापुनरप्यागतैः**' भगवान के पास जाकर आये। जयसेनाचार्यदेव की पंचास्तिकाय की टीका। अथवा... समझे न? '**एवं श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवैः पद्मनन्द्याद्य-पराभिधेयैरन्तस्तत्त्वबहिस्तत्त्वगौणमुख्यप्रतिपत्यर्थं, अथवा शिवकुमारमहाराजादिसंक्षेपरुचिशिष्यप्रतिबोधनार्थं विरचिते**' भगवान के पास गये थे, यह भी इनकार करते हैं। अब भी तुझे एक भी खबर नहीं होती। यहाँ तो कहते हैं, ... समझ में आया?

अपने और पर के मोह का नाश करने के लिए... मोह शब्द से यह तो इन्होंने अज्ञान और मिथ्यात्व डाला है। अपने को नहीं। जैसे परम विशुद्ध होकर....

मुमुक्षु : लागू पड़े वह हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा ही हो न। अमृतचन्द्राचार्य ने क्या कहा? मुझे परम विशुद्धि होओ। परम विशुद्धि। शुद्धि तो है। पण्डितजी! शुद्धि तो है। परम विशुद्धि। जरा राग है (तो) उस काल में परम विशुद्धि होओ। उसे विकल्प के कारण से नहीं। स्वभाव के कारण से। यहाँ आचार्य ने यही रखा है। यह ध्वनि एक ही ध्वनि है। मेरा और पर का मोह। जरा असावधानी थोड़ी बाकी है, (टीका) करते हुए नाश हो जायेगी। तुम्हारा मिथ्यात्व और अज्ञान है, वह प्रवचन का अर्थ करने से नाश होगा। इसलिए यह कहूँगा। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण ३, गुरुवार, दिनांक - ०४-०८-१९६६
गाथा - १, २, प्रवचन - ७

पहली गाथा। कुन्दकुन्दाचार्य समयप्राभृत कहते हुए पहला मंगलाचरण कहा है। प्रत्येक का अर्थ आ गया। '**वंदित्तु**' का आ गया। सर्व सिद्ध को। ध्रुव का आ गया। '**धुवमचलमणोवं गदिं पत्ते**' का आ गया। अब '**वोच्छामि**'। इस दूसरे पद से शुरु होता है। देखो!

मैं परिभाषण करता हूँ। यह '**वोच्छामि**' का अर्थ है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज कहते हैं, मैं सर्व सिद्धों को वन्दन कर, इसका अर्थ कि सर्व सिद्धों को अन्तर में आदर करके, मैं ध्रुव, यह सिद्धपद प्राप्त दशा ध्रुव है, स्वभावभूत है, अचल है। चार गति की भाँति चल नहीं, अचल है। जिसमें अस्थिरता का अभाव है। वापस फिरने का जिसमें अभाव है। अनुपम है। सिद्धगति को कोई उपमा नहीं। गति अर्थात् यह अपवर्ग है। धर्म, अर्थ और काम से भिन्न ऐसी गति को प्राप्त ऐसे सिद्धों को मैं मेरे आत्मा में और पर के आत्मा में स्थापित करके वन्दन करता हूँ। अर्थात् यह स्थापितकर करता हूँ, ऐसा। समझ में आया? अब, यह दूसरे पद का पहला शब्द '**वोच्छामि**'। इसका अर्थ '**वक्ष्यामि**' किया संस्कृत में। और यहाँ अमृतचन्द्राचार्य ने, परिभाषण करता हूँ — ऐसा किया। उसका **मैं परिभाषण करता हूँ।**

अब, समयप्राभृत। इसके बाद का शब्द है न? '**समयपाहुडमिणमो**'। **कैसा है वह अर्हत् प्रवचन का अवयव?** अर्हंत का पूरा बारह अंग का प्रवचन नहीं इसमें। बारह अंग का एक अंश-अवयव-भाग है, उसे मैं कहूँगा। कैसा है वह अर्हत का प्रवचन सर्वज्ञ से हुआ दिव्यध्वनि का प्रवचन का भाग? **अनादिनिधन परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से,...** यह समयसार कहेंगे वह प्रमाण है, प्रामाणिक है। क्यों प्रामाणिक है, इसके कारण देते हैं। अनादि-अनन्त परमागम शब्दब्रह्म जो प्रवाह से अनादि-अनन्त

वाणी का ध्वनि शब्दब्रह्म अनादि से चला आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दिव्यध्वनि बिना का....

पूज्य गुरुदेवश्री : शब्द के प्रवाह बिना का कोई समय नहीं, ऐसा कहते हैं। भले भगवान चार पहर कहे परन्तु दूसरे मुनि आदि हैं न? समझ में आया? क्या समझ में आया?

अनादि-अनन्त परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित है। यह वह क्या आया? 'वर्णम् समाम्नाय' 'सिद्धो वर्णम् समाम्नाय।' यह अक्षर की आम्नाय अनादि की है। उसमें सूत्र है। पहले हम जब विद्यालय में पढ़ने बैठे थे, धूलीशाला में, तब यह शब्द पहला दिया था। यह मुझे खबर है, लो! धूली, हों! अभी पहली कक्षा की दूसरी पाठशाला धूल। धूल में ऐसे एक और दो लिखे न। धूल समझे न? धूली। स्लेट में धूल डालकर फिर एकड़ा लिखावे। वहाँ हमारे उमराला में पहले यह शब्द दिया। अभी तो एकड़ा भी आवे नहीं। सिद्धो वर्ण समाम्नाय। हमारे एक मास्टर नथु मास्टर थे। बेचारे गरीब व्यक्ति थे। आटा लेकर जायें तो उनके रोटियाँ हों। उस समय यह शब्द दिया था, मुझे खबर है। रटो, लड़कों रटो। सिद्धो वर्णसमाम्नाय, यह अपने मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है कि यह आम्नाय अनादि की है। है न? अक्षर की आम्नाय अनादि की है। यह स्वयं ने लिखा है। देखो! यह आया, देखो! '**सिद्धो वर्णसमाम्नायः**' 'ग्रन्थ की प्रामाणिकता' भाई! इसमें भी ऐसा कहा है। ग्रन्थ की प्रामाणिकता वर्णन करते हुए '**सिद्धो वर्णसमाम्नायः**'। 'अर्थात् वर्ण उच्चार का सम्प्रदाय स्वयंसिद्ध है।' यह कहीं कोई नया कर्ता नहीं। प्रवाह... प्रवाह... यह शब्द की ध्वनि ऐसी की ऐसी अनादि से चली आती है। लालूभाई! क्या तुम्हारे सीखा था पहले? मुझे तो खबर है पहले, हों! अभी ध्वनि उठती है तब की। छह वर्ष की उम्र होगी लगभग। पहले नथु मास्टर (यह कहा हुआ)। पहले यह सीखो। रटो। '**सिद्धो वर्णसमाम्नायः**' अर्थ-बर्थ यह भी कुछ करे नहीं। '**सिद्धो वर्णसमाम्नायः**' अक्षर की आम्नाय अनादि की है। ऐसा पहले सीखते थे।

यहाँ भी भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, **अनादिनिधन परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से,...** देखो! एक समय का विरह नहीं इसमें, भाई! यह ख्याल में आ

गया था पहले से। अनादि का ऐसा प्रवाह (चलता है)। मुनियों के मुख से, तीर्थंकर के मुख से, केवली के मुख से... कब सन्त नहीं जगत में? समझ में आया? तीन काल के जाननेवाले तीन काल में कब नहीं? और तीन काल में सन्त साधक कब नहीं? भाई! आहाहा! तीन काल में स्वरूप के साधक सन्त कब नहीं? तीन काल में तीन लोक के जाननेवाले कब नहीं? और तीन काल में तीन लोक में मिथ्यात्व को साधनेवाले कब नहीं? आहाहा! स्वयं कहते हैं कि वाणी जो है, (वह) अनादिनिधन—अन आदि और अ निधन ऐसा शब्द है। अणआदि, अनिधन। जिसकी शुरुआत नहीं, जिसका अन्त—मृत्यु नहीं, अन्त नहीं। अनादि प्रवाह शब्दब्रह्म से वह वाणी चली आती है। देखो! आहाहा! समझ में आया?

परमागम शब्दब्रह्म, शब्दब्रह्म। आत्मा आनन्दब्रह्म परमब्रह्म। आत्मा परमब्रह्म। वाचक शब्दब्रह्म, वाच्य परमब्रह्म, ऐसा कहेंगे। अभिधेय अभिधान सम्बन्ध करेंगे न? समझ में आया? यह जयसेनाचार्य में है, भाई! यह अभिधेय सम्बन्ध प्रयोजन है न? यह जयसेनाचार्य में है। अमृतचन्द्राचार्य में नहीं। जयसेनाचार्य में तत्पश्चात् आयेगा। समझ में आया? कहते हैं, अहो! शब्दब्रह्म अनादि परमागम से प्रकाशित है, भाई! एक बात। परन्तु उस शब्दब्रह्म में कोई ज्ञानी चाहिए या नहीं? पुरुष चाहिए या नहीं?

सर्व पदार्थों के समूह को साक्षात् करनेवाले केवली भगवान् सर्वज्ञदेव द्वारा प्रणीत होने से... होने से... होने से कहकर प्रमाणपना सिद्ध करते हैं। समझ में आया? **होने से प्रमाणता को प्राप्त है।** अनादि-अनन्त परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से प्रमाणता को प्राप्त है, ऐसा तीनों में ले लेना। यह अन्तिम है, भाई! समझ में आया? और **सर्व पदार्थों के समूह को...** तीन काल—तीन लोक के पदार्थ, द्रव्य-गुण-पर्याय भगवान केवलज्ञानी साक्षात् करनेवाले। उन्हें साक्षात् समय की पर्याय में प्रत्यक्ष करनेवाले केवली भगवान सर्वज्ञ से प्रणीत अर्थात् कथन। देखो! वाणी तो थी परन्तु उसमें निमित्त सर्वज्ञ थे, ऐसा कहते हैं। वाणी का प्रवाह था, परन्तु उसमें सर्वज्ञ पुरुष प्रधान निमित्त थे। अपने आप वाणी निकली, उसमें अकेली वाणी की ध्वनि है, ऐसा नहीं। उस वाणी में सर्वज्ञ का निमित्त है। सर्वज्ञ से कहा गया होने से यह अर्हंत का प्रवचन अंश समयसार

प्रमाणता को प्राप्त है, ऐसा कहते हैं। कोई अध्धर से लखितंग सही मफतलाल की, ऐसा नहीं। क्या कहा?

यह तुम्हारे मकान नहीं बेचते? मकान। चउ दिशा कहते हैं न? मकान जब दे न? चउदिशा—चतुर्दिशा लिखते हैं न? कोर्ट में। सीमा (लिखते हैं)। इसका अर्थ कि यह मकान है और यह मकान चारों दिशा में फलाने-फलाने घर हैं, उनके मध्य में है। ऐसा यह है। लखितंग फलाना अमृतलाल जीवणलाल। समझ में आया? उसी प्रकार शब्द यह हैं, उनके कहनेवाले हैं और वह वस्तु है। उसके लखितंग मफतलाल नहीं, लखितंग केवलज्ञानी है। आहाहा! समझ में आया? और वह जैसे मकान है, वैसे यह शब्दब्रह्म वस्तु है, वस्तु है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? दो (बातें)।

और केवलियों के निकटवर्ती... पाठ तो, स्वयं अनुभवी ऐसा है। परन्तु शब्द इन्होंने अधिक डाला है। **केवलियों के निकटवर्ती साक्षात् सुननेवाले...** अर्थात् सुननेवाले का मुख्य लिया। पाठ में अनुभव करनेवाले हैं। अनुभवा है परन्तु सुना है यहाँ। सर्वज्ञ मूल है न। सर्वज्ञ मूल है न! उपदेश के मूल कर्ता सर्वज्ञ है। धर्म का मूल सर्वज्ञ है। वहाँ से शुरु किया है। अर्थात् सर्वज्ञ हैं ऐसे जो भगवान, उनके पास से गणधरों ने सुना है। छद्मस्थ है न! सुना है ऐसी अर्थ में सन्धि की। **तथा स्वयं अनुभव करनेवाले...** यह श्रुतकेवलियों ने अनुभव किया। यह आत्मा शुद्ध चिदानन्द स्वसंवेदन से प्राप्त है, ऐसा अनुभव किया। समझ में आया? यह प्रयोजन कहेंगे अन्तिम, भाई! तीन कहते हैं न? अभिधेय, सम्बन्ध और प्रयोजन। प्रयोजन तो शुद्धात्म स्वरूप की प्राप्ति प्रयोजन है। वह वहाँ सन्तों को श्रुतकेवलियों को हुई है। समझ में आया?

अन्तर में सच्चिदानन्द प्रभु पूर्ण आनन्दकन्द आत्मा, उसका अनुभव किया है। उससे प्रकाशित होने से यह शब्दब्रह्म का जो अवयव, अर्हंत का अवयव वह प्रमाणिकता को प्राप्त है। प्रमाणिकता को प्राप्त है। इसमें अप्रमाणिकता जरा भी नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : साक्षात् निकटवर्ती सुना।

पूज्य गुरुदेवश्री : साक्षात् साथ में सुननेवाले। सुनकर वापस किसी ने कहा, ऐसा नहीं। भगवान के पास गणधर ने सुना और गणधर दूसरे को सुनावे और उसने

सुना, ऐसा नहीं। उनके समीप में बैठनेवालों ने सुना है। सभा में बैठकर भगवान की दिव्यध्वनि-आवाज जो अनादि शब्दब्रह्म भगवान निमित्त, वाणी है, उसे सुनकर अनुभव किया। समझ में आया? केवली या भगवान नहीं। इसलिए सीधी बात ले ली। धर्म के मूल उपदेशक तो वे हुए। फिर उनके निकट सुनी...

भगवान आत्मा उसे कहते हैं कि स्वसंवेदन से अनुभव में आनन्द से आवे, ऐसा आत्मा अनुभव किया। उनके कथन से यह अवयव निकला है, इसलिए यह अर्हंत का अवयव समयसार प्रमाणता को प्राप्त है। प्रामाणिक है, इसमें सन्देह करने को स्थान नहीं। कहो, आचार्यों ने कितना बाँधकर निश्चित किया। आहाहा! चार दिशा बाँधी। शब्द है अनादि प्रवाह। सर्वज्ञ ने कहा है और वाणी सर्वज्ञ की आयी, उसे सुननेवालों ने सीधे जाना नहीं, सीधा आत्मा उसने सुना है। सुनकर फिर स्व का अनुभव किया है। अनुभव करके निकले हुए वचन ऐसे अर्हंत भगवान के प्रवचन का पूरा भाग नहीं, परन्तु एक अंश इसमें है। परमब्रह्म कहनेवाला, परमब्रह्म भगवान को कहनेवाला शब्दब्रह्म अवयव प्रमाणता को प्राप्त है। भाई! इसमें अक्षर अप्रमाणता को नहीं पाता। समझ में आया? आहाहा!

श्रुतकेवली गणधरदेवों के द्वारा कथित होने से... भले इसमें गणधरदेव नहीं लिखे परन्तु जयसेनाचार्य की टीका में गणधर लिखे हैं, भाई! गणधर। यह श्रुतकेवली का अर्थ ही यहाँ गणधर किया है। इसलिए ऐसे श्रुतकेवली गणधर-सन्तों के गण के धारक समूह के और अन्तर में गुण के गण के धारक ऐसे गणधरों (द्वारा) प्रकाशित होने से **कहा होने से...** उन सबमें होने से... होने से आया। देखो! **अनादिनिधन परमागम शब्दब्रह्म से प्रकाशित होने से, सर्व पदार्थों के समूह को...** पूरे समूह को, सबको। **साक्षात् करनेवाले केवली भगवान् सर्वज्ञदेव द्वारा प्रणीत होने से...** यहाँ प्रणीत होने से कहा, उसमें प्रकाशित होने से कहा, यहाँ कहा गया होने से कहा। समझ में आया? आहाहा! '**श्रुतप्रकाशित्वेन केवलीप्रणीतत्वेन अनुभवद्भिरभिहितत्वेन**' वहाँ यह शब्द रखा है, भाई! तीनों को तीन शब्द रखे हैं। '**अभिहितत्वेन**' यह न? '**अभिहितत्वेन**' पण्डितजी! तीन शब्द। तीनों अलग रखे हैं। '**अभिहितत्वेन**' तीन शब्द रखे हैं। क्योंकि

वह वाणी प्रकाशित हुई है। भगवान उसके कहनेवाले हैं, अर्थात् प्रणीत हैं, श्रुतकेवलियों से '**अभिहित**' कहा गया है। आहाहा! इसलिए प्रमाणता को इस श्रुत का एक अंश— प्रवचन का भाग प्रमाणिक है, ऐसा सिद्ध किया। पहली गाथा कहकर सिद्ध किया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अहो इसमें आ गया न? कहना है जिसे अर्थात् अहो तुमको कहते हैं। उसमें आ जाता है, उसमें आ जाता है। '**मिणमो**' यह। यह और अहो, आ गया। कहनेवाले को कहना है। **अन्यवादियों के...** यह बाद में अध्धर से स्वयं लिखा है। टीकाकार और पण्डित जयचन्द्रजी ने। **अन्य वादियों के आगम की भाँति छद्मस्थ (अल्पज्ञानियों) की कल्पना मात्र नहीं है...** यह नास्ति से इन्होंने बात सिद्ध की। यहाँ तो आचार्य ने अस्ति से बात की है। यहाँ प्रकाशित है, प्रमाणता को प्राप्त है। अन्यवादी की (भाँति) अप्रमाण नहीं, यह बात इन्होंने सिद्ध की। कहो, समझ में आया? शब्द से शब्दार्थ हो गया। '**वंदित्तु सव्वसिद्धे धुवमचलमणोवमं गदिं**' अपवर्ग '**पत्ते**' '**वोच्छामि**' '**वक्ष्यामि**' परिभाषण करता हूँ। समयप्राभृत अर्थात् शास्त्र का प्रवचन का एक अवयव। '**मिणमो**' अहो जीवों '**सुदकेवलीभणिदं**' श्रुत-अनादि प्रवाह शास्त्र, '**केवलीभणिदं**' श्रुतकेवली और केवलियों का कहा हुआ है, वह कहूँगा। ऐसा कहकर एक गाथा के प्रत्येक शब्द के भाव अर्थ भरे हैं। उसमें है, उसका अर्थ करते हैं न, ऊपर से कहाँ करते हैं। समझ में आया? अब इसका जरा पण्डित जयचन्दजी स्पष्टीकरण करते हैं।

भावार्थ :- गाथासूत्र में आचार्यदेव ने 'वक्ष्यामि' कहा है, है न? '**वोच्छामि**' इसका अर्थ '**वक्ष्यामि**' होता है। देखो! संस्कृत में '**वक्ष्यामि**' होता है। '**वोच्छामि**' नीचे '**वक्ष्यामि**' कहा। संस्कृत छाया है। यह '**वक्ष्यामि**' (कहा है) **इसका अर्थ टीकाकार ने 'वच् परिभाषणे'... 'वच् परिभाषणे'** संस्कृत का शब्द है न? अमृतचन्द्राचार्य का। **परिभाषण किया है। उसका आशय इस प्रकार सूचित होता है...** परिभाषण का अर्थ भगवान अमृतचन्द्राचार्य टीकाकार ने कहा, उसका यह अर्थ सूचित होता है कि **चौदह पूर्वों में से ज्ञानप्रवाद नामक पाँचवें पूर्व में बारह 'वस्तु' अधिकार हैं;...** किसी में पहले

छठवाँ लिखा गया है। छठवाँ पूर्व। समझे न? पाँचवाँ पूर्व चाहिए। **पाँचवें पूर्व में बारह 'वस्तु' अधिकार हैं; उनमें भी एक एक के बीस बीस 'प्राभृत' अधिकार हैं।** यह अधिकारों के नाम हैं वे तो। **उनमें से दशवें वस्तु में समय नामक जो प्राभृत है...** लो, देखो! यहाँ कहा। **दशवें वस्तु में समय नामक जो प्राभृत है, उसके मूलसूत्रों के शब्दों का ज्ञान पहले बड़े आचार्यों को था...** महासन्तों को **उसके अर्थ का ज्ञान...** अर्थ का ज्ञान **आचार्यों की परिपाटी के अनुसार श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव को भी था।** पहले को था और इनको भी था, इसलिए भी डाला। पहले को भी था और इनको भी था। समझ में आया? **उन्होंने समयप्राभृत का परिभाषण किया...** भगवान के प्रवचन के अंश का परिभाषण किया। **परिभाषासूत्र बनाया।** इसका अर्थ किया। परिभाषण किया अर्थात् परिभाषासूत्र बाँधा।

सूत्र की दश जातियाँ कही गयी हैं,... यह होगा शास्त्र में। **उनमें से एक 'परिभाषा' जाति भी हैं।** अब परिभाषा की व्याख्या करते हैं। परि—समस्त प्रकार से जहाँ-जहाँ जिस स्थान में चाहिए, आस्रव के स्थान में आस्रव, जघन्य कहना हो वहाँ जघन्य, उत्कृष्ट कहना हो, वहाँ उत्कृष्ट। ऐसा **जो अधिकार को अर्थ के द्वारा यथास्थान सूचित करे वह 'परिभाषा' कहलाती है। श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव समयप्राभृत का परिभाषण करते हैं-अर्थात् वे समयप्राभृत के अर्थ को ही...** उसमें कहे हुए अर्थ को **यथास्थान बतानेवाला परिभाषासूत्र रचते हैं।** देखो! आस्रव अधिकार कहा, वहाँ आस्रव, बन्ध समकिती को नहीं, ऐसा कहा। और जहाँ आवश्यकता पड़ी, वहाँ ऐसा स्थापित किया कि नहीं, उसे भी जघन्य परिणमन को चौथे में, पाँचवें में, छठवें में बन्ध है। यह गाथा भी बीच में डाली है। जहाँ-जहाँ आवश्यकता पड़ी जो स्थिति, वहाँ-वहाँ उसे यथास्थान रचा गया है। समझ में आया? पण्डित जयचन्द्रजी ने भी इसमें से अच्छा निकाला है।

आचार्य ने मंगल के लिए सिद्धों को नमस्कार किया है। संसारी के लिए शुद्ध आत्मा साध्य है... संसारी को शुद्ध आत्मा साध्य है, भाई! संसारी को पैसा कमाना और यह साध्य नहीं होता, ऐसा यहाँ कहते हैं। ऐई! नटुभाई! धर्मी जीव संसारी को शुद्ध आत्मा साध्य है। ऐसा भव मिला है, मनुष्यपना मिला है, उसे शुद्ध आत्मा साध्य कर

लेना है। इसके लिये यह अवतार है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? यह विषयभोग और कमाने के लिये यह मनुष्यभव नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐसा है न, अपने कुछ लिखा है न? **दुर्लभ मनुष्यपना पाकर विषयों में रमता है, वह राख के लिये रतन जलाता है।** स्वामी कार्तिकेय का है। रतन को जलाता है, भाई! समझे न?

श्रीमद् ने कहा न? 'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये' १६ वर्ष में, अभी १६ वर्ष की उम्र है।

'लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी पर बढ़ गया क्या बोलिये'
परिवार और कुटुम्ब है क्या वृद्धिनय पर तौलिये,
संसार का बढ़ना अरे नरदेह की यह हार है,
नहीं एक क्षण तुझको अरे इसका विवेक विचार है।

एक पल भी न हो। समझ में आया? आहाहा! फिर अन्त में शब्द है... 'रे आत्म तारो आत्म तारो शीघ्र इसको पहिचानो...' १६ वर्ष में अभी, हों! बाद में विवाह किया था। पण्डितजी! विवाह बाद में हुआ था। २० वर्ष में। १६ वर्ष में संस्कार स्फुरित हुए हैं अन्दर से। १६ वर्ष में लिखते-लिखते १०८ पाठ लिख डाले। जैसे माला को १०८ मणके (मोती) होते हैं। माला को पारा... पारा १०८ (होते हैं)। लिखने लगे। १०८ लिख दिये। तीन दिन में १०८ पाठ लिखे। १६ वर्ष की उम्र में। 'रे आत्म तारो, रे आत्म तारो...' तारो अर्थात् तिरा दो आत्मा को।

तारो अरे तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिए।
सर्वात्म में समदृष्टि दो यह वच हृदय लख लीजिए।

सब भगवानस्वरूप है, ऐसा यहाँ कहते हैं, हों! आहाहा! सब ज्ञानस्वरूप प्रभु है न! वह आस्रवतत्त्व तो भिन्न है। शरीरतत्त्व भिन्न है। सब भगवान आत्मायें समभाव स्वरूप के पिण्ड पड़े हैं सब। उन्हें ऐसा देखो तो तुमको समभाव होगा। कहो, १६ वर्ष में पुकार किया है यह! समझ में आया?

मुमुक्षु : नकल करें तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : नकल करें तो न लिखा जाये। वहाँ तो अन्दर से फट-फट

चला आवे। उसे नकल करने का आया। पुस्तक रचे सही। वह तो जो है वह आवे न। उसमें क्या है ? तुम पुस्तक बनाते न। वही आवे न। यह लिखा। आत्मसिद्धि तो कितने कहे ? डेढ़ दिन या डेढ़ घण्टा ? डेढ़ घण्टे में लिखा, कहते हैं। आत्मसिद्धि १४२ श्लोक। भाई कौन वे ? अम्बालालभाई लालटेन लेकर खड़े और उठायी... 'जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त' पहली गाथा शुरु की, आत्मसिद्धि। दूसरी बात नहीं ली।

जो स्वरूप समझे बिना पाया दुःख अनन्त
समझाया उन पद नमुँ श्री सद्गुरु भगवन्त।

यहाँ से शुरु किया है। १४२ गाथा डेढ़ घण्टे में। ऐसे के ऐसे लालटेन लेकर खड़े थे। (श्रीमद्जी का) क्षयोपशम बहुत था। गजब का क्षयोपशम लेकर आये हुए। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, **संसारी के लिए शुद्ध आत्मा साध्य है...** यहाँ तो हमारी ध्वनि इतनी उठी। अरे ! संसारीजीव मनुष्यपना पाया। बापू ! उसे तो आत्मा साध्य है। साधनेयोग्य यह है। समझ में आया ? यह व्यापार बढ़ाया और व्यापार साधा। ऐई ! छोटाभाई ! यह नटुभाई एक व्यापार बढ़ानेवाले हैं। कहा, पैसा बढ़े तो क्या करे ? पाप ही बढ़े न फिर। पाप ही। करो यह धन्धा, करो यह धन्धा। जैसे पैसा बढ़े उन्हें डालना कहाँ ? यहाँ तो कहते हैं, भगवान ! ऐसा देह वह... आहाहा ! एक तालाब के अन्दर बड़ा काई का दल हो। लील फूग समझे ? काई... काई। काई होती है न ? काई का दल जमे उसमें। उसके नीचे अन्दर कछुआ हो। कछुआ... काचबा समझे ? कछुआ। कछुआ रहता था। किसी समय ऐसा फटा... चन्द्र देखा। लाओ, मेरे परिवार को कहने जाऊँ। वह जहाँ कहने जाता है, वहाँ काई का दल वापस सँध गया। वे कहे कि ऐसा था। खोटा लगता है। ... शुद्धात्मा का कहेंगे। समझ में आया ?

ओहो ! राग से, निमित्त से और व्यवहार से प्राप्त हो, यह कोई बात ही नहीं। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप वह सीधे अपनी निर्मल पर्याय द्वारा स्वसंवेदन से प्राप्त होता है, वह इस समयसार का प्रयोजन है। समझ में आया ? यह जयसेनाचार्य ने टीका में डाला है, हों ! बाद में आयेगा, टीका में है। **संसारी के लिए शुद्ध आत्मा**

साध्य है और सिद्ध साक्षात् शुद्धात्मा है,... साक्षात्। दूसरे आत्मायें शुद्ध हैं, साक्षात् पर्याय में शुद्ध नहीं। दूसरे आत्मायें द्रव्य से शुद्ध ही है, परन्तु द्रव्य से शुद्ध, उसमें आनन्द कहाँ आया? **सिद्ध साक्षात् शुद्धात्मा है,...** प्रत्यक्ष पर्याय में पूर्ण शुद्ध भगवान सिद्ध परमात्मा हो गये हैं। **इसलिए उन्हें नमस्कार करना उचित है।** संसारी को शुद्ध आत्मा साध्य है, वह शुद्धपना सिद्ध भगवान को प्रगट हुआ है। इसलिए उन्हें नमस्कार करना, यह पहले शुरुआत में बाजबी—उचित और यथास्थान है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सिद्ध ही बात। यहाँ तो सब सिद्ध सत् हो गयी है।

किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया? इसकी चर्चा टीकाकार ने मंगलाचरण पर की है, उसे यहाँ भी समझ लेना चाहिए। सिद्धों को 'सर्व' विशेषण देकर यह अभिप्राय बताया है... इस टीका में मांगलिक में कह गये हैं। अब 'सर्व' ऐसा विशेषण दिया। सर्व सिद्ध कहा न? पहला '**वंदित्तु**' का अर्थ किया। नमस्कार करना उचित है, ऐसा पहले सिद्ध किया। '**वंदित्तु**'। अब 'सर्व' शब्द डाला उसका (स्पष्टीकरण) करते हैं। **यह अभिप्राय बताया है कि सिद्ध अनन्त हैं। 'वंदित्तु सव्व सिद्धे'** 'शुद्ध आत्मा एक ही है', ऐसा कहनेवाले अन्यमतियों का व्यवच्छेद किया। सिद्ध में एक ही शुद्ध आत्मा हो, ऐसा नहीं। अनन्त आत्मायें हैं। सिद्ध भी अनन्त हैं। अपनी सत्ता की शुद्धता प्राप्त है। सत्ता का अभाव नहीं। पर में मिल जाये तो सत्ता का अभाव हो जाये। यह सत्ता की शुद्धता प्राप्त है या सत्ता का अभाव प्राप्त है उन्हें? समझ में आया? सिद्ध परमात्मा अनन्त हुए, वे शुद्ध सत्ता को प्राप्त हैं। अपनी शुद्ध सत्ता की निर्मल हुई। ऐसे सिद्ध अनन्त हैं।

'श्रुतकेवली' शब्द के अर्थ में... अब वह लिया, देखा! श्रुतकेवली। अन्तिम शब्द कहा न? उसका अर्थ करते हैं। **(१) श्रुत अर्थात् अनादिनिधन प्रवाहरूप आगम...** कहा। अनादि-अनन्त प्रवाह। ढाई द्वीप में कभी श्रुत का प्रवाह बन्द हो, ऐसा नहीं होता। ओहोहो! समझ में आया? रात्रि के भाग में? वहाँ रात्रि हो तो यहाँ दिन होता है, यहाँ दिन हो तो वहाँ रात्रि होती है। समझ में आया? श्रुत के प्रवाहपने के शब्द अनादि-

अनन्त प्रवर्त रहे हैं। केवली शब्द से सर्वज्ञ और परमागम के जाननेवाले श्रुतकेवली कहे। केवली '**सुदकेवलीभणिदं**' आया न पहला? '**सुदकेवलीभणिदं**' का अर्थ किया। श्रुत अर्थात् शब्द का प्रवाह कहा। केवली के दो अर्थ किये। **उनसे समयप्राभृत की उत्पत्ति बतायी गयी है। इस प्रकार ग्रन्थ की प्रमाणता बतायी है, और अपनी बुद्धि से कल्पित कहने का निषेध किया है। अन्यवादी छद्मस्थ...** यहाँ सिद्ध को नमस्कार करके इतनी बात की। सिद्ध कैसे हैं, इसका कुछ इसमें काम नहीं। इसलिए कहा कि सिद्ध साक्षात् शुद्ध आत्मा हैं। उसमें आ गया। ध्रुव, अचल, अनुपम, गति चारों शब्द आ गये। सिद्ध साक्षात् शुद्ध आत्मा हैं, ऐसा कहा न? इसलिए प्रत्येक शब्द का अर्थ वापस पण्डित जयचन्द्रजी ने भी ले लिया। समझ में आया? **अपनी बुद्धि से पदार्थ का स्वरूप चाहे जैसा कहकर विवाद करते हैं, उनका असत्यार्थपन बताया है।** लो, अब शुरुआत करते हैं।

इस ग्रन्थ के अभिधेय,... अभिधेय अर्थात् शुद्धात्मा का स्वरूप, वह अभिधेय। कहना है (वह) वाच्य... वाच्य। वह वाच्य—कहनेयोग्य पदार्थ शुद्ध आत्मा। ओहो! परन्तु आस्रवतत्त्व और बन्धतत्त्व की कब बात करोगे? हम तो शुद्ध आत्मा (कहते हैं)। वह शुद्ध आत्मा ही है, उसमें फिर वह नास्ति का ज्ञान आ जाता है। शुद्धात्मा का ज्ञान करने पर आस्रव, बन्ध, अजीव आदि उसमें नहीं, ऐसा उसमें आ जाता है। शुद्ध आत्मा, वह अभिधेय—कहनेयोग्य वस्तु है। वह वाच्य कहा। **उसके वाचक इस ग्रन्थ में जो शब्द हैं...** जैसे मिश्री गांगडो कहे। गांगडो... गांगडो। क्या कहते हैं? डली। उसका मिश्री शब्द वह वाचक है। मिश्री शब्द वह संज्ञा वाचक है। वाच्य वह मिश्री की डली है। उसी प्रकार भगवान शुद्धात्मा अमृत का सागर, वह वाच्य—अभिधेय है। यह वाणी उसकी वाचक है। समझ में आया? ऐसा कहकर भाई! ऐसा कहा कि यह वाचक उस शुद्धात्मा को बताता है। उस वाचक को कहना है शब्दों में यह आया। शुद्धात्मा... शुद्धात्मा। मिश्री शब्द बताता है मिश्री की डली को। यह समयसार शब्द ऐसा बताता है, शुद्धात्मा... शुद्धात्मा... शुद्धात्मा। आहाहा! पुण्य-पाप के विकल्प रहित, देह, कर्मरहित तो है ही, वह तो परद्रव्य है, परन्तु अपनी पर्याय में होता अनित्य तादात्म्य विकार परिणाम, वह भी जिसके तादात्म्य अनादि-अनन्त स्वभाव में है नहीं। ऐसा शुद्धात्मा,

वह यहाँ हमारे अभिधेय—कहनेयोग्य वाच्य है। आहाहा! वे कहे, आत्मा की मांडी सीधे? दूसरी मांडो न (दूसरी बात करो न)। यहाँ तो कहते हैं, हमारे अभिधेय आत्मा ही कहना है। यह तो मांडी है तूने। अब यह अनात्मा का ज्ञान आत्मा के ज्ञान बिना अनात्मा का होगा ही नहीं। समझ में आया? आत्मा—शुद्धात्मा परमानन्द की मूर्ति के भान बिना दूसरे आत्माओं का, अरे! दूसरे केवली और सिद्धों का भी इस आत्मा के ज्ञान बिना पर का ज्ञान होगा नहीं। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, **शुद्ध आत्मा का वाच्यवाचकरूप सम्बन्ध है सो सम्बन्ध है।** अभिधेय शुद्ध आत्मा बताना है, वाचक उसके शब्द हैं। यह वाचक और वाच्य का सम्बन्ध है। दो के बीच का सम्बन्ध है। देखो! यह वाचक शब्द उस वाच्य को कहते हैं। यह अकेला शुद्ध आत्मा। इसी प्रकार यहाँ वाचक शब्द कहते हैं। ओहो! यह आत्मा। भले वह आस्रव और बन्ध की व्याख्या सब की। परन्तु वह सब इसमें नहीं, ऐसे शुद्ध आत्मा को बताते हैं। शुद्ध आत्मा बतलाने का वहाँ हेतु है। हेतु बतलाने का अभी तो, हों! और 'शुद्धात्मा के स्वरूप की प्राप्ति होना, वह प्रयोजन है।' जो बताया है, वैसी उसको प्राप्ति हो, यह इसका प्रयोजन है। आहाहा!

मुमुक्षु : दोनों में सिद्धपना स्थापित करना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह प्रयोजन है। दूसरा क्या प्रयोजन हो? भाई! शुद्धात्मा का स्वरूप आनन्दकन्द ज्ञायकमूर्ति ऐसे स्वरूप की प्राप्ति होना, प्राप्ति होना, वह इस शास्त्र का प्रयोजन है। कहने में यह आया, यह उसे प्राप्त करने का प्रयोजन है। कहने में यह आया तो प्रयोजन क्या है? उसे वह प्राप्ति हो, ऐसा उसका प्रयोजन है। समझ में आया? वह समझे न, तब वाणी के निमित्त से समझा—ऐसा कहा जाता है। ऐसा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अर्थ तो यथाशक्ति किया जाता है। पूरी शक्ति तो यहाँ कहाँ से हो ऐसी?

यह आत्मा-भगवान आत्मा शुद्ध—रागरहित, पुण्यरहित तो कर्म और शरीररहित तो है, परन्तु पर्याय में जरा विकल्प की विकार की दशा की क्षणिक कृत्रिमता है, उससे

रहित आत्मा शुद्धात्मा अभिधेय है। पूरे समयसार का अथवा सारे शास्त्रों का हमारे कहने का अभिप्राय यह है। और उसमें से वापस उसको प्राप्ति होना। कहना, इतना ही रखा नहीं। जो कहा, ऐसी उसे प्राप्ति हो। शुद्ध भगवान आत्मा। उसे वाणी का भी अवलम्बन नहीं, कहा उसका उसे अवलम्बन नहीं। ऐई! वाणी कहा सही न! बापू! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! वाणी तुझे वाचक कही, परन्तु सुननेवाले को उसका अनुसरण करना नहीं। भाई! आया न? समयसार ८वीं गाथा। व्यवहार से बात कहते हैं कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। परन्तु उस व्यवहार को अनुसरना नहीं। अन्दर अनुसरण कर। बापू! यह तो वीतराग का पंथ है। शुद्धात्मा की श्रेणी के रास्ते जाना, यह तो कहते हैं... देखो! वहाँ कहा सही। आत्मा किसे कहना? ... गच्छति इति आत्मा। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, (वह आत्मा)। भेद से प्राप्त हो, इतना कहा, तथापि कहनेवाले को वह व्यवहार अनुसरण योग्य नहीं, अन्त में टीका में ऐसा है, '**व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः**'। उसका अनुसरण नहीं करना। आता है, कहते हैं, उसका अनुसरण नहीं करना। वहाँ करना। आहाहा!

चैतन्य भगवान साक्षात् विराजता है न, भाई! उसकी प्राप्ति वह इस शास्त्र का प्रयोजन है। कोई विद्वत्ता होना या पुण्य को बाँधे, पुण्य बाँधकर फिर स्वर्ग में जाये और पश्चात् भगवान के पास जायेगा, फिर वहाँ समकित पायेगा, ऐसा प्रयोजन शास्त्र का नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो वायदा की बात।

पूज्य गुरुदेवश्री : वायदा भी खोटा। वायदा भी कहाँ था? वायदा तो पैसा पाँच लाख देना हो उसमें से दस भाग पाड़कर पचास-पचास (हजार) दे तो न! उसमें के पचास-पचास दे तो किश्त कहलाये न। हमारे कांधा कहते हैं, तुम्हारे हिन्दी भाषा में कुछ होगा। हप्ता। दस लाख का देना हो न? तो देनेवाला ऐसा कहे कि हम एक साथ नहीं दे सकेंगे। पन्द्रह-पन्द्रह दिन में पाँच-पाँच हजार या दस हजार या पचास हजार का सप्ताह दूँगा। परन्तु पैसा होगा या नहीं? पन्द्रह दिन में भी पचास हजार देना है या नहीं? या अध्धर बातें ही करनी है?

यहाँ तो कहते हैं, शुद्धात्मा हम जो कहते हैं, उसकी प्राप्ति वही हमारा प्रयोजन है। पश्चात् उसका सप्ताह-फप्ता नहीं। पुण्य बाँधूँगा न... ऐसा कितने ही लिखते हैं न? कि पहले अपने पुण्य बाँधो। वहाँ से जायेंगे स्वर्ग में। और स्वर्ग में जाकर फिर वहाँ सीमन्धर भगवान के पास जायेंगे और समकित प्राप्त करेंगे। यह शास्त्र को कहने की पद्धति ही नहीं, कहते हैं। यह सप्ताह ही नहीं। सप्ताह यह है, सप्ताह यह है, शुद्धात्मा की प्राप्ति पहली और पश्चात् स्थिरता करके केवलज्ञान लेना, वह उसका सप्ताह है। समझ में आया? हप्ता दूसरी भाषा होगी। हमारे तो यहाँ की सादी भाषा है।

कहते हैं, भगवान शुद्धात्मा की प्राप्ति। वह प्राप्ति होना, यह प्रयोजन है। यह समयसार कहते हैं, वह आचार्य का आशय दूसरे को प्रयोजन शुद्धात्मा प्राप्त हो, वह उसका प्रयोजन है। प्राप्त होने के योग्य जीव हैं, उनके लिए है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? यह पाँचवीं गाथा में मिलान करेंगे। यहाँ कहते हैं, समयसार, वह प्रवचन का एक अंश है। भगवान के प्रवचन तो सागर फटे हैं। उनकी वाणी में सागर फटे हैं। दिव्यध्वनि की क्या बात! परन्तु उनके पूरे प्रवचन का एक अवयव थोड़ा यह है, एक भाग है, वह भी शुद्धात्मा को बताता है, यह उसका प्रयोजन है। पूरी दिव्यध्वनि भी शुद्धात्मा को बतलाती है, यह अवयव भी शुद्धात्मा को ही बतलाता है। समझ में आया? इसलिए श्रोताओं को शुद्धात्मा प्राप्त करने का प्रयत्न करना, ऐसा यहाँ बताते हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - २

तत्र तावत्समय एवाभिधीयते –

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गल–कम्म–पदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं।।2।।

जीव: चरित्रदर्शनज्ञानस्थित: तं हि स्वसमयं जानीहि।
पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं च तं जानीहि परसमयम्।।2।।

योऽयं नित्यमेव परिणामात्मनि स्वभावे अवतिष्ठमानत्वात् उत्पादव्ययध्रौव्यैक्या–नुभूतिलक्षणया सत्तयानुस्यूतश्चैतन्यस्वरूपत्वान्नित्योदितविशददृशिज्ञप्तिज्योतिरनन्तधर्माधि–रूढैकधर्मित्वादुद्योतमानद्रव्यत्व: क्रमाक्रमप्रवृत्तविचित्रभाव–स्वभावत्वादुत्सङ्गितगुणपर्याय: स्वपराकारावभासनसमर्थत्वादुपात्तवैश्वरूप्यैकरूप: प्रतिविशिष्टावगाहगतिस्थितिवर्तना–निमित्तत्वरूपित्वाभावादसाधारणचिद्रूप–तास्वभावसद्भावाच्चाकाशधर्माधर्मकालपुद्गलेभ्यो भिन्नोऽत्यन्तमनन्तद्रव्यसंकरेऽपि स्वरूपादप्रच्यवनाट्टमोत्कीर्णचित्स्वभावो जीवो नाम पदार्थ: स समय:।

समयत एकत्वेन युगपज्जानाति गच्छति चेति निरुक्ते: अयं खलु यदा सकलभावस्वभाव–भासनसमर्थविद्यासमुत्पादकविवेकज्योतिरुद्गमनात्समस्त–परद्रव्यात्प्रच्युत्य दृशिज्ञप्तिस्वभाव–नियतवृत्तिरूपात्मतत्त्वैकत्वगतत्वेन वर्तते तदा दर्शनज्ञानचारित्रस्थितत्वात्स्वमेकत्वेन युगपज्जानन् गच्छंश्च स्वसमय इति।

यदा त्वनाद्यविद्याकन्दलीमूलकन्दायमानमोहानुवृत्तितन्त्रतया दृशिज्ञप्तिस्वभावनियत–वृत्तिरूपादात्मतत्त्वात्प्रच्युत्य परद्रव्यप्रत्ययमोहरागद्वेषादिभावैकत्वगतत्वेन वर्तते तद पुद्गलकर्म–प्रदेशस्थितत्वात्परमेकत्वेन युगपज्जानन् गच्छंश्च परसमय इति प्रतीयते। एवं किल समयस्य द्वैविध्यमुद्भावति।।2।।

प्रथम गाथा में समय का प्राभृत कहने की प्रतिज्ञा की है। इसलिए यह आकांक्षा होती है कि समय क्या है? इसलिए पहले उस समय को ही कहते हैं:–

जीव चरितदर्शनज्ञानस्थित, स्वसमय निश्चय जानना;
स्थित कर्मपुद्गल के प्रदेशों, परसमय जीव जानना।।2।।

गाथार्थ : हे भव्य! [जीवः] जो जीव [चरित्रदर्शनज्ञानस्थितः] दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित हो रहा है [तं] उसे [हि] निश्चय से (वास्तव में) [स्वसमयं] स्वसमय [जानीहि] जानो [च] और जो जीव [पुद्गलकर्मप्रदेशस्थितं] पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित है [तं] उसे [परसमयं] परसमय [जानीहि] जानो।

टीका : 'समय' शब्द का अर्थ इस प्रकार है :- 'सम्' उपसर्ग है, जिसका अर्थ 'एकपना' है और 'अय् गतौ' धातु है, जिसका अर्थ गमन भी है और ज्ञान भी है, इसलिए एक साथ ही (युगपद्) जानना और परिणमन करना - यह दोनों क्रियायें जो एकत्वपूर्वक करे, वह समय है। यह जीव नामक पदार्थ एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणमन भी करता है और जानता भी है; इसलिये वह समय है। यह जीवपदार्थ सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति जिसका लक्षण है, ऐसी सत्तासहित है। (इस विशेषण से जीव की सत्ता को न माननेवाले नास्तिकवादियों का मत खण्डन हो गया; तथा पुरुष को-जीव को अपरिणामी माननेवाले सांख्यवादियों का मत परिणामस्वरूप कहने से खण्डित हो गया। नैयायिक और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते हैं, और बौद्ध क्षणिक ही मानते हैं, उनका निराकरण, सत्ता को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप कहने से हो गया।) और जीव चैतन्यस्वरूपता से नित्य-उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शन-ज्ञान-ज्योतिस्वरूप है (क्योंकि चैतन्य का परिणमन दर्शन-ज्ञानस्वरूप है)। (इस विशेष से चैतन्य को ज्ञानाकारस्वरूप न माननेवाले सांख्यमतवालों का निराकरण हो गया।) और वह जीव, अनन्त धर्मों में रहनेवाला जो एकधर्मीपना है उसके कारण जिसे द्रव्यत्व प्रगट है; (क्योंकि अनन्त धर्मों की एकता द्रव्यत्व है)। (इस विशेषण से, वस्तु को धर्मों से रहित माननेवाले बौद्धमतियों का निषेध हो गया।) और वह क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव जिसका स्वभाव होने से जिसने गुणपर्यायों को अंगीकार किया है-ऐसा है। (पर्याय क्रमवर्ती होती है और गुण सहवर्ती होता है; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं।) (इस विशेषण से, पुरुष को निर्गुण माननेवाले सांख्यमतवालों का निरसन हो गया।) और वह, अपने और परद्रव्यों के आकारों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से जिसने समस्त रूप को

प्रकाशनेवाली एकरूपता प्राप्त की है–ऐसा है (अर्थात् जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासित होते हैं, ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप है)। (इस विशेषण से, ज्ञान अपने को ही जानता है, पर को नहीं–इस प्रकार एकाकार को ही माननेवाले का तथा अपने को नहीं जानता, किन्तु पर को ही जानता है; इस प्रकार अनेकाकार को ही माननेवाले का व्यवच्छेद हो गया।) और वह, अन्य द्रव्यों के जो विशिष्ट गुण–अवगाहन–गित स्थिति–वर्तनाहेतुत्व और रूपित्व हैं – उनके अभाव के कारण और असाधारण चैतन्यरूपता–स्वभाव के सद्भाव के कारण आकाश, धर्म, अधर्म, काल और पुद्गल – इन पाँच द्रव्यों से भिन्न है। (इस विशेषण से एक ब्रह्मवस्तु को ही माननेवाले का खण्डन हो गया।) और वह, अनन्त द्रव्यों के साथ अत्यन्त एकक्षेत्रावगाहरूप होने पर भी, अपने स्वरूप से न छूटने से टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है। (इस विशेषण से वस्तुस्वभाव का नियम बताया है।) – ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है।

जब यह (जीव), सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति का उदय होने से, सर्व परद्रव्यों से छूटकर दर्शन–ज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप (अस्तित्वरूप) आत्मतत्त्व के साथ एकत्वरूप में लीन होकर प्रवृत्ति करता है, तब दर्शन–ज्ञान–चारित्र में स्थित होने से युगपद् स्व को एकत्वपूर्वक जानता तथा स्व–रूप से एकत्वपूर्वक परिणमता हुआ, वह 'स्वसमय' है; इस प्रकार प्रतीत किया जाता है; किन्तु जब वह, अनादि अविद्यारूपी केले के मूल की गाँठ की भाँति जो (पुष्ट हुआ) मोह, उसके उदयानुसार प्रवृत्ति की आधीनता से, दर्शन–ज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप आत्मतत्त्व से छूटकर परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न मोहरागद्वेषादि भावों में एकतारूप से लीन होकर प्रवृत्त होता है, तब पुद्गलकर्म के (कार्मणस्कन्धरूप) प्रदेशों में स्थित होने से युगपद् पर को एकत्वपूर्वक जानता और पररूप से एकत्वपूर्वक परिणमित होता हुआ 'परसमय' है, इस प्रकार प्रतीति की जाती है। इस प्रकार जीव नामक पदार्थ की स्वसमय और परसमयरूप द्विविधता प्रगट होती है।

भावार्थ : जीव नामक वस्तु को पदार्थ कहा है। 'जीव' इस प्रकार अक्षरों का समूह 'पद' है और उस पद से जो द्रव्य–पर्यायरूप अनेकान्तस्वरूपता निश्चित की जाये, वह पदार्थ है। यह जीवपदार्थ उत्पाद–व्यय–ध्रौव्यमयी सत्तास्वरूप है, दर्शन–ज्ञानमयी

चेतनास्वरूप है, अनन्तधर्मस्वरूप द्रव्य है, द्रव्य होने से वस्तु है, गुण-पर्यायवान है, उसका स्व-परप्रकाशक ज्ञान अनेकाकाररूप एक है, और वह (जीवपदार्थ) आकाशादि से भिन्न असाधारण चैतन्य-गुणस्वरूप है, तथा अन्य द्रव्यों के साथ एक क्षेत्र में रहने पर भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता। ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है। जब वह अपने स्वभाव में स्थित हो, तब स्वसमय है और परस्वभाव-रागद्वेषमोहरूप होकर रहे, तब परसमय है। इस प्रकार जीव के द्विविधता आती है।।2।।

गाथा - २ पर प्रवचन

प्रथम गाथा में समय का प्राभृत कहने की प्रतिज्ञा की है। समय का प्राभृत अधिकार अथवा शास्त्र। **इसलिए यह आकांक्षा होती है...** है न? '**तत्र तावत्समय एवाभिधीयते**'। संस्कृत में इतना है। अब स्पष्टीकरण करते हैं। समय अर्थात् क्या? ऐसा प्रश्न उठाया। **इसलिए पहले उस समय को ही कहते हैं :— 'तावत्समय एवाभिधीयते'।** क्योंकि प्रश्न (हुआ कि) तुम क्या कहते हो? यह अध्धर रखा, अध्धर रखा। '**समय एवाभिधीयते**' अब हम समय को कहेंगे।

जीवो चरित्तदंसणणाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।
पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं॥२॥

जीव चरितदर्शनज्ञानस्थित, स्वसमय निश्चय जानना;
स्थित कर्मपुद्गल के प्रदेशों, परसमय जीव जानना॥२॥

हे भव्य जीव! पहले थोड़ा शब्दार्थ-अन्वयार्थ लेते हैं। **जो जीव दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित हो रहा है, उसे निश्चय से (वास्तव में) स्वसमय जानो...** भगवान आत्मा... देखो! भाषा ऐसी ली है। चारित्र, दर्शन, ज्ञान का विषय जो आत्मा, उसमें स्थिर हो—ऐसा नहीं लिया। आत्मा अनादि से ऐसे पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित है अर्थात् कि विभाव में, उसे अपने आत्मा के दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थाप। ऐसा यहाँ कहा, देखा! वरना तो '**भूदत्थम**' दर्शन को आत्मा का आश्रय बना, आत्मा का ध्येय बनाकर दर्शन प्राप्त कर। यह तेरी पर्याय गुलाँट खाती है, उल्टी, उसे सुलटी पर्याय में

आत्मा को स्थाप। कर्तारूप से सिद्ध करके आत्मा स्वयं यहाँ स्थाप, ऐसा सिद्ध करते हैं। क्या कहा, समझ में आया? **दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित हो रहा है, उसे निश्चय से (वास्तव में) स्वसमय जानो...**

और जो जीव पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित है... देखो! पुद्गलकर्म के प्रदेशों, ऐसा शब्द लिया है। कहीं जड़ के रजकण में स्थित नहीं होता। परन्तु वहाँ उसका लक्ष्य जाता है न, इसलिए अकेले विभाव के परिणाम में स्थित हो जाता है। वह पुद्गलकर्म के प्रदेश में स्थित है। भगवान आत्मा की पर्याय में स्थित नहीं। भगवान आत्मा की पर्याय तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल (होती है), उसमें स्थित, वह स्वसमय और वह आत्मा की पर्याय है। समझ में आया? परन्तु भगवान आत्मा अपने दर्शन, ज्ञान, चारित्र की निर्मल पर्याय में स्थित न होकर ऐसे पुद्गल कर्म के पर के लक्ष्य से स्थित, श्रद्धा, ज्ञान और स्थिरता पर में करता है, इससे मिथ्यादर्शन, अज्ञान और अव्रत के राग के परिणाम में स्थित हुआ, उसे परसमय कहा जाता है। आहाहा!

गजब समयसार भी! इस भरतक्षेत्र का... अमृतचन्द्राचार्य स्वयं कहते हैं न? अद्वितीय चक्षु है। अजोड़ चक्षु। पीछे आता है न? अजोड़ चक्षु। श्लोक आता है न? देखो! अन्त में। अजोड़ चक्षु। पूरा करते हैं न जब (पूरा करते हैं) (वहाँ)। २४५ (कलश)।

इतमेकं जगच्चक्षुरक्षयं याति पूर्णताम्।
विज्ञानघनमानन्दमयमध्यक्षतां नयत्॥२४५॥

अक्षय अद्वितीय नेत्र समान है, देखो! अक्षय अद्वितीय नेत्र समान है। '**एकम्**' '**एकम्**' अद्वितीय अजोड़ शास्त्र है। अजोड़ एक है। टीकाकार ने अर्थ किया है। अद्वितीय नेत्र समान जगत का चक्षु है। देखो! जगत-चक्षु है न? '**इदम् एकम् जगत-चक्षु।**' पूरा करते हैं। यह जगत की आँख है। समयसार अद्वितीय अजोड़ एक शास्त्र, उसका वाच्य जिसे कहा, वह जगत का साक्षी है। जगत की आँख है वह। दुनिया का देखनेवाला है भगवान आत्मा। समझ में आया?

उसे परसमय जानो। यह शब्दार्थ (हुआ)। अब टीका में अमृतचन्द्राचार्य महाराज इतना स्पष्ट करते हैं।

टीका :- 'समय' शब्द का अर्थ इस प्रकार है :- 'सम्' उपसर्ग है, जिसका अर्थ 'एकपना' है... एक साथ। और '**अय् गतौ**' धातु है, उसका गमन अर्थ भी है और ज्ञान अर्थ भी है;... '**अय् गतौ**' गमन है और '**अय्**' अर्थात् ज्ञान है। **इसलिए एक साथ ही (युगपद्) जानना और परिणमन करना - यह दोनों क्रियायें जो एकत्वपूर्वक करे वह समय है।** देखो! भाषा। भगवान आत्मा एक समय में जाने और उस समय में जाननेरूप प्रगटे और परिणमे। जाननेरूप हो और उस जाननेरूप परिणमे, ऐसा दोनों समय— आत्मा है। समझ में आया? एक साथ जानना और परिणमन करना, यह दो क्रियायें जिसमें हो, वह समय है। जड़ में नहीं। जड़ में परिणमन है, ज्ञान नहीं। जानता है, जानता है, वही उस काल में परिणमता है। जानता हुआ परिणमता है, परिणमता हुआ जानता है, जानता हुआ परिणमता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब साथ है न, ऐसा कहते हैं। जानना और परिणमना। क्रिया जानने की। नया-नया जानना हो, वह परिणमे और उसे जानता हुआ परिणमे। दूसरे पदार्थ में यह नहीं होता। भगवान आत्मा ज्ञान का होना, अर्थात् जानना, जानना द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों का आवे। परिणमन उसका पर्याय में आवे। जानना, वह जानने की पर्याय द्रव्य-गुण-पर्याय सबको जाने। जानना और परिणमना। परिणमना पर्याय में है। एकसाथ सबको जानना और परिणमना, ऐसा भाव समय-जीव में ही होता है। समझ में आया? राग और विकार करना, ऐसा समय में है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो जाने और परिणमे, ऐसे समय को जीव कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

यह जीव नामक पदार्थ एकत्वपूर्वक एक ही समय में परिणमन भी करता है... परिणमता भी है। दूसरा लेना है न साथ में। **और जानता भी है;...** समझ में आया? जानता ज्ञान, नया-नया होता ज्ञान, जानता स्वद्रव्य-गुण-पर्याय को जानता हुआ, अपने आत्मा को जानता हुआ और परिणमता है। जानना और होना-परिणमना, यह जीव में ही है। जानना और होना—परिणमना, यह जीव के अतिरिक्त चार में नहीं, जड़ में नहीं। जड़ में परिणमना है, जानना नहीं। इस बात की विशेषता... भगवान आत्मा जाननेरूप

परिणमता है और जानना, वह काम साथ ही होता है। ऐसे जीवपदार्थ को यहाँ समय कहा जाता है।

यह जीवपदार्थ कैसा है ? सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से,... अब आया। वह सदा ही परिणमनस्वरूप जीव स्वयं। देखो! अन्यमत में ऐसा तत्त्व नहीं होता। भले आत्मा... आत्मा... आत्मा... करे। इससे '**जीवो**' यह शब्द पड़ा है पहला। '**जीवो**' की व्याख्या सात बोल से करेंगे। '**जीवः**' '**जीवः**' इस जीव के सात बोल लेंगे। उसे जीव कहना। समझ में आया ? जो सदा ही परिणमनस्वरूप है। भगवान आत्मा सदा ही, देखो! परिणमनेस्वरूप उसका स्वरूप है। किसी के कारण से परिणमे, ऐसा नहीं। कहीं काल को सिद्ध करना हो तो ऐसा कहा जाता है कि काल न हो तो जीव परिणमे नहीं। परन्तु यह तो निमित्त साबित करने के लिये बात है। परिणमना तो उसका अपना स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। काल हो तो ही परिणमता है, एक का होना वह दूसरे के परिणमन का होना है, (ऐसा नहीं है)। समझ में आया ? सदा ही परिणमनस्वरूप। सदा ही शब्द से किसी समय परिणमन बिना का वह नहीं।

मुमुक्षु : थक न जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो कहा है न। प्रवचनसार में कहा नहीं ? विश्राम... वहाँ थकान नहीं लगती। केवलज्ञान को थकान नहीं, दुःख नहीं। परिणमना, वह तो उसका स्वयप ही है। समझ में आया ? यह आता है एक गाथा में। कौनसी गाथा ? केवलज्ञान की बात है वहाँ। केवलज्ञान हुआ ही करे। एक समय में परिणमा करे और हुआ करे (तो) खेद नहीं होता होगा ? कहते हैं, परिणमन तो स्वरूप है, वहाँ आनन्द है। एक शब्द में है कहीं यह। सुखरूप है, खेद नहीं। समझ में आया ? शास्त्रों में तो सब बहुत संक्षिप्त-संक्षिप्त में भरा होता है न ?

यहाँ कहते हैं, **सदा ही परिणामस्वरूप...** देखो! पहले उत्पाद-व्यय और ध्रुव लिया। आहाहा! उसको उत्पाद-व्यय-ध्रुव शब्द बत्तीस सूत्र में ऐसे प्रश्न होते नहीं। साधु बाईस भाषा का जानकार। ऐसी भाषा लडावे। क्या कहते हैं ? यह छह पुत्र हुए न ? देवकी। भाषा भूल गये। 'माता श्री कृष्णजी की मुनि तू जो सुणावे रे...' छह-छह

साधु जाते हैं न, दो-दो साधु श्री कृष्ण के पहले हुए न ? छह साधु हुए हैं। देवकी को छह पुत्र हुए न ? छह। बाद में संहार, उपसंहार होकर अन्यत्र ले गये थे न। वहाँ पालन पोषण हुआ था और छहों जनें मुनि हुए हैं। ऐसे देखो तो कृष्ण के अवतार जैसा महापुण्य! दो-दो साधु देवकी के यहाँ आहार लेने आवे। देवकी के घर। पहले आ जाते हैं, वहाँ दूसरे आते हैं, फिर तीसरे आते हैं। महाराज! यह मेरे कृष्ण की द्वारिका में आप एक ही घर में बारम्बार क्यों आये ? कारण कि कितनी बड़ी नगरी है। महाराज! आप तो महासन्त हो। कहते हैं, माता श्रीकृष्णजी की मुनि तु जो सुणावे रे... वे बोलते थे। लोगों को ऐसा... तत्त्व क्या है, वह तो बात हुई। लोग प्रसन्न-प्रसन्न। रायचन्द गाँधी भी थे। आहा! क्या है परन्तु तुम्हारे ? वह तो बात का रूप है और देशी रीति से बोलें तो लोगों को आहाहा! हो जाता है। परन्तु तत्त्व तो देख। पहले तत्त्व देखे बिना अकेली गाथा गाये। भाषा किस काम की वहाँ ? उन मुनि को पूछते हैं, प्रभु! तुम दूसरी बार क्यों आये ? तब कहते हैं, हे माता! हम वे नहीं, वे नहीं। हम एक माँ के छह पुत्र हैं। उन्हें कुछ इसकी खबर नहीं कि यह देवकी के हैं। दूसरा गया था सही न। हम तो एक माता के छह पुत्र हैं। ... ३२ रानियाँ हमारे थी। ... हमको वैराग्य हुआ। छहों जनें दीक्षित हुए हैं। हम ... पारणे में दो-दो दिन के अन्तराल में हमारा आहार है। छहों जनें दो-दो जनें निकले हैं, परन्तु हम वे नहीं, माता! वहाँ देवकी को ऐसा लगता है, अरे! मेरे कृष्ण जैसा तीन खण्ड में कोई पुरुष नहीं। उनके जैसे पुत्र लगते हैं। यह कौन है ? शंका पड़ती है। श्रीकृष्ण जैसे छह लगते हैं। अपने पुत्र हैं, उसे खबर नहीं। भगवान के निकट जाते हैं। ऐसा उसमें तो आता है। देवकी! तेरे पुत्र हैं। उसमें तो ऐसा आता है न। वाणी करे न। यहाँ तो भगवान की दिव्यध्वनि होती है। ऐसे देखकर (देवकी के) स्तन में दूध आता है। तेरे पुत्र हैं, अन्यत्र पालन-पोषण हुआ है। फिर चरण वन्दन करने जाती है। ओहो! धन्य अवतार... धन्य अवतार! माता को भी तूने उज्ज्वल किया। ऐसा करके चरण-वन्दन करती है। आहाहा! रतन के अवतार जैसे। एकदम खुमारी चढ़ी है। अन्तिम भव है, चरमशरीर है। बोले पाठ, परन्तु आत्मा तत्त्व क्या है ? तत्त्वदृष्टि ज्ञायक की प्रगटी है, उसके स्वरूप में रमते हैं, ऐसे ये सन्त हैं। समझ में आया ? मात्र ऐसा का ऐसा माना, देव-गुरु-शास्त्र यह मान्य और ऐसे माना। ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं।

समझ में आया? आहाहा! उसके ध्येय में अन्दर दृष्टि में भगवान तैरते हैं और जिसकी स्थिरता में आनन्द की लहर उठती है। आनन्द की लहर। अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ पर्याय में आती है। समुद्र उछले और जैसे पानी आवे—ज्वार—बाढ़... बाढ़, इसी प्रकार पर्याय में आनन्द (आता है)। वे मुनि भिक्षा के लिये आये हैं और श्रीकृष्ण के स्वयं ही सगे भाई हैं। इसलिए उसे शंका पड़ी। भगवान के पास स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया? परन्तु पहले यह देखे। यह सब आता हो, इकट्ठा यह बोलो। (संवत्) १९७९ के ज्येष्ठ कृष्ण ३-४ की यह बात है। पंचमी को तो ... गये थे। १९७९।

कहा, उत्पाद-व्यय और ध्रुव ३२ सूत्र में कहाँ है? शब्द कहाँ है, इतनी ही बात। ऐसे प्रश्न तो हमारे चलते नहीं। न चलते हों तो इसका अर्थ क्या? कहा। देखो! यह पहला बोल आचार्य ने लिया। अमृतचन्द्राचार्य। '**जीवः**' बाद में लेंगे '**जीवः चारित्रदर्शनज्ञानस्थितः**'। **यह जीव-पदार्थ कैसा है? सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में...** यह उसका स्वभाव है, परिणमन उसका स्वभाव है। किसी के कारण से परिणमना, ऐसा स्वभाव नहीं। **सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में...** परिणमनस्वरूप स्वभाव में **रहा होने से,...** देखो! कारण दिया। पण्डितजी! यहाँ तो एक-एक शब्द का वाच्य जो हो, वह बराबर आना चाहिए न! अमृतचन्द्राचार्य ने तो गजब टीका की है। मूल पाठ में है न? देखो न! '**योऽयं नित्यमेव परिणामात्मनि स्वभावेऽवतिष्ठमानत्वादुत्पाद-व्ययध्रौव्यैक्यानुभूतिलक्षणया**' लो! यह उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकतारूप अनुभूति जिसका लक्षण है। पुद्गल में भी अनुभूति कहीं आता है न? भाई! पुद्गल में आता है। पुद्गल अनुभूति। अनुभूति अर्थात् उसरूप होना। यहाँ तो ज्ञान के सहित की अनुभूति है। पुद्गल में भी दो, चार, पाँच इकट्ठे हों, उसे अनुभूति कही है। उसरूप होना। यहाँ तो ज्ञानसहित अनुभूति है।

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति... अनुभूति अर्थात् अनुभवना, ऐसा यहाँ नहीं। यहाँ तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव का एकरूप होना। बस इतनी बात है। समझ में आया? कहते हैं, **सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से,...** वजन कहाँ देना है? **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति...** उत्पाद-नयी अवस्था उपजे,

पुरानी जाये और ध्रुव (रहे)। तीन का होना, तीन का होना। अनुभूति-तीन का होना, ऐसा **जिसका लक्षण है, ऐसी सत्ता सहित है।** समझ में आया? वरना तो यहाँ ज्ञान का अनुभव, वह अभी काम नहीं। यहाँ तो सत्, वह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्युयक्तं सत्। सत् द्रव्य लक्षणं। सत्—है, वह द्रव्य का लक्षण। सत् उत्पाद-व्यय-ध्रुव लक्षणं। यह सिद्ध किया पहले। समझ में आया? '**जीवः**' इसमें से यह पहले शुरु किया आचार्य ने। आहाहा! जो **सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की-तीनों की-एकतारूप अनुभूति...** अर्थात् होना। तीन का होना, ऐसा **जिसका लक्षण है ऐसी सत्ता सहित है।** ऐसी सत्ता से स्वयं सहित है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव की—तीन की एकतारूप सत्ता से सहित है। समझ में आया? यह जीव ऐसा ऐसे पहले में पहला समय कहने में आत्मा कहा, उसमें आत्मा ऐसा है पहले, यह बात एक शब्द से सिद्ध की है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण ४, शुक्रवार, दिनांक - ०५-०८-१९६६
गाथा - २, प्रवचन - ८

यह समयसार शास्त्र है। जीव-अजीव अधिकार की दूसरी गाथा चलती है। स्वसमय और परसमय किसे कहना, इसके लिये यह गाथा है। अर्थात् कि धर्म परिणत जीव कैसा होता है और अधर्म परिणत जीव कैसा होता है, उसका यहाँ वर्णन है। समझ में आया? स्वसमय की बात है न? स्वसमय और परसमय, यह परिणत की अपेक्षा से बात है। धर्मरूप हुए आत्मा और धर्मरूप नहीं हुए आत्मा का क्या स्वरूप है? ऐसा वर्णन करते हुए पहले अभी तो समय (का) वर्णन किया। स्वसमय और परसमय बाद में वर्णन करेंगे। पहले तो समय (का) वर्णन किया, समय। यह टीका में पीछे बीच में है। '**स समयः, समयत एकत्वेन युगपज्जानाति गच्छति**' क्या कहते हैं? कि समय किसे कहना? पश्चात् स्वसमय और परसमय। पर्याय का वर्णन-परिणमन। निर्मल पर्याय का वर्णन, हों! परिणमन तो उसमें—समय में सिद्ध किया।

समय अर्थात्, समय अर्थात् यहाँ जीव लेना है। एक समय में अय अर्थात् जाने और परिणमे। '**गच्छति**' ऐसा है न? '**गच्छति**' एक समय में जाने और परिणमे, '**गच्छति**' अर्थात् परिणमे, उसे यहाँ समय कहते हैं। तो वह समय जीव है। दूसरे में ऐसा एक समय में जानना और परिणमना, ऐसा नहीं है। परिणमना ऐसा दूसरे—जड़ में है, परन्तु जानना, ऐसा एक समय में परिणमने के काल में वह वस्तु दूसरे में नहीं। इसलिए पहला अर्थ समय का लिया। समय कैसा, यह आया न? **जीव नाम का पदार्थ एक ही समय में जानता और परिणमता है, इसलिए वह समय है।** है? कहाँ है? यह वहाँ प्रमुख है पोरबन्दर में। अभी आये हैं। इसके लिये तो सामने पुस्तक रखते हैं। तुम वहाँ वाँचनकार किस प्रकार वाँचते हो वहाँ?.... पाठ चलता है कुछ और जहाँ हो वहाँ... परन्तु कहाँ सुधारना? पूरा समयसार पड़ा है। यहाँ समझ में आया?

यहाँ अपने चलता है, '**चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण**'। और

'पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाण परसमयं'। अधिकार तो यह लेना है, भाई! परन्तु इससे पहले अमृतचन्द्राचार्य ने समय का अर्थ लिया कि समय किसे कहना। एक समय में जाने और परिणमे, उसे समय कहना। वह तो समय जीव है। यहाँ तक सिद्ध किया। **यह जीवपदार्थ कैसा है ?** पहला बोल। सात बोल उठायेंगे। **'जीवः'** शब्द पहला पड़ा है न। यह जीव के सात बोल उठायेंगे। जीव किसे कहना? समय किसे कहना? धर्म करनेवाला कैसे है? कौन है? धर्मरूप परिणमनेवाला या अधर्मरूप परिणमनेवाला वह जीव है कैसा? इसलिए पहले जीव शब्द शुरु किया है। जीव के सात बोल से जीव का वर्णन करते हैं। पहला यह देखो!

यह जीवपदार्थ कैसा है? सदा ही परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से,... है? निकालो। यह शरीर में छोटा दिखता है। कितने वर्ष हैं खबर है तुमको? इसे कितने वर्ष हुए होंगे? ८१। अस्सी के ऊपर एक। क्या है देखो! **यह जीवपदार्थ कैसा है ?** यह जीव पदार्थ। क्योंकि इसे समय कहा। सम-अय। सम्यक् प्रकार से गमन और जानना, यह उसमें है। ऐसा जो यह आत्मा। आत्मा धर्म करनेवाला, उसकी पर्याय में भी उसका स्वरूप क्या है? तब कहते हैं कि, पहला अस्ति से शुरु किया है। है, उसकी व्याख्या होती है न? है वह। है सत्। उसमें भी लिखेंगे—भावार्थ में भी लिखेंगे। समझ में आया? पदार्थ कैसा है? **'जीव' इस प्रकार अक्षरों का समूह 'पद' है और उस पद से जो द्रव्यपर्यायरूप अनेकान्तस्वरूपता निश्चित की जाये, वह पदार्थ है।** यह भावार्थ में लेंगे। क्योंकि सत् पद प्ररूपणा वहाँ से शुरु (किया है)। अमृतचन्द्राचार्य ने यह शुरु किया।

आत्मा है। यह आत्मा है। तो है तो कैसा है? कि **सदा ही परिणामस्वरूप...** स्वयं सदा बदलने के स्वरूप ऐसे स्वभाव में रहा हुआ। भाषा देखो! समझ में आया? वह स्वयं सदा परिणमनस्वरूप ऐसा स्वभाव, उसमें रहा हुआ होने से। भाई! ऐसा लिया। **परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से,...** भाषा तो देखो! **परिणामस्वरूप स्वभाव में रहता हुआ होने से,...** ऐसा लिया है। भाषा ऐसी है सही न! **'जीवो चरित्तदंसण-णाणठिदो तं हि ससमयं जाण'।** ऐसा स्थापित करेंगे न? भगवान आत्मा, उसे समय

कहते हैं कि जो समय सदा अर्थात् तीनों काल परिणमनस्वरूप-बदलने के स्वरूप ऐसा जो स्वभाव। बदलने के स्वरूप ऐसा जो स्वभाव। उसमें रहा होने से। ओहोहो! टीका भी अमृतचन्द्राचार्य ने...!

उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप... उत्पाद सदा परिणमन स्वभाव में रहा हुआ होने से उसकी नयी अवस्था की उत्पत्ति, पुरानी का व्यय, सदृशता का कायम रहना। जाति की भात कायम रहना। और उत्पाद-व्यय। इन तीनों का एक समय, हों! **उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप...** देखो! वापस समय एक है। समझ में आया? **अनुभूति...** अर्थात् होना। एकतारूप का रहना, होना। परिणमनस्वभाव में रहा हुआ होने से। उसे भाव में ख्याल आना चाहिए न! ऐसा का ऐसा वाँचे और समझे (ऐसा नहीं चलता)। यह आत्मा अपने परिणमनस्वभावरूप ऐसे स्वभाव में रहा हुआ होने से, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य की एकतारूप अनुभूति अर्थात् होना। अनुभूति अर्थात् यहाँ अनुभवना, ऐसा यहाँ नहीं। होना। उत्पाद-व्यय। नयी अवस्था से उपजे, पुरानी अवस्था बदले और ध्रुवरूप रहे, ऐसे अपने परिणमनस्वभाव में इस प्रकार से स्वयं रहा हुआ उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकतावाला स्वरूप **जिसका लक्षण है...** ऐसा जिसका लक्षण है। कहो, समझ में आया? **ऐसी सत्ता से सहित है...** लो, यह सिद्ध किया।

द्रव्य सत् लक्षणं। सत्—उपाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्। पहले से शुरु किया वहाँ से। भगवान आत्मा द्रव्य है, इससे अस्तिवाला उसका लक्षण है। सत् उसका लक्षण है। सत् लक्षण और द्रव्य, वह लक्ष्य है। सत् लक्षण और द्रव्य, वह लक्ष्य। द्रव्य अर्थात् क्या? द्रव्य क्या? आत्मा। यहाँ आत्मा की बात चलती है न। सत् वह लक्षण है, द्रव्य वह लक्ष्य है। अब यहाँ से। सत् वह लक्षण है। सत्ता लक्षण है। उत्पाद-व्यय-ध्रुव वह लक्षण है और सत्ता, वह लक्ष्य है। यह सिद्ध किया। आहाहा! अपने कारण से आत्मा अपने में उत्पाद-व्यय-ध्रुव से परिणमता हुआ अपने में एकरूप होकर रहता है। सदा ऐसा रहता है, ऐसा कहा, भाई! सदा-तीनों काल। निगोद से लेकर सिद्ध।

मुमुक्षु : तीन काल के सामने एकान्त.... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह यहाँ बात नहीं। यहाँ अभी चलता है उसका लो न। यहाँ

तो उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों की बात है। अभी अभ्यास करो धीरे-धीरे। समझ में आया? परमपारिणामिक, वह तो अकेला ध्रुव स्वभाव। वह यहाँ कहाँ है? तीन बोल इकट्ठे लिये न! उत्पाद-व्यय-ध्रुव की एकता सत्ता। सत्ता अर्थात् द्रव्यसत्ता-ध्रुवसत्ता, वह नहीं। सत्ता उसे कहते हैं कि जो उत्पाद-व्यय-ध्रुववाली हो। यह अभी, वह परमपारिणामिक कहाँ है। यह निर्णय करने के बाद की बात है। समझ में आया?

भगवान आत्मा स्वयं सदा बदलने के स्वभाव में... स्वभाव में रहा हुआ होने से। बदलने के स्वभाव में रहा हुआ होने से। लो, यह याद आया। ऐ..! तुम्हारे शास्त्री ने कितना माँडा था उसमें। कितने पत्र लिखे। ऐसा है और वैसा है। यहाँ तो पहले नम्बर में कहते हैं... हमारे एक शास्त्री थे। अमरेलीवाले हैं। यहाँ आ गये थे। पढ़ा हुआ, वाँचन किया हुआ बहुत। परन्तु वेदिया जैसा बहुत। एक परिणमन स्वभाव में तो कितनी बातें! पंचाध्यायी में से कितने लेख करे। कहा, द्रव्य का परिणमन स्वभाव है। अब, फलाने के कारण परिणमन है, ऐसा है नहीं। देखो! इस पहले बोल में यह आ गया।

मुमुक्षु : इसमें अविभाग प्रतिच्छेद....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब लाख अविभाग प्रतिच्छेद भले उसके हो। परन्तु उस परिणमन स्वभाव में रहा हुआ ऐसा आत्मतत्त्व, वह स्वयं से उत्पाद-व्यय-ध्रुव से एकरूप रहा हुआ है, हुआ है, होता है। यह तो याद आया। पहली ही बार आया यह। आहाहा! ऐसी सत्ता-अस्तित्व, उत्पाद-व्यय-ध्रुव युक्तं सत्ता से वह आत्मा है। इस प्रकार भाषा है। समझ में आया? ओहोहो! कोई भी शास्त्र का शब्द लो तो वह अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, परभाव से नहीं। ऐसा त्रिकाल सिद्ध करते हैं।

इस विशेषण से जीव की सत्ता को न माननेवाले... है ही नहीं, ऐसा मानते हैं न? जीव है ही नहीं। जीव है नहीं, ऐसा किसने निश्चित किया? जीव है नहीं, यह किस सत्ता में निश्चित किया? ऐरण हो, ऐरण। ऐरण समझे न? सोनी की ऐरण होती है न? सोनी की लोहे की ऐरण होती है न? उसमें घढ़े न! लोहे की उसे क्या कहते हैं? ऐरण। उसमें से गहने घढ़ते हैं न? परन्तु नीचे कोई आधार है या नहीं? उसमें वह घढ़ते हैं या आकाश में ऐसे के ऐसे घढ़ते हैं? उसी प्रकार कहते हैं, कोई सत्ता है या नहीं? समझ

में आया ? है या नहीं ? यदि नहीं, ऐसा कहे, वह किसकी अस्ति में 'नहीं', ऐसा निर्णय किया ? यह नहीं कहते हो, वहाँ अस्ति है। जिस ज्ञान की अस्ति में, जिस ज्ञान की अस्ति में, मैं नहीं—ऐसा जो कहता है, वहाँ मैं हूँ—ऐसा निश्चित हो जाता है। श्रीमद् में ऐसा कहा है, हों! 'ना ना नास्ति विचार।' नास्ति नास्ति करने जाये, वहाँ अस्ति होती है। तू कहाँ जायेगा ? ऐसा है उसमें ? 'करी कल्पना दृढ़ करे, ना ना नास्ति विचार, पण वे अस्ति सूचवे यही खरा निर्धार।' श्रीमद् ने बहुत संक्षिप्त में बहुत-बहुत कहा है। नहीं नहीं करने जाये, जिस भूमिका में नहीं करने जाये, वहाँ अस्ति सिद्ध हो जाती है। कहो, समझ में आया इसमें ? कहो, यह तो बालक को समझ में आये ऐसी है। इसमें कहीं ऐसी बहुत गहरी नहीं। आहाहा!

जीव की सत्ता को न माननेवाले नास्तिकवादियों का मत खण्डन हो गया;... भगवान! तू है न। 'घट पट आदि जान तू जिससे उसको मान, जाननहार को मान नहीं, यह कैसा हुआ अज्ञान ?' सत्ता पहले सिद्ध करते हैं। है उसकी बात होती है। पश्चात गुण कितने, फलाना क्या। है, उसकी बात हो या न हो, उसकी बात होगी ? आत्मा है। जो उसे नहीं माननेवाला, उसका खण्डन किया। **तथा पुरुष को-जीव को अपरिणामी माननेवाले...** जीव है परन्तु कूटस्थ है। कूटस्थ। शिखर की भाँति। शिखर होता है न, वह ऐसे ऊपर से हिले नहीं। पानी में जैसे द्रवता है, वैसे ऐसे द्रवता है, ऐसा वह नहीं मानते। ऐसा **माननेवाले सांख्यवादियों...** सांख्यमति अर्थात् कोई भी इस जाति के अभिप्रायवाले हों, उनका खण्डन किया।

मुमुक्षु : जैन में ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन में ऐसे मतवाले हों, उनका भी खण्डन किया। नहीं कहा वहाँ ? सर्वविशुद्ध अधिकार में। सांख्यमत के अभिप्रायवाले हमारे शिष्य ऐसा कहते हैं कि आत्मा में पर के कारण से ही विकार (होता है)। कर्म के कारण से ही विकार होता है। है न ? सर्वविशुद्ध अधिकार। समझ में आया ? सांख्यमतियों के जैसे आशयवाले शिष्य हों, उनसे कहते हैं कि भाई! ऐसा नहीं। तेरा विकार तुझसे होता है। वह आता है न ? जीव सुलावे, जीव जगावे और जीव ज्ञान करावे, उघाड़ करावे। उसमें उस गाथा में

यह है वहाँ। जयसेनाचार्यदेव की टीका में लिखा है कि सांख्यमति के अभिप्राय वह स्वयं... करता है। ऐसा पाठ आता है न? सांख्यमति के ऐसी मान्यतावाले जैन में हों, उन्हें भी खण्डित किया। कर्म के कारण से, कर्म के कारण से। भाई! कर्म तो परद्रव्य है। तेरे कारण से तुझे हुआ। निमित्त हो, परन्तु विकार तूने किया, ज्ञान का उघाड़ तूने किया, आवरण भी तूने किया, भाव आवरण तूने किया तब उसको (कर्म को) निमित्त कहा गया है।

इसीलिए कहते हैं कि **अपरिणामी माननेवाले...** नहीं बदलता आत्मा, नहीं पलटता आत्मा, ऐसा माननेवाले का व्यवच्छेद किया। ऐसा नहीं। तू बात करता है, उसमें परिणमता है या नहीं क्षण-क्षण में? देखो न! अलग... अलग... अलग भाव परिणमते हैं या नहीं? और वह का वह रहता है या नहीं? ऐसा हो, ऐसा हो, ऐसा हो — ऐसा कहने में परिणमन है। और परिणमन वापस ऐसा हो, ऐसा लम्बाता है तो ध्रुव भी है। समझ में आया? ऐसे परिणमन में ऐसा हो, ऐसा करता जाये, वहाँ पहला बदलता जाता है, नया होता जाता है, बदलता जाता है। वस्तु वह की वह रहती है। **परिणमनस्वभाव कहने से हो गया। नैयायिक और वैशेषिक सत्ता को नित्य ही मानते हैं,...** अकेली नित्य ही है। उसका भी खण्डन (हुआ)। **और बौद्ध क्षणिक ही मानते हैं, उनका निराकरण, सत्ता को उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यरूप कहने से हो गया।** एक बोल हुआ।

दूसरा बोल। **और जीव कैसा है?** जीव। बस, एक '**जीव**'। एक शब्द के सात अर्थ करते हैं। कैसा है वह जीव? **चैतन्यस्वरूपपने से...** चैतन्यस्वरूप जानना-देखना, ऐसा चैतन्यस्वरूप। क्योंकि जीव है, वह चेतन है और इस चैतन्यस्वरूपपने से **नित्य-उद्योतरूप...** है। नित्य-उद्योतरूप है। कायम प्रकाश-प्रकाशरूप है। **निर्मल स्पष्ट...** वापस। निर्मल स्पष्ट। निर्मल और प्रत्यक्ष। **दर्शन-ज्ञान-ज्योतिस्वरूप है...** कहो, समझ में आया? चैतन्यस्वरूपपने से, जानने-देखने के स्वरूपपने के कारण नित्य उद्योतरूप है। निर्मल और स्पष्ट प्रत्यक्ष **दर्शन-ज्ञान-ज्योतिस्वरूप है...** ऐसा यह आत्मा, उसे यहाँ जीव कहा जाता है। पश्चात उस जीव का परिणमन। परिणमता तो है, परन्तु स्वलक्ष्य से परिणमे तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित, ऐसा धर्म कहा जाता है। परलक्ष्य से परिणमे तो वह परसमय, ऐसा मिथ्यादृष्टि कहा जाता है। समझ में आया?

और, यह आ गया मस्तिष्क में। वह आता है न? भाई! स्वसमय परसमय लिया है न रयणसार में? अर्थात् कि बहिरात्मा और अन्तरात्मा परसमय है और परमात्मा स्वसमय है। यह वहाँ दूसरी बात है, यहाँ दूसरी बात है। यहाँ तो मिथ्यादृष्टि को ही परसमय कहा है। वह तो सूक्ष्म की बात वहाँ ली है। इसलिए कितने ही ऐसा कहते हैं कि देखो! स्वसमय तो तेरहवें गुणस्थान में होता है। ऐसा पत्रिकाओं में आता है। केवली को स्वसमय होता है। नीचे तो अभी सबको परसमय होता है। यहाँ तो कहते हैं, परसमय मिथ्यादृष्टि को होता है। समझ में आया? और सम्यग्दृष्टि को स्वसमय होता है। ऐसी दूसरी गाथा से तो बात शुरु हुई है। अरे! परन्तु कोई शान्ति से धीरे से मिलान नहीं करते और शान्ति से; अपना पक्ष रखकर नहीं (परन्तु) वस्तु कैसी है, सत्य कैसा है, उसे शोधने के लिये यदि देखे तो उसे सत्य मिलकर ही रहे। शोधक को सत्य न मिले, ऐसा नहीं हो सकता।

कहते हैं, भगवान आत्मा **चैतन्य का परिणमन दर्शनज्ञानस्वरूप है।** इससे नित्य दर्शन-ज्ञानस्वरूप से विराजमान भगवान है। **इस विशेषण से...** देखो! यह दर्शन-ज्ञानस्वरूप को ही खास लिया है। समझ में आया या नहीं? दूसरे भले अनन्त गुण हैं, परन्तु चैतन्य लिया। चेतन ऐसा आत्मा, उसका अकेला चैतन्य उपयोगमय। वह दर्शन और ज्ञानस्वरूप। वास्तव में वही पूरी वस्तु है। दर्शन, ज्ञान। भले उसमें व्यापक फिर अनन्त गुण हैं। परन्तु देखना-जानना जो खास उपयोग, वह वास्तविक चेतन है। समझ में आया? इसलिए सप्तभंगी में उस दर्शन-ज्ञानउपयोग को जीव लिया है। चेतन। और वे अचेतन—दूसरे सब एक न्याय से अजीव लिये हैं। सप्तभंगी ली है वहाँ, सप्तभंगी तरंगिणी में। यह इसलिए शुरु किया।

चैतन्य का सर्वस्व जानना-देखना, वह उसका स्वरूप है, वह उसका परिणमन है। उस-उस रीति से परिणम रहा है। फिर माने, न माने, राग को अपना माने, यह प्रश्न बाद में। परन्तु उसका स्वरूप तो जानने-देखने के चैतन्यस्वभावरूप से आत्मा का अर्थात् जीव का अर्थात् चेतन का चैतन्यरूप से परिणमना ज्ञान-दर्शनरूप से हो रहा है। समझ में आया? आहाहा!

इस विशेष से चैतन्य को ज्ञानाकारस्वरूप न माननेवाले... जानना नहीं, जानना नहीं, ज्ञान की पर्याय नहीं। जानना पर्याय हो तो दोष है। मिटा डालो। समझ में आया? ऐसे **सांख्यमति...** अथवा ऐसे अभिप्रायवाले। **ज्ञानाकारस्वरूप...** भगवान आत्मा ज्ञान के परिणमनरूप से परिणमता है। पर्याय है। ज्ञान अन्ध हो जाये, ज्ञान चला जाये तो मोक्ष हो, ऐसा कितने ही कहनेवाले हैं। परन्तु उसका स्वभाव ही है, उसमें जाये कहाँ? ज्ञानाकार से परिणमना, स्वभाव में होना, वह तो उसका स्वरूप है, चैतन्य उसका स्वरूप है, चेतन का चैतन्य उसका स्वरूप है। वह स्वरूप जाये कहाँ? कहते हैं न वे लोग? दीपक बुझ जाये तब दीपक की काजल होवे न? काजल। दीपक में क्या कहते हैं? वह काली मश नहीं निकलती? काजल। काजल का नाश करना हो तो दीपक का भी नाश करना पड़े। ऐसा कहते हैं कि मैल का नाश करना हो तो ज्ञानाकार परिणमता है, उसका नाश करना पड़े। परन्तु ऐसा कहाँ नाश होगा? सुन तो सही! जानने का परिणमन, वह तो सदा ही उसका स्वभाव है। आहाहा! यह आत्मा उसे कहते हैं। जड़ का जड़ में रहा। यह वाणी जड़ मिट्टी, वह तो उसमें रही। तुझे और उसे क्या सम्बन्ध है? कर्म का कर्म में रहा। वह जड़ में उसका परिणमन और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सत् उसमें है।

यहाँ तो कहते हैं, वास्तव में... पहले सत्ता उठायी। फिर सत्ता से यह चेतन का चैतन्यपना उठाया। यह चैतन्यपना है, उसका ज्ञानाकार-दर्शनाकार परिणमन (होता है)। दर्शन में तो सामान्यपना आवे। यह विशेषपना-जानना, वह क्या? विशेषपना, वह तो उपाधि हुई। इतना सब जाने? विशेषपना परिणमना, वह तो उसका स्वतः स्वभाव है। वह निकाला था, हों! भाई! पंचास्तिकाय का नहीं? खेद नहीं। यह ६०वीं गाथा। पंचास्तिकाय की ६०वीं। केवली का परिणमन है परन्तु खेद नहीं। प्रवचनसार की। यह प्रवचनसार का। परन्तु तब वह गाथा कही। ६०वीं तब नहीं आयी थी। ६०वीं है। है न यह? देखो!

जं केवलं ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।
खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा॥६०॥

घातिकर्म का क्षय हुआ, इसलिए परिणमना, वह खेद नहीं। परिणमना, वह

दु:ख नहीं — ऐसा सिद्ध करना है। यह प्रश्न अपने दो दिन पहले आया था न? खेद नहीं। परिणमन उसका स्वभाव है। केवलज्ञान भी परिणमन है। तो (कोई) कहे, केवलज्ञान और सुख इस प्रकार से परिणमते हैं न। अभी परिणमन की लप लगी? परन्तु परिणमन तो स्वभाव है। वह परिणमन दु:खरूप नहीं, खेद नहीं। है न? **'खेदो तस्स ण भणिदो'।** पलटता है, इसलिए खेद है, केवलज्ञान की पर्याय पूर्णानन्द प्रभु के साथ परिणमती है (वह) खेद नहीं। वह तो उसका स्वरूप स्वत: स्वरूप है। उत्पाद-व्ययरूप परिणमना, (वह उसका स्वभाव है।)

मुमुक्षु : खेद के बदले आनन्द है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, केवल अर्थात् क्या? ऐसा कि पूरी पर्याय को भी अभी परिणमना रह गया? बदलना? बदलना, यह बदलना वह तो खेद है। भाई! तुझे खबर नहीं। पलटना, वह तो स्वत: स्वभाव आनन्दसहित पलटता है। समझ में आया? क्योंकि केवलज्ञान पर्याय है न, कहीं गुण नहीं। केवलज्ञान गुण नहीं। केवलज्ञान पर्याय है। गुण तो आत्मा का त्रिकाल ज्ञान है। तब कोई कहे, यह पर्याय परिणमती है, परिणमती है, परिणमती है थकान नहीं लगती होगी कभी? परन्तु परिणमना तो उसका आनन्दसहित का स्वभाव है। इसलिए ६०वीं गाथा में (कहा), **'जं केवलं ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।'** यह आनन्दपना, वही उसका परिणमन है। **'खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी'** निमित्तरूप है, वह तो नाश हो गया। समझ में आया? इसलिए यहाँ कहते हैं, चैतन्य का जो परिणमन है, देखो! यह ज्ञान-दर्शनस्वरूप, यह परिणमन, वह उसका स्वरूप ही है, खेद नहीं, दु:ख नहीं। वह तो परसमय में परिणमे तो वह दु:ख है। बाकी परिणमना, वह तो चेतन का, चैतन्यस्वरूप का होना, परिणमना, वह उसका स्वरूप है। समझ में आया? अरे! यह बात कैसी? यह तो अभी इसे जीव कैसा है, यह सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह समझे बिना? उसकी दृष्टि हो, अनुभव हुआ, पश्चात् स्थिर होने का आवे।... लेंगे। आचार्य स्वयं चारित्रवन्त थे न! और तो भी आचार्य स्वयं

चारित्रवन्त थे वहाँ से शुरु किया है। '**चरित्तदंसणणाणठिदो**'। स्वयं से शुरु किया है न छठवें से? छठवीं गाथा में भी शुरु किया न? '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**'। यहाँ से शुरु किया है। '**ण वि होदि**' सयोगी-अयोगी, ऐसा नहीं शुरु किया। '**ण वि होदि**' असंयत-संयत ऐसा नहीं लिया। क्योंकि उनकी भूमिका में से शुरु किया है। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**'। क्योंकि प्रमत्त-अप्रमत्त भूमिका में है, उसका निषेध करते हैं, ज्ञायक हूँ। जहाँ है, वहाँ से निषेध करते हैं। समझ में आया? यह आचार्य ने स्वयं अपने हृदय की ही पूरी बात रखी है।

यहाँ भी '**चरित्तदंसणणाणठिदो**' शब्द रखा है। वरना दर्शन, ज्ञान और चारित्र कहलाता है। यह तो मिलाने के लिये—पद के लिये शब्द है। बाकी तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र ऐसा है। यह तो मिलाने के लिये। पद है न इसलिए। क्योंकि स्वयं दर्शन, ज्ञान, चारित्र में है, (इसलिए) वहाँ से ही उठकर बात की है। कहते हैं, इस चैतन्य को ज्ञानाकारस्वरूप परिणमन नहीं मानकर सांख्यमति (कहते हैं), पलटना? अरर! अभी बदलना रहे? हमारे भी बदलना और सिद्ध को भी बदलना? ऐसा कितने ही कहते हैं। अभी उन्हें बदलना? भाई! बदलना तो उसका स्वरूप है। स्वरूप कहाँ जाये? आहाहा! स्वरूप का नाश हो? कायम टिककर पलटना, बदलना, वह चैतन्य अपने स्वरूप में इस प्रकार से है। है, उसे तू निषेध किस प्रकार करेगा? समझ में आया? आहाहा! आचार्य की बहुत गम्भीरता है। परिणमन... परिणमन है न, बापू! चेतन का चैतन्यरूप अकेला कूटस्थ नहीं। वह चेतन उसका चैतन्य दर्शन, ज्ञानचेतना उसका (स्वरूप) अकेला कूटस्थ नहीं। परिणमता है, परिणमता है। सदा ही परिणमता है। समझ में आया? उसे यहाँ जीव कहा जाता है। पर्याय की बात बाद में लेंगे। सत्य पर्याय और असत्य पर्याय, यह बाद में लेंगे। यह दो बोल हुए। दो बोल हुए। पहला हुआ सत्ता का, दूसरा हुआ चेतना के चैतन्य के परिणमन का। जानने-देखने का उसका स्वभाव उसरूप से परिणमना, वह जीव है।

और वह कैसा है? समझ में आया? **अनन्त धर्मों में रहनेवाला जो एकधर्मीपना है उसके कारण जिसे द्रव्यत्व प्रगट है;...** क्या कहते हैं? कैसा है भगवान आत्मा? अनन्त धर्म हैं उसमें, अनन्त गुण हैं उसमें। यहाँ धर्म शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया?

वरना गुण लेना है। परन्तु शब्द धर्म प्रयोग किया है। **अनन्त धर्मों में...** भगवान आत्मा बेहद संख्यावाले अनन्तानन्त गुणों में रहा हुआ... देखा! अनन्त गुणों में रहा हुआ। भाई! आत्मा में गुण रहे हुए, ऐसा यहाँ नहीं लेना।

मुमुक्षु : द्रव्य में गुण है, ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। पूरी शैली... यहाँ पाठ में ऐसा उठाया है न? '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**'। दर्शन, ज्ञान, चारित्र द्रव्य के आश्रय से—आधार से प्रगट हुए, ऐसा नहीं लेकर, जीव उसमें स्थित होता है तो समय है और उसमें न स्थित हो और पुद्गलकर्म में अर्थात् राग-द्वेष में स्थित हो तो परसमय है। ऐसी गुलाँट मारकर बात की है। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा... अन्दर वस्तु एक-एक आत्मा, हों! एक-एक जीव अनन्त गुणों में रहा हुआ जो एक धर्मीपना, अनन्त गुणों में रहा हुआ एक गुणीपना। धर्म क्यों लिये हैं? वह धार रखता है न? धार रखता है, इस अपेक्षा से उसे धर्म शब्द से बात उठायी है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : गुण-पर्याय विशेषण....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह। बाद में कहेंगे, बाद में आयेगा अभी। यह तो अभी मात्र द्रव्य जितना सिद्ध करते हैं। यहाँ तो अभी द्रव्य को सिद्ध करते हैं, भाई! अभी तो जीव को सिद्ध करते हैं, वह बाद में आयेगा। अभी तो तीसरे बोल में पहले द्रव्य को सिद्ध करते हैं। गुण-पर्याय बाद में सिद्ध करेंगे। इसके बाद। यह द्रव्य सिद्ध करने के लिये। यह चौथा बोल आयेगा। इसके बाद चौथा। यह तो तीसरे में तो कैसा है भगवान आत्मा? पहले सत्ता सिद्ध की, पश्चात् सिद्ध किया ज्ञान, दर्शन परिणमन, पश्चात् सिद्ध किया द्रव्य। यह अनन्त गुणों में रहा हुआ एक द्रव्यपना। वस्तु एक है। अनन्त गुण में रहा हुआ, इसलिए अनन्त द्रव्य है, ऐसा नहीं। अनन्त पदार्थ है, ऐसा नहीं। अनन्त गुणों में रहा हुआ एकरूप द्रव्य है, वह यहाँ सिद्ध करना है। गुण-पर्याय की बात बाद में चौथे बोल में (करेंगे)। समझ में आया? परन्तु यह द्रव्य सिद्ध होने के बाद वह बात आवे न! क्रमसर बात ली है।

सत्ता चैतन्य अनन्त धर्मों में रहा हुआ द्रव्य। पश्चात् वह द्रव्य गुण-पर्यायवाला, क्रम-अक्रमवाला। समझ में आया इसमें? यह तो भाई! आध्यात्मिक शास्त्र है न! एक-एक शब्द में... और अमृतचन्द्राचार्य की टीका, न भूतो न भविष्यति। अभी भरतक्षेत्र में तो ऐसी कोई टीका है नहीं। समझ में आया? वस्तु को ऐसे सिद्ध करके सामान्य शब्दों में पूरी चीज़ को बताते हैं कि यह वस्तु है। और उसमें अनेक न्याय इकट्ठे आ जायें, ऐसी यह शैली है।

कहते हैं, यह भगवान आत्मा... अनन्त गुण सिद्ध किये। पहले अकेला लिया था, ज्ञान-दर्शन दो लिये थे। चैतन्य। पहले में-दूसरे में तो दो लिये थे। मात्र चैतन्य।

मुमुक्षु : पहले में एक लिया था, सत्ता ली थी।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सत्ता ली थी। इसमें लिये दो, इसमें लिये अनन्त।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चित् सत्ता नहीं। चैतन्यपना। चैतन्यपना इतना वहाँ लिया। वह चैतन्यपना। अब दो गुण लिये—ज्ञान-दर्शन। अब अनन्त गुण में रहा हुआ एक द्रव्यपना। समझ में आया? यह न समझ में आये, ऐसा नहीं रखना, हों! कितनी ही महिलायें ऐसा कहें। हमारे गोदावरीबहिन कहे, ऐ... नटुभाई! न समझ में आये ऐसा नहीं रखना कि हमको नहीं समझ में आता, ऐसा कहाँ माँडा? समझ में आये, ऐसा ही यहाँ कहा जाता है। परन्तु जरा सा इसे ध्यान रखना (चाहिए)। ऐ... नटुभाई! आत्मा ऐसा है, वस्तु ऐसी है, उसमें अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुणों में रहा हुआ द्रव्य एक है। उनमें रहा हुआ, देखा! भाषा कैसी है! मूल पाठ लिया है न, इसलिए उसके आधार से शब्द ही ऐसे निकाले हैं। पाठ ऐसा लिया है न। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो**'। उसे स्वसमय जान। इसलिए पूरी शैली आचार्य ने कुन्दकुन्दाचार्य की है, वह बनाये रखकर की है। समझ में आया? कितने गुण आत्मा में हैं? अब उन गुणों में रही हुई वस्तु कितनी है? एक स्वयं वस्तु। अनन्त गुणों में रहा हुआ एक तत्त्व है, द्रव्य एक है।

जो एकधर्मीपना है... धर्मी अर्थात् उन धर्मों का धारक धर्मीपना। **उसके कारण जिसे...** देखा! **अनन्त धर्मों में रहनेवाला जो एकधर्मीपना है, उसके कारण जिसे द्रव्यत्व**

प्रगट है;... उसके कारण जिसे, जिसे अर्थात् पूरे जीव को **द्रव्यत्व प्रगट है;...** समझ में आया? **(क्योंकि अनन्त धर्मों की एकता द्रव्यत्व है)।** देखो! यह ठीक किया है। अनन्त गुण की एकता, वह द्रव्य है। अनन्त गुण की पृथक्ता-पृथक्ता, वह द्रव्य है, ऐसा नहीं। अनन्त गुण पृथक्-पृथक् तो गुण में जाते हैं। अनन्त गुण की एकता, वह द्रव्य है। द्रव्य अर्थात् क्या होगा? पैसा? द्रव्य अर्थात यह वस्तु। यहाँ अभी तो आत्मा की बात चलती है, अभी कहाँ पैसे की बात चलती है? द्रव्यदृष्टि वह... है न? 'द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि।' बड़ा पाटिया है सामने, देखो! फिर एक व्यक्ति ने पूछा था कि महाराज! यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि। पैसावाला सम्यग्दृष्टि कहाँ से आया यहाँ? कहो, अब। ऐसे के ऐसे जैन थे। तब तो यहाँ नहीं था, तब यहाँ थे। सामने बैठा था। बहुत वर्ष हो गये, बीस वर्ष हो गये। यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि, यहाँ पैसेवाले बहुत आवे और यहाँ की प्रतिष्ठा बड़ी है न पैसेवालों की। यह द्रव्यदृष्टि, वह सम्यग्दृष्टि? तुम जैन में जन्मे, तुमको कुछ खबर नहीं होती। द्रव्यदृष्टि अर्थात् यह आत्मा अनन्त गुण का धारक द्रव्य, उसकी अन्तर दृष्टि करना, इसका नाम सम्यग्दृष्टि है। यहाँ तुम्हारे पैसे-फैसे की कहाँ बात है? न्यालभाई! सब ऐसी ही पोल रखी है सबने, हों! थान के थे। बापू! तुम जैन में जन्मे, उसे द्रव्य अर्थात् क्या कहते हैं? द्रव्य तो छहों द्रव्य है। यहाँ तो चैतन्य द्रव्य की बात है। भगवान आत्मा... अनन्त गुणों की सिद्धि की और उसमें रहा हुआ एकपना, क्योंकि अनन्त में रहा हुआ एकपना, उसे द्रव्य-वस्तु कहा जाता है। समझ में आया?

इस विशेषण से, वस्तु को धर्मों से रहित माननेवाले बौद्धमती... बौद्धमती धर्म-बर्म नहीं मानते। क्योंकि वे तो एक क्षणिक माननेवाले हैं। स्वभाव को मानते नहीं। तीन हुए। अब उसके अनन्त गुण में रहा हुआ एकपना उसके अब गुणों और पर्याय की व्याख्या करते हैं। चैतन्य का पहला लिया। फिर सत्ता ली, फिर चैतन्य लिया, फिर अनन्त धर्म लिये, अब उसके गुण-पर्याय लेते हैं। कैसा है भगवान आत्मा? **क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव...** क्रमरूप प्रवर्ती पर्याय, अक्रमरूप प्रवर्तते गुण। यह वस्तु का स्वरूप ही है।

मुमुक्षु : यह क्रम-अक्रम।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्रम कहाँ... पर्याय को क्रमवर्ती कहा, इसका अर्थ ही यह है, भाई! क्रम अर्थात् पग है। क्रम का अर्थ पग। पण्डितजी! पग होता है न? वह पादविक्षेप। यह पंचाध्यायी में लिया है पादविक्षेप। क्रम का अर्थ पग भक्तामर में आता है। जहाँ वह सिंह हिरण को पकड़ता है। अपने पग क्रम में पकड़ता है। क्रम में अर्थात् पग में पकड़ता है, उस हिरण को। भक्तामर में आता है। उसमें से भी ऐसा कि यदि भगवान का स्मरण करे तो छूट जाये। सिंह के पैर में आया हुआ, ऐसा आता है न? सिंह के पैर में आया हुआ हिरण भी यदि यह भगवान का स्मरण करे तो छूट जाये। दोट में वह पैर में पकड़ा हुआ, ऐसा कहते हैं।

यहाँ कहते हैं, क्रमरूप। आत्मा में जो अवस्था होती है, दशा होती है वह क्रमरूप है। उस क्रमरूप में ही पूरी बात आ गयी। भले क्रमबद्ध तो बाद में अपने यहाँ स्पष्टता के लिये वहाँ सर्वविशुद्ध (अधिकार में) किया है। शुद्धज्ञान अधिकार है, सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है। सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार कहो या सर्वज्ञस्वभाव से जाननेवाला-देखनेवाला ऐसा है, ऐसा कहो, वैसा तू सर्वज्ञस्वभाव है। जानने-देखने के स्वभाववाला तत्त्व है। यह जानने-देखनेवाला जो कुछ क्रम से पर्याय हो, उसे जाने, अक्रम से तो गुण है, उसे जाने। जाननेवाला जाने। उसे कुछ करना या बदलना, ऐसा कुछ है ही नहीं। समझ में आया? करना, वह ज्ञान करना, वह उसका काम है। इस बात को स्पष्ट कहाँ किया? यहाँ तो पहले से शुरु किया। क्रमवर्ती, वह पर्याय; अक्रमवर्ती, वे गुण। दूसरी भाषा से (कहें तो) सहवर्ती, वह गुण; क्रमवर्ती, वह पर्याय। यहाँ यह शब्द खास सिद्ध किया है। खास सिद्ध किया है आचार्य महाराज ने।

क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव... देखा! यह अस्तिरूप से है। आत्मा में क्रम-क्रम से प्रवर्तती पर्यायें भी भाव हैं, उसे भाव कहा और अनेक अक्रमरूप से प्रवर्तते, वह भी भाव कहा, दोनों को भाव कहा। है या नहीं? **क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव...** गुण भी अक्रम से अनेक हैं और पर्यायें भी अनेक क्रम-क्रम से एक समय में भी अनन्त हैं। पर्याय एक समय में भी अनन्त हैं। और क्रम-

क्रम से प्रवर्तती अनन्त हैं ऐसी की ऐसी। अनन्त गुणों की पर्यायें। **जिसका स्वभाव होने से क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान अनेक भाव...** कितने ही भाव में विवाद करते हैं, लो! भाव तो भाव को कहा जाता है। परन्तु पर्याय को भाव कहा जाता है, गुण को भाव कहा जाता है, यह द्रव्य को भाव कहा जाता है। क्या कहना है तुझे? '**नमः समयसाराय चित्स्वभावाय भावाय**'। लो, यह '**भावाय**' द्रव्य को कहा है। '**चित्स्वभावाय**' गुण को लिया है। समझ में आया? यहाँ पर्याय और गुण दोनों को '**भावाय**' कहा है। जहाँ जिसे सिद्ध करना हो, वह शब्द होता है।

कहते हैं कि कैसा है जीव? यह एक जीव शब्द का अर्थ शुरु करते हैं अभी तो। दूसरी गाथा शुरु करते हुए। पहली (गाथा में) तो नमस्कार-वन्दन किया है। वन्दन करके अब मैं समयसार अर्थात् आत्मा और जीव-अजीव पूरा इकट्ठा अधिकार लिया है न, जीव ऐसा होता है। उस जीव में फिर स्वसमय की पर्याय किस प्रकार से होती है और परसमय की पर्याय किस प्रकार से होती है, यह बाद में कहेंगे। पहले यह वस्तु को सिद्ध करके।

क्रम से प्रवर्तते और अक्रम से प्रवर्तते। यह प्रवर्तते कहा, भाई! क्या कहा? क्रम से प्रवर्तते और अक्रम से प्रवर्तते। वर्तते... वर्तते। वर्ते हुए हैं न? हैं या नहीं उसमें? ऐसा चालू है न? अनन्त भाव ऐसे कायम हैं। आत्मा में गुणरूप अनन्त भाव कायम हैं। पर्यायें क्रम-क्रम से कायम हैं। इसलिए कहते हैं, **क्रमरूप और अक्रमरूप प्रवर्तमान...** दोनों, हों! क्रमरूप से प्रवर्तते और अक्रमरूप से भी प्रवर्तते **अनेक भाव...** यह क्रम और अक्रम दोनों को लागू पड़ता है। **जिसका स्वभाव होने से...** यह तो उसका स्वभाव है। स्वभाव होने से, यह कारण रखा। **स्वभाव होने से जिसने गुणपर्यायों को अंगीकार किया है...** भाषा देखो! क्या है अन्दर में? '**उत्सङ्गितगुणपर्यायः।**' अंगीकार किया है। नया किया होगा? पकड़े होंगे? '**उत्सङ्गितगुणपर्यायः**' भगवान आत्मा क्रम से प्रवर्तती पर्यायों को अंगीकार किया है और अक्रम से प्रवर्तते गुणों को अंगीकार किया है। अंगीकार उसने किया है अर्थात् उसमें है।

वस्तु जीव क्रम से प्रवर्तते, अक्रम से प्रवर्तते अनेक भाव जिसका स्वभाव होने

से। इस जीव का। जिसने अर्थात् जीव ने। **गुणपर्यायों को अंगीकार किया है...** जिसमें सहवर्ती और अक्रमवर्ती गुण, गुण और (क्रमवर्ती) पर्याय है। उसका अपना स्वत: स्वभाव है, पर के कारण से नहीं। समझ में आया? **(पर्याय क्रमवर्ती होती है...)** यही सिद्धान्त पूरा। भगवान आत्मा की पर्यायें क्रमवर्ती होती हैं। अब क्रमवर्ती होने पर भी उसे किस लक्ष्य से क्रमवर्ती होती है? यह बाद में दूसरा विषय हो गया, यह तो बाद में कहेंगे। क्रमवर्ती पर्याय है, अक्रम से वर्तते गुण हैं। पर्याय क्रमवर्ती है। अब उसमें उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित होना, क्रम-क्रम से होने की पर्याय में, तब उसे जीव के ऊपर लक्ष्य जाने से उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र पर्याय के क्रम में वह स्थित होता है। जीव उसमें स्थित होता है। तब उसे स्वसमय ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? समझो... समझो। परन्तु यह समझा वह ज्ञान समझणरूप है। उसमें दूसरा है क्या? केवलज्ञान कहो। ज्ञान आत्मा, यह तो कहा। ज्ञान, दर्शन का पिण्ड वही आत्मा है, और आत्मा दूसरी चीज़ क्या है? ज्ञान-दर्शन न हो तो आत्मा अर्थात् क्या? चैतन्यसूर्य है वह तो। चैतन्यसूर्य, झबकता चैतन्यसूर्य। ज्ञान-दर्शन स्वभाव। इसलिए यह किसी को महँगा पड़े तो साथ ही यह कहते हैं। भाई! यह तो समझना पड़ेगा इसे। क्योंकि समझण का पिण्ड है। समझ में आया इसमें? यह वास्तविक द्रव्य-गुण-पर्याय के ज्ञान बिना अभी बड़ी गड़बड़ उठी है।

मुमुक्षु : मूल में ही भूल पड़ी।

पूज्य गुरुदेवश्री : मूल में भूल पड़ी। अब इसे समझ में नहीं आता। भाँग कहते हैं न कुछ? कुएँ में भाँग। वह पिया उन सबका मस्तिष्क अस्थिर हो गया। बापू! मूल चीज़ है न, भाई!

यहाँ तो जीव की व्याख्या करनी है तो सब जड़ भी इस प्रकार से ही है। यहाँ दर्शन-ज्ञानस्वभाववाला जीव सिद्ध करना है न। बाकी यह क्रम-अक्रमरूप, वह तो द्रव्य का स्वभाव है। समझ में आया? और अनन्त धर्मवाला धर्मी, वह भी उसका स्वभाव है। मात्र चैतन्य उसका स्वभाव नहीं। यहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रुव भी सबका स्वभाव है। आहाहा! पर्याय अर्थात् आत्मा में होती अवस्था-दशा यह क्रम से, क्रम से, क्रम से चलती है।

जैसे दायें पैर के बाद बायाँ पैर और दायें के बाद बायाँ। ऐसे चले, तब ऐसे चलता होगा न? कूदे वह अलग बात है, हों! कूदे वह कहीं चलना नहीं कहलाता। ऐसा करके कूदे। उसी प्रकार आत्मा की पर्याय में एक के बाद एक जो क्रमवर्ती क्रम से वर्तनेवाली, क्रम से वर्तनेवाली जो अवस्था होती है, वह उसका स्वभाव है। समझ में आया? पैर के बाद पैर, ऐसा।

(गुण सहवर्ती होता है;...) सब गुण एकसाथ होते हैं, हों! गुण की व्याख्या। समझ में आया? सहवर्ती अर्थात् द्रव्य के साथ रहे हुए अभी इसका अर्थ नहीं। गुण एक साथ रहे हुए हैं। सहवर्ती गुण अनन्त एक साथ रहे हुए हैं, पर्याय एकसाथ रही हुई नहीं। यह पंचाध्यायी में निकाला है न? द्रव्य के साथ गुण रहे हुए हैं तो पर्याय भी साथ में रही हुई है। (इसलिए यह) उसका लक्षण नहीं आता। इसलिए गुण सब एकसाथ रहे, उसका नाम सहवर्ती है और पर्याय क्रमवर्ती एक साथ नहीं, इसलिए उसे क्रमवर्ती (कहते हैं)। पंचाध्यायी में लिया है, बहुत सरस लिया है। बात तो बराबर है। उसे भी खोटी ठहराते हैं। भाई! बापू! तुझे ऐसा काल मिला, भाई! कर न सुलटा कर न, भाई! मुश्किल से करने का काल है। आहाहा!

(गुण सहवर्ती होता है; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं।) साथ में रहनेवाले ऐसे। ऐसे क्रम एक साथ है। ऐसे साथ में रहनेवाले अनन्त गुण अक्रम। पर्याय ऐसे क्रम। ऊर्ध्व सब क्रमसर व्यवस्थित अनादि-अनन्त चलती है। एक समय में अनन्त धर्म तिरछे व्यापक हैं, तिरछे व्यापक हैं। पर्याय ऊर्ध्व व्यापक है ऐसे। यह वस्तु का ही ऐसा स्वरूप है। समझ में आया? जीव ही ऐसा है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

इस विशेषण से,... यह विशेषण कहा न? ऐसा गुण-पर्यायवाला। **(गुण सहवर्ती होता है; सहवर्ती को अक्रमवर्ती भी कहते हैं।) इस विशेषण से, पुरुष को निर्गुण माननेवाले...** है न कितने ही (माननेवाले) कि आत्मा को गुण नहीं। वह तो वे रजो, तमो और सत्त्व गुण नहीं। उसके गुण नहीं हो तो वस्तु क्या? वस्तु है, वह वस्तु कुछ स्वभाव न हो तो वह वस्तु किस प्रकार से हुई? वस्तु तो वस्तु है, परन्तु वस्तु का कोई स्वभाव होगा या नहीं? परमाणु द्रव्य तो उसका स्वभाव होगा या नहीं? रंग, गन्ध, रस

स्वभाव है। आत्मा वस्तु तो ज्ञान, दर्शन अनन्त धर्म वह उसका स्वभाव है। समझ में आया? **पुरुष को निर्गुण माननेवाले...** आत्मा को और गुण हो कोई? आत्मा को गुण हो? वह तो निर्गुण है। भाई! गुण तो विकारी पर्याय हो, ऐसे त्रिकाली गुण नहीं। बारम्बार पर्याय भी जो विकार है, वह भी वास्तविक उसका स्वभाव नहीं। परन्तु है सही। **निर्गुण माननेवाले सांख्यमतवालों का निरसन हो गया।** चार बोल हुए, चार बोल हुए।

और वह कैसा है? जीव। **अपने और परद्रव्यों के आकारों को प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से...** देखो! **जिसने समस्त रूप को प्रकाशनेवाली एकरूपता प्राप्त की है...** लो! एक अपने और अपने परद्रव्यों के आकारों को (प्रकाशित करनेवाला)। पहले में सामान्य था न? पहले में दर्शन, ज्ञान ज्योतिस्वरूप साधारण बात थी। परन्तु अब उसका सामर्थ्य कितना है? कि अपने और परद्रव्यों, दोनों के। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय का विशेषपना और परद्रव्य के आकार अर्थात् विशेषपना, उसका प्रकाशित करने का सामर्थ्य। आकार अर्थात् नीम का आकार ऐसा छत्तीस हाथ का है और वह छत्तीस हाथ ऐसे लम्बा होकर जाये, ऐसा नहीं। यह नीम है न? नीम। छत्तीस हाथ का लम्बा। तो छत्तीस हाथ का यहाँ आकार पड़ जाये, ऐसा नहीं। आकार शब्द है न? आकार, ऐसा नहीं। आकार अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय की जितनी विशेषतायें हैं, उन विशेषताओं का ज्ञान स्व का और पर का अपने में होता है। आकार की व्याख्या यह है। कितने ही कहते हैं, आकार इसमें पड़े। ऐसा हो तो यहाँ आकार पड़े। ऐसा आकार पड़ता होगा? लोक का संस्थान ३४३ राजू है तो ऐसा आकार यहाँ दिखता है? आकार यहाँ पड़ता होगा? उस सम्बन्धी की जो विशेष अवस्था है, उसके द्रव्य-गुण, ऐसा यहाँ ज्ञानरूप से परिणमना, उसका नाम यहाँ आकार कहा जाता है। समझ में आया?

अपने और परद्रव्यों के आकारों को... विशेषताओं को **प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से जिसने समस्त रूप को...** सब रूप को। अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और... द्रव्य अर्थात् शक्तिवान, गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय अर्थात् क्रम से प्रवर्तती अवस्था। ऐसे सब पदार्थों को। समस्त रूप को, ऐसा कहा है। प्रकाशित करनेवाला। झलकानेवाला,

ऐसा पहले लिखा था। परन्तु वह प्रकाशित करनेवाला है। **एकरूपता प्राप्त की है।** तथापि एकरूपपना प्राप्त है। ऐसे समस्त द्रव्य-गुण-पर्याय को जानने से वह कहीं खण्ड नहीं हो जाता। समझ में आया? एकरूपपना प्राप्त है। आहाहा! एक ही ज्ञान की अवस्थारूप से सब है। क्या कहा? अनन्त द्रव्य के गुण के पर्याय के आकार को जानने पर भी वह अपना ज्ञान का परिणमन तो एकरूप हुआ है। कहीं खण्ड-खण्ड नहीं हुआ। देखो! **(जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासित होते हैं, ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप है)।** ऐसे एक ज्ञान का आकार। ज्ञानस्वरूप की अवस्था एकरूप है। खण्ड-खण्ड नहीं हो गयी। एक में अनन्त ज्ञात होने पर भी एकरूप रहकर अनन्त ज्ञात हुआ है। समझ में आया? ओहोहो!

अपने और परद्रव्यों के आकारों को... अर्थात् समस्त विशेषताओं को **प्रकाशित करने की सामर्थ्य...** उसका है। पर के कारण से नहीं। लोकालोक है, इसलिए इस आत्मा का सामर्थ्य है, ऐसा नहीं। समझ में आया? लोकालोक है, इसलिए यहाँ सत्ता का सामर्थ्य है? समझ में आया? ऐसी चर्चा चली थी, भाई! (संवत्) १९८३ में। वीरजीभाई को और दामोदर सेठ को। १९८३ के वर्ष। वह कहे, यह लोकालोक है, सब है, इसलिए यहाँ (ज्ञान होता) है। वीरजीभाई ने तो पहले से कहा, नहीं। यहाँ अपना ऐसा स्वभाव है। स्व-परप्रकाशक ऐसा अपना सामर्थ्य है। पर के कारण से परप्रकाशक सामर्थ्य है, लोकालोक इतना है, ज्ञेय इतने हैं, इसलिए ज्ञान इतने रूप से परिणमता है, ऐसा नहीं, इसके कारण से नहीं। ज्ञान का ही स्वरूप है (कि) स्व और पर की सब विशेषताओं को अनेक अनन्त को जानने पर भी ज्ञान एकरूप में अपने अस्तित्व में जानता है। समझ में आया? जिसकी ज्ञानपर्याय में अनन्त ज्ञात होने पर भी अनन्त के अस्तित्व यहाँ आये नहीं। अनन्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के जो अस्तित्व वहाँ हैं, वे यहाँ नहीं आये। यहाँ तो उस सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी का एक समय में ज्ञान का परिणमना, उसका सामर्थ्य है, उस प्रकार से परिणम रहा है। इतनी बड़ी भगवान आत्मा की शक्ति ली है। समझ में आया?

मुमुक्षु : इसमें भी विवाद।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें विवाद। एक-एक में। शान्ति से देखे और धीरे से देखे। भाई! यह वस्तु क्या है, उसमें तुम्हारे विवाद? यह स्व-परप्रकाशक वस्तु है। तो कहे, नहीं। परप्रकाशक तुम कहोगे तो वह व्यवहारनय हो जायेगा। और व्यवहारनय है, वह अभूतार्थ है, इसलिए सबको जानता नहीं।

मुमुक्षु : आचार्य ने नियमसार में कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नियमसार में कहा है वहाँ। भाई! बापू! वह दूसरा है। वह तो उसे जानना, ऐसा कहना, वह व्यवहार है। परन्तु उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने में होना, वह तो आत्मज्ञ दशा है। आत्मदर्शी सर्वदर्शी सर्वज्ञशक्ति अपनी है। उसे निश्चय कहा जाता है, उसे व्यवहार नहीं कहा जाता। आहाहा! वह तो पर की अपेक्षा से उसे जाने, ऐसा कहने से उपचार आता है। अपने में उन सब सम्बन्धी का अपना सामर्थ्य है। समझ में आया? आगे लेंगे, ४७ शक्तियों में सब है।

अपने और परद्रव्यों के आकारों को-विशेषताओं को प्रकाशित करने की सामर्थ्य होने से जिसने समस्त... अपना ही सामर्थ्य होने से **जिसने समस्त रूप को प्रकाशनेवाली एकरूपता प्राप्त की है...** अपनी पर्याय में अनन्त को अनन्त के अनन्त के बड़े थोक के थोक को जाने तो भी एकरूपपना अंगीकार किया है। एक का दो हुआ नहीं। पर्याय के एक समय के काल में ही वह सब जानता है। एकरूप में ज्ञान की एक समय की अवस्था में वह सब ज्ञात होता है। समझ में आया? **जिसने समस्त रूप को प्रकाशनेवाली एकरूपता प्राप्त की है...** समझ में आया?

(अर्थात् जिसमें अनेक वस्तुओं के आकार प्रतिभासित होते हैं,...) देखो! प्रतिभासित होते हैं। **(ऐसे एक ज्ञान के आकाररूप है)।** ऐसा एक ज्ञानाकार है। **इस विशेषण से, ज्ञान अपने को ही जानता है, पर को नहीं जानता...** ऐसा कहनेवाले का निषेध किया। पर को जानना, यह व्यवहार है—ऐसा नहीं। उस सम्बन्धी और अपने सम्बन्धी का ज्ञान अपना, वह निश्चय है। समझ में आया? गजब भाई! ऐसा धर्म का स्वरूप समझे तब... फिर कहते हैं कि वह द्रव्य परिणमे तो उसकी ... बात चले। परन्तु अस्ति है, कैसा है किस प्रकार से, उसे जाने बिना अन्धा कहाँ जायेगा? धर्म करना है,

परन्तु धर्म करनेवाला कैसा है ? समझ में आया ? उसे समझे बिना धर्म होगा, लो। ऐसा नहीं है।

ज्ञान अपने को ही जानता है, पर को नहीं-इस प्रकार एकाकार को ही माननेवाले का... निषेध किया। तो एकाकार कहलाये। अपने को ही जाने और पर को न जाने तो एकाकार कहलाये। पर को जाने, वह तो अनेकाकार हो गया। कहते हैं, नहीं, नहीं। स्व-पर को दोनों को जाने तो भी एकाकार पर्याय है। समझ में आया ? ज्ञान के आकार पर्याय है। पर के आकार है ही नहीं। आहाहा ! गजब ! जब यहाँ भरतक्षेत्र में अमृतचन्द्राचार्य विराजते होंगे... आहाहा ! ...भिक्षा के लिये निकलते, उसमें यह रमणता जिन्हें वर्तती है, हों ! आहाहा ! यह तो क्षयोपशम इतना है। किसी को क्षयोपशम विशेष न भी हो, तथापि अनुभव हो। परन्तु यह तो क्षयोपशम भी इतना अधिक। जिस बात को कहना चाहते हैं, उसे उस प्रकार से उन्हीं थोड़े शब्दों में बड़ी बात (करते हैं)। इतना क्षयोपशम, इतना क्षयोपशम। मुनि है और क्षयोपशम इतना है। समझ में आया ?

कहते हैं, अपने को जाने और पर को न जाने। यदि पर को जाने तो आत्मा अनेकाकार हो जाता है। उसकी बात खोटी होती है। बापू ! पर को जानने पर भी वस्तु तो एकाकार अपने ज्ञान आकार रही है। ज्ञान आकार रही है। वह ज्ञेय के आकार हुई नहीं। समझ में आया ? **तथा अपने को नहीं जानता किन्तु पर को ही जानता है...** अपने को नहीं जानता, पर को जाने। ज्ञान अपने को किस प्रकार जाने ? स्वयं अपने को किस प्रकार जाने ? जाने तो पर को जाने। और ऐसे माननेवाले हैं न कितने ही। **इस प्रकार अनेकाकार को ही माननेवाला,...** पर को-अनेक को अनेकाकार होकर जाने, एक को किस प्रकार जाने ? उसका **व्यवच्छेद हुआ।** तेरी बात खोटी है। भगवान आत्मा अपने अनन्त गुण का धारक द्रव्य, उसकी पर्याय को भी अपने ज्ञान में जाने तो भी एकरूप रहा है और अनेक को जानने पर भी ज्ञान एकरूप रहा है, ऐसा ही ज्ञान का एकाकार होने का सामर्थ्य स्वभाव स्व-पर को जानने का है। ऐसा वह जीवतत्त्व है। इतने बोल कहे। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रथम श्रावण कृष्ण ५, शनिवार, दिनांक - ०६-०८-१९६६
गाथा - २, प्रवचन - ९

समयसार को मैं कहूँगा, केवलियों ने कहा हुआ। फिर श्रुतकेवली और वाणी। जो सर्वज्ञ ने कहा हुआ है कि मैं समयसार प्राभृत को कहूँगा। फिर दूसरे में कहा, वह है कैसा आत्मा? कि जिसे समय कहते हैं। यहाँ समय शब्द से आत्मा है। वह जीव है कैसा कि जिसका स्वसमय रूप से परिणमन-धर्म हो और परसमय रूप से परिणमन—जिसे अधर्म हो। ऐसा वह समय पदार्थ—जीव कैसा है? पहले से शुरु किया है न?

जीव सत्ता स्वरूप है, इसलिए उसका स्वभाव उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप से उसका स्वभाव है। समझ में आया? वहाँ भी उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों को स्वभाव कहा है। ऐसे स्वभाववाला वह तत्त्व है, समझ में आया? और कैसा है? वह चैतन्यरूप है। चेतन अर्थात् जीव चैतन्यरूपपने से चैतन्य अर्थात् सामान्य जानना-देखना ऐसा चैतन्य, उसके कारण से नित्य उद्योत स्पष्ट विशद् दर्शन-ज्ञानस्वरूप है। चैतन्यपने के कारण, वह स्वरूप आत्मा का चैतन्यपना है। चेतन का चैतन्यपने के कारण जिसमें उद्योत निर्मल दर्शन और ज्ञानरूप जिसका परिणमन है। ऐसा वह आत्मतत्त्व है।

और अनन्त धर्मों को धरनेवाला धर्मी एक है। द्रव्यपना प्रगट करता है। अनन्त धर्म अर्थात् गुण यहाँ धारता है, इसलिए धर्म लिये। अनन्त धर्म और गुणों को धारनेवाला ऐसा एकरूप वह आत्मतत्त्व है। द्रव्यरूप से एक है। भले अनन्त धर्म और गुण हों, द्रव्यरूप से एक है। समझ में आया? इसकी सामान्य व्याख्या की थी, पश्चात् क्रम-अक्रम इसका स्वभाव है। क्रम से पर्यायरूप होने का स्वभाव, फिर भले विकार या अविकार (परिणाम हों), परन्तु वह क्रमरूप होने का स्वभाव है, ऐसा कहा है। विकार को भी वहाँ स्वभाव लिया है। है न? क्रम-अक्रमरूप **प्रवर्तमान अनेक भाव जिसका स्वभाव...** है। विकाररूप से परिणमो या अविकाररूप से परिणमो, परन्तु परिणमन, वह क्रमसर है और गुण, वे अक्रम हैं। ऐसे अनेक भाव उसका स्वभाव होने से जिसमें गुण

और पर्याय है। अंगीकार किया है, इसका अर्थ कि उसमें है। वस्तु वह त्रिकाल है, उसमें सहवर्ती अनन्त गुण साथ में हैं। क्रमवर्ती पर्याय वह जीव में है। है। उन दोनों को स्वभाव कहा है। फिर कहा कि अपने और पर के आकारों को स्पष्टरूप से प्रकाशित करता है। अनेक को जानने पर भी पर्याय तो एकरूप ज्ञानाकार रहती है। ऐसा जिसका स्वभाव है। कहो, यह पाँच कहे न?

अब यह छठवाँ। यह छठवाँ बोल है। किसका? जीव का। '**जीवो**' पहला शब्द है न? उसकी व्याख्या है। और कैसा है आत्मा अथवा जीव? **अन्य द्रव्यों के जो विशिष्ट गुण...** आत्मा कैसा है? कि जो अन्य द्रव्य के खास गुण—विशिष्ट गुण। आकाश का अवगाहन गुण, धर्मास्ति का खास गति (हेतुत्व) गुण, अधर्मास्ति का खास-विशिष्ट स्थिति (हेतुत्व)गुण, काल का खास वर्तना (हेतुत्व) गुण और पुद्गल का रूपी गुण। फिर कर्म हो, शरीर हो, वाणी हो, सब पुद्गल हैं। उनका रूपी स्वभाव खास गुण है। ऐसे जो गुण, उनके भाव के कारण आत्मा दूसरे जो पाँच द्रव्य—अवगाहन, गति, स्थिति, वर्तनाहेतु और रूपी—ऐसे जो गुण, उनका आत्मा में अभाव है। समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसा रूपीपना **उनके अभाव के कारण...** कर्म का उदयपना, वह भी रूपीपना है। भाई! ऐई! कर्म द्रव्य, गुण, और पर्याय रूपी है। उसका रूपी गुण है। उसका आत्मा में अभाव है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें आ जाता है। यह तो महा गूढ़ शास्त्र है। यह समयसार अर्थात्... और इसमें अमृतचन्द्राचार्य की टीका गजब कर डाला है! ऐसे सब शास्त्रों के सार का सार भर दिया है। गजब है! ... तो ठीक परन्तु उसके साथ क्षयोपशम अर्थात् कि जिस बात को रखना हो, उसमें सामान्य में इतना सब भरा होता है कि अपार...! निकाले उतना निकले उतना। क्या कहते हैं? देखो!

मुमुक्षु : अब आप निकालो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह थोड़ा कहते हैं न। थोड़ा आवे, उतना कहते हैं। यह पाँच बोल तो कहे।

यह भगवान आत्मा अन्दर जीव है, वह कैसा है ? जीव पाँच बोल से कहा। अब छठवें बोल में... वस्तु तो वह की वह है। वह जीव पाँच द्रव्य के गुण जो हैं— अवगाहन, स्थिति, गति, वर्तना और रूपी, उनका जिसमें अभाव है। कहो, समझ में आया इसमें ? इसका अर्थ हुआ कि शरीर का गुण, वाणी का गुण, कर्म का गुण सबका रूपी गुण है। इससे गुण रूपी है, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों रूपी है। समझ में आया ? तो वह द्रव्य-गुण-पर्याय रूपी जिसके हैं, उनका आत्मा में अभाव है। **उनके अभाव के कारण...** समझ में आया ?

असाधारण चैतन्यरूपता-स्वभाव के सद्भाव के कारण... देखो ! असाधारण एक चैतन्यरूप तो स्वभाव है उसका। 'पने' लिया था कि **चैतन्यस्वरूपपने से नित्य-उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शन-ज्ञान-ज्योतिस्वरूप है...** ऐसा सिद्ध किया था। चेतन चैतन्यपने के कारण से इसमें दर्शन -ज्ञानज्योति नित्य उद्योत निर्मलरूप से परिणमता है, ऐसा उसका स्वभाव है, ऐसा कहा। यहाँ कहा कि पाँच के जो गुण हैं, उनसे गुण लेना है अब, भाई ! पाँच के जो गुण हैं, उनके अभाव के कारण **असाधारण चैतन्यरूपता-स्वभाव के सद्भाव के कारण...** असाधारण जो गुण एक, दूसरे सब भले गुण हों, परन्तु यह चैतन्यरूपता-चेतन का चैतन्यरूपपना, ऐसे स्वभाव के सद्भाव के कारण, ऐसे गुण के स्वभाव के सद्भाव-अस्ति के कारण, अस्ति के कारण, वह आत्मा **आकाश, धर्म, अधर्म, काल और पुद्गल - इन पाँच द्रव्यों से भिन्न है।** कहो, समझ में आया ? इसमें निकलता है या नहीं ? देखो न ! कहो, समझ में आया इसमें ?

कर्म के द्रव्य-गुण-पर्यायों — रूपी से जीव में अभावस्वरूप है, उनसे भिन्न है। तब निमित्त कहलाये। भिन्नपना हो तो निमित्त कहलाये। उससे यह होता है तो निमित्त कहाँ रहा ? तब तो एक हो गया। समझ में आया ? कहते हैं, असाधारण जो चैतन्यरूपस्वरूप स्वभाव की अस्ति के कारण **आकाश, धर्म, अधर्म, काल और पुद्गल...** पुद्गल में सब पूरा आ गया। इन पाँच द्रव्यों से भगवान आत्मा अपने असाधारण चैतन्यरूपता के स्वभाव के सद्भाव के कारण से पर के गुणों से भिन्न होने से असाधारण स्वभाव में रहा हुआ पर से भिन्न है। पहले सद्भाव कहा न ? समझ में आया ?

दूसरे पाँच के गुण में रहे हुए वे पाँच (द्रव्य), उन पाँच गुणों का इसमें अभाव

होने से आत्मा में चैतन्यरूपता गुण का सद्भाव होने से उसमें रहा हुआ है। इसलिए वह पाँच द्रव्यों के गुणों से वह भगवान भिन्न है। इसलिए उन गुणों से भिन्न, इसलिए द्रव्य से भी भिन्न है।

मुमुक्षु : पर्याय से?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय से, यह तो उसमें आ गया। यह तीनों (आ गये)। समझ में आया? आहाहा! यह तो स्पष्ट करते हैं न। वकील है न। वकालत बहुत की है वहाँ। कहो, समझ में आया? आहाहा!

अमृतचन्द्राचार्य की टीका, उसमें यह समयसार की टीका तो उन्होंने इतने उत्साह से की है न कि जिसमें सब सार पूरे बारह अंग का सब उसमें समा जाये ऐसा है। ऐसी टीका वह भी टीका! एक जीव को सात बोल से वर्णन करते हुए कितना बाकी रखा इसमें! समझ में आया?

यह भगवान आत्मा यह साथ में रहे हुए पुद्गल और साथ में रहे हुए अथवा भले वे स्वयं हैं, वहाँ रहे हुए धर्मास्ति, अधर्मास्ति उसके क्षेत्र में है न? वह क्षेत्र बाद में लेंगे। पहले यह बात करके क्षेत्र बाद में लेंगे। जहाँ स्वयं है, उसी जगह यह सब पाँच द्रव्यों का भाग है। कितने ही परमाणु आदि द्रव्य पूरे हैं और कितनों का भाग है। काल आदि पूरे हैं। असंख्य प्रदेश में काल आदि पूरे हैं। असंख्य द्रव्य। परमाणु पूरे द्रव्य हैं, यहाँ है वहाँ। और धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश का टुकड़ा है। और जीव भी कितने ही पूरे हैं अन्दर। आखा, समझ में आया? पूरा। जहाँ जीव है, वहाँ अनन्त निगोद है या नहीं? अनन्त निगोद के जीव भी पूरे हैं और कोई थोड़ा भाग लम्बा हो, ऐसे चौड़ा बहुत प्रदेश में रुका हुआ हो (तो) ऐसा रह गया, थोड़ा यह रह गया, थोड़े में भाग रहा हुआ हो। समझ में आया?

कहते हैं, यह भगवान आत्मा दूसरे के रूपी आदि गुणों से अभावस्वभाव से और अपने चैतन्यरूपता के स्वभाव के सद्भाव के कारण पर से भगवान आत्मा यहाँ भिन्न है। कहो, इसमें तो समझ में आये ऐसा है या नहीं? इसमें कहीं बहुत सूक्ष्म ऐसी बात नहीं। भाषा तो बहुत (सादी है)।

मुमुक्षु : भिन्न ही हो न, उसमें क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे भिन्न हो? ऐसे समझकर भिन्न कहे।

एक-दूसरे में नहीं, इसलिए भिन्न है, ऐसा सिद्ध होना चाहिए। समझ में आया? जिसके गुण जिसमें रहे हैं, उससे वह अभिन्न है। और उन गुणों का उसमें अभाव होने से उन द्रव्यों का उसमें अभाव है, इसलिए उनसे भिन्न है। समझ में आया? एक ही बात में कहा कोई कहे। पहले कही थी न? '**वंदित्तु सव्व सिद्धे**'। वहाँ भी सर्व सिद्ध कहकर एक द्रव्य नहीं, ऐसा सिद्ध किया। यहाँ वापस (कहा), पाँच द्रव्यों का अभाव अर्थात् कि पाँच द्रव्य हैं, उनके गुण हैं, उनका इसमें अभाव है और एकदम माननेवाले—एक ही आत्मा माननेवाले झूठे हैं, ऐसा ठहराया। समझ में आया? शैली ऐसी है, देखो! लिखा है इसका फिर स्पष्टीकरण किया है।

इस विशेषण से एक ब्रह्मवस्तु को ही माननेवाले का खण्डन हो गया। अभी बहुत गड़बड़ उठी है। जैन में भी यह निश्चय बात जब यहाँ से आयी तो अब कितने ही लोग (कहते हैं), आत्मा एक है और शून्य हो जाओ, विकल्प घटाओ। तब दूसरे को ऐसा लगता है कि यह तो अपने सोनगढ़ जैसा लगता है, हों!

मुमुक्षु : उस रूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस रूप का अर्थ उसके जैसा लगता है, ऐसा कहते हैं। होवे खोटा खोटा। बापू! यह बात ही दूसरी है, भाई! यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ आत्मा। पहले से शुरु किया है न, देखो न! '**नमः समयसाराय सर्वभावान्तरच्छिद**' यहाँ से शुरु किया है। केवलज्ञान शुरु किया वहाँ से। एक समय में जिसे तीन काल-तीन लोक जानने में आये। '**सर्वभावान्तर**' अपने भाव तो जाने परन्तु उससे अन्य भाव को जिसने जाना। ऐसी एक समय की पर्यायवाला तत्त्व, ऐसे भगवान ने यह सब कहा है। कहो, दूसरे में कहा न? '**अनन्तधर्मणस्तत्वं**' (दूसरे कलश में)। उसे भी सर्वज्ञ सरस्वती देखती है। ऐसा आया न भाई! उसमें? वहाँ भी आया। सर्वज्ञ बिना तो यह कदम चले ऐसा नहीं। इसका स्वभाव सर्वज्ञ है। प्रगट सर्वज्ञ है और इसका स्वभाव सर्वज्ञ है। ऐसा द्रव्य जब तक पूरा न माने, वहाँ तक उस आत्मा को माना ही नहीं उसने। समझ में

आया ? फिर तीसरे में नहीं डाला। स्वयं परम विशुद्धि माँगी है न! परम विशुद्धि माँगी है, इसका अर्थ केवलज्ञान माँगा है। परम विशुद्धि वहाँ आगे ऐसा लिया। केवल मुझे परम विशुद्धि हो। मैं तो मुझमें एकाग्र होऊँ और यह करते-करते परम विशुद्धि केवलज्ञान होओ, ऐसा लिया। **'वंदित्तु सव्व सिद्धे'** में ऐसा कहा, भगवान ने **'वोच्छामि'** यह केवलज्ञानियों ने कहा हुआ है। श्रुतकेवली शब्द एक ओर रखो। केवलज्ञानी का कहा हुआ है, यह केवलज्ञानी का कहा हुआ है। पद-पद में न्याय-न्याय से केवलज्ञान रखते हैं। समझ में आया ? और यह दूसरी में लो न! समझ में आया ? यह आया, देखो! फिर आयेगा अभी, हों! यह एक साधारण... भाई को पूछा था परन्तु और दो बार वर्णन किया। समस्त रूप को झलकानेवाला है न ? उसमें केवलज्ञान भी निकलता है और सामान्यपना निकलता है, ऐसा लगता है।

यहाँ कहते हैं, देखो! **एक ब्रह्मवस्तु को ही माननेवाले का खण्डन हो गया।** अब कैसा है ? एक क्षेत्र में इकट्ठे रहे हैं, उनकी बात करते हैं। **अनन्त अन्य द्रव्यों के साथ...** अनन्त अन्यद्रव्य हैं। यह भगवान आत्मा यहाँ है, वहाँ अनन्त परमाणु यहाँ अन्दर है। इस क्षेत्र में, हों! इस क्षेत्र में अनन्त परमाणु हैं। इस क्षेत्र में अनन्त जीव हैं, इस क्षेत्र में असंख्यात कालाणु हैं, इस क्षेत्र में धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश के असंख्य प्रदेश हैं। भले उसका भाग है, परन्तु पूरा द्रव्य नहीं। समझ में आया ? वह वस्तु पूरी स्वयं भिन्न है। एक क्षेत्र में ऐसे अनन्त परमाणु... समझ में आया ? ओहो!

सिद्ध भगवान हैं, वहाँ भी ऐसा है। वहाँ भी अनन्त जीव हैं। अनन्त परमाणु हैं। धर्मास्ति का असंख्यवाँ एक भाग-क्षेत्र है, अधर्मास्ति का असंख्यवाँ (भाग है)। क्योंकि कोई भी जीव निगोद का लो तो भी आकाश के असंख्य प्रदेश स्पर्शे बिना तो रहता नहीं। असंख्य प्रदेश उसे होते ही है वे। भले एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त जीव हैं, अनन्त। अनन्त कहा न ? एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त जीव हैं। अनन्त स्कन्ध-परमाणु हैं। तथापि एक जीव एक प्रदेश में नहीं रह सकता। एक जीव की चौड़ाई उसके रहने के लिये असंख्य प्रदेश होते हैं। समझ में आया ? पुद्गल के अनन्त परमाणुओं का पिण्ड है, वह तो एक प्रदेश में रहे। अनन्त प्रदेश का पिण्ड एक में

रहे, परन्तु असंख्य प्रदेशी एक जीव एक प्रदेश क्या, संख्यात प्रदेश में न रहे। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान आत्मा **अनन्त अन्य द्रव्यों के साथ...** उन अन्य द्रव्यों के साथ। यहाँ भी अनन्त परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं। एक अंगुल के असंख्य भाग में असंख्य कालाणु हैं अन्दर। क्योंकि आकाश के प्रदेश असंख्य हैं न इतने में। एक-एक प्रत्येक प्रदेश में एक कालाणु है। भाई! ऐसा महा अस्तित्व-सत्ता है। समझ में आया? वे **अनन्त अन्य द्रव्यों के साथ अत्यन्त एकक्षेत्रावगाहरूप...** अत्यन्त क्यों कहा? कि यहाँ जहाँ आत्मा है, उसी प्रदेश में सब है। अनन्त जीव हैं, अनन्त रजकण स्कन्ध है, कालाणु है, धर्मास्ति, अधर्मास्ति का भाग है। यह अत्यन्त एकक्षेत्रावगाह **अत्यन्त एकक्षेत्रावगाह...** और जीव रहता है यहाँ और परमाणु रहते हैं यहाँ, ऐसा कुछ नहीं। वहीं के वहीं एक प्रदेश में सब हैं। ओहोहो! यह वस्तु ऐसी है। इसलिए स्पष्ट किया है। जीव... जीव... जीव करे, ऐसा नहीं चलता।

जीव भगवान अपने अनन्त गुण-पर्याय के समूहरूप से विराजमान आत्मसमय है। उस स्थान में अनन्त रजकण और आत्मायें रहने पर भी एक-एक आत्मा ने असंख्य प्रदेश रोके होने पर भी वह के वह असंख्य प्रदेश में अनन्त जीव रहते हैं। है? **अनन्त अन्य द्रव्यों के साथ...** अनन्त जीव हैं या नहीं वहाँ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : देखा जा सकता है।

यहाँ असंख्य प्रदेश में एक जीव, परन्तु असंख्य प्रदेश का अमुक थोड़ा भाग रोके। इस आत्मा ने भी लोक के जो प्रदेश हैं, उनके असंख्यवें भाग में यहाँ रोके हुए हैं। समझ में आया? कोई जीव छोटा हो तो भी लोक के प्रदेश से असंख्यवें भाग में ही वह रुका हुआ होता है। असंख्य प्रदेश में। उन असंख्य प्रदेश में अनन्त रजकण और अनन्त आत्मायें रुके हुए हैं। वह एक-एक आत्मा भी असंख्य प्रदेश में रुका हुआ है। ऐसे-ऐसे एक प्रदेश में एक जीव नहीं रहता, परन्तु एक प्रदेश में एक जीव का असंख्यवाँ भाग, ऐसे अनन्त जीव का असंख्यवाँ भाग, ऐसे एक प्रदेश में अनन्त प्रदेश रहते हैं। ऐसे

रहते हैं। परन्तु एक जीवद्रव्य असंख्य प्रदेश के अतिरिक्त संख्यात प्रदेश रहे, ऐसा नहीं होता। समझ में आया? यह कहते हैं।

अनन्त अन्य द्रव्यों के साथ अत्यन्त एकक्षेत्रावगाहरूप... एकक्षेत्रावगाह रहे हुए, व्यापक, तो भी **होने पर भी, अपने स्वरूप से न छूटने से...** भगवान जीवसमय, उसे समय कहा। वह अपने स्वरूप से छूटा नहीं। जहाँ रहा वहाँ अपने स्वरूप में ही रहा हुआ है। ओहोहो! समझ में आया? यह इतने सब अनन्त द्रव्य और उनके अनन्त गुण और पर्याय... अभी कहेंगे। समझ में आया? **सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ...** भाई! ऐसा कहते हैं न? केवलज्ञान। स्वभाव शब्द से यहाँ विकार और अविकार और सब उसका स्वभाव है। समझ में आया? उसे जानने की एक समय की पर्याय की सामर्थ्य है। इतने सब भले कहे, इतने में यह है और यह है सब, परन्तु ज्ञान की एक समय की दशा में... श्रुतज्ञान में, हों! केवलज्ञान तो प्रत्यक्ष जाने। श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय इतने सबको जानने की सामर्थ्य रखती है। आहाहा! ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड एक श्रुतज्ञान, एक ज्ञानगुण, वह तो पर्याय है, ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड जीव, उसे समय कहा जाता है। समझ में आया? इसमें कितना याद रहे? बहुत बात आती है। ऐई! नटुभाई! दुकान की बात कितनी याद आवे। सब बात आवे और एक नयी मशीन घुसाई वापस। यह सब याद आवे। ऐसा करना... ऐसा करना... ऐसा करना... ऐसा करना, लो। करे क्या? भाव करे। धूल करता है पर का। कौन करता है? आँख को ऐसे फिराना, वह आत्मा के अधिकार की बात नहीं। मशीन कौन घुमावे? अरे! यह क्या होगा यह सब? ईश्वर करता होगा बीच में आकर?

एक व्यक्ति था। जवाहरलालजी का साधु हुआ न, यहाँ आया था। एक साधु हुआ। त्रिलोकचन्द, साधु होने के बाद पाँच वर्ष में पढ़ चुका। ७१००० श्लोक स्थानकवासी के सूत्र के। एक वर्ष में पढ़ जाये ऐसा है। पढ़ जाने के बाद उसे शंका हुई अन्दर। ऐसी शंका आयी कि यह एक बैल निकला हो... बैल। बळद समझते हो? बैल। वह बैल निकला और एक मनुष्य निकला। बैल ने उसे सींग मारा तो असाता के उदय को किस (प्रकार) खबर पड़ी कि यह बैल आयेगा? हमारे बात हुई। रामजीभाई थे। (संवत्)

१९९२ के वर्ष। ३० वर्ष हुए, ३०। फिर उससे श्रद्धाभ्रष्ट हो गया, इसलिए छोड़ दिया। स्थानकवासी साधुपना छोड़ दिया। फिर हो गयी वेदान्त की श्रद्धा। फिर यह एक प्रश्न किया। पहले प्रश्न तो दूसरा किया था, हों! उड़ाने के लिये। पहला तो प्रश्न ऐसा किया कि केवलज्ञानी सबको जाने तो पुरुषार्थ करने का कहाँ रहा? ऐसा प्रश्न किया। यह (संवत्) १९९२ की बात है। ३० वर्ष हुए। रामजीभाई बैठे थे। कोई नहीं था, दो-तीन व्यक्ति ही थे। सवेरे। ३० वर्ष हुए। फिर कहे, यह केवलज्ञान यदि माना, एक समय में सबको जाननेवाला, तो भगवान ने जाना, वह केवलज्ञानी ने जाना, ऐसा हो, फिर उसमें पुरुषार्थ करने का कहाँ रहा?

मैंने कहा, सुन! केवलज्ञान तू मानता है? केवलज्ञान तू मानता है? एक समय में तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी पर्याय तू मानता है? (तो कहने लगा), मैं ऐसा नहीं पूछता, मैं ऐसा नहीं पूछता। परन्तु तू पूछता है तो यही पहला। केवलज्ञान तीन काल को जाने तो... केवलज्ञान है, ऐसा मानता है? यदि श्रद्धा न हो तो ऐसा कहे कि केवलज्ञान हो सकता है या नहीं? केवलज्ञान हो सकता है या नहीं? ऐसा पहला प्रश्न होना चाहिए। तू केवलज्ञान है, ऐसा कहकर उन्होंने जाना तत्प्रमाण होगा तो पुरुषार्थ कहाँ रहा? प्रश्न ही झूठा है। केवलज्ञान है, ऐसी अस्ति करके जो जाने, उसे तो केवलज्ञान की श्रद्धा करने में आत्मा के ज्ञायकस्वभाव की ओर पुरुषार्थ जाये, तब उसकी श्रद्धा हो। समझ में आया? यह १९९२ के वर्ष की बात है। ३० वर्ष हुए। बापू! ऐसा नहीं चलता। तत्त्व को अध्धर से उड़ावे तो कहीं चले? फिर उसने कहा, मेरे प्रश्न का जवाब नहीं देते। प्रश्न तेरा यह है कि केवलज्ञानी तीन काल-तीन लोक को जाने तो पुरुषार्थ कहाँ रहा? तो केवलज्ञान का अस्तित्व तो साबित करके तेरा प्रश्न है। अभी साबित करके तेरा प्रश्न है कि केवलज्ञान है, ऐसा तुझे बैठा है? तो कहे, मैं पूछता नहीं था। परन्तु तू बात करता है केवलज्ञान की और यह बात तुझे बैठी नहीं और तर्क उड़ाना है, ऐसा नहीं चलता। फिर केवलज्ञान हो सकता है या नहीं? यह प्रश्न कर। जगत में केवलज्ञान की एक पर्याय तीन काल को जान सकती है, ऐसी पर्याय हो सकती नहीं, यह प्रश्न कर तो उसका समाधान हो। समझ में आया? वह नास्तिक हो गया हो न, इसलिए सब उड़ावे। ऐसे नहीं उड़ता, कहा।

केवलज्ञान एक समय की ज्ञानगुण की पर्याय सबको जाने, ऐसा जिसे प्रतीति में आया, केवलज्ञान की एक समय की पर्याय इतनी बड़ी जगत में अस्ति धराती है। वह तेरी एक समय की पर्याय में यह स्वीकार कब होगा? यह स्वीकार कब होगा? पर्याय में तो अल्पज्ञता है। इतनी पर्याय जगत में महासत्तावाली वर्तती है, वह किस प्रकार से स्वीकार करेगा? तेरे आत्मा में ऐसा स्वीकार हो कि यह पर्याय है, इतनी सामर्थ्य का धारक आत्मा है। ऐसी अनन्त पर्याय का धारक आत्मा है। उस आत्मा के ज्ञायक की दृष्टि होने से केवलज्ञान की श्रद्धा (होगी)। उसमें पुरुषार्थ आ गया। दूसरा पुरुषार्थ कौन सा करना था? उड़ाने को (पूछ), सब उड़ाओ। रामायण और फलाना और ढींकणा। ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! यहाँ तो बहुत ऐसे मिले हैं सिरफोड़िया। बापू! ऐसा नहीं होता।

तू ऐसा कहता है कि आत्मा है, उसका ज्ञानस्वभाव है या नहीं? वस्तु है, वस्तु है तो कोई स्वभाव मुख्य-खास कौन-सा है? स्वभाव तो दूसरे अनन्त हैं। खास कौन-सा है? खास तो ज्ञ-स्वभाव है, ज्ञ-स्वभाव है, स्वभाववान है, उसका ज्ञ-स्वभाव है। अब ज्ञ-स्वभाव जिसका है, वह कम कैसे हो? विपरीत कैसे हो? पण्डितजी! आहाहा! ज्ञ-स्वभाव आत्मा है, ऐसा कहते ही वह सर्वज्ञस्वभाव है, ऐसा हो जाता है। ज्ञ-स्वभाव, भगवान आत्मा ज्ञ-स्वभाव है, अर्थात् कि ज्ञ पूरा स्वभाववाला है, ऐसा सिद्ध होता है। वह सर्वज्ञस्वभावी आत्मा है। समझ में आया? उसे सर्वज्ञस्वभावी है, ऐसा ध्यान हुआ, उसे सर्वज्ञ (पना) प्रगट पर्याय में आया। वह पर्याय पुरुषार्थ हुए बिना रहे ही नहीं उसे। समझ में आया? यहाँ यह कहते हैं, देखो! समझ में आया? यह बाद में आयेगा, हों!

अनन्त अन्य द्रव्यों के साथ... परन्तु अनन्त अन्य द्रव्य हैं, मैं उनसे भिन्न हूँ। कितना ज्ञान ने काम किया इसमें! ज्ञान की पर्याय ने कितना काम किया! अनन्त द्रव्य में एक जगह रहने पर भी मैं उनसे भिन्न हूँ। अपने अस्तित्व का ज्ञान और वे मुझमें नहीं, ऐसा ज्ञान (किया)। पर का अस्तित्व सिद्ध हुआ, परन्तु मुझमें नहीं। अनन्त इतने अनन्त मुझमें नहीं, उसका भान हुआ। बापू! वह तो वस्तु है यह। चैतन्य भगवान सूर्य चैतन्य

है न! इसलिए यहाँ कहा न? दूसरा बोल। **चैतन्यस्वरूपपने से...** ऐसे भाषा ली है। **नित्य-उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट दर्शनज्ञान-ज्योतिस्वरूप है...** चैतन्यस्वरूपपने के कारण सामान्य और विशेष जानने की पर्याय की सामर्थ्य रखता है। समझ में आया? आहाहा!

सात में तो बहुत समाहित किया है, हों! बहुत समाहित किया है। ओहोहो! पहली सत्ता सिद्ध की। पश्चात् चैतन्यस्वरूपपने से। चेतन का अर्थात् जीव का चैतन्यस्वरूपपने से **नित्य-उद्योतरूप निर्मल स्पष्ट...** भले विशद लिया। विशद **दर्शनज्ञान-ज्योतिस्वरूप...** उसके दो भाग कर दिये। चैतन्यस्वरूपपने से दर्शन-ज्ञानरूप परिणमन (होना), वह उसका स्वभाव है। समझ में आया? ओहोहो! बापू! आत्मा की महत्ता आयी नहीं। वह आत्मा कितना और कैसे है, यह बताते हैं यहाँ तो। समय ऐसा है, समय ऐसा है। इस समय की बाद में पलटन दशा ऐसे गुलाँट खाती है या ऐसे खाती है, यह बाद में कहेंगे। स्वसमय बतलाना है न। समझ में आया?

कहते हैं, **अनन्त अन्य द्रव्यों के साथ...** यह बैल का प्रश्न फिर दोपहर में किया था। कहा, प्रत्यक्ष है। सुनो! ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अनन्त के साथ होते हैं। कहा, यह वृक्ष हिलता है या नहीं? देखो! यहाँ धूप है। धूप... तड़को, समझे न? धूप। यह वृक्ष हिलता है न? यहाँ कुछ होता है, वह कुछ अस्तित्व है या नहीं? सामने अस्तित्व है या नहीं? धूप का अस्तित्व है या नहीं? अस्ति दिखती है या नास्ति दिखती है? अस्ति। उस अस्ति में ऐसा-ऐसा होता है। वह वृक्ष हिलते हैं न, इसलिए ऐसा-ऐसा होता है। वह अस्तित्व स्वयं ऐसे-ऐसे होता है या उसके अस्तित्व के कारण ऐसा-ऐसा होता है? बापू! यह तो प्रत्यक्ष अनन्त साथ-साथ में ऐसे दिखते हैं। तुझे खबर नहीं पड़ती? ऐसे वृक्ष पूरा हिले, वहाँ अन्दर (ऐसा-ऐसा होता है), वह क्या है? वहाँ का अस्तित्व वहाँ रहा। यहाँ अस्तित्व दिखता है या नहीं कुछ? सफेद, काली, सफेद अस्तित्व है या नहीं? अस्तिरूप है न पदार्थ? ऐसे दिखता है न? रूपी अस्तित्व। उसके अस्तित्व से भिन्न अस्तित्व। उस अस्तित्व में ऐसा-ऐसा होता है, वह किसके कारण से होता है? अपने कारण से होता है। वह तो निमित्तमात्र है। समझ में आया? उसके अस्तित्व के कारण इसका अस्तित्व? उसकी पर्याय के अस्तित्व के कारण इसकी

पर्याय का अस्तित्व ? या इसके द्रव्य-गुण के कारण इसकी पर्याय का अस्तित्व ? उसके द्रव्य-गुण के कारण उसकी पर्याय का अस्तित्व है। बात छूट जाती है। देखो! ऐसे निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अनन्त दिखते हैं तथापि उनका कोई कर्ता नहीं। इसलिए बीच में सींग मारे और असाता का उदय आवे, यह ईश्वर हो तो मेल करे। कहा, बात खोटी है। उसे ऐसा कि मेल किस प्रकार करता है ? मेल समझे ? यह सम्बन्ध किस प्रकार जोड़ देता है ? असाता का उदय और यह सींग (लगना), यह कैसे किया ? क्या है यह ? कहा। प्रत्यक्ष दिखता है, अनन्त बातें जगत में प्रत्यक्ष है। १९९२ की बात है। ३० वर्ष हुए। सब बातें दिखती हैं। क्या अस्तित्व उड़ाना है ? नहीं उड़े। तू उड़ जायेगा। समझ में आया ? ऐसा है। यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का कर्ता कोई नहीं। असाता का उदय उसे हो, उसे यहाँ सींग लगे, यह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। उसे खबर की आवश्यकता नहीं कि बैल को यहाँ आना और उसके असाता के उदय का आना। कैसे इकट्ठा हुआ ? यह निमित्त-नैमित्तिक का मेल ऐसा है। इसलिए ईश्वर बीच में हो तो ऐसा मेल करे। अत्यन्त झूठी बात है। समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, **अनन्त (अन्य) द्रव्यों के साथ अत्यन्त एकक्षेत्रावगाहरूप होने पर भी, अपने स्वरूप से न छूटने से...** इकट्ठे रहे होने पर भी अपनी पर्याय से भी छूटा नहीं। ऐसा स्वयं रहा होने पर भी स्वयं अपने द्रव्य-गुण और पर्याय से वह द्रव्य छूटा नहीं। अनन्त एक क्षेत्र में रहे होने पर भी अपने स्वरूप से नहीं छूटने से जो **टंकोत्कीर्ण चैतन्यस्वभावरूप है।** भगवान ऐसा का ऐसा अनगढ़ित घड़ा हुआ, अनगढ़ित-घड़े बिना का चैतन्यस्वरूप है। अनगढ़ित। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अनगढ़ित घट...

पूज्य गुरुदेवश्री : अनगढ़ित घाट, अनगढ़ित घाट। घाट अर्थात् वस्तु। यह किसी ने गढ़ी नहीं ऐसे टाँकी मारकर। टाँकी समझते हो ? ऐसा नहीं। अनगढ़ित घाट। नहीं गढ़ा हुआ घाट, वह चीज़ अनादि ऐसी है। है, ऐसी की ऐसी रहती है। आहाहा!

मुमुक्षु : टाँकी से गढ़ा हुआ जैसे स्पष्ट दिखता है, वैसे यह स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा का ऐसा स्पष्ट है। टाँकी से खोदकर जैसे मूर्ति दिखे न!

अदबदनाथ यहाँ है। ऐसा यह अन्दर ऐसा का ऐसा दिखता है। समझ में आया? यहाँ वह नहीं? क्या कहलाता है? यह है यहाँ... भीम... भीम। यहाँ नहीं? पालीताणा है। वह अदबदनाथ है न? पूरे मकान प्रमाण। अन्दर पत्थर तो ऐसा का ऐसा पूरे मकान प्रमाण। यहाँ खोदकर निकाला नहीं, ऐसा का ऐसा वैसा का वैसा है। वैसा का वैसा मानो अखण्ड अकृत्रिम टंकोत्कीर्ण अनगढ़ित घाट।

मुमुक्षु : टाँकी से गढ़ा हुआ ऐसा घाट स्पष्ट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा यह स्पष्ट है। बिना गढ़े का ऐसा का ऐसा स्पष्ट है। असंख्य प्रदेशी उसके आकार में और उसके गुण में रहा हुआ है।

चैतन्यस्वभावरूप है। अपने कहीं अर्थ किया है न? टंकोत्कीर्ण का। ३१ गाथा में? कहीं किया है। पहले में कहीं किया है। ३१ गाथा में कहीं नीचे किया है अवश्य। नोट में किया है। पहले आ गया था। कहीं है नीचे। गाथा ३१? कौनसी है? बराबर है, यह ३१ में है। '**जं इंदिये जिणित्ता**' है, उसमें है। **पत्थर में टाँकी से उत्कीर्ण मूर्ति की भाँति एकाकार जैसा का तैसा स्थित।** बस यह। टंकोत्कीर्ण शब्द है न। फुटनोट में। मूल तो अन्दर आया है। ३१ में आया है न कहीं? यह रहा, देखो! **ज्ञेयज्ञायक-संकर नाम का दोष आता था, वह समस्त दूर होने से एकत्व में टंकोत्कीर्ण और ज्ञानस्वभाव द्वारा...** संस्कृत में है। **टंकोत्कीर्ण ज्ञानस्वभाव द्वारा सर्व अन्य द्रव्यों से परमार्थ से भिन्न ऐसे...** लो, वहाँ भी ऐसा लिया है। ३१ गाथा। पत्थर में टाँकी से उत्कीर्ण मूर्ति की भाँति एकाकार, ऐसा कहना है। जैसा का तैसा स्थित है। कहो, समझ में आया?

किसकी व्याख्या चलती है यह? जीव कैसा है? जीव अर्थात् समय कैसा है? समय की पहली व्याख्या हो गयी। एकसाथ परिणमे और जाने, उसे यहाँ समय लिया जाता है। तीसरी गाथा में समय समस्त पदार्थों को लेंगे। तीसरी गाथा में सबको समय (कहेंगे)। समय एक शब्द, परन्तु तीसरी में सबको लेंगे। यहाँ समय को आत्मा लेना है। जीव। वह जीव ऐसे सात बोल से सहित है। कहो, समझ में आया?

इस विशेषण से वस्तुस्वभाव का नियम बताया है। यह पण्डित जयचन्द्रजी ने स्वयं स्पष्टीकरण किया। **इस विशेषण से...** आत्मा का जो स्वभाव सात बोल से जो है,

उसका नियम (बतलाया)। ऐसे अपने स्वभाव से यह है, ऐसा बतलाया।

अब स्वसमय और परसमय। अब आया। एक जीव शब्द की व्याख्या की। **'जीवः'** अब **'चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण'**। अब यह व्याख्या चलती है। **ऐसा जीव नामक पदार्थ समय है।**

जब... देखो! यहाँ वचन है। **जब...** समझ में आया? **'अयं खलु यदा'** ऐसा है न? देखो! अन्दर संस्कृत है। **'अयं खलु यदा'** ऐसा संस्कृत में शब्द पड़ा है। **'सकलभाव-स्वभावभासनसमर्थविद्यासमुत्पादकविवेकज्योतिरुद्गमनाकत्समस्तपरद्रव्यात्प्रच्युत्य'।** विशेष लिया जाता है, देखो! **जब...** ऐसा समय पदार्थ होने पर भी, जब स्वयं **सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ...** केवलज्ञान लिया वापस। **यह (जीव)...** ऐसे केवलज्ञान को प्रकाशित करने का कारण भेदज्ञान ज्योति प्रगट करे, ऐसा सिद्ध करना है। कितने बोल सिद्ध करेंगे इसमें, देखो! एक तो ऐसा समय जो है, वह सर्व पदार्थों के स्वभाव को। वह स्वभाव शब्द से (आशय) विभाव, स्वभाव सब आ गया। निगोद की विकारी पर्याय हो, व्यंजनपर्याय विकारी हो, अर्थपर्याय विकारी हो। गुण और द्रव्य, सबको यहाँ स्वभाव शब्द में डाला है। स्पष्ट भवनं स्वभाव। उसका अपना भाव है न! अपने में है न। **यह...** क्या कहते हैं? **सर्व पदार्थों के स्वभाव को...** अर्थात् तीन काल के द्रव्य-गुण-पर्यायरूप स्वभाव को। है न, पाठ में है, देखो! **'सकलभावस्वभावभासन', 'सकलभावस्वभावभासन'।** यह तो बहुत सरस संस्कृत है! अपने भाई ने शब्दार्थ में से ही डाला है। अब देखो! एक जीव ऐसा कहा। समझ में आया? वह जब भेदज्ञान प्रगट करे। किसके लिये?

सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली... आहाहा! यहाँ से ही बात शुरु की है। भगवान आत्मा सब पदार्थों के स्वभाव, विभाव, स्वभाव-गुणस्वभाव, द्रव्यस्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ। केवलज्ञान बिना एक कदम चले, ऐसा नहीं। सर्वज्ञ धर्म के मूल हैं। उन्होंने जाना नहीं तो कहा किसने फिर? और उसे जो पहले लक्ष्य में न ले और अपनी कल्पना से माने... किसने कहा? यह देखो! भगवान स्वयं कहते हैं यह। समझ में आया? **सर्व पदार्थों के**

स्वभाव को... अपना आत्मा भी उन सर्व पदार्थों में आ गया। केवली का आत्मा, वह भी सब पदार्थों में आ गया न ? उनका कम्पन आदि। जब तक सिद्ध न हो, तो भी केवलज्ञान है, तब तक और सिद्ध होने के बाद समस्त पर्यायें सब स्वभाव, यह स्वभाव। **सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली...** ऐसे केवलज्ञान को, इतना रखो यहाँ अब। कैसा केवलज्ञान है ? **सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ...** अब इसमें किसे न जाने केवलज्ञान ? एक समय में जाने या आगे-पीछे जाने ?

मुमुक्षु : अनियत पदार्थ को कहाँ जाने ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अनियत है ही कब।

सकल पदार्थों का स्वभाव। तीन काल जो ऐसे के ऐसे पड़े हैं, एक समय में ज्ञात होते हैं, हों! ऐसे स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ। वह अपना गुण-पर्याय समर्थ है, हों! अपना सामर्थ्य यह है। **ऐसे केवलज्ञान...** सीधे केवलज्ञान से ही शुरु की। साधक को साध्य, केवलज्ञान प्रगट करना, वह है। द्रव्यदृष्टि में द्रव्य भले ध्येय है, परन्तु आश्रय और प्रगट करने का तो केवलज्ञान है। समझ में आया ? साधक को मोक्ष... सात तत्त्व में मोक्षतत्त्व है या नहीं ? मोक्ष की उसे श्रद्धा कब हुई ? केवलज्ञान धारक आत्मा अनन्त हैं। उसकी श्रद्धा कब हुई उसे ? कि उस पर्याय को, अनन्त पर्याय को धरनेवाला मेरा द्रव्य है। उस द्रव्य का अन्दर ज्ञान होने पर उसे अनन्त केवलज्ञान की मोक्षतत्त्व की श्रद्धा हुई। उसी श्रद्धा में केवलज्ञान लेने की प्रतीति हुई। मुझे केवलज्ञान लेना है। मेरी दशा मुझे पूर्ण करनी है। समझ में आया ? **ऐसे केवलज्ञान को...** इतनी बात।

अब उत्पन्न करनेवाली कौन ? भेदज्ञानज्योति। ऐसा जो केवलज्ञान, उसे उत्पन्न करनेवाला कौन ? भेदज्ञानज्योति। यह दूसरी बात उड़ जाती है, भाई! वह व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, वह केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाला है, ऐसा नहीं। उस व्यवहाररत्नत्रय से भिन्न-भिन्न, स्वभाव से अभिन्न—ऐसी भेदज्ञानज्योति वह केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली है। आहाहा! समझ में आया ? है या नहीं पुस्तक सामने ? इसलिए तो यह पुस्तक सामने रखते हैं। फिर वे आलोचना करे कि (स्वयं) ऊपर बैठे और पुस्तक नीचे

रखे। बापू! इसमें असातना की बात नहीं, भाई! जो हेतु है, उसे (समझना चाहिए)। यह बात है, भाई! बापू! ऐसा न देख तू। उसका भाव कितना गम्भीरता से भरा हुआ, ऐसा उसे उस शब्द के ख्याल में बहुमान आवे तो वही शास्त्र का बहुमान है। परन्तु क्या अपेक्षा है, उसे ख्याल नहीं होता। ऐई... ऐसा करते हैं। भगवान! बापू! तू स्वतन्त्र है, भाई! आहाहा! यह प्रभु है न! यह सुलटा पड़ा (तो) केवलज्ञान ले, ऐसा है। उल्टा पड़े (तो) निगोद ले, ऐसा है। यह तो इसकी और इसकी दशा है न। दोनों, यह कहेंगे। समय ऐसे स्वभाव में स्थित हो तो स्वसमय है, पर में स्थित हो तो परसमय है। वापस हुआ अर्थात् वह स्वयं स्थिर होता है, ऐसा। कोई कर्म के कारण से यह बात नहीं। इसलिए लिया, **'चरित्तदंसणणाणठिदो'।** स्वयं अपनी निर्मल पर्याय में स्थित स्वयं होता है। इसलिए स्वसमय कहेंगे। किसी के कारण से (या) कर्म मन्द पड़े, ढींकणा हुआ, इसलिए हुआ — ऐसा नहीं है। समझ में आया? एक-एक पद की ध्वनि ही कोई समयसार की... ओहोहो! ऐसी कोई स्थिति से (रचना हो गयी है), मंगल मुहूर्त में समयसार हुआ है। आहाहा! यह कुन्दकुन्दाचार्य वन में रहे और यह समयसार (बन गया)। गजब बात लिखी है! समझ में आया?

कहते हैं कि ऐसा जो केवलज्ञान। कैसा केवलज्ञान? सर्व पदार्थ के विकार, अविकार गुण-पर्याय प्रकाशित करने में समर्थ ऐसे केवलज्ञान को। इतनी बात।

मुमुक्षु : निमित्त आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ आया परन्तु इसमें निमित्त? निमित्त का ज्ञान आया।

मुमुक्षु : निमित्त तो अनिश्चित है। जब आवे तब हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा होता नहीं, बापू! ऐसा नहीं, प्रभु! भाई! यह इसे बदलना पड़ेगा। सुलटी बात है, उसे लेना पड़ेगा, उसमें क्या है? भूल हो। उसमें क्या है? भूल को स्वीकार करना, उसमें इसकी महत्ता है। महत्ता तो उसमें इसकी है। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भगवान! सर्व पदार्थों को प्रकाशित करने में। प्रकाशित करने में या करने में? प्रकाशित करने में। पर परमाणु को रचने में, स्कन्ध को रचने में, शरीर को

रचने में, राग को रचने में, ऐसा कहा नहीं न? सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में—जानने में समर्थ **ऐसे केवलज्ञान को...** यह केवलज्ञान सिद्ध किया। **उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति...** सिद्ध की। ऐसे केवलज्ञान को। केवलज्ञान पर्याय है और यह भेदज्ञान भी पर्याय है। वह पूरा समय है, जो साधारण बात की वह। अब राग से, पर से भिन्न हूँ और मेरे स्वभाव में अभिन्न हूँ—ऐसी भेदज्ञानज्योति। इसलिए उस व्यवहार राग को—शुभराग को जो व्यवहार कहा, वह उसे साथ में लेकर भेदज्ञान होता नहीं। उसे पृथक् करे कि यह नहीं और यह मैं। इससे ऐसा रहता नहीं कि व्यवहार पहले और निश्चय बाद में, यह बात नहीं रहती। समझ में आया? सन्तों ने भी मार्ग को सरल कर दिया है। आहाहा! मुनि यह मार्ग पाकर पहुँच गये परन्तु जगत के लिये सरल (कर डाला)। सन्तों ने सरल स्तम्भ रोपे हैं। सहेलो समझ में आया? सहेलो अर्थात्? सरल, सस्ता। सहेला का भाव नहीं आता। सहेली अपनी गुजराती भाषा है न। सहेलो किया है—आसान। हाँ, व्यवस्थित आना चाहिए न। आसान, यह बराबर है।

भेदज्ञानज्योति का उदय होने से,... देखो! उदय अर्थात् पर्याय है यह। यह कहीं अनादि से नहीं। राग और पुण्य-पाप के भाव शरीरादि से आत्मा भिन्न है। यह नहीं, यह मैं। ऐसा भेदज्ञान करना, वही मोक्ष का उपाय है। समझ में आया? निमित्त और राग को साथ लेकर उनसे भिन्न नहीं हुआ जाता। राग और निमित्त को वहाँ रखकर—जहाँ है, वहाँ रखकर उससे भिन्न होता है। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी! उसमें से निकलता है या नहीं? देखो! वे ऐसा कहते हैं कि सोनगढ़... बापू! प्रभु! तूने सुना नहीं। तू यह किसे कहता है? आरोप किसे देता है, भाई! तुझे खबर नहीं। यह क्या है, वह तुझे खबर बिना यह तू क्या बोलता है? भाई! आहाहा! अरे! यह बात... यह... घर के उल्टे अर्थ करता है और ... अरे! प्रभु! भाई! तूने सुने नहीं। भगवान की समीपता तूने सेवन नहीं की। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, जिसे ऐसा आत्मा सात बोल से कहा, अब उसे स्वसमय सिद्ध करते हैं और परसमय सिद्ध करते हैं। ऐसा भगवान आत्मा **केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति का उदय होने से,...** वापस देखा! केवलज्ञान उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति

का उदय होने से। भाषा देखो! जैसे कर्म का उदय, राग का उदय। यह उदय होने से। उदय अर्थात् प्रगट। भेदज्ञानज्योति। भाषा कैसी प्रयोग की है? ज्योति उपमा दी है। राग और पर से ऐसे भिन्न पाड़े, जलाकर राख कर डाले पर को। भिन्न पड़ी हुई चीज़ यहाँ होने से वह रह सकती नहीं। समझ में आया? यह दीमक होती है न? भाई! दीमक। क्या कहलाते हैं? कीड़े नहीं होते बारीक? ... परन्तु इससे भी (बारीक) दीमक होती है। धूल में हो। दीमक। बहुत सफेद कोमल होती है। धूप लगे वहाँ सड़सड़ाट (जल जाये)। मैंने नजरों से देखी हुई है, हों! एक बार। पहले तो अपवास करते न। महीने के चार। बारह बजे आहार करके एक बजे दिशा को जाना पड़े। तेज धूप। वह बाहर दिशा को गये तो ऐसे दीमक... दीमक सफेद बारीक-बारीक दीमक धूल में होती है। ऐसे निकली वहाँ धूप लगी तो जल गयी, समाप्त हो गयी। भस्म हो गयी अग्नि बिना। इतनी कोमल।

यहाँ कहते हैं कि रागादि से भेद करनेवाला भगवान जहाँ जगा, वह राग अब नहीं रह सकेगा। भेदज्ञानज्योति जगी है। आहाहा! समझ में आया? उसके प्रकाश के समक्ष, महिमा के समक्ष किसी की महिमा नहीं रहती। आहाहा! शब्द प्रयोग कर कितना कहते हैं! उत्पन्न करनेवाली उसको। कौन करनेवाली? भेदज्ञानज्योति। विकल्प केवलज्ञान को उत्पन्न करे? व्यवहारमोक्षमार्ग केवलज्ञान को उत्पन्न करे? और व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्ग को उत्पन्न करे? व्यवहारमोक्षमार्ग केवलज्ञान को उत्पन्न करे? और व्यवहारमोक्षमार्ग निश्चयमोक्षमार्ग उत्पन्न करे? क्योंकि जिससे भिन्न होना है, उससे तो भिन्न होना है। भिन्न होना है, उसे भिन्न करने में राग मदद करे? समझ में आया? भाई! यह तो मूल मार्ग है न! 'मूल मारग सुन लो जिनवर का रे...' है न? 'करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मारग सुन लो जिनवर का रे...' श्रीमद् ने कहा है न यह? आता है या नहीं? वहाँ तो बहुत बार बोले होंगे। सब देख आये और निश्चिन्तता से। आहाहा!

कहते हैं, कि भेदज्ञान में दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों आये। ऐसा करके यहाँ फिर सिद्ध करेंगे, देखो! जिसे **केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति का उदय**

होने से, सर्व परद्रव्यों से छूटकर... अब आया, देखो! अब जब पर से भिन्न पड़कर अपने को भेदज्ञान हुआ, तब **सर्व परद्रव्यों से छूटकर...** सर्व परद्रव्यों से छूटकर। अन्दर राग, विकल्प पर से छूटकर **दर्शनज्ञानस्वभाव में...** देखो! ध्यान रखना अब। केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञान—राग से भिन्न करने की चैतन्यज्योति जहाँ प्रगट हुई, उदय अर्थात् प्रगट हुई। पर्याय है इसलिए। **सर्व परद्रव्यों से छूटकर...** राग व्यवहार विकल्प, शरीर, कर्म, निमित्त आदि सबसे छूटकर **दर्शनज्ञानस्वभाव में...** यह दर्शन-ज्ञानस्वभाव तो आत्मा का शाश्वत का है। सामान्य दर्शन, विशेष ज्ञान—ऐसा त्रिकाल स्वभाव आत्मा का है। ऐसे स्वभाव में **नियत वृत्तिरूप...** उसमें नियत वृत्तिरूप-अस्तित्वरूप-रहनेरूप। किसमें...? जो दर्शन-ज्ञानस्वभाव में निश्चित अस्तित्वरूप आत्मतत्त्व। ऐसे दर्शन-ज्ञानस्वभाव में रहनेरूप आत्मतत्त्व। देखो! ऐसा है। दर्शन-ज्ञान उसका चैतन्यस्वभाव, उसमें चेतन अर्थात् आत्मतत्त्व उसमें रहा हुआ है।

ऐसे **आत्मतत्त्व के साथ...** ऐसे आत्मतत्त्व के साथ। अब वह मूल बात लेनी है। अब जुड़ान की बात। '**चरित्तदंसणणाणठिदो**' शब्द है न? समझ में आया? यह थोड़ा समझ में आये तो कुछ बाधा नहीं। लम्बी बात न समझ में आये, परन्तु थोड़ा भी मूल सत्य समझना चाहिए। अर्थात् ऐसा नहीं कि एकदम बात कर डालें, एकदम वाँच जायें इसलिए झट समझ में आये, ऐसा कुछ नहीं। एक व्यक्ति कहता था, समयसार ... को? मैं तो पन्द्रह दिन में वाँच गया पूरा। वह तो एक दिन में वाँच जाये। सवेरे से चौबीस घण्टे बैठे तो। बापू! उसमें नौ तत्त्व की (बात है)। इसमें नौ की (बात) है, बापू! परन्तु नौ में बड़ी गम्भीरता है, एक-एक तत्त्व की। भाई! ऐसे तू पहाड़े की भाँति वाँच गया, इससे कोई उसके भाव समझ में आ जाये, ऐसी बात नहीं है। अंग्रेजी के लेख लिखे हों और अंग्रेजी कुछ पढ़ा हो शब्द में, वह वाँच जाये परन्तु भाव समझ में आये उसे? गुजराती में लिखा हो, लो न। दूसरी कक्षावाला वाँच जाये। चे... त... न... स्व... रूप... ऐसे वह वाँचे। देखे हैं न हमने। दूसरी कक्षावाला ऐसे वाँचे। क्योंकि उसे पूरी शब्द की सन्धि करना नहीं आता। चै... त... न्य... इतनी अधिक देर लगे तो शब्द इकट्ठे कब हों और भाव इकट्ठा कब हो? ऐई! यह सब देखे हुए है न! सबको परखा। गुजराती का

अच्छे में अच्छा तत्त्व लिखे, वह शब्द वाँचे। परन्तु उसका भाव क्या है ? उस भाव को समझे नहीं।

उसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा जिसके दर्शन-ज्ञानस्वभाव में जिसका रहना है। देखो! भगवान उसमें रहा हुआ है, भाई! यह राग-द्वेष विकार, शरीर, कर्म में रहा हुआ नहीं, ऐसा पहले सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? कहो, समझ में आया या नहीं ? अनुभाई! यह अनुभाई दो-तीन दिन सुनने आये हैं। चलो, समयसार वँचता है। कहो, समझ में आया इसमें ? आहाहा! कहते हैं, **सर्व परद्रव्यों से छूटकर दर्शनज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप (अस्तित्वरूप)...** उसमें जिसका अस्तित्व है, ऐसा **आत्मतत्त्व...** अर्थात् यह आत्मतत्त्व दर्शन-ज्ञानस्वभाव में रहा हुआ है। वह आत्मतत्त्व कर्म में, शरीर में, राग में, विकल्प में रहा हुआ वह आत्मतत्त्व नहीं। समझ में आया इसमें ? यह 'प्र' शब्द है न अधिक का ? वृत्ति शब्द है। '**दृशिज्ञप्तिस्वभावनियतवृत्तिरूप**' भगवान आत्मा यह दर्शन-ज्ञान जो कायम स्वभाव है, यह मूल स्वभाव लिया। दर्शनउपयोग। उपयोग लिया न ? उपयोग लक्षण से कहा है न ? '**सव्वण्हुणाणदिट्ठो जीवो उवओगलक्खणो णिच्चं**'। भगवान ने केवलज्ञान में उपयोगलक्षण आत्मा को देखा है। तू दूसरे प्रकार से किस प्रकार से मानेगा उसे ? समझ में आया ? यह दर्शन-ज्ञान त्रिकाल उपयोग है, त्रिकाल स्वभाव है। उसमें रहा हुआ आत्मा, उसमें रहा हुआ आत्मा। समझ में आया ?

ऐसा आत्मतत्त्व, उसके साथ एकत्वरूप से लीन होकर। देखो! यह दर्शन-ज्ञान में रहा हुआ आत्मा उसके साथ एकत्व होकर अर्थात् वहाँ से छूटा है और यहाँ एकत्व हुआ है। परद्रव्य रागादि से पृथक् पड़ा, दर्शन-ज्ञानस्वभाव में रहा हुआ आत्मा, उसके साथ एकत्वरूप से लीन होकर प्रवृत्ति करता है। एकत्परूप से लीन होकर प्रवृत्ति करता है। पश्चात् अभी इसकी व्याख्या आयेगी, बहुत बड़ी है, हों! 'जब' शब्द पड़ा है न ? 'तब' ऐसा शब्द अब बाद में आता है। **दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित होने से युगपद् स्व को एकत्वपूर्वक जानता हुआ और स्व-रूप से एकत्वपूर्वक परिणमता हुआ वह 'स्वसमय' है, इस प्रकार प्रतीत किया जाता है;...** लो! यह शीघ्रता से हो गया है, कल बात.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण ६, रविवार, दिनांक - ०७-०८-१९६६
गाथा - २, प्रवचन - १०

यह समयसार। जीव-अजीव अधिकार की दूसरी गाथा चलती है। जीव किसे कहना, इसके सात बोल चले। जीव-आत्मा। पहला जीव लिया। वे और कहे, जीव और आत्मा भिन्न हैं। ऐसा नहीं है। जीव कहो या आत्मा कहो। जीव को जीने की अपेक्षा से उसे जीव कहा और आत्मा-... गच्छति इति आत्मा। वस्तु तो वह की वह है। आत्मा निर्लेप है और जीव कोई सलेप है, ऐसी कोई व्याख्या है नहीं। इसलिए कहते हैं कि जीव, उसे सात बोल से वर्णन किया। समय... समय है, वह समय। स्वयं एक समय में परिणमता है और जानता है, इसलिए उसे समय कहा जाता है। सात बोल से। **ऐसा जीव नाम का पदार्थ समय है।** कल सब थोड़ा-थोड़ा शीघ्रता से लिया था न।

जब यह (जीव)... जब यह स्वयं जीव, ऐसा। **सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली...** जब यह जीव स्वयं करे तब, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? जब यह आत्मा, ऐसा है यह वर्णन किया। वस्तुरूप से पूरी। यह **सर्व पदार्थों के स्वभाव को...** जगत के सब आत्मायें, परमाणु, गुण और स्वभाव और विभाव, इन सबको यहाँ स्वभाव कहा गया है। **सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ...** एक समय में जानने में-प्रकाशित करने में समर्थ **ऐसे केवलज्ञान को...** यह केवलज्ञान की व्याख्या की। **ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति का उदय होने से,...** ऐसा आत्मा सत्तारूप से चैतन्यरूप से—ज्ञान-दर्शन परिणमनरूप से, अनन्त धर्मों के आधार द्रव्यरूप से, क्रम-अक्रम गुण और पर्यायरूप से, षट् द्रव्य के गुणों से भिन्नरूप से एकक्षेत्र में रहने पर भी अत्यन्त भिन्नरूप से (रहा है)। सात बोल हो गये। ऐसा आत्मा जब सर्व पदार्थों के स्वभाव को प्रकाशित करने में समर्थ ऐसे केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली। केवलज्ञान को उत्पन्न (करनेवाली)—केवलज्ञान उत्पन्न होता है। केवलज्ञान कहीं अनादि का

नहीं। अनादि का ज्ञानगुण है, परन्तु केवलज्ञान पर्याय तो नयी उत्पन्न होती है। उसे उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति भी नयी उत्पन्न होती है। समझ में आया? भेदज्ञानज्योति का उदय होने से। उदय अर्थात् प्रगट होने से।

सर्व परद्रव्यों से छूटकर... भगवान आत्मा सात बोल से वर्णन किया ऐसा आत्मा समय है। तो भी वह जब अपने पूर्ण स्वभाव को प्रगट करनेवाली केवलज्ञानदशा, उसे प्रगट करनेवाला भेदज्ञान। उसे भेदज्ञानज्योति कहा। उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों समाहित हो गये, भाई! क्या कहा? भेदज्ञानज्योति में तीनों समाहित हो गये हैं। भेदज्ञानज्योति का उदय हुआ, तब क्या हुआ? पर से भिन्न ऐसे आत्मा की श्रद्धा, पर से भिन्न ऐसे आत्मा का ज्ञान, पर से भिन्न ऐसी स्वरूप की स्थिरता। उन्हें—तीन को एक करके भेदज्ञान कहा है। कहो, समझ में आया इसमें? परन्तु इस भेदज्ञानज्योति का उदय होने से केवलज्ञान होता है, ऐसा सिद्ध किया। कोई निमित्त के कारण से या राग की सहायता के कारण से केवलज्ञान उत्पन्न होता है या राग और निमित्त की सहायता के कारण से भेदज्ञानज्योति उत्पन्न होती है, ऐसा नहीं। समझ में आया? जिससे भिन्न पड़ना है, उसकी सहायता से भिन्न पड़े, ऐसा हो नहीं सकता। क्या कहा यह? पण्डितजी कहते हैं, सम्मति तो चाहिए, जिससे भिन्न पड़ना हो। दो भाई इकट्ठे हों न... यहाँ सम्मति किसकी राग की लेनी है? कर्म की लेनी है? शरीर की लेनी है? दो भाई सम्मति से भिन्न पड़ते हैं या नहीं? यहाँ कहाँ दो भाई हैं? यहाँ तो दो भिन्न चीज़े हैं। यहाँ तो एक जड़ राग है, वह अचेतन है; कर्म है, वह अचेतन है, राग अचेतन है, उसमें कहाँ ज्ञान का अंश है? दो भाई ही कहाँ हैं? समझ में आया? एकसाथ रहे हैं। इतनी अपेक्षा से उन्हें बन्धु कहा है। बन्धु। परमात्मप्रकाश में कहा है। बन्धु का नाश करे। अरे! तू मुनि होकर बन्धु का घात करता है। आता है न? अहो! तेरे साथ अनादि के रहे हुए कर्म और राग का तू नाश करनेवाला, बन्धु का घात करनेवाला, ऐसा करके गुण का वर्णन है। समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ साथ में रहनेवाले राग, शुभराग, कर्म, शरीर, संहनन इत्यादि देव-गुरु या वाणी, इन सबसे भिन्न करना है और स्वभाव में एकत्व होना। यहाँ तो

तीसरी गाथा से शुरु करेंगे। एकत्व-विभक्त। स्वभाव में एकत्व और पर से विभक्त, यह हम कहेंगे। यहाँ से शुरु करेंगे।

एयत्तणिच्छयगदतो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

भगवान आत्मा अपने अनन्त स्वभाव सम्पन्न वह स्वयं राग और कर्म से भिन्न पड़कर भेदज्ञानज्योति का उदय होने से और उसमें राग, व्यवहार और निमित्त की सहायता हो तो भेदज्ञान हो, (ऐसा नहीं)। जिससे भिन्न पड़ना है, उसकी सहायता किसकी हो? समझ में आया? इसलिए ऐसा कहा कि भेदज्ञानज्योति। भगवान आत्मा अपने अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु, उसके स्वभाव की एकत्वता करने से रागादि से पृथक् करने से जो भेदज्ञान उत्पन्न हुआ, वह भेदज्ञान केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाला है। कहो, समझ में आया इसमें? इसमें तो कल बहुत न्याय दिये थे।

पर से पृथक् पड़ता है, उसमें वह कहाँ सहायक हो? और वह भेदज्ञान उत्पन्न करने में सहायक नहीं, तथा केवलज्ञान को उत्पन्न करने में राग और निमित्त की सहायता नहीं। केवलज्ञान को उत्पन्न करने में तो भेदज्ञानज्योति को यहाँ भगवान ने कारण कहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... कहा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भले कहा हो। दूसरी जगह कहा हो व्यवहारनय से। पंचास्तिकाय में आता है। साधन-साध्य, भेद साध्य-साधन। पण्डितजी! यह याद तो करे न। दूसरी जगह कहा है न। यह तो छहढाला में कहा है। नियत का हेतु। नियत का कारण। है न, सब ख्याल नहीं? सब बात है। परन्तु वह सब व्यवहार का स्वरूप सिद्ध किया है कि वह है। परन्तु उसका भेद किया, तब उसको व्यवहार कहा जाता है। समझ में आया?

इसलिए कहते हैं, बहुत सिद्धान्त भरे हैं इसमें, देखो न! कहते हैं, सीधे केवलज्ञान उत्पन्न करने का... एकदम। परमात्मदशा अपनी उत्पन्न करनेवाली, उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति। व्यवहार विकल्प, संहनन, व्रजवृषभनाराच संहनन बिना केवल (ज्ञान)

नहीं होता। बहुत वर्ष पहले एक पण्डित आये थे न? कुचामन के। मनुष्यपने बिना केवल (ज्ञान) नहीं होता, व्रजनाराचसंहनन बिना केवल (ज्ञान) नहीं होता। यहाँ एक बार रहा था।..., क्या नाम था? घासीलालजी। पण्डित थे। घासीलालजी, कुचामन के। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, **केवलज्ञान को उत्पन्न करनेवाली भेदज्ञानज्योति...** व्रजवृषभ-संहनन और मनुष्यदेह और चौथा काल और महाविदेहक्षेत्र, यह कुछ नहीं—ऐसा कहते हैं। है इसमें, है या नहीं? देखो न! ऐ... रतिभाई! प्रगट होने से अर्थात् जब स्वयं प्रगट करे, तब से, ऐसा कहते हैं। **सर्व परद्रव्यों से छूटकर...** सब रागादि परद्रव्य से छूटकर **दर्शनज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप (अस्तित्वरूप) आत्मतत्त्व के साथ...** भगवान आत्मा... आत्मा एकरूप पद है—वस्तु है। उसका दर्शन-ज्ञान भी एकरूप उसका पद स्वभाव है। समझ में आया? दर्शन-ज्ञान, दृष्टा-ज्ञाता, ऐसा एकरूप सम्पूर्ण स्वभाव सामर्थ्यवाले दो गुण हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा द्रव्य एक है, इसलिए वह पूर्ण है। और उसका दर्शन-ज्ञानस्वभाव भी, द्रव्य एक है, वह ज्ञान-दर्शनस्वरूप है, इसलिए वह दर्शन ज्ञान भी सम्पूर्ण स्वभाव है। समझ में आया?

उसमें **नियत वृत्तिरूप (अस्तित्वरूप) आत्मतत्त्व...** उसमें रहनेरूप आत्मतत्त्व, उसमें रहनेरूप आत्मस्वरूप। समझ में आया? भगवान आत्मा कहते हैं कि वह आत्मा अर्थात् क्या? यहाँ जैसे '**चारित्तदंसणणाणठिदो**' जीव कहा। उसी प्रकार यहाँ आत्मा दर्शन-ज्ञान सामान्य पूर्ण है। उसका स्वभाव... वस्तु एक है, अखण्ड है, अभेद है। उसका स्वभाव भी मूल उपयोग तो दर्शन-ज्ञान है। मूल उपयोग लक्षण स्वभाव वह है। वह दर्शन-ज्ञानस्वभाव परिपूर्ण परिपूर्ण, उसमें कुछ अपूर्ण और विपरीतता स्वभाव में हो नहीं सकती। ऐसा जो दर्शन-ज्ञानस्वभाव, उसमें रहा हुआ आत्मतत्त्व। उसमें रहा हुआ आत्मतत्त्व। उसके साथ, ऐसा जो भगवान आत्मा तत्त्व के साथ एकत्वरूप से लीन होकर प्रवृत्ति करता है। एकत्व आया। एकत्व-विभक्त। तीसरी गाथा से कहेंगे। एकत्वरूप से लीन होकर, ऐसे एकत्वरूप से लीन होकर प्रवृत्ति करता है। समझ में आया? स्वभाव में अपना स्वभाव दर्शन-ज्ञान, उसमें रहा हुआ आत्मतत्त्व अर्थात् कि आत्मस्वरूप। ऐसा जो आत्मस्वरूप उसमें एकत्व होकर, एकत्वरूप से लीन होकर, पर से भिन्न

पड़कर। यह तो पहले कहा, परद्रव्य से छूटकर। यहाँ एकत्वरूप से, उसमें एकत्वरूप से लीन होकर। ऐसे परद्रव्य से छूटकर और उसमें एकत्वरूप से लीन होकर। समझ में आया? पुण्य-पाप के विकल्प... यहाँ वास्तव में तो पुण्य के विकल्प हैं। क्योंकि उस समय जब विचार करता है, तब ऐसा है और ऐसा है, तब तो उसे शुभभाव वर्तता होता है न! उस शुभभाव से पृथक्रूप से। शुभभाव परद्रव्य है वास्तव में, उससे छूटकर अपना जो द्रव्य है, उस दर्शन-ज्ञानस्वरूप में रहा हुआ वह आत्मतत्त्व है। समझ में आया?

उसमें एकत्वरूप से लीन होकर प्रवृत्ति करता है, उसमें तीनों आ जाते हैं। एकत्वरूप से—श्रद्धा में एकत्वरूप से, ज्ञान से एकत्वरूप से और चारित्र से एकत्वरूप से। यह एकत्वरूप से लीन होकर प्रवृत्ति (करता है)। पाठ है न? '**आत्मतत्त्वैकत्वगतत्वेन वर्तते**' ऐसा है। '**एकत्वगतत्वेन वर्तते**'। यहाँ से छूटा, ऐसे राग से छूटा। समझाने की शैली तो कैसी (हो)? यह कहीं पहले-बाद में नहीं। यहाँ पहले छूटा और फिर ऐसा हुआ। परन्तु कथनपद्धति क्या आवे? राग से छूटा है, ऐसे से छूटा है, ऐसे एकत्व से छूटा है। स्वभावरूप भगवान आत्मा से एकत्वरूप हुआ है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं इसमें? सूक्ष्म पड़ता है? लड़कों को भी सुनना। लड़के बड़े होते हैं या नहीं?

मुमुक्षु : लड़के भी भगवान है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान है। भगवान है और परमात्मा है, भाई!

जयसेनाचार्य की टीका में यह लिया। जैसे यहाँ दर्शन-ज्ञान में रहा हुआ आत्मतत्त्व। वहाँ ऐसा लिया। ज्ञान-दर्शन ऐसा शब्द लिया वापस, भाई! यहाँ दर्शन-ज्ञान, वहाँ ज्ञान-दर्शन पाठ है। यहाँ दर्शन-ज्ञान लिया है। वहाँ ज्ञान-दर्शन की बात है। ज्ञान-दर्शन अर्थात् वापस स्पष्टीकरण हो जाये। दर्शन और ज्ञान में समकित और ज्ञान हो जाये, इसलिए वहाँ ज्ञान, दर्शन बात ली है। विशुद्ध ज्ञान-दर्शन ऐसा जो यह परमात्मतत्त्व, उसमें जो लीन होता है। यहाँ से छूटकर उसमें लीन होता है। एकत्वरूप से लीन होकर प्रवृत्ति करता है। कहो, समझ में आया इसमें?

तब... वह जब था न? जब ऐसा करे तब, ऐसा। समझ में आया? **दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थित होने से...** तब सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में स्थित होने

से अपने स्वरूप को वह अपने स्वरूप को त्रिकाल ज्ञान-दर्शन की एकतारूप, देखो! एकतारूप। एक ही समय में अपने स्वरूप को—अपना जो त्रिकाल स्वरूप, उसे एकतारूप से एक ही समय में, एक ही काल में जानता और परिणमता हुआ। '**गच्छंश्च**' शब्द है। '**गच्छंश्च**' है न? '**गच्छंश्च**' अर्थात् परिणमता हुआ। जानता और **परिणमता हुआ वह 'स्वसमय' है, इस प्रकार प्रतीत किया जाता है;...** उसे स्वसमय आत्मा, उसे ऐसा भरोसा किया जाता है। आहाहा! समझ में आया? पहली गाथाओं में तुम आ गये बराबर। आ गये है न। आहाहा!

भाई! तू तो है, ऐसा कहते हैं। वस्तु तो है यह। जीव वस्तु स्वयं अपने स्वभाव में ही है। वह वस्तु उसे कहते हैं कि जो स्वभाव में है। वह वस्तु पर के रागादि का विभाव उससे छूटकर, अपने स्वभाव में एकत्वगतत्व वर्तन करे, तब एकत्वगतत्व में दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों आ गये। अर्थात् वह दर्शन, ज्ञान और चारित्र में स्थित हुआ है न! उसमें स्थित होने से। दर्शन, ज्ञान, चारित्र को आत्मा में स्थित करने से, ऐसा नहीं लिया। दर्शन को ऐसे झुकान से, ज्ञान को ऐसे झुकान से, (ऐसा नहीं लिया)। यह तो आत्मा ऐसे अपने स्वरूप का एकत्वगत का परिणमन करते हुए, पर से छूटकर परिणमन करते हुए उसके सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित होता है, स्थित होता है। समझ में आया? इसलिए अपने स्वरूप को एकतारूप से एक ही समय में जानता-परिणमता हुआ ऐसा स्वसमय है। वह पर्याय है। अर्थात् अभेदरत्नत्रयरूप से परिणमा, उसे स्वसमय कहा जाता है। भाई! इसमें भेदरत्नत्रय का नाम भी कहीं लिया नहीं। यह अभेदरत्नत्रय की बात है। अभेद एकत्वगत इस ओर की है न! स्वआश्रय में स्वयं आश्रय लिया परन्तु स्वयं उसमें स्थिर हुआ, ऐसा कहा यहाँ। ऐसा जो स्वभाव, भगवान दर्शन-ज्ञानस्वभाव में रहा हुआ आत्मतत्त्व, ऐसा जो आत्मस्वरूप, वह अपने में एकत्वगतरूप से अपने में एकरूप से परिणमा, तब उसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में स्थित हुआ, उसे उसी काल में जानता और परिणमता हुआ ऐसा स्वसमय, उसे उस काल में प्रतीति की जाती है। उसी काल में अर्थात् समझ में आया? वह समयरूप से परिणमता है, तब उसे प्रतीति की जाती है कि यह स्वसमय है। समझ में आया इसमें? यह एक बात की। पहले पद की, पहले पद की। '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण**'। यह दो पद की

व्याख्या हुई। इतने में दो पद की व्याख्या हुई। आहाहा! कितनी स्पष्टता की है!

अब, '**पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च**' वहाँ भी '**ट्ठिदं च**'। '**तं जाण परसमयं**'। तब भी, ऐसा है न? वह एक बात हो गयी इसलिए भी जब... पहली वह सुलटी ली है, भाई! सुलटी पहले ली है। उल्टी पुद्गलकर्म के प्रदेश में स्थित तो अनादि का है। वह न लेकर पहले ऐसा लिया है। तब वह है, ऐसे का ज्ञान उसे होता है। समझ में आया? अज्ञानी उसमें स्थिर है अथवा राग में कुछ थोड़ा बाकी है, उसका ज्ञान स्वसमय में एकत्वगतरूप से दर्शन, ज्ञान, चारित्र के अभेदरत्नत्रय (रूप से) परिणमे तब। पहला बोल यहाँ से शुरु किया है। समझ में आया? श्वेताम्बर में ऐसा आता है। श्वेताम्बर में सूयगडांग में पहले यह आता है ... बन्धन को तू पहले जान। वहाँ ऐसा आता है। समझ में आया? नहीं। यह बन्ध में बाद में बदला। बन्ध अधिकार में। बन्ध में क्या हुआ? बन्ध की चिन्ता से क्या हुआ और बन्ध के ज्ञान से क्या हुआ? पण्डितजी! यह दो गाथायें आती हैं न? बन्ध की चिन्ता से क्या हुआ और बन्ध के ज्ञान से क्या हुआ? चिन्ता, वह तो व्यवहारमोक्षमार्ग, व्यवहारधर्म है। चिन्ता व्यवहारधर्म अर्थात् पुण्य है वह तो। उसमें कहाँ मोक्ष आया?

शुरुआत आत्मा के स्वस्वभाव के ज्ञान और भान से हुई है। समझ में आया? समयसार गाथा शुरु करते हुए। पहला पाठ ही यह है न! '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण**'। **किन्तु जब वह, अनादि अविद्यारूपी केले...** अज्ञानरूपी केला। अज्ञान... अज्ञान, हों! **उसके मूल की गाँठ की भाँति जो (पुष्ट हुआ) मोह...** मोहकर्म, हों! अब यह कर्म है। अज्ञान से पुष्ट हुआ जो मोह। केले की गाँठ होती है न? केला... केला। केले की गाँठ में बचडा निकला ही करे। बचडा समझते हो? केला। केला के वृक्ष। वृक्ष में बचड़ा हो। निकला ही करे उसमें से। हमारी भाषा में बचडा कहते हैं। तुम्हारी भाषा होगी कुछ? केले की गाँठ होती है न? पड... पड हमारे कहते हैं। एक में से एक पड निकला ही करे। तुम्हारी कौनसी भाषा होगी? हमारे तो गाँठ कहते हैं। केले की गाँठ। ऐसे पड निकला ही करे। पड समझे? ऊपर के पट। केले की गाँठ होती है या नहीं? हिन्दी में क्या होगा? हिन्दी में क्या है? हिन्दी। ... वह तो इतना लिया है।

'अविद्यारूपी मूलवाले कन्द' पाठ में-टीका में कन्द शब्द है न? मोह के उदय अनुसार, ऐसा कहा है, लो। अपने केले के कन्द का अर्थ किया है। समझ में आया?

केले के मूल की गाँठ की भाँति... कन्द है न? अन्दर नीचे गाँठ (होती है)। ऐसा पुष्ट हुआ जो मोह। वह मोह कर्म है। मोह, वह कर्म है। अविद्या, वह अज्ञान है। वहाँ से शुरु किया है। अज्ञान के कारण से मोह की पुष्ट हुई गाँठ **उसके उदयानुसार...** देखो! यहाँ लेना है न! उसका उदय, उसे अनुसरण करता है। ऐसे अनुसरना चाहिए, भगवान आत्मा दर्शन-ज्ञानस्वभाव स्वरूप को अनुसरना चाहिए, उसे न अनुसरकर यह कर्म उदय आवे, उसे अनुसरता है। कर्म का उदय अनुसराता है, ऐसा नहीं। देखो! **उसके उदयानुसार प्रवृत्ति की आधीनता से,...** क्या कहा? समझ में आया इसमें? जब स्वयं अपने स्वभाव में एकत्वपने को प्राप्त करे, तब स्वसमय कहलाता है, जब वह, जब वह जीव अनादि अज्ञान से पुष्ट हुए मोह के उदय अनुसार। उसके उदय के अनुसार स्वयं प्रवर्तता है। वह उदय उसे प्रवर्ताता है, ऐसा नहीं। क्योंकि उदय तो एक निमित्तरूप जड़ की पर्याय है। ऐसे जब प्रवर्तता नहीं, तब उदय के अनुसार प्रवर्तता है।

उसके उदयानुसार... देखो! पाठ है, हों! यह सब। '**मोहानुवृत्तितन्त्रतया**' '**मोहानुवृत्ति**' अनुवृत्ति। टीका तो बहुत स्पष्ट! मोह जो जड़ है, उसके पाक की पर्याय के काल में जीव ऐसे न अनुसरकर वहाँ अनुसरता है। समझ में आया? **उसके उदयानुसार...** अब उदय अनुसार की व्याख्या ऐसी करते हैं, वह कर्म का जैसा उदय, उसे अनुसरना पड़े। ऐसा नहीं है। जब ऐसे नहीं करता, तब उस उदय को अनुसरता है। स्वयं स्वतन्त्र होकर अनुसरता है। समझ में आया? **उसके उदयानुसार प्रवृत्ति की आधीनता से,...** प्रवृत्ति के आधीन हो गया। ऐसा है न उसमें? '**मोहानुवृत्तितन्त्रतया**' अनुवृत्ति का अर्थ किया न यह?

मुमुक्षु : तन्त्र-पराजीत।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पराजीत। मैं तो वह प्रवृत्ति का शब्द निकालना चाहता हूँ। अनुवृत्ति का अर्थ। बस। अनुवृत्ति। अनुसार प्रवृत्ति। अनुवृत्ति-अनुसार प्रवृत्ति। उसके उदय के अनुसार प्रवृत्ति, ऐसा। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने स्वभाव के अनुसार प्रवृत्ति न करके परद्रव्य के अनुसार प्रवृत्ति में जुड़ गया। समझ में आया? तब वह पर के आधीनपने से। स्वयं आधीन होता है, हों! यह हो गया है और निश्चित कहाँ करना? कहो, समझ में आया इसमें? यह तो ४७ (नय में)... गणधर जीव भी श्रुतज्ञानी ऐसा मानते हैं। ईश्वरशक्ति है—अपनी पर्याय में एक धर्म है। मैं स्वयं पर के आधीन होता हूँ, ऐसा एक मेरा पर्याय का धर्म है। ऐसा गणधरदेव श्रुतज्ञान में भी ४७ नय में एक नय से जानते हैं। समझ में आया? अकेली भेदज्ञान की बात है। समझ में आया इसमें? यह तो एकता—अज्ञान की बात है। वह तो सम्यग्ज्ञान, चार ज्ञान, चौदह पूर्व और ... केवलज्ञान लेने की तैयारी हो, तो भी जब तक श्रुतज्ञान में है, तब तक जितना राग में पराधीन (होता है), उतना ईश्वर (नय का) धर्म पर के आधीन होना, वह मेरा पर्याय धर्म है। पर्याय धर्म, हों! गुण धर्म नहीं। गुण धर्म नहीं। गुण धर्म भिन्न, पर्याय धर्म भिन्न। एक समय की पर्याय का ऐसा एक धर्म है, ऐसा जाने। बस। कायम गुण धर्म हो तो कभी राग छूटे नहीं। ऐसे गुण में तो राग होने का कोई गुण ही नहीं। पर्याय में, पर में एकत्व होने की पर्याय का धर्म है। स्वयं पर को अनुसरता है। वह परिणमन पर के आधीन है, ऐसा ज्ञानी भी अपने श्रुतज्ञान में, केवलज्ञान नहीं, अधूरा है; इसलिए साधकभाव है, वहाँ थोड़ा बाधकभाव है। बाधकभाव न हो तो साधक न रहे, पूरा हो जाये। साधकभाव है, वहाँ थोड़ा बाधक है। परन्तु वह बाधक मेरे परिणमन का—पर्याय के धर्म के कारण से है, ऐसा वह जानते हैं। समझ में आया?

यहाँ तो अकेला अज्ञानी है। उसे कुछ खबर नहीं। तथापि ऐसा कहेंगे, जाने और परिणमे, ऐसा कहेंगे। जाने अर्थात् ज्ञान में ऐसा तो है न, उसे भान नहीं। परन्तु ज्ञान का ऐसा स्वभाव है कि जानता है और परिणमता है। राग की एकत्वतारूप से परिणमता है। समझ में आया? **मोह, उसके उदयानुसार प्रवृत्ति की आधीनता से,...** अपने स्वभाव सन्मुख की सन्मुखता नहीं करता, कर्म के उदय अनुसार वृत्तियों को करता हुआ। **दर्शन-ज्ञानस्वभाव में नियत वृत्तिरूप आत्मतत्त्व...**

मुमुक्षु : आगे कहा था वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। ऐसा कहा वह। वह का वह। उससे **छूटकर...** अर्थात् उसकी ओर का आश्रय नहीं करके, उसे नहीं अनुसरता हुआ। उससे छूटकर, शब्द

प्रयोग किया है, देखो! **आत्मतत्त्व से छूटकर...** अर्थात् आत्मस्वभावभाव है, वहाँ से छूटकर। **परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न...** परद्रव्य के निमित्त से उत्पन्न **मोहरागद्वेषादि भावों के साथ...** देखो! यहाँ तीनों लिये। मिथ्यात्व और राग-द्वेष। मोह-मिथ्यात्व। मोह और राग-द्वेष आदि भावों में एकतारूप से लीन होकर प्रवर्तता है। वह एकतारूप से स्व में लीन होकर प्रवर्तता था, भाई! आत्मतत्त्व में एकता-एकत्वगतेन प्रवर्तता था। वह उदय अनुसार मोह और राग-द्वेष में एकत्वतारूप से परिणमता है, लीन होकर प्रवर्तता है। कहो, समझ में आया इसमें?

आत्मा के स्वभाव में एकत्वगते परिणमता था। ऐसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र में। वह कर्म के उदय के अनुसार स्वयं अनुसरता हुआ मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव को एकत्वरूप से, उसके एकत्वरूप से (परिणमता है)। जिससे विभक्त होना चाहिए, उसे एकत्वरूप से (जानता है)। समझ में आया? एकतारूप से लीन होकर प्रवर्तता है। '**एकत्वेन**' है। '**परमेकत्वेन**'। पर में एकत्व। यह स्व का एकत्व है। '**स्वमेकत्वेन**' है। '**स्वमेकत्वेन**' है न, देखो! है, है। '**दर्शनज्ञानचारित्रस्थितत्वात्स्वमेकत्वेन**' है। संस्कृत देखो! देखो! वहाँ है। सामने-सामने शब्द है। है या नहीं? ऐई! यह देखो! अन्तिम। '**दर्शनज्ञानचारित्रस्थितत्वात्स्वमेकत्वेन**' नहीं? क्या?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ठीक। उसमें कुछ नहीं। रह गया होगा। इसमें स्व शब्द है। अपने स्वरूप को... है। स्व का अर्थ। किया है इसमें। रहा नहीं। वह अपने स्वरूप को किया है। स्व का अर्थ किया है। यहाँ पर को, अर्थ किया है। अपने स्वरूप को... और यहाँ कहते हैं, पर के स्वरूप में। मोह-राग-द्वेष... एकतारूप है। बस। आहाहा!...

यहाँ तो वस्तु अपने स्वभाव के एकपने परिणमती है, उसे स्वसमय कहते हैं। और वस्तु अपने स्वभाव में से छूटकर अर्थात् स्वभाव में एकत्व नहीं परिणमकर, उदय के अनुसार मोह-राग-द्वेष में एकरूप से अभिन्नरूप से परिणमती है। वहाँ कहाँ भिन्न रखती है? पर्याय में एकपने परिणमती है, उसे पुद्गलकर्म के प्रदेश में स्थित है, ऐसा कहा जाता है। है तो राग-द्वेष में। परन्तु परद्रव्य में स्थित है। देखो! तब। जब ऐसा

करता है तब। पुद्गलकर्म के कार्मणस्कन्धरूप प्रदेशों में स्थित होने से। अर्थात् पर के ऊपर लक्ष्य है न। उसमें एकता हो गयी। उसमें एकता हुई—पर के निमित्त में। यहाँ एकत्व छूट गया। पाठ यह है न? पाठ में है न? पुद्गलकर्म प्रदेश में स्थित है, ऐसा कहा है। वरना तो मोह-राग-द्वेष में स्थित हुआ। परन्तु वहाँ प्रदेश में उदय हुआ, उसके अनुसार वर्ता। यह तो एकत्व बताते हैं। कहो, समझ में आया?

पुद्गलकर्म के कार्मणस्कन्ध के पिण्ड के प्रदेश में, वापस ऐसी भाषा है। अर्थ शब्द शब्द का करना चाहिए न! कार्मणस्कन्धरूप प्रदेशों में, ऐसा शब्द है न? समझ में आया? क्या है उसमें, देखो न! पुद्गलकर्मप्रदेश। इसका स्पष्टीकरण किया। पुद्गल कर्म कौन? पुद्गल कैसे? स्पष्टता की। पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होने से परद्रव्य को अपने साथ एकपने। देखो! यहाँ परद्रव्य को (कहा)। वह राग-द्वेष में एकत्व होता है, वह परद्रव्य में एकत्व होता है—पुद्गल में एकत्व होता है, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? परद्रव्य में परद्रव्य को अपने साथ, अपने साथ। लो! समझ में आया? '**त्वात्परमेकत्वेन**' है न? '**परमेकत्वेन युगपज्जानन्**'। एकरूप से एक काल में जानता हुआ। लो! अज्ञान में जानता? यह ज्ञान का अन्दर स्वभाव अव्यक्तरूप से भी एकपना है। उसका ज्ञान, ऐसा अन्दर है। भान नहीं करता। ज्ञान का स्वभाव ऐसा एकपना नहीं, इसलिए ऐसा एकपना अन्दर जानता है या नहीं? जानने का ख्याल भले उसे न हो। समझ में आया? राग के साथ, कर्म के साथ, परद्रव्य के साथ एकपने के सम्बन्ध से एकसाथ एकपने एक काल में जानता हुआ। और उसी काल में रागादिरूप से परिणमता हुआ। देखो! परद्रव्य को अपने साथ एकपने एक काल में जानता और रागादि रूप परिणमता हुआ, उसी काल में राग-द्वेष और मोहरूप होता है। काल दूसरा नहीं।

उसे 'परसमय' है, इस प्रकार प्रतीति की जाती है। उसे परसमय, ऐसी श्रद्धा की जाती है। वह परसमय है, स्वसमय नहीं। ओहोहो! कहाँ से निकाला! यहाँ तो मिथ्यादृष्टि की ही बात ली है, हों! दूसरी आयेगी आगे। अपने आयेगी, उसमें ही नियमसार में आयेगी। केवलज्ञानी स्वसमय है। अन्तरात्मा परसमय है। है न? आयेगा। यह चर्चा हो गयी थी न पहले। अपने चलती है न? कितना चलता है यह? देखो! है। **शुद्धात्म तत्त्व**

में बहिरात्मा और अन्तरात्मा ऐसा जो विकल्प... यह अलग, वह दूसरी बात है। वह कुबुद्धि को होता। १४९ (गाथा के श्लोक)। **मार्गप्रकाश में भी दो श्लोक द्वारा कहा है...** मैंने कहा कहाँ गया? **अन्य समय (अर्थात् परमात्मा के अतिरिक्त के जीव) बहिरात्मा और अन्तरात्मा ऐसे दो प्रकार से हैं...** अन्य समय में दो प्रकार कहे। कुछ अपेक्षा है न वहाँ। अभी इतना राग बाकी है न। देखो! पाठ है, हों!

बहिरात्मान्तरात्मेति स्यादन्यसमयो द्विधा।
बहिरात्मानयोर्देहकरणाद्युदितात्मधीः॥

उसमें बहिरात्मा देह-इन्द्रिय इत्यादि में आत्मबुद्धिवाला होता है। १४९ गाथा में मार्गप्रकाश का आधार दिया है, उसमें यह बात है। अन्यसमय में बहिरात्मा और अन्तरात्मा दो प्रकार से कहे हैं। यहाँ एक मिथ्यादृष्टि को परसमय-अन्यसमय में कहा गया है। **मार्गप्रकाश में भी दो श्लोक द्वारा कहा है।** यह अपेक्षा से कहा है। अन्यसमय अर्थात् परसमय में बहिरात्मा और अन्तरात्मा दोनों समाहित हो जाते हैं और परमात्मा अकेले स्वसमय है।

यहाँ ऐसा नहीं। यहाँ तो मिथ्यादृष्टि वह परसमय है और सम्यग्दृष्टि, वह स्वसमय है। मुनि स्वयं है, इसलिए शुरु किया है चारित्र से। **'चारित्तदंसणणाणठिदो'।** स्वसमय स्वभाव में आया है, वह स्वसमय है। विभाव में अकेला रहा हुआ है, अकेला, हों! वह परसमय है। समझ में आया? यह आता है। **'परसमय' है, इस प्रकार प्रतीति की जाती है।** कितना याद रखना? कितने प्रकार होंगे? यह तो संक्षिप्त बात है। आत्मा अन्तर स्वभाव का भरपूर भण्डार भगवान है। उसके ओर की एकता करना, वह मोक्ष का मार्ग है और पर के अनुसार उसमें एकता करना, वह बन्ध का मार्ग है। यह तो उसकी व्याख्या लम्बी है। संक्षिप्त हो उसके सूत्र हों न लम्बे। समझ में आया? बाद में तो शब्दार्थ, व्याकरण और उसके नियम प्रमाण सब चलता हो न। यह तो आचार्य के कथन हैं। यह कहीं एक देश के लिये नहीं होते। सर्व देशों में जो कुछ बात है, उसकी एक धारा समझे, ऐसी शैली से बात होती है। समझ में आया इसमें?

इस प्रकार जीव नामक पदार्थ की स्वसमय और परसमयरूप द्विविधता प्रगट होती है। इस प्रकार द्विविधपना प्रगट होता है। परन्तु वह द्विविधपना अच्छा नहीं, ऐसा

कहते हैं। एकपना सुन्दर है। एकपना सुन्दर है। द्विपना वह सुन्दर नहीं, ऐसा अब सिद्ध करेंगे। यह बात स्थापित करके, हों! समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा... आहाहा!

कल तो यह सब बहुत चला। जीव एक अखण्ड सम्पूर्ण द्रव्य होने से। यह बाद में अपने निकाला न? २०४ गाथा में से। वहाँ यही कहा है। आत्मा एक है। ज्ञान वही है, इसलिए ज्ञान एक है। एक है, इसका अर्थ कि सम्पूर्ण है। आत्मा एक है अर्थात् कि सम्पूर्ण है। उसका ज्ञान एक है, पद एक है। वह भी सम्पूर्ण है। सम्पूर्ण है सर्वज्ञस्वभाव। समझ में आया? २०४ गाथा में है। बहुत संक्षिप्त में कर दिया। परम पदार्थ एक है। उसे ज्ञान, वह आत्मा। ज्ञान है अर्थात् ज्ञान एक है, एक है। और वह ज्ञान त्रिकाली स्वभाव सामर्थ्य सर्वज्ञस्वभाव एक ज्ञान अखण्ड ज्ञान। द्रव्य एक है तो ज्ञान एक है। वह मोक्ष का उपाय है। अर्थात् कि उसके आश्रय से मोक्ष का उपाय होता है। सर्वज्ञस्वभावी भगवान आत्मा के आश्रय से मोक्ष का स्वभाव उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? जिसका स्वभाव है, उसका क्या कहे! वस्तु अखण्ड है। पदार्थ ऐसे क्षेत्र की, ऐसा न लो। क्षेत्र भले इतना हो शरीर प्रमाण। परन्तु द्रव्य है न! अखण्ड है न। एक है न। तो उसका गुण एक है न। अखण्ड है न। पूर्ण है न। द्रव्य सामर्थ्य पूर्ण है, ज्ञान सामर्थ्य पूर्ण है। बस, उसका अर्थ हुआ भगवान आत्मा सर्व-ज्ञ, ज्ञ-स्वभाव, ज्ञ-स्वभाव से पूरा है अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव से पूरा है। ऐसे भगवान आत्मा की अन्तर्मुख, ऐसे सर्वज्ञस्वभावी की रुचि, उसका ज्ञान, उसकी रमणता। यह अभेदरत्नत्रय परिणति की यह बात की है, लो! समझ में आया? अरे! इसे अन्दर में बैठना चाहिए न! यह कहीं बातें नहीं चलती। शब्द काम करे नहीं, विकल्प काम करे नहीं वहाँ। आहाहा!

यह आत्मा, यह आत्मा अर्थात् कि आहाहा! जिसका एकरूप भाव द्रव्य का, जिसका गुण का भी एकरूप भाव। एकरूप भाव के द्रव्य का सामर्थ्य पूर्ण। वस्तु एक, उसका सामर्थ्य अपूर्ण कैसे हो सकता है? तो उसका ज्ञानभाव अपूर्ण कैसे हो सकता है? वह वस्तु ऐसी अखण्ड है। समझ में आया? भले एक परमाणु हो। उसमें अस्तित्व गुण पूरा पूरा है। एक परमाणु है, उसका अस्तित्व गुण पूरा है। और आकाश है अनन्तगुणा तो भी अस्तित्व गुण पूरा है। क्षेत्र से देखो तो इतना, इसलिए वह अस्तित्वगुण बड़ा है और परमाणु का अस्तित्वगुण छोटा है, ऐसा स्वभाव की अपेक्षा में हो नहीं

सकता। समझ में आया? क्षेत्र की महत्ता नहीं, उसके भाव की महत्ता है। आहाहा! लोगों ने व्यापक... व्यापक करके उल्टा मारा है सब। यह बड़ा आत्मा कहलाये... ऐसा नहीं है, भगवान! एक परमाणु है, उसका अस्तित्व गुण उतने में है, परन्तु वह छोटा है, ऐसा नहीं। उसका स्वभाव उस परमाणु को त्रिकाल टिकाया हुआ सामर्थ्य उतने में है। उसी प्रकार आकाश का अस्तित्व गुण है, भले अनन्तगुणा लम्बा हुआ, परन्तु वही आकाश को, जैसे परमाणु का अस्तित्व त्रिकाल टिकाये रखे, वैसा वह अस्तित्व त्रिकाल पूरे (आकाश) को टिकाये रखे, ऐसा वह गुण तो दोनों का समान ही है। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी!

उसी प्रकार भगवान आत्मा, उसका ज्ञानगुण पूरा स्वभाव है, पूरा स्वभाव है। पूरे में वह सामर्थ्य एक है। वस्तु एक है, द्रव्य है, वस्तु है। वस्तु एक है। क्षेत्र छोटे का प्रश्न नहीं। वस्तु एक है, अखण्ड है तो उसका ज्ञानगुण (भी अखण्ड एक है)। यह तो ज्ञान से लेते हैं, बाकी सब गुण, उसका आनन्दगुण द्रव्य का सामर्थ्य एक है, तो उसके आनन्दगुण का सामर्थ्य एक है। आनन्दगुण पूर्ण अनन्त सामर्थ्यवाला पूरा है। द्रव्य एक है तो दर्शनगुण भी उसका एक है। एक है अर्थात् पूर्ण है। ऐसे श्रद्धा। द्रव्य पूर्ण है, पूरा है तो श्रद्धागुण का सामर्थ्य, श्रद्धागुण का पूरा है। गुण की बात है, हों! पर्याय की नहीं। एक-एक गुण का सामर्थ्य सम्पूर्ण पूरा-पूरा न हो तो वह द्रव्य ही सिद्ध न हो। समझ में आया?

यह यहाँ कहा, ओहो! विशुद्ध दर्शन-ज्ञानतत्त्व आत्मतत्त्व अथवा परमात्मतत्त्व ऐसा जो भगवान, उसे एकत्वपने का प्राप्त करता हुआ जीव स्वसमय कहा जाता है। उसे एकत्वपना छोड़ता अनादि का जीव कर्म के निमित्त को अनुसरता हुआ एकत्वपने के मोह-राग-द्वेषपने को पाता है, उसे जानता, परिणमता हुआ परसमय कहा जाता है। समझ में आया? इसमें समझ में आये ऐसा है। ऐसी कुछ बात बहुत स्थूल (या) भाषा ऐसी बहुत कठिन नहीं। यह तो सादी भाषा में आता है। नहीं? शशीभाई! लड़के समझें ऐसा है। चार कक्षा का पढ़ा हुआ (समझ जाये), हमारे धर्मचन्दभाई कहते हैं। चार कक्षा का पढ़ा हुआ (समझे)। ... स्पष्ट बहुत हो। लिखने में तो उसे कहाँ आगे-पीछे का मेल करना, यह तो उसे करना (पड़े) वापस।

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! परन्तु तू है न, भाई! तू द्रव्य है न। और वस्तु है, वह एक और पूर्ण है। सामर्थ्य से पूर्ण है। तो भाई! उसका एक-एक गुण इतना ही त्रिकाली रहनेवाला स्वभाव से पूरा सामर्थ्य है। पूरा सामर्थ्य है, इसका अर्थ ही हुआ कि ज्ञान सर्वज्ञस्वभावी है, दर्शन सर्वदर्शी स्वभावी है। नित्यानन्द पूर्ण स्वभाव है। स्वच्छता पूर्ण स्वभाव, परमेश्वरता पूर्ण स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? अरे! पूर्ण इदं। यह कहते हैं। पूर्ण इदं। भगवान! वह पूर्ण इदं यह है। यह... यह... इदं यह। पूर्ण इदं। यह इदं—यह पूर्ण। द्रव्य पूर्ण, ज्ञान पूर्ण, दर्शन पूर्ण, आनन्द पूर्ण, सत्ता पूर्ण, प्रभुता पूर्ण, अस्तित्व पूर्ण, वस्तुत्व पूर्ण। ऐसे अनन्त एक-एक गुण। जैसा द्रव्य पूर्ण पूरा ऐसे एक-एक गुण का सामर्थ्य पूर्ण है। बस। उसके ऊपर दृष्टि देना और उसके परिणमन में एकत्व परिणमना, उसे स्वसमय, स्वसमय धर्मात्मा, उसे आत्मा हुआ, आत्मा है वैसा हुआ, उसे वास्तव में आत्मा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

जो स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान, रमणता में स्थित हुआ, ... हुआ वह संवर, निर्जरा में स्थित (हुआ)। संवर, निर्जरा तत्त्व हुआ न? मोक्ष का कारण भेदज्ञान, भेदज्ञान के तीन बोल, तीन बोल में दो बोल। मोक्ष का कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। इन तीन का भेदज्ञान एक। और उस भेदज्ञान में संवर, निर्जरा दो आ गये। समझ में आया इसमें? यह आता है न? जयसेनाचार्य की टीका में। सुख और सुख का उपाय यह, ऐसा आता है। पंचास्तिकाय की टीका में है। एक टीका में कहीं आता है। सुख और सुख का उपाय संवर, निर्जरा। मोक्ष और मोक्ष का मार्ग। मोक्ष का मार्ग, वह संवर-निर्जरा, ऐसा आता है। बन्ध दुःख और उसका मार्ग आस्रव, बन्ध, ऐसा करके आता है। संसार और संसार का... यह आता है टीका में। यह सिद्ध किया हागा, परन्तु यह तो दूसरा। पंचास्तिकाय।

यहाँ क्या कहते हैं, समझ में आया? भगवान तू। यह तेरे स्वभाव के ऊपर ढल, एकत्व हो, वह मोक्ष का मार्ग, वह भेदज्ञान, स्वसमय उसे कहते हैं। उसे वास्तविक आत्मा है, ऐसा कहते हैं, ऐसा कहते हैं। आत्मख्याति टीका का नाम है न! पण्डितजी! आत्मख्याति नाम है न! स्वसमय हुआ वह आत्मख्याति प्रसिद्ध हुई। आत्मा प्रसिद्ध हुआ कि मैं ऐसा हूँ। श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति में प्रसिद्ध हुआ कि यह आत्मा ऐसा परिपूर्ण

भगवान पूर्णानन्द है। ज्ञायकभाव आविर्भाव को प्राप्त हुआ। वह ज्ञायकभाव आविर्भाव को प्राप्त हुआ। ज्ञायकभाव तो है वह है। यह ११वीं गाथा में आयेगा। ज्ञायकभाव आविर्भाव को प्राप्त हुआ। आविर्भाव अर्थात् दर्शन, ज्ञान, चारित्र में भान हुआ कि यह आत्मा, वह ज्ञायकभाव श्रद्धा मेमं नहीं था, वह प्राप्त हुआ, वह ज्ञायकभाव आविर्भाव को प्राप्त हुआ। आविर्भाव तो पर्याय है। समझ में आया? लो।

इस प्रकार जीव नामक पदार्थ की... इस प्रकार से, हों! जो कहा वह। ऐसा है न? '**एवं किल**' ऐसा है न? देखो! '**एवं किल समयस्य द्वैविध्यमुद्भावति**'। इस प्रकार से एक आत्मा के दो प्रकार पर्याय की अपेक्षा से पड़ जाते हैं। एक स्वसमय और परसमय। यह शोभता नहीं। एक के दो भाग पड़ना, बन्धकथा, वह असत्यकथा, वह वस्तु के मूल सत्य की बात नहीं। इससे साथ में बन्ध का द्विधापना वह सुन्दर नहीं, वह इसे शोभता नहीं। समझ में आया? यह तीसरी (गाथा में) कहेंगे।

भावार्थ :- जीव नामक वस्तु को पदार्थ कहा है। देखो! यहाँ से शुरु किया अब ... '**जीव**' **इस प्रकार अक्षरों का समूह...** 'जीव'। दो अक्षर का समूह। जी और व। दो अक्षर हुए न? ऐसे समूह हुआ। जीव वह 'पद' है और उस पद से जो द्रव्य-पर्यायरूप अनेकान्तस्वरूपपना... जो द्रव्य-पर्यायरूप। सामान्य द्रव्य और विशेष पर्याय, दोनों। '**अनेकान्तस्वरूपपना निश्चित किया जाता है, वह पदार्थ है।**' वह वस्तु। जीव पद है, उसका वह वाच्य है। **वह जीवपदार्थ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमयी सत्तास्वरूप है।** संक्षिप्त बोल ले लिये। उसका सत् है। सत् वह द्रव्य है, सत् वह उत्पाद-व्यय-ध्रुव एकरूप रहा हुआ है। **दर्शनज्ञानमयी चेतनास्वरूप है।** दर्शनज्ञानमय चेतना परिणमन लिया यहाँ। टीका में-अर्थ में। अनन्त धर्मस्वरूप द्रव्य है। वे दो ही गुण लिये थे। वापस अनन्त गुण हैं। यह तो मूल गुण की बात की थी—उपयोग की। वापस अनन्त धर्म का धरनेवाला वह एक द्रव्य है। अनन्त धर्म को धरनेवाला एक द्रव्यरूप से प्रगट है। एक द्रव्य रूप से प्रगट है।

द्रव्य होने से वस्तु है, गुणपर्यायवान है,.. कर्म, नोकर्म में आया। यहाँ निकाला। **गुणपर्यायवान है,...** स्व-पर तथा क्रम और अक्रम जिसकी दशा और गुण हैं, ऐसा वह

आत्मतत्त्व है। **उसका स्वपरप्रकाशक ज्ञान अनेकाकाररूप एक है,...** भगवान आत्मा ज्ञान में स्व को-पर को अनेक को जानने पर भी ज्ञान एकाकार से छूटकर खण्ड नहीं होता। अनेकाकाररूप भी एक है, एक है। **और वह (जीवपदार्थ) आकाशादि से भिन्न असाधारण चैतन्य-गुणस्वरूप है,...** पाँच के गुण लिये थे न? **आकाशादि से भिन्न असाधारण चैतन्य-गुणस्वरूप है, तथा अन्य द्रव्यों के साथ एक क्षेत्र में रहने पर भी अपने स्वरूप को नहीं छोड़ता।** सात बोल हो गये। अब यहाँ कहते हैं, देखो!

ऐसा जीव नाम का पदार्थ समय है। जब वह अपने स्वभाव में स्थित हो... ऐसा करके संक्षिप्त कर दिया। कहा? जब वह आत्मा ऐसा अपने स्वभाव में स्थित हो, **तब स्वसमय है,...** ऐसा लिया। समझ में आया? अपने स्वभाव में अर्थात् दर्शन-ज्ञान स्वभाव में स्थित हो और स्वयं दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय, वह भी स्वभाव है। समझ में आया? उसमें स्थित हो, तब वह स्वसमय है। **और परस्वभाव-रागद्वेषमोहरूप होकर रहे...** ऐसे झुकाव नहीं, इसलिए ऐसे झुकाव करके उदय के अनुसार रहे तो मोह और राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं और ऐसा रहे, (वह) परसमय है। **इस प्रकार जीव के द्विविधता आती है।** बहुत संक्षिप्त में पूरा रख दिया। भाषा साधारण। टीका के व्याख्या में चलती-चलती भाषा में रखा। चलती भाषा। वह टीका की भाषा थी। सन्तों की भाषा... और यह चलती भाषा में संक्षिप्त में (कहा)। दो गाथायें हुई।

अब, समय की द्विविधता में आचार्य बाधा बतलाते हैं :— अरे! भगवान अकेला और यह दोकला कहाँ हुआ? एकड़े एक और बिगड़े दो। भाषा ऐसी आती है न अपने? बिगड़े दो, तुम्हारे क्या कहते हैं? तुम्हारे में क्या कहते हैं? एकड़े एक हमारे बोले। एकड़े एक, बगड़े बे। ऐसे बिगड़े। दो अर्थात् बिगड़े। हमारी गुजराती भाषा ऐसी आती है। यहाँ समय अर्थात् एक भगवान दर्शन-ज्ञान आदि अनन्त गुणों का पिण्ड प्रभु, उसमें अपने स्वभाव का परिणमन हो, वह तो वस्तुस्थिति है। यह एक-दूसरे का परिणमन का हुआ, वह द्विविधपना बाधा आती है। उसे विसंवाद असत्य कथा यथार्थ की अपेक्षा से (कहते हैं), हों! है सही यह। यह तो उसे विसंवाद कहेंगे। तीसरी गाथा लेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण ७, सोमवार, दिनांक - ०८-०८-१९६६
गाथा - ३, प्रवचन - ११

समयसार, दूसरी गाथा पूरी हुई। आत्मा वह समय वस्तु है, उसमें स्वसमय की अन्दर की परिणति अभेदरत्नत्रयरूप परिणति अथवा स्वद्रव्य-गुण-पर्याय निर्मल की अन्दर परिणति होना, उसे स्वसमय कहते हैं। और उसमें कर्म को अनुसरकर विकार की परिणति होना और उसमें स्थित होना, उसे परसमय कहते हैं। दो व्याख्या संक्षिप्त में आ गयी। समझ में आया इसमें?

समय नाम का यह आत्मा पदार्थ एक समय में जाने और परिणमे। ऐसा अनन्त गुणस्वरूप समय। वह अपनी पर्याय में निश्चयरत्नत्रय ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में परिणमे तो उसे स्वसमय कहा जाता है। स्वसमय अर्थात् वही आत्मा, उसे ही वास्तव में आत्मा कहते हैं। वह आत्मा अपने स्वसमय में नहीं परिणमकर पर कर्म के अनुसार राग-द्वेष, मोह में परिणमे तो उसे परसमय, वह वस्तु का स्वरूप नहीं, इसलिए उसे परसमय कहा जाता है। समझ में आया?

आचार्य कहते हैं कि यह समय के द्विविधपने में बाधा बतलाते हैं। है न? '**अथैतद्बाध्यते**'। संस्कृत शब्द है। यह एक में दोपना, यह विरोध आता है। क्या कहा, समझ में आया इसमें? सूक्ष्म बहुत परन्तु।

मुमुक्षु : मजा का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा का?

यह आत्मा अनन्त गुण भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा में अनन्त.. अनन्त... अनन्त गुण देखे। ऐसे अनन्त-अनन्त गुणस्वरूप आत्मा, अपनी निर्मल द्रव्य-गुण की पर्यायरूप से परिणमे, निर्मल द्रव्य-गुण तो है, परन्तु उस गुण की निर्मल दशा, वीतरागी श्रद्धा-वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र, उसरूप जीव हो तो उसे धर्मी कहा जाता है।

उसकी दशा को धर्म कहा जाता है। उसे स्वसमय परिणमन कहा जाता है। समझ में आया? वह आत्मा अपने शुद्ध गुण अनन्त हैं, उन्हें अनुसरकर न परिणमकर, न अवस्था करके, कर्म के उदय की पर्याय को जीव स्पर्शता नहीं परन्तु कर्म के उदय का लक्ष्य करके राग-द्वेष और मिथ्यात्वरूप से परिणमे, उसे परसमय-अनात्मा-वास्तविक आत्मा का स्वरूप नहीं, इसलिए उसे परसमय-अधर्मदशा कहा जाता है। समझ में आया? मुश्किल से अभी पकड़ में आये नहीं, यह क्या कहते हैं? वह तो कहे, दया पालना, व्रत करना, यह तो समझ में आये। उल्टा अनादि का अज्ञान है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! तू आत्मा है न! समय है न, पदार्थ है न। एक समय में जानना और परिणमना, वह तो तुझमें है। कोई जड़ में नहीं। और वह तेरा जानना, परिणमना तेरे शुद्ध गुण जो हैं, द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, उसके आश्रय से शुद्ध परिणमन हो, शुद्ध गुण-पर्याय हो, अरागी-वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का परिणमन हो, उसे आत्मधर्म कहते हैं। उसे स्वसमय कहते हैं, उसे आत्मा अपने गुण की शुद्धतारूप से परिणमा इसलिए आत्मा को अभेदरत्नत्रय हुआ, ऐसा कहा जाता है। हाय..हाय..! गजब बात, भाई! भाषा अभेद और रत्नत्रय और क्या होगा यह वह? समझ में आया?

यह आत्मा अपने अनन्त शुद्ध गुण को नहीं अनुसरता, ऐसे कर्म एक दूसरा पदार्थ है, उसे स्पर्शे बिना, स्पर्शे बिना... समझ में आया? इसके लिये तो तीसरी गाथा ली है। दूसरे द्रव्य की पर्याय को, गुण को और द्रव्य को स्पर्शे बिना लक्ष्य वहाँ एकाकार करता है, इससे उसमें अपने स्वद्रव्य की प्रतीति न होकर, भ्रमणा—मिथ्यात्व का भाव उत्पन्न होता है। राग वह मैं, पुण्य वह मैं, परद्रव्य वह मैं—ऐसा मिथ्यात्वभाव और राग-द्वेष का भाव होता है, उसे अधर्मभाव कहते हैं। उसे आत्मा की एक दूसरी दशा, ऐसी परसमयभाव कहते हैं। समझ में आया? अरे! परन्तु यह क्या? ऐसा धर्म यह कैसा? वीतराग का ऐसा धर्म होगा? समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ एक समय में तीन काल-तीन लोक जिन्होंने देखे और जाने, उन भगवान की वाणी में यह समयसार अर्थात् आत्मा का स्वरूप आया।

उनकी वाणी में आया कि भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! और तुझे जानना और होना— परिणमना, यह तो तेरा स्वभाव है। जानना कहीं दूसरे से होता है और परिणमना, वह दूसरे से होता है, ऐसा तू नहीं है। तू जाननेरूप और परिणमनेरूप हो, वह तेरा स्वभाव है। समझ में आया? परन्तु जाननेवाला अपने को न जानकर अपने अनन्त गुणों को न जानकर, अपने वस्तु स्वभाव को न जानकर, परवस्तु को जानने का तो काम करेगा, इसलिए परवस्तु के उदय अर्थात् निमित्त की जो जड़ की पर्याय है, उसे अनुसरने का भाव करके, उसे स्पर्शे बिना, अपने स्वभाव को स्पर्शे बिना, अपने शुद्धस्वभाव को स्पर्शे बिना, निमित्त को स्पर्शे बिना अन्दर में से खड़ी की हुई भ्रान्ति और राग-द्वेषरूप परिणमे, उसे पर में ठीक, ऐसा परसमय, परसमय कहा जाता है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात, भाई! कहो, रतिभाई! समझ में आया इसमें? ऐई! लुहार! समझ में आया इसमें? हमारे यह पुराने वृद्ध सेठिया है न! ऐसी भाषा भी कहाँ थी वहाँ। आहाहा!

भाई! वीतराग परमात्मा पूर्ण सर्वज्ञ, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक अपनी पर्याय के परिणमन में ज्ञात हो गये। और भगवान की वाणी इच्छा बिना निकली। उन्हें इच्छा होती नहीं। भाई! तू आत्मा है न, प्रभु! ऐसा भगवान कहते हैं, हों! भगवान! तू आत्मा है न, भाई! समझ में आया? और आत्मा अर्थात् महा अनन्त गुण का महिमावाला पदार्थ। अनन्त-अनन्त शान्ति, आनन्द, श्रद्धा, ज्ञान, अस्तित्व, वस्तुत्व — ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा, ऐसे गुण का धारक गुणी आत्मा, उसके जो गुण, उन्हें वर्तमान दशा में द्रव्य-गुण को अनुसरना चाहिए। यदि उसे-अन्तर के द्रव्य-गुण को अनुसरे, तब तो अनुसरने पर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की स्वसमयरूप पर्याय होती है। उसे भगवान आत्मा कहे और उसे धर्म कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

यह भगवान आत्मा अपने अनन्त गुण को न अनुसरकर, पर्याय में उन्हें न अनुसरकर, अवस्था में उन्हें न अनुसरकर वह अवस्था ऐसे पर को अनुसरती है। उसे भले खबर न हो कि यह पर कर्म है या दूसरी क्या चीज़ है, परन्तु यहाँ अनुसरता नहीं, इसलिए ऐसे अनुसरता है, ऐसा शास्त्र की भाषा में कथन में आता है कि कर्म के उदय

को अनुसरता है। उसे खबर नहीं होती कि यह कर्म का उदय है और उसे अनुसरता हूँ। भाई! परन्तु जब भगवान आत्मा अनन्त शान्त, आनन्दरस का पिण्ड प्रभु अपने को नहीं अनुसरता, इसलिए वह पर को अनुसरता है, पर के भाव के लक्ष्य से स्वयं परिणमता है। तब वह पर को अपना माननेरूप अपने अनन्त गुणरूप द्रव्य को न माननेरूप पर को अपने माननेरूप पर को अनुसरता हुआ मिथ्यात्वरूप परिणमता है और राग-द्वेषरूप परिणमता है। उसे अधर्मदशा और परसमय कहा जाता है।

मुमुक्षु : वह क्या काम करता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह करता है न। किसलिए करता होगा? इस ओर उसे रुचि नहीं। समझ में आया या नहीं? लेकर पड़ता है या नहीं? ... पड़ता है न। यह भी नहीं पड़ते? वे कहे कि भाई! तुम रहोगे तब यहाँ होगा। यह आँकड़िया में। प्रभावशाली व्यक्ति कहलाये, ऊँचा व्यक्ति कहलाये। बड़ी छलांग मारे तो वह क्रिया देखे तो ऐसा होता है कि घर में एक मनुष्य... रखवाली करना उसे सौंपे और तुमको... सौंपे। रहते हैं या नहीं? कहा न, भाई! यह कहा नहीं तुमको? क्या कहा? उत्तमचन्दभाई कहे, तुम्हारे दूसरा कौन है छोटा? जयन्ती। भाई! तुम्हारे रहना पड़ेगा, हों! भाई का हुआ स्वर्गवास। ... लगे, हों! ... दृष्टान्त घर का अच्छा है या नहीं?

इसका अर्थ यह हुआ कि अपना आत्मा है, वह महा महिमावन्त अनन्त-अनन्त शान्ति और आनन्द का रसकन्द है। अनन्त-अनन्त आनन्द और शान्ति और अनन्त प्रभुता का पिण्ड प्रभु आत्मा है, ऐसी उसकी प्रभुता को अनुसरना, ऐसा उसे भासित नहीं होता।

मुमुक्षु : प्रभुता भासित नहीं होती या ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भासित नहीं होती। भासित हो, तब तो प्रभु को अनुसरे न! समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न, भाई! देख न! तुझे देखना है न कि यह आत्मा

वस्तु है, द्रव्य है। तो वह द्रव्य तो पूर्ण एकरूप अखण्ड है। तो उसमें भाई! एक आनन्द नाम की शक्ति है। क्योंकि शक्तिवान शक्तिरहित नहीं होता। द्रव्य जो कहलाता है, वह शक्तिवान कहलाता है। द्रव्य जिसे कहते हैं, वस्तु... यह द्रव्य अर्थात् पैसे की बात नहीं, हों!

मुमुक्षु : उसमें भी शक्ति है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी शक्ति नहीं। उसमें उसकी शक्ति सही। इसे कुछ ममता करावे और मजा करावे, ऐसी शक्ति पैसे में होगी? ऐसी होगी या नहीं? हिम्मतभाई! यह सब पैसेवाले बहुत से हैं। यह बड़े पैसेवाले... यह खीमचन्दभाई रहे, यह रहे बड़े। यह सबसे बड़े यह रहे, लो! यह तुम्हारे सामने (देखते थे)। यह बड़ा करोड़पति है, लो, यह बैठे। पैसा मजा देता होगा? पैसा ममता कराता होगा? कहो। ममता यह करता है। भाई! यह अनुसरता है। वह तो नोकर्म है — पैसा, वह तो नोकर्म अर्थात् बाह्य चीज़ है। परन्तु यह कर्म जो है अन्दर, वह द्रव्यकर्म है। यहाँ द्रव्यकर्म का अनुसरना, यह सिद्ध करना है। क्योंकि एकक्षेत्रावगाह से अनादि सम्बन्ध में निमित्त-निमित्त से पड़े हैं। समझ में आया?

मैं आत्मा... आहाहा! जिसकी एक आनन्द की पर्याय में अनन्तानन्त अनन्त आनन्द का स्वाद है। एक समय की आनन्द की पर्याय—अवस्था ऐसी अनन्त आनन्द की अवस्था का पिण्ड वह एक गुण आनन्द है। ऐसा एक केवलज्ञान की पर्याय में अनन्त लोकालोक ज्ञात हो जाये। अनन्त केवली केवलज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो जाये। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड वह ज्ञानगुण है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायवाला एक-एक गुण, ऐसे अनन्त गुण का एकरूप प्रभु उसका उसे माहात्म्य आता नहीं।

मुमुक्षु : उसमें चुम्बकपना ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चुम्बक किसने कहा? कौन खींचे? यह खिंचता है स्वयं। वह खींचे तो स्पर्शता भी नहीं। अभी आयेगा। यह तो अभी उपोद्घात होता है। तीसरी गाथा का उपोद्घात होता है कि कोई द्रव्य किसी द्रव्य को परस्पर स्पर्शता नहीं। यह एकत्व निश्चयगत में यह निकाला है और है।

एक रजकण दूसरे रजकण को स्पर्शता नहीं। स्पर्शे तो भावरूप हो जाता है। एक-दूसरे में अभावरूप है, इसलिए वह एक तत्त्व दूसरे तत्त्व को छूता नहीं, स्पर्शता नहीं — ऐसा सिद्ध करने के लिये उपोद्घात करते हैं। समझ में आया? एक आत्मा कर्म के उदय की जड़पर्याय को छूता नहीं, स्पर्शता नहीं। तीन काल में स्पर्शता नहीं। बिच्छू का डंक इस शरीर को स्पर्शता नहीं। शरीर का स्पर्श आत्मा उसे स्पर्शता नहीं। स्पर्श आत्मा की पर्याय को स्पर्शती नहीं। आत्मा की पर्याय ज्ञान हो या राग हो, स्पर्श की दशा को स्पर्शती नहीं—छूती नहीं। समझ में आया? यह स्पर्शे बिना एक धर्म खड़ा किया है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा!

भाई! तेरी चीज़ की तुझे महिमा नहीं होती। अहो! एक-एक समय का एक परमात्मा। ज्ञान का परमात्मा, ऐसे अनन्त परमात्मा का पिण्ड केवलज्ञान की पर्याय, उसे परमात्मा ज्ञान की अवस्था से कहते हैं। बराबर है? केवलज्ञान की अवस्था जो दशा है, केवलज्ञान पर्याय है। सर्वज्ञ परमेश्वर सिद्ध को और अरिहन्त को केवलज्ञान है, वह पर्याय है, गुण नहीं। एक समय की पर्याय वह परमात्मा, ज्ञान का परमात्मा पूरा। पर्याय से परमात्मा है। ऐसे अनन्त परमात्मा। ज्ञान की पर्याय के अनन्त परमात्मा ज्ञानगुण में पड़े हैं। समझ में आया?

परमात्मा अर्थात् परम स्वरूप। एक समय की परम स्वरूप दशा, ऐसी अनन्त परम स्वरूप दशा एक गुण में पड़ी है। शशीभाई! आहाहा! कहाँ इसे... आत्मा कितना कहाँ है, इसकी खबर बिना इसे धर्म हो कैसे? कहते हैं कि भगवान! यह तो भगवान रूप से बुलाया है, हों! अमृतचन्द्राचार्य ने। यह भगवान आत्मा दुःख का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। हों! ७२ गाथा। भगवान आत्मा दुःख का कारण नहीं। आस्रव दुःखरूप। पुण्य-पाप के भाव दुःखरूप और दुःख का कारण है। तब आत्मा-भगवान आत्मा... है न? ७२ गाथा है। ७२... ७२। आधार देना ठीक। देखो! ७२।

जैसे काई जगत में होती है, शैवाल... शैवाल। शैवाल समझ में आता है? यह काई... काई। हिन्दी में काई कहे। अपने शैवाल - लीलफूग (कहते हैं)। 'काई की भाँति आस्रव मलरूप-मैलरूप... अनुभव में आते हैं। पुण्य-पाप के भाव पानी में जैसे

शैवाल—काई है, इसे भगवान आत्मा में पुण्य-पाप के भाव मैलरूप हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग के भाव। दया, दान, व्रत, भक्ति के भाव दोनों मैलरूप हैं। तब **भगवान आत्मा...** देखो! अमृतचन्द्राचार्य का शब्द है। **सदा ही अतिनिर्मल चैतन्यमात्रस्वभावरूप से ज्ञायक होने से अत्यन्त शुचि ही है (-पवित्र ही है, उज्ज्वल ही है)।** आहाहा! पुण्य-पाप के भाव, जिसे यहाँ परसमय के परिणमनरूप हो गया है, वह पुण्य-पाप के भावरूप परिणमा है, अर्थात् वहाँ मिथ्यात्व और राग-द्वेष तीनों एकाकार हो गये हैं। यह पुण्य-पाप के भाव मैल हैं। पानी में काई की भाँति यह काई है। दुःखरूप है।

दूसरे बहुत बोल हैं, हों! **'णादूण असुचित्तं विवरीयभावं दुक्खस्स कारणं'।** शुभ-अशुभभाव दुःखरूप और दुःख का कारण है। तब भगवान आत्मा... देखो! (आस्रव) आकुलता के उत्पन्न करनेवाले हैं। **और भगवान आत्मा तो सदा ही निराकुलता-स्वभाव के कारण, किसी का कार्य तथा किसी का कारण नहीं होने से, दुःख का अकारण ही है...** देखो! भगवान आत्मा, वह दुःख के पुण्य-पाप के भाव, उनका वह कारण नहीं। आहाहा! किस प्रकार से इसे (बैठे)? यह तो आनन्द का कारण है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कारण है और पुण्य-पाप के भाव दुःखरूप और दुःख के कारण हैं। ऐसे दो के बीच भेदज्ञान होने पर आत्मा सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप परिणमता है, उसे धर्म कहा जाता है। भारी सूक्ष्म बात। नेमिदासभाई! देखो! भगवान (शब्द) तीनों (बोलों) में लिया है (समयसार गाथा ७२ की टीका), हों!

भगवान आत्मा। आहाहा! आचार्य भगवानरूप से बुलाते हैं। भाई! तू महिमावन्त प्रभु है न! अनन्त-अनन्त शान्त वीतरागी आनन्द का रसकन्द, उसे आत्मा कहते हैं। पुण्य-पाप के भाव तो आस्रव, आस्रवतत्त्व है। कर्म, शरीर तो जड़तत्त्व है—मिट्टी तत्त्व है। ऐसा भगवान आत्मा अपने अनन्त गुणों की शुद्धता को स्पर्शकर परिणमता है, उसे स्वसमय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र कहा जाता है। और ऐसा आत्मा अनन्त अपने शुद्ध गुण को स्पर्शे बिना और कर्म के उदय के निमित्त को स्पर्शे बिना... आहाहा! भाई! ऐई! स्पर्शने का आनेवाला है, इसलिए यह उपोद्घात होता है। ऐसे स्पर्शता नहीं, ऐसे स्पर्शता नहीं। भाई! यह पर्याय में खड़ा करता है, भ्रमणा और राग-द्वेष। आहाहा! पर को

अनुसरकर। पर को स्पर्शकर नहीं। समझ में आया? क्या किया था अभी तक वहाँ कलकत्ता? गप्प मारे हों। बड़े अधिकारी होकर घूमे। हम प्रमुख हैं, प्रमुख। अब कहाँ है, कहते हैं। आहाहा!

भगवान! तू तो तेरे स्वभाव का अधिकारी है, भाई! समझ में आया? उसे छोड़कर कहते हैं कि जीव पर को अनुसरे, पर को स्पर्शे बिना, स्व को स्पर्शे बिना। वह पर को अनुसरकर जो परसमय मिथ्यात्व और राग-द्वेषभाव परसमय होता है, वह एक में दो हो, यह बाधा है, कहते हैं। वह शोभता नहीं। एक का एकपने रहना, वह शोभता है। परन्तु एक का दो पने होना, वह शोभता नहीं। इसलिए यह शब्द रखा है। '**अथ**' अब। '**एतत्**' '**एतत्**' अर्थात् जो दो भाग कहे—स्वसमय और परसमय, उसमें दो भाग का कहना, वह '**बाध्यते**' विरोध है। अब गाथा। लो, इसमें बहुत समय गया।

●●●

गाथा - ३

अथैतद्बाध्यते –

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि।।3।।

एकत्वनिश्चयगतः समयः सर्वत्र सुन्दरो लोके।
बन्धकथैकत्वे तेन विसम्वादिनी भवति।।3।।

समयशब्देनात्र सामान्येन सर्व एवार्थोऽभिधीयते। समयत एकीभावेन स्वगुणपर्यायान् गच्छतीति निरुक्तेः। ततः सर्वत्रापि धर्माधर्माकाशकालपुद्गल–जीवद्रव्यात्मनि लोके ये यावन्तः केचनऽप्यर्थास्ते सर्व एव स्वकीयद्रव्यान्तर्मग्ना–नन्तस्वधर्मचक्रचुम्बिनोऽपि परस्परमचुम्बन्तो–ऽत्यन्तप्रत्यासत्तावपि नित्यमेव स्व–रूपादपतन्तः पररूपेणापरिणमनादविनष्टानन्तव्यक्तित्वाट्ट–मोत्कीर्णा इव तिष्ठन्तः समस्तविरुद्धाविरुद्धकार्यहेतुतया शश्वदेव विश्वमनुगृह्णन्तो नियतमेकत्व–निश्चय–गतत्वेनैव सौन्दर्यमापद्यन्ते, प्रकारान्तरेण सर्वसंकरादिदोषापत्तेः।

एवमेकत्वे सर्वार्थानां प्रतिष्ठिते सति जीवाह्वयस्य समयस्य बन्धकथाया एव विसम्वादापत्तिः। कुतस्तन्मूलपुद्गलकर्मप्रदेशस्थितत्वमूलपरसमयत्वोत्पादितमेतस्य द्वैविध्यम्। अतः समयस्यैकत्व–मेवावतिष्ठते।।3।।

अब, समय की द्विविधता में आचार्य बाधा बतलाते हैं :–

एकत्व–निश्चय–गत समय, सर्वत्र सुन्दर लोक में।
उससे बने बंधनकथा, जु विरोधिनी एकत्व में।।3।।

गाथार्थ : [एकत्वनिश्चयगतः] एकत्वनिश्चय को प्राप्त जो [समयः] समय है वह [लोके] लोक में [सर्वत्र] सब जगह [सुन्दरः] सुन्दर है [तेन] इसलिए [एकत्वे] एकत्व में [बन्धकथा] दूसरे के साथ बन्ध की कथा [विसंवादिनी] विसंवाद–विरोध करनेवाली [भवति] है।

टीका : यहाँ 'समय' शब्द से सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं, क्योंकि

व्युत्पत्ति के अनुसार 'समयते' अर्थात् एकीभाव से (एकत्वपूर्वक) अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करता है, सो समय है। इसलिए धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल-जीवद्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने-जितने पदार्थ हैं, वे सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं, क्योंकि अन्य प्रकार से उसमें सर्वसंकर आदि दोष आ जायेंगे। वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते, अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं, तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते, पररूप परिणमन न करने से अनन्त व्यक्तिता नष्ट नहीं होती, इसलिए वे टंकोत्कीर्ण की भाँति (शाश्वत) स्थित रहते हैं और समय विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों की हेतुता से वे सदा विश्व का उपकार करते हैं-टिकाये रखते हैं। इस प्रकार सर्व पदार्थों का भिन्न-भिन्न एकत्व सिद्ध होने से जीव नामक समय को बन्ध की कथा से ही विसंवाद की आपत्ति आती है; तो फिर बन्ध जिसका मूल है, ऐसा जो पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होना, वह जिसका मूल है, ऐसा परसमयपना, उससे उत्पन्न होनेवाला (परसमय-स्वसमयरूप) द्विविधपना उसको (जीव नाम के समय को) कहाँ से हो? इसलिए समय के एकत्व का होना ही सिद्ध होता है।

भावार्थ : निश्चय से सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में स्थित रहते हुए ही शोभा पाते हैं। परन्तु जीव नामक पदार्थ की अनादि काल से पुद्गलकर्म के साथ निमित्तरूप बन्ध-अवस्था है; उससे इस जीव में विसंवाद खड़ा होता है, अतः वह शोभा को प्राप्त नहीं होता। इसलिए वास्तव में विचार किया जाये तो एकत्व ही सुन्दर है; उससे यह जीव शोभा को प्राप्त होता है।।3।।

गाथा - ३ पर प्रवचन

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

नीचे हरिगीत

एकत्व-निश्चय-गत समय, सर्वत्र सुन्दर लोक में।
उससे बने बंधनकथा, जु विरोधिनी एकत्व में॥३॥

आहाहा! देखो! अब इसका अर्थ। टीका है न? तीसरी गाथा का अर्थ।

टीका :- यहाँ... समझ में आया? कब आये? रात्रि में? तुम्हारे साथ आये या आज आये? ऐसा! ठीक। फिर पहिचान... नारणभाई जैसा मुख लगता है न, फिर ख्याल आ गया। समझ में आया? **यहाँ 'समय' शब्द से...** 'समय' शब्द से **सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं,...** सम-अय। जो पदार्थ स्वयं कायम रहकर। अय-अय अर्थात् गमन करे, परिणमे, उसे समय कहा जाता है। जीव में समय कहा था, उसका दूसरा अर्थ था। समय जीव आत्मा को भगवान ने समय कहा, इसीलिए तो जानना और परिणमना ऐसे भाव के कारण से जीव को समय कहा था। यहाँ सब पदार्थ—जितने भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। भगवान के केवलज्ञान में भगवान ने जाति से छह द्रव्य देखे। संख्या से अनन्त। अनन्त आत्मा, उससे अनन्तगुणे परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय और एक आकाश। भगवान के ज्ञान में छह द्रव्य देखने में आये हैं। उस एक-एक द्रव्य को समय कहा जाता है। क्यों? देखो! कहते हैं।

'समय' शब्द से सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं,... सर्व अर्थात् भगवान ने जितने छह देखे। जड़-चैतन्य, रूपी-अरूपी सब। सबको समय (कहा जाता है)। **क्योंकि व्युत्पत्ति के अनुसार 'समयते' अर्थात् एकीभाव से (एकत्वपूर्वक) अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करता है सो समय है।** क्या कहते हैं? समय, वह एकसाथ, एकसाथ, एकसाथ अनन्त गुण जो अपने हैं, उनकी जो पर्याय-वर्तमान अवस्था है, उसे प्राप्त करे। प्राप्त करे कहो या परिणमे कहो, एक ही बात हैं। क्या कहा यह? जितने भगवान ने अनन्त आत्मायें, निगोद में अनन्त आत्मायें हैं। आलू, शक्करकन्द की एक कणी लो तो उसमें असंख्य औदारिकशरीर है और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए, उससे अनन्तगुने जीव हैं। समझ में आया? वे सब भिन्न-भिन्न द्रव्य—वस्तु हैं। उससे अनन्तगुणे परमाणु भिन्न-भिन्न है। वे छह द्रव्य एकसाथ, एकसाथ (परिणमे)। गुण कहीं पहला परिणमे, दूसरा गुण बाद में परिणमे, ऐसा है कहीं। **एकीभाव से**

(एकत्वपूर्वक) अपने गुण-पर्यायों को... आत्मा अपने गुण-अनन्त गुणों की पर्याय को, गुण-पर्याय को परिणमे अथवा अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करे, सब एक ही है। प्राप्त करे कहो या परिणमे कहो।

परमाणु जो यह रजकण-पॉईन्ट है, वह कहीं मूल चीज़ नहीं। यह तो बहुत रजकणों का स्कन्ध है। जिसे भगवान स्कन्ध-पिण्ड कहते हैं। उसका पॉईन्ट जो अन्तिम रजकण है, उसे भगवान परमाणु द्रव्य कहते हैं। वह परमाणु भी अपने अनन्त गुण-पर्याय को, वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, अस्तित्व आदि जो अनन्त गुण हैं, उनकी पर्याय को वह रजकण प्राप्त करते हैं। उनकी पर्यायरूप वे रजकण परिणमते हैं। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा, समझ में आया या नहीं इसमें?

यह अँगुली है न? यह अनन्त रजकण का पिण्ड है। यह एक-एक रजकण अपने गुण-पर्याय को परिणमते हैं। उस गुण की पर्यायरूप परिणमते हैं। उसके जो गुण अनन्त हैं, उसकी पर्याय को प्राप्त करते हैं। वे दूसरे की पर्याय को प्राप्त करे या दूसरे की पर्याय को प्राप्त करावे, ऐसा वस्तु के स्वरूप में है नहीं। आहाहा! वह ईश्वर कहे न? ईश्वर जगत का कर्ता है। यह झूठ बात है। यह जैन होकर भी ऐसा माने कि यह आत्मा अपने गुण की पर्याय को प्राप्त करे, वैसे इस शरीर की पर्याय को भी वह स्वयं करे। तो यह अनन्त पदार्थ का कर्ता माने। माने, हो नहीं सकता। समझ में आया?

मुमुक्षु : उपादान ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपादान का अर्थ ही यह है। निमित्त का अर्थ ही यहाँ आता है। निमित्त को स्पर्शता नहीं परन्तु एक चीज़ है, उसे निमित्त कहा जाता है। बात तो बापू! यह तो पदार्थ-तत्त्व की वस्तु है और यह सर्वज्ञ परमेश्वर ने देखी हुई वह चीज़ है। ऐसे परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं तीन काल में-तीन लोक में यह वस्तु हो नहीं सकती। उनके वाड़ावालों को अभी खबर नहीं कि क्या तत्त्व है। समझ में आया? आहाहा!

यह तीसरी गाथा का थोड़ा उपोद्घात किया था। बहुत सूक्ष्म बात और स्पर्श की बात करेंगे। भाई! भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में सौ इन्द्रों की उपस्थिति में भगवान की इच्छा बिना दिव्यध्वनि निकली। वाणी (खिरी)। वर्तमान में

भी महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर भगवान विराजते हैं। उनकी बिना इच्छा इन्द्रों की उपस्थिति में दिव्यध्वनि निकलती है। उनकी वाणी में ऐसा आया कि यह प्रत्येक को हम समय कहते हैं। समय अर्थात् सम-अय, सम-अय। एकसाथ प्रत्येक पदार्थ अपने गुण की पर्याय को परिणमता है, पर्यायरूप से परिणमता है, उसे प्राप्त करता है। दूसरे के गुण की पर्याय को वह प्राप्त करे या दूसरे के गुण की पर्याय को प्राप्त करावे, ऐसा वस्तु के स्वरूप में है नहीं। समझ में आया? रतिभाई! गजब बात, भाई! अरे! तत्त्व की खबर नहीं होती और फिर हम धर्म करते हैं और हम धर्म करेंगे। धूल में भी धर्म नहीं। अभी वीतराग परमेश्वर किसे तत्त्व कहते हैं, उस तत्त्व का स्वतन्त्र स्वरूप क्या है, उसकी खबर नहीं होती। पर्याय की स्वतन्त्रता की जिसे खबर नहीं हो, उसे द्रव्य-गुण जो अव्यक्त त्रिकाल सामान्य पड़े हैं, उनकी श्रद्धा उसे हो नहीं सकती। समझ में आया? आहाहा!

'**समयते' अर्थात्...** देखो! अन्दर टीका में है, हों! '**समयत एकीभावेन स्वगुणपर्यायान् गच्छतीति निरुक्तेः**' संस्कृत है, लो! समझ में आया? भगवान आत्मा हो या रजकण यह परमाणु पॉईंट हो, प्रत्येक पदार्थ—प्रत्येक पदार्थ जितने भगवान ने अनन्त प्रत्यक्ष देखे हैं। अनन्त के कोई इकट्ठे मिलावट (होते देखे नहीं)। तीनों काल में अनन्त-अनन्तरूप से रहकर पलटते हैं। क्या कहा? अनन्त पदार्थ, वे अनन्तरूप से रहकर, अनन्तरूप से रहकर, पररूप से होकर, ऐसा नहीं। अनन्त-अनन्तरूप से रहकर अपने गुण की शक्ति की वर्तमान पर्याय को प्राप्त करते हैं। यह सिद्धान्त महात्रिकाली। समझ में आया? जीव विकार की पर्याय को प्राप्त करे, अविकार की पर्याय को प्राप्त करे, परन्तु प्राप्त स्वयं अपने गुण की पर्याय को करता है। समझ में आया? निमित्त तो परचीज़ है, यह बात है। निमित्त भी अपनी पर्याय को ही प्राप्त करता है, दूसरे की (पर्याय को प्राप्त) करता है, ऐसा नहीं हो सकता। कठिन बात, भाई!

समयसार का भाव भगवान के केवलज्ञान का मक्खन है। भगवान ने केवलज्ञान में जो देखा, उसका स्वरूप पूरा इसमें भर दिया है। अद्वैत चक्षु, आता है न? अजोड़ चक्षु। समयसार भरतक्षेत्र की अजोड़ आँख है। आहाहा! अरे! परन्तु इसे सुनने का अवसर नहीं मिलता। उसे समझने का और रुचने का अवसर कब होगा? समझ में आया?

कहते हैं, प्रत्येक पदार्थ सम अर्थात् एक भाव से, एक भाव से अपने में एक काल से। अपने ही गुण-पर्याय को (प्राप्त करता है)। आत्मा अपने गुण जो अनन्त हैं, उनकी पर्याय को पर्यायरूप से परिणमता है। परिणमे अर्थात् होता है। परिणमे अर्थात् प्राप्त करता है। यह रजकण की पर्याय को प्राप्त करता है कि रजकण की पर्याय को परिणमाता है, यह बोला जाता है, वह पर्याय आत्मा से होती है, ऐसा नहीं है। यह अनन्त रजकण जो हैं, उन रजकण के जो अनन्त गुण हैं, वे उसकी वर्तमान पर्याय को प्राप्त करते कहो या परिणमते हैं (ऐसा कहो, सब एक ही बात है)। आत्मा उसे प्राप्त करे या वह परमाणु करने में यहाँ आत्मा हो तो पर्याय (होती है, ऐसा नहीं है)। इसके अनन्त गुण हों तो वे पर्याय को प्राप्त करे, ऐसा है। समझ में आया? कहाँ गये लाभुभाई? कहो, समझ में आया या नहीं? वहाँ चलाते थे लाभुभाई, क्या? कलकत्ता। कहाँ? रंगून... रंगून। आहाहा! अरे! भगवान! तेरी सच्ची बात भी तुझे सुनने को मिलती नहीं और तुझे धर्म हो जाये?

यहाँ कहते हैं, देखो! इसमें से बहुत निकलेगा। दूसरे जीव का बचना, आयुष्य हो और उस पर्याय का होना, वह रजकण या वह आत्मा अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करता है। यह आत्मा राग को पर के लक्ष्य से प्राप्त करे, परन्तु उस पर्याय को प्राप्त करे और उसकी—जीव की बचाने की पर्याय को रचे उस पर्याय में, गुण में या द्रव्य में स्वभाव नहीं। यह तो धीरे-धीरे होता है न। कहो, समझ में आया इसमें? बाबूभाई!

कहते हैं, भगवान! एक बार सुन, भाई! तू कोई तत्त्व है, ऐसा मानता है? वस्तु है, ऐसा तू मानता है? तो वस्तु कितनी है? वस्तु तो अनन्त है। अनन्त वस्तु है तो एक-एक वस्तु में उसकी कोई शक्तियाँ है? शक्तियाँ है? उसके गुण हैं, उनका कोई सामर्थ्यपना है? सामर्थ्यवान द्रव्य, परन्तु उसका सामर्थ्यपना है? हाँ। प्रत्येक द्रव्य का उसके गुणरूप से उसका सामर्थ्यपना है। उसके गुणरूप से सामर्थ्यपना है, वह क्षण-क्षण में कुछ प्राप्त करे या नहीं? वह गुण तो अनादि ऐसे के ऐसे रहे हैं। वह द्रव्य और गुण वर्तमान किसी भी पर्याय को-अवस्था को प्राप्त करते हैं या नहीं? तो वह त्रिकाल जो रहे, वे वर्तमान अपनी अवस्था को प्राप्त करे अथवा उस अवस्थारूप परिणमे, उसे

समय कहा जाता है। तो छहों द्रव्यों को भगवान ने इस प्रकार से समय कहा है। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! समय अर्थात्... है न? पुस्तक में है न? भाई! है या नहीं इसमें? किसी दिन मुश्किल से आये। वाँचो तो सही। इसकी बहियों में कैसा है। बापू छोड़ गये हों तो बहियाँ कितनी देखते होंगे? नारणभाई ने देखा, यह चुनीभाई ने देखा, चुनीभाई ने देखा, उसे तुम्हारे देखना। यह भगवान बहियाँ छोड़ गये हैं। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! सुन न प्रभु एकबार! हम उसे समय कहते हैं। सम-अय, सम अय। सम्यक् प्रकार से एक भाव से, अय अर्थात् यहाँ परिणमने के अर्थ में है, हों! यहाँ ज्ञान के अर्थ में अभी नहीं लेना। छह द्रव्य हैं न? वे स्वयं अपने एक भाव से (परिणमते हैं)। दो भाग होते हैं वहाँ खण्ड होकर? एक भाव से यह आत्मा और रजकण अनन्त द्रव्य अपने गुण-पर्याय, गुण तो है, अब उस गुण की पर्याय को क्षण-क्षण में प्राप्त करते हैं। क्षण-क्षण में वह आत्मा कहो या यह रजकण-पॉईन्ट कहो, वह अपने अनन्त गुण की वर्तमान पर्याय को प्राप्त करे, इसलिए उसे हम समय कहते हैं, ऐसा आचार्य महाराज पुकार करते हैं। समझ में आया?

यह कितने हैं द्रव्य? देखो! **इससे धर्म...** द्रव्य। देखो! धर्म अर्थात् धर्मास्तिकाय एक पदार्थ है। चौदह ब्रह्माण्ड में जीव और जड़ गति करे अपनी पर्याय को प्राप्त (करते) समय, एक दूसरा तत्त्व है। वह तत्त्व भी अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करता है। धर्मास्तिकाय, धर्मास्तिकाय। धर्मास्तिकाय भी अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करता है। उसको गति करे, उसको प्राप्त नहीं करता और उसे कराता नहीं। समझ में आया? धर्मास्ति नाम का एक पदार्थ भगवान ने—तीर्थंकर ने देखा है कि जो अनन्त उसके गुण हैं, उनकी वर्तमान पर्याय को प्राप्त करे अथवा वर्तमान पर्यायरूप से परिणमता है, इसलिए धर्मास्तिकाय को समय कहा जाता है। कहो, समझ में आया इसमें?

दूसरा अधर्म। यह धर्म-अधर्म पाप की बात नहीं, हों! एक अधर्म नाम का पदार्थ है। भगवान ने अधर्मास्तिकाय (नाम का पदार्थ देखा है)। जड़ (पुद्गल) और चैतन्य गति करते हुए स्थिर हों तो उन्हें एक निमित्तरूप से अधर्मास्तिकाय नाम का भगवान ने चौदह ब्रह्माण्ड प्रमाण, चौदह राजूलोक में पदार्थ देखा है। वह कैसा है? कि

वह अधर्मास्तिकाय अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करता है, वैसा एक अधर्मास्ति नाम का पदार्थ है, उसे हम समय कहते हैं। कहो, समझ में आया?

एक आकाश। आकाश है। लोक में और अलोक में खाली है न? खाली भाग। अलोक... अलोक... अलोक, जिसे अमेय अलोक कहा है। अमेय अलोक। पण्डितजी! अमये अर्थात् मर्यादारहित। अलोक अमेया। आहाहा! यह तो मर्यादित है। इसलिए दो भाग किये। यह चौदह ब्रह्माण्ड में आकाश है, वह मर्यादित है। अमयम। ऐसा का ऐसा अनादि से। ऐसा का ऐसा माप बिना का क्षेत्र। वह आकाश नाम का पदार्थ भी अपने गुण जो अनन्त आकाश में है, उनकी पर्याय को वह प्राप्त करता है। समझ में आया?

काल नाम का पदार्थ असंख्य है। काल एक-एक आकाश के प्रदेश के ऊपर अणु है, अरूपी पदार्थ है। भगवान ने असंख्य कालाणु देखे हैं कि जो जड़ और चैतन्य परिणमते हैं, तब उसे निमित्त कहा जाता है। तथापि वह काल तो अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करता है।

पुद्गल। पुद्गल का एक-एक परमाणु, उसे निश्चय से पुद्गल कहते हैं। स्कन्ध आदि को तो उपचारित पुद्गल कहा जाता है। एक-एक पॉईन्ट। यह नहीं, इसका रजकण अन्दर है, वह एक-एक रजकण जहाँ हो वहाँ, जिस क्षेत्र में हो वहाँ, जिस काल में वहाँ हो वहाँ उस परमाणु में अनन्त गुण हैं, वे गुण अपनी पर्याय को प्राप्त करते हैं। उस समय स्थूलरूप से पर्याय प्राप्त करे या सूक्ष्मरूप से भी अपने गुण की पर्याय को प्राप्त करते हैं। पर के कारण से नहीं, पर में नहीं।

मुमुक्षु : स्पर्शकर तो परिणमे न?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्शकर तो बात नहीं। अब आयेगा। पहले स्पर्शकर नहीं, ऐसा तो कहा था। अब बाद में आयेगा। स्पर्शे कौन? एक रजकण की पर्याय दूसरे रजकण की पर्याय को तीन काल में स्पर्शती नहीं। क्योंकि परस्पर अभाव है। यह कहेंगे। स्पर्शे तो भी परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श करते नहीं। अभी महासिद्धान्त तो अब आयेगा। यह तो अभी एकत्वगत सुन्दर है, इतना सिद्ध करते हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, यह पुद्गल एक परमाणु से लेकर अनन्त रजकण का स्कन्ध हो या प्रत्येक रजकण, उसे समय कहते हैं। क्यों? वह परमाणु उस-उस समय एकीभाव से अपनी शक्तियाँ जो अनन्त गुण हैं, उनकी पर्यायरूप से परिणमते हैं, प्राप्त करते हैं, इसलिए उसे समय कहा जाता है। कर्म का एक-एक रजकण अपनी पर्याय को प्राप्त करता है। आत्मा ने यहाँ राग किया, इसलिए चारित्रमोहनीय की पर्याय हुई, ऐसा नहीं है। वह चारित्रमोहनीय की जो पर्याय रजकण में हुई, वह एक-एक रजकण अपनी पर्यायरूप से परिणमने को प्राप्त करता है, वह परमाणु के गुण-पर्याय को (प्राप्त करता है), इसलिए समय कहते हैं। इसने राग किया, इसलिए चारित्रमोहनीय की (पर्याय) हुई अथवा दूसरा परमाणु वहाँ उसकी पर्याय में परिणमता है, इसलिए यह ऐसे परिणमता है, ऐसा वस्तु के स्वरूप में अस्तित्व में नहीं। और नहीं, वैसा मानना, इसी का नाम मिथ्यात्व और भ्रम है। समझ में आया?

पुद्गल की व्याख्या में तो सब लेना। यह शरीर, यह वाणी, कर्म। प्रत्येक रजकण अपनी शक्तियाँ जो अनन्त सामर्थ्य धराती है, उसकी पर्यायरूप से, उसकी वर्तमान दशारूप से, उसकी वर्तमान अवस्थारूप से होना, इसलिए उसे समय कहा जाता है। वरना उसे समय नहीं कहा जा सकता, ऐसा भगवान कहते हैं। आहाहा! गजब बात!

सवेरे जंगल जाते हुए कहा, इस लकड़ी के सहारे चलते हैं या क्या चलते हैं? कहा था न बलवन्तभाई! सवेरे साथ में थे। बापू! यह वीतरागमार्ग, वह इसे सुनने को मिलता नहीं, यह समझे कब? कहते हैं कि इस लकड़ी को ऐसे स्पर्शता नहीं। लकड़ी नीचे धूल को स्पर्शती नहीं। जमीन को स्पर्शती नहीं और यह हाथ लकड़ी को स्पर्शता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : दृष्ट (होता है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं दृष्ट नहीं। धूल में भी दृष्ट नहीं। इसकी दृष्टि में अन्तर है। चलता है ऐसे। पैर ऐसे-ऐसे (चलते हैं)। यह पैर का एक-एक रजकण उस समय में एक भाव से अपने गुण की पर्याय को प्राप्त करता है। वह आत्मा वहाँ इच्छा और ज्ञान

है इसलिए उस पर्याय को प्राप्त करता है, ऐसा है नहीं। ऐसा कहे, ऐसा होगा कुछ? निर्धार। उसमें है। भगवान क्या कहते हैं? समय एकत्व गच्छति, इसका अर्थ करना है अभी तो, हों! एकत्व गच्छते समय लोक में सुन्दर है, ऐसा सिद्ध करना है न! आहाहा! समझ में आया? रतिभाई! देखो! इस चश्मे को हाथ-अँगुली स्पर्शते नहीं, कहते हैं। ऐसा यहाँ कहते हैं। और यह चश्मा यहाँ रखता नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : स्पर्शते शब्द का वाच्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पर्शने शब्द का अर्थ एक जगह ऐसा है, उसे स्पर्शना कहने में व्यवहारनय से आता है। एक क्षेत्र, यह उसमें है। स्पर्शने का पाठ उसमें है। उसने पूछ लिया है। स्पर्श है, उसका कोई वाच्य है या नहीं? स्पर्शना शब्द है तो। ऐसा पूछ लिया। अडना अर्थात् स्पर्शना। छूना... छूना। ऐसा कहते हैं, छूना ऐसा शब्द जगत में है। शब्द है तो उसका कोई वाच्य है या नहीं? प्रश्न किया। उसका वाच्य ऐसा (है कि) एक जगह लगभग रहना, उसे स्पर्शना, ऐसा कहा जाता है। धवल में ऐसा लिया है। एक पूरा स्पर्श अधिकार है। स्पर्श अधिकार। आत्मा, आत्मा को स्पर्शे, आत्मा कर्म को स्पर्शे, आत्मा आकाश को स्पर्शे। संयोग है, उसे स्पर्शे—ऐसा कहा गया है। संयोगपना बतलाना है। स्पर्शना, ऐसा नहीं। आहाहा! यहाँ कहते हैं, समझ में आया? ऐ... रतिभाई! यह सब व्यापार... तो भी यह ऐसा है। स्वतन्त्र छूट से कोई पाँच-दस हजार, पचास हजार लिखाना हो तो नहीं लिखा सकता। पूछो उसे। वह फिर ऐसा गिनो, यह तो एक राग है। उसमें भी आज्ञांकित है। मोहनलाल कानजी के। यह स्वतन्त्र सबकी पर्याय है, किसी के कारण से नहीं। माने भले किसी के कारण से, परन्तु है नहीं। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? बलवन्तभाई! यह समझ में आता है इसमें? वह समझे हैं, वह सब गड़बड़ है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : था कब तो डाल दे? नहीं था, खोटा था इतना समझना। बस। दूसरा कुछ (नहीं)। डालना था कहाँ और चलना था कहाँ? आहाहा!

इसमें परजीव की दया पाल सके, ऐसा इसमें—समय में आता है? परजीव भी

आत्मा। वह समय है। रजकण उसका शरीर भी समय है। वह प्रत्येक उसके गुण-पर्याय को समय-समय में प्राप्त करता है। उसमें यह उसकी पर्याय को प्राप्त करे, जिलावे या बचावे, यह वस्तु कहाँ है ? वस्तु में यह नहीं। अज्ञानी ने भ्रम उत्पन्न किया। समझ में आया ? अरे.. अरे ! भारी कठिन बात ! दया, वह धर्म है न ? अरे ! सुन न अब ? दया धर्म किसका ? दया तो तेरे आत्मा में राग की उत्पत्ति न हो, अहिंसा स्वभाव की उत्पत्ति हो, आत्मा के भाव में अनन्त गुण पिण्ड उस अपने गुण की निर्मल पर्याय से परिणमे, उसे अहिंसा कहा जाता है। भगवान महावीर की यह अहिंसा है। उसके साथ मेल (करे)। महावीर की ऐसी अहिंसा, उसके साथ ऐसे मिलता है, ईशु से मिलता है और ढींकणा से मिलता है। धूल भी एक भी नहीं मिलता, सुन न !

मुमुक्षु : बहुत निकट है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी निकट नहीं। ईशु की अहिंसा ऐसे... चिल्लाहट मचा गये। ... ऐसा कुछ कहते थे। हमारे धीरुभाई कहते थे। वे सब कहे, अब उसका ... तो अपने कुछ देना नहीं। पानी-बानी देना नहीं। लाओ उसका भगवान आवे तो। फिर तीसरी चिल्लाहट मचायी अन्त में मरते हुए। नौ... थे न ? बहुत पीड़ा होती होगी। उस प्रकार की लौकिक की करुणाबुद्धि। बाकी कहाँ तत्त्व। बापू ! यह वीतराग कहते हैं, वह तत्त्व तीन काल में कहीं नहीं। और किसी के साथ उसे अहिंसा का भी मेल नहीं। आहाहा ! यह क्या कहाँ आया है ? यह पुद्गल में आता है अभी।

पुद्गल का एक-एक रजकण शरीर का, वाणी का, कर्म का प्रत्येक रजकण, यह दाल का, भात का, सब्जी का, यह घड़ी का कोई भी अन्दर है, वह रजकण है, उसमें रहा हुआ रजकण अपनी गुण-पर्याय को क्षेत्रान्तर हो तो वह अपनी गुण-पर्याय को प्राप्त करता है। ऐसा था और यहाँ आया, वह अपने क्षेत्रान्तर की गुण-पर्याय को परमाणु प्राप्त करता है। अँगुली के कारण से नहीं, आत्मा की इच्छा के कारण से नहीं। कहो, शिवलालभाई ! क्या होगा यह ? अरे ! भाई ! इसके पिता एक बार पूछते थे। देव-गुरु-शास्त्र शुद्ध, वे पर कहलाये ? ऐई ! (संवत्) २०१० के वर्ष में पूछा था। वे पर ? कहा, लाख बार पर। भगवान पर है। पर का लक्ष्य करने से राग होता है। २०१० के वर्ष

में प्रश्न किया था। बहुत भक्ति करे न! ऐसा टोकरा बजाये। भक्ति श्रीमद् की करे। पूछा, देव-गुरु पर? शुद्ध, वे पर? शुद्ध उनके घर के रहे, यहाँ क्या है? आत्मा से पर है। केवली पर है। परद्रव्य का लक्ष्य करने से विकल्प और राग उत्पन्न होता है। वे शुद्ध हैं, इसलिए यहाँ शुद्धता उत्पन्न होती है, ऐसा है नहीं और वे शुद्ध हैं, इसलिए यहाँ विकल्प होता है, ऐसा भी नहीं। उसे उस काल में अपने गुण की चारित्रगुण की पर्याय उस रागपने प्राप्त करती है। बस, चारित्रगुण उस राग की पर्याय को प्राप्त करता है। अपने कारण से। भगवान हैं, इसलिए वह प्राप्त करता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? नटुभाई! समझ में आया यह? वहाँ जायेगा, फिर हो गया। थोड़ा-थोड़ा रहे, यहाँ सुने, वहाँ तक। कौन जाने..?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लो, ठीक। तुम्हारी दलाली की।

पुद्गल। आहाहा! जीवद्रव्य। लो, अब जीव आये। अनन्त आत्मायें हैं न? सिद्ध में अनन्त आत्मा हैं। निगोद के एक टुकड़े में अनन्त आत्मा हैं। वे सब आत्मा एक आत्मा अपने गुण-पर्याय से (परिणमता है)। निगोद का जीव, निगोद का जीव भावकलंक सुपहुरा भगवान ने गुणस्थान में कहा है, वह अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करता है। कर्म के कारण से नहीं। समझ में आया? यहाँ तो अभी सामान्य बात है, हों! बाद में तो निश्चयगत आयेगा। ऐसे शुद्ध हो वह शोभता है। पर के कारण से विकार हो, वह क्या शोभे? ऐसा कहते हैं। पर के कारण से अर्थात्? पर को अनुसरकर। पर को अनुसरकर विकार हो, वह शोभा है? कहते हैं। अपने गुण को अनुसरकर निर्मल दशा हो, वह एकत्वपना शोभा है, वह सुन्दरता है, ऐसा सिद्ध करना है यहाँ तो। समझ में आया?

जीव द्रव्यस्वरूप... जितने अनन्त आत्मायें जगत में हैं, वे सब **लोक में...** उसका क्षेत्र कहा। यह तो लोक है न? **सर्वत्र...** सर्वत्र-पूरे क्षेत्र में **जो कुछ जितने-जितने पदार्थ हैं...** लो। जो कोई जितने-जितने संख्या से हैं। आकाश एक होता है, धर्मास्ति एक होता है, काल असंख्य होते हैं और जीव अनन्त होते हैं। **वे सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं,...** लो। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-

पर्याय को शुद्धता को प्राप्त करे तो वह शोभा है। समझ में आया? है न? एकत्वनिश्चयगत समय। देखो! ... लोके द्रव्यान्तर बाद में कहेंगे। '**लोके ये यावन्तः**' यह तो समय के ऊपर ले गये, समय के साथ। समझ में आया? वह सुन्दरता पाते हैं। समस्त भगवान आत्मा और रजकण, रजकण तो भले कोई विभाव हो, चार तो अत्यन्त स्वभाव को प्राप्त हैं। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल तो स्वभाव को प्राप्त हैं। परमाणु जरा विभावरूप (परिणमता है), परन्तु उसे कुछ सुख-दुःख नहीं। परमाणु स्वभावरूप से परिणमो या विभावरूप से परिणमो, उसे कुछ सुख-दुःख नहीं। सुख-दुःख यहाँ आत्मा को है।

आत्मा सब एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से स्वयं अपने... आत्मा एकत्व निश्चय अर्थात् अभेदरत्नत्रय को प्राप्त होने से अथवा अपने शुद्ध गुण की पर्याय को प्राप्त होने से सुन्दरता को पाते हैं। समझ में आया? यह तो सबकी बात है न! परन्तु अपने आत्मा के अन्दर काम है। उन चार में कुछ (काम नहीं)। चार तो स्वभाव ही है। चार को तो स्वभाव है, उनमें कुछ दूसरा है नहीं। और पुद्गल में किसी को विभाव है, बाकी अनन्तानन्त गुण सामान्य पड़े हैं।

यहाँ अब अपने जीव का लेना है। है सबका, परन्तु जीव वह एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से... भगवान आत्मा, वह निमित्त को अनुसरकर जो प्राप्त हो, वह एकत्वपना नहीं, वह सुन्दरता नहीं। समझ में आया? एकत्व निश्चय को प्राप्त। आत्मा... यहाँ आत्मा का लेना है, उन चार का स्वरूप बतलाया। भगवान आत्मा एकत्व निश्चय को प्राप्त अर्थात् कि निमित्त को अनुसरकर होनेवाला प्राप्तपना छोड़कर। क्योंकि उसमें द्विविधपना आया है। उसमें बाधापना है। भगवान आत्मा अनन्त शुद्ध गुण का पिण्ड, वह अपनी वर्तमान पर्याय से अनुसरकर अपने गुण को अनुसरकर, निमित्त को अनुसरना छोड़कर अपनी गुण की पर्याय को सुन्दरता—अभेदरत्नत्रयरूप परिणमे, स्वसमयरूप परिणमे, वह शोभा और सुन्दर कहलाता है। अथवा अकेला द्रव्य जो शुद्ध है जहाँ सर्वत्र, एकेन्द्रिय आदि में शक्तिरूप शुद्ध है, वह सुन्दरता को प्राप्त है। यहाँ पर्यायरूप यह सुन्दर है। समझ में आया? एकेन्द्रिय आदि में भी लिया है। जयसेनाचार्य की टीका में। वह

द्रव्य लिया है। एकेन्द्रिय आदि में भी रहा हुआ जीव। जयसेनाचार्य की टीका में लिया है। है, द्रव्य लेना है। यहाँ तो स्वसमय प्रगट हुए की बात लेनी है। '**सर्वत्रैकेंद्रिया-द्यवस्थासु शुद्धनिश्चयनयेन सुंदर उपादेय इति।**' यह शुद्ध निश्चय (अर्थात्) त्रिकाल। वहाँ लिया है।

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यमूर्ति, वह सुन्दर और वह शुद्ध चैतन्यमूर्ति अपने को अनुसरकर, निमित्त का अनुसरना छोड़कर, शुद्ध गुण की निर्मल पर्याय को प्राप्त करे, अभेदरत्नत्रय को प्राप्त करे, वह सुन्दर और शोभा को प्राप्त है। उसे स्वसमय कहा जाता है। विशेष व्याख्या आयेगी.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण ९, बुधवार, दिनांक - १०-०८-१९६६
गाथा - ३, प्रवचन - १२

समयसार। जीव-अजीव अधिकार। इसकी तीसरी गाथा। इसकी टीका फिर से लेते हैं, देखो! आ गया है अपने परसों। उस आत्मा की यह बात है, आत्मा। आत्मा, वह समय है। समय अर्थात् वस्तु और सम अर्थात् एकीभाव से परिणमे, बदले और जाने। ऐसा पदार्थ, उसे यहाँ आत्मा कहते हैं। दूसरे सबको समय कहते हैं, परन्तु जानना उनमें—पाँच में नहीं है। यह आत्मा ज्ञायकस्वरूप है। यहाँ सभी द्रव्यों की बात करनी है। छहों। भगवान केवलज्ञानी ने छह द्रव्य देखे हैं। उन छहों में चार — धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, वे तो स्वभावरूप ही उनकी परिणमन दशा अनादि-अनन्त है। नवनीतभाई! स्वरूपचन्दभाई! जरा सूक्ष्म पड़ेगा। आज बहुत सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आने दो। आत्मा तैयार है न! आत्मा में कहाँ वहाँ... आत्मा नया है? अनादि का है।

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान हुआ, तब छह द्रव्य देखे। कब केवलज्ञान बिना का कभी यह जगत हो नहीं सकता। अनादि काल से सर्वज्ञ होते आये हैं। अनादि काल से छह द्रव्य के द्रव्य-गुण-पर्याय को वे भगवान जानते आये हैं। अनादि। कभी सर्वज्ञ न हो, दुनिया तीन काल में तीन लोक में सर्वज्ञ से खाली हो, ऐसा कभी नहीं होता। नवनीतभाई! एक समय में तीन काल तीन लोक को जाने, ऐसा आत्मा का अन्दर स्वभाव है। उसकी प्रगट दशा जिसकी हुई, उसे अरिहन्त, उसे सिद्ध भगवान कहते हैं। सिद्ध भगवान को शरीर होता नहीं और अरिहन्त भगवान को तीन काल-तीन लोक का ज्ञान होने पर भी अभी वाणी होती है, वाणी। इसलिए बिना इच्छा के उपदेश निकलता है। पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ हैं, उन्हें इच्छा होती नहीं। तब उन्होंने जगत में छह द्रव्य देखे।

कहते हैं कि **'समय' शब्द से सामान्यतया सभी पदार्थ कहे जाते हैं,...** पहली लाईन। 'समय' शब्द से सामान्य अर्थात् संक्षिप्त में कहें तो सब पदार्थ समय से कहे जाते हैं। **क्योंकि व्युत्पत्ति के अनुसार...** अब समय की व्युत्पत्ति करते हैं। अर्थात् सम अर्थात् **एकीभाव से (एकत्वपूर्वक) अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करता है, सो समय है।** क्या व्याख्या की ? पदार्थ उसे कहते हैं कि जो एकसाथ अनन्त गुण जो उसके हैं, वह अपनी वर्तमान दशा को—अवस्था को वे गुण और पर्यायरूप से प्राप्त हो, उसे समय कहा जाता है। छहों द्रव्य जगत में अनादि-अनन्त हैं, वे अपनी शक्ति अनादि है और उसकी वर्तमान दशा उसे वह द्रव्य अर्थात् पदार्थ प्राप्त होते हैं। वह दूसरे पदार्थ को प्राप्त नहीं होते, तथा दूसरे पदार्थ से अपनी गुण-पर्याय को प्राप्त नहीं करता। लॉजिक से कुछ ध्यान रखना पड़ेगा। यह अलग प्रकार का अभ्यास है। अपने तो आज चूमने का अधिक लेना है। यह तो थोड़ा-थोड़ा (फिर से लिया)। यह तो परसों आ गया है परन्तु नये (लोग आये हैं), इसलिए यहाँ से ले लिया। समझ में आया ?

कहते हैं, समय कहा। पदार्थ को सम-अय। सम-अय दो शब्द हैं। सम (अर्थात्) एक साथ, अय (अर्थात्) परिणमना-होना, बदलना। उसकी शक्तियाँ जितनी है, उनकी वर्तमान अवस्थारूप से—हालतरूप से—दशारूप से, जो पदार्थ प्राप्त हो, उसे समय—सम+अय कहा जाता है। समझ में आया ? लॉजिक से तो बात है, हों! ऐसी की ऐसी बैठाने की बात नहीं। परन्तु अब ध्यान तो इसे रखना पड़े न! कभी अभ्यास नहीं होता। बलवन्तभाई! कहते हैं, छहों वस्तुयें जगत में भगवान ने जाति से छह, संख्या से अनन्त (देखी है)। संख्या से अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति, एक आकाश, ऐसे भगवान के ज्ञान में, अनादि केवलियों के ज्ञान में यह आया और ऐसा है। इन छह द्रव्यों को यहाँ समय कहा जाता है। समय—सम+अय। सभी—प्रत्येक पदार्थ अपने जितनी अपनी गुण-शक्ति स्वभाव है, वह वर्तमान अपनी दशा को—हालत को—पर्याय को प्राप्त हो, इसलिए उसे समय कहा जाता है।

इसलिए धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल-जीवद्रव्यस्वरूप लोक में... अब यहाँ कहते हैं। **सर्वत्र...** यह छह द्रव्य **लोक में सर्वत्र...** प्रत्येक स्थान में **जो कुछ जितने जितने पदार्थ हैं वे सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही**

सुन्दरता को पाते हैं,... क्या कहते हैं ? छहों पदार्थ—उनमें धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, यह तो स्वभाव से एकत्व को प्राप्त अनादि के हैं। यह तो उन्हें स्वभावपर्याय है। धर्मास्ति अरूपी है, अधर्मास्ति अरूपी है, चौदह ब्रह्माण्ड प्रमाण। यह सब सिद्ध करने जाये तो चले नहीं। यहाँ तो है, ऐसा साबित करके, अब इसका अर्थ होता है। यह चार द्रव्य तो स्वभाव में उनकी परिणति अर्थात् अवस्था स्वभावरूप है। भाई! उन्हें विभावरूप नहीं। इसलिए उन्हें कुछ बन्धकथा की आपत्ति चार को लागू नहीं पड़ती। समझ में आया ?

अब यहाँ जीव और पुद्गल दो (द्रव्यों की बात करनी है)। वास्तव में तो जितने हैं **वे सभी एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं,...** प्रत्येक पदार्थ अपने में एकत्व को प्राप्त हो और दोकलापन अर्थात् दूसरेपन को प्राप्तरूप से प्राप्त न हो और पर से हटकर अपने स्वभाव की पर्यायरूप एकत्व प्राप्त हो तो वह पदार्थ सुन्दर और शोभा पाता है। नवनीतभाई! यह तो परसों आ गया है। यह तो तुम्हारे लिये थोड़ा लेते हैं। मूल यह तत्त्व का द्रव्य-गुण और पर्याय पूरी वस्तु का स्वरूप अभी लोप हो गया। जैन में पूछो तो पचास-पचास, साठ-साठ वर्ष के पड़े हों। सामायिक द्रव्य होगी, गुण होगी या पर्याय होगी ? भगवान जाने। बलवन्तभाई! यह सब जैन में जन्मे हुए हैं या नहीं ? उन्हें पूछो कि तुम्हारी सामायिक क्या कहलाती होगी ? किस पदार्थ की अवस्था ? किस पदार्थ का गुण ? अथवा कौन सा पदार्थ ?

यह आत्मा अनादि-अनन्त शाश्वत वस्तु-पदार्थ है। इसकी शक्तियाँ-गुण भी शाश्वत है। इसकी वर्तमान हालत—दशा-अवस्था यदि स्वभाव-सन्मुख होकर निर्मलरूप से रागरहित होकर वीतरागी अवस्थारूप परिणमे तो उस पर्याय को सामायिक कहते हैं और उस पर्यायसहित के द्रव्य को सुन्दरता और शोभा प्राप्त है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया ? तुम्हारी दवा में कितना मन चिपटता है। बहिन कहती थीं या नहीं ? कमलाबेन कहती थी कि उसमें नहीं चिपटता। वहाँ कैसे चिपटता है ? यह दवा इसकी होती है, इस क्षय की यह होती है, फोड़े की... क्या कहा, कुछ दूसरे की कही थी ? संधिवा। वह तो अज्ञान है। अनादि की रुचि है।

यह आत्मा, भगवान को कहा वैसा आत्मा क्या है, उसको इसने जानने का एक समय भी अनन्त काल में प्रयत्न नहीं किया। इसके बिना सब छिलके खांडे हैं, छिलके खांडे हैं (कूटे हैं)। फोतरा समझते हो? छिलका। छिलके कूटे। छिलके-फोतरा। छिलकों में कुछ अनाज है? उसी प्रकार यह भगवान आत्मा... देखो! इसका नाम चावल है न? चावल। चावल का नाम चावल है। चावल। तुष, उससे रहित चावल। ऊपर छिलका है न? उससे रहित और ऊपर वह लालिमा है, लालिमा। चावल में होती है न? लाल लाल अन्दर। छिलका होता है न? (उसके) अन्दर लालिमा-लाल होता है। इसने कभी देखा नहीं हो। चावल में दो भाग होते हैं। एक ऊपर छिलका होता है, वह तो खुल्ला निकल जाये। परन्तु चावल के ऊपर एक लाल भाग होता है। जब मशीन में वह होता है न? तब लाल भाग निकल जाये। तब अकेला शुद्ध चावल होता है। अकेला शुद्ध चावल होता है।

उसी प्रकार यह आत्मा, इसका ऊपर का छिलका यह कर्म और शरीर। ऊपर का फोतरा—छिलका—नोकर्म। और कर्म अन्दर जड़, वह भी ऊपर छिलका है। दूसरी बात, अन्दर राग और द्वेष और विकारी परिणाम हैं, वह चावल के ऊपर की लालिमा है। वह चावल तुमने देखे नहीं? मूल चावल अन्दर ऊपर लाल होते हैं। फिर मशीन में वह करे (तब निकल जाये)। समझ में आया? यह चावल में वह ऊपर की छाल होती है, वह तो तुरन्त निकल जाती है और जिसकी छाल निकली तो भी वह लालिमा रह जाती है। तो लालिमा जो भाग है, वह निकले तब चावल शुद्ध होता है। इसी प्रकार यह आत्मा, इन छह द्रव्यों के अन्दर चार द्रव्य तो शुद्ध हैं अनादि के। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल। ये तो द्रव्य से शुद्ध हैं, गुण से शुद्ध हैं, द्रव्य-गुण से तो सभी शुद्ध होते हैं परन्तु उनकी पर्याय—चार की अवस्था भी अनादि की शुद्ध ही है। उसे उसका स्वभाव परिणमन कहा जाता है। अपने स्वभाव की पर्याय को प्राप्त। इसलिए चार द्रव्य तो निश्चयगत प्राप्त ही है शुद्ध। समझ में आया? अब रहे जीव और पुद्गल—दो।

जीव जो है... यह आगे कहेंगे, हों! यहाँ तो अभी इतनी बात करते हैं कि **एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं,...** भगवान आत्मा स्वयं अपने

पुण्य-पाप का भाव जो राग है, मैल है, जैसे चावल के ऊपर लालिमा है, उससे रहित हो, तब वह चावल चावलपने को सुन्दरता को पाता है। तब वह चावल चावल कहलाता है। स्वरूपचन्दभाई! इसी प्रकार भगवान आत्मा यह शरीर और कर्म जो है, यह शरीरादि है, वह नोकर्म जड़ पर है, कर्म भी परवस्तु अत्यन्त अजीव है। इसलिए उससे तो रहित ही है। अब उसके ऊपर जो लाल—राग और द्वेष, वह कर्म के पुद्गल हैं जड़, उनमें लक्ष्य करने से, ऐसे लक्ष्य छोड़ने से और ऐसे लक्ष्य करने से, जो कुछ भ्रमणा कि मैं यह राग हूँ, मैं पुण्य हूँ, ऐसी भ्रमणा मिथ्यात्व और राग-द्वेष के परिणाम, वे चावल के ऊपर जैसे लालिमा है, वह चावल की शोभा नहीं। वह चावल की अशोभा है। समझ में आया?

उसी प्रकार आत्मा में कर्म और शरीर का संयोग, वह तो पर है, वह आत्मा को शोभा का कारण नहीं। और उसके लक्ष्य से—कर्म के लक्ष्य से... पाठ तो ऐसा है न इसमें? कि पुद्गलकर्म में स्थित होने से, पुद्गलकर्म जड़ है, उसमें लक्ष्य करने से ऐसे परमात्मा स्वयं शुद्ध आनन्द सच्चिदानन्दस्वरूप है, पर से भिन्न और स्व से तन्मय, आत्मा स्वभाव के भाव से तन्मय और विकारादि से पृथक्, ऐसा जो उसका तत्त्व है, ऐसे तत्त्व के ऊपर उसने अनन्त काल में कभी लक्ष्य दिया नहीं। इसलिए कर्म के ऊपर, ऐसे लक्ष्य न देकर उस कर्म के ऊपर लक्ष्य देने से जो पुण्य और पाप के भाव मलिन उत्पन्न होते हैं, वह बन्धभाव है। वह बन्धभाव आत्मा को शोभा का कारण नहीं, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। उस बन्धभाव से रहित इस ओर पुण्य और पाप के राग से लक्ष्य छोड़कर शुद्ध आनन्दकन्द है, ऐसे स्वभाव की दृष्टि करने से जो रागरहित आत्मा की शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति का परिणमन-दशा हो तो वह आत्मा शोभा को प्राप्त होता है। तो उस आत्मा को आनन्द की प्राप्ति होती है। ऐसे स्वसमय शुद्ध के लक्ष्य से परिणमन होकर पर से भिन्न पड़ा हुआ, उसे स्वसमय, उसे आत्मा कहा जाता है। न समझ में आये, ऐसी बात नहीं। बलवन्तभाई! परन्तु ध्यान ही कभी (दिया नहीं)। तुम्हारे पिता भी ऐसे के ऐसे हैं। यह सब ऐसा का ऐसा बेअसर पड़े हैं। यह किया करे। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं... परन्तु वस्तु क्या है? यह तो दृष्टान्त है, सबने ऐसा ही किया है अनन्त काल से। क्यों शिवलालभाई? आहाहा!

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव महाविदेहक्षेत्र में अभी विराजते हैं। परमात्मा सीमन्धर प्रभु विराजते हें। ऐसे अनन्त तीर्थंकर इस भरतक्षेत्र में हुए। सबकी एक ही आवाज अर्थात् दिव्यध्वनि है। दिव्यध्वनि—प्रधान आवाज इच्छा बिना। हे आत्मा! इस जगत में छह वस्तुएँ हैं, उनमें प्रत्येक अपने एकत्व को पाती है, पर से भिन्नरूप रहती है, यह वस्तु की शोभा और वस्तुपना है। वस्तु की शोभा और यह वस्तुपना है। तो धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल तो स्वयं अपने से परिणम रहे हैं। उन्हें पर का कुछ सम्बन्ध नहीं, पर में अटकना नहीं, उन्हें पर का कुछ संग नहीं। वह तो अपनी द्रव्य-गुण की शुद्धता, शक्तिवान—शक्ति की शुद्धता ऐसी वर्तमान दशा की शुद्धता परिणमती है। इसलिए वह तो स्वसमय की परिणतिरूप से स्वभावरूप से परिणमते हैं। स्वसमय शब्द से उसका जड़पना, हों! यहाँ आत्मा की अपेक्षा से बात नहीं।

कहते हैं, अब उसमें रहे जीव और पुद्गल। तो जीव जो है, वह जब तक कर्म के सम्बन्ध में लक्ष्य करके हो, वह बन्धकथा है। विसंवाद खड़ा करती है, असत्यपना खड़ा हुआ है। आत्मा नहीं, वैसी दशा उसने खड़ी की है। समझ में आया? यह पुण्य और पापरूप आत्मा नहीं। भावपुण्य-पाप, हों! समझ में आया? यह दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वह पुण्य। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना पाप, दोनों विकल्प की वासना विकार है। उस विकाररूप से होना, वह उसकी शोभा नहीं। वह तो कर्म के लक्ष्य से अटका, इसलिए वह उत्पन्न हुआ है। उसे परसमय, परसमय अर्थात् परपदार्थ में एकत्व हुआ विकारीभाववाला आत्मा, उसे वास्तव में आत्मा नहीं कहते। आहाहा! कठिन बात, भाई! कहो, ज्ञानचन्दजी!

कहते हैं, प्रत्येक पदार्थ **एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं,...** आत्मा भी... चार को तो सुन्दरता ही है, एक जीव और पुद्गल दोनों में थोड़ा अन्तर है। जीव है, वह वहाँ पर में अटकता है, तब पुण्य-पाप और मिथ्या भ्रम उत्पन्न होता है, वह आत्मा के एकत्व अबन्धस्वरूप में यह बन्ध की कथा असत्यपना विसंवाद—झगड़ा उत्पन्न किया है अनादि का। आत्मा के साथ स्वयं झगड़ा उत्पन्न किया है, ऐसा कहते हैं। विकारभाव उत्पन्न करके और आत्मा के स्वभाव में नहीं, ऐसा इसने विसंवाद असत्यपना

जीव का स्वरूप नहीं, वैसा इसने खड़ा किया है। उसे जीव का स्वरूप नहीं कहा जाता, ऐसा कहते हैं। परन्तु पुण्य और पाप और बन्ध जो परपदार्थ, उनसे हटकर स्वभाव की शुद्धता की एकता को प्राप्त करे, उसे सुन्दरता और सुखी और उसे आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? इतना तो सुना भी न हो, क्या है यह! दया पालो, करो व्रत और करो रात्रिभोजनत्याग और महिलायें निवृत्त हो तो वर्षीतप कर डाले। क्या हुआ परन्तु उसमें? तूने क्या किया? जहाँ करनेवाला पर से भिन्न है, वह करनेवाला करता है विकार या अविकार, उसकी जिसे खबर नहीं, वह धर्म कहाँ से लावे और करे कहाँ से? समझ में आया?

भगवान आत्मा अनन्त शुद्ध चैतन्य के गुण का पिण्ड प्रभु है। कहते हैं, कि वह अपने में एकत्व होकर पुण्य-पाप के परिणाम-भाव और कर्म निमित्त, दो का लक्ष्य छोड़कर अपने स्वभावरूप से जाये, तब उसे शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्तिरूप से हो, उसे धर्मीजीव कहते हैं, उसे आत्मा कहते हैं, उसे स्वसमय कहते हैं। उस दशा को मोक्ष का मार्ग कहते हैं। लम्बा बहुत है इसमें। स्वरूपचन्दभाई! अभ्यास करना पड़ेगा भाई अब। पहले नये विद्यार्थी कहा था... आहाहा! जगत में भी एक एल.एल.बी. या बी.ए. पढ़ते हैं तो पाँच-सात वर्ष निकालने पड़ते हैं या नहीं? और हैरान-हैरान कष्ट में मरने का है वहाँ। समझ में आया?

भगवान आत्मा... कहते हैं, छहों वस्तुओं का अपने में एकरूप से रहना, वह शोभा का कारण है। एकपने से उन्हें दोपने हो वह बिगड़ा है। अपने कहते हैं न? एकड़े एक और बिगड़े दो। द्विविध है न? द्विविध। भगवान आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप सन्मुख के लक्ष्य बिना राग तथा पुण्य और पाप को उत्पन्न करके पर के बन्धभाव में टिककर जो विकाररूप से उत्पन्न हो वह, वस्तु एक, उसमें दूसरापना खड़ा किया, वह बिगाड़ है, वह अनात्मा है, वह आत्मा नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! आत्मा की व्याख्या लम्बी यह तो। वह कहे आत्मा किसे कहना? त्रस को कहना। हिले, चले उसे त्रस और स्थिर रहे उसे स्थावर (कहा जाता है)। लो, यह सीख गये। ऐसा नहीं। सुन तो सही! पुद्गल भी चलता है—गति करता है। यह परमाणु गति करता है। उसमें गमन हो, वह

उसका धर्म है। पुद्गल का-परमाणु का गमनता-गमन करना-गति करना — यह उसका धर्म-उसका स्वभाव है। इसलिए जीव कहा जाता है? ऐसा नहीं।

जीव अर्थात् आत्मा उसे कहते हैं कि जो पर के लक्ष्य और अपने अस्तित्व में रहता हुआ पर के लक्ष्य को छोड़कर शुद्धस्वभाव के लक्ष्य से एकत्वपना शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्तिरूप परिणमे, एकत्वरूप हो, उसे भगवान आत्मा कहते हैं। उसे यहाँ स्वसमय—अपना स्वरूप आत्मा, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! गजब बात! अभी तो सुनी न हो और सिर में... सिर तो जड़ है, हों! यह सब। परन्तु ज्ञान का सिर है न? चैतन्यपुर, उसके ख्याल में यह बात आये बिना वह किस प्रकार से परिणमे? समझ में आया?

क्योंकि अन्य प्रकार से उसमें सर्वसंकर आदि दोष आ जायेंगे। क्या कहते हैं? यदि पदार्थ अपनेरूप न रहे और पर में यदि एकत्व हो तो उसमें संकर आदि दोष है। संकर अर्थात्? सर्वेषाम् युगपद् प्राप्त वह संकर। दो का एकपना हो जाये, दोनों एक हो जाये। समझ में आया? भिन्न न रहे तो अनन्त पदार्थ भिन्न हैं। अनन्त, अनन्तरूप से अनादि से रहे हुए हैं। जाति छह भले। आत्मा, पुद्गल (आदि)। जाति एक परन्तु है संख्या अनन्त। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्म, अधर्म, आकाश, यह अनन्त अपनेरूप से यदि न रहे, वे पररूप यदि हों तो अपनापन गँवा बैठे। तो ऐसा हो नहीं सकता।

कहते हैं, उसमें संकरदोष और व्यतिकर-परस्पर विषय गमन। जीव जड़ हो जाये और जड़ जीव हो जाये। यह शब्द में है न? संकर, व्यतिकर, ऐसे आठ दोष हैं। आठ। यदि आत्मा आदि पदार्थ अपनेरूप से भिन्न न रहे और पर के साथ यदि एकत्व हो तो दोपना गँवावे और स्वयं या पर में जाये और या पर इसमें आ जाये। इसलिए ऐसा कभी बनता नहीं। प्रत्येक पदार्थ अपने में टिककर तीनों काल टिक रहा है। पर के कारण से नहीं, पर में नहीं, पर के आश्रय से नहीं। ऐसा जिसका स्वरूप है।

कहते हैं, **सर्वसंकर आदि दोष आ जायेंगे। कैसे हैं वे सब पदार्थ?** इतना तो परसों आया था। अब कैसे हैं वे सर्व पदार्थ? **अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने**

अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते,... बहुत सूक्ष्म है। यह लाईन तो बहुत वस्तु के मर्म के गर्भ की बात है। कहते हैं कि प्रत्येक आत्मा, प्रत्येक यह रजकण-पॉईन्ट। यह एक चीज़ नहीं। यह तो टुकड़े करते... करते... करते... करते... अन्तिम पॉईन्ट रहे, उसे परमाणु कहते हैं, उसे मूल पदार्थ कहते हैं। यह तो संयोगी—बहुत संयोग होकर इकट्ठा हुआ है। यह मूल चीज़ नहीं। इसके टुकड़े होने पर अन्तिम एक पॉईन्ट रहे कि जिसके दो भाग न हों, उसे भगवान परम अणु कहते हैं। परम अणु—अन्तिम में अन्तिम छोटा भाग। ऐसे परमाणु अनन्त हैं, आत्मा भी अनन्त हैं। वह प्रत्येक द्रव्य **अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न...** आत्मा में अनन्त गुण अन्तर्मग्न हैं, रजकण में भी रंग, गन्ध आदि अनन्त गुण उसमें अन्तर्मग्न हैं। ऐसे **अपने अनन्त धर्मों के चक्र को...** वह परमाणु एक-एक अनन्त गुणधर्मवाला है और उसकी पर्यायें अनन्त हैं। वह रजकण अपने अनन्त गुणों और उसकी पर्याय को चूमता है। चूमता है अर्थात् आलिंगन करता है, स्पर्श करता है-छूता है—उसमें रहता है।

आत्मा एक वस्तु है, उसमें भगवान ने देखे हुए अनन्त गुण हैं। उनकी अनन्त पर्याय-अवस्था-हालत-दशा है। आत्मा अपने अनन्त गुणों के... धर्म क्यों लिया है? धार रखे हैं इसलिए। हैं तो सभी गुण, परन्तु आत्मा ने अनन्त गुणों को धारा है, अनन्त अवस्थाओं को धारा है। ऐसा आत्मा अपने अनन्त गुण ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि; उनकी अवस्था मति-श्रुत आदि या (दूसरी) अवस्था, उन अपने गुण और पर्याय को, गुण अर्थात् कायम रहनेवाला सत्त्व और पर्याय अर्थात् वर्तमान प्रगटरूप दशा, वह पदार्थ अपने गुण और पर्यायरूपी धर्म को स्पर्शता है, छूता है, चूमता है। ऐसे रजकण भी अपने में रहे हुए अनन्त गुण और उनकी वर्तमान अवस्था को वे रजकण चूमते हैं, स्पर्शते हैं। है?

तथापि... ऐसा शब्द प्रयोग किया है। क्यों प्रयोग किया है, यह समझ में आया? प्रत्येक पदार्थ अपने गुणधर्म को स्पर्शता है। तो स्पर्शना तो है न उसमें? हमारे यहाँ एक कहलाता है कि एक गाय का ग्वाल और पाँच गाय का भी ग्वाल, ऐसा काठियावाड़ में

कहा जाता है। ग्वाल समझते हो ? तुम्हारे मुम्बई में कहाँ था। वह ग्वाला गाय को चराने ले जाता है न ? ग्वाला। ग्वाला गाय को चराने जाये। एक गाय को चरावे तो साथ में पाँच को भी चरावे। उसमें तुझे काम तो इकट्ठा है न ? ऐसे एक को चराते हुए पाँच को चराना। ऐसी हमारे काठियावाड़ में कहावत है। ग्वाला एक गाय को चरावे तो इकट्ठी पाँच को चरावे। इसी प्रकार द्रव्य-प्रत्येक वस्तु अपने अनन्त गुण और पर्याय-अवस्था, गुण कायम रहनेवाले और पर्याय वर्तमान दशा-हालत, उसे चूमता है तो परद्रव्य को भी साथ में चूमे तो क्या बाधा है ? परद्रव्य को स्पर्शे, अड़े, छूवे तो क्या दिक्कत है ? नहीं। अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहे हुए अपने अनन्त धर्मों के चक्र अर्थात् समूह को स्पर्श करता है।

तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते,... यह महासिद्धान्त। एक आत्मा दूसरे आत्मा को स्पर्शता नहीं। तीन काल में। एक आत्मा, यह रजकण-शरीर को स्पर्शा नहीं। नवनीतभाई!

मुमुक्षु : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों काल, कहा न पहले। समझ में आया ? लो, यह दो चीज़ें हैं न ? इसमें यह रही हुई है, इसमें यह रही हुई है। यह इसमें नहीं, यह इसमें नहीं। और एक-दूसरे को स्पर्शती नहीं। अड़े-स्पर्शे तो दो का एक भाव हो जाता है। अड़े-स्पर्शे तो दो की एकता हो जाती है। दो की एकता नहीं, इसलिए दो इकट्ठे होकर दो छूते नहीं। छुए नहीं, हों! यह। अडना समझते हो न ? मिला अथवा छुआ हुआ। चूमता है शब्द पड़ा है न ? चूमता है। समझ में आया ? छूता नहीं है, हिन्दी भाषा में छूता नहीं। क्या कहते हैं ?

यह रजकण है—एक पॉईन्ट दूसरे रजकण को छूता नहीं, चूमता नहीं। क्योंकि परस्पर एक-दूसरे में अभाव है। एक रजकण और दूसरे रजकण में परस्पर एक-दूसरे में अभाव है। एक रजकण में दूसरे का अभाव और दूसरे में इसका अभाव है। एक-दूसरे में अभाव के कारण, अभाव के कारण स्पर्श का ऐसा भाग एक-दूसरे में होता नहीं। भारी सूक्ष्म। यह लाईन-पंक्ति ही सूक्ष्म है। स्वरूपचन्दभाई! महा सूक्ष्म है।

जैनदर्शन की वस्तु जगत के तत्त्वों का मर्म। जो अनन्त वस्तु है, वह अनन्त, अनन्तरूप से रहकर पर में अभावरूप से होकर अपने भावरूप से रहकर सब टिक रही है। समझ में आया? कहो, रतिभाई! तुम्हारे यह तो कोई वहाँ पढ़ावे ही नहीं। दोनों जनें पढ़ाते होंगे वहाँ? नहीं पढ़ाते? आहाहा!

भगवान! एक बार सुन न, प्रभु! जिसे वस्तु कहते हैं, पदार्थ कहते हैं, वह पदार्थ अपने द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड, भाव अर्थात् शक्ति और पर्याय अर्थात् काल। बस, यह गुण-पर्याय के काल के पिण्ड में स्वयं अपने को स्पर्शता और छूता है। दूसरे द्रव्य को, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को तीन काल में अड़ता नहीं, छूता नहीं-स्पर्शता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, अपने में रहा हुआ। भगवान आत्मा में रहे हुए अनन्त गुण और उनकी वर्तमान दशा, उसे आत्मा स्पर्शता है—चूमता है—आलिंगन करता है। समझ में आया? परन्तु वह आत्मा परपदार्थ की किसी भी पर्याय को स्पर्शता नहीं—छूता नहीं—आलिंगन नहीं करता। क्योंकि वह परपदार्थ से अभावस्वभावरूप से त्रिकाल टिक रहा है। समझ में आया?

मुमुक्षु : एक रजकण दूसरे रजकण को....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, एक रजकण दूसरे को स्पर्शता नहीं।

मुमुक्षु : उसमें?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें। अभी तो दृष्टान्त देना बाकी है न! यह बिच्छू यहाँ जो काटता है, कहते हैं, उस बिच्छू का डंक शरीर को स्पर्शा नहीं।

मुमुक्षु : बिच्छू ने....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहीं घुसा नहीं, कुछ हुआ नहीं। क्या हुआ है? यह क्या कहते हैं भगवान? बिच्छू के डंक के अनन्त रजकण हैं। बिच्छू जीव अन्दर है अलग। जो पीछे ऐसे होता है न? वह अनन्त रजकण का स्कन्ध-पिण्ड है, वह जहर। उस एक-एक स्कन्ध में... स्कन्ध अर्थात् पिण्ड, बहुत रजकणों का दल, उसमें एक-एक

रजकण-पॉईन्ट दूसरे रजकण को स्पर्शा नहीं। क्योंकि दोनों परस्पर... देखो! 'परस्पर एकदूसरे को स्पर्श नहीं करते।' परस्पर। क्योंकि एक-दूसरे में परस्पर अभावरूप है। एक रजकण में दूसरे रजकण का अभाव, दूसरे रजकण में इस रजकण का अभाव। उस अभाव बिना अपने गुण-पर्याय का भाव और पर का अभाव, इसके बिना वस्तु किसी प्रकार से हो नहीं सकती। हो नहीं सकती। समझ में आया?

अब यहाँ बिच्छू। बिच्छू कहते हैं न? अरे.. अरे! गजब भगवान! भाई! सुन तो सही, बापू! तुझे भ्रम होता है, हों! यह बिच्छू के रजकण का पिण्ड जो है, वह उसके गुण-पर्याय को स्पर्शता है। उसके स्कन्ध के पिण्ड के गुण-पर्याय को स्पर्शता है। इसके गुण-पर्याय को वह बिच्छू का डंक कभी स्पर्शता ही नहीं। अरे! भारी भ्रम जगत को! नवनीतभाई!

मुमुक्षु : गले उतरना कठिन।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उतराना पड़ेगा, यदि इसे सत् चाहिए हो तो। प्यास लगी हो तो पानी गले उतारना पड़ेगा। फिर केंसर हुआ हो और दुःखे तो भी उतारना पड़ेगा, क्या करे? गले का केंसर होता है न? भाईसाहब! मुझे दुःख होता है। परन्तु प्यास लगी है या नहीं? प्यास तो ऐसी लगी है परन्तु वहाँ पानी छुए तो ऐसे चिल्लाहट मचाये। डॉक्टर-बॉक्टर क्या हाल डालते होंगे वहाँ? उसे प्यास लगी हो तो भाईसाहब! भले थोड़ी भी अन्दर की पीड़ा इतनी लगती है, उसकी अपेक्षा यह थोड़ी पीड़ा होगी। उतारने पर ही छुटकारा। इसी प्रकार भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहे हुए पदार्थों का स्वभाव (स्वीकार करने पर ही छुटकारा है)। परन्तु ऐसा न हो तो दूसरे प्रकार से वस्तु स्वभाव नहीं हो सकता। एक बिच्छू यहाँ छुआ नहीं और इस शरीर के रजकण कर्म को छुए नहीं। और कर्म के रजकण इसको छुए नहीं। और इसमें जो फोड़ा पड़े कुछ हो, वह जीव को स्पर्शा नहीं। जीवद्रव्य भिन्न, वह द्रव्य भिन्न। ...भाई! ऐसा क्या? तुम्हारी भाषा होगी न कुछ? यह तो बापू! यह वस्तु ऐसी है। सर्वज्ञ ने कही है, इसलिए ऐसी है— ऐसा नहीं। भगवान ने तो देखी है, जानी है, कही है, परन्तु जैसी है, वैसी कही है। जैसी है, वैसी जानी है; जानी है, वैसी वाणी में आयी है; आयी है, वैसी वस्तु है। समझ में आया?

कहते हैं, यह रजकण-शरीर का रजकण है, यह शीत का बुखार आवे, गर्म का बुखार शरीर में आवे। ताव अर्थात् (बुखार)? यह पुद्गल के स्पर्शगुण की एक विकारी पर्याय। यहाँ शरीर है न? एक परमाणु की पर्याय पूरी भिन्न। वह स्पर्श स्वभाव। वह पुद्गल परमाणु का पिण्ड है, उसमें गर्म दशा हो, वह उसके स्पर्शगुण की गर्म अवस्था—उष्ण अवस्था, वह आत्मा को कैसे स्पर्शे? वह रूपी, आत्मा अरूपी। यह तो एक रजकण की स्पर्शपर्याय दूसरे रजकण की स्पर्शपर्याय रूपी, रूपी को स्पर्शती नहीं। स्पर्शे तो दो भाव एक हो जाते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह जगत की पदार्थ व्यवस्था जैन में जन्मे, उसने भी सुनी न हो। अब उसे कब बैठे? और फिर करते हैं सामायिक और प्रौषध। किसके? मिथ्यादृष्टि के? नवनीतभाई! अभी दो द्रव्य पृथक् कैसे हैं, उसकी खबर नहीं और पृथक् करके स्वलक्ष्य से अन्दर जाना और परिणमना, इसके बिना उसे धर्म कभी तीन काल में होता नहीं। समझ में आया?

अब यहाँ एक कर्म है कर्म जड़, वह जड़कर्म सत्ता में रजकण पड़े हैं, वह उदयरूप से आवे, उदयरूप से। पाक-विपाक जिसे कहते हैं, वह कर्म के रजकण की रूपी अवस्था है। वह रूपी अवस्था जीव को अड़ती नहीं—स्पर्शती नहीं तथा उसकी पर्याय को यह जीव स्पर्शता और छूता नहीं। ओहोहो! समझ में आया? अन्तर्मग्न अपने धर्म में रहा हुआ तत्त्व, तथापि वह दूसरे तत्त्व को परस्पर स्पर्शता नहीं, परस्पर एक-दूसरे के अभाव के कारण स्पर्शना, वह भावरूप हो जाता है, इसलिए वह स्पर्शता नहीं। अस्तित्व एक नहीं, इसलिए स्पर्शता ही नहीं, भिन्न-भिन्न रहता है। निमित्त कहना अलग है और उसका कार्य उससे होता है, यह कहना अलग है। स्पर्शता नहीं अर्थात् किसी के कारण से किसी का कार्य नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

देखो! यह स्कन्ध है, यह रजकण। यह पिण्ड। उसमें से एक रजकण है, यहाँ से पृथक् पड़ता है। एक समय। पृथक् पड़कर वहाँ प्रदेश में रहे तो वह स्वतन्त्र और वह प्रदेश वहाँ रहकर एक समय में ऐसे ऊँचा चला जाये, वह स्वतन्त्र। किसी को स्पर्शे बिना, किसी को छुए बिना। उसके अपने गुण-पर्याय के धर्म में वह रजकण रहा हुआ है। ऐसे वह सूक्ष्म एक रजकण पृथक् हो और यहाँ स्कन्ध के साथ आया। आया तो वह

रजकण इसे स्पर्शता नहीं, तथापि वह रजकण अपनी सूक्ष्म पर्यायरूप से पहले था, यहाँ आया तो अपनी स्थूल पर्याय हुई। वह स्थूल पर्याय अपने गुण-पर्याय को स्पर्शती है। वह पर्याय उसके स्कन्ध को स्पर्शती नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई!

कहते हैं, इसी प्रकार यह दया। लो, लोग ऐसा कहते हैं कि हमने पर की दया पालन की। अर्थात् क्या? इसकी व्याख्या करो। दया एक शब्द, इसकी व्याख्या करो। यह जीव है, उसे मरने से हम बचा देते हैं। अर्थात् क्या? बचाना अर्थात् क्या? उसकी जो अवस्था का आयुष्य है, तत्प्रमाण जीव वहाँ अपनी योग्यता से रहा हुआ है। आयुष्य अपनी पर्याय के कारण से आयुष्य कर्म रहा है। आयुष्य कर्म नहीं जीव को स्पर्शा, जीव की पर्याय नहीं आयुष्य को स्पर्शी। और उन दोनों को स्पर्शी नहीं तो दूसरा कहे कि उसे स्पर्शकर उसे जिला दूँ! स्पर्श सकता नहीं, पर को स्पर्श सकता नहीं तो जिलायेगा कहाँ से? समझ में आया? स्वरूपचन्दभाई! यह वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

मुमुक्षु : स्वरूप नाम है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, भाई का नाम लिया न! वस्तु का स्वरूप ऐसा है। स्व-रूप। उसका स्व-रूप, अपना, स्व अर्थात् अपना रूप। रजकण का अपना रूप ऐसा है कि दूसरे रजकण को स्पर्शता नहीं, दूसरे रजकण का स्वरूप ऐसा है कि इस रजकण को स्पर्शता नहीं। आत्मा का स्वरूप ऐसा है कि कर्म के उदय की पर्याय को स्पर्शता-अड़ता-छूता नहीं। गजब बात!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आत्मा की पर्याय की तो बात चलती है। उसकी पर्याय-अवस्था जो है, वह होकर पूरा आत्मा है। गुण-पर्याय से परिणमता द्रव्य समय कहा न। उसके गुण-पर्याय से परिणमता समय कहा। अब वह पर्याय है, वह दूसरे के गुण-पर्याय से परिणमता वह है। इसके गुण-पर्याय से परिणमता यह है। एक-दूसरे में अभाव है, एक-दूसरे को स्पर्शते नहीं। समझ में आया? अरे! यह सब होशियार काम करे न? सब थोथा उड़ाते हैं यहाँ। धूल भी करते नहीं। उसकी पर्याय को स्पर्शे, पर को क्या है? कहो, बलवन्तभाई! यह सन्धिवात की दवा और क्षय की दवा को आत्मा नहीं

करता, ऐसा कहते हैं। क्योंकि जगत के परमाणु हैं। वे परमाणु-रजकण हैं। उनकी वर्तमान अवस्था को वे स्पर्शकर खड़े होते हैं। दूसरे को स्पर्शकर या दूसरे को छूते हैं, (ऐसा) उनमें स्वभाव है नहीं। गजब बात, भाई!

यह बुखार आया न बुखार। ली कुनैन। कुनैन कहते हैं न? यह कुनैन के रजकणों की पर्याय यहाँ शरीर को स्पर्शती नहीं। समझ में आया? यह तो कहा था, भाई! पहली ऐसी बात है (कि) जैन में रहे हुए ने जिन्दगी में सुनी नहीं। आहाहा! एक-दूसरे तादात्म्य नहीं, इसका अर्थ कि पृथक् है। पृथक् है, इसलिए दूसरे को स्पर्शते नहीं। स्पर्शे तो छुए, छुए तब तो दोनों का एक भाव हो जाता है। एक-दूसरे में अभाव है, वहाँ छूना-स्पर्शना कहाँ से आया? ऐसे चूमते हैं, ऐसा शब्द पड़ा है। है न टीका में? देखो! '**अनन्तस्वधर्मचक्रचुम्बिनोऽपि**' '**पि**' लिया है। प्रत्येक पदार्थ अपने अनन्त गुण और पर्याय को चुम्बन करता हुआ, स्पर्शता हुआ भी '**परस्परमचुम्बन्तोऽत्यन्त-प्रत्यासत्तावपि**' यह फिर दूसरा शब्द है। '**परस्परमचुम्बन्तो**' एक-दूसरे, एक-दूसरे को स्पर्शते नहीं। बापू! यह बात इसे (बैठना कठिन पड़े)।

अभी तो भिन्न की खबर नहीं, उसे यह भिन्न है, यह कैसे बैठे? अनन्त वस्तुएँ हैं न? वे एक समय में अनन्त, अनन्त रहकर पलटती है या अनन्त में कोई इकट्ठे होकर पलटती है? यदि इकट्ठे हों तो अनन्त अनन्तरूप से रहे नहीं। गड़बड़ हो गयी। नवनीतभाई! जितने संख्या में द्रव्य है, उतने त्रिकाल रहनेवाले हैं। भले संसारी होकर सिद्ध हो, परन्तु द्रव्य की संख्या कुछ घटती-बढ़ती है? जितने अनन्त आत्मायें, अनन्त रजकण, असंख्य कालाणु, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, वे अनन्त-अनन्तरूप से पृथक्-पृथक् अनन्तरूप से रहे और अनन्त-अनन्तरूप से रहकर पररूप से न रहे तो अनन्तपना टिका, ऐसा कहा जाये। तो अनन्त काल से स्वयं अपने में रहे और पर को स्पर्शे बिना तो टिक रहे हैं। आहाहा! संयोगी द्रव्य का भ्रम जगत को खड़ा हुआ है। यह बिच्छू नहीं काटा होता तो यहाँ दुःख कहाँ से होता? सुन न! यह दुःख तो तेरी आनन्ददशा को चूककर और विकार उत्पन्न करता है, उसका तुझे दुःख है। शरीर का फोड़ा पड़ा और बिच्छू ने काटा, उसका आत्मा को दुःख है ही नहीं। बलवन्तभाई! वहाँ

कभी सुना नहीं होगा। मुम्बई में कहाँ से (सुना हो?) किसी दिन आवे उसमें... जाये उसमें... आहाहा! और ऐसी बात कहीं उस समय हो? आजाद मैदान में सब क्या कहते हैं? वहाँ अमुक बात चले। नवनीतभाई! वहाँ बड़े-बड़े दस-दस हजार लोग हों उसमें... क्या कहते हैं यह? वे अन्यमती हों, वे तो छक हो जाये कि यह क्या कहते हैं? सुन न! तुझे खबर नहीं।

वस्तु जिसे कहते हैं और टिकता तत्त्व कहते हैं, अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध कहते हैं, ऐसे तत्त्व एक-दूसरे को स्पर्शते नहीं तो वे टिक रहे हैं। यह अभी आगे कहेंगे। विरुद्ध... अविरुद्ध कार्य के (हेतुपने से) हमेशा विश्व का उपकार कर रहे हैं। समझ में आया? अब इसमें भगवान को स्पर्शते हैं, ऐसा नहीं होता, लो! ओहो! भगवान की मूर्ति को स्पर्शते हैं? हाथ छुआवे तो छूते हैं? हाथ की दशा को आत्मा स्पर्शता नहीं तो फिर हाथ पर को स्पर्शे, भगवान! यह वस्तु के स्वरूप में ही नहीं है। अन्तर तत्त्व यह भिन्न है, ऐसा भास नहीं, इसलिए दूसरे तत्त्व के कारण से यहाँ होता है, उसके कारण से यहाँ होता है, उसके कारण से यहाँ होता है — ऐसा अज्ञानी को भ्रम हो जाता है। वह भ्रम ही महा मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! वह पर से भिन्नता को देखने नहीं देता और मुझसे वे भिन्न-भिन्न हैं, ऐसा उसे देखने नहीं देता। समझ में आया इसमें?

रोटी तवे पर चढ़ती है, उस तवे को रोटी स्पर्शती नहीं। रोटी... रोटी। तावडी समझते हो? तवा... तवा कहते हैं न? उस तवा को हमारे (काठियावाड़ी भाषा में) तावडी कहते हैं। स्वरूपचन्दभाई! यह तो सुन लेना बराबर। किसी दिन आये हैं। तवा है, वह अनन्त रजकण का पिण्ड, पुद्गल का स्कन्ध भिन्न है और रोटी के अनन्त रजकण का पिण्ड भिन्न है। तो भगवान कहते हैं और ऐसा है। है, वैसा कहते हैं; कहते हैं, वैसा जाना है, ज्ञान में वैसा आया है। समझ में आया? यह रोटी के रजकण की पर्याय उसमें अपने गुण-पर्याय को (स्पर्शती है), आटे के गुण-पर्याय को आटा स्पर्शता है। परन्तु वह आटे की पर्याय तवा को छूती नहीं और सिंकती है। आहाहा!

अग्नि आयी तो पानी गर्म हुआ। वरना दृष्ट... दृष्ट में विरोध आता है। जुगलकिशोर, दिल्लीवाले (संवत्) २००९ के वर्ष में आये थे। अरे भगवान! सुनो तो सही, बापू!

भाई! यह पढ़े-गुनु की बात नहीं, यह तो तत्त्व की बात है। कहते हैं कि पानी में अग्नि आयी। पहले पानी शीतल-ठण्डा था। उस पानी के स्पर्श गुण की ठण्डी अवस्था। वे पानी के ठण्डे परमाणु उनके गुण-पर्याय धर्म को स्पर्शते-चूमते हैं। उनके गुण अर्थात् शक्ति, पर्याय अर्थात् अवस्था को वह पदार्थ चूमता-स्पर्शता है। परन्तु अग्नि की पर्याय को वह ठण्डा (रजकण) स्पर्शता ही नहीं। ऐसा कहते हैं और गर्म होता है, अपने स्पर्शगुण की पर्याय के कारण से गर्म होता है। अपने गुण-पर्याय धर्म धार रखे हैं, उनके कारण से वह है। अग्नि के कारण से नहीं। अग्नि उसे स्पर्शती ही नहीं। आहाहा! देखो! क्या कहा?

तथापि... अन्तर्मग्न रहे हुए प्रत्येक आत्मा और रजकण गुण और पर्याय के धर्म को धार रखा है और उसे स्पर्शते हैं। परन्तु दूसरे के गुण-पर्याय को वह स्पर्शता नहीं। कठिन बातें, भाई! वनस्पति है न? वनस्पति। वनस्पति होती है न? यह लौकी। स्वरूपचन्दभाई! यह लौकी... लौकी। भगवान कहते हैं कि छुरी उसे स्पर्शती नहीं। क्योंकि छुरी के रजकण भिन्न। छरी कहते हैं न? छुरी... छुरी। उसके रजकण के अनन्त धर्म और पर्याय उसे वे रजकण स्पर्शते हैं, परन्तु उस छुरी के रजकण का स्पर्शना सब्जी के परमाणु जो हैं, उनके गुण-पर्याय को स्पर्शकर रहे हुए, उन्हें यह स्पर्शता नहीं। आहाहा! यह वह बात! ऐसी बात होगी? भगवान कहते हैं न। होगी क्या? सुन न! आहाहा! समझ में आया? आज तो पहले कहा था, बापू! कि आज सूक्ष्म बात है। भाई कहे, हम नये विद्यार्थी (हैं)। परन्तु नये विद्यार्थियों को सीखना तो पड़ेगा या नहीं यह? पहले-पहले एकड़ा नया लगता है या नहीं?

हम पहले पढ़ने गये तब पहले सीधे सीखा था हमने, लो। एक बार कहा था। सिद्धोवर्ण समाम्नाय। उस समय धूलीशाला थी। उमराला। धूली अर्थात् यह धूल में एकड़ा (अंक) लिखावे। परन्तु अभी लिखावे उससे पहले ऐसा बुलावाया था। मुझे बराबर याद है। बोले! क्या कहा? सिद्धोवर्ण समाम्नाय। इसका अर्थ भी अपने को आता नहीं। वह तो कहे, यह सीखो, रटो। इसका अर्थ ऐसा होता है कि वर्ण की सम्पदा, अक्षरों की सम्पदा अनादि की है। उसे वर्ण के अक्षर को कोई बना नहीं सकता। ऐसा तो पहले सीखाया था, लो।

मुमुक्षु : हमारे यह रट लेने का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रटना नहीं, समझ लेने का है। ले ठीक। रटने का अर्थ अन्दर ज्ञान में रटना। रट लेना बराबर है। किसमें? अपने में या पर में? यह वाणी तो पर की है। इसमें रटना है? यह समयसार में तो पूरी दुनिया के तत्त्व जिस प्रकार से हैं, उसी प्रकार से संक्षिप्त में वर्णन कर डाले हैं। पूरे केवलज्ञान के पेट भरे हैं इसमें। ऐसे किसी चौघड़िया में समयसार लिखा गया है। कुन्दकुन्दाचार्य के मुख में से वाणी आयी। वाणी का परिणमन उस समय, वह विकल्प, वह ज्ञान का उघाड़। ऐसा आया है कि चौदह ब्रह्माण्ड का, चौदह पूर्व का, बारह अंग का सार इस एक-एक गाथा में है। समझ में आया? यह एक लाईन समझे, यह एक लाईन।

प्रत्येक आत्मा और परमाणु अपने में रहे हुए गुण-पर्याय, गुण अर्थात् कायम रहनेवाली शक्ति और पर्याय अर्थात् प्रगट दशा, उसे स्पर्शते हैं। तथापि वे परस्पर— पारस्परिक छूते-स्पर्शते-चूमते नहीं। आहाहा! यहाँ तो भेदज्ञान कराया है। भाई! भेदज्ञान अर्थात् बात नहीं। यह तो अभिमान (करे)। दूसरे को करता देखे तो यह इसने किया, ऐसा माने। अपने को करता देखे तो मैंने किया। दूसरा करे तो ऐसा देखे। परन्तु वह करता ही नहीं। वह तो सब सबकी पर्याय को स्पर्शकर करते हैं। पर्याय को। समझ में आया?

मुमुक्षु : कोई किसी का करेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कौन करता है? धूल में भी करता है? अज्ञानी अनादि का अभिमान करता है। हमने उपदेश दिया, हमने पुस्तकें रची। धूल भी रचता नहीं। कौन रचे? उपदेश की वाणी, वाणी के रजकणों की अवस्था है। आत्मा कहीं इसे स्पर्शता है? आत्मा का विकल्प हुआ, वह विकल्प उसे-वाणी को स्पर्शता है तो वाणी निकलती है? बिल्कुल नहीं। स्वरूपचन्दभाई! कितने वर्ष हुए, देखो! कितने पुराने जैन व्यक्ति हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त से वहाँ कौन था, उसका ज्ञान करावे, यह

व्याख्या है। बनाया, वह रजकण की पर्याय से बना है। उस समय कौन था, बस इतना। उस समय कौन था? बनने के काल में निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराते हैं। उससे बना है, तब तो वह निमित्त नहीं रहा। यह रचने की क्रिया उसने की, ऐसा हो गया। निमित्त नहीं रहा। निमित्त की व्याख्या ही ऐसी है। पदार्थ के स्वकाल से होती कार्य दशा में दूसरी चीज़ संयोगी अनुकूल हो, उसे निमित्त कहा जाता है। उससे बना नहीं। बने तो दोनों एक हो गये। निमित्त वाणी को स्पर्शा नहीं। सुन न, भाई! आहाहा! दूसरे को ऐसा लगे मूसल गले उतारने जैसा लगे। मूसल होता है न बड़ा। यह तो मौसम्बी का पानी उतारने जैसा है, भाई! आहाहा! सुना नहीं होगा ऐसा जिन्दगी में। ५३-५४ वर्ष में। ऐई! बलवन्तभाई! आहाहा!

वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव की वाणी में ऐसा आया। वाणी में स्व-पर वार्ता कहने की सामर्थ्य से वाणी में आया, उस वाणी को केवलज्ञानी आत्मा स्पर्शा नहीं। उस वाणी की पर्याय को केवलज्ञान स्पर्शा नहीं, यह उसे स्पर्शा नहीं। वाणी ऐसी निकलती है। केवलज्ञान अनुसारी, सर्वज्ञ अनुसारी वाणी। अरे.. अरे..! गजब धर्म, भाई! समझ में आया? यह वाणी के परमाणु अपने एक-एक परमाणु के धर्म को धारे हुए (उसके कारण से परिणमते हैं)। वस्तु हो, उसके गुण हों या नहीं? गुण कहो या शक्ति कहो। उसकी कोई हालत होती है न? वर्तमान दशा बिना का कोई द्रव्य रहे? पज्जय विहुणं द्रव्यं? पर्याय बिना का द्रव्य नहीं। द्रव्य बिना की पर्याय नहीं। पूरी हो गयी (बात)। यह वस्तु अपनी वर्तमान अवस्था को, गुण को छूकर-स्पर्शकर रही हुई है। दूसरे के गुण-पर्याय को छूती नहीं, इसका अर्थ ही दूसरे से कार्य होता नहीं। एक द्रव्य से दूसरे की पर्याय का कार्य तीन काल-तीन लोक में होता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? यह मकान-बकान तो होशियार करते होंगे, तब होते होंगे या नहीं? तो इंजीनियर को किसलिए लाये मुम्बई से? अरे.. अरे..! भारी भ्रम, भाई! बापू! पुद्गल पुद्गल है न? पूरण और गलन ऐसा उसका स्वभाव है। परमाणु का पुद्गल स्वभाव। एक वर्ण से अनन्त गुणा हो जाये, अनन्तगुण से एक रंग हो जाये। एक रजकण में, हों! अपने कारण से। एक समय में अनन्तगुणा काला हो तो दूसरे समय में अनन्तगुणा सफेद

हो जाये। परमाणु स्वयं स्वतः कारण। क्योंकि गुण और पर्याय को स्पर्शता परमाणु अपने परिणमन को करता है। एक पॉईन्ट-रजकण है, उसमें एक समय पहले अनन्तगुणी काली पर्याय हो। दूसरे समय में अनन्तगुणी सफेद हो जाये। कारण कौन? समझ में आया? कारण कौन? काल है। काल तो सबको निमित्त है। द्रव्य-गुण। तो द्रव्य-गुण तो सभी के द्रव्य-गुण हैं। समझ में आय? पूर्व की पर्याय। पूर्व पर्याय तो सबको समान हैं। बापू! यह वस्तु ही अपने गुण-पर्याय को स्पर्शती पर्याय खड़ी होती है। पूर्व पर्याय को स्पर्शती नहीं। और वापस, भाई!

वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त धर्म रहे हुए हैं और वह पर्याय धर्म। वह स्वयं अपने गुण-पर्याय को स्पर्शकर खड़ी होती है। पूर्व की पर्याय को (स्पर्शकर) नहीं, उसके कारण से नहीं, बाद की के कारण से नहीं, निमित्त के कारण से नहीं, पर के कारण से नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह तो वर्तमान... वर्तमान... वर्तमान त्रिकाल सिद्ध करना है न। किसी भी समय में रहा हुआ पदार्थ अपने अनन्त गुण और पर्याय को टिकाता हुआ, टिकता हुआ अपने गुण-पर्याय को स्पर्शता है। वर्तमान। पूर्व पर्याय तो गयी। भविष्य की पर्याय आयी नहीं। वर्तमान अपने जितने गुण हैं, उनकी पर्याय को स्पर्शकर वह रहता है। परन्तु दूसरे के साथ स्पर्शता नहीं। यह वह कुछ (बात)! लो, तब तुम्हारे ऐसा होता हो तो खाना छोड़ दो एक महीने, ऐसा कहते हैं। तुम क्रमबद्ध मानते हो तो एक महीना खाये बिना रहो। भगवान! भाई! तू क्या कहता है? भाई! खाने-न खाने की क्रिया, भाई! वह तो जड़ की पर्याय है। उसे आत्मा नहीं कर सकता और उसे रोक नहीं सकता। आहाहा! भाई! रजकण का पिण्ड है, उसका परिणमन होकर यहाँ आना हो, वह अपने धर्म से आता है। आत्मा की इच्छा से नहीं। और न आने के हों, वे इच्छा करे और आवे, ऐसा है नहीं। बात ऐसी है, भाई!

कहते हैं कि जीव ने राग किया... एक-एक दृष्टान्त कठिन पड़े ऐसे हैं। वस्तु की, वस्तु की स्थिति की खबर नहीं होती। वस्तु उसे कहते हैं कि जिसमें अनन्त गुण-पर्याय बसे हों। वास्तु उसे कहते हैं कि जहाँ मकान लिया जाये। वास्तु उसे कहते हैं या आकाश में अध्धर वास्तु हो, ऐसा होगा? इसी प्रकार वस्तु उसे कहते हैं जिसमें गुण

और पर्याय बसे हुए हों। और बसे हुए को वह द्रव्य स्पर्शता है। दूसरे गुण और पर्याय में बसा हुआ दूसरा तत्त्व, यह उसे स्पर्शता नहीं और छूता नहीं। समझ में आया? निमित्त कहना वह अलग चीज़ है और एक-दूसरे को स्पर्शना वह अलग चीज़ है। आहाहा! वह तो जैसे धर्मास्ति को, गति करते हुए (जीव पुद्गलों के लिये) निमित्त कहा जाता है परन्तु धर्मास्ति की पर्याय गति करनेवालों की पर्याय को स्पर्शती नहीं। आहाहा! '**परस्परमचुम्बन्तो**'। '**परस्परमचुम्बन्तो**'। जड़ (पुद्गल) और चैतन्य ऐसे गति करें। धर्मास्ति पूरे लोक में पड़ा है। भगवान ने देखा हुआ एक तत्त्व है, हो! वह निमित्तरूप से कहलाता है। परन्तु यह पर्याय गति करे, उसे वह पर्याय परस्पर में स्पर्शती है, ऐसा है नहीं। तब वह निमित्त कहलाता है। आहाहा!

ऐसी वस्तु की स्थिति है, ऐसा जो निर्णय करे, उसे पर के ऊपर से लक्ष्य उड़ जाता है। पर से उड़कर स्व के ऊपर लक्ष्य आता है। और स्व के ऊपर लक्ष्य आने से उसे शान्ति, श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति का परिणमन होता है। उसे धर्म कहा जाता है, उसे स्वसमय कहा जाता है। विशेष बात है, लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण १०, गुरुवार, दिनांक - ११-०८-१९६६
गाथा - ३, प्रवचन - १३

समयसार, जीव-अजीव अधिकार चलता है। उसकी तीसरी गाथा। क्या कहते हैं? देखो!

एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुन्दरो लोए।
बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि॥३॥

यहाँ तक आया है, देखो! वे समस्त पदार्थ। यहाँ तक आया है न? पंक्ति। पहले क्या कहा? देखो! सर्व पदार्थ—जगत में छह पदार्थ हैं। जाति अपेक्षा से छह हैं और संख्या अपेक्षा से अनन्त पदार्थ हैं। अनन्त आत्मा, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश। जाति अपेक्षा से (छह), संख्या से अनन्त। '**वे सभी (पदार्थ) निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं...** निज पदार्थ अपने स्वभाव से पर के सम्बन्ध बिना परिणमन हो, उसमें उसकी सुन्दरता और शोभा है। समझ में आया?

पहले समय का अर्थ किया। **एकीभाव से (एकत्वपूर्वक) अपने गुण-पर्यायों को प्राप्त होकर जो परिणमन करता है सो समय है।** दूसरी लाईन। इसकी दूसरी पंक्ति। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्याय में प्राप्त होता है। प्राप्त होता है, ऐसा कहो या परिणमन करता है, ऐसा कहो, (एकार्थ है)। **धर्म-अधर्म-आकाश-काल-पुद्गल-जीवद्रव्यस्वरूप लोक में सर्वत्र जो कुछ जितने जितने पदार्थ हैं वे सभी निश्चय से (वास्तव में) एकत्वनिश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को पाते हैं,...** क्या कहते हैं? कि धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल तो स्वभाव परिणतिरूप ही अनादि से है। उनमें तो विभाव और विरुद्धता कभी भी किंचित् काल के लिये किंचित् भी नहीं होती। स्वभाव परिणति है तो सुन्दरता को प्राप्त हैं, उनके पदार्थ की अपेक्षा से।

अब जीव और पुद्गल दो रहे। जीव और पुद्गल में भी अपने स्वभाव में एकत्व

(होवे तो सुन्दरता को प्राप्त हो)। क्यों? यदि ऐसा न हो तो **अन्य प्रकार से उसमें सर्वसंकर आदि दोष आ जायेंगे।** दो द्रव्य एक हो जायें या एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में मिल जायेगा। उसमें द्रव्य की शोभा नहीं रहती। रहती नहीं, कहते हैं? रहती नहीं। (पर के साथ सम्बन्ध) छोड़कर अपने स्वभावरूप परिणमता है, उसका नाम जैनधर्म और जैनशासन कहते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि जैनशासनरूप से, जगत के पदार्थरूप से सभी पदार्थ **अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं...** सूक्ष्म है। स्वरूपचन्दभाई! यह स्वरूप की बात है। प्रत्येक पदार्थ अनन्त परमाणु हो या अनन्त जीव हो या असंख्य कालाणु हो, धर्मास्ति आदि तो एक-एक है, प्रत्येक पदार्थ अपने में अन्तर्मग्न (अर्थात्) पदार्थ में रहनेवाले गुण और पर्याय, वे पदार्थ में अन्तर्मग्नरूप धर्म हैं। समझ में आया? प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक रजकण, रजकण अर्थात् परमाणु, उसमें अन्तर्मग्न-अपने गुण और पर्याय, वे पदार्थ में अन्तर्मग्न हैं। उसमें रहे हुए **अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं...** प्रत्येक पदार्थ अपनी शक्ति अर्थात् गुण और पर्याय अर्थात् अवस्था को चूमता है, स्पर्शता है। ऐसा द्रव्य का स्वभाव अनादि का है। सोमचन्दभाई!

अनन्त जीव में एक-एक जीव और एक-एक जीव के साथ तैजस और कार्मण अनन्त रजकण हैं। वे प्रत्येक रजकण और प्रत्येक आत्मा अपने अन्तर में अनन्त गुणरूपी धर्म (धारते हैं)। धर्म क्यों लिया है? द्रव्य ने धारण किया है, इसलिए धर्म लिया है। है तो गुण। पदार्थ है वह गुण और अवस्था-पर्याय, गुण अर्थात् त्रिकाली शक्ति और पर्याय अर्थात् वर्तमान दशा, उसे पदार्थ धारण करता है। इसलिए उसे धर्म गिनने में आया है। प्रत्येक पदार्थ अपने गुण और पर्यायरूप धर्म को स्पर्शता है। अपने गुण-पर्याय को छूता है। अपने गुण-पर्याय को चूमता है। अपने गुण-पर्याय को आलिंगन करता है। अपने गुण-पर्याय को, अमारी काठियावाड़ी भाषा में (कहें तो) अड़ता है। समझ में आया?

तथापि... तथापि शब्द में बहुत वजन है। ऐसे प्रत्येक पदार्थ अपने गुण कायम

(रहनेवाले), पदार्थ-वस्तु, शक्तिवान वह पदार्थ, शक्ति, वह गुण और उसकी वर्तमान प्रगट दशा, वह पर्याय। तो वह पदार्थ अपने गुण और पर्याय को चूमता है—स्पर्शता है। ऐसा है। **तथापि जो परस्पर...** जो परस्पर एक परमाणु दूसरे परमाणु के साथ, एक परमाणु दूसरे आत्मा के साथ, एक आत्मा दूसरे परमाणु के साथ **परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते,...** एक पदार्थ दूसरे को चूमता नहीं, स्पर्श नहीं करता। एक पदार्थ कभी दूसरे पदार्थ को छूता नहीं। स्वरूपचन्दभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऊपर तो कहा कि अपने गुण और पर्याय को चूमता है। परन्तु पर को, कोई पदार्थ पर के गुण-पर्याय को परद्रव्य को तीन काल-तीन लोक में छूता ही नहीं, स्पर्शता ही नहीं। समझ में आया? कल दृष्टान्त दिया था। दृष्टान्त नहीं दिया था?

बिच्छू का डंक जो रजकण है, वह यहाँ शरीर को स्पर्शते ही नहीं। पण्डितजी! यह सिद्धान्त बहुत सूक्ष्म है। एक पदार्थ दूसरे से भिन्न है। तो भिन्न है तो दूसरे भिन्न को वह पदार्थ कभी स्पर्शता नहीं। स्पर्शे तो एक-दूसरे पदार्थ में अभावरूप भाव है। एक पदार्थ और दूसरे के बीच अभावरूप भाव है। यदि स्पर्श करे तो भावरूप भाव हो जाता है। सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

परमाणु—एक रजकण-पॉईन्ट है, वह भी अपने अनन्त वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श आदि उसमें अनन्त गुण हैं। जितने आत्मा में गुण और पर्याय की, शक्ति की संख्या है, उतनी ही संख्या एक रजकण में अनन्त गुण-पर्याय की संख्या है। कितने? मात्र आत्मा में आनन्द, ज्ञान आदि है, इतना अन्तर है। परन्तु वस्तु तो गुण की संख्या तो इतनी है। तो प्रत्येक आत्मा और प्रत्येक परमाणु अपने गुण और पर्याय को चूमते हैं, आलिंगन करते हैं, स्पर्श करते हैं, छूते हैं। परन्तु कोई पदार्थ दूसरे पदार्थ को चूमता नहीं। भाई! स्पर्शता है, यह तो हिन्दी में है। हिन्दी में स्पर्शता है, पाठ है। स्पर्श का कल निकाला था न। यह हिन्दी में शब्द है। मूल हिन्दी में भी है। अपने पण्डित जयचन्द्रजी में। यह स्पर्शता है। देखो! चूमता का अर्थ ही किया है—एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते। एक परमाणु दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! यहाँ कहाँ गुण की व्याख्या है।

यहाँ तो छूता नहीं, स्पर्शता नहीं (—ऐसा सिद्ध करना है)। समझ में आया ? बिच्छू के रजकण, एक-एक रजकण-परमाणु अपने गुण-पर्याय को चूमता है-स्पर्शता है। परन्तु एक रजकण इस रजकण को—शरीर के रजकण को छूता है—स्पर्शता है — ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... नहीं, वस्तु ऐसी है।

अनन्त पदार्थ जितनी संख्या में हैं, वे अनन्तरूप से रहकर अपने गुण-पर्याय को प्राप्त करते हैं। अनन्तरूप से रहकर। अनन्त में एक भी द्रव्य कम होता है या बढ़ता है, ऐसा कभी नहीं होता। तो अनन्त परमाणु और अनन्त आत्मायें अपने-अपने गुण अर्थात् शक्ति अर्थात् स्वभाव और अपनी वर्तमान प्रगट अवस्था को पदार्थ चूमता है—स्पर्श करता है—छूता है। परन्तु एक पदार्थ आत्मा को कर्म के उदय की पर्याय स्पर्श करती है, ऐसा तीन काल में नहीं है। पण्डितजी! समझ में आया ? थोड़ी-थोड़ी हिन्दी आती है, हों! हमको बहुत हिन्दी नहीं आती। ....

भगवान! भगवान कहते हैं। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव परमात्मा को एक समय में तीन काल-तीन लोक अपनी पर्याय-दशा को देखते हुए सब दिख गये हैं। समझ में आया ? अपनी एक समय की ज्ञान की प्रगट पर्याय को भगवान का ज्ञान अपनी पर्याय को देखने पर, उनकी पर्याय में जैसे लोकालोक हैं, वैसे अपने ज्ञान में स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से अपनी पर्याय स्व-परप्रकाशकरूप से परिणमी है, उसे देखते हैं, उसमें लोकालोक आ गया। समझ में आया ? ऐसे भगवान के ज्ञान में जैसा आया, वैसा वाणी में आया। इच्छा बिना। वाणी को भी आत्मा स्पर्शता नहीं। वाणी निकलती है, वाणी, तो वाणी का प्रत्येक परमाणु अपने गुण-पर्याय को स्पर्शता है। यदि एक परमाणु दूसरे परमाणु के गुण-पर्याय को स्पर्शता नहीं तो भगवान का ज्ञान और योग का कम्पन परमाणु की पर्याय को छूते ही नहीं, स्पर्शते ही नहीं, कठिन बात, भाई! स्वरूपचन्दभाई! जैन में रहे हो कितने वर्ष। सत्तर-सत्तर, साठ-पैंसठ (वर्ष)। यह वह क्या बात है ?

भाई! ... शास्त्र में आता है न ? पण्डितजी! '...' आता है या नहीं ? इसका अर्थ दूसरा है। शब्द नजदीक संयोग में आता है, तब ख्याल आता है। ... परन्तु '...' का अर्थ

कुछ शरीर को शब्द स्पर्श करते हैं या आत्मा को शब्द स्पर्श करते हैं, ऐसी बात ही नहीं है। समझ में आया? अरे! गजब बात, भाई! इस एक सिद्धान्त में सर्व पदार्थ की भिन्नता का भेदज्ञान कराया है। है ऐसा।

एक कर्म का उदय है, कर्म का उदय, वह अनन्त परमाणु की पाकरूप अवस्था है। तो उसमें एक परमाणु की पर्याय भी दूसरे परमाणु को स्पर्श नहीं करती। तो आत्मा राग करता है तो राग को छूता है, परन्तु राग को उदय की पर्याय छूती है और राग कर्म के उदय की पर्याय को स्पर्श करता है, ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया? स्वरूपचन्दभाई! कर्म विकार करावे, कर्म विकार करावे कहाँ गया इसमें? सुन तो सही, प्रभु!

वस्तु की स्थिति ऐसी है कि कर्म का उदय जो कहलाता है, वह उदय एक जड़ की पर्याय है। वह एक पर्याय नहीं, वह तो अनन्त रजकण की विभाविक संयोगी पर्याय है। वह कहीं वास्तविक पुद्गल नहीं, वास्तविक पुद्गल नहीं। वास्तविक पुद्गल तो एक परमाणु है। एक परमाणु, कर्म के अनन्त पाक में जो एक परमाणु है, उसमें भी कर्म की पर्यायरूप परिणमन है। उस परमाणु में भी, हों! अनन्त में है तो एक परमाणु में भी कर्मरूप पर्याय का परिणमन है। परन्तु वह पर्याय अपने गुण-पर्याय को स्पर्शती है। वह पर्याय आत्मा के राग को स्पर्श करती है और राग पर्याय को स्पर्श करता है, ऐसा वस्तु में तीन काल में नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अभी पदार्थ भिन्न-भिन्न किस प्रकार से काम करते हैं, इसकी खबर नहीं। पर से हटकर अपने द्रव्यस्वभाव में लक्ष्य करके शुद्धि-श्रद्धा की शुद्धि प्रगट करना, वही पहला सम्यग्दर्शन धर्म है। समझ में आया? मुझे और परपदार्थ के बीच कोई सम्बन्ध नहीं। निमित्त सम्बन्ध का अर्थ यह है कि पृथक् एक चीज़ है। परन्तु पृथक् चीज़ की पर्याय को—पृथक् द्रव्य पर्याय को स्पर्श करता है, ऐसा (नहीं है)। क्योंकि... परस्पर सिद्ध करते हैं। देखो!

सर्व पदार्थ **अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न...** अन्तर में रहे हुए — उस प्रदेश में रहे हुए। आत्मा के असंख्य प्रदेश में परमाणु का एक प्रदेश नहीं, आकाश के अनन्त प्रदेश नहीं।

रहे हुए अपने अनन्त धर्मों के... अपने अनन्त धर्म स्वभाव को। गुण-पर्याय को यहाँ धर्म कहते हैं। उसके **चक्र को (समूह को)...** समूह है। गुण एक नहीं। अनन्त गुण, अनन्त पर्याय है। उसे प्रत्येक पदार्थ **चुम्बन करता है—स्पर्श करता है तथापि...** क्या कहते हैं? ऐसा अपने को चुम्बन करता है तो पर को चुम्बन करता है? ऐसा चुम्बन करता है, **तथापि जो परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते,...** समझ में आया? समझाय छे कांई, हमारी ऐसी भाषा है। आहाहा!

देखो! यह जीभ है न? जीभ को आत्मा स्पर्श नहीं करता। यह जीभ पुद्गल स्कन्ध की पर्याय है। वह पर्याय आत्मा की पर्याय को स्पर्श नहीं करती, आत्मा की पर्याय जीभ को स्पर्श नहीं करती। समझ में आया? और खट्टा, खारा की जो पर्याय मुख में आयी... खट्टी, खारी कहलाये? यह मीठी, मीठी। खट्टी-मीठी जड़ की पर्याय है। अपना ज्ञान अपनी पर्याय में रहकर, अपने गुण-पर्याय के स्पर्श में रहकर अपनी पर्याय खट्टी-मीठी को स्पर्श किये बिना, खट्टी-मीठी को स्पर्श किये बिना उस सम्बन्धी का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने कारण से होता है। ... यहाँ तो न्याय से बात है। तीर्थंकरदेव यहाँ लॉजिक से बात करते हैं। न्यायोयम। नि धातु है। जैसी वस्तु है, उस ओर ज्ञान को ले जाना, इसका नाम न्याय कहा जाता है। पण्डितजी! नि धातु है न? नि। न्याय से बात करते हैं। भगवान ... आता है न? .... जैन धर्म सर्वार्थसिद्धि में आता है। नियत है, न्याय मार्ग है, नियत है। प्रत्येक पदार्थ न्याय से सिद्ध करते हैं। ... प्रवचनसार। विस्पष्ट तर्कणा से प्रत्येक पदार्थ सिद्ध होता है। ऐसा प्रवचनसार में ज्ञानी के ज्ञान में भगवान ने देखा, कहा, वैसा पदार्थ विस्पष्ट तर्कणा से उनके ज्ञान में सिद्ध होता है। ऐसी वस्तु की स्थिति है और ऐसी अपनी ज्ञान की (सामर्थ्य है)। जैसा है, वैसा स्पष्ट निर्णय करने की अपने ज्ञान में सामर्थ्य है। समझ में आया? सामर्थ्य है, हों! ना नहीं करना कि हम नये विद्यार्थी हैं। आहाहा!

भगवान! यहाँ तो भगवानरूप से ही आत्मा को बुलाते हैं, हों! भगवान आत्मा, ऐसा कहा है। ७२ गाथा में ऐसा कहा है, भगवान आत्मा। यहाँ तो पर से भिन्न बताते हैं, परन्तु वहाँ तो पुण्य-पाप के भाव हैं, दया, दान के विकल्प आस्रव हैं, उनसे भी आत्मा

भिन्न है। यहाँ तो परपदार्थ से भिन्न बताते हैं। फिर स्वसमय के परिणमन में... शरीर, कर्म तो अजीव है, उनसे तो भिन्न है। अब रहे पुण्य और पापभाव। वह तो आस्रवतत्त्व है। वह कहीं जीवतत्त्व नहीं। समझ में आया? सात तत्त्व में शरीर, कर्म अजीवतत्त्व है और दया, दान के विकल्प, भक्ति आदि के विकल्प हैं, वह शुभ आस्रवतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी का पाप आस्रवतत्त्व है। वह आस्रवतत्त्व है। आस्रवतत्त्व आत्मतत्त्व नहीं। वरना दो तत्त्व एक हो जाते हैं। तो अजीवतत्त्व भिन्न है... दूसरी बात, भाई!

यहाँ स्पर्शता नहीं, ऐसा कहा न? तो अजीवतत्त्व की कर्म की जो पर्याय है, वह अजीवतत्त्व है और यहाँ राग हुआ, वह आस्रवतत्त्व है। वह है तो यह है, ऐसा होवे तो दो तत्त्व एक हो जाते हैं। परन्तु ऐसा नहीं है। समझ में आया? कर्म के उदय की पर्याय है, वह अजीवतत्त्व है और यहाँ रागादि हुए, वह आस्रवतत्त्व है। तो यह अजीव है तो आस्रव है, ऐसा नहीं होता। दो तत्त्व भिन्न निरपेक्ष हैं। समझ में आया? आस्रव है तो आत्मा है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आस्रव जो पुण्य-पाप के भाव हैं, तो आत्मा है, ऐसा नहीं। मलिन परिणाम है तो आत्मा है, ऐसा है? तो सदा मलिन रहेगा। आत्मा, जिसे आत्मतत्त्व कहते हैं... मलिनता आस्रव की अपेक्षा से गिनना, हों! परन्तु ज्ञायक -स्वभाव पूर्णानन्द प्रभु अपने स्वभाव से अभिन्न है और पुण्य-पाप के भाव आस्रवतत्त्व से भिन्न है। अजीव से भिन्न पड़ गया। अजीव की पर्याय कर्म का उदय है, उसे राग स्पर्शता नहीं और राग को कर्म का उदय स्पर्शता नहीं। यह दो बात।

यहाँ तो स्वसमय में ऐसा लेना है कि राग है, वह अपनी सुन्दरता को प्राप्त नहीं। वह स्वसमय परिणमन नहीं हुआ। राग से पृथक् होकर अपने ज्ञायकस्वभाव का आश्रय लेकर जो सुन्दर शुद्ध श्रद्धा-ज्ञान की परिणति निर्विकारी पर्याय का होना, वही अपने स्वसमय के धर्म से आत्मा सुन्दर अर्थात् शोभा को प्राप्त होता है। समझ में आया? अजीव से भिन्न, आस्रव से भिन्न। अपना शुद्ध पूर्णानन्द भगवान स्वभाव से अभिन्न आत्मा है। स्वरूपचन्दभाई! यह सब समझना पड़ेगा, सत्य चाहिए हो तो। ऐसा समझे बिना एक भी कदम धर्म में चले, ऐसा नहीं। अज्ञानी अपने आप कल्पना से बैठावे।

यहाँ आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य प्रभु भगवान के पास गये थे और आठ

दिन रहे थे। यहाँ तो अभी द्रव्य को सिद्ध करते हैं कि प्रत्येक पदार्थ अपने अन्तर्मग्न धर्म को स्पर्श करता है, पर के द्रव्य को, पर्याय को स्पर्श नहीं करता। यह लक्षण भारी! यह द्रव्य की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... होता है। यह बतलाना है। स्वसमय बतलाना है न! राग है, वह पर के निमित्त के लक्ष्य से उत्पन्न हुआ है तो विसंवाद कथा है, वह विसंवाद कथा है। है वह? '**बंधकहा एयत्ते**' '**एयत्ते**' अर्थात् एकत्व—तन्मयपने में बन्ध का भाव, जड़ और राग '**एयत्ते**' के '**विसंवादिणी होदि**'। ... यह विसंवाद खड़ा करती है। यह तो यहाँ सिद्ध करना है। पहले सुन्दरता सिद्ध करना है।

आत्मा राग में रुके, स्वसमय पर के सम्बन्ध में रुके, वह सुन्दर नहीं। वह एकत्व निश्चयगत नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो महा सिद्धान्त है। यह कहीं वार्ता-कथा नहीं। महा सिद्धान्त है। एक-एक शब्द में महा अध्यात्म भरा है। उसमें कुन्दकुन्दाचार्य का कथन! साक्षात् भगवान के पास गये थे। आठ दिन वहाँ समवसरण में सीमन्धर भगवान के पास रहे थे। संवत ४९ में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य भरतक्षेत्र में दिगम्बर मुनि हो। यहाँ लब्धि थी। चारणलब्धि। और दूसरा कोई देव उनका मित्र था। आठ दिन वहाँ भगवान के समवसरण में रहे। वहाँ से आकर यह शास्त्र रचे, बने हैं। समझ में आया?

यह तो बहुत बार कहा है। पोन्नूरहिल है न? मद्रास से अस्सी मील दूर पोन्नूरहिल है। वहाँ हम दो बार गये हैं। वहाँ रहे थे। वहाँ से भगवान के पास गये थे। वहाँ के पण्डित लोग... मद्रास के पण्डित। क्या नाम? मल्लिनाथ शास्त्री उन्होंने भाषण किया था। यहाँ से गये थे, यह तो बराबर है। वहाँ आगे एक मठ है, दूसरा मठ। वहाँ भी ऐसा निकला कि यहाँ एक महामुनि विराजते थे और बड़ी लब्धि थी। पोन्नूर है वहाँ नीचे पाँच मील दूर एक गाँव है। वहाँ दो हजार वर्ष पुराना एक मन्दिर है। वहाँ भी ऐसी बात चलती है कि जब कुन्दकुन्दाचार्य नीचे उतरते थे, तब यहाँ दर्शन करते थे और आहार लेने जाते थे। हम गये हैं, सब जगह देखे। संघ लेकर गये थे। एक हजार लोग साथ में थे। दो बार गये हैं। पहले संवत् २०१५ में गये थे। वहाँ तीस-पैंतीस हजार का नया

मकान बनाया लोगों ने यादगार के लिये कि सोनगढ़वाले आये थे।

वहाँ कहते थे कि कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ से भगवान के पास गये थे। गये थे ... वहाँ भगवान के पास आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर... वहाँ आस-पास लाखों ताड़ है अभी, अभी वहाँ लाखों ताड़ है, उन ताड़पत्र में लिखा। यह गाथा यहाँ कहते हैं। अरे प्रभु! सुनो! भगवान ऐसा कहते हैं। समझे? '**वोच्छामि समयपाहुडमिणमो**' ऐसा आया न पहली गाथा में? मैं समयप्राभृत को कहूँगा। भगवान ने जैसा कहा, वैसा हम कहेंगे। तो कहते हैं, भाई! कर्म के उदय की अवस्था, भले आत्मा के विकारी परिणाम हों परन्तु विकारी परिणाम को कर्म स्पर्शते नहीं और कर्म की पर्याय को (विकारी परिणाम) स्पर्शते नहीं। इतनी स्वतन्त्रता में भिन्नत है। ऐसी स्वतन्त्रता की उसमें भिन्नता है। समझ में आया?

जीभ द्वारा ऐसे हिलाना... वह द्रव्यलिंगी का प्रश्न था न? द्रव्यलिंगी नहीं? अरस, अगन्ध। ... यह जड़ है न। उसे ऐसे हिलाता है आत्मा? आत्मा हिला सकता ही नहीं। उसके द्वारा चखता है, ऐसा आत्मा है ही नहीं। रस का ज्ञान इन्द्रिय द्वारा आत्मा कर सके, (ऐसा नहीं)। इन्द्रिय के स्वाद में आत्मा है? आ सकता है? जड़ की ऐसी अवस्था होना, क्षेत्रान्तर होना, रूपान्तर होना, क्रियान्तर होना तो अपने पर्यायधर्म में होता है। आत्मा के कारण से वह पर्याय (होती है), ऐसे-ऐसे जीभ चलती है — ऐसा तीन काल में है नहीं। समझ में आया? अरे! यह कहाँ होगा? यह कहाँ की बात होगी? अभी तो इसमें मूल तत्त्व भिन्न है, यह बात करते हैं। समझ में आया? आत्मा रस को चखे तो इन्द्रिय द्वारा चख सकता है। क्या इन्द्रिय का स्वामी आत्मा है? वह तो जड़ है, मिट्टी है, धूल है। धूल के अपने गुण-पर्याय रखते हैं, स्पर्शते हैं। क्या वह रजकण की पर्याय आत्मा को स्पर्शती है? आत्मा अपने गुण-पर्याय को स्पर्श करता है। क्या आत्मा अपनी पर्याय को छोड़कर जड़ की पर्याय को छूता है-स्पर्श करता है? बिल्कुल नहीं। समझ में आया? अरे! लोगों को यह कठिन पड़ता है न! यह होता है न, दिखता है। क्या है? क्या दिखता है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन छोड़े? छोड़े कौन? क्या हाथ में अधिकार है आत्मा का? ऐसे हाथ ऊँचा करना, वह आत्मा का अधिकार है? परमाणु में अनन्त गुण हैं, उसमें पर्याय है। उसकी क्षण-क्षण में पर्याय बिना का द्रव्य रहता है? '**पज्जय विज्जुतं दव्वं**'। पण्डितजी! (पर्याय बिना) द्रव्य रह सकता है? पाठ है न! यह तो साधारण भाषा में पूरा सिद्धान्त है। '**पज्जय विज्जुतं दव्वं, दव्वं विज्जुतं पज्जय**' द्रव्य बिना पर्याय नहीं, पर्याय बिना द्रव्य नहीं। दूसरी भाषा में कहें तो कार्य बिना द्रव्य नहीं और कारण बिना कार्य नहीं। द्रव्य बिना कार्य नहीं और कार्य बिना कारण नहीं। आहाहा! भगवान! वस्तु की स्थिति ऐसी है, प्रभु! तुझे ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा। दिखता है न हमको। क्या दिखता है? यह तो बात अभी की थी उसमें। यह नहीं वह निकाला था? श्लोक। है न? श्रीमद् ने लिखा है, हों! श्रीमद् का एक पत्र है। उस समय बहुत भ्रमणा करनेवाले उन्हें मिलते थे। हिन्दी में होगा, हों! हिन्दी में २९१ पत्र है। २९१ पत्र हिन्दी में है।

इस लोक की स्थिति ही ऐसी है... है तो गुजराती, इसका हिन्दी किया है। कोई जगदीश पण्डित हुए न? उन्होंने पूरा हिन्दी किया है। ... होगा, जैन की श्रद्धा नहीं थी। श्रीमद् में से ऐसा निकाला कि उनकी ऐसी श्रद्धा है। हमने तो सब देखा है न! सब पुस्तकें। हिन्दी, गुजराती जितनी अपनी हैं (वे सब)। स्थानकवासी, मन्दिरमार्गी सब देखा है। उनकी श्रद्धा खोटी थी। ऐसा कहते थे कि श्रीमद् राजचन्द्र ईश्वर तत्त्व को मानते थे। बिल्कुल झूठ है। यह कहते हैं, **यह लोकस्थिति ऐसी है, इसमें सत् की भावना करना परम कठिन है। समस्त रचना असत्य के आग्रह की भावना करानेवाली है।** इससे यह होता है, इससे यह होता है — ऐसा दिखता है। लोगों को असत्य आग्रह घुस जाता है। समझ में आया? **समस्त रचना असत्य के आग्रह की भावना करानेवाली है। लोकस्थिति आश्चर्यकारक है। ज्ञानी को सर्वसंगपरित्याग करने का हेतु क्या होगा?**' यह तो फिर प्रश्न किया है। ... समझ में आया? ... दूसरी जगह (आता है), देखत भूली। देखत भूली आया न? 'देखत भूली टले तो सर्व दुःख का क्षय हो।' श्रीमद् के वाक्य कितनी बार तो बहुत (गूढ).... सात वर्ष में तो जातिस्मरण (हुआ था)। सात वर्ष की उम्र में। सात वर्ष में जातिस्मरण और ३३ वर्ष में देह छूट गया। १६ वर्ष की उम्र में मोक्षमाला बनायी। मोक्षमाला १०८ पाठ। माला के १०८ मणका होते हैं न? मणका।

उन्होंने १६ वर्ष में, एक और छह। १०८ पाठ बनाये। इतना है कि कोई वृद्ध भी न कर सके। इतना अन्दर गूढ़ भर दिया है। मोक्षमाला नाम दिया है। ऐसी उनकी शक्ति थी। एकावतारी हो गये।

यहाँ कहते हैं, 'देखत भूली टले तो सर्व दुःख का क्षय हो।' देखत भूली—इस संयोग से ऐसा होता है, संयोग से ऐसा होता है, उससे ऐसा होता है। 'ऐसा स्पष्ट अनुभव होता है। ऐसा होने पर भी उसकी साफ दिखती भूल के प्रवाह में जीव बहता जाता है।' पर से होता नहीं, पर से स्वतन्त्र है। ऐसा वस्तु का स्वभाव है। परन्तु देखत में ऐसा लगता है कि इससे यह हुआ, इससे यह हुआ। स्वरूपचन्दजी! आहाहा! परकार्य तो छोड़ने से छूटे नहीं। लौकी, लौकी होती है न? दूधी को क्या कहते हैं? लौकी और छुरी। छुरी के परमाणु अपने गुण-पर्याय को स्पर्शते हैं। एक-एक परमाणु। क्या पर की पर्याय को स्पर्शते हैं? देखत भूली, यह कहते हैं। देखत भूली। वह टुकड़े के रजकण अपने गुण-पर्याय को धारकर अपने गुण-पर्याय को स्पर्शते हैं। छुरी की पर्याय को कभी स्पर्शते ही नहीं। आहाहा!

यहाँ यह कहते हैं 'देखत भूली टले तो सर्व दुःख का क्षय हो।' संयोगदृष्टि टले तो अपने स्वभाव पर दृष्टि दे तो आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं और सर्व दुःख का क्षय तीन काल में हुए बिना रहे नहीं। समझ में आया? अपने में भी संयोग से होता देखे और पर में भी उससे यह हुआ, उससे यह हुआ, तो वह तो उसकी दृष्टि दो की एकता की हुई। भिन्नता की नहीं हुई। दूसरे को भी ऐसा देखे कि बहुत अच्छा किया, बहुत अच्छा किया। तो वह दो की एकता की दृष्टि हुई। अपने में भी देखे कि पर से मुझमें होता है और मुझसे पर में होता है। ऐसी देखतभूली टले बिना उसे आत्मा के स्वभाव सन्मुख दृष्टि कभी नहीं होती। समझ में आया?

मुमुक्षु : लोकस्थिति भूल करावे ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल करावे, ऐसा यहाँ नहीं कहा। लोकस्थिति की रचना ऐसी दिखाई देती है कि अज्ञानी को ऐसा लगता है कि अरे! इससे यह हुआ, इससे यह हुआ। मिथ्याभ्रम में ऐसा दिखता है। उसकी दृष्टि में भूल है। वस्तु तो है वैसी है। समझ में आया? आहाहा!

बन्ध अधिकार में कहा न? पण्डितजी! आकाश के फूल को कोई तोड़ नहीं सकता। इसी प्रकार परद्रव्य को जीवन-मरण, सुख-दुःख कोई कर नहीं सकता। पर में पदार्थ अकिंचित्कर है। ऐसा अमृतचन्द्राचार्य का पाठ है। अमृतचन्द्राचार्य की टीका। अकिंचित्कर है। पर के जीवन-मरण, पर की दया पाल सकता है। क्या परजीव की पर्याय को आत्मा स्पर्श करता है कि पर की पर्याय की दया पाल सके? भारी गजब बात, भाई! जैनदर्शन का मर्म समझना (बहुत कठिन)। पण्डितजी! यह तो कहते हैं न पर की दया, वह धर्म है। बहुत आता है तुम्हारे। ऐ... सोनगढ़वाले दया को धर्म नहीं मानते। भगवान! सुन तो सही, प्रभु! शान्ति से समझना चाहिए। भाई! ऐसे वाद-विवाद से और दूसरे को विरोध है, ऐसा देखकर नहीं समझना चाहिए। क्या कहते हैं, यह क्या कहते हैं, उसे शान्ति से समझना चाहिए। प्रभु! तेरी भी प्रभु शक्ति है। तुझमें भी परमात्मा ही स्थित है। आहाहा! वस्तु देखो तो भगवान है।

यह कहा न? 'प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता...' प्रभु को प्रार्थना की है। हे नाथ!

प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल,
निज सत्ताये शुद्ध सौने पेखता हो लाल।

हे नाथ! प्रभु! तुम दूसरे आत्मा को शुद्ध सत्तावाले आत्मा को तुम कहते हो। पुण्य-पाप का भाव तो आप मैलरूप से देखते हो। और कर्म आदि अजीवरूप से आप देखते हो। और आप मैल और कर्म से रहित जो शुद्ध आत्मा है, ऐसी शुद्ध सत्ता को आप आत्मा देखते हो। समझ में आया?

प्रभु तुम जाणग रीति, सौ जग देखता हो लाल,
निज सत्ताये शुद्ध सौने पेखता हो लाल।

हे परमात्मा! हे ज्ञानप्रभु! आप प्रत्येक आत्मा को आत्मारूप से आप तो शुद्धरूप से ही उसे देखते हो। क्योंकि पुण्य-पाप के भाव तो आप आस्रवरूप से देखते हो और अजीव कर्म के भाव को आप अजीवतत्त्वरूप से देखते हो। पण्डितजी! आहाहा! समझ में आया? भगवान ने तो ऐसा कहा है, ऐसा तू देख। भगवान ने देखा, ऐसा है—ऐसा तू

देख। दोनों का ज्ञान एक होगा तो सम्यग्दर्शन होगा। समझ में आया? देखतभूली की बात (चलती है)। देखने में बड़ी भूल है। यह मुझे हुआ, इसे मैं करता हूँ, शरीर इसे स्पर्शता है, टुकड़े होते हैं, ऐसा कहे तो कहते हैं कि निमित्त को तो मानते नहीं। भगवान! सुन तो सही, प्रभु! निमित्त कब कहलाये? कि एक-दूसरे को स्पर्शे नहीं। स्पर्श करे तो एक दूसरा उपादान (होकर) दोनों एक हो जाते हैं। निमित्त कब कहा जाता है? धर्मास्तिकाय निमित्त कब कहलाये? कि जीव और पुद्गल स्वयं अपनी गतिपर्याय का परिणमन अपने निज पर्याय के धर्म में रहकर-चूम कर करता है तो धर्मास्ति को निमित्त कहा जाता है। वह पर्याय इस पर्याय को स्पर्श नहीं करती। स्पर्श नहीं करती तो निमित्त कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? भगवान! वस्तु ऐसी है, प्रभु! तू इनकार करे कि... भगवान कहते हैं कि भाई! वह परजीव और पुद्गल दोनों वस्तु है या नहीं? तो वर्तमान में उसके गुण-पर्याय को स्पर्शते परमाणु और जीव उसके गुण-पर्याय को स्पर्शता जीव, ऐसा है या नहीं? तो उसकी वर्तमान पर्याय को तेरी पर्याय किस प्रकार से छोड़कर बाहर जाती है? समझ में आया?

भगवान ने दया तो... यह तो पुरुषार्थसिद्धि उपाय में कहा न? पण्डितजी! राग की उत्पत्ति नहीं होना, वह अहिंसा है। भगवान! पर का भाव हो, परन्तु वह राग है, वह हिंसा है। समझ में आया? भाई! यह आत्मा निर्विकल्प सहजानन्द मूर्ति है। उसमें शुभराग की उत्पत्ति होना, प्रभु! आत्मा की शान्ति को लूटता है। भाई! तुझे निर्णय करना पड़ेगा। आहाहा! तो यह कहे, पर की दया वह धर्म, वरना जैनधर्म नहीं। अरे! भगवान! जैनधर्म तो अलौकिक चीज़ है। जैनधर्म अर्थात् कि जगत की वस्तु का—आत्मा का स्वरूप है, वैसा प्रगट किया। जैनधर्म, वह कोई सम्प्रदाय नहीं, जैनधर्म कोई वाडा नहीं। वस्तु का जैसा स्वरूप है वैसा... यह १५वीं गाथा में आया न?

जो पस्सदि अप्पाणं अबद्धपुट्ठं अणण्णमविसेसं।
अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं॥१५॥

जिसने भगवान आत्मा को अबद्ध-राग से अबद्ध और गुण से अभेद, गुण के भेद भी नहीं, ऐसे अपने आत्मा को अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, अविशेष, असंयुक्त ऐसे भगवान

आत्मा को देखा, ऐसी जो श्रुतज्ञान की पर्याय, उसको भगवान कहते हैं कि उसे हम जैनशासन कहते हैं। जैनशासन कहीं बाहर में नहीं रहता। जैनशासन दशा है। समझ में आया? आहाहा! यह जैनशासन कहते हैं न? जैनशासन—**'पस्सदि जिणसासणं सव्वं'।** भगवान आत्मा, अपने कर्म से भिन्न, राग से भिन्न, गुण-गुणी के भेद से भी भिन्न। यह ज्ञान है और यह दर्शन है, चारित्र है—यह भेद है। भेद के लक्ष्य से तो विकल्प उत्पन्न होता है। समझ में आया? अपना आत्मा एक समय में अबद्धस्पृष्ट आदि देखने से जो दशा-भाव श्रुतज्ञान की राग से रहित निर्मलानन्द की पर्याय अपने गुण-पर्याय को स्पर्श करती हुई उत्पन्न हुई, उसे भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा जैनशासन कहते हैं। समझ में आया? अरे! एक-एक बात लोगों को ऐसी कठिन पड़े न! भाई! कठिन नहीं, बापू! तेरे घर की बात है। तेरे घर की बात है, प्रभु! तू ऐसी शक्ति का धारक ही है, तेरी शक्ति ही ऐसी है। समझ में आया?

यहाँ तो पर को स्पर्शता नहीं। ऐसा पर्याय में धर्म नहीं (कि पर को स्पर्श करे)। अब गुण में ऐसा धर्म नहीं। विकार करे, ऐसा कोई गुण नहीं। यह सुन्दरता बतलानी है न! पर को स्पर्श करे, ऐसा पर्याय में धर्म नहीं और पर अपने को स्पर्श करे, ऐसा पर्याय में धर्म नहीं। तो कोई किसी को स्पर्शता नहीं। अब, आत्मा में जो विकार होता है, ऐसा कोई गुण-धर्म नहीं। कोई गुण है तो विकार होता है, ऐसा (होवे तो) गुण कायम रहता है तो विकार कभी टलेगा नहीं। पर्याय में एक समय में पर का लक्ष्य करके एक समय के धर्म में विकृति खड़ी करता है। गुण में नहीं। समझ में आया? गुण यदि विकार करावे तो गुण तो कायम रहते हैं। तो विकार कायम होगा। तो कभी सम्यग्दर्शन भी प्राप्त नहीं कर सकेगा और कभी मुक्ति नहीं हो सकेगी। समझ में आया? सुन्दर बतलाना है। समझ में आया?

पहले तो अभी एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को स्पर्श नहीं करता। ... स्पर्श नहीं करता तो दुःख कैसे हुआ? दुःख क्यों हुआ? दुःख के अस्तित्व की दशा, दुःख के अस्तित्व की मौजूदगी की दशा, क्या बिच्छू के रजकण यहाँ स्पर्श करते हैं, इससे हुआ है? नहीं। तो शरीर में जहाँ परमाणु... जहर चढ़ता है न? जहर, उससे क्या आत्मा की पर्याय में

दु:ख हुआ ? नहीं। क्योंकि वह परमाणु की पर्याय भी अपने गुण-पर्याय को स्पर्श करती है, आत्मा अपने गुण-पर्याय को स्पर्श करता है। आत्मा पर का लक्ष्य करके अन्दर द्वेष उत्पन्न होता है, उसे दु:ख कहते हैं। जिसमें आनन्द है, उसमें उल्टी अवस्था होती है। क्या पर में आनन्द है ? पर में आनन्द हो तो उसके कारण से उल्टी अवस्था हो। समझ में आया ?

भगवान आत्मा आनन्द सच्चिदानन्दस्वरूप 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' पण्डितजी! यह आता है न ? बनारसीदास में।

चेतन रूप अनूप अमूरति,
सिद्ध समान सदा पद मेरो।
मोह महातम आतम अंग,

पर्याय में थोड़ा कृत्रिम किया है। '**कियौ परसंग महा तम घेरौ।**' 'कियौ परसंग'।

ग्यानकला उपजी अब मोहि,
कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग,
वेगि मिटे भाववास बसेरौ॥११

समझ में आया ? कहते हैं, भगवान आत्मा कर्म की पर्याय को स्पर्शता नहीं। शरीर की पर्याय को स्पर्शता नहीं। ओहोहो! यह बात पूरी दुनिया से (अलग)। सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग दुनिया में कहीं नहीं है। तीन काल-तीन लोक में दूसरे का सम्बन्ध करे, वेदान्त के साथ या दूसरे किसी के साथ इसकी तुलना नहीं होती। समझ में आया ?

एक-एक आत्मा अनन्त गुण प्रभु आत्मा है, ऐसे अनन्त आत्मायें हैं। ऐसे अनन्त गुणों से अनन्तगुणे परमाणु हैं। समझ में आया ? उनसे अनन्तगुणी त्रिकाल की पर्याय है और उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश हैं। अमयम, अमयम पंचास्तिकाय में है न ? आकाश अमयम है... अमयम—जिसकी मर्यादा नहीं। इतने प्रदेश ... वे सब एक समय की अपने ज्ञान को स्पर्श करते हैं। उस पर्याय में सब ज्ञात होता है। ऐसा पर्याय का धर्म है। श्रुतज्ञान की एक समय की पर्याय में सर्व द्रव्य और उसके गुण और पर्याय जानने

की सामर्थ्य एक समय की पर्याय में है। समझ में आया? जिसने एक समय में छह द्रव्य नहीं माने, उसने एक समय की पर्याय की सामर्थ्य को नहीं माना। समझ में आया? एक समय की पर्याय की सामर्थ्य को मानने पर भी द्रव्य की त्रिकाल सामर्थ्य को न माने तो अन्दर सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, यह तो महासिद्धान्त है। ओहोहो! एक रजकण दूसरे रजकण को—रूपी, रूपी को स्पर्शता नहीं। प्रभु! क्या कहते हो यह? परन्तु उसमें स्पर्शगुण है न, परमाणु में तो स्पर्शगुण है तो दूसरे को स्पर्श करे तो उसमें दिक्कत क्या है? उस स्पर्श की बात यहाँ है ही नहीं। यहाँ तो दोनों छूते नहीं—स्पर्शते नहीं। यह स्पर्श की पर्याय इस स्पर्श की पर्याय को छूती नहीं। पानी को अग्नि छूती नहीं और पानी अपनी पर्याय के धर्म से उष्ण होता है। पानी के एक-एक रजकण अपने गुण-पर्याय के धर्म को धारण करके अपने गुण-पर्याय को चूमते हैं। अग्नि की पर्याय के रजकण को वह पर्याय स्पर्श नहीं करती, कठिन बात, भाई! समझ में आया? ऐसी ही वस्तुस्थिति है, उसमें तुझे करना क्या है? स्वीकार कर या न कर।

आप्तमीमांसा में आया है न? भाई! आप्तमीमांसा में आया है। आत्मा ऐसा नित्य है और अनित्य है और एक है और अनेक है। उसमें तो विरोध दिखता है। तो कहा, ... वस्तु तो ऐसी है। ऐसा पण्डित जयचन्द्रजी ने लिखा है। आप्तमीमांसा में लिखा है। पुकार कर तो कर, वस्तु ऐसी है। तेरे तर्कों से या तेरी श्रद्धा से वस्तु बदल नहीं जायेगी।

भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव एकत्व निश्चयगत में से यह निकालते हैं। **'एयत्तणिच्छयगदो समओ सव्वत्थ सुंदरो लोगे'** इसकी टीका करते हैं। शब्दों में भाव भरे हैं, उन्हें निकालते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य यह कहना चाहते हैं। समझ में आया? आहाहा! यह अँगुली इसे—लकड़ी को छूती नहीं। ... समझ में आया? उसकी पर्याय में वह स्पर्श करती है। उसकी पर्याय में वे रजकण स्पर्श करते हैं। क्या यह रजकण की पर्याय उसे स्पर्श करती है? ... भेद है, ऐसा बताते हैं। समझ में आया? दृष्टि विरोध आता है, एक व्यक्ति ऐसा कहता था। अग्नि से पानी गर्म नहीं होता, ऐसा कहो तो दृष्टि विरोध बात है। भगवान! सुन तो सही, प्रभु! वह अपनी पर्याय को स्पर्श करता है।

विशिष्टता तो यह है कि प्रत्येक पदार्थ अपने गुण-पर्याय को स्पर्श करता है, इसका अर्थ, पूर्व की पर्याय को नहीं। वर्तमान गुण और पर्याय को चूमता है—स्पर्श करता है। तो पूर्व की पर्याय के कारण से यह है, ऐसा भी नहीं। और पर के कारण से यह है, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

प्रत्येक पदार्थ अपने में अन्तर्मग्न अनन्त धर्मों के समूह को चुम्बन करता है। वस्तु एक है, गुण-धर्म अनन्त हैं, उन्हें चूमता है—स्पर्श करता है। **तथापि जो परस्पर...** एक द्रव्य परस्पर, एक पदार्थ परस्पर **एक-दूसरे को... एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते...** लो, यह इसका अर्थ चलता है। यह है इसका अर्थ चलता है। अपनी दृष्टि से अर्थ करे और फिर कहे, इसका अर्थ बदल डालते हैं। भगवान! तू भी तैयार है न, भाई! वह भी भगवान है न, भाई! आहाहा! समझ में आया? तेरी अशुद्धता भी बड़ी और तेरी शुद्धता भी बड़ी। प्रभु! तू तो बड़ा है न, महा बड़ा! तेरी अशुद्धता भी तूने बड़ी की है, तेरी बड़ी शुद्धता की तो क्या बात करना! अनुभव प्रकाश में दीपचन्दजी ने कहा है। अनुभव प्रकाश बनाया न? दीपचन्दजी! तेरी अशुद्धता भी बड़ी, प्रभु! अनन्त तीर्थंकर आवे, तो भी तू न छोड़े। और तेरी शुद्धता भी बड़ी। अनन्त प्रतिकूल उपसर्ग आ जाये ... तेरी शुद्धता की महत्ता है। तेरे कारण से तेरी है, पर के कारण से तुझमें नहीं और तेरी महत्ता पर के कारण से बिल्कुल नहीं। कहो, समझ में आया?

परस्पर... बस, यह महा शब्द है। **परस्पर एक-दूसरे को...** यह उसको, वह इसको। परस्पर है न? 'परस्पर एक-दूसरे को...' यह उसको और वह इसको **स्पर्श नहीं करते...** इतने शब्द में इतनी पर से भिन्न... एक पंक्ति में सबका स्पष्टीकरण कर दिया। पूरे चौदह ब्रह्माण्ड के अनन्त पदार्थ। अनन्त अनन्तरूप से रहकर, अनन्त अनन्तरूप से रहकर बढ़-घट हुए बिना अपने गुण-पर्याय के धर्म को स्पर्श करते हैं और दूसरे के गुण-पर्याय को वे स्पर्शते नहीं। चौदह ब्रह्माण्ड (में) रहनेवाले इतने पदार्थ सबको एक पंक्ति में भिन्न बतला दिया। समझ में आया?

अब दूसरा बोल। उसमें तो दृष्टान्त देना हो इतने दिये जा सकते हैं। चाबी यह। चार पैसे सेर तो मण के ढाई। पण्डितजी! कूंची कहते हैं न? तुम्हारे हिन्दी में क्या

कहते हैं ? ... कहते हैं ? जैसे चार पैसे सेर तो मण के ढाई। मण के ढाई तो कितने ? ... सब आ गये। मण के ढाई, साढ़े सत्रह सेर के साढ़े सत्रह आने। साढ़े सत्ताईस सेर के साढ़े सत्ताईस आना। यह तो चाबी लागू पड़ गयी। यह तो चाबी है। समझ में आया ? सबमें लगाना।

...पड़ा है न ? लोहे की पर्याय इसे स्पर्शी ही नहीं। आहाहा! देखो! खड्डा पड़ गया न ? ... स्वरूपचन्दजी! देखतभूली। क्योंकि उसका भी स्कन्ध है। उसके गुण-पर्याय में क्षेत्रान्तर, रूपान्तर स्वयं से हुआ है। यह ऐसा है न ? तो ऐसा हुआ। तो क्षेत्रान्तर हुआ, वह भी उसकी पर्याय के कारण से हुआ। इस पर्याय के कारण से नहीं। स्पर्शे नहीं तो हो कहाँ से ? आहाहा! यह तो पागल कहे। ... एक व्यक्ति ऐसा कहे, सोनगढ़वालों को अस्पताल में भेज दो। पागल है, एक व्यक्ति ने लिखा था। ऐसी बातें करते हैं। सुन तो सही, पागल तू है। तुझे पागलपन की खबर नहीं। अस्पताल में भेज दो। किसी का कुछ करे नहीं, क्रमबद होता है (ऐसा कहते हैं)। बैठा दो एक महीने तक भोजन किये बिना। देखो माँगते हैं या नहीं ? अरे! भगवान! तू क्या कहता है ? प्रभु! भाई! तुझे खबर नहीं, प्रभु! तेरा द्रव्य और दूसरे द्रव्य, उसकी अवस्था व्यवस्थित उसके क्रम से उसके काल में—उसके स्वकाल में उसकी पर्याय और पर के काल में नहीं और पर के कारण से नहीं। ऐसा प्रत्येक पदार्थ की पर्याय का ऐसा ही धर्म है, प्रभु! तू मान या न मान, मानने से ही छुटकारा है।

इस एक लाईन में तो... ओहोहो! पर की दया पाल सके, यह निकल गया, पर की हिंसा कर सकता है ? पण्डितजी! निकल गया ? तुझे भाव होता है। ... यहाँ तो सुन्दरता बतलानी है। यहाँ तो अभी पर से पृथक् बताया। फिर जो विकार है... यह बाद में कहते हैं न ? विकार है, वह तो बन्ध कथा विसंवादिनी है। भगवान अबन्धस्वरूप पर की अपेक्षा बिना रहनेवाली चीज़ हो, उसमें बन्ध कथा असत्य उत्पन्न (होती है)। जयसेनाचार्य ने विसंवाद का अर्थ यह किया है। विसंवाद अर्थात् असत्यार्थ, ऐसा अर्थ किया है। है अवश्य, राग-द्वेष है अवश्य, परन्तु स्वभाव की दृष्टि में यह सत्य नहीं, इसलिए असत्य कहे जाते हैं। समझ में आया ?

जैसे भगवान आत्मा अपना द्रव्य है, वह अपने द्रव्य से है और परद्रव्य की

अपेक्षा से वह द्रव्य अद्रव्य है। ऐसे इस द्रव्य की अपेक्षा से दूसरे अनन्त द्रव्य अद्रव्य हैं। आहाहा! उसके द्रव्य की अपेक्षा से द्रव्य है, परन्तु इस द्रव्य की अपेक्षा से अद्रव्य है। इस क्षेत्र की अपेक्षा से अक्षेत्र, इस स्वकाल-पर्याय के स्वकाल की अपेक्षा से वह अकाल है, इस त्रिकाल भाव की अपेक्षा से अभाव है। समझ में आया?

अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से स्वयं है। परद्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं। तो इसका अर्थ यह हुआ न, प्रभु! तेरे द्रव्य से तेरा द्रव्य है, परद्रव्य से अद्रव्य है। तेरी वर्तमान दशा तेरे स्वकाल से है। परद्रव्य की पर्याय जो उसका स्वकाल है, स्वकाल है, उस स्वकाल से तेरी पर्याय का स्वकाल नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह स्वकाल, इसलिए इसे निमित्त कहा। निमित्त का स्वकाल भिन्न और इसका स्वकाल भिन्न। समझ में आया? आहाहा!

परस्पर एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते,... महासिद्धान्त तीन काल-तीन लोक का। ओहोहो! '**एयत्तणिच्छयगदो**' यहाँ से शुरु किया है। अब, दूसरा ... **अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से रहे हैं...** देखो! आकाश का क्षेत्र तो सबका एक है। जहाँ आत्मा है, वहाँ अनन्त आत्मा है। जहाँ आत्मा है, वहाँ अनन्त आत्मा है। निगोद, सूक्ष्म एकेन्द्रिय। प्रत्येक के (प्रदेश) असंख्य हैं और सूक्ष्म निगोद के अनन्त हैं। भले एक क्षेत्र में हो। अनन्त परमाणु, स्कन्ध यहाँ हैं, आत्मा है यहाँ। धर्मास्तिकाय का असंख्यवें भाग का टुकड़ा है। धर्मास्तिकाय जो असंख्य प्रदेशी है, उसके असंख्य भाग का एक टुकड़ा यहाँ (रहता है)। और अधर्मास्तिकाय का एक टुकड़ा असंख्य भाग का है। काल के असंख्य अणु यहाँ हैं। जितने असंख्य हैं, उनके असंख्यवें भाग में यहाँ असंख्य अणु हैं। पूरा असंख्य है वह बड़ा है। परन्तु यहाँ असंख्य हैं, वे बड़े असंख्यवें भाग के असंख्य हैं। और आकाश के प्रदेश का टुकड़ा भी असंख्य प्रदेश यहाँ है। वह अनन्तवें भाग में है। आकाश अनन्त है। उसके अनन्तवें भाग में असंख्य प्रदेश का यहाँ टुकड़ा है। तो जहाँ आत्मा है, वहाँ सब है। हो, उससे क्या?

अत्यन्त एकक्षेत्रावगाह। अत्यन्त निकट क्यों कहा? कि जहाँ आत्मा के प्रदेश हैं,

वहाँ ही वे हैं। परन्तु एक-दूसरे से स्पर्शित नहीं होते। समझ में आया? देखो! एक निगोद का इतना शरीर लो। एक राई जितना टुकड़ा। आलू, काई। लीलफूग समझे? काई... काई। पानी में काई होती है न? काई का एक राई जितना टुकड़ा लो तो उसमें असंख्य तो औदारिकशरीर हैं। एक शरीर में अभी तक जितने सिद्ध हुए, अनन्त पुद्गल परावर्तन से सिद्ध होते आये हैं। छह महीने और आठ समय में ६०८ (सिद्ध होते हैं)। अनन्त पुद्गल परावर्तन से छह महीने और आठ समय में ६०८ सिद्ध होते आये हैं। उन सिद्ध की संख्या से इस राई के टुकड़े में असंख्य शरीर में एक शरीर में सिद्ध की संख्या से अनन्तगुणे आत्मा हैं। स्वरूपचन्दजी! यह भगवान के अतिरिक्त कहीं नहीं है। सबने गप्प मारी है। सब आत्मा की बातें करते हैं, हमारे में आत्मा। अरे! सुन तो सही! आत्मा किसे कहते हैं? हमारे निर्विकल्प आत्मा की बात है। निर्विकल्प। अरे! परन्तु आत्मा का अस्तित्व कितना है, यह खबर है तुझे? खबर बिना निर्विकल्प कहाँ से लाया तू? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा ऐसे अनन्तगुणे आत्मा उसमें है। एक-एक आत्मा एक क्षेत्र में रहने पर भी निज स्वरूप से पतित नहीं होते। और एक-एक निगोद आत्मा के साथ दो-दो शरीर हैं। एक तैजस और एक कार्मण। औदारिक एक और तैजस और कार्मण शरीर अनन्त। ऐसे अनन्त शरीर में एक-एक रजकण साथ में रहने पर भी, रजकण एकक्षेत्रावगाह (रहने पर भी) अपने स्वरूप से पतित नहीं होते। कर्म अपने स्वरूप से पतित नहीं होते। निगोद का जीव भी अपने स्वरूप से पतित नहीं होता। निगोद का जीव भी कर्म की पर्याय को स्पर्शता नहीं। आहाहा! कितने ही ऐसा कहते हैं न, असंज्ञी प्राणी होते हैं, तब तक तो कर्म के जोर से वहाँ रहते हैं। पश्चात् क्षयोपशम हुआ इसलिए... झूठ बात है, ऐसा है ही नहीं। निगोद में भी अपना भावकलंक पहुरा है। गोम्मटसार है न? पण्डितजी! भावकलंक पहुरा। अपने प्रचुर भावकलंक के कारण से, अपनी पर्याय के कारण से वहाँ रहे हैं। परद्रव्य से रहे हैं, ऐसी बात है नहीं। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण ११, शुक्रवार, दिनांक - १२-०८-१९६६
गाथा - ३, प्रवचन - १४

समयसार। जीव-अजीव अधिकार चलता है। तीसरी गाथा। यहाँ आया है, देखो! समस्त पदार्थ। समस्त पदार्थ की व्याख्या है न यहाँ? जीव की व्याख्या तो बाद में चलेगी। इस जगत में समस्त पदार्थ, जितने जीव हैं, जितनी संख्या में परमाणु अनन्तगुणे हैं, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और एक आकाश है। वे अपने द्रव्य में अपनी वस्तु में अन्तर्मग्न रहनेवाले। अन्तर्मग्न, अभेद है न? गुण और गुणी अभेद है और अन्तर में पर्याय भी अभेद है। अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले **अपने अनन्त धर्मों के...** अपना अनन्त चेतना धर्म। धर्म शब्द से यहाँ गुण है, परन्तु धार रखे की अपेक्षा से धर्म (कहा है)। **अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं...** आत्मा निज—अपने अनन्त गुण और उनकी अनन्त पर्याय एकरूप, उसे स्पर्श करता है। परद्रव्य को कोई आत्मा या कोई रजकण कभी आलिंगन-चुम्बन-स्पर्श-अड़ते नहीं। समझ में आया? यह एक द्रव्य से बात की। द्रव्य... द्रव्य। प्रत्येक द्रव्य अपने अनन्त गुण-पर्याय को चूमता है। परद्रव्य को चूमता-स्पर्शता नहीं।

अब क्षेत्र की बात करते हैं। पाठ में है न? अत्यन्त '**अत्यन्तप्रत्यासत्तावपि**' **अत्यन्त निकट...** प्रत्येक पदार्थ अत्यन्त नजदीक है। जहाँ आत्मा है, वहाँ निगोद आदि के अनन्त आत्मा हैं, प्रत्येक के असंख्य (आत्मा हैं)। यहाँ निगोद के अनन्त हैं और एक-एक आत्मा के साथ दो-दो शरीर हैं, तैजस और कार्मण। परन्तु प्रत्येक पदार्थ एक नजदीक के क्षेत्र में रहने पर भी '**अत्यन्तप्रत्यासत्तावपि**' यह तो क्षेत्र को लागू पड़े, इसलिए यह लिया है। भाई! क्योंकि द्रव्य का स्पष्टीकरण तो हो गया। भाव का बाद में कहेंगे, भाव का बाद में कहेंगे। यह क्षेत्र से बात चलती है। समझ में आया? और '**अत्यन्तप्रत्यासत्तावपि**' तो नजदीकपना क्षेत्र का बतलाते हैं। इस कारण से। अत्यन्त निकट। शास्त्र में तो इतना ही शब्द पड़ा है। बस! '**अत्यन्तप्रत्यासत्तावपि**' उसमें से

निकालकर। दूसरे में द्रव्य को बतला दिया कि प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्याय को चूमता है। यह द्रव्य लिया। पश्चात् '**अत्यन्तप्रत्यासत्तावपि**' प्रत्येक पदार्थ एकक्षेत्रावगाही रहता है, ऐसा कहते हैं। देखो!

निकट एकक्षेत्रावगाह... एक क्षेत्र में अवगाहन व्यापकरूप से हो। भगवान यह आत्मा है, वहाँ अनन्त आत्मा है। यहाँ तो कोई दूसरे अभव्य भी हैं। आत्मा जहाँ है, वहाँ दूसरे अभव्य के आत्मा भी हैं, भव्य के आत्मा भी हैं, परमाणु भी हैं, धर्मास्तिकाय का असंख्यवाँ भाग का टुकड़ा भी है, अधर्मास्तिकाय के असंख्यवाँ भाग का टुकड़ा है, आकाश के अनन्तवें भाग का टुकड़ा है, काल असंख्य अणु हैं। एक आत्मा, अपना एक आत्मा आकाश के असंख्यवें भाग में असंख्य प्रदेश में व्यापक है। समझ में आया? यह आत्मा कहो या निगोद का आत्मा कहो, प्रत्येक की बात है न? निगोद का आत्मा भी, एक आत्मा, भले एक शरीर में अनन्त हों, परन्तु एक आत्मा आकाश के अथवा धर्मास्तिकाय के जितने लोक के प्रदेश हैं, उनसे असंख्यवें भाग में असंख्य प्रदेश में व्यापक है। समझ में आया? एक-एक आत्मा। निगोद का आत्मा भी असंख्य प्रदेशी है। तो आकाश के असंख्य प्रदेश रोके बिना कभी रहता नहीं। संख्यात प्रदेश उसे नहीं होते।

एक प्रदेश में अनन्त परमाणु का स्कन्ध रहे। परन्तु एक प्रदेश में एक जीव नहीं रहता। असंख्यात भाग में असंख्य प्रदेश तो होते ही हैं। समझ में आया? एक आत्मा असंख्य प्रदेश में (रहता है, वहाँ) उन असंख्य प्रदेश में दूसरे अनन्त रहते हैं। और ऐसे एक-एक प्रदेश में एक जीव के असंख्यवें भाग के प्रदेश, दूसरे के असंख्यवें भाग के प्रदेश, अनन्त के असंख्यातवें भाग के प्रदेश (रहते हैं)। ऐसे एक प्रदेश में अनन्त आत्मा के असंख्य प्रदेश रह सकते हैं। परन्तु एक आत्मा असंख्यात प्रदेश के अतिरिक्त संख्यात प्रदेश में नहीं रह सकता। समझ में आया? एक आकाश के प्रदेश में अनन्त आत्मा के असंख्यवें भाग के अनन्त प्रदेश रह सकते हैं। समझ में आया? ज्ञानचन्दजी!

यह अँगुली है न यहाँ? देखो! वहाँ अन्दर अनन्त जीव हैं। आकाश के प्रदेश असंख्य हैं। असंख्य प्रदेश में भी जो एक-एक जीव है, वह असंख्य प्रदेश रोककर अपने क्षेत्र में रहे हैं। बहुत निकट। यहाँ निकट वर्णन करना है न! इतने निकट। जहाँ

आत्मा एक असंख्य प्रदेश में, अपने असंख्य प्रदेश हैं, वे तो लोक जितने हैं, यहाँ जो असंख्य प्रदेश रोके हैं, वे लोक के असंख्यवें भाग के रोके हैं। उन असंख्य प्रदेश में अनन्त आत्मा हैं। उन्हीं असंख्य प्रदेश में अनन्त आत्मा हैं, उन्हीं असंख्य प्रदेश में अनन्त परमाणु अनन्त का स्कन्ध है। अत्यन्त निकट है। समझ में आया?

कहते हैं, **अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं...** हो, **तथापि वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते,...** ओहोहो! समझ में आया? सिद्ध भगवान विराजते हैं, वहाँ सिद्ध के आत्मा ने भी आकाश के असंख्य प्रदेश को रोका है। वह अपने असंख्य प्रदेश में हैं। और सिद्ध के जहाँ-जहाँ एक-एक प्रदेश है, वहाँ एक प्रदेश में निगोद के अनन्त प्रदेश हैं। समझ में आया या नहीं? सिद्ध का आत्मा भी असंख्य प्रदेश में रहता है। लोक असंख्य प्रदेश है, उसका असंख्यवाँ भाग। क्योंकि आत्मा असंख्य प्रदेशी है। कितना? कि लोक प्रमाण। आधे भाग में रहे तो एक प्रदेश में दो प्रदेश आ जाते हैं। चौथे भाग में रहे तो एक प्रदेश में चार आ जाते हैं।

यह प्रश्न हमारे (संवत्) १९७४ में बहुत हुआ। ७४ के वर्ष। हमारे सम्प्रदाय के साधु बहुत तकरारी थे। उन्हें न्याय से बात करें तो भी बैठे नहीं। उन्हें उस समय कहा, ७४ की बात है। २६+२२=४८ वर्ष हुए। एक आकाश के प्रदेश में एक जीव नहीं रह सकता। परन्तु अनन्त जीव के अनन्त प्रदेश रह सकते हैं और एक जीव लोक के असंख्यातवें भाग में यहाँ रहा है। हैं जीव के असंख्य प्रदेश लोक जितने, परन्तु लोक के प्रदेश तो... तो कहते हैं, ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। असंख्य भाग नहीं, ऐसा कहा। भाई! (संवत्) १९७४ के वर्ष। ... याद न हो। ... बहिन बैठी थी। तुम बैठे थे। मुझे खबर है तुम बैठे थे। ७४ में। मैंने कहा, यह तो गिनती का विषय है। भाव से अलग बात है। यह गिनती तो अंग्रेजों को बताओ, यूरोपियन को बताओ तो वह भी स्वीकार करे।

एक आत्मा लोकाकाश प्रदेश जितना है। एक आत्मा ने अभी लोक का असंख्यवाँ भाग रोका है। निगोद का शरीर हों, वह जीव या यह जीव हो, केवलीसमुद्घात हो, उसकी बात नहीं, लोक का असंख्यवाँ भाग रोका है। एक-एक प्रदेश में पूरा एक आत्मा नहीं रहता। परन्तु एक-एक प्रदेश में एक जीव के जो प्रदेश हैं, उनका असंख्यवाँ

भाग एक प्रदेश में रहता है। और ऐसे असंख्य प्रदेश में पूरा आत्मा रहता है और उसमें अनन्त आत्मा रहते हैं। तो कहे, ऐसा नहीं। मैंने कहा, सिद्धान्त लो, न्याय से लो।

एक आत्मा लोक प्रमाण असंख्य प्रदेशी है। केवलीसमुद्घात करे तो एक प्रदेश में एक प्रदेश आवे। आधे में एक प्रदेश में दो प्रदेश आवे। आकाश के एक प्रदेश में (जीव के) दो (प्रदेश) आते हैं। चौथा भाग करो तो आकाश के एक प्रदेश में (जीव का) चार प्रदेश आते हैं। दसवाँ भाग करो तो एक प्रदेश में दस आवे। संख्यात भाग करो तो एक प्रदेश में बहुत आते हैं। असंख्यवाँ भाग करो तो एक प्रदेश में असंख्य आते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आप सूक्ष्म-सूक्ष्म बात करते हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहाँ सूक्ष्म (बात है)? यह तो साधारण (बात है)। ७४ में साधारण सीखते थे तब यह बात थी। यह किसी के पास थी नहीं, हमने तो अन्दर से निकाली थी। हमारे गुरु भाई को ऐसा लगा कि ऐसा कैसे होगा? भाई! यह तो एक क्षेत्र की बात है। उसमें अनन्त भाव भरे हैं, यह अलग वस्तु है। समझ में आया? गिनती का विषय है यह तो, यह कहीं अन्तर का अनुभव का विषय नहीं, यह तो गिनती का विषय है। तो यह न बैठे, ऐसी कहाँ बात है?

भगवान आत्मा यहाँ है। तो है असंख्य प्रदेशी लोक प्रमाण। परन्तु लोक प्रमाण अभी यहाँ अवगाहन में नहीं। इतने में है। तो लोक के असंख्यवें भाग में यहाँ है। एक-एक आकाश के प्रदेश में एक-एक जीव के असंख्य प्रदेश हैं। ऐसे असंख्य प्रदेश में एक आत्मा है। उसमें अनन्त है। अत्यन्त निकटता बतलानी है। समझ में आया? कहते हैं, **अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं...** कर्म का स्कन्ध, स्कन्ध का स्कन्ध आकाश के एक प्रदेश में तो अनन्त स्कन्ध हैं। इतनी निकटता, इतनी निकटता, हो। उसमें क्या है? एक आकाश प्रदेश में अनन्त जीव के असंख्यवें भाग में अनन्त प्रदेश और एक प्रदेश में अनन्त स्कन्ध और एक प्रदेश धर्मास्तिकाय, एक प्रदेश अधर्मास्तिकाय, एक कालाणु आकाश के एक प्रदेश में (रहे हैं)। ऐसे अत्यन्त निकट रहने पर भी कोई द्रव्य अपने क्षेत्र से पतित नहीं होता। समझ में आया?

पहले द्रव्य की बात की है कि प्रत्येक द्रव्य अपने अनन्त गुण को चूमता है—स्पर्शता है—छूता है—परद्रव्य को छूता नहीं। (यह) द्रव्य की भिन्नता बतलायी। यहाँ एक क्षेत्र में अत्यन्त निकट, अत्यन्त निकट क्षेत्र से हो तो क्या हुआ? है। **तथापि...** पहले में भी आया था न? भाई! **तथापि...** ऐसा आया था न? सर्व पदार्थ **अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते,...** तथापि। इसी प्रकार यहाँ भी आया। **अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाहरूप से तिष्ठ रहे हैं, तथापि...** वस्तु सिद्ध करनी है न। **वे सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते,...** आहाहा! अरे! वस्तु कैसी है, ऐसा पहले बताते हैं। बाद में काल में दोष बतायेंगे। समझ में आया? प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य में रहता है, पर को स्पर्शते नहीं। प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक पदार्थ के निकट रहता है, तथापि अपने क्षेत्र से च्युत नहीं होते। आहाहा! समझ में आया?

अब तीसरा बोल। **पररूप परिणमन न करने से...** इसके साथ सम्बन्ध है न। समझ में आया? देखो! '**पररूपेणापरिणमनादविनष्टा**' देखो! पररूप नहीं होने से। किसी पदार्थ के कोई गुण और पदार्थ पररूप नहीं होने से अपनी **अनन्त व्यक्तिता...** अपनी अनन्त व्यक्ति। व्यक्ति अर्थात् यहाँ द्रव्य नहीं लेना। अपने अनन्त गुण की जो प्रगटता—भाव है, उस भाव से नष्ट नहीं होते। जितने पदार्थ के भाव अनन्त संख्या में हैं, उनमें एक भी भाव कम नहीं होता। समझ में आया? उसमें स्पष्टीकरण नहीं किया, नहीं?

भगवान आत्मा या परमाणु, यहाँ छहों द्रव्य लेना है, स्वयं पररूप नहीं होने से अपनी अनन्त प्रगटता (नष्ट नहीं होती)। प्रत्येक पदार्थ में जो अनन्त गुण हैं, संख्या से, संख्या से, उस संख्या में जितने गुण हैं, उतने अनादि-अनन्त रहते हैं।

मुमुक्षु : भिन्न-भिन्न....

पूज्य गुरुदेवश्री : भिन्न-भिन्न (रहते हैं)। प्रत्येक अनन्त प्रगटता गुण प्रत्येक गुण भिन्न है। अनन्त गुण हैं। समझ में आया? जरा सूक्ष्म बात है। सीधे नहीं निकला, परन्तु निकलता है। आठवें अनन्तवें निकलता है न? लोक-अलोक के आकाश के

प्रदेश से अनन्तगुणे गुण एक-एक द्रव्य में है। समझ में आया? सिद्ध से अनन्तगुणे जीव एक शरीर में हैं। उनसे सिद्ध की अपेक्षा अनन्तगुणे संसारी जीव हैं। उनसे अनन्तगुणे परमाणु हैं, उनसे अनन्तगुणे त्रिकाल समय है। उनसे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश हैं, उनसे अनन्तगुणे एक जीव में गुण हैं। ऐसे आठवें अनन्तवें ऐसा निकलता है और श्वेताम्बर में तो स्पष्ट है। जितने आकाश के प्रदेश अमाप-अमेयं है, उनसे एक द्रव्य में, एक जीव में, एक रजकण में... वहाँ जीव में लिया है, अनन्त अनन्तगुणे हैं। आकाश के प्रदेश जो संख्या में हैं, अमेयं—अमाप अमाप हैं न? कहाँ अन्त है? कहीं अन्त है? परिमित नहीं, अपरिमित हैं। बाद में फिर न हो तो फिर क्या? बाद की बात ही नहीं। ऐसा क्षेत्र का स्वभाव है। नास्तिक को भी स्वीकार करना पड़े। बाद में... बाद में... बाद में... क्या? अनन्त योजन। अनन्त योजन अनन्त को अनन्त वर्ग करके अनन्त योजन चले जाओ। बाद में? बाद में क्या? अन्त नहीं। तथापि ज्ञान में आ जाता है। ज्ञान में आ जाता है, इसलिए वहाँ अन्त आ गया, ऐसा नहीं। यह बड़ा विवाद करते हैं। अभी आया है न? अनन्त हैं। अनन्त को अनन्तरूप से जानते हैं। ज्ञान की पर्याय अनन्त को अनन्तरूप से जानती है। क्या ज्ञान की पर्याय अनन्त जाने, इसलिए वहाँ अन्त हो गया? समझ में आया? इतने अनन्त। अमाप का एक विचार नास्तिकरूप से करे तो इस क्षेत्र का स्वभाव क्या है?! बाद में क्या होगा? वाड? ...? पीठिका? क्या है? चलते जाओ, चलते जाओ। कहीं अन्त नहीं।

नास्तिक कहे, यहाँ नहीं, यहाँ नहीं। है... है... है... है... है... है... ऐसे चले जाओ। देखो! अस्ति। है... है... है... है... है... ऐसे चलते जाओ। कहीं नहीं, ऐसा आयेगा ही नहीं। यह साधारण ख्याल में क्षेत्र के स्वभाव की अचिन्त्यता अपरिमितता भी ख्याल में ले कि ऐसा तो क्षेत्र का स्वभाव है। तो भगवान आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय सबको जाने, उसमें विस्मयता, आश्चर्य क्या है? समझ में आया? अपनी ज्ञानपर्याय अमेयं है, ऐसा निर्णय करते हैं या नहीं? ख्याल करते हैं या नहीं? किसने निर्णय किया? वह सत् है परन्तु ज्ञान में प्रमेय आये बिना प्रमेय इतना है, ऐसा निर्णय किसने किया?

यहाँ श्रुतज्ञान की पर्याय में भी अमेयं पर्याय प्रतीति में आती है। श्रुतज्ञान की

पर्याय। मात्र परोक्ष-प्रत्यक्ष का ही भेद है। केवली को प्रत्यक्ष है और (श्रुतज्ञान में) परोक्ष है, दूसरा कोई भेद नहीं। समझ में आया? श्रुतज्ञान की पर्याय में इतनी सामर्थ्य अमेयं! इतना है। है... है... ऐसा आता है। नहीं है, ऐसा ज्ञान में आया ही नहीं। इतनी ज्ञान की पर्याय की सामर्थ्य या कितनी है पर्याय? है... है... है... है... अपरिमित पर्याय है। वह पर्याय अपरिमित है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी पर्याय का पिण्ड ऐसे गुण अनन्त हैं आत्मा में। उन अनन्त गुण में से एक गुण भी कम नहीं होता।

भाई! पदार्थ का स्वरूप महा अचिन्त्य पदार्थ परमेश्वर है। जड़ेश्वर है, विभाव ईश्वर है, स्वभाव ईश्वर है। तीन प्रकार के ईश्वर हैं। पाँच अजीव हैं, वे जड़ेश्वर भगवान हैं। भगवान अर्थात् महिमावन्त पदार्थ हैं। महिमावन्त पदार्थ हैं, अचिन्त्य पदार्थ हैं। दूसरा कहते हैं, यह तो अभी जड़ेश्वर कहा। पश्चात् अपना शुद्ध (ईश्वर)। पहले जड़ेश्वर कहा। फिर जीव में स्वभाव ईश्वर, विभाव ईश्वर दो दूसरे कहते हैं। समझ में आया?

कहा था न? एक परमाणु है, एक समय का परमाणु एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में एक समय में जाता है। दूसरे समय में चौदह ब्रह्माण्ड काटे। कारण कौन? बताओ कारण। पण्डितजी! कारण कौन? कारण कोई नहीं। पर्याय का स्वभाव है। एक समय पहले वह रजकण एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में गति की। जड़ है, उसे कुछ खबर है? खबर का क्या काम है? एक यह हुआ, दूसरे समय में चौदह ब्रह्माण्ड घूम गया। कारण कौन? कारण क्या, पर्याय का इतना अचिन्त्य स्वभाव है, उसका माहात्म्य है। समझ में आया? परमाणु की इतनी शक्ति स्वतः है। जड़ में भान कहाँ है? ज्ञान की बात कहाँ है उसमें? आहाहा! पर्याय की शक्ति अगाध। किसी से रोकी जाये नहीं। और किस प्रकार से? ... कहते हैं, ऐसे अनन्त पदार्थ जितने गुण रखते हैं, उन सब गुणों में कोई एक गुण कम होता है, ऐसा तीन काल में नहीं। समझ में आया? यह भाव लिया।

पररूप परिणमन न करने से अनन्त व्यक्तिता नष्ट नहीं होती, इसलिए वे टंकोत्कीर्ण की भाँति... टंकोत्कीर्ण—जैसे हैं, वैसे शाश्वत **स्थित रहते हैं...** सर्व पदार्थ। ऐसे के ऐसे पदार्थ रहते हैं, बस। शाश्वत। समझ में आया? ओहो! यहाँ तो ज्ञान में प्रमेय कितना आता है, उस प्रमाण की महिमा है। समझ में आया? वस्तु तो वस्तु में है। यहाँ कहेंगे... यहाँ स्वसमय-परसमय सिद्ध करना है। वस्तु ऐसी है।

और समय विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों की हेतुता से वे सदा विश्व का अनुग्रह (उपकार) करते हैं-... अनुग्रह शब्द है पाठ में। '**विश्वमनुगृह्णन्तो**'। क्या कहते हैं ? सब पदार्थ अपने से अस्ति है, पर से नास्ति है। विरुद्ध है। अपने से अस्ति है, पर से नास्ति है। एक बोल। पहले से लेते हैं। दूसरा (बोल)। पर्याय से विरुद्ध है। क्योंकि पर्याय उत्पाद-व्यय... उत्पाद-व्यय... उत्पाद-व्यय सब विरुद्ध है। भाव अभाव। गुण भावरूप से अविरुद्ध हैं। यह पाठ धवल में है। गुण-पर्याय। पर्याय विरुद्ध है। भाव-अभाव... भाव-अभाव। एक समय में भाव अभाव। उत्पाद भाव, व्यय अभाव। यह विरुद्ध है। गुण विरुद्ध अपेक्षा से अविरुद्ध है। प्रत्येक पदार्थ विरुद्ध-अविरुद्ध से भी टिक रहा है। समझ में आया ? इन्होंने — पण्डित जयचन्द्रजी ने जो कहा है, उसमें नहीं आया। उन्होंने—पण्डित जयचन्द्रजी ने ऐसा लिखा है, विरुद्ध कार्य अर्थात् विभावभाव। परन्तु उसकी अभी यहाँ आवश्यकता नहीं। यहाँ तो साधारण वस्तु सिद्ध करनी है न! फिर स्वसमय परसमय काल में लेंगे। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि सभी पदार्थ अपने अस्तित्व में रहते हैं। पर से नास्ति है। एक बोल। समझ में आया ? पर्याय में विरुद्ध है, गुण में अविरुद्ध है। दूसरा बोल। तीसरा पण्डितजी का प्रश्न। पहले तीन-चार बोल तो कहते थे कि छह द्रव्य है तो परस्पर विरुद्ध धर्म है। किसी की गति, किसी की स्थिति ऐसा, तथापि अविरुद्ध है। छतां... छतां को क्या कहते हैं ? विरुद्ध होने पर भी। है, विरुद्ध-अविरुद्ध है, ऐसे रहते हैं। समझ में आया ? विरुद्ध हो तो नहीं, ऐसा हो जाये ? विरुद्ध कार्य और अविरुद्ध कार्य... पाठ में ऐसा है या नहीं ? '**समस्तविरुद्धाविरुद्धकार्यहेतुतया**' प्रत्येक पदार्थ में अपने विकारी अथवा अपनी अस्ति और नास्ति, गुण और पर्याय से विरुद्ध अविरुद्ध से प्रत्येक पदार्थ स्वयं से टिक रहे हैं और पूरी दुनिया का—विश्व का अनुग्रह (कर रहे हैं)। (अर्थात्) विश्व जिसरूप से है, वैसा रहता है। विश्व जिसरूप से है, वैसा रहता है। उसमें बढ़-घट नहीं होती। पर्याय से विरुद्ध, गुण से अविरुद्ध। अस्ति-नास्ति से अस्ति-नास्ति विरुद्ध। सभी द्रव्य की पर्याय सबसे विरुद्ध है। गति, स्थिति, अवगाहन सब। विरुद्ध होने पर भी सब अविरुद्धरूप से टिक रहे हैं। ऐसा पूरा विश्व एक समय में ऐसा का ऐसा अस्तिरूप से टिक रहा है। अस्तिरूप से। उसमें आकाश भी आ गया, हों!

दोनों के (-विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य के) **हेतुता से वे सदा विश्व का अनुग्रह (उपकार) करते हैं...** अनुग्रह का अर्थ विश्व जैसा है, वैसा रहता है। समझ में आया?

इस प्रकार सर्व पदार्थों का भिन्न-भिन्न एकत्व सिद्ध होने से... अब काल की बात लेते हैं। भाई! काल से अपनी पर्याय में है, इतना कहा। परन्तु यहाँ अब कहते हैं कि **एकत्व सिद्ध होने से जीव नामक समय को बन्ध की कथा से ही विसंवाद की आपत्ति आती है;...** बस, यह आया। यह काल की बात आयी। यहाँ स्वसमय-परसमय सिद्ध करना है न! पर्याय में स्वसमय-परसमय है। द्रव्य, क्षेत्र और भाव में नहीं। समझ में आया? द्रव्य में विपरीत-अविपरीत क्या? द्रव्य तो है वह है। क्षेत्र में क्या? वह तो है वह है। भाव में क्या? वह तो है वह है। वह तो है, ऐसा सिद्ध कर दिया। द्रव्य है, वह है। किसी को स्पर्शता नहीं। क्षेत्र में एक क्षेत्र में रहने पर भी किसी क्षेत्र में पतित नहीं होते। भाव में अनन्त हैं तो एक गुण भी पतित नहीं होता। क्योंकि पररूप नहीं होते तो अनन्त गुण ऐसे के ऐसे रहते हैं। अब बात रही काल की। द्रव्य, क्षेत्र, भाव (हो गये)। अब रहा काल।

कहते हैं, **इस प्रकार सर्व पदार्थों का भिन्न-भिन्न एकत्व सिद्ध होने से जीव नामक समय को...** जीव नाम के पदार्थ को बन्ध की कथा—यह द्रव्य में बन्ध है, सम्बन्ध है, यह विसंवाद खड़ा करता है, असत्यार्थपना खड़ा करता है, ऐसा कहते हैं, हों! यहाँ, अबन्ध पदार्थ है,... देखो! यहाँ अबन्ध ले लिया है। १४-१५ गाथा में अबद्धस्पृष्ट लेंगे। भगवान आत्मा, उसका स्वरूप अबद्धस्पृष्ट है। निश्चय से पर्याय में बन्ध है, ऐसा कहना, वह विसंवाद होता है। पाठ में ऐसा है न? '**तेण विसंवादिणी**' '**बंधकहा**' कथा की बात है, पाठ तो कथा है, परन्तु भाव की बात है यहाँ। समझ में आया? शब्द से नहीं चिपटना चाहिए। यहाँ कहते हैं, '**बंधकहा एयत्ते तेण विसंवादिणी होदि**'। बन्ध कथा का अर्थ? यह तो वाचक लिया है। परन्तु बन्ध वाच्य से विसंवाद होता है, ऐसा कहना है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, भाव में विराजमान है। तो उसकी वर्तमान दशा कर्म के सम्बन्ध में रुके, वह विसंवाद है। विसंवाद उत्पन्न होता है। विभाव उत्पन्न होता

है, विकार उत्पन्न होता है, वह दुःख है, विसंवाद है, असत्य है। असत्य किस अपेक्षा से ? है तो सही। टीका में — जयसेनाचार्य की टीका में असत्य लिया है। लोग शब्द से भड़कते हैं। ऐ... असत्य कहा। असत्य, परन्तु किस अपेक्षा से ? सुन तो सही! वस्तु नहीं ? वेदान्त कहता है ऐसा है ? कोई दुःख ही नहीं, विकल्प नहीं, ऐसा है ? विसंवाद है। '**विसंवादिणी कोर्थः विसवादिनी कथा। प्राकृतलक्षणबलात् पुल्लिंगे स्त्रीलंगिनिर्देशः। विसंवादिनी असत्या होदि भवति।**' असत्य होता है। असत्य का अर्थ जो सत् स्वरूप निर्मलानन्द द्रव्य-गुण है, उससे विरुद्ध पर्याय हो, (वह असत्य है)। निर्मल पर्याय हो तो सत्यरूप है। क्योंकि द्रव्य-गुण शुद्ध है तो उसके आश्रय से उत्पन्न होनेवाली स्वसमय परिणति (अर्थात्) शुद्ध चैतन्यमूर्ति हूँ, ऐसा सम्यग्दर्शन; शुद्ध चैतन्य हूँ, ऐसा स्वसंवेदनज्ञान और स्वरूप रमणता वह अविसंवादिणी भाव है, अविसंवाद भाव है। है स्वकाल की बात। द्रव्य, क्षेत्र, भाव में क्या है ? वह तो त्रिकाली की बात हुई। अब रहा वर्तमान समय में।

ऐसे भगवान आत्मा में उसका लक्ष्य जो बन्ध के ऊपर जाता है और भावबन्ध जो उत्पन्न होता है, वह असत्यार्थ भाव है—विसंवाद—झगड़ा—दुःख उत्पन्न होता है। समझ में आया ? असत्यार्थ का अर्थ—अपने में आनन्द है, आत्मा आनन्द है और पर में आनन्द की मान्यता हो गयी। पुण्य में, पाप में कहीं सुख की बुद्धि हो गयी, वह बुद्धि असत्यार्थ है। समझ में आया ? विसंवाद खड़ा करती है। भगवान आत्मा में आनन्द है। जहाँ पुण्य परिणाम में आनन्द माना, पाप में माना अथवा व्यवहार विकल्प से मुझे लाभ होगा तो व्यवहार का प्रेम रह गया तो उसमें सुखबुद्धि हो गयी। समझ में आया ? उसे अविसंवाद क्यों नहीं होता ? क्योंकि विसंवाद में उसे प्रीति लगी है। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा... यह अनन्त धर्म कहा न ? अनन्त धर्म में आनन्द भी उसका त्रिकाल धर्म है। वह व्यक्ति—प्रगटता का, आनन्द का कभी नाश नहीं होता। वस्तु है, गुण है। उस गुण की वर्तमान परिणति में आनन्द आना चाहिए। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निर्विकारी पर्याय द्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हो तो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र

में आनन्द गुण है तो आनन्द आना चाहिए। वह स्व परिणति अविसंवाद है। स्वसमय की परिणति अविसंवाद अर्थात् सत्य है। ऐसा नहीं होकर कर्म के बन्ध के लक्ष्य में जाकर जो विकार, मिथ्या भ्रान्ति (होती है) कि उसमें ठीक है, ठीक है, राग हुआ ठीक है, पुण्य हुआ ठीक है, विकल्प हुआ ठीक है, दूसरे को भी पुण्य के परिणाम व्यवहार है तो वह धर्म करते हैं, वह ठीक है, (यह विसंवाद है)। समझ में आया? आहाहा!

समयसार अर्थात् चौदह ब्रह्माण्ड का यह भरतक्षेत्र का जगतचक्षु! अद्वैत चक्षु ऐसा अन्त में लिया है। यह समयसार, ऐसी टीका पूरे भरतक्षेत्र में नहीं। वस्तु के स्वरूप का ऐसा वर्णन, वाच्य है ऐसा वाचक है। कहते हैं कि भगवान! तू तो आत्मा है न, प्रभु! तेरे अनन्त गुण तुझमें से कभी कम नहीं हुए। आनन्दगुण भी तुझमें कम नहीं हुआ। शान्ति गुण, शान्ति अर्थात् चारित्र गुण त्रिकाल, हों! वह भी कम नहीं हुआ। है ऐसा का ऐसा पड़ा है। शान्त, स्वच्छता, प्रभुता, परमेश्वरता। परमेश्वरता एक गुण आत्मा में है। प्रभुता नाम का (गुण है)। वह भी ऐसा का ऐसा पड़ा है। प्रभुता के आश्रय से पर के आश्रय बिना निज आश्रय से सम्यग्ज्ञान, दर्शन परिणति होनी चाहिए। वह तो अविसंवादिणी है। क्योंकि जैसे द्रव्य-गुण हैं, वैसी पर्याय शुद्ध होकर अभेद हुई। वह तो अविसंवाद हुआ—सत्यार्थ हुआ। परन्तु ऐसा नहीं होकर कर्म के सम्बन्ध में लक्ष्य जाने से, अपने कारण से बन्ध के ऊपर लक्ष्य जाने से विसंवाद उत्पन्न हुआ, भ्रान्ति उत्पन्न हुई कि मैं इतना हूँ, मैं हूँ, उसमें हूँ, यह मैं। समझ में आया? एक समय में पूर्णानन्द प्रभु हूँ, ऐसा प्रतीति में नहीं आया तो प्रतीति वहाँ गयी। समझ में आया? मैं निमित्त में हूँ, मैं राग में हूँ, मैं पुण्य-पाप के परिणाम में हूँ और मैं उसमें हूँ। वास्तविक स्वभाव उसमें नहीं। समझ में आया? आहाहा!

तीसरी गाथा से सर्व द्रव्य की शुरु करते हैं, उसमें यह जीव लिया है। भाई! दूसरे चार द्रव्य तो अनादि से स्वाभाविक परिणमनवाले हैं ही। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल, ये तो अनादि-अनन्त द्रव्य पारिणामिकभाव से हैं, गुण भी पारिणामिकभाव से है, पर्याय भी पारिणामिकभाव से है। इन चार में कुछ उदय-बुदय कोई है नहीं। अनादि-अनन्त पारिणामिकभाव सीधा चला जाता है। एक जीव और पुद्गल दोनों में

दिक्कत है। जीव पर का लक्ष्य करने से पुण्य-पाप और भ्रान्ति उत्पन्न होती है, वह विसंवाद है। उसका निमित्त पाकर रजकण विभावरूप होकर कर्मरूप परिणमते हैं। परन्तु उन्हें दुःख नहीं है। परमाणुओं और स्कन्धरूप हो या विभावरूप हो, उसे दुःख नहीं है। यहाँ (जीव में) दुःख है। समझ में आया?

पण्डित जयचन्द्रजी ने शुरुआत में लिखा है। गाथाओं की अनुक्रमणिका की है न? अनुक्रमणिका। विषय अनुक्रमणिका में है। देखो! यहाँ है। **परसमयपना है, सो सुन्दर नहीं है, क्योंकि इसमें जीव संसार में भ्रमता अनेक तरह के दुःख पाता है...** यहाँ है, देखो! **धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये चार द्रव्य तो स्वभावपरिणतिरूप ही है। और जीव, पुद्गलद्रव्य के अनादिकाल के संयोग से विभाव परिणति भी है।** दो बातें ली हैं। पहले अनुक्रमणिका में लिया है। पहले शुरुआत में। पहले शुरुआत में बस, यह। चार द्रव्य तो स्वभावपरिणतिरूप ही है। उनमें तो कुछ दुःख भी नहीं, विभाव नहीं और हीनाधिक कुछ नहीं। जीव, पुद्गल दोनों में विभावपरिणति है। विभाव पुद्गल में है तो उसे दुःख नहीं। चाहे स्कन्धरूप परिणमो, चाहे एक परमाणुरूप हो, विभावरूप परिणमो, चाहे स्वभावरूप (परिणमो)। स्कन्ध में भी उसका विभावरूप परिणमन है। भिन्न, हों! स्कन्ध से भिन्न। स्कन्ध में भी परमाणु का भिन्न विभावरूप परिणमन है। परन्तु दुःख नहीं। उसे दुःख कहाँ है? जड़ को क्या दुःख है? आत्मा में विसंवाद दुःख है।

भगवान आत्मा अपने में आनन्द की बुद्धि छोड़कर जो स्वसमय का आश्रय चैतन्य है, उसका आश्रय छोड़कर, आनन्दबुद्धि कहीं भी रह जायेगी—राग में, पुण्य में, विकल्प में, भेद में, निमित्त में... समझ में आया? जहाँ सुखबुद्धि है, वहाँ अपना स्थान पाता है, वह मैं हूँ, ऐसा माना है। समझ में आया? यह इन्द्रियों में सुख है, भोग में सुख है, लक्ष्मी में सुख है। मूढ़ बुद्धि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और पापभाव में सुख है, पुण्यभाव में सुख है, यह अज्ञानी के अकेले व्यवहाररत्नत्रय, मन्द राग का, हों! वह भी मुझे ठीक है, यह मिथ्यात्वभाव है—ऐसा कहते हैं। व्यवहाराभास, हों! निश्चय बिना तो व्यवहार होता नहीं। परन्तु आत्मा का जहाँ अनुभव, सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ

कषाय की मन्दता का, पंच महाव्रत आदि, शास्त्र का ग्यारह अंग, नौ पूर्व का बोध—क्षयोपशम और नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा, परलक्ष्यी श्रद्धा, वह सब दुःखरूप है, राग है। उससे अपने को लाभ मानता है तो राग में आत्मा माना। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा एक जीव में विसंवाद खड़ा हुआ है, कहते हैं। उसमें भाई ने भले दो लिखा, जीव और पुद्गल। परन्तु बात यह एक जीव की है, बापू!

आनन्दस्वरूप है न, प्रभु! तेरे स्वरूप में तो अतीन्द्रिय आनन्द कितना? कितना? कि अनन्त चतुष्टय में एक आनन्द पूर्ण प्रगट हुआ, ऐसी अनन्त आनन्द की पर्याय एक आनन्दगुण में पड़ी है। समझ में आया? और आनन्द की उल्टी अवस्था जो हुई—विकल्प, वह भी उसमें समा गयी है। क्योंकि तीन काल की पर्याय के पिण्ड को गुण कहते हैं। समझ में आया? और तीन काल की पर्याय का पिण्ड गुण और अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य। ऐसा भगवान आत्मा अपने अनन्त गुण में आनन्द है, परमेश्वरता है, प्रभुता है, उस ओर का लक्ष्य, रुचि, आश्रय नहीं किया। पर का आश्रय करके उसमें सुखबुद्धि—हितबुद्धि—ठीकबुद्धि— ...बुद्धि मानी है, वह विसंवाद उत्पन्न किया है। भगवान कहते हैं, अरे! तेरी पर्याय में विसंवाद खड़ा हुआ। द्रव्य, क्षेत्र, भाव में तो कोई विपरीतता है नहीं। पण्डितजी! द्रव्य, क्षेत्र, भाव में तो कहाँ है? वह तो है ही। आहाहा! काल लिया। समझ में आया? चौदहवीं गाथा में जीव के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव घटित किये हैं। चौदहवीं में। यह जीव के चार बोल लिये हैं। यहाँ सर्व पदार्थ के चार बोल लिये शुरुआत में लिये हैं। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! तेरे एक में यह विसंवाद खड़ा हुआ है। जीव नामक समय को—पदार्थ को बन्ध की कथा शब्द नहीं लेना, बन्ध का भाव, कथा तो शब्द पड़ा है पाठ में, वह तो... क्या कहलाये? क्या कहलाये यह? पद्य... पद्य। यह पद्य है न पद्य? तो पद्य में मेल करने के लिये कथा (शब्द) लिया है। मूल तो बन्धभाव है। कथा क्या? कथा तो वार्ता है, उसमें क्या नुकसान करती है? समझ में आया? बन्धकथा, बन्धकथा का अर्थ बन्धभाव। एक में बन्ध का भाव। एकत्व तन्मय में बन्धभाव विसंवाददायक होता है। द्वैत होता है, प्रभु! तेरी शान्ति उसमें लुटती है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा अनन्त गुण की निधि-निधान। उसके परिणमन में जैसे शुद्ध गुण हैं,

ऐसा उसके अंश में स्वसमय का परिणमन—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वाअश्रय करके होना, वह तो सत्यार्थ है, अविसंवाद है, वह सुखरूप है, वह आनन्दरूप है। उसमें तो कुछ खराब विसंवाद है नहीं। परन्तु भगवान अपने आत्मा के गुण का—स्वभाव का आश्रय छोड़कर अज्ञानी अनादि का (उसका आश्रय करता है)। जिसमें वह कर्म चीज़ नहीं, हैं नहीं ऐसे अस्तित्व में लक्ष्य करके अपने स्वभाव में विकार नहीं, ऐसे निमित्त का लक्ष्य करके विकार उत्पन्न करता है और विकार में ठीकबुद्धि करता है, वह मिथ्यात्वभाव है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष विसंवाद खड़ा हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

अनन्त बार... आया न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो'। मुनिव्रत तो कैसा? अट्ठाईस मूलगुण कैसे? आगम की व्यवहार की पद्धति में एक भी दोष न निकले, ऐसे। शरीर के खण्ड-खण्ड करे तो भी क्रोध न करे। दूसरे देव (लोक) की इन्द्राणी डिगाने आवे (तो डिगे नहीं)। उसे इन्द्राणीयोग कहा जाता है, चौदह ब्रह्माण्ड में। दूसरे देव (लोक) की स्त्री डिगाने आवे तो डिगे नहीं। यह सब राग की मन्दता का लक्षण है। स्वभाव की दृष्टि नहीं। शुक्ललेश्या है। शुक्ललेश्या आ गयी। शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। शुक्ललेश्या। शुक्लध्यान दूसरा, हों! शुक्ललेश्या अलग। शुक्ललेश्या होती है। कषाय मन्द इतनी, परलक्ष्यी भाव में राग मन्द करके नौवें ग्रैवेयक गया। भगवान उसे यहाँ कहते हैं कि तूने विसंवाद खड़ा किया है। भगवान आनन्दमूर्ति की रुचि और आश्रय तूने लिया ही नहीं। समझ में आया? और आत्मा के आनन्द का आश्रय ले और पर्याय में आनन्द (आवे), आतमज्ञान बिन लेश सुख न पायो। वहाँ लिया, देखो! आत्मज्ञान में आनन्द है। यह चिल्लाहट मचाते हैं न अभी? सम्यग्दर्शन में (आनन्द) नहीं, अनुभव नहीं। सम्यग्दर्शन अर्थात् श्रद्धामात्र है। ऐसा है ही नहीं। सुन तो सही! श्रद्धा का नाम ही अनुभूति है और अनुभूति में आनन्द आता है। समझ में आया? ऐसा आनन्द तो स्वसमय की परिणति है, ऐसा कहते हैं। यह (विकार) विसंवाद है। निमित्त के लक्ष्य से वर्तमान अवस्था जिसकी है, उस ओर झुकाव नहीं करके, जो अवस्था है, वह अवस्था यहाँ राग-द्वेष, निमित्त का लक्ष्य करती है। समझ में आया?

यह बन्ध के भाव से **विसंवाद की आपत्ति आती है...** लो, पण्डित लोग आपत्ति आती है, ऐसा कहते हैं। हमारी आपत्ति समझे? विसंवाद की आपत्ति आती है। वे पण्डित आये थे न? वह आपत्ति कहते थे। क्या नाम? हीरालाल? प्रोफेसर आये थे, दो दिन रहे थे। लकड़ी किस प्रकार से हुई? यह छोटी लकड़ी पड़ी है न? ... से हुई। क्या है? सुथार.. सुथार कहते हैं न? बढ़ई बिना हुई? कहा, हाँ, उसके बिना हुई। क्या इसकी पर्याय को सुथार स्पर्श करता है तो उससे हुई? तो पहले क्यों नहीं हुई? मेरी आपत्ति तो आप समझते हो, ऐसा बोले। आपत्ति का क्या अर्थ? प्रत्यक्ष दिखता है न! प्रत्यक्ष किसे कहे? जड़ को प्रत्यक्ष होता है या ज्ञान को प्रत्यक्ष होता है? प्रत्यक्ष किसको लागू पड़ता है? ज्ञान में प्रत्यक्ष होता है या जड़ में प्रत्यक्ष होता है? ज्ञान में प्रत्यक्ष होता है। प्रत्यक्ष ज्ञान सम्यक् होता है तो जानता है कि यह पर्याय इससे हुई, (सुथार) उसमें निमित्त था इतना। परन्तु पर्याय उससे (लकड़ी से) हुई, ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष जानता है। तुम कहते हो कि उससे (बढ़ई से) हुई, ऐसा प्रत्यक्ष कहाँ से लाये? दो पण्डित आये थे। उपाध्याय नहीं? एन. के. उपाध्याय। एन. के. उपाध्याय न? आदिनाथ सुहाई। फिर हम गये थे, वहाँ मिले थे। बेचारे साथ के साथ थे। वहाँ (संवत्) २०२० के वर्ष में गये थे।

भाई! प्रभु! यहाँ तो प्रत्येक पदार्थ की पर्याय का परिणमन स्वयं से है, ऐसा तो पहले द्रव्य को सिद्ध किया। समझ में आया? और वैसा कहोगे कि यह स्थूल पदार्थ ऐसे नहीं होते, ऐसे नहीं होते? मैंने तो कहा, स्थूल पदार्थ की संख्या की अपेक्षा सूक्ष्म पदार्थ परमाणु पुद्गल असंख्यगुणे हैं। तो असंख्यगुणे में भेद-संघात होता है उसके कारण से। उसमें लाओ निमित्त कौन है? यह तो स्थूल है। असंख्यवें भाग में स्थूल है। जितना दिखता है, सूक्ष्म पुद्गल से स्थूल तो असंख्यवें भाग में है। पण्डितजी! सूक्ष्म बहुत है। दो परमाणु से अनन्त सूक्ष्म परमाणु बहुत हैं। उसमें अनन्त परमाणु इकट्ठे होते हैं, पृथक् पड़ते हैं, इकट्ठे होते हैं, पृथक् पड़ते हैं। पृथक् पड़ते हैं, इकट्ठे होते हैं। कौन करता है? किससे होते हैं? भगवान! यह स्थूल जहाँ आया, वहाँ तुम्हारी दृष्टि संयोग के ऊपर गयी। परन्तु स्वभाव के ऊपर गयी नहीं। परन्तु हमको आपत्ति होती है कि कैसे

हुआ ? वह चला गया परन्तु कैसे टिका ? सुथार चला गया (तो) कैसे टिका ? ... कैसे टिका है ? पहले उसने किया था। पहले उसने किया था तो अभी पर्याय है या नहीं ? नयी-नयी होती है या नहीं ? तो कैसे टिक रहा है ? स्वयं के कारण से। समझ में आया ? भारी कठिन जगत को। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा... देखो ! यहाँ कर्म का दोष नहीं निकालते। बन्धभाव में रुकते हैं, वह परसमय है, ऐसा कहा है। भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शान्तरस का कन्द प्रभु है। उसमें यह विसंवाद अनादि का खड़ा हुआ है। क्यों ? बन्धभाव। भगवान आत्मा पर से भिन्न अबन्धस्वरूप है। द्रव्य अबन्धस्वरूप, गुण अबन्धस्वरूप। तो पर्याय में भी अबन्धपर्याय उत्पन्न होनी चाहिए। अबन्धपर्याय कहो या सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र कहो। अबन्धपर्याय कहो या स्वसमय का परिणमन कहो। समझ में आया ?

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी दृष्टि नहीं करने से, है ऐसा महा पदार्थ है, ऐसी महासत्ता अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसकी सत्ता का अन्तर्मुख होकर स्वीकार नहीं किया, वह विसंवाद पर के आश्रय से बन्धभाव उत्पन्न किया। दूसरे में ऐसा नहीं—चार (द्रव्यों में ऐसा) नहीं। धर्मास्ति आदि में। तुझमें यह घुस गया। असत्य भाव है। असत्य का अर्थ (यह कि) तेरे स्वरूप में आनन्द है, उससे विपरीत दु:खरूप दशा, वह असत्य है। वह टिकनेवाली नहीं। कायम टिकनेवाला तो आनन्द है और उसके साथ पर्याय प्रगट हो तो अभेद होती है, वह भी टिकनेवाली है। तो कहते हैं, बन्धभाव विसंवाद की आपत्ति आती है। क्यों ? बन्धकथा का मूल-बन्धभाव का मूल 'पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होना...' (वह है)। भाई ! ऐसा लिया। पुद्गलकर्म का उदय इसे स्थित कराता है, ऐसा नहीं। इसलिए दूसरी गाथा में लिया न ? '**जीवो चरित्तदंसणणाणठिदो तं हि ससमयं जाण। पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं च तं जाणपरसमयं॥**' आत्मा ही अपने उल्टे पुरुषार्थ से कर्म के निमित्त में स्थित होता है। उसे कोई कर्म का उदय रोकता है, बिल्कुल नहीं। समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो न !

पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित... कर्म के प्रदेश तो जड़ अजीव हैं। परन्तु उसमें

लक्ष्य गया न? यहाँ द्रव्य में स्थित नहीं तो पुद्गलकर्म में उसकी दृष्टि स्थित हुई। **जिसका मूल है...** बन्धभाव का मूल पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होना, **वह जिसका मूल है, ऐसा परसमयपना,...** वह परसमय हुआ। भगवान आत्मा अपना शुद्धस्वभाव, उसका आश्रय अपना पूर्ण अस्तित्व, उसके पूर्ण अस्तित्व की ओर का आश्रय छोड़कर पर के आश्रय में स्थित हुआ तो विसंवाद उत्पन्न हुआ, परसमय उत्पन्न हुआ, परसमय उत्पन्न हुआ। हुआ तो उसकी पर्याय में परन्तु स्वसमय, जो समय में, समय अर्थात् द्रव्य-गुण में नहीं, विकार नहीं। द्रव्य-गुण में विकार है ही नहीं, द्रव्य में विकार नहीं, गुण में विकार नहीं, कोई गुण में नहीं, वैसे पर्याय में उत्पन्न किया तो उसका नाम परसमय कहा जाता है। है तो उसकी पर्याय। समझ में आया? आहाहा! तत्त्वज्ञान ऐसी बात है कि भूल भी यह (स्वयं) करता है और भूल भी यही (स्वयं) टालता है। किसी के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं।

(पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होना) 'वह जिसका मूल है, ऐसा परसमयपना, उससे उत्पन्न होता...' पाठ में तो इतना ही है, भाई! '**जीवाह्वयस्य**' अर्थात् क्या? जीव नाम का। '**समयस्य बन्धकथाया एव विसंवादापत्तिः। कुतस्तन्मूलपुद्गलकर्मप्रदेश-स्थितत्वमूलपरसमयत्वोत्पादितमेतस्य द्वैविध्यम्।**' बस, इतना पाठ है। ऐसे पर में गया, इसलिए द्विविधपना उत्पन्न हुआ। समझ में आया? फिर यहाँ स्पष्टीकरण ऐसा किया कि द्विविधपना जीव को आता है। **(परसमय-स्वसमयरूप) द्विविधपना उसको...** आता है। ऐसा स्पष्टीकरण किया। पाठ तो इतना है। भगवान आत्मा अपने अबन्धस्वभाव के ऊपर का आश्रय छोड़कर अनादि से बन्धभाव में रुका, बन्धभाव में रुका, वह परसमय हुआ, वह परसमय हुआ। परसमय हुआ तो द्विविधता हो गयी। एकरूप में परसमयपना द्विविधपना हो गया। समझ में आया?

भगवान आत्मा अपना सच्चिदानन्द प्रभु सहजानन्द की मूर्ति आत्मा (है), उसकी अन्तर आनन्द की रुचि, आनन्द का ज्ञान और आनन्द में लीनता (हो), वह उसकी पर्याय सत्यार्थ-स्वसमय है। ऐसा नहीं करके अनादिकाल से वह निमित्त परचीज़ में लक्ष्य करके अपनी पर्याय में, जो गुण-द्रव्य में नहीं है—ऐसा विकार, मिथ्या भ्रम और

राग-द्वेष उत्पन्न करता है, जिसमें मूल पुद्गलकर्म का निमित्त है, उसके आश्रय से उत्पन्न हुआ परसमयपना, वह द्विविधपना हुआ। स्वस्वरूप में एक दूसरा भाग हो गया—विकारभाव।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकारी पर्याय परन्तु वह दूसरी। पर्याय विकार की वर्तमान पर्याय परिणमी है, गुण नहीं परिणमते। गुण तो ध्रुव रहते हैं।

मुमुक्षु : गुण विकारा पर्याया ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह दूसरा। यह दूसरा अर्थ। गुण विकारा पर्याय का अर्थ विशेष कार्यरूप पर्याय, ऐसा अर्थ है। पर्याय की व्याख्या ऐसी नहीं। विकारा पर्याया, ऐसा अर्थ होवे तब तो स्वभावरूप पर्याय को क्या कहना? गुण विकारा पर्याया का अर्थ गुण का विशेष कार्यरूप, उसका नाम पर्याय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : विशेष कार्य परन्तु विपरीत है। वह विपरीत है, वह विपरीत है। और वह जो गुण विकारा पर्याय लिखा है, उसका नाम वहाँ विकार नहीं लेना। विशेष कार्यरूप परिणमन। सामान्य जो है, उसका विशेष परिणमन। वह तो छहों द्रव्यों में लागू पड़ता है।

यहाँ तो विकार की पर्याय (होने की) यथार्थ में तो गुण में सामर्थ्य नहीं। द्रव्य में विकार होने की सामर्थ्य नहीं। उसकी एक समय की पर्याय में गुण का विकार उत्पन्न होने का धर्म है। मिथ्यात्व में अथवा अस्थिरता में। दोनों में लेते हैं, हों! गुण तो कूटस्थ हैं, उनका परिणमन, वह पर्याय हुई। ध्रुव तो कायम सदृश रहता है। गुण की व्याख्या सदृशता है। 'लब्धित्रय' में अकलंकदेव (कहते हैं)। गुण को क्या कहते हैं? सदृशता। एकरूप कायम रहे वह। वह विपरीत हो गया। पर्याय हो गयी, उसका अंश हुआ। उसका अंश शुद्ध होना चाहिए, उसके बदले अशुद्ध हुआ, वही दुःखदायक विसंवाद कथा परसमय उत्पन्न किया। एक में द्विविधपना उत्पन्न हो गया। शुद्ध की अपेक्षा से द्विविधता कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म प्रदेश का लक्ष्य करता है। लक्ष्य करता है। पहले कहा, परलक्ष्य करता है। ऐसे लक्ष्य नहीं करके, ऐसे लक्ष्य किया। उसे खबर नहीं कि यहाँ पुद्गलकर्म है। परन्तु यहाँ लक्ष्य नहीं तो कहीं है, उसे पुद्गलकर्म के प्रदेश में स्थित है, ऐसा आचार्य ने स्पष्टीकरण किया। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो दूसरा कहना है, **पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होना, वह जिसका मूल है ऐसा परसमयपना, उससे उत्पन्न होनेवाला...** परसमयपना द्विविधता जीव को आती है। पाठ इतना है। फिर इन्होंने स्पष्टीकरण किया, **(परसमय-स्वसमयरूप) द्विविधपना...** परन्तु यह तो परसमय की द्विविधता पर्याय में आयी न? स्वसमय हो, तब परसमय नहीं और परसमय हो, तब स्वसमय नहीं।

मुमुक्षु : स्वसमय में द्विविधता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। एक आत्मा जहाँ परसन्मुख के लक्ष्य से परिणमन हुआ, वह परसमय हुआ। तो वहाँ परसमय के समय स्वसमय है ही नहीं। समय है, स्वसमय नहीं।

मुमुक्षु : द्रव्य स्वसमय है, पर्याय परसमय है। यह द्विविधता....

पूज्य गुरुदेवश्री : इतना। द्रव्य समय है, शुद्ध है, पवित्र है। उसमें पर्याय में अपवित्रता हुई तो उसे परसमय की द्विविधता लागू पड़ी। द्विविधता। उसी समय में स्वसमय है और यह परसमय दूसरा हुआ, ऐसे दो बोल नहीं। समझ में आया? कठिन भाई! यह तो समयसार है। अकेले मक्खन की मूल की बात है। तत्त्व वस्तु कहते हैं।

भगवान आत्मा पर से तो भिन्न है और पर के तो अभावस्वभावरूप है। जितने पदार्थ जगत में हैं, उन सबसे एक आत्मा अभावस्वभावरूप है। अभावस्वभावरूप होने पर भी, पर के अस्तित्व का लक्ष्य करके विकार उत्पन्न करता है। है तो पर के अभावस्वभावरूप, परन्तु अपने शुद्धस्वभाव का अभाव होकर विकार उत्पन्न हुआ, वह विसंवाद उत्पन्न हुआ। स्वभाव की दृष्टि की बात करनी है न! समझ में आया?

परसमयपना, उससे उत्पन्न होनेवाला... पाठ तो इतना है। '**परसमयत्वोत्पादित-मेतस्य द्वैविध्यम्।**' बस, इतना। द्विविध अर्थात् कि एकपना समय छोड़कर दोपना— परसमयपना हुआ, वह विसंवाद जहर है, दोष है, भ्रम है। **इसलिए समय के एकत्व का होना ही सिद्ध होता है।** लो! सिद्ध तो यह करना है। **समय के एकत्व का होना...** है न सार इसमें? अन्तिम शब्द है। '**समयस्यैकत्वमेवावतिष्ठते**'। भगवान आत्मा अपनी पर्याय अपने द्रव्य-गुण के साथ एकत्व करे, वही सुन्दरता है। आहाहा! समझ में आया? पर के साथ एकत्व करता है, वह असुन्दर है, अशोभा है, दुःख है। भगवान आत्मा अपने पदार्थ के साथ अभेद पर्याय प्रगट करता है, वह स्वसमय सुन्दरता को (पाता है)। क्योंकि उसमें आनन्द है और उसमें निर्मल पर्याय है तो वह सुन्दरता को प्राप्त होता है। यह बात '**अथेतदसुलभत्वेन विभाव्यते**'। लो। अब यह एकत्वपना सुलभ नहीं, दुर्लभ है, यह बात चौथी गाथा में कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण १३, शनिवार, दिनांक - १३-०८-१९६६
गाथा - ३, ४, प्रवचन - १५

यह समयसार शास्त्र, इसकी तीसरी गाथा पूरी हुई। इसका भावार्थ। देखो! क्या कहते हैं?

भावार्थ :- निश्चय से सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में स्थित रहते हुए ही शोभा पाते हैं। वास्तव में जगत में जितने पदार्थ हैं, वे पदार्थ अपने स्वभाव में पर के सम्बन्ध बिना स्वभाव में स्थिति को प्राप्त होते हैं, वे सुन्दरता और शोभा को प्राप्त हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : निमित्त कहाँ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त निमित्त में रहा। निमित्त भी अपने स्वभाव में स्थित हो तो सुन्दरता को प्राप्त होता है।

सर्व पदार्थ अपने-अपने स्वभाव में स्थित... स्वभाव में स्थित रहते हुए, स्थित रहते हुए शोभा को, सुन्दरता को, प्रशंसा को प्राप्त होते हैं। **परन्तु जीव...** क्योंकि छह द्रव्यों में चार द्रव्य तो स्वभावपरिणतिरूप ही सदा अनादि-अनन्त है। धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल अनादि-अनन्त शुद्धस्वभावरूप परिणति में ही (स्थित हैं)। उनमें कोई विभाव या विकार या अपूर्णता या सदोषता नहीं होती, चार में। दो रहे—जीव, पुद्गल। **जीव नामक पदार्थ की अनादि काल से...** भगवान आत्मा की अवस्था अनादि काल से **पुद्गलकर्म के साथ...** जड़ पुद्गलकर्म है, उसके **साथ निमित्तरूप...** संयोगरूप। संयोगरूप कहो, निमित्तरूप कहो (एकार्थ है)। **बन्ध-अवस्था है;...** आत्मा में कर्म के निमित्त की बन्ध अवस्था और अपनी दशा में भाव-विकार की भावबन्ध अवस्था है, वह दुःखदायक है। समझ में आया?

अपने आत्मा में कर्म के निमित्त के सम्बन्ध में जो अवस्था है, वह निमित्त के

सम्बन्ध से अपने में अवस्था है। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यघन अनाकुल आनन्दकन्द है। उसकी अवस्था अनादि काल से कर्म जड़ पदार्थ के निमित्त के सम्बन्ध में, निमित्त अवस्था जड़ की, परन्तु उसके सम्बन्ध में पर्याय में भ्रमणा और राग-द्वेष की बन्ध अवस्था है, उन्हें दु:खदायक है। समझ में आया? **उस बन्ध-अवस्था है; उससे इस जीव में विसंवाद खड़ा होता है,...** झगड़ा खड़ा होता है, दु:ख होता है, दु:ख होता है। वह जीव का स्वरूप नहीं। क्या कहते हैं?

भगवान आत्मा निमित्त के सम्बन्ध में जुड़कर जो भ्रमणा, मिथ्यात्व और राग-द्वेष उत्पन्न करता है, वह दु:खदायक है। वह विसंवाद खड़ा हुआ है। समझ में आया? दु:खरूप है। **अत: वह शोभा को प्राप्त नहीं होता।** इसलिए भगवान आत्मा को सुन्दरता, प्रशंसनीक और शोभा को प्राप्त नहीं। अकेले बन्धभाव में एकत्वरूप से रहना, कर्म के निमित्त का लक्ष्य करके जो विकार उत्पन्न हुआ है, उस विकार में एकत्वरूप से रहना, वह दु:खदायक है। जीव को प्रशंसनीय नहीं। क्योंकि वह जीव का स्वरूप नहीं। समझ में आया? कर्म का सम्बन्ध, निमित्त, वह तो जीव का स्वरूप नहीं, वह तो अजीव की पर्याय है। अजीव की पर्याय के सम्बन्ध में यहाँ स्वभाव का सम्बन्ध छोड़कर, भगवान ज्ञानज्योति चैतन्य अनाकुल आनन्द ध्रुवस्वरूप का सम्बन्ध, सम्बन्ध-संग, असंग तत्त्व का संग छोड़कर कर्म के निमित्त के संग में जुड़ता है, वह पुण्य और पाप, राग और द्वेष बन्धभाव-बन्ध अवस्था (उत्पन्न करता है), वह आत्मा का स्वरूप नहीं। समझ में आया?

निश्चय से शुद्धस्वरूप नहीं। व्यवहार से विकार अवस्था उसकी दशा में भावबन्धरूप जड़ बन्ध निमित्त के सम्बन्ध में भ्रमणा, यहाँ स्वरूप की शुद्ध दृष्टि को चूककर उस पर निमित्त का एकान्त लक्ष्य करके जितने राग और द्वेष, पुण्य-पाप, काम, क्रोध आदि विकल्प उठते हैं, वह आत्मा का स्वरूप नहीं। शुद्धनय से वह आत्मा का स्वरूप नहीं। स्वरूप नहीं तो आत्मा को वह भाव दु:खरूप है। समझ में आया?

विसंवाद खड़ा होता है, अत: वह शोभा को प्राप्त नहीं होता। अपनी सुन्दर अवस्था, सुन्दर चेतन भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु की ओर दृष्टि होने से जो स्वसंवेदन ज्ञान शान्ति का होना, सम्यक् अनुभव आनन्द आदि का होना, वह उसका शुद्धस्वरूप

है। वह आनन्ददायक है, वह स्वसमय है। अपनी दशा अपने स्वरूप से अभेद है। समझ में आया? विकार का भाव—शुभ-अशुभभाव और उसमें एकत्वभाव, वह मिथ्या भाव है; राग-द्वेष है, वह दु:खरूप भाव है। अपना निज स्वरूप शुद्धस्वरूप है नहीं तो उससे आत्मा में विसंवाद खड़ा हुआ है। अपने आनन्दस्वरूप को चूककर, अपने अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप की अनुभवदृष्टि छोड़कर; छोड़कर का अर्थ क्या? पहले थी और (उसे) छोड़कर? अनादि से अपने शुद्ध आनन्दस्वरूप की सम्यक् दृष्टि, स्वसमय का आश्रय करके, स्वआत्मा का आश्रय करके शुद्ध शान्ति, सम्यग्दर्शन-ज्ञान, शान्ति, आनन्द का अनुभव (हो), वह तो स्वसुन्दरता को प्राप्त है। वह तो पर्याय शुद्ध आत्मस्वरूप ही है। आत्मा जैसा शुद्ध है, वैसी उसकी पर्याय शुद्ध हो, वह तो आत्मस्वरूप ही है, आत्मा के साथ अभेद ही है। वह सुन्दरता को प्राप्त है।

मुमुक्षु : विकार असुन्दरता को प्राप्त हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या हुआ? देखो! दूसरा क्या है? विकार तो दु:खरूप है, असुन्दरता को प्राप्त है। विसंवाद (होने से) अत्यन्त बुरा करनेवाली वह दशा है। वह फिर चौथे में लेंगे। उसमें अर्थ है, इसमें नहीं लिया। अत्यन्त अनिष्ट करनेवाली, उसमें लिया है। इसमें अत्यन्त बुरा करनेवाली (है, ऐसा है)। खबर है। जरा शान्ति से समझने की चीज़ है। यह तो मूल चीज़ की बात है। समझ में आया? यह कहीं वार्ता कथा नहीं। यह तो आत्मपरमेश्वर की कथा है। समझ में आया?

परमेश्वर अपना शुद्धस्वरूप, उसके अन्तर के अवलम्बन से निर्मल श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति, आनन्द की दशा प्रगट होना, वही सुन्दरता को प्राप्त है। क्यों? कि शुद्ध है तो शुद्ध पर्याय प्रगट हुई। वह तो अभेद हुआ तो उस शुद्धस्वरूप को आत्मा कहा जाता है। उस संवर, निर्जरा की शुद्धपर्याय को अभेद दृष्टि से आत्मा कहते हैं। समझ में आया? और कर्म के निमित्त के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए एकान्त राग, द्वेष, पुण्य, पाप, काम, क्रोध, दया, दान, व्रतादि के परिणाम में एकत्व होने से मिथ्यात्व है, और दु:खदायक दशा विकार है। समझ में आया?

कहते हैं कि स्वभाव को प्राप्त नहीं। **इसलिए वास्तव में विचार किया जाये तो एकत्व ही सुन्दर है;...** एकत्व का अर्थ—भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु में एकत्व

होना और पुण्य-पाप के विकल्प से-राग से पृथक् होना और स्वभाव से एकत्व होना, वही सुन्दरता को प्राप्त है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात, भाई! पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? परद्रव्य तो परद्रव्य में है, परन्तु परद्रव्य के संग से उत्पन्न हुआ विकार भी स्वस्वभाव नहीं। वह सुन्दरता को प्राप्त नहीं। चाहे तो शुभभाव हो। असंख्य प्रकार के शुभ हैं और असंख्य प्रकार के अशुभ हैं। किसी भी प्रकार के शुभ-अशुभभाव उत्पन्न हुए, (वे) निमित्त के सम्बन्ध से उत्पन्न हुए हैं। स्वभाव के सम्बन्ध से उत्पन्न नहीं होते। समझ में आया?

मुमुक्षु : कोई अपवाद तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपवाद-फफवाद कैसा? अपवाद का अर्थ निन्दा होता है। अपवाद का अर्थ लोग क्या करते हैं? उसका अपवाद बोले, उसका अपवाद हुआ। विरोध और निन्दा होती है। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को भी जितने रागादि होते हैं, वे दुःखदायक हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध भगवान प्रभु के अन्तर अनुभव से सम्यग्दर्शन हुआ, तब आनन्द की दशा का अनुभव हुआ। वही सम्यग्दृष्टि को शान्ति और सुखदायक और मोक्षमार्ग है। उसको भी जितना राग उत्पन्न होता है, उससे दुःख होता है। यह पंचाध्यायी में नहीं लिया? पण्डितजी! पंचाध्यायी में एक श्लोक लिया है। सम्यग्दृष्टि भी उसके दुःख के घात से बचे नहीं। वज्र जैसा दुःख होता है, ऐसा लिखा है। एक श्लोक है, श्लोक याद नहीं आता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, हाँ। अनुसन्धि सन्धि यह। सन्धि शब्द है। जैसे सन्धि सन्धि में संधिवा होती है न? संधि संधि में संधिवा होती है न? उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को भी अपने सम्यक्त्व का आनन्द का अनुभव होने पर भी जितने राग-द्वेष हैं, सन्धि सन्धि में जैसे संधिवा होती है, संधिवा होती है, क्या कहते हैं? संधिया वा, गठिया वा। अपने यहाँ संधिवा कहते हैं। सन्धि—जहाँ-जहाँ साँध है, जहाँ-जहाँ ग्रन्थि है, वहाँ-वहाँ पकड़ा जाता है। अपने यहाँ सन्धि कहते हैं। वे लोग गाँठ कहते हैं। जहाँ-जहाँ गाँठ है, यहाँ, यहाँ, यहाँ, यहाँ...

उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को भी अपने शुद्धस्वभाव का आश्रय होने पर भी पूर्ण आश्रय नहीं। यदि पूर्ण आश्रय हो तो वीतरागता हो जाये। अल्प आश्रय भगवान चिदानन्द की एकत्वबुद्धि में आनन्द आया और यह आनन्द है तो पूरा स्वरूप आनन्दमय है, पूरा स्वरूप आनन्दमय है, ऐसा अनुभव में प्रतीति में भी आया। ज्ञान भी ऐसा हो गया—स्वसंवेदन। स्थिरता भी आंशिक हो गयी। शान्तिस्वरूप आचरण विशेष-विशेष (होता जाता है)। जितना राग है, संधिवा (गठिया वा) की भाँति दुःख की चोट मारता है। समझ में आया? शुभाशुभराग दोनों, हों! संधिवा, गठिया वा। ऐसे असंख्य प्रदेश में जितनी राग की अस्थिरता, आसक्ति (होती है), इष्टपना नहीं, यह ठीक है—ऐसी रुचि नहीं, परन्तु अस्थिरता जो होती है, वह भी दुःखदायक कम्पन जैसा दुःख होता है। आहाहा! कंपवा समझते हो न? ऐसे-ऐसे होता है। लकवा नहीं। यह देखो! इन भाई को होता है। मकनभाई को होता है न? देखो! सिर कँपता है, सिर कँपता है। ऐसे कँपता है। ऐसे-ऐसे होता है।

मुमुक्षु : एक साधु को था न?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक साधु को था। एक श्वेताम्बर साधु थे। जामनगर में। बेचारे बहुत दुःखी थे। फिर कीड़े पड़े। आठ वर्ष रहे न, आठ वर्ष। कीड़े... कीड़े। ईयळ समझते हो? जीव जीव। मैं उनके पास गया था। अरे! महाराज! मैं दुःखी हूँ। (उनकी) बड़ी उम्र थी ६०-६५ वर्ष की। सुन्दर शरीर था। भाई! क्या करोगे? शरीर की स्थिति है। शरीर की स्थिति को कोई रोक सकता है? कोई रोक सकता है? सनतकुमार चक्रवर्ती मुनि होने के बाद कोढ़ हुआ। वह शरीर की दशा है। शरीर की दशा को कौन रोक सकता है? और कौन मिटा सकता है? ... कौन कर सकता है? यहाँ भगवान आत्मा अन्दर है न? चिदानन्द प्रभु विराजता है। उसकी दृष्टि लगाओ। आनन्द है। दुःख है ही कहाँ? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, सम्यग्दृष्टि को भी जितनी सुन्दरता उत्पन्न हुई, उतनी सुन्दर है। स्वभाव के आश्रय से। और जितना अभी पर के लक्ष्य से रागादि आसक्ति होती है, वह भी दुःखदायक है। उससे यह जीव शोभा पाता है। अन्दर सुन्दर स्वभाव है, उसकी सुन्दरता है। यह तीसरी गाथा हुई। अब चौथी (गाथा)।

★ ★ ★

गाथा - ४

अथैतदसुलभत्वेन विभाव्यते –

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स।।4।।

श्रुतपरिचितानुभूता सर्वस्यापि कामभोगबन्धकथा।
एकत्वस्योपलम्भः केवलं न सुलभो विभक्तस्य।।4।।

इह किल सकलस्यापि जीवलोकस्य सन्सारचक्रक्रोडाधिरोपितस्याश्रान्तमनन्त–द्रव्यक्षेत्रकालभवभावपरावर्त्तैः समुपक्रान्तभ्रान्तेरेकच्छत्रीकृतविश्वतया महता मोहग्रहेण गोरिव वाह्यमानस्य प्रसभोज्जृम्भिततृष्णातंकत्वेन व्यक्तान्तराधेरुत्तम्योत्तम्य मृगतृष्णायमानं विषयग्राम–मुपरुन्धानस्य परस्परमाचार्यत्वमाचरतोऽनन्तशः श्रुतपूर्वानन्तशः परिचितपूर्वानन्तशोऽनुभूतपूर्वा चैकत्वविरुद्धत्वेनात्यन्तविसम्वादिन्यपि कामभोगानुबद्धा कथा। इदं तु नित्यव्यक्ततयान्तः–प्रकाशमानमपि कषाय–चक्रेण सहैकीक्रियमाणत्वादत्यन्ततिरोभूतं सत् स्वस्यानात्मज्ञतया परेषामात्मज्ञाना–मनुपासनाच्च न कदाचिदपि श्रुतपूर्वं न कदाचिदपि परिचितपूर्वं न कदाचिदप्यनु–भूतपूर्वं च निर्मलविवेकालोकविविक्तं केवलमेकत्वम्। अत एकत्वस्य न सुलभ–त्वम्।।4।।

अब, उस एकत्व की असुलभता बताते हैं :–

है सर्व श्रुत–परिचित–अनुभूत, भोगबन्धन की कथा।
पर से जुदा एकत्व की, उपलब्धि केवल सुलभ ना।।4।।

गाथार्थ : [सर्वस्य अपि] सर्व लोक को [कामभोगबन्धकथा] कामभोग सम्बन्धी बन्ध की कथा तो [श्रुतपरिचितानुभूता] सुनने में आ गयी है, परिचय में आ गयी है, और अनुभव में भी आ गयी है, इसलिए सुलभ है; किन्तु [विभक्तस्य] भिन्न आत्मा का [एकत्वस्य उपलम्भः] एकत्व होना कभी न तो सुना है, न परिचय में आया है और न अनुभव में आया है, इसलिए [केवलं] एक वह [न सुलभः] सुलभ नहीं है।

टीका : इस समस्त जीवलोक को, कामभोगसम्बन्धी कथा एकत्व से विरुद्ध

होने से अत्यन्त विसंवाद करानेवाली है (आत्मा का अत्यन्त अनिष्ट करनेवाली है) तथापि, पहले अनन्त बार सुनने में आयी है, अनन्त बार परिचय में आयी है और अनन्त बार अनुभव में भी आ चुकी है। वह जीव लोक, संसाररूपी चक्र के मध्य में स्थित है, निरन्तर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप अनन्त परावर्तनों के कारण भ्रमण को प्राप्त हुआ है, समस्त विश्व को एकछत्र राज्य से वश करनेवाला महा मोहरूपी भूत जिसके पास बैल की भाँति भार वहन कराता है, जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी रोग के दाह से जिसको अन्तरङ्ग में पीड़ा प्रगट हुई है, आकुलित हो-होकर मृगजल की भाँति विषयग्राम को (इन्द्रियविषयों के समूह को) जिसने घेरा डाल रखा है, और वह परस्पर आचार्यत्व भी करता है (अर्थात् दूसरों से कहकर उसी प्रकार अङ्गीकार करवाता है)। इसलिए कामभोग की कथा तो सबके लिये सुलभ है। किन्तु निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला यह मात्र भिन्न आत्मा का एकत्व ही-जो कि सदा प्रगटरूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है, तथापि कषायचक्र (-कषायसमूह) के साथ एकरूप जैसा किया जाता है, इसलिए अत्यन्त तिरोभाव को प्राप्त हुआ है (-ढक रहा है) वह-अपने में अनात्मज्ञता होने से (-स्वयं आत्मा को न जानने से) और अन्य आत्मा को जाननेवालों की सङ्गति-सेवा न करने से, न तो पहले कभी सुना है, न पहले कभी परिचय में आया है और न पहले कभी अनुभव में आया है। इसलिए भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं है।

भावार्थ : इस लोक में समस्त जीव संसाररूपी चक्र पर चढ़कर पंच परावर्तनरूप भ्रमण करते हैं। वहाँ उन्हें मोहकर्मोदयरूपी पिशाच के द्वारा जोता जाता है, इसलिए वे विषयों की तृष्णारूपी दाह से पीड़ित होते हैं और उस दाह का इलाज (उपाय) इन्द्रियों के रूपादि विषयों को जानकर उनकी ओर दौड़ते हैं; तथा परस्पर भी विषयों का ही उपदेश करते हैं। इस प्रकार काम तथा भोग की कथा तो अनन्त बार सुनी, परिचय में प्राप्त की और उसी का अनुभव किया, इसलिए वह सुलभ है। किन्तु सर्व परद्रव्यों से भिन्न एक चैतन्य-चमत्कारस्वरूप अपने आत्मा की कथा का ज्ञान अपने को तो अपने से कभी नहीं हुआ, और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है, उनकी कभी सेवा नहीं की; इसलिए उसकी कथा न तो कभी सुनी, न उसका परिचय किया और न उसका अनुभव किया। इसलिए उनकी प्राप्ति सुलभ नहीं, दुर्लभ है।।4।।

गाथा - ४ पर प्रवचन

अब, उस एकत्व की असुलभता बताते हैं :- राग से पृथक् और अपनी शान्ति आदि श्रद्धा-ज्ञान से अभेद एकत्व। अभेद कहो—एकत्व कहो, भाषा (में अन्तर है)। भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्प से पृथक्-विभक्त और अपने शुद्धस्वभाव से एकत्व, स्वभाव से तन्मय, स्वभाव से तन्मय, राग से विभक्त है। ऐसी बात जगत को सुलभ नहीं। यह बात जगत को सुलभ नहीं। समझ में आया? यह बात कहते हैं, देखो! **एकत्व की असुलभता...** सुलभ नहीं, ऐसा कहा। सुलभ नहीं। महादुर्लभ है। उसे पहले तो बात सुनने को मिलना दुर्लभ है। फिर उसे पृथक् करना, सम्यक् भेदज्ञान की भूमिका में यह विकल्प उठता है, उससे पृथक् (करके), द्रव्य का लक्ष्य करके, द्रव्य का लक्ष्य करके राग से पृथक् होना और स्वभाव से एकत्व होना, यह बात बहुत दुर्लभ है। अशक्य नहीं है। समझ में आया? दुर्लभ का अर्थ ऐसा नहीं कि अशक्य है। न हो सके ऐसी बात नहीं है। परन्तु दुर्लभ है। यह बात करते हैं, देखो! चौथी (गाथा)।

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स॥४॥

है सर्व श्रुत-परिचित-अनुभूत, भोगबन्धन की कथा।
पर से जुदा एकत्व की, उपलब्धि केवल सुलभ ना॥४॥

प्राप्त केवल सुलभ ना—लाभ केवल सुलभ ना। अब टीका। पहले थोड़ा शब्दार्थ लेना है? थोड़ा अन्वयार्थ लेते हैं, थोड़ा। शब्दार्थ एकसाथ मिल जाता है।

गाथार्थ :- सर्व लोक को... सर्व जीव को। यह टीका में लेंगे। एकेन्द्रिय से लेकर पूरे लोक को, हों! निगोद से लेकर। स्पष्टीकरण बाद में करेंगे। **सर्व लोक को कामभोग सम्बन्धी बन्ध की कथा...** इच्छा और इच्छा का भोगना, उसकी बन्ध की कथा, बन्ध की कथा। इच्छा करना और इच्छा का भोगना, ऐसी कामभोग की कथा अथवा इच्छा का कर्तृत्व और इच्छा-राग का हर्ष का भोगना, ऐसी जो बन्ध की कथा **तो सुनने में आ गयी है,...** सुनने में आ गयी है। सर्व लोक को, यह बाद में अर्थ करेंगे, हों!

निगोद को भी सुनने में आ गयी है, ऐसा कहते हैं। **परिचय में आ गयी है, और अनुभव में भी आ गयी है, इसलिए सुलभ है;...** अनादि काल से यह बात है तो सुलभ है।

किन्तु भिन्न आत्मा का... राग, विकल्प मात्र उपाधि भाव है, उससे निरागी भगवान आत्मा वह राग से भिन्न और निज आनन्द, शुद्धस्वभाव से अभिन्न है, ऐसी बात **एकत्व होना कभी न तो सुना है,...** कभी सुना नहीं। सुनना कब कहलाये? कि वाचक से सुना उसे कहा जाता है कि वाच्य का भान हो तो सुना कहा जाता है। आहाहा! यह तो शास्त्र है। अध्यात्म शास्त्र मर्म की बात है। सुना नहीं। सुना नहीं? अनन्त बार सर्वज्ञ के समवसरण में गया है न? अनन्त बार समवसरण में गया। भगवान के समवसरण में अनन्त काल में अनन्त बार गया और समवसरण में अनन्त बार कल्पवृक्ष के फूल से, मणिरत्न के दीपक से भगवान की पूजा भी अनन्त बार अनन्त काल में की है। समझ में आया? सुना नहीं। सुनना उसे कहा जाता है कि जो कहने में आया, वैसा भाव अन्तर में राग से पृथक् होकर अनुभव करे तो सुना, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

कभी न तो सुना है,... ओहोहो! त्रिलोकनाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि समवसरण के मध्य में इन्द्रों की उपस्थिति में गया था। अनन्त पुद्गलपरावर्तन हुए हैं। नहीं सुना, भगवान! सुनना तो उसे कहा जाता है कि अन्दर में जाग जाये। राग शुभ-अशुभ विकल्प कोई भी हो, पर के सम्बन्ध से पर के लक्ष्य से उत्पन्न होनेवाले, उनसे पृथक् अपना आनन्द शुद्धस्वरूप, राग से पृथक् ऐसा अनुभव करे और उसका वेदन करे, तब उसने सुना है, ऐसा कहा जाता है। वरना कभी सुना ही नहीं। **न परिचय में आया है...** सुना नहीं तो अभ्यास भी किया नहीं **और न अनुभव में आया है, इसलिए एक वह सुलभ नहीं है।** पैसा-बैसा मिलना वह सुलभ नहीं, ऐसा नहीं कहा, सेठ! पैसा मिलना सुलभ नहीं, (ऐसा नहीं कहा)।

मुमुक्षु : यह तो कहते हैं कि ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मिले नहीं। क्या मिला है? यहाँ तो उपलम्भ कहेंगे, उपलम्भ कहेंगे। '**उपलम्भः**'। उपलम्भ कहो, लाभ कहो, अनुभव कहो। सेठी!

आहाहा! ऐसा नहीं कहा कि पैसा सुलभ नहीं, कीर्ति सुलभ नहीं। एक करोड़ का मकान बनाना, वह सुलभ नहीं, पुत्र-पुत्री होना वह सुलभ नहीं, ऐसा नहीं कहा। और पुण्य-पाप नहीं किये, ऐसा भी नहीं। पुण्य-पाप भी सुलभ नहीं, ऐसा नहीं कहा। पुण्य-पाप भाव भी अनन्त बार किये हैं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं कि वह सुलभ नहीं।

टीका :- इस समस्त जीवलोक को,... देखो टीका। पाठ में समस्त वि शब्द पड़ा है। अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने समस्त वि का अर्थ लोक, समस्त लोक (किया है)। लोक अर्थात् जीव। जीवलोक, ऐसा। समस्त जीवलोक (कहा तो) एकेन्द्रिय में कहाँ सुना था? यहाँ तो कहते हैं सर्व जीवों ने सुना है। समझ में आया? एकेन्द्रिय निगोद अनादि निगोद पड़े हैं। अभी कभी बाहर नहीं आये। तो कहते हैं कि हम तो (ऐसा कहते हैं) **समस्त जीवलोक को, कामभोगसम्बन्धी कथा एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यन्त विसंवाद करानेवाली है (आत्मा का अत्यन्त अनिष्ट करनेवाली है) तथापि, पहले अनन्त बार सुनने में आयी है,...** समझ में आया? एकेन्द्रिय जीव को भी अन्तर में रागादि विकल्प का एकत्वरूप से अनुभव है, वही उसके परिणाम (ऐसा दर्शाते हैं कि) सुनने में आयी है, कामभोग की (कथा) सुनने में आयी है। इसका अर्थ कि निज आनन्दस्वरूप चूककर काम अर्थात् इच्छा और भोगना हुआ है। उसने कामभोग की बात अनन्त बार सुनी है।

मुमुक्षु : भाव से सुनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव से, वह भाव है न। यहाँ भाव की बात कहनी है न। समझ में आया?

समस्त जीवलोक को... ऐसा है न? पण्डितजी! समस्त जीवलोक। पाठ में समस्त भी है और अमृतचन्द्राचार्य ने (ऐसा कहा), '**सकलस्यापि जीवलोकस्य**'। सकल में एक सम्यग्दृष्टि जीव को कम करके। उसकी बात है न यहाँ? अज्ञानी की बात है। दिगम्बर जैन साधु अट्ठाईस मूलगुण चुस्त पालन कर, शुक्ललेश्या धारण करके नौवे ग्रैवेयक गया। शुक्ललेश्या। नौवें ग्रैवेयक अन्तिम ग्रैवेयक (गया), परन्तु उसने कामभोग की बात सुनी है।

मुमुक्षु : ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़े और कामभोग की बात सुनी?

पूज्य गुरुदेवश्री : इच्छा है न, इच्छा? यह इच्छा और इच्छा को भोगना, यह कामभोग है। कामभोग अर्थात् अकेली स्त्री का भोग, यह बात है यहाँ? निज शुद्धस्वभाव से विरुद्ध इच्छा रखना और इच्छा का कर्ता होना और भोग का भोग होना, इसका नाम कामभोग है। बन्धभाव के अनुभव का नाम कामभोग है। भगवान तो ऐसा कहते हैं। विषयभोग और स्त्री-पुत्र भोग, वह तो स्थूल अनन्त बार छोड़े हैं, उसमें क्या है?

मुमुक्षु : एकेन्द्रिय को है नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो एकेन्द्रिय को है ही नहीं।

यहाँ तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य महाराज कहते हैं, प्रभु! सर्व जीव लोक ने आत्मा के शुद्धस्वरूप को राग से पृथक् नहीं किया तो उसने अनन्त बार इच्छा—राग और भोग (उसे ही भोगा है)। जयसेनाचार्यदेव ने संस्कृत टीका में ऐसा शब्द लिया है। '**कामरूपभोगाः कामभोगाः कामरूपभोगाः**' ऐसा लिया है। और दूसरा भी लिया है। तीन-चार अर्थ किये हैं। वह ठीक है। '**कामरूपभोगाः**' कामभोग अथवा काम—स्पर्शेन्द्रिय, रसेन्द्रिय दो को काम कहते हैं। और तीन इन्द्रिय को भोग कहते हैं। ऐसे दो भाग किये हैं, जयसेनाचार्य की टीका में।

यहाँ तो यह लेना है, अपना अतीन्द्रियस्वभाव जो है, उसकी दृष्टि किये बिना, अतीन्द्रिय का अनुभव सम्यग्दर्शन अतीन्द्रिय का अनुभव है, उसे छोड़कर जितने मिथ्यादृष्टि अनादि नौवें ग्रैवेयक दिगम्बर साधु होकर गया, तो कहते हैं कि उसने कामभोग की बात तो अनन्त बार सुनी है। भगवान के निकट सुना है न? शास्त्र ग्यारह अंग नौ पूर्व पढ़ा है न? समझ में आया? तो कहते हैं कि उसने कामभोग की ही बात सुनी है। क्योंकि राग से पृथक् अपने भगवान आत्मा का अनुभव नहीं किया, दृष्टि नहीं की तो उससे विरुद्ध (ही सुना है)। शास्त्र में से भी यही निकाला है कि राग से कुछ लाभ होता है, राग से किंचित् लाभ होता है, शरीर की क्रिया से लाभ होता है, पुण्य से कुछ होता है, ऐसे राग की कथा—भावबन्ध की कथा इसके अनुभव में आयी है तो अनन्त बार सुनी है, ऐसा कहा गया है। समझ में आया? आहाहा!

समस्त जीवलोक को... ओहोहो! एकेन्द्रिय, अपर्याप्त, पर्याप्त से लेकर सभी जीव, बादर, सूक्ष्म, त्रस और स्थावर पंचेन्द्रिय। जब तक मिथ्यादृष्टि है, नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' भगवान आत्मा को विषय नहीं बनाया तो उसने पर को ही विषय बनाया है, ऐसा कहते हैं। पर को विषय बनाया, उसे यहाँ कामभोग कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति को विषय नहीं बनाया। उसे विषय बनावे तो सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। उसे विषय नहीं बनाया तो इसे विषय बनाया। कुछ सुनना या यह राग करना, राग को भोगना। यह राग और रोग का भोगना, वह काम-इच्छा और इच्छा का भोग, यही बात—कामभोग की बात मिथ्यादृष्टि जीव ने (सुनी है)। एक सम्यग्दृष्टि को छोड़कर समस्त लोक लिया है। एकेन्द्रिय से लेकर सब। जैन दिगम्बर साधु हो परन्तु उसने राग से लाभ मानकर व्यवहार क्रियाकाण्ड जो अट्ठाईस मूलगुण आदि, उस राग से लाभ माना है, उसने कामभोग की ही कथा सुनी है। समझ में आया? आहाहा!

पर की दिशा की ओर का लक्ष्य करके उत्पन्न हुआ भाव तो विकारी ही होता है। और स्वआश्रय को विषय करके भाव उत्पन्न होता है, वह निर्विकारी होता है। समझ में आया? यह कामभोग शब्द प्रयोग किया है न, इसलिए लोगों को ऐसा हो जाता है कि यह कामभोग (अर्थात्) भोगना, वह काम। ऐसा नहीं।

यहाँ तो निज चैतन्यप्रभु को विषय नहीं बनाकर ऐसे पर को विषय बनाया, वही इच्छा और इच्छा का भोग ही उसने किया है। समझ में आया? भावबन्ध की कथा सुनी है, ऐसा कहते हैं। काम, भोग और बन्ध तीन शब्द पड़े हैं न? **काम भोग सम्बन्धी...** भाई! ऐसा है न? पाठ में है न? '**कामभोगानुबद्धा कथा**'। संस्कृत में ऐसा शब्द है। पण्डितजी! संस्कृत में '**कामभोगानुबद्धा**' है। अनुबन्ध-सम्बन्ध करनेवाली। संस्कृत में है। समझ में आया? इस ओर है संस्कृत। तीसरी लाईन। '**कामभोगानुबद्धा कथा**'। कामभोग सम्बन्धी कथा। स्वभाव की एकत्व सम्बन्धी बात सुनी नहीं। यह बात इसने अनन्त बार सुनी है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी कैसी बात? बात सुनी नहीं, इतना

कहते हैं न? बात सुनी है न। सुनी हो, परन्तु जब तक अन्दर में राग से पृथक् अपना अनुभव नहीं करता और राग की मिठास वेदता है तो उसने कामभोग की ही कथा सुनी है। समझ में आया? पर को विषय करके राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, वही कामभोग की कथा है। भगवान चैतन्यप्रभु को अपने श्रद्धा-ज्ञान का विषय बनाकर, अपने अनुभव में अतीन्द्रिय आनन्द स्व का विषय बनाकर आया, उसने तो यथार्थ बात—पर से भिन्नता की बात, स्व से एकत्व की बात सुनी है। परिचय में आयी और उसे तो अनुभव में भी आ गयी। समझ में आया?

भगवान आत्मा राग, विकल्प सूक्ष्म भी विकल्प। उसकी इच्छा यहाँ कहते हैं। स्वभाव का आश्रय करने से इच्छा नहीं। यहाँ बाहर के (पदार्थ को) विषय करने से, चाहे तो महाव्रत पालन करे, वह सब पर की ओर का विषय है। उस पर की इच्छा, पर की ओर का विषय और इच्छा का अनुभव। क्योंकि जिसे करता है, उसे भोगता है। जिसकी इच्छा है, उसमें रुकता है। ऐसी भावबन्ध की कथा समस्त लोक ने सुनी है। ओहोहो! समझ में आया? पंच महाव्रत के परिणाम कषाय मन्द हो, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प की राग की मन्दता हो, शास्त्र सम्बन्धी ग्यारह अंग नौ पूर्व का ज्ञान हो और नौ तत्त्व की भेदपूर्वक श्रद्धा हो, उन सबको कामभोग की कथा कहते हैं। समझ में आया?

फिर से। भगवान आत्मा निज शुद्धस्वभाव का आश्रय किये बिना जितना एकान्त से पर का आश्रय नौ पूर्व का ज्ञान किया, नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा की, वह मिथ्यादृष्टि है। नौ पूर्व का ज्ञान किया, परन्तु परलक्ष्यी किया। वह मिथ्याज्ञान है। नौ तत्त्व की भेदवाली श्रद्धा मिथ्याश्रद्धा है और पंच महाव्रत अट्ठाईस मूलगुण का राग, वह विकार है। उसमें लाभ है, ऐसा मानकर रहा, उसने भी कामभोग की कथा सुनी है। आहाहा! नौ तत्त्व का अनुभव मिथ्यात्व कहा है। क्योंकि भेद है न! समझ में आया? चिल्लाहट मचाये। (संवत्) १९९९ के वर्ष में पहली बार कहा था। अरर्र! परन्तु तुमको कहाँ ले जाना है? है न उसमें? कलशटीका में है। है न परन्तु, वह वस्तु की स्थिति है। अभेद चैतन्य का अनुभव होना, वह सम्यग्दर्शन है। समझ में आया? कहाँ है वह? १३ गाथा का ६ (कलश) इस ओर है।

'**नवतत्त्वसन्ततिमिमामात्मायमेकोऽस्तु नः**' नौ तत्त्व की सन्तति का अनुभव मिथ्यात्व है, ऐसा इसमें से निकाला, देखो! कहते हैं, **संसार-अवस्था में जीवद्रव्य नव तत्त्वरूप परिणमा है, वह तो विभावपरिणति है, इसलिए नव तत्त्वरूप वस्तु का अनुभव मिथ्यात्व है।** इन्होंने बहुत मर्म खोल दिया है। '**एको**' ऐसा कहा न? '**मेकोऽस्तु नः**'। '**मेकोऽस्तु नः**' हमारे तो एक हो। श्लोक है न? '**एको**' भगवान आत्मा... है? अन्तिम शब्द है। '**अयमेकोऽस्तु नः**'। '**नः**' अर्थात् मैं। हमारे तो अकेला आत्मा ज्ञायकमूर्ति भगवान, वही हमको हो। नौ तत्त्व की भेद की सन्तति हमको न हो। समझ में आया? बहुत सरस! राजमलजी ने कलशटीका बनायी है। बहुत मर्म! जैसी चीज़ है, वैसी बनायी है। 'पाण्डे राजमल जैनधर्मी समयसार नाटक के मर्मी।' बनारसीदास ने ऐसा कहा है। इसमें से समयसार नाटक बनाया है, इसमें। समयसार नाटक इसमें से बनाया है। समझ में आया? अन्तर का रहस्य खोलकर रख दिया है। कल पुस्तक दी है न? कलशटीका। यह। यह पढ़ा है? पहले तो यह गुजराती पढ़ा होगा न? यह हिन्दी है? हिन्दी है। गुजराती तो अब प्रकाशित होती है। ३३०० प्रतियाँ समाप्त हो गयीं। पण्डितजी! ३३०० हिन्दी प्रकाशित होती है किशनगढ़ (में) और ४४०० गुजराती यहाँ प्रकाशित होती है। ७७०० (प्रतियाँ)। ३३०० समाप्त हो गयी। लोगों को किसी प्रकार से ख्याल में आवे।

प्रभु! ऐसा मार्ग तुझे मिला, मनुष्यदेह मिला और वास्तविक तत्त्व दृष्टि में न आवे तो उसने क्या किया? समझ में आया? क्या किया? पाँच महाव्रत पाले या अट्ठाईस मूलगुण पाले, धूल है। मिथ्यादृष्टि अभव्य भी यह तो पालता है, उसमें क्या हुआ? बन्ध अधिकार में नहीं लिया? अभव्य भी ऐसा परविषय का क्रियाकाण्ड तो करता है। जिनवर ने कहे हुए व्रत, नियम, संयम (पालता है)। बन्ध अधिकार में यह नहीं कहा? उसमें क्या है? वह कहीं नयी वस्तु है? समझ में आया?

भगवान आत्मा... यहाँ कहते हैं, **समस्त जीवलोक को...** एक आत्मा का स्वविषय छोड़कर, जिसने अकेला पर को विषय बनाया तो स्व विषय तो सम्यग्दृष्टि को ही होता है। चौथे गुणस्थान में स्वविषय। थोड़ा पर रहता है, उतना बाधक है। जितना स्वविषय

बनाया, उतना साधक है। अज्ञानी ने स्वविषय बिल्कुल नहीं बनाया तो अकेला बाधक है। तो उसने कामभोग की कथा सुनी है, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? क्या नाम? सेठ! धन्यकुमार। यह समझ में आये तो धन्यकुमार है यहाँ। देखो! हमारे एक ब्रह्मचारी है धन्यकुमार। बालब्रह्मचारी है न। दस भाई हैं न? उसमें बालब्रह्मचारी है। आहाहा!

यहाँ तो धन्य उसे है, राग से पृथक् होकर अपने में एकत्व होना, वही धन्य है। समझ में आया? वह जिनेश्वर का लघुनन्दन है। लघुनन्दन है। तीर्थंकर का छोटा पुत्र। बड़े पुत्र तो चारित्रवन्त साधु हैं। अनुभवसहित की स्थिरता, आनन्द की उग्रता, प्रचुर स्वसंवेदन। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कहा न? पाँचवीं गाथा में आयेगा कि हम प्रचुर स्वसंवेदन से कहते हैं। संवेदन तो चौथे से है। संवेदन—आत्मा का अनुभव। परन्तु मुनि है तो कहते हैं,... पाँचवीं गाथा में आयेगा, हम प्रचुर स्वसंवेदन से कहते हैं। टीका में है। एक-एक शब्द में बहुत भाव भरे हैं। यह कहीं ऐसी कथा-वार्ता की बात नहीं। एक-एक शब्द में मर्म भरा है। कुन्दकुन्दाचार्य का कथन सर्वज्ञ अनुसारी बात है। त्रिलोकनाथ परमात्मा के अनुसारी हैं। है न? पाँचवीं गाथा में है। देखो! **निरन्तर झरता—आस्वाद में आता हुआ, सुन्दर जो आनन्द, उसकी छापवाला जो प्रचुरसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन, उससे जिसका जन्म है। उसकी छापवाला...** हिन्दी में १५ पृष्ठ पर है। प्रचुरसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन। भाषा कैसी है, देखो! **प्रचुरसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन,...** इतनी भाषा है। प्रचुर अर्थात् वे मुनि हैं, इसलिए लिया है। स्वसंवेदन (अर्थात्) निज आनन्द का प्रत्यक्ष वेदन है। स्व-अपना, संवेदन-प्रत्यक्ष। ऐसे स्वसंवेदन से हमारा वैभव उत्पन्न हुआ है। मुनि की दशा कहते हैं। हमारी मुनि की दशा ऐसी है। आहाहा!

चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में स्वसंवेदन है, परन्तु तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव (स्वरूप) प्रचुर सन्तों को है, वैसा नहीं है। प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप, स्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन। दो भाषा ली है। स्वसंवेदन का विशेषण है। स्वसंवेदन कैसा? कि प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप। समझ में आया? ऐसा का ऐसा मुनि कह दे तो मुनि

ऐसे हैं ही नहीं। मुनि को तो प्रचुर आनन्द की, अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय में बाढ़ आती है। भरती को क्या कहते हैं? बाढ़। समुद्र में बाढ़ आती है न! भगवान अन्दर आनन्द के सागर से भरा है, उसमें इतनी एकाग्रता हुई। छठवीं-सातवीं भूमिका मुनि किसे कहते हैं! इतनी एकाग्रता हुई कि अपनी पर्याय में—अवस्था में आनन्द की बाढ़ आती है। अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती है तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, प्रचुर स्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन से हमारा निज वैभव उत्पन्न हुआ है। वह वैभव है। धन्यकुमारजी! यहाँ तुम्हारे पैसे के वैभव की बात नहीं करते, देखो! निज वैभव। ऐ... सेठी! यह तुम्हारी धूल है, वह तो धूल है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही कहाँ इसकी? ऐसी इसकी है ही नहीं न!

निजवैभव। आहाहा! भगवान आत्मा राग से प्रथम पृथक् होकर स्वभाव से अपृथक् अर्थात् अभेद तन्मय होकर अपना संवेदन-स्वसंवेदन प्रगट किया। फिर आगे बढ़कर बहुत प्रचुर स्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन प्रगट किया। ऐसा हमारा निजवैभव वर्तमान में है। उससे मैं समयसार कहूँगा। ऐसा कहेंगे। समझ में आया? हमारी भूमिका में हमारी ऐसी दशा है। उस दशा में मैं समयसार कहूँगा। आहाहा! भगवान कहते हैं और कहूँगा, ऐसा नहीं। हमारे कुछ लेना-देना नहीं, ऐसा नहीं। हमें प्रचुर स्वसंवेदन से हमारा वैभव-पर्याय में आनन्द की बाढ़ आ गयी है—साधुपना यह मार्ग कैसा है, वह कहूँगा। यह आता है न?

प्रवचनसार में चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में आता है। यह चारित्र के प्रणेता हम खड़े। यह खड़े। यह चरणानुयोग में है। पहली गाथा है न? यह रहे हम प्रणेता। देखो! क्या है? **'तत्प्रतिपद्यताम्। यथानुभूतस्य तत्प्रतिपत्तिवर्त्मनः प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम'** कहते हैं, अहो! यथानुभूत मार्ग—श्रामण्य का यथानुभूत मार्ग, साधुपने का यथानुभूत मार्ग **उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं।** यह हम खड़े हैं। मार्ग कैसा है, वह हमारे (ज्ञान में है)। तीन कषाय के अभाव में आनन्द कैसा है और उस भूमिका में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प कैसा है, उन सबकी हमारे अनुभव से हम बात करते हैं। चरणानुयोग

(सूचक चूलिका) में शुरुआत में पहली गाथा में लिया है। पहली गाथा, हों! शुरुआत में देखो। २०१ (गाथा)। समझे? **'दुःखमोक्षार्थी तथा तत्प्रतिपद्यताम्। यथानुभूतस्य तत्प्रतिपत्तिवर्त्मनः प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम'।** आहाहा! भगवान कहते हैं, ऐसा नहीं, हम कहते हैं। अनुभव करके साधुपद कैसा है और साधुपद की भूमिका में चरणानुयोग का बाह्य व्यवहार का विकल्प किस प्रकार का है, अट्ठाईस मूलगुण आदि हमारे ख्याल में निश्चय-व्यवहार सब है। ऐसा हम कहेंगे। समझ में आया? यह तो शास्त्र है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ तो भर दिये हैं। न्याय से भरे पड़े हैं। केवलज्ञान की कमी पूरी कर डाली है। समझ में आया? भगवान के पास गये थे। कहो।

कहते हैं, **इस समस्त लोक...** एक सम्यग्दृष्टि के अतिरिक्त। **कामभोगसम्बन्धी कथा एकत्व से विरुद्ध होने से...** भाषा ली, भाई! क्या कहते हैं? एकत्व से तो विरुद्ध है। अपना शुद्धस्वभाव, अपने में एकत्व करना, वह तो यथार्थ है। ऐसे एकत्व से विरुद्ध है। अकेले राग में एकत्व होना, उस राग से पृथक् और स्वभाव से एकत्व से तो विरुद्ध है। समझ में आया? आहाहा! वह कथा सबने सुनी है, वह एकत्व से तो विरुद्ध है। अपना भगवान शुद्ध चिदानन्दमूर्ति में एकपना, एकपना, उससे यह कामभोग कथा विरुद्ध है। **एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यन्त विसंवाद करानेवाली है...** अत्यन्त दुःखदायक बात है। समझ में आया?

कथा शब्द अर्थात्? भाषा नहीं, भाव। वह तो कथा शब्द कहाँ नुकसान करता है? यह तो कथा शब्द लिया है। परन्तु कथा (शब्द) तो वाचक है, उसमें जो भावबन्ध है—जो राग से पृथक् ऐसा जो एकत्व है, उसमें राग में लाभ मानने की एकत्वबुद्धि है, वह कामभोग की बन्ध कथा एकत्व से विरुद्ध होने से अत्यन्त बुरा करानेवाली है। ओहोहो! समझ में आया? शुभराग में एकत्वबुद्धि मिथ्यादृष्टि अत्यन्त बुरा करनेवाली कामभोग की कथा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एकत्व से विरुद्ध वह कामभोग की कथा। अथवा राग से भिन्न स्वभाव से एकत्व, उससे विरुद्ध राग से एकपना, पुण्य-पाप के विकल्प से एकपना है, वही कामभोग की कथा है। समझ में आया?

अत्यन्त विसंवाद करानेवाली है (आत्मा का अत्यन्त अनिष्ट करनेवाली है)... इसमें यह शब्द लिया है, (गुजराती में) अत्यन्त बुरा करनेवाली लिया है। अपने पुरानी प्रति में। अनिष्ट कहो या बुरा कहो। समझ में आया? **तथापि...** अब भाषा करते हैं, देखो! ऐसा है। भगवान आत्मा अपनी शुद्धदशा से शुद्धस्वभाव में एकत्व है, वह तो वस्तुस्थिति है। ऐसे एकत्व से विरुद्ध। परराग अपने एकत्व से विरुद्ध, हों! राग में, पुण्य में, विकल्प में, पर के लक्ष्य में, पर की इच्छा में, पर के भोग में। रागादि, हों! इसमें एकत्व होना वह महा बुरा है। भूंडा को क्या कहते हैं? महा बुरा है। भूंडा हमारी गुजराती भाषा है। बुरा करनेवाली है—बुरा करनेवाली है, दुःखदायक है। **तथापि, पहले अनन्त बार सुनने में आयी है,...** देखो! समस्त जीवलोक को, ऊपर शब्द पड़ा है। समस्त जीवलोक को। एकेन्द्रिय से लेकर जहाँ तक राग और पुण्य का विषय करके पड़ा है, उस समस्त लोक को एकत्व से विरुद्ध दुःखदायक होने पर भी, वह अनन्त बार भावबन्ध की बात उसे सुनने में आयी है। आहाहा! समझ में आया?

कितने ही तो निगोद—नित्यनिगोद में से निकलेंगे भी नहीं। त्रस भी नहीं होंगे। उन्हें कहाँ इसमें डाला? डाला। सुन तो सही! कुछ त्रसपना भी नहीं पावे। ऐसे अनादि-अनन्त जीव की संख्या बहुत है। समझे? तथापि सुना है। क्योंकि उन्होंने राग से, विकल्प से पृथक् भगवान ऐसे एकत्व से विरुद्ध राग की इच्छा और इच्छा का भोगना उन्होंने सुना है। सुनने की अपेक्षा वेदन करते हैं। फिर सुना नहीं कहाँ आया? भाव से सुना है, भाव से परिचय किया है और भाव से वेदन करते हैं। समझ में आया? आहाहा! अरे! 'मूल मार्ग सुन लो जैन का रे...' श्रीमद् ने गाया है न? भाई! यह रागादि विकल्प से पर शुद्ध चिदानन्द प्रभु की अन्तर में दृष्टि होना और उसका स्वसंवेदनज्ञान होना और उसमें स्वरूपाचरण की स्थिरता होना, यही जैनशासन है। यह जैनशासन वहाँ से शुरु होता है। समझ में आया? यह जैन का मूल मार्ग है। जैन परमेश्वर ने यह मार्ग कहा है।

कहते हैं, इस एकत्व से भगवान स्वभाव के एकपने से विरुद्ध राग, पुण्य, इच्छा, भोग, कर्ता-इच्छा का करना... इन सबके बीज इसमें हैं, भाई! कर्ता-कर्म का भी बीज

हैं और सबके बीज इसमें हैं। यह तो बारह गाथा में तो पूरी भूमिका जयसेनाचार्य ने कह दी है। बारह गाथा में... क्या कहलाये ? पीठिका, बारह गाथा में पीठिका कही है। फिर तेरहवीं गाथा से विस्तार किया है। थोड़े में तो बारह गाथा में समझ लेगा, ऐसा जयसेनाचार्य अन्दर टीका में कहते हैं। पीठिका। वृक्ष होता है न ? पीठिका बाँधी। बारह गाथाओं में सब समाहित कर दिया है। बारह अंग का सार। फिर विस्तार (किया है)। सामान्य बुद्धि संक्षेप में न समझ सके तो फिर उसे तेरहवीं से विस्तार में कहा गया है। समझ में आया ? पीठिका है न ? भाई ! इसमें कहीं है। बारह गाथा तक पीठिका कही है। '**अथ कश्चिदासन्नभव्यः पीठिकाव्याख्यानमात्रेणैव हेयोपादेयतत्त्वं परिज्ञानय विशुद्धज्ञानदर्शन-स्वभावं निजस्वरूपं भावयति।**' '**अथ कश्चिदासन्नभव्यः**' जीव। बहुत नजदीक मुक्ति है, ऐसा प्राणी '**पीठिकाव्याख्यानमात्रेणैव**' यह बारह गाथा की पीठिकामात्र व्याख्यान से '**हेयोपादेयतत्त्वं**' आया, देखो ! राग हेय है तो भगवान आत्मा उपादेय है। ऐसा '**परिज्ञानय विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावं निजस्वरूपं भावयति। विस्तररुचिः**' इसलिए अब अधिकार शुरु होता है। तेरहवीं गाथा से। हेय उपादेय कहा न ? वापस उत्पन्न करते हैं विशुद्ध दर्शन, ज्ञान, चारित्र। भगवान आत्मा राग से विकल्प से पृथक् भगवान पूर्णानन्द प्रभु की अन्तर रुचि, दृष्टि, अनुभव है, वही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। समझ में आया ? ऐसी गाथा सुनकर भी हेय-उपादेय का भान कर सकता है। न कर सके, उसे विस्तार रुचि से तेरहवीं (गाथा) से समझाया। यह तो सब गाथाओं का बीज है। क्या कहा ?

पहले अनन्त बार सुनने में आयी है। ओहो ! निगोद का जीव भी राग को, विकार को, विषय को अनुभव करता है। यह विषय ही है। परविषय है, परविषय। समझ में आया ? इसलिए ३१वीं गाथा में लिया न ? भाई ! '**जो इंदिये जिणित्ता**'। ऐसा लिया। सम्यग्दर्शन जहाँ शुरु किया पहला '**जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं**'। अतीन्द्रिय के सामने इन्द्रिय। इन्द्रिय को जीतना उसे कहते हैं कि विकल्प है, विषय है और खण्ड इन्द्रिय है। खण्ड इन्द्रिय है, द्रव्येन्द्रिय है। खण्ड इन्द्रिय अर्थात् भावेन्द्रिय। खण्ड इन्द्रिय एक समय की पर्याय खण्ड। द्रव्येन्द्रिय और विषय। तीनों का लक्ष्य छोड़कर अपने अतीन्द्रिय आत्मा में एकाकार होता है, उसने इन्द्रिय जीती कहा जाता है।

पाठ में है न ? भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय, उसका विषय। तीन लिये हैं पाठ में, ३१ गाथा में। **'जो इंदिये जिणित्ता'** अमृतचन्द्राचार्य ने तीनों लिये हैं। **'इंदिये जिणित्ता'** में इन्द्रिय को जीतने में तीन बोल लिये हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों विषय। विषय में तो सब आते हैं। लोगों को जरा कठिन पड़ता है। यहाँ तो काम आया न, इसलिए जरा ख्याल में आ गया। विषय समझे ? शब्द सुनने की इच्छा भी वह परविषय है। कठिन बात है। समझ में आया ? परविषय है। शब्द सुनना वह परविषय है, स्वविषय नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र सुने, वह परविषय है। भगवान की मूर्ति को देखना, वह परविषय है; स्वविषय नहीं।

यह तो भाई ! मूल बात है। मूल बात में अकेले तत्त्व के बीज पड़े हैं। कुन्दकुन्दाचार्य और अमृतचन्द्राचार्य। टीका वह टीका, भरतक्षेत्र में कोई अजोड़ टीका है। है ऐसे सत्य का अकेला प्रवाह खोल दिया है। समझ में आया ? अपनी भूमिका में रहकर विकल्प आया और शास्त्र रच गये। वाणी से, हों ! हमने नहीं रचे, हों ! भाईसाहब। हमको नहीं कहते, गाली नहीं देते, ऐसा कहते हैं वहाँ। ऐसे मोह से नहीं नाचते, हों ! प्रवचनसार में अन्तिम गाथा (कलश) में कहा है। ऐसे मोह से नहीं नाचते कि हमने बनाया है। शब्द तुमको समझा सकते हैं और हम शब्द के कर्ता हैं, ऐसा नहीं मानना। ऐसे मोह से मत नाचो। समझ में आया ? प्रवचनसार की अन्तिम गाथा (कलश) में है। ले लिया है। शब्द को कहीं हमने नहीं बनाया, टीका हमने नहीं बनायी, शब्द से बनी है। पुद्गल की पर्याय है। क्या हम उसके कर्ता हैं ? मैं तो ज्ञान में गुप्त हूँ। ... अमृतचन्द्राचार्य ज्ञान में डूबे हुए हैं। उनका किंचित् कार्य है नहीं। आहाहा ! यहाँ तो थोड़े शब्द बोले और जहाँ भाषण करे और एक पुस्तक (बनावे वहाँ)... लिखो, लिखो। पत्रिका में लिखो कि हमने बनाया है। अरे भगवान ! क्या है ? परद्रव्य की क्रिया कौन कर सकता है, तू ऐसा अभिमान करता है। समझ में आया ? भगवान ! वाणी निकलती है, वह कौन बोले ?

वाणी की पर्याय शब्दवर्गणा से उत्पन्न होती है। आत्मा का विकल्प है तो विकल्प का निमित्त पाकर उत्पन्न होती है, ऐसा है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? कौन करे वाणी और कौन रचे शास्त्र और कौन करे टीका? नटुभाई! यह वकालत अलग प्रकार की है। आहाहा!

कहते हैं, भले एकत्व से विरुद्ध हो, परन्तु अनन्त बार सुनने में तो आ गयी है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यही बात सुनी है। जब तीर्थंकर के पास गया, (तब भी) इसे राग रुचा है, राग। विकल्प ठीक है, पुण्य ठीक है, परविषय किया तो राग हुआ और राग हो तो स्वभाव की दृष्टि होगी। तो उसकी मिठास राग में ही रह गयी है। समझ में आया? यह कामभोग की कथा भगवान के निकट सुनी। दिव्यध्वनि सुनी न? दिव्यध्वनि में जो कहना था, राग से पृथक् और स्वभाव से एकत्व, वह तो किया नहीं। समझ में आया? वहाँ भी (ऐसा ही माना कि) भगवान ऐसा कहते हैं, हों! राग है न, राग है न, कषाय मन्द है न, मन्दता से अन्दर में जाने की अनुकूलता होगी। धर्मानुराग से अन्दर (जाया जा सकेगा)। परन्तु भगवान! राग की दिशा पर है और उसकी दशा छोड़कर स्व की दिशा करना, यह तो उसकी दिशा छोड़ने पर होता है। क्या पर की दिशा रखकर स्व में जाता है? समझ में आया? ऐसे जीव ने भी भगवान के पास कामभोग की बात सुनी है। अपना स्वभाव, राग से भिन्न की बात सुनी नहीं। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण १३, रविवार, दिनांक - १४-०८-१९६६
गाथा - ४, प्रवचन - १६

चौथी गाथा चलती है। क्या कहते हैं आचार्य महाराज? कुन्दकुन्दाचार्यदेव चौथी गाथा में ऐसा कहते हैं कि यह भगवान आत्मा जो शुद्ध आनन्दघन है, उसे राग, पुण्य-पाप के विकल्प राग और शरीर, कर्म से भिन्न अपना शुद्धस्वरूप अपनी शुद्ध दृष्टि करके राग से भिन्न एकत्व की प्राप्ति होना, आत्मा को महादुर्लभ है। सुलभ नहीं। यहाँ तो ऐसा शब्द है, सुलभ नहीं।

आत्मा एक समय में पूर्ण आनन्द ज्ञायक अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसे विकल्प दया, दान आदि व्यवहार विकल्प या अशुभ आदि राग, उससे भिन्न निज स्वभाव की दृष्टि करके राग से पृथक् करके अपना एकपना प्राप्त करना महासुलभ नहीं, वह सुलभ नहीं। दूसरी सभी चीज़ें सुलभ हैं। समझ में आया? पुण्य का करना, पाप का करना, उसका फल भोगना, ऐसी बात अनन्त बार मिली है तो वह सुलभ नहीं, ऐसा नहीं। सुलभ नहीं, ऐसा नहीं। दो नकार हो गये न? पण्डितजी! वह तो अनन्त बार (मिला है)। वह यह बात करते हैं, देखो!

टीका थोड़ी चली है। फिर से। **इस समस्त जीवलोक को,...** एकेन्द्रिय से लेकर समस्त जीव जब तक मिथ्यादृष्टि है, तब तक की यहाँ बात करते हैं। सम्यग्दृष्टि की बात नहीं है। वह तो राग से, पुण्य से, व्यवहार से भिन्न पड़कर अपने एकत्व का अनुभव हुआ है, उसकी बात यहाँ नहीं है। समझ में आया? समस्त लोक में यह निकाल दिया। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य सामान्य ज्ञायकस्वभाव ध्रुव का अवलम्बन लेकर विकल्प दया, दानादि के राग शुभ से पृथक् होकर निज एकत्व का अनुभव हुआ, वह तो सम्यग्दृष्टि है। उसे तो एकत्व जो असुलभ था, वह सुलभ हो गया है। सेठी! जो असुलभ था अर्थात् दुर्लभ था, उसे सुलभ प्राप्ति हो गयी है। उपलम्भ। समझ में आया? '**एयत्तस्सुवलंभो**' है न? तीसरे पद में। भाई! '**एयत्तस्सुवलंभो**'। एकत्व की

प्राप्ति कहो, एकत्व का लाभ कहो, एकत्व का अनुभव कहो। यह तीसरे पद में है। समझ में आया?

भगवान आत्मा एकत्व को प्राप्त—आत्मा का लाभ—सम्यग्दृष्टि को तो हो गया है। आत्मा का लाभ हो गया है। इसका अर्थ क्या? कि अनन्त काल में शुद्ध अभेद चैतन्यमूर्ति था, उसका लाभ नहीं था। तो लाभ में क्या था? राग, दया, दान, काम, क्रोध के विकल्प विकार का लाभ था। वह तो मिथ्यात्व का लाभ है, आत्मा का लाभ नहीं। समझ में आया? आत्मा का लाभ तो उसे कहते हैं... यह बनिया नहीं कहते? लाभ सवाया। लक्ष लाभ। बनिया बहुत कहे, सवाया लाभ। वह लाभ नहीं। यहाँ तो भगवान उपलम्भ। आत्मा आनन्दस्वरूप का अतीन्द्रिय अनुभव होना, आनन्द का वेदन होना। वेदन द्वारा पूरा आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है, ऐसा अनुभवपूर्वक निर्विकल्प प्रतीति होना, इसका नाम आत्मा का लाभ हुआ कहा जाता है। आत्मा के लाभ का अर्थ आत्मा कोई नयी चीज़ है? परन्तु दृष्टि में लाभ नहीं था, वह दृष्टि में लाभ हुआ। इस अपेक्षा से एकत्व उपलम्भ कहा है। वह सुलभ नहीं, सुलभ नहीं परन्तु ज्ञानी को सुलभ हो गया है। समझ में आया?

कहते हैं कि इसके अतिरिक्त के जीव **समस्त जीव लोक...** एकेन्द्रिय निगोद से लेकर सब। **काम भोग सम्बन्धी कथा...** काम अर्थात् इच्छा और इच्छा का भोगना। इच्छा का करना और इच्छा का भोगना। ऐसी कथा अथवा बन्धभाव की कथा। भगवान आत्मा अबन्धस्वभावी है। वस्तु अबन्धस्वभावी आत्मा है। उसमें बन्ध कथा—पुण्य और पाप विकल्प से बन्ध होता है, ऐसी वार्ता, बन्ध कथा **एकत्व से विरुद्ध होने से...** यह राग भावबन्ध से पृथक् अपना एकत्व स्वरूप है, ऐसे एकत्व से पुण्य की बात, पुण्य का करना, राग का करना, राग को भोगना, वह स्वभाव के एकत्व से विरुद्ध होने पर भी। होने पर भी, कहते हैं? हिन्दी में क्या कहते हैं? समझ में आया? विरुद्ध होने पर भी अत्यन्त विसंवाद करनेवाली है। विरुद्ध होने से भगवान आत्मा में पुण्य-पाप के भाव करना, भोगना और बन्धभाव में एकत्व होना, वह, स्वभाव से—राग से भिन्न (स्व के) एकत्व से—विरुद्ध होने से अत्यन्त झगड़ा करानेवाली है, दुःख करानेवाली, वह

कथा है। कथा शब्द से भाव। कथा के वाचक का यहाँ काम नहीं। शब्द तो कथा लेते हैं, हों! कामभोग सम्बन्धी कथा। कथा का अर्थ भाव। समझ में आया?

ऐसा भाव अत्यन्त विसंवादी होने से **तथापि, पहले अनन्त बार सुनने में आयी है,...** अनन्त बार निगोद के जीव को और पंचेन्द्रिय जीव को भी राग करना, राग को भोगना, बन्धभाव मेरी वस्तु है—ऐसा अनुभव अनन्त बार जीव को हो गया है। समझ में आया? **अनन्त बार परिचय में आयी है...** अनन्त बार अभ्यास भी हो गया है। निगोद से लेकर मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी नौवें ग्रैवेयक तक चला गया तो भी वह राग की कथा उसने अनुभव की है, उसे विकार का ही अनुभव है। विकार से रहित मेरा अखण्ड आनन्दस्वरूप है, उसका उसे अनुभव है नहीं। तो कहते हैं कि पहले अनन्त बार विकथा और विकार अभ्यास में आ गया है। भावबन्ध, भावबन्ध। पुण्य-पाप का स्वभाव, उसमें रुकना—ऐसा भावबन्ध अनन्त बार भावबन्ध से भिन्न एकत्व से विरुद्ध होने पर भी अनन्त बार वह भाव अनुभव में आ गया है। अनन्त बार अनुभव में आ गया है। क्यों?

जीवलोक—इस जगत के एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि प्राणी **संसाररूपी चक्र के मध्य में स्थित है,...** आहाहा! चक्र होता है न? चक्र। चक्की होती है न? घंटी को क्या कहते हैं? चक्की। चक्की के दो पाट के मध्य में। दो पड़ के मध्य में। ऐसा लिखा है, देखो! **संसाररूपी चक्र...** पुण्य-पापरूपी भाव, वह संसार की चक्की है। आहाहा! शुभ-अशुभभाव, वह कर्मचक्र है। सूक्ष्म बात है परन्तु भाषा सादी है। उसमें कुछ कठिन नहीं है। ऐसा लगे कि अरे! यह तो सूक्ष्म-सूक्ष्म (बात है)। परन्तु सूक्ष्म नहीं, भगवान! यहाँ कहते हैं, संसाररूपी चक्र। चक्र क्यों कहा? चक्की के दो पाट के बीच रहता है, वह पिस जाता है। उसी प्रकार पुण्य और पाप के चक्र में रहता है, वह चार गति में दुःख में पिस जाता है। समझ में आया? संसाररूपी चक्र, उसमें भी मध्य में पाठ लिया है। छोर में हो वह तो निकल जाये। बीच में हो... चक्की का पाट हो न? बीच में जहाँ कीला हो न? कीला होता है न? कीला कहते हैं न? कीले में हो तो पिसे नहीं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अपने स्वरूप की राग से पृथक्ता को भूलकर राग के

साथ एकाकार होकर चक्र के मध्य में स्थित है। पुण्य-पाप के विकल्प के मध्य में स्थित है। पुण्य और पाप, पुण्य और पाप, शुभ और अशुभभाव। समझ में आया? शुभ-अशुभभाव से रहित स्वदिशा का, स्वदशा का स्वदिशा की ओर होकर स्वदशा में पुण्य-पाप से भिन्नता होना, उसे सुलभ नहीं। समझ में आया? दुर्लभ है। क्योंकि अनन्त काल से वह दिशा ही देखी नहीं। स्पष्टीकरण करेंगे। **चक्र के मध्य में स्थित है,...** शुभ-अशुभ विकल्प के मध्य में स्थित है। भगवान आत्मा, वह शुभ-अशुभराग से भिन्न है, उसके साथ एकपना नहीं। स्वभाव से एकपना है। ऐसा स्वरूप है। परन्तु उसे खोकर पुण्य-पाप के मध्य में स्थित है तो निरन्तर... निरन्तर न? '**अश्रान्त**'। '**अश्रान्त**' का अर्थ किया न? भाई! '**अश्रान्त**' संस्कृत में है न? विराम (नहीं)। '**अश्रान्त**' —शान्ति नहीं। शान्ति नहीं विराम बिना। निरन्तर—हमेशा।

द्रव्य... प्रत्येक प्राणी। निगोद से लेकर, नित्यनिगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक मिथ्यादृष्टि गया, उन सब जीवों की बात ली है। समझ में आया? पंच महाव्रत अनन्त बार लिये, अट्ठाईस मूलगुण अनन्त बार पालन किये। वह सब कर्म चक्र है। समझ में आया? आहाहा! उसके मध्य में रहकर **निरन्तर द्रव्य...** जगत के पदार्थ के संयोग में परिभ्रमण किया, क्षेत्र में परिभ्रमण किया, काल में परिभ्रमण किया, भव में परिभ्रमण किया। अब अपने वजन यहाँ लेना है, भाई! भाव में वजन लेना है। भाव—शुभ और अशुभ दोनों भाव। दोनों अनन्त परावर्तन के कारण से। दोनों में अनन्त बार शुभाशुभभाव हो गये हैं। देखो! यहाँ कहते हैं, निगोद को भी अनन्त बार शुभाशुभभाव हो गये हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह क्या कहते हैं?

जीवलोक। जीवलोक में पहले क्या (कहा)? समस्त जीवलोक। समस्त में पहले क्या? एकेन्द्रिय से (लेकर) नौवें ग्रैवेयक गया मिथ्यादृष्टि, यह समस्त लोक की बात है। उसमें **भावरूप अनन्त परावर्तनों के कारण...** भाव—शुभ और अशुभ दोनों निगोद में भी है। सबमें अनन्त परावर्तन किये। फूलचन्दजी ने तो अभी निकाला था न? साता-असाता, साता-असाता, साता-असाता क्षण-क्षण में बाँधता ही है। नित्यनिगोद भी। नित्यनिगोद में शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ अनन्त बार हुए हैं। समझ में आया? मनुष्य होता है, तब शुभ होता है, वह अलग प्रकार का। निगोद में से जब मनुष्य

होता है, तब जो शुभभाव होता है, वह दूसरे प्रकार का। वह शुभभाव होता है तो मनुष्य का आयुष्य बँध जाता है और बाहर आ जाता है। यह नहीं। इसके अतिरिक्त अनन्त बार मनुष्यपना प्राप्त किये बिना निगोद में भी उसमें रहकर शुभ और अशुभभाव अनन्त बार परावर्तन किये हैं।

मुमुक्षु : परावर्तन अर्थात्?

पूज्य गुरुदेवश्री : परिभ्रमण, भटकना। परावर्तन-घूमना। शुभ-अशुभ में घूमना। शुभ-अशुभ में फिरा। भगवान आत्मा शुभ-अशुभ से रहित है, ऐसा अनुभव कभी किया नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... उसे शुभाशुभभाव है। यहाँ तो भावपरिभ्रमण किया तो चार गति का भ्रमण हुआ, ऐसा। बाहर भले न निकला हो, यह तो पहले कहा नहीं? यह कथा सुनी तो नहीं, परन्तु उस भाव का अनुभव हुआ तो कथा सुनी, ऐसा कहने में आता है। ऐसे चार गति का जो भाव है, उसे वेदन करता है तो चार गति में भ्रमण करता है, ऐसा कहने में आया। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो अपने वजन देना है, भाव (के ऊपर)। भाई! निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक पर्यन्त मिथ्यादृष्टि जो जैन दिगम्बर (साधु) होकर गया, उसने भाव शुभाशुभ परावर्तन अनन्त बार किये हैं। समझ में आया? शुभ और अशुभभाव। शुक्ललेश्या की बात है, हों! उसे शुक्ललेश्या नहीं। निगोद को शुभभाव है। शुक्ललेश्या नहीं। बाहर निकलकर जैन दिगम्बर साधु हुआ, महा पंच महाव्रत चुस्त (पालन करे)। दूसरे देवलोक की इन्द्राणी डिगाने आवे तो डिगे नहीं, ऐसा शुभभाव (हुआ), परन्तु राग वह मेरा कर्तव्य है, मेरा फर्ज है, मेरा आचरण है, वही मेरा काम है। ऐसी बुद्धि वहाँ रुक गयी है तो उसने शुभाशुभभाव में अनन्त बार परिभ्रमण किया है। समझ में आया? इस कामभोग शब्द में यह है। कामभोग अर्थात् यह भोग और ऐसी बात नहीं। ऐसा तो बाहर का अनन्त बार छोड़ा है। बाहर के कामभोग बायडी—स्त्री, पुत्र के भोग तो अनन्त बार छोड़े। उसमें क्या हुआ? नौवें ग्रैवेयक गया तब।

काम अर्थात् राग और भोग अर्थात् भोगना-अनुभव करना। दूसरी भाषा में (कहें तो) राग-विकल्प का करना और विकल्प को भोगना। ऐसा निर्विकल्प अपना स्वभाव, राग से भिन्न की बात (और) एकत्व की सुनी नहीं। यह बात अनन्त बार सुनी है। सूक्ष्म बात है, जयसुखभाई! आहाहा! भगवान! कहते हैं कि तूने बात सुनी नहीं। राग है, वह बन्धभाव है और बन्धभाव में शुभाशुभभाव है। बस, उसके कारण से अनन्त बार द्रव्यसंयोग मिला, अनन्त बार क्षेत्र में परिभ्रमण किया, अनन्त बार काल में परिभ्रमण किया, अनन्त बार भव में (परिभ्रमण किया)। और उस भव के कारणरूप भाव में अनन्त बार शुभाशुभभाव किये।

अनन्त परावर्तनों के कारण भ्रमण को प्राप्त हुआ है,... यह तो भ्रमण-गति, भ्रमण... भ्रमण... भ्रमण... भ्रमण हुआ है। भगवान आत्मा राग और विकल्प से रहित, उसके अनन्त आनन्द का अनुभव नहीं करके उस शुभाशुभभाव के कर्ता-भोक्ता के दुःख का ही इसे वेदन हुआ है। शुभभाव भी दुःख है। पंच महाव्रत के परिणाम, वे दुःख हैं।

मुमुक्षु : देव को भी दुःख है?

पूज्य गुरुदेवश्री : देव को और बड़ा दुःख है। शास्त्र में लिखा है न? अंगारा। देव के विषय के अंगारों में सिंकेगा। शेकाशे को क्या कहते हैं? सिंकता है। समझ में आया? देवलोक में धूल है। वहाँ इन्द्रिय के विषय की ओर अशुभ (उपयोग) जाता है तो राग-अग्नि है, अग्नि है। शुभभाव के फल में अग्नि के अंगारों में सिंकेगा, ऐसा अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं।

मुमुक्षु : एकेन्द्रिय में जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में देव में क्या है? देव में और एकेन्द्रिय में सब गति के वेश हैं। गति के पर के वेश हैं। शुभभाव हुआ तो गति का वेश पलटा—स्वर्ग का। आत्मा कहाँ पलटा है उसमें? सब वेश पलटे। किसी समय स्वर्ग का वेश आया, किसी समय नरक का वेश आया। वेश पलटा परन्तु अन्तर दशा कहाँ पलटी है? समझ में आया?

यहाँ तो पहले से बात (है कि), भगवान आत्मा ज्ञायक चिदानन्द प्रभु, वह राग

का भी कर्ता नहीं। विकल्प, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का कर्तृत्व आत्मा में नहीं। हो जाओ, परन्तु मैं करूँ, ऐसी बुद्धि सम्यग्दृष्टि की नहीं। ऐसा मिथ्यादृष्टि शुभभाव में कर्तृत्व मानकर, शुभभाव का स्वामी होकर, मिथ्यादृष्टि होकर शुभ-अशुभभाव में अनन्त बार परिभ्रमण किया। समझ में आया? **भ्रमण को प्राप्त हुआ है,** ऐसा कहते हैं। गति... गति... गति। फूदड़ी फिरती है न? ऐसे फूदड़ी नहीं फिरती? ऐसे-ऐसे फिरते-फिरते गति ऐसी हो जाती है, हों! एकदम भ्रमे। एकदम यदि रोके तो गिर जाये। ऐसे चक्कर आवे। दृष्टान्त नहीं दिया था? चक्कर।

श्रीमद् राजचन्द्र ने लिखा है। सोलह वर्ष की उम्र में, हों! उनकी तो बुद्धि बहुत थी न! सोलह वर्ष—एक और छह। समझ में आया? 'तो भी अरे भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।' 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला।' सोलह वर्ष में कहते हैं। मोक्षमाला बनायी। १०८ पाठ (लिखे)। सात वर्ष में जातिस्मरण हुआ था। सात वर्ष की उम्र में जातिस्मरण—पूर्व भव का भान था और ३३ वर्ष में देह छूट गयी। सोलह वर्ष में १०८ पाठ बनाये—मोक्षमाला। माला के १०८ मणका होते हैं। तो १०८ (पाठ) बनाये। सोलह वर्ष—एक और छह। देह की बाल अवस्था। आत्मा को कोई अवस्था-बवस्था लागू नहीं पड़ती। 'बहु पुण्य पुंज प्रसंग से शुभ देह मानव का मिला', देखो! उसका चक्र क्या कहते हैं? 'तो भी अरे...! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।' क्या कहते हैं? देखो! सोलह वर्ष में। 'तो भी अरे...! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।' आंटो समझे? चक्कर। एक चक्कर यदि फिर जाये तो सब फिर जाये। एक चक्कर फिर जाये तो सब फिर जाये। परन्तु अनन्त काल में परिभ्रमण करके चक्र को... देखो! वहाँ भी चक्र आया, यहाँ भी चक्र है। 'तो भी अरे...! भवचक्र का फेरा न एक कभी टला।' कैसे किया? ऐसे चक्र चलते... चलते... चलते... चलते... यदि खड़ा रह जाये तो चक्र का फेर मिट जाये। गुलाँट खा जाये तो मिट जाये। क्या कहते हैं? ऐसे-ऐसे करते यदि खड़ा रह जाये तो गिर जाये। परन्तु ऐसे फूदड़ी फिरते-फिरते यदि ऐसे एक बार फिर जाये तो खड़ा रह जाये। एक चक्कर उल्टा मारे तो खड़ा रह जाये। चक्कर मिट जाये। समझ में आया?

इसी प्रकार अनन्त काल से मिथ्यादृष्टि... यहाँ अभी कहेंगे। भूत लगा है, मिथ्यात्व का भूत लगा है उसे। पाँच विषयों के अन्दर शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श (सब आ जाते हैं)। विषय शब्द से अकेला भोग नहीं। भगवान की वाणी सुनना भी परलक्ष्य से सुनना, वह भी विषय है।

मुमुक्षु : भगवान के दर्शन करना, वह भी विषय हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय है तो क्या है? खण्ड इन्द्रिय, अपनी खण्ड भावेन्द्रिय है, उसका लक्ष्य करके बाहर देखना, वह इन्द्रिय का अजीतना है। खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय तो कही थी। खण्ड इन्द्रिय अर्थात् भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय। सब विषय। इन तीनों को जीतकर अतीन्द्रिय दृष्टि होती है, तब इन्द्रिय को जीती—ऐसा कहा जाता है। ऐसे इन्द्रिय को बाहर से जीती, ऐसे इन्द्रिय को जीता नहीं। इन्द्रिय का भावज्ञान जो खण्ड-खण्ड है, उसके द्वारा अवलम्बन करके देखना, वह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझ में आया? है न उसमें? ३१ गाथा में है न? भाई! उसमें बहुत विस्तार किया है। देखो!

भावेन्द्रिय... **भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयों में व्यापाररूप से जो विषयों को खण्ड-खण्ड ग्रहण करती है।** ज्ञान को खण्ड-खण्डरूप से जतलाती है। गुजराती भाषा है। ज्ञान की पर्याय में खण्ड-खण्ड जानता है और खण्ड-खण्ड जानकर एक विषय को जानता है, वह मिथ्यादृष्टि है। देखो! अन्दर। यह समयसार तो सब गूढ़ रहस्य से भरा है। भावेन्द्रिय है न बीच में? भाई! बीच में है। अपने भावेन्द्रिय की बात है। **भिन्न-भिन्न अपने-अपने विषयों में व्यापाररूप से जो विषयों को खण्ड-खण्ड ग्रहण करती है।** जो विषयों को खण्ड-खण्ड ग्रहण करती है। **(अर्थात् ज्ञान को खण्ड-खण्डरूप जतलाती है) ऐसी भावेन्द्रिय...** यह ज्ञान की खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से देखना, वह भी बन्धकथा की बात है। यहाँ अखण्ड ज्ञायकभाव जो चैतन्य है, उसकी दृष्टि करके जानता नहीं और अकेली भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड से उसमें लक्ष्य करके ज्ञान को खण्ड-खण्ड बतलाता है, और उस समय मात्र परविषय के ऊपर ही लक्ष्य जाता है। दोनों बन्धकथा है और दोनों भाव बन्ध का कारण है। आहाहा! गजब बात, भाई! नहीं समझ में आता,

ऐसा नहीं लेना, हों! आत्मा है, भगवान है न, भाई! ऐसा नहीं लेना कि कोई बात सूक्ष्म आ जाये तो हमको नहीं समझ में आती। समझ में तो लो, ख्याल में तो लो कि यह चीज़ क्या है? आहाहा!

संस्कृत में है। खण्ड-खण्ड दिखलाती है। बहुत सूक्ष्म बात है यह। '**जो इंदिये जिणित्ता**' शब्द तो ऐसा पाठ है। परन्तु इस '**इंदिये जिणित्ता**' का अर्थ ऐसा नहीं। इन्द्रिय अर्थात् भावेन्द्रिय जो अन्दर खण्ड-खण्ड इन्द्रिय की ओर की पर्याय के ऊपर लक्ष्य करके पर को देखना है, वह सब मिथ्यात्वभाव है। उसने इन्द्रिय को नहीं जीता। उसमें है। ३१ गाथा (समयसार)। समझ में आया? भगवान आत्मा एकत्व होने पर भी... देखो! पर से खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, विषयों और द्रव्येन्द्रिय से भिन्न एकत्व होना, वह यह कहते हैं। महाअसुलभ है, सुलभ नहीं। अनादि से यह सुलभ हो गया है। जैन साधु हुआ। समझ में आया? जैन श्रावक द्रव्यलिंगी अनन्त बार हुआ, परन्तु इसने यह भावेन्द्रिय खण्ड-खण्ड से ऐसे जाना, वह सब पर्यायबुद्धि है, खण्ड-खण्ड बुद्धि है। उस मिथ्याबुद्धि से चाहे तो भगवान की दिव्यध्वनि सुने तो भी वह परविषय में ही जाता है। वह इन्द्रिय को नहीं जीतने में जाता है। आहाहा! समझ में आया? यह कहेंगे, भाई! मृगजल की भाँति विषयग्राम को घेरा डालता है। अब आयेगा। इसमें सब लिया है। अमृतचन्द्राचार्य ने तो गजब टीका की है! ओहोहो! ऐसी अनुभवपूर्वक की टीका भरतक्षेत्र में नहीं। भगवान के पास हो तो वह बात अलग है, भगवान विराजते हैं। समझ में आया? यह सन्तों की वाणी आत्मस्पर्श करके निकली है। यथार्थ ज्ञान करके। वाणी तो वाणी से निकली है।

कहते हैं, यहाँ अब बाद में आयेगा, हों! यहाँ तो अपने जरा शुभाशुभभाव की बात आयी न! शुभभाव भी खण्ड-खण्ड इन्द्रिय द्वारा पर को जानने से, भले कषाय मन्द हुई, भगवान के दर्शन से, वाणी सुनने से, परन्तु वह भाव खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से जानने से हुआ है। अतीन्द्रिय ज्ञान के लक्ष्य से शुभभाव होता ही नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा अतीन्द्रिय प्रभु के लक्ष्य से तो राग की पृथक्ता का भाव प्रगट होता है। वह खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय, तीनों के लक्ष्य से उसका ज्ञान नहीं

होता। आहाहा! सम्यग्दृष्टि को खण्ड-खण्ड इन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और विषय की ओर से ज्ञान नहीं होता। भगवान आत्मा... यह गजब परन्तु मोक्ष के मार्ग की बात है, प्रभु! सादि-अनन्त (आनन्द)... 'सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में' मोक्ष अर्थात्?

सादि अनन्त अनन्त समाधि सुख में
अनन्त दर्शन ज्ञान (अनन्त) सहित जो
अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द की चतुष्टय पर्यायसहित प्राप्त, अनन्त चतुष्टयसहित पूर्ण दशा की भावना करनेवाला कहते हैं कि अहो! हमारा आत्मा राग से पृथक् है, ऐसा भान हुआ, परन्तु अस्थिरता टालकर स्थिरता होकर पूर्ण केवलज्ञान की पर्याय मैं कब प्राप्त करूँगा? समझ में आया?

कहते हैं, अज्ञानी अनादि काल से जैन के बाह्य क्रियाकाण्ड में झुक गया। जैनशास्त्र की जो व्यवहारिक आज्ञा है, जिनदेव ने कहे हुए व्रत, नियम, तप (पालन किये)। बन्ध अधिकार में है। जिनवर ने कहे हुए। समझ में आया? टीकाकार ने फिर जिनवर शब्द नहीं रखा। सम्पूर्ण शब्द रखा है, सम्पूर्ण शब्द रखा है। उसमें सिद्धान्त है। पाठ में जिनवर कहा है। बन्ध अधिकार में देखो न! यह नया ग्रन्थ है न हमारे पास। पुराना हमारे पास नहीं। बन्ध अधिकार २७३ (गाथा) देखो!

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं।
कुव्वंतो वि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठी दु॥२७३॥

'**जिणवरेहि पण्णत्तं**' आहाहा! कहाँ लिखा है? देखो! पाठ में जिनवर है, टीका में जिनवर नहीं लिया। कारण है। शील और तप से परिपूर्ण शब्द लिया है। क्यों परिपूर्ण लिया? कि जिनवर ने कहा हुआ जो भाव, व्यवहार, हों! उसे यहाँ परिपूर्ण कहते हैं। व्यवहार परिपूर्ण। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि का जो व्यवहार है, वह परिपूर्ण नहीं उसका। २७३ गाथा है, २७३। तोंत्तेर समझे? तिहत्तर। भाई! हमको कहाँ तुम्हारी हिन्दी आती है। दो, सात, तीन। '**वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं। कुव्वंतो वि अभव्वो**' अभव्य का दृष्टान्त दिया है, हों! '**अण्णाणी मिच्छदिट्ठी**'। २७३ है न! उसकी

टीका देखो ! टीका में जिनवर शब्द नहीं लिया। टीका में शील, तप परिपूर्ण—ऐसा शब्द लिया है। परिपूर्ण शील पालन करे। कषाय मन्द... मन्द... मन्द... और तप, वह कैसा तप ? बारह-बारह महीने के अपवास आदि। परिपूर्ण शब्द का अर्थ क्या है ? कि जिनवर जो व्यवहार कहते हैं, वह व्यवहार चुस्त है, व्यवहार, तो जिनवर ने कहे हुए शब्द नहीं डालकर नीचे परिपूर्ण शब्द लिया है। मिथ्यादृष्टि की आज्ञा में ऐसा व्यवहार शब्द कभी होता नहीं। समझ में आया ? जिनवर ने कहा हुआ व्यवहार। निश्चय बिना जो अकेला व्यवहार किया तो जिनवर ने कहे हुए, ऐसा आचार्य महाराज ने शब्द लिया है। टीकाकार ने सम्पूर्ण लिया है। सम्पूर्ण का अर्थ वीतराग की आज्ञा में जो व्यवहार आया, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि की आज्ञा में नहीं, उस व्यवहार की जो उत्कृष्ट क्रिया है, ऐसे उत्कृष्ट परिणाम उसे हो गये हैं। उसे यहाँ शील और तप से परिपूर्ण कहा गया है। व्यवहार में शील और तप से परिपूर्ण। इसका अर्थ—जिनवर ने कहे हुए व्यवहार की आज्ञा में परिपूर्ण चुस्त भाव है। समझ में आया ? बाद में शब्द है, देखो !

शील और तप से परिपूर्ण, तीन गुप्ति और पाँच समिति के प्रति सावधानी से भरपूर... ऐसा शब्द लिया है। भगवान ने कहे हुए व्यवहार क्रियाकाण्ड दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय आदि निश्चय बिना, हों ! सावधानी से युक्त कहा, देखो ! **अहिंसादि पाँच महाव्रतरूप व्यवहारचारित्र अभव्य भी करता है अर्थात् पालन करता है; तो भी वह (अभव्य) निश्चारित्र (-चारित्ररहित), अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि ही है, क्योंकि निश्चयचारित्र के कारणरूप ज्ञान-श्रद्धान से शून्य है।** निज स्वरूप के दर्शन और ज्ञान जो मूल कारण है, उस कारण से रहित है। मात्र व्यवहार व्रत, शीलादि सम्पूर्ण पालन करता है तो भी वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ अभव्य जैसा है। अभव्य का तो दृष्टान्त दिया है। वे लोग कहते हैं, यह तो अभव्य की बात है। वे रतनचन्दजी ऐसा कहते हैं। यह तो अभव्य का दृष्टान्त दिया है। अभव्य ने ऐसी व्यवहार की आज्ञा प्रमाण किया तो तू भव्य भी ऐसा कर तो मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। यह बन्धभाव है। यह बन्ध अधिकार है या नहीं ? जिनवर ने कहा हुआ व्यवहार—व्रत, समिति, गुप्ति, शील, तप यह बन्ध का कारण है। इसलिए बन्ध अधिकार में लिया। व्यवहार अज्ञानी क्रिया बन्ध का कारण है। समझ में आया ? ऐसी परिपूर्ण सावधानी अनन्त बार की। सेठ ! सूक्ष्म बात है। लक्ष्मी-बक्ष्मी

मिलना, वह कुछ दुर्लभ नहीं। धूल अनन्त बार मिली है। ऐई! सेठी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मिलती कहाँ है? ममता मिलती है। लक्ष्मी तो दूर रहती है, इसके पास आती है? इसके पास आयी—मुझे मिली—ऐसी ममता इसके पास आयी। चीज़ तो बाहर रह जाती है।

मुमुक्षु : ममता मिली?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा क्या मिला? धूल मिली? कहाँ मिली? ममता की है कि मेरे पास आयी। कहीं से यहाँ आयी तो कहे मेरे पास आयी। ममता की। राजमलजी! क्या है? यह करोड़पति और... ऐई! कहाँ गये? क्या मिला? ऐसा कहते हैं। यहाँ तो कहते हैं, वह तो दूर रहो, जिनवर ने कहे हुए शुभभाव की परिपूर्णता शब्द लिया है। ऐसा शुभभाव तो जिनवर की आज्ञा का व्यवहार है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि की आज्ञा है, इसमें तो ऐसा परिपूर्ण शुभभाव होता ही नहीं। मिथ्यादृष्टि की आज्ञावाला नौवें ग्रैवेयक जा सकता ही नहीं। समझ में आया?

ऐसा शील, तप, हों! तप में बहुत आया। अनशन, ऊनोदर, वृत्तिपरिसंख्यान, देव-गुरु-शास्त्र का विनय (सब आ गया)। बहुत विनय करे। तप में तो सब व्यवहार बोल आ गये। परिपूर्ण तप। बहुत विनय, बहुत कषाय मन्द। प्रायश्चित्त, वैयावृत्य, कषाय मन्द, शास्त्र की स्वाध्याय बहुत करे, बहुत करे। वह सब तप में—शुभराग में आता है। समझ में आया? वह शील और तप से... यह तो गाथा चलती हो, तब व्याख्या चले। यह तो ... करते हैं। तप की व्याख्या है इसमें। व्यवहार ... परिपूर्ण पालता है। परन्तु वह बन्ध का भाव है। परलक्ष्यी खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से लक्ष्य करके ऐसा जो भाव हुआ, वह मिथ्यात्वभाव है, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? आहाहा! बन्ध अधिकार में यह कैसे डाला? यह डाला है। व्यवहार की क्रिया की आज्ञा जितनी है, वह बन्ध का कारण है। निश्चय की आज्ञा की जो अन्दर क्रिया है, वह अबन्ध की क्रिया है। दोनों का विषय भिन्न है। आहाहा! भाई! अभी इसे चीज़ ख्याल में नहीं आयी, दृष्टि में चीज़ आयी नहीं तो उसमें स्थिरता कहाँ से होगी?

भगवान आत्मा एक समय में अखण्डानन्द प्रभु खण्ड इन्द्रिय से भी पार। खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से देखना, उससे भी पार। अखण्ड ज्ञायक असंगता से देखना, उसका लक्ष्य करके देखना, उसका नाम सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, भगवान परमेश्वर ने कहा हुआ सन्त कहते हैं। सन्त कोई घर की बात नहीं करते, कल्पना की बात नहीं करते। ऐसे तो घर की (आत्मघर की बात) है।

भावरूप अनन्त परावर्तनों के कारण भ्रमण... भ्रमण। चक्र में पड़ा है, ऐसा कहते हैं। चक्र में रुकता ही नहीं, चक्र में ही चलता जाता है। चक्र में पड़ता है। **जिसके भ्रमण को प्राप्त हुआ है,...** ऐसा शब्द पड़ा है। ऐसा चला, ऐसा चला तो उसमें गति ही उस ओर चली गयी। खण्ड-खण्ड इन्द्रिय की ओर, विषयों की ओर। विषय शब्द से चाहे तो शुभ या अशुभ सब विषय है। खण्ड इन्द्रिय से देखना, वह सब विषय है। समझ में आया? ओहोहो! परन्तु भ्रमण प्राप्त हुआ है, ऐसा कहा है। चक्कर लगाये हैं न चार गति में। तो वही भ्रमण हो गया। चक्कर अर्थात् वह। आहाहा!

अब कहते हैं, क्यों ऐसा हुआ? **समस्त विश्व को एकछत्र राज्य से वश करनेवाला महा मोहरूपी भूत...** मिथ्यात्वरूपी भूत लगा है। महाभूत। महामोह अर्थात् मिथ्यात्व। राग-द्वेष हैं, वे तो अस्थिरता, वह तो साधारण दोष है। समझ में आया? **समस्त विश्व को...** देखो! समस्त विश्व को अर्थात् अज्ञानी को, हों! एकेन्द्रिय से लेकर जो कहा था समस्त जीवलोक कहा था। जिसे पहले समस्त जीवलोक कहा था, उसे यहाँ समस्त विश्व कहा। सम्यग्दृष्टि को कम करके। समझ में आया? चाहे तो जैन का दिगम्बर साधु हो, चाहे तो पंच महाव्रत और अट्ठाईस मूलगुण चुस्त पालनेवाला हो, परन्तु खण्ड इन्द्रिय से लक्ष्य करना और उसमें लाभ मानना और उससे विषय करना, वह मिथ्यादृष्टि का विषय है। बाहर का विषय, जो दृष्टि का पर है। सम्यग्दृष्टि का विषय स्व है। भगवान आत्मा एकत्व है... एकत्व में पर्याय में रागरहित पर्याय हुई है परन्तु उसकी दृष्टि है द्रव्य के ऊपर। समझ में आया?

यह एकत्व जो कहा है, उसमें राग से पृथक्पना किया है। इसका अर्थ लक्ष्य यहाँ से था, वहाँ से छूटा। वहाँ से छूटा तो द्रव्य के ऊपर लक्ष्य गया। लक्ष्य अन्दर गया

तो अन्दर स्थिरता प्रगट हुई। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, स्वरूपाचरण आदि स्थिरता हुई। वह पर्याय हुई। परन्तु लक्ष्य बाहर से छूटकर यहाँ गया—द्रव्य के ऊपर गया। तब स्थिरता, सम्यग्दर्शन आदि हुए। पर से भिन्न और स्व से एकत्व प्राप्त करना, वह महादुर्लभ है। साधु द्रव्यलिंगी अनन्त बार हुआ उसे भी दुर्लभ है। क्योंकि यह बात ख्याल में आयी नहीं, ख्याल में आयी नहीं। क्या चीज़ है, किस प्रकार से प्राप्त हो, वह ख्याल में नहीं आया। बस, ऐसे ही भ्रमण करता रहा। यह करो, करो भाई! बेड़ा पार हो जायेगा एक बार। समझ में आया? करते रहो, मन्द कषाय की क्रिया करते रहो, बेड़ा पार हो जायेगा। ऐसी मिथ्यादृष्टि की दृष्टि भ्रमण को प्राप्त हुई है। सेठी! यह तो नग्न मुनि हैं। नागा बादशाह से आघा। जगत को सत्य कहने में उन्हें हिचकचाहट नहीं कि ऐसा कैसे लगेगा? कैसा लगेगा यह तुम जानो। बात तो ऐसी है। समझ में आया? आहाहा!

समस्त विश्व को एकछत्र राज्य से... एकछत्र क्यों कहा? राज होता है न? तो राज की मोहर चलती है। पैसे की मोहर चलती है न? मोहर। उसके राज्य में कोई इनकार नहीं करता। इनकार नहीं करता, समझे? उसके राज में नोट छपे, वे सर्वत्र चलते हैं। उसी प्रकार यह मिथ्यात्व का राज्य ऐसा है कि एकेन्द्रिय से लेकर मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी पर्यन्त यह मिथ्यात्व का राज्य चलता है। कोई इनकार नहीं करता कि हमारे पास मिथ्यात्व नहीं। मिथ्यात्वी है, ऐसा भगवान कहते हैं। उसे खबर नहीं। एकछत्र राज्य से वश करनेवाला मिथ्यात्वभूत एकछत्र से (राज्य करता है)। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय द्रव्यलिंगी जैन का साधु (हुआ वहाँ तक)।

मुमुक्षु : मोह का राज चलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मोह का-मिथ्यात्व का राज है यहाँ तो। मोह तो दो प्रकार के हैं न? राग-द्वेष और (मिथ्यात्व)। यहाँ तो एकछत्र राज्य से वश करनेवाला महा मिथ्यात्व। मिथ्यादृष्टि का लक्ष्य ही खण्ड-खण्ड के ऊपर, निमित्त के ऊपर, संयोग के ऊपर, उसे जानना-देखना, परप्रकाश देखना, वह मिथ्याज्ञान है। उस मिथ्यात्वरूपी भूत ने उसे जोड़ दिया है। क्या कहते हैं? देखो!

भूत जिसके पास बैल की भाँति... बैल... बैल होता है न? बैल। भार वहन

कराते हैं। बैल के ऊपर गाड़ी डाले न? सौ-सौ मण, पचास मण (लादे), हों! कलकत्ता में तो बहुत (डाले)। खींचे बेचारे। गोबर निकल जाये, हों! छाण। छाण को क्या कहते हैं? गोबर। उसमें खून निकल जाये। भैंसा के ऊपर डाले। यहाँ बैल का दृष्टान्त दिया है। बैल में बहुत जोर होता है न! **बैल की भाँति...** मिथ्यात्वरूपी भूत शुभाशुभ परिणाम कराने में भार ओढ़ाते हैं। समझ में आया? यह आता है न? पण्डितजी! तपभारेण। नहीं? श्लोक, कलश। '**क्लिष्यताम् एव तपोभारेण**'। तपरूपी भार उसे हो गया। बोझा है। वह बोझा है। राग का, विकल्प का उसे भार है। मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व है, न तो वह भाव का बोझा उठाता है, भार उठाता है। अमृतचन्द्राचार्यदेव ने कलश में लिया है। समझ में आया? कलशों में, टीका में मूल पाठ में बहुत गूढ़ मर्म-रहस्य भर दिया है। यह तो अध्यात्म शास्त्र है। निज स्वरूप को स्पर्श करने की चीज़ है। समझ में आया?

निज स्वरूप भगवान आत्मा... यहाँ कहते हैं, अपने स्वरूप को पर से भिन्न और अपने से एकपना प्राप्त करना सुलभ नहीं। दुर्लभ है। क्यों? क्यों दुर्लभ है? मिथ्यात्व भूत उसके पास भार वहन कराता है। पर के ऊपर की बुद्धि है। खण्ड-खण्ड इन्द्रिय के ऊपर बुद्धि है। परविषय को जानना (होता है)। यह देखा तब तो जाना, यह देखा तो जाना। यहाँ देखा तो जाना। अपने ज्ञान को जानता है, ऐसा नहीं। यह आया तो यह जाना, यह निमित्त आया तो यह जाना, यह आया तो यह जाना। और खण्ड-खण्ड इन्द्रिय में लक्ष्य करके पर्यायबुद्धि से जानता है, वह मिथ्यादृष्टि को मिथ्यात्व का भूत लगा है। तो भार वहन कराता है कि करो, ऐसा करो, ऐसा करो। भार वहन कराता है। शुभभाव करो। मिठास है उसमें करो। करो... करो... करो... करो... समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, **महा मोहरूपी भूत...** '**महता मोहग्रहेण**' ऐसा है न? '**महता मोहग्रहेण गोरिव**' '**गोरिव**' गो अर्थात् बैल। '**बाह्यमानस्य**' भार वहन करता है। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा खण्ड-खण्ड इन्द्रिय से बाह्य विषय और द्रव्येन्द्रिय से छूटकर अपनी दृष्टि करके स्वभाव में एकत्व होना, उसमें तो हल्कापन है, हल्कापन (निर्भार) है। सहज स्वभाव भार रहित की बात है। समझ में आया? और अपना स्वभाव पर से भिन्न है, ऐसा एकपना प्राप्त नहीं हुआ। क्यों नहीं हुआ? पर के ऊपर के लक्ष्य से सब बोझा

उठाया। तप किये, व्रत किये वह शुभभाव का भार उठाया है। मिथ्यात्वरूपी बैल बोझा उठाता है। बलजोरी से जोड़कर ऐसे करो, ऐसा करो, ऐसा करो। सेठी! आहाहा! बारह गाथा में पूरी पीठिका बाँधी है। पश्चात् तेरहवीं गाथा से तो विस्तार करेंगे। यह सब तो बहुत गूढ़ शब्दों में भर दिया है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुभ-अशुभ विकल्प और खण्ड इन्द्रिय से अखण्ड भिन्न है। आहाहा! इसलिए इन्द्रियग्राम लेंगे, भाई! इन्द्रियविषय ग्राम। जो ३१ में कहना है, वह यहाँ कहना है। विषयग्राम। मिथ्यात्व का भूत लगा हो न तो शुभाशुभभाव का बोझा उठाकर ऐसे लक्ष्य करूँ, ऐसे लक्ष्य करूँ, भगवान को देख लूँ, मूर्ति को देख लूँ, दया पालन करूँ, व्रत पालन करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा इन्द्रियग्राम को घेरा डाला है। घेरा शब्द है न? देखो! **विषयग्राम को जिसने घेरा डाल रखा है,...** चौथी लाईन। बीच में पड़ा है, खबर है। यह तो इन्द्रिय के विषय में इसने घेरा डाला है, वहाँ ही डेरा डाला है। चक्र। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा राग और विकल्प और एक समय की पर्याय जितना भी नहीं। ऐसे एकत्वस्वरूप भगवान शुद्ध, उसका अन्तर में एकपना प्राप्त करना सुलभ नहीं। क्यों नहीं? मिथ्यात्वरूपी भूत से बोझा उठाया। अन्तर में पुरुषार्थ लाने की गति की सूझ पड़ती नहीं। समझ में आया? आहाहा! यह कहीं कथा नहीं कि शीघ्र-शीघ्र शब्द वाँच ले। यह तो अध्यात्म के शब्द ट्रेडमार्क रजिस्टर्ड है। उसमें एक शब्द भी आगे-पीछे निकले, वह नहीं चलता। समझ में आया? कथा में तो बहुत चलता है। यह शब्द ऐसे नहीं हैं। एक-एक शब्द में भाव भरे हैं।

कहते हैं, **समस्त विश्व को...** एकेन्द्रिय से लेकर मिथ्यादृष्टि नौवें ग्रैवेयक तक दिगम्बर (साधु होकर) गया। **एकछत्र राज्य से वश...** एक ही प्रकार का मिथ्यात्व का राज सब के ऊपर है। सबके ऊपर मिथ्यात्व का राज है। उसे **वश करनेवाला महा मोहरूपी भूत...** पिशाच कहते हैं न अपने में? जिसके पास—अज्ञानी के पास मिथ्यादृष्टि के कारण से खण्ड-खण्ड इन्द्रिय में जोड़ दिया, पर के विषय में जोड़ दिया और द्रव्येन्द्रिय के आलम्बन में उसे जोड़ दिया। मिथ्यादृष्टि के कारण। भार वहन करता है

बेचारा। आहाहा! अपवास करे, खेद हो जाये तो यह माने कि हमने सहन किया। (परन्तु ऐसा) नहीं है। खेद हुआ, वह तो आर्तध्यान हुआ। समझ में आया? फिर उपचार बाहर में नहीं किया, उसमें क्या हुआ? वह तो बाहर की क्रिया नहीं हुई। खेद है, वही आनन्द का नाश करनेवाला है। भार है, बोझा है। शक्ति सहज स्वभाव-सन्मुख की दृष्टि होकर सहज शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई तो मात्र बोझा उठाया है।

ज्ञान सहज सहज, शान्ति सहज, स्थिरता सहज। प्रतिकूलता आवे तो भी सहज क्षमा से ज्ञाता-दृष्टारूप से देखता है, इसका नाम सहज परीषह सहन किये, ऐसा कहा जाता है। परीषह में व्याख्या आती है न? नहीं? परीषह... दूसरे दो विशेषण हैं न। मार्ग अच्यवं। मार्ग से अचव्यं। उसमें विशिष्टता है। मार्ग से अच्यवं, निर्जरार्थं... दो विशेषण हैं। परीषह ... उसमें महासिद्धान्त है। मार्ग से अच्युत। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो स्वभाव के ऊपर दृष्टि है, ज्ञान के ऊपर दृष्टि है, उसमें स्थिरता है, उससे अच्यवन—हटे नहीं। स्वभाव का जो आश्रय लिया, उसमें से हटे नहीं। खसे नहीं न अर्थात् समझे? हटे नहीं। मार्ग से हटे नहीं। पण्डितजी! क्या शब्द है यह? मार्ग अच्यवनं। महासिद्धान्त है। परीषह सहन किये उसे कहा जाता है कि मार्ग जो अन्दर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो स्वभाव के आश्रय से, ध्येय से, लक्ष्य से प्रगट हुआ, उससे च्युत न हो। लक्ष्य से च्युत न हो, लक्ष्य से हटना नहीं। और निर्जरार्थं... दूसरा शब्द यह है। विशेष शुद्धि के लिये उसका लक्ष्य छोड़े बिना शुद्धि के लिये शान्ति से रहता है, उसका नाम परीषह सहन किये, ऐसा कहा जाता है। परीषहजय। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों की व्याख्या अलग। सबकी, हों! अलौकिक मार्ग में चढ़े हैं। सम्यग्दृष्टि को यह क्या कहते हैं, वह खबर पड़ती है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो यहाँ।

बैल की भाँति भार वहन कराता है,... बैल की भाँति भार वहन कराता है। ऐसा भार पड़े न? ऐसा बोझा पड़ता है। मिथ्यात्वभाव है, वह भूत लगा है तो पुण्य-पाप का कर्तृत्व करके भोगकर भार वहन करता है। निज भगवान आत्मा सहजानन्द प्रभु विकल्प से पार, पर से विभक्त और स्व से एकत्व, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया? तो पर से एकत्व का भार उठाता है, ऐसा कहते हैं।

जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी... देखो! क्या कहते हैं अब? मिथ्याभ्रान्ति भ्रम है

न, तो जोर से तृष्णा उत्पन्न हुई। सन्तोष तो है नहीं। सम्यग्दर्शन बिना सन्तोष उत्पन्न नहीं होता। मिथ्यात्व में से तृष्णा प्रगट हुई, ऐसा कहते हैं, भाई! ऐसे गया। यह लूँ, यह लूँ, यह लूँ ऐसे जोर से। तृष्णा उद्भवित होती है। तृष्णा ही उत्पन्न करता है। समझ में आया? कहते हैं, जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी रोग मिथ्यादृष्टि को लागू पड़ा है। इच्छा उत्पन्न हुई। तृष्णा अर्थात् इच्छा। ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, ऐसा करूँ, यह काम करूँ, यह काम करूँ। क्या करे? क्या पर का काम करता है? राग कहाँ करता है? भगवान! तू सुन तो सही। राग का स्वामी होता है, वह मिथ्यादृष्टि है। शुभाशुभ परिणाम का स्वामी मिथ्यादृष्टि है। सहजात्मस्वरूप का स्वामी सम्यग्दृष्टि है। समझ में आया? आत्मा में ऐसा गुण है। ४७ शक्ति में स्वस्वामीसम्बन्धशक्ति। है? अन्तिम ४७ वीं। ४७ गुण वर्णन किये, उसमें एक गुण ऐसा है। ४७ समझे? चार सात—४-७। ४७ शक्ति वर्णन की है और ४७ नय वर्णन किये हैं। दोनों में ४७ वर्णन किये हैं। भैया भगवतीदास ने ४७ दोहे बनाये हैं। ४७... ४७ चलता है। चार और सात, चार और सात। घातिकर्म की ४७ प्रकृतियाँ हैं या नहीं? तो सब जगह ४७ चलता है। यहाँ ४७ शक्ति में एक अन्तिम शक्ति ऐसी ली है, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य (कहते हैं), आत्मा में स्वस्वामीसम्बन्ध नाम की एक शक्ति है—गुण है। आत्मा में सहजानन्द अनन्त गुण स्व है, उनका स्वामी होना, ऐसा आत्मा का एक गुण है। राग का स्वामी होना, वह गुण नहीं।

मुमुक्षु : ऐसा गुण ही नहीं कोई?

पूज्य गुरुदेवश्री : देखो! ४७वीं शक्ति का करो अर्थ। समझ में आया? स्वस्वामीसम्बन्ध शक्ति। भगवान आत्मा शुद्ध अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु, उसका द्रव्य-गुण और निर्मल पर्याय अभेद होकर स्व अपनी लक्ष्मी, स्व का स्वामी। सम्यग्दृष्टि को द्रव्यदृष्टि हुई है, द्रव्य में वह गुण पड़ा है तो गुण का फल यह आया है कि सम्यग्दृष्टि स्व का स्वामी है। शुद्ध द्रव्य-गुण का, पर्याय का स्वामी है। वह राग और निमित्त का स्वामी सम्यग्दृष्टि है ही नहीं। क्योंकि दृष्टि में स्वस्वामीसम्बन्ध गुणवाला द्रव्य दृष्टि में आया है। क्या कहा? सम्यग्दृष्टि में स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का गुण धरनेवाला द्रव्य, वह द्रव्य दृष्टि में आया है, इसलिए सम्यग्दृष्टि को राग और निमित्त का स्वामित्व उड़ गया है। व्यवहाररत्नत्रय का स्वामी सम्यग्दृष्टि है नहीं। समझ में आया? क्योंकि अपना ऐसा

एक गुण है, गुण ऐसा है। स्वस्वामीसम्बन्ध गुण है। परस्वामीसम्बन्ध पर्याय में करता है, ऐसा गुण ही नहीं। मिथ्यादृष्टि पर का स्वामी होकर राग मेरा और मैं उसका स्वामी, (ऐसा मानता है), वह दृष्टि मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व में से तृष्णा प्रगट हुई है। जोर से—बल से जैसे प्रगट हुई है। देखो!

जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी रोग... रोग लगा है। आशा... आशा... आशा... यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ तो ठीक और यह करूँ तो ठीक और ऐसा बनाऊँ। क्या करे? आशा तृष्णा सब मिथ्यात्व में से प्रगट हुई है, ऐसा कहते हैं। सम्यग्दृष्टि को (स्व में) एकत्व (होकर) पर से भिन्नता हुई है, उसे सन्तोष हुआ है। उसे सन्तोष प्रगट हुआ है, उसको (मिथ्यादृष्टि को) तृष्णा प्रगट हुई है। समझ में आया? बराबर है न यह? 'आशा औरन की क्या कीजे' आनन्दघनजी कहते हैं।

ज्ञान सुधारस पीजे, आशा औरन की क्या कीजे,
भटकत द्वार द्वार लोकन के, कूकर आशा धारी॥

कूकर अर्थात् कुत्ता जहाँ-तहाँ मकान के पास भटकता है। एक टुकड़ा दो, टुकड़ा दो। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जहाँ-तहाँ भटकता है। कोई शुभराग में लाभ है, अशुभ में मिठास है, निमित्त से लाभ है। जैसे कुत्ता भटकता है (वैसे यह भटकता है)। समझ में आया? 'भटकत द्वार द्वार लोकन के कूकर आशाधारी' कोई बड़ा कहो, कोई मान दो, कोई ठीक है, ऐसा कहो, मूढ़ की दृष्टि पर के ऊपर है। वह कुत्ते की तरह टुकड़ा माँगता है। समझ में आया? आत्मा का प्याला—चैतन्यमूर्ति राग से भिन्न जिसकी दृष्टि हुई, (उसे) क्या लेना है? कहाँ से लेना है? कहाँ से सन्तोष प्राप्त करना है? किससे बड़प्पन का अभिनन्दन लेना है? समझ में आया?

वह यह कहते हैं, देखो! जोर से तृष्णारूपी रोग प्रगट हुआ है। कोई मुझे कहो ठीक है, मैं ठीक जानता हूँ, मैं ठीक हूँ, मैं अधिक हूँ, मैं साधु हूँ, मैं त्यागी हूँ, मैं पण्डित हूँ, मैं बड़ा हूँ—ऐसी तृष्णा का रोग मिथ्यादृष्टि को लागू पड़ा है। **दाह से जिसको अन्तरङ्ग में पीड़ा प्रगट हुई है,...** इसका विशेष अर्थ होगा, हों! एकदम शब्द नहीं चले।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण १४, सोमवार, दिनांक - १५-०८-१९६६
गाथा - ४, प्रवचन - १७

यह समयसार की चौथी गाथा चलती है। आज तो गुजराती है। समझ में आया? जीव-अजीव अधिकार की यह चौथी गाथा है। इसमें ऐसा कहते हैं कि यह आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप पूर्ण पदार्थ निर्मल है। उसका राग और पुण्य-पाप के भाव से भिन्नपना और अपने में एकत्व प्राप्त करना, वह सुलभ नहीं। समझ में आया? आत्मा परमात्मस्वरूप है। ऐसे परमात्मस्वरूप को आत्मा के स्वरूप से विपरीत ऐसे पुण्य-पाप के विकार और यह शरीरादि तो पर विपरीत है ही, परन्तु यह विकार पुण्य-पाप के भाव से भगवान परमात्मस्वरूप भिन्न है, ऐसा प्राप्त करना सुलभ नहीं। अर्थात् कि दुर्लभ है। क्यों दुर्लभ है?

कहते हैं कि कामभोग सम्बन्धी कथा इसे अनादि से सुलभ हो पड़ी है। सुलभ अर्थात्? सु-लभ। सुख से प्राप्त। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप ज्ञायकमूर्ति है, उससे काम अर्थात् इच्छा और राग, तथा भोग अर्थात् अनुभव करना। यह राग का होना और राग का भोगना, यह इसे अनादि से सुलभ है। क्योंकि उसकी दृष्टि, चैतन्यस्वभाव शुद्ध है, उसके ऊपर नहीं होने से मोहरूपी भूत उसे लगा है। मोह अर्थात् मिथ्यात्व, विपरीत मान्यता। अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्यमूर्ति से विपरीत मिथ्यात्व भ्रम के कारण उसे इच्छा और इच्छा का भोगना सुलभ लगता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कर्म का इसमें कहीं आया नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म की बात भी कहाँ है इसमें? कर्म की बात भी कहाँ थी? कर्म कर्म के घर में रहे। अपना स्वभाव ऐसे शुद्ध आनन्द की खान है। आत्मा सच्चिदानन्द सत् शाश्वत ज्ञान और आनन्द का निधान है। उसकी दृष्टि न करके, उसका विषय न करके, उसे लक्ष्य में न लेकर अनादि मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व के भूत के कारण, यह राग-द्वेष का करना और भोगना, यही उसका विषय हो पड़ा है। समझ में आया? यह तो

पहली बारह गाथायें पीठिका है न। बहुत संक्षिप्त में यह सब व्याख्या की।

कामभोग सम्बन्धी कथा की यह सब व्याख्या चलती है। क्योंकि आत्मा चैतन्य के भान बिना, अपना स्वरूप पवित्र है, उसके भान बिना अपवित्रता के परिणाम में मध्य में पड़ा है, ऐसा कहते हैं। संसार के मध्य में कहा न? भाई! संसारचक्र के मध्य में पड़ा है वह। समझ में आया? और इसलिए अर्थात् कि ऐसे स्वभाव की पवित्रता के लक्ष्य और दृष्टि और रुचि बिना इसे पुण्य और पाप के भाव जो विकारी करना और भोगना, वह जिसका, मिथ्यादृष्टि का विषय है। उस मिथ्यात्व भूत ने विपरीत मान्यता ने उसे हर्ष-शोक और राग के भोगने में जोड़ दिया है। समझ में आया? इससे उसे जगत के संयोग और पुण्य-पाप के भाव सवार हुए हैं। समझ में आया? उसने अनन्त बार शुभ-अशुभ... शुभ-अशुभ... शुभ-अशुभ... ऐसे भाव निगोद से लेकर सर्व जीव को, परलक्ष्यी पर का विषय करनेवाले, होनेवाले ऐसे शुभ और अशुभभावों में उसका परिवर्तन-पलटा अनन्त बार हो चुका है। समझ में आया?

अब कहते हैं, यह मोहरूपी भूत अर्थात् कि आत्मा का आनन्द शुद्ध है, उसकी जिसे अन्तर रुचि नहीं। भगवान आत्मा पूर्ण पवित्र स्वरूप है, उसकी रुचि, स्व-आश्रय, स्वविषय नहीं, उसे परविषय करना ऐसा मिथ्यात्वभाव है। सम्यग्दर्शन का विषय स्वविषय है। समझ में आया? सम्यक्श्रद्धा-सत्यश्रद्धा का विषय सम्यक् चैतन्य ज्ञायक त्रिकाल वह उसका विषय है।

मुमुक्षु : समकित का और विषय होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : विषय नहीं होगा? पहले कोई न करते थे, पण्डितजी! पहले ऐसा कहते थे, पहले हम सम्यग्दर्शन का विषय कहते थे न? सम्यग्दर्शन का विषय नहीं होता, ऐसा पत्रिका में आता था। लोग बहुत विरोध करते थे। अरे! भगवान! भाई! विषय अर्थात् ध्येय; ध्येय अर्थात् लक्ष्य। समझ में आया? ऐसे तो केवलदर्शन का विषय लिया है। वरना केवलदर्शन तो महासत्ता सामान्य है, तथापि उसका विषय लिया है। विषय सामान्य है। सब सामान्य उसका विषय है। भेद पाड़कर नहीं। केवलदर्शन का विषय सामान्य है। विषय है, नहीं—ऐसा नहीं। निर्विकल्प दर्शनउपयोग का भी विषय

लोकालोक सामान्य एकसाथ है। उसी प्रकार भगवान आत्मा की श्रद्धा यथार्थ करे तो वह यथार्थ श्रद्धा का विषय द्रव्यस्वभाव है।

मुमुक्षु : किसका द्रव्य?

पूज्य गुरुदेवश्री : अपना, कोई दूसरे का नहीं। निज परमात्मा। निज अपना स्वरूप सच्चिदानन्द शुद्ध सिद्ध समान, उसका लक्ष्य करना, वह सम्यग्दर्शन का विषय-ध्येय है। वह अनादि से छूटकर मिथ्यादर्शन हुआ, अर्थात् स्वरूप से विपरीत मान्यता हुई है। इसलिए उसे राग और विकल्प का करना, शुभ पुण्य और पाप, अभी दोनों बात है, हों! शुभ या अशुभ दो भाव विकार है, उनका करना और भोगना, वह मिथ्यादृष्टि का विषय है। वह विषय का घेरा डालता है, कहते हैं। क्या कहते हैं? देखो!

बड़ा भूतड़ा **बैल की भाँति भार वहन कराता है,...** बैल के ऊपर जैसे घुरा भार डाले न?

मुमुक्षु : बैल उत्साह से....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी उत्साह से करता है। समझ में आया? पर का काम उठाने का और पुण्य-पाप के भाव उठाने का मिथ्यात्वभाव, मिथ्यात्वरूपी पिशाच उसे यह बोझा वहन कराता है।

मुमुक्षु : किसका बोझा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य-पाप का। और पुण्य-पाप यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ — यह करूँ ऐसा मिथ्यादृष्टि मिथ्यात्व भूत ने उसे विकार के साथ जोड़ दिया है। आहाहा! ...लालजी! सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : कर्म ने जोड़ा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म की बात भी कहाँ है? देखो न! यहाँ यह क्या कहते हैं? महाभूत, उसके पास बैल की भाँति वहन कराता है। यह तो महातत्त्व है, भाई! उसकी उल्टी बात करता है, उसमें भी अन्तर सूक्ष्मता है।

भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में पूर्ण आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्दमूर्ति

आत्मा है। वह सिद्धस्वरूप — 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' ऐसा उसका पूर्ण आनन्दस्वरूप है। उसकी दृष्टि, उसकी दृष्टि उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। तो सम्यग्दृष्टि का विषय चैतन्य हुआ। उसकी दिशा आत्मा के ऊपर ढली। परन्तु जिसे वह विषय अनादि से नहीं, अनादि से नहीं। तब यहाँ आचार्य कहते हैं, कामभोग सम्बन्धी... यह तो इसलिए विचार आया कि यह सब निकाला कहाँ से इतना सब? कामभोग सम्बन्धी कथा में से यह विस्तार निकाला है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा ऐसे वस्तु में अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की वह गाँठ है। गन्ने की कातली होती है न? शेरडी... शेरडी समझते हो? गन्ना... गन्ना। उसके बीच की कातली होती है। बीच की, हों! भोथा नहीं, नीचे का नहीं, आगे का नहीं। आगे, भोथा समझते हो? नीचे हो जड़े और ऊपर पत्ते का भाग खारा पतला होता है न? सब निकालकर बीच की कातली में बहुत रस है। इसी प्रकार भगवान आत्मा में अन्तर स्वभाव में अतीन्द्रिय आनन्द का रस पड़ा है। आहाहा! ऐसे अतीन्द्रिय भगवान आत्मा का विषय सम्यक् श्रद्धा से न बनाकर, मिथ्याश्रद्धा ने उसका विषय बनाया राग और द्वेष तथा पुण्य और पाप। यह कहते हैं, यह कामभोग सम्बन्धी कथा में से यह सब निकाला है, भाई!

भगवान आत्मा इच्छा और इच्छा के भोग बिना की चीज़ वीतरागी जिसका स्वरूप है, आनन्द जिसका रूप है, आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्द जिसका रूप आत्मा का (रूप) है। अकषाय जिसका स्वभाव है, शान्त जिसकी, शान्ति जिसकी मूल चीज़ है अन्दर। शान्ति अर्थात् चारित्र। जयसुखभाई! यह लॉजिक सूक्ष्म है, हों! यह तुम्हारे सब गप्प मारे हो न वकालत में। यह कहेंगे या नहीं। कायदा (कानून) सब कहते हैं न? यह भगवान आत्मा की अन्तर दृष्टि सम्यक् श्रद्धा नहीं करके अनादि काल का इसका स्वविषय श्रद्धा का सम्यक् का छोड़कर मिथ्याश्रद्धा बनाकर, क्यों बनाया? कि स्वविषय छोड़ा। समझ में आया? यह तो गुजराती है न, इसलिए आज तो अधिक भाषा भी आवे न! वे दो मेहमान मुश्किल से आये। किसी दिन आवे उनके लिये (हिन्दी किया)। क्या हो?

यहाँ कहते हैं कि भाई! यह तो धर्मकथा है। धर्मकथा उसे कहा जाता है, उन

शब्दों में जिसका मिथ्यात्व और राग-द्वेष मिला हुआ न हो। पण्डितजी! यह अपने शब्दआगम लिया न? शब्दआगम। उस शब्दआगम में—शब्द में विपरीतता और राग-द्वेष न मिले हों, ऐसे शब्दों को शब्दआगम कहते हैं। आहाहा! यह कथा शब्दों की हो, उस शब्द में भी वास्तविक सर्वज्ञस्वरूप आत्मा का है, पवित्र आत्मधाम है, उसका स्वविषय सम्यक् श्रद्धा से करना, ऐसी भाषा वह शब्दआगम में ऐसा आता है। शब्दआगम में राग करनेयोग्य है, राग भोगनेयोग्य है और परविषय करनेयोग्य हैं, यह शब्दआगम में नहीं आता। उसे शब्दआगम नहीं कहा जाता। आहाहा! आचार्य की कथन की पद्धति, उसमें कुन्दकुन्दाचार्य, गजब बात! उनके मुख में से शब्द निकलो या पाठ में लिखा हुआ हो। पण्डितजी! दो आते हैं न? मुख्य... क्या कहलाता है? क्या कहा? मुख में से निकले या लेखन में हो। बोले हुए या लेखन में लिखे हुए। दोनों पाठ में—दोनों प्रकार के शब्दों में जिसमें वास्तविक सर्वज्ञस्वरूप आत्मा का है, उसमें अल्पज्ञपना भी नहीं आता, राग भी नहीं, निमित्त का सम्बन्ध भी उसे नहीं। ऐसी जो वाणी आवे, उस वाणी में आत्मा की अल्पज्ञता ठीक है, राग-द्वेष ठीक है, निमित्त का सम्बन्ध करना ठीक है, उस शब्द को शब्दआगम नहीं कहते। समझ में आया? आहाहा!

इससे यह आगम है वाचक, उस आगम में यहाँ वस्तु बताते हैं कि भगवान आत्मा ऐसे वस्तु में अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ है न प्रभु आत्मा तो। उसका विषय, उसका लक्ष्य, उसकी रुचि उसके ध्येय को, सम्यक्श्रद्धा का जो ध्येय है, वह जिसने अनादि से छोड़ दिया है और मिथ्याश्रद्धा की है कि जिस मिथ्याश्रद्धा का स्वविषय न हो। समझ में आया? उस मिथ्याश्रद्धा का विषय पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, व्यवहार काम शुभाशुभभाव वह मिथ्याश्रद्धा का अकेला व्यवहार राग-द्वेष, वह विषय है। समझ में आया? इसीलिए कहते हैं, कि मोहरूपी भूत उस स्वस्वभाव के विषय से अकेले परविषय में लाभ है, ऐसी मान्यतारूपी मिथ्यात्व भूत। परविषय में लाभ है, भाई! यह सुनना या ऐसा करना या यह देखना या इन्द्रिय के विषय में ऐसा करूँ, उसमें लाभ है, यह मिथ्यात्व भूत ने बनाया है। आहाहा! प्रभु! यह तो बात ऐसी है, हों!

भगवान आत्मा के स्वरूप का विषय, रुचि, श्रद्धा अनादि से छोड़ी, जिसे स्वभाव की रुचि नहीं, उसे परभाव के विषय की रुचि है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव, उसका विषय पर में ही जाता है। यह कहेंगे, वह भार वहन कराता है। मिथ्यात्व बोझा वहन कराता है। पुण्य करना और दया करना, व्रत पालना, भक्ति करना, यह करना अकेला पर करना, ऐसा मिथ्यात्व का भाव, वह यह बोझा वहन करवाता है, उसे बैल की भाँति घुरा में जोड़ देता है। घोंसरु समझते हो? घुरा। कल अपने भाई कहते थे न? चीनूभाई के भाई आये हैं न! चीनूभाई के भाई। वे चीनूभाई गुजर गये न। बहुत विचार और मंथन बहुत करते थे। गुजर गये। मंथन बहुत करते थे। यहाँ के एक-एक शब्द का मंथन बहुत करते थे। यह उनके भाई, महाराज कहते थे कि कोई काम आवे न संसार का? जैसे वह बैल होता है न? बैल-बैल। गाड़ी ऊँची करे न? (ऐसे सिर डाले)। डोरी खींचनी न पड़े। बैल होता है न? दो बैल खड़े हों। उन्हें ऐसी आदत पड़ गयी कि वह घुरा ऊँचा करे, वहाँ सिर डाले। डोरी खींचे और सिर डाले तो ठीक (यह तो ऊँचा करे वहाँ सिर डाल दे)। इसी प्रकार अज्ञानी को कुछ संसार के काम आ पड़े, वहाँ पूछे नहीं, (उल्टे ऐसा कहे), मुझे पूछो। इसका ऐसा होता है। क्या है परन्तु? यह बैल की भाँति घुरे में क्यों घुस जाता है? समझ में आया?

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि कुछ भी जहाँ शुभाशुभभाव के कर्तव्य और कुछ संयोग आये (वहाँ) घुरा जोड़ दिया मिथ्यात्व ने कि मेरे बिना चले नहीं, मुझे करना पड़ता है, मुझे करना पड़ता है, मुझे करना पड़ता है।।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी बचने का नहीं उसमें। भाई! यह तो मूल वस्तु है। इसमें बारह गाथा में तो पूरी पीठिका—पूरे समयसार का मक्खन भर दिया है। फिर तो उसका विस्तार (गाथा) १३ से ४१५ (गाथाओं) तक है। समझ में आया? कहो, समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा अपनी शुद्धस्वरूप की विश्वास-दृष्टि छोड़कर उसका विश्वास-श्रद्धा गयी है, पुण्य और पाप के भाव को करने में। इसलिए उस मिथ्यात्वरूपी भूत ने

यह पुण्य-पाप का बोझा करने के काम यह मुझे करने पड़ते हैं, उसमें मैं हूँ, मैं बड़ा हूँ, मुझे करना पड़ता है, मैं आचार्य हूँ, मैं साधू हूँ, मुझे यह काम करना पड़ता है, मुझे यह राग करना पड़ता है — ऐसा मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी अनन्त बार... समझ में आया? अपने स्वभाव की विपरीत मान्यता के कारण मिथ्यात्वरूपी भूत ने उसे विकारी के साथ लगा दिया। विकार के काम करना और भोगना, उसके साथ मिथ्यात्व ने लगा दिया। देखो! यह तो वळगाडी दीधुं, यह अपनी काठियावाड़ी स्पष्ट भाषा है। कहो, समझ में आया?

जोर से प्रगट हुए तृष्णारूपी रोग के दाह से... अब कहते हैं। जब स्वविषय छोड़ा और मिथ्याभ्रम उत्पन्न करके परविषय में लाभ माना, ऐसा मिथ्यात्व हुआ तो मिथ्यात्व में से तृष्णा प्रगट हुई। विपरीत मान्यता के विषय में तृष्णा प्रगट हुई, तृष्णा। जैसे पत्थर में से ज्वालामुखी फटता है न? पर्वत में से। ज्वालामुखी नहीं कहते? पहाड़ में। उसी प्रकार विपरीत मान्यता में तृष्णा प्रगट हुई। ऐसे जाऊँ, ऐसे जाऊँ, यह लूँ, यह लूँ, यह करूँ, यह करूँ। व्यवहार के विषय को करूँ, बनाऊँ, रचाऊँ, यह तृष्णा बाहर के ऊपर जाने के लिये प्रगट हुई। लादूलालजी! आहाहा!

कहते हैं, जोर से प्रगट हुई तृष्णा। भगवान चैतन्य तो शान्त सन्तोषरूपी आनन्दमूर्ति है, उसका विषय सम्यक्श्रद्धा, वह तो रही नहीं। इसलिए मिथ्याश्रद्धा से ऐसे तृष्णा प्रगट हुई, ऐसे प्रगट हुई। ऐसा बनाऊँ, यह करूँ, यह करूँ। पर के काम कर दूँ, पर के काम करने के लिये राग करूँ और ऐसा राग पहले बाँधकर निश्चित कर लूँ तो फिर यह काम होगा। ऐसी कषाय कर लो पहले कि यह मकान होगा। पहले यह निश्चित कर लो तो फिर पाठशाला होगी। फलाना निश्चित कर लो कि फिर यह होगा। क्या कहता है तू? बाहर में हो, न हो, वह क्या तेरे आधीन है? समझ में आया? परन्तु मिथ्याश्रद्धा से तृष्णा प्रगट होकर बाहर के अनेक प्रकार के विषय—इन्द्रियों के विषय करना, उसमें यह तृष्णा चली गयी है। समझ में आया?

तृष्णारूपी रोग के दाह से जिसको अन्तरङ्ग में पीड़ा प्रगट हुई है,... आकुलता प्रगट हुई। पीड़ा। तृष्णा हुई न? कि यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ, यह करूँ। जैन द्रव्यलिंगी साधु हो न, तो भी उसे गहरे-गहरे यह दया पाल लूँ, यह व्यवहार कर लूँ,

निर्दोष आहार ले लूँ तो मेरा व्यवस्थित रहेगा। लोग भी ठीक कहेंगे। वरना सदोषता होगी। उसकी तृष्णा विकल्प के राग में ही जुड़ गयी है। रतिभाई! आहाहा! पश्चात् क्या कहते हैं? वह पीड़ा प्रगट हुई है। इसलिए उस दाह का उपाय ऐसा जानता है कि... भावार्थ में लिया है, भाई! भावार्थ में लिखा है। और वह न्याय है इसमें। जब मिथ्याश्रद्धा हुई, स्वस्वरूप की दृष्टि रही नहीं कि मैं आनन्द हूँ, मुझे तो मेरी खान में से निकालना (प्रगट करना) है। मुझे कहीं पुण्य-पाप में से निकालना है और निमित्त में से कहीं शान्ति निकालना है नहीं। सम्यक्श्रद्धा होने पर मेरी शान्ति, मेरा आनन्द, मेरा मोक्षमार्ग वह सब मेरे स्वरूप में पड़ा है, उसमें से एकाग्र होकर निकालना है। समझ में आया? कहो, दास!

मिथ्याश्रद्धा में दृष्टि जहाँ मिथ्या हुई है, इसलिए ऐसी तृष्णा प्रगट हुई। ज्वालामुखी फटा। पश्चात्... क्या कहते हैं? यह दाह जो हुआ, उसका उपाय ऐसा मानता है कि **आकुलित हो होकर...** यह शब्द पड़ा है न? **'उत्तम्योत्तम्य'**। कल भी भाई को प्रश्न किया था। आज पण्डितजी को... **'उत्तम्योत्तम्य'** है न शब्द? घबराया हुआ। पण्डितजी ने ऐसा शब्द लिया कि छटपटाहट करता है। आकुलित होकर आकुलता। छटपटाहट— यह कर लूँ, यह कर लूँ। बाहर के काम कर लूँ, ऐसे काम कर लूँ, इतनी सुविधा प्राप्त कर लूँ, इतनी असुविधा टाल दूँ.... समझ में आया? समझ में आया?

कहते हैं, **दाह से जिसको अन्तरङ्ग में पीड़ा प्रगट हुई है,...** अन्तरंग में पीड़ा हुई है। आनन्द की लूट हुई। सम्यक्श्रद्धा का विषय भगवान आत्मा (हो), तब तो आनन्द दशा में आता है। अब सम्यक् स्वभाव की श्रद्धा नहीं रही, पुण्य-पाप के भोग को करने की श्रद्धा रही, उस मिथ्यात्व में से पीड़ा प्रगट हुई। तृष्णा प्रगट हुई, यह पर का करने में पीड़ा... पीड़ा... आकुलता... आकुलता... आकुलता (खड़ी हुई)। अन्तर में पीड़ा (हुई), बाहर की कहाँ बात है। अन्दर में कल्पना की जाल, कल्पना की जाल खड़ी करता है। ऐसा कर दूँ, यह कर लूँ, यह कर लूँ। उसे ऐसा बोला, इसलिए उसे ठीक पड़ा, ऐसा नहीं बोला, इसलिए उसे ठीक नहीं पड़ा। ऐसे दूसरे के समाधान करने के विकल्प की ज्वाला, वहाँ रुक गयी। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, उसका उपाय ऐसा जानता है कि यह **आकुलित हो होकर...** अर्थात् ऐसे आतुरता से, आतुरता से यह शीघ्र हो न, इसे शीघ्र बचाऊँ, वरना मर जायेगा, इसे शीघ्र मार डालूँ तो वरना जीवित रहेगा, ऐसा शीघ्र बोल डालूँ, शीघ्र बोल डालूँ न, तो उसकी सत्ता कम हो जायेगी, उसकी अधिकता कम हो जायेगी, ऐसे शीघ्र बोल डालूँ तो उसकी अधिकता कम होगी। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म विषय है। आहाहा! उसके कारण **आकुलित हो होकर मृगजल की भाँति विषयग्राम को...** देखो! भाषा क्या है? कि तृष्णा का उपाय ऐसा मानता है कि यह सब करूँ, यह सब करूँ, ऐसा प्राप्त कर लूँ, ऐसा करूँ, सुविधा प्राप्त कर लूँ, असुविधा छोड़ दूँ, यह सब तृष्णा का समाधान करने का उपाय ऐसा मानता है। उपाय मानता है। है नहीं। समझ में आया?

मृगजल की भाँति विषयग्राम को... भाषा देखो! **(इन्द्रियविषयों के समूह को)...** शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श। बाद में शुभ और अशुभ यहाँ प्रश्न नहीं। यहाँ तो स्वविषय चैतन्य का विषय जिसने श्रद्धा का छोड़ा है और जिसने अकेली मिथ्याश्रद्धा का विषय अकेला पर ही बनाया है, उसे तो भगवान की वाणी भी विषय में ही जाती है। कठिन पड़े, ऐसा है। पहले लिखा गया है। उसकी टीका (आलोचना) भी हुई है। ऐसा कहते हैं यह। अब सुन न, भगवान! बापू! तेरे घर की बात है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, इन्द्रियों के विषय के ऊपर जो झपट्टा मारता है। झांवा समझते हो? क्या भाषा है? आपटा (झपट्टा)। ऐसे जाता है। ऐसे अन्तर में दृष्टि नहीं, इसलिए उसमें एकाग्र होने का आपटा रहता नहीं। यह करूँ... यह करूँ... यह करूँ... यह तृष्णा हुई, उसके दाह को—पीड़ा को शमन करने का उपाय भोग ले लूँ या ऐसा सुन लूँ, असन्तोष बतानेवाले के पास से मुझे ठीक पड़े ऐसा सुन लूँ। जलसा बनाकर मैं ठीक हूँ, ऐसा लोग मुझे कहे, ऐसा सुन लूँ। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खाता नहीं यह? ... खबर नहीं? कहो, समझ में आया इसमें? ऐ... प्राणभाई! आहाहा!

भाई! तू स्वयं महाप्रभु है न! भाई! तेरी प्रभुता तुझे श्रद्धा में न आवे तो तेरा विषय

प्रभु कहाँ से बने ? विषय जब यह न बना, विषय अर्थात् लक्ष्य-ध्येय, तो मिथ्याश्रद्धा का विषय यह सब प्याला बाहर में फटा। समझ में आया ? **आकुलित हो होकर...** देखो ! एक तो कहते हैं, सब विषय मृगजल जैसे हैं। यहाँ ध्रुवस्वरूप भगवान सम्यग्दर्शन का ऐसा विषय है, तब मिथ्यादर्शन का विषय इन्द्रियग्राम के विषय सब मृगजल जैसी तृष्णा जैसे हैं। आहाहा ! कहाँ वह तेरा पूरा पड़ेगा ही नहीं। ऐसे शब्द सुन लूँ, ऐसे रूप देख लूँ, ऐसा कर लूँ, ऐसा कर लूँ... वह पर सन्मुख के विषय में तुझे सन्तोष कभी होगा ही नहीं। अग्नि में लकड़े डालने से अग्नि कभी बुझेगी नहीं। उसी प्रकार भगवान आत्मा की अन्तर दृष्टि को बनाये बिना तू अकेले पुण्य-पाप और उनके फल के विषय में जोड़ दे कि इसमें ऐसा होगा तो ठीक पड़ेगा। भोग ले लूँ न शीघ्र तो इतना सन्तोष हो जाये। धूल में भी नहीं होगा। मिथ्यादृष्टि की मान्यता ऐसी है कि ऐसे भोग लें, फिर अपने शान्त हो जायेंगे। क्या कहता है यह ? अवस्था कहे न जब ? भुक्तभोगी। भोग बहुत लिये हों न, फिर उसका सन्तोष ले। मूढ़ है। दृष्टि मिथ्यात्व है तेरी। समझ में आया ? अपने बहुत खा लें पहले, बहुत खा लें। पश्चात्....

मस्तराम थे, मस्तराम बाबा। एक बार खाने का मन हुआ। बैंगन की कढी। यह बैंगन होता है न ? रींगणा—बैंगन। यहाँ एक बाबा था। हठ (ग्राही)। भान नहीं होता। ऐसे तो राजा माने कितने ही। ... मस्तराम की जगह है वहाँ। एक बार खाने की बहुत इच्छा हुई। कुत्ता ! तुझे खाना है ? फिर बनाया। बैंगन की कढ़ी। सथवार होता है न ? सथवार आता है। बैंगन बहुत हो। लाओ, बनाओ। इतनी खायी कि उल्टी की। ले खा। कुत्ते ! यह रास्ता है ? यह सन्तोष करने का रास्ता है ? शशीभाई ! यह तो आकुलता उत्पन्न की। यह मिथ्याश्रद्धा में पर के विषय की सुविधा से सन्तोष माननेवाले हैं और उसकी असुविधा हो तो दुःख माननेवाले उसके कारण से हैं। समझ में आया ? और इन्द्रियों की तृप्ति होगी। बहुत खाऊँगा, पी लूँगा, भोग देख लूँगा, बहुत देख लो। वेश्या बहुत देख लें, फिर अपनी तृष्णा बन्द होगी। नहीं होगी, तेरा मिथ्यात्व बढ़ेगा। तृष्णा (प्रगट होगी)। समझ में आया ?

कहते हैं, अरे ! विषयग्राम मृगजल जैसे होने पर भी उसने घेरा डाला है। पाँच

इन्द्रिय के विषय में झपट्टे मारता है, ऐसे झपट्टे मारता है। अतीन्द्रिय विषय जो श्रद्धा का है, उस श्रद्धा से तो भ्रष्ट है। इसलिए इन्द्रिय के विषय की ओर में वह झपट्टे मारता है। ऐसा करूँ, यह खाऊँ, यह पी लूँ, यह भोगना... एक विषय को भी भिन्न-भिन्न विविध रीति से भोगना। एक विषय को भी विविध भिन्न-भिन्न रीति से भोगना। समझ में आया? उसे मिथ्यादृष्टि के विषय में पाँच इन्द्रिय के विषय में जो मृगजल जैसे हैं, तथापि उनके ऊपर झपट्टे मारता है। यह हो, यह हो, यह हो। कोई हमारी प्रशंसा करे, ऐसी कोई प्रथा चलावे... समझ में आया? बोलने की, वार्ता की, कथा की कि यह तो ज्ञानी लगता है। लोग अज्ञानी कहते थे न। ऐसा करके सन्तोष जगत से मनवाना, वह पर के विषय की ओर का झुकाव अज्ञान से कर रहा है। आहाहा! समझ में आया?

और वह परस्पर आचार्यत्व भी करता है... अब इतनी बात हुई। स्वयं तो ऐसा करता है मिथ्याश्रद्धा के कारण परविषय की ओर में सन्तोष मानकर... समझ में आया? परन्तु परस्पर आचार्यपना करता है कि देखो! भाई! राग करना चाहिए। राग किये बिना कुछ वीतराग हुआ जाता होगा? कहो, यह वृद्ध क्यों नहीं आये? क्या हुआ? समझ में आया इसमें? यह राग और राग की कथायें, वे विकथायें हैं, वह दर्शनभेदनी कथा है। राग से लाभ मानना, विकार से लाभ मानना, पाप से लाभ मानना, पुण्य से लाभ मानना, पुण्य और पाप के फल की सुविधा से अपने को पुष्टि होगी, असुविधा से हानि होगी, ऐसा जो मानना है, वह सब मिथ्यात्व का रोग है। परन्तु प्ररूपणा करनेवाले ऐसे पारस्परिक मिले, ऐसा कहते हैं। परस्पर आचार्यत्व भी करते हैं। चाहिए, ऐसा होता होगा धर्म सीधा? लो, यह तो कहते हैं, सम्यग्दर्शन प्रगट करो, आत्मा का विषय बनाओ, आत्मा को विषय बनाओ। ऐसे तुरन्त बनता होगा? ऐ लादूलालजी! देखो! अन्दर पाठ है न? '**परस्परमाचार्यत्वमाचरतो**' यह अचराते हैं—आचार्यत्व भी करते हैं। आहाहा! उनका उपदेश भी झूठा निकलता है, ऐसा कहते हैं, भाई! आहाहा! समझ में आया? यह शब्द आगम उनके मुख में से नहीं आता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो न! आचार्य की कथनपद्धति कैसी है! कितना डालते हैं, कितना!! अपने को तो बहुत अन्दर गहरे-गहरे विचारें तो बहुत डाला है, ऐसा लगे अन्दर।

आचार्यत्व भी करते हैं, देखो न! भाषा कितनी करते हैं! बोलते हैं, ऐसा कहा न? ऐसा करो, ऐसा करो। शास्त्र के अर्थ उल्टे करके वीतरागमार्ग की लूट होती है और विकार से लाभ होता है, ऐसा मनानेवाले शब्द उसे निकलते हैं। ऐ... शशीभाई! आहाहा! कहते हैं, परस्पर, हों! वापस वह हाँ पाड़े। सच्ची बात है, हों! पहले चाहिए राग की मन्दता होवे तो कल्याण हो या सीधे एल.एल.बी. की तुम्हारी बातें? अरे! सुन न! एल.एल.बी. की बात नहीं, यहाँ तो एकड़ा के शून्य की बात है पहली।

राग और विकल्प से पृथक् भगवान आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव कर, यह प्रथम में प्रथम धर्म है। इसके अतिरिक्त एक भी कदम आगे चले, ऐसा नहीं है। तेरे व्रत और भक्ति, पूजा और दान, दया सब रण में, अरण्य में रुदन है। लादूलालजी! अरे! कठिन बात। कल कोई कहता था। दो घण्टे आये न? मैंने कहा, देखो! एक बात ऐसी थी... बात निकली न? ... यह पर की दया का भाव है, वह राग है। और राग को भगवान ने व्यभिचार कहा है। २०३ गाथा, निर्जरा (अधिकार)। २०३, २०३ में है। निर्जरा (अधिकार की) २०३ गाथा में व्यभिचार शब्द लिया है। यह तो साक्षी देते हैं। रामजीभाई दूसरे को बताते हैं न। जज इसके बिना मानते नहीं। मानते नहीं थे। २०३ गाथा है, देखो! २०३ गाथा है।

'**थिरमेगमिमं भावं उवलब्भंतं**' इसका अर्थ टीका में लो। अनियत, अस्थिर है न? देखो! **अनियत अवस्थावाले, अनेक, क्षणिक, व्यभिचारी भाव हैं,...** यह। पुण्य और पाप सब व्यभिचारी भाव हैं। अतत् भाव हैं, अस्थायी भाव हैं, अनियत भाव हैं। इतने शब्द प्रयोग किये हैं। **अनियत अवस्थावाले, अनेक, क्षणिक, व्यभिचारी भाव हैं, वे सब स्वयं अस्थायी होने के कारण स्थाता का स्थान अर्थात् रहने का स्थान नहीं है...** जिसे अन्दर में स्थिर होना है, वह स्थिरता का स्थान वे शुभाशुभ हैं नहीं। समझ में आया? व्यभिचार, हों! सेठी! शुभ विकल्प को व्यभिचार कहा है। क्योंकि स्वभाव निर्मलानन्द प्रभु है, उसके साथ राग की एकता करना, इसका नाम मिथ्यात्व का मैथुन है। मैथुन में दो का जुड़ान होता है।

(संवत्) १९९५ में थोड़ी बात आयी थी न? गाँधीजी व्याख्यान में आये थे न,

१९९५ में। यह बात... मार्ग तो मार्ग यह है। तब वह जरा बोले थे, अन्य को भारी कठिन पड़े। भारी पड़े या न पड़े, वस्तु की स्थिति ऐसी है। वस्तु ही ऐसी है। भगवान आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु निर्मलानन्द से विरुद्ध पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति आदि के भाव, वे राग हैं, (उनका) स्वभाव के साथ एकत्व करना, यह मिथ्यात्व का व्यभिचार है। बाहर के व्यभिचार अनन्त बार छोड़े। यह अभ्यन्तर का व्यभिचार छोड़े बिना बाहर के व्यभिचार छोड़ा, ऐसा उपचार से भी नहीं कहा जाता। आहाहा! समझ में आया? वीतरागमार्ग ऐसा है कि वस्तु ही ऐसी पुकार करती है। आहाहा! उसमें क्या करना?

समन्तभद्राचार्य कहते हैं, तू कहता है कि यह विरोध आता है, विरोध आता है। जो नित्य वह अनित्य; एक, वह अनेक; शुद्ध वह अशुद्ध। अरे! विरुद्ध होता है। पुकार करो तो करो, वस्तु ऐसी है। आप्तमीमांसा में पण्डित जयचन्द्रजी ने अर्थ किये हैं, पण्डित जयचन्द्रजी ने। उन्होंने आप्तमीमांसा का अर्थ किया है न? पुस्तक है। पुकार करो तो करो। भगवान! मार्ग तो ऐसा है। दुनिया प्रसन्न हो तो मार्ग दूसरा होगा, अप्रसन्न हो तो दूसरा हो जायेगा, ऐसा है नहीं।

यहाँ तो कहते हैं, अरे अज्ञानियों! जिसे स्वविषय नहीं, जिसकी श्रद्धा में स्वचैतन्य भगवान बसे नहीं, अपनी सम्यक् श्रद्धा—सम्यग्दर्शन की श्रद्धा में भगवान आत्मा बसा नहीं, उसकी श्रद्धा में विकार बसा हुआ है। आहाहा! और विकार बसा हुआ है, इसलिए उसकी कथनशैली में भी राग से लाभ होगा, विकार से लाभ होगा, करो, विकार करते-करते बेड़ा पार हो जायेगा। एक बार शुभ करते-करते, व्यवहार आचरण करते-करते कभी भी निश्चय हो जायेगा। ऐसी अज्ञानियों की प्ररूपणा परस्पर आचार्यत्व भी करते हैं।

मुमुक्षु : शुभभाव से क्षायिक सम्यग्दर्शन होगा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह और कहते हैं। अरे! भगवान! यह तो बहुत आगे चला गया। यह तो बहुत आगे चला गया। शुभयोग से क्षायिक समकित होगा। अरे प्रभु! क्या कहते हो? भगवान! अभी कोई भगवान नहीं, इसलिए अभी तुझे ऐसा बोलने का (होता है), यह तो लूट पड़ती है। आहाहा! त्रिलोकनाथ परमात्मा का भरतक्षेत्र में

विरह पड़ा। केवलज्ञानी परमात्मा महावीर रहे नहीं, सीमन्धर भगवान वहाँ विराजते हैं। ऐसे भगवान के विरह में, अरे! प्रभु! ऐसी बातें चले। नहीं चलती, हों! परन्तु क्या हो? शुभराग से क्षायिक समकित होगा। अरे! प्रभु! क्या कहता है तू? भाई! यह सब सहन करना पड़ेगा।

मुमुक्षु : शुभराग बहुत ऊँचा हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी ऊँचा नहीं। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, उसे जहर कहते हैं। भगवान आत्मा अमृत का कन्द प्रभु है। अतीन्द्रिय अमृत का रस है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह प्रकृति बन्ध का कारण धर्म नहीं होता। बन्ध का कारण अधर्म होता है। हाय.. हाय! अररर! भाई! धर्म से विरुद्ध भाव को पुण्य कहो या अधर्म कहो। भाई! यह वस्तुस्थिति है। कठोर शब्द पड़े तो भी वस्तु तो ऐसी है। समझ में आया? आहाहा!

(संवत्) १९८५ में यह शब्द आया था। हजारों लोग। सम्प्रदाय में कहा था, सम्प्रदाय में कहा था। ८५, पौष महीना। बड़ी सभा। तब तो बहुत मान था न! प्रतिष्ठा (बड़ी)। फिर यह ... उठा। यह तो मुँहपत्ती निकाल दी न अपने... ८५ का पौष महीना। बड़ी सभा। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं। चिल्लाहट मचा गये सब, हों! एक साधु बैठा था (वह बोला), वोसरे... वोसरे। वोसरे अर्थात्? यह हमें नहीं चाहिए, यह हमारे नहीं चाहिए। यह भाषा है वोसरे। छोड़ दूँ... छोड़ दूँ। उठ गया, भाग गया। तुम उठ गये तो यह सभा कुछ माने, ऐसा नहीं। अभी तो मुँहपत्ती सहित है न सब। ऐ... रतिभाई! भाग गये, उठ गये। वह सभा तो सब सुनती है, देखो! तुमने क्या कहा, यह सुना नहीं। तुम वोसरे... वोसरे कहकर उठ गये। फिर पीछे से कहा, तुम्हारा किसी ने सुना नहीं। मुफ्त में... बैठे रहे होते तो दिक्कत क्या थी? वहाँ कहाँ बात घुस गयी थी? आहाहा!

भगवान आत्मा, जिसकी दृष्टि का विषय परमात्मा है, ऐसी जिसे श्रद्धा, भान नहीं, उसका विषय पुण्य और पाप, राग और विकार और पर ही जिसका विषय है। इसलिए उस विषय की ही स्थापना करते हैं। विषय शब्द से स्त्री के भोग, वे तो स्थूल बातें हैं।

समझ में आया? भगवान आत्मा की शुद्धस्वरूप की दृष्टि का विषय छोड़कर जिसने विकार की दृष्टि, पापदृष्टि... मिथ्यादृष्टि का विषय विकार है। ऐसा उपदेश परस्पर करते हैं। हाँ, बराबर है, ऐसा चाहिए, ऐसा होता है। ऐसे का ऐसे सीधे एल.एल.बी. हुआ जाता होगा? सुन न भगवान! हो, परन्तु वह धर्म नहीं। और उससे करते-करते धर्म होगा, भाई! राग करते-करते धर्म होगा? लहसुन खाते-खाते कस्तूरी की डकार आयेगी? लहसुन... लहसुन कहते है, पण्डितजी? लहसुन। लहसुन, डुंगळी—प्याज। हमारे (गुजराती में) डुंगळी कहते हैं। यहाँ तक खायी। कस्तूरी की डकार आयी? धूल में भी नहीं आती। मूढ़ है। ऐसे राग और विकार करते-करते भगवान आत्मस्वभाव की दृष्टि प्रगटे, तीन काल में नहीं आता। परन्तु अज्ञानी परस्पर यह मिथ्यात्व के कारण पर के विषय से स्वविषय प्राप्त होता है, ऐसी प्ररूपणा आचार्य होकर परस्पर में करते हैं। आहाहा! समझ में आया? अरे! यह निकाला इसमें से। यह बात इसे रुचती है न? कामभोग सम्बन्धी विषय। विषय अर्थात् परविषय। तो वह पर की बात ऐसी ही करता है। ऐसा इसमें से निकाला। भाई, हिम्मतभाई! कामभोग में से यह सब निकाला है। जो जिसे रुचा, वह दूसरे को आमन्त्रण दे।

परस्पर आचार्यत्व भी करता है... कल कहा नहीं था? रात्रि में कहा था न? देवचन्दजी का। नहीं?

द्रव्यक्रिया रुचि जीवडा अरु भाव धर्म रुचि हीन।

उपदेशक भी वैसे ही... क्या करे जीव नवीन रे, चन्द्रानन जिन, सुनिये अरदास...

भगवान तो केवलज्ञान में सब जानते हैं। वहाँ कहाँ सुनना है? परन्तु भक्तों को ऐसा कि प्रभु! सुनो तो सही।

भरतक्षेत्रमां नवपणो जी... लाज्यो दुषमकाल।

जिन पूर्वधर विरहथी, जी दुलहो साधन चाल्यो रे... चंद्रानन जिन। सुनिये अरदास...

हे नाथ! ऐसे साधन मिले। प्रभु! तेरे विरह में यह सब उल्टे कान डल गया यह तो। लादूलालजी! ऊंधे कान समझे? उल्टे। 'जिन पूर्वधर विरह से...' प्रभु! जिन वीतराग और पूर्वधरो का हमको यहाँ विरह पड़ा। समझ में आया? यह उल्टी प्ररूपणा

श्रद्धा करनेवालों को प्रभु! रोकनेवाला कौन है अभी? आहाहा! समझ में आया? यह वाड बेल खाये, हमारे कहाँ दलील करने जाना? साधु और आचार्य नाम धरानेवाले, प्रभु! तेरे मार्ग से विरुद्ध कहते हैं। प्रभु! हमारे कहाँ दलील करना? समझ में आया? ओहो! मार्ग परमात्मा का...

सर्वज्ञस्वभावी प्रभु, भाई! उसके आनन्दरस की रुचि तो कर, भाई! वह रुचि कर तो रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि प्रकार से, रुचि प्रमाण से वीर्य की स्फुरणा होकर अन्तर में एकता होगी। परन्तु उसकी रुचि किये बिना अकेले शुभ और अशुभ की रुचि करने से... रुचि अनुयायी वीर्य, यह यहाँ कहते हैं। उसमें रुचि विकार में है तो उसका वीर्य वहाँ ही गति करेगा। स्थापित भी वह करेगा, कहेगा भी वह, मानेगा भी वह। लादूलालजी! आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! परस्पर आचार्यत्व करते हैं। ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य ने कुन्दकुन्दाचार्य के शब्दों के पेट खोल दिये हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें? एक शब्द में से कितना (निकालते हैं)! और उसमें से निकलता है सब, हों! यह कामभोग अनुबन्ध शब्द पड़ा है न। पण्डितजी! अनुबन्ध। '**कामभोगानुबद्धा**' संस्कृत में है। '**कामभोगानुबद्धा**'। अर्थात् सम्बन्ध करना। ऐसे सम्बन्ध, ऐसे सम्बन्ध। ऐई! भाई! ऐसा नहीं, ऐसे सम्बन्ध करता है। इच्छा और राग और द्वेष, लम्बा-लम्बा चलने पर बाहर के काम। ऐसे सम्बन्ध करानेवाली बात है। यहाँ से सम्बन्ध तुड़ानेवाली बात है और यहाँ (आत्मा में) सम्बन्ध करानेवाली बात है। शब्द वे कितने आचार्य के... ओहोहो! समझ में आया? यह अमृतचन्द्राचार्य और कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् परमेश्वर जैसे पंचम काल में पके हैं, लो! एक केवलज्ञान का अभाव है, बाकी तो ओहोहो!

यह तो पद्मप्रभमलधारिदेव ने कहा नहीं? अरे! ऐसे मुनि और भगवान में अन्तर देखे, हम जड़ हैं, हों! ऐसा कहा है। अपने कलश आ गया न? ऐसे मुनि महा और परमात्मा सर्वज्ञ... पहले अन्तर देखे, ऐसा कहा, फिर न्यूनता थोड़ी है, ऐसा कहा था। पहले श्लोक में थोड़ी न्यूनता है, थोड़ा अन्तर है, (ऐसा कहा)। बाद में कहते हैं, अन्तर देखनेवाले हम जड़ हैं। भगवान वीतरागस्वरूप से सन्त हो गये, उन्हें वीतरागता पूर्ण

आने में कितनी देर है ? यह तो बीच में पंचम काल आ गया, जरा धर्मशाला में—स्वर्ग में रुकना पड़ेगा। वहाँ से निकलकर सन्त केवलज्ञान लेनेवाले हैं। समझ में आया ? आहा ! जैसे पच्चीस कोस चलते हुए शाम पड़ जाये, शाम सोलह कोस में। बाकी आठ कोस चलना पड़े तो सवेरा हो जाये, इसलिए रास्ता काट लेंगे। इसी प्रकार मुनियों ने काम तो अन्दर में अनन्त किये। थोड़ा काल बाकी रह गया और स्थिरता बाकी रह गयी। छूटकर स्वर्ग में गये हैं। वह धर्मशाला है वहाँ। वहाँ से निकलकर मनुष्य का भव निकला (वहाँ) आठ वर्ष में सडसडाट चारित्र और मुनि की दशा अंगीकार करके थोड़े काल में केवल (ज्ञान) लेंगे। समझ में आया ? ऐसी यह कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य मुनि की दशा स्थिति पुकार करती है। समझ में आया ?

कहते हैं, अरे ! मृगतृष्णा जैसे... एक ओर भगवान ध्रुव स्वरूप, ऐसा कहते हैं। चिदानन्द ऐसे कातली पड़ी है न ! अनादि-अनन्त शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... उसका विषय छोड़कर, उसकी श्रद्धा छोड़कर और यहाँ उस विकार में और पर में श्रद्धा की, वे सब विषय मृगतृष्णा जैसे हैं। थोथेथोथा खड़े रहेंगे, कोई तेरे पास नहीं रहेगा। उसमें लाभ मनाते हो। अरे ! पुण्य करेगा तो लाभ होगा। भगवान के पास जाया जायेगा फिर सुनायेंगे। अरे ! चल... चल। तेरी बात उल्टी है। भगवान तो यहाँ बैठा है। वहाँ (पर) भगवान के पास जाये वह तो पुण्य का कारण है। भगवान के पास अनन्त बार गया। भगवान के पास अनन्त बार गया, परन्तु तूने विकथा सुनी है वहाँ। धर्मकथा सुनी नहीं। कहा नहीं ? श्रुत, परिचित में आया या नहीं ? भाई ! अनन्त बार तूने कामभोग की कथा सुनी। भगवान के पास भी कामभोग की कथा सुनी। ऐई ! ऐसा आया या नहीं इसमें ? क्योंकि इसने राग की रुचि रखकर सुना है। इसका परिणमन राग की रुचि में भगवान का सुने तो भी वह अपने भाव से सुनता है। आहाहा ! समझ में आया ?

प्रभु कहते हैं कि जिसे राग और परविषय की ओर के झुकाव का प्रेम हो गया है न, वह परसन्मुख के झुकाव की ही प्ररूपणा और बातें करेगा। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। सेठी ! जिसे स्व भगवान आत्मा अन्तर में झुकने से स्वश्रद्धा हो और सत्यता प्रगटे, फिर अन्तर में स्थिर होने से चारित्र प्रगटे। वह अन्तर झुकाव चाहिए। उसके बदले

मिथ्यादृष्टि का झुकाव ही बाहर में है। इसलिए दुनिया को भी बाहर के झुकाव के झुकाव की ही बातें करेगा अकेली। समझ में आया? आहाहा! ज्ञानचन्दजी! आहाहा! अरे! वीतरागमार्ग है कहीं? समझ में आया? आहाहा!

प्रभु आत्मा का जिसने विषय श्रद्धा-दृष्टि की नहीं न, प्रभु! उसे तो यह पुण्य-पाप का विषय राग ही जिसे ध्येय में वर्तता है और इसलिए उसकी कथनशैली उस राग को स्थापित करने की है और परस्पर वही करेगा, वही करेगा। उसे कामभोग की कथा कहते हैं। यह परस्पर आचार्यत्व करते हैं। क्या? कामभोग की कथा का। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म है, हों! जयसुखभाई! ऊपर-ऊपर से कुछ हाथ आवे, ऐसा नहीं इसमें। आहाहा! **(अर्थात् दूसरों से कहकर उसी प्रकार अङ्गीकार करवाता है)।** स्पष्टीकरण किया है। परसन्मुख के विषय में झुकना, वही पहली दिशा धर्म है और फिर स्वसन्मुख झुका जायेगा। अरे भगवान! जाना पहले पूर्व में, वह चलने लगे पश्चिम में। पश्चिम में चलते-चलते पूर्व (दिशा) सरल पड़ेगी। सरल पड़ेगी समझ में आया? नजदीक आयेगी। जाना है पूर्व—सूर्य की ओर—पूर्व (और) जाता है ऐसे। भाई, थोड़ा-थोड़ा चलने तो दो। चलना करते-करते पूर्व—सूर्य के सन्मुख होगा। सन्मुख नहीं मुट्ठी बाँधकर उल्टा पड़ेगा, ढसा है वहाँ। यहाँ ढसा आता है ढसा। ढसरडा होगा, भावनगर ऐसे रह गया। भावनगर पूर्व में रह गया। भावनगर—अनन्त आनन्द का कन्द ऐसा भावनगर अन्तर सन्मुख में रह गया है। उससे विमुख में राग की क्रिया और पुण्य दया, दान, व्रत की क्रिया करने से स्वसन्मुख हुआ जायेगा, (ऐसा) बिल्कुल नहीं। सेठी! आहाहा! यहाँ नजदीक हमारे ढसा (गाँव) है न। तेरह कोस ढसा है। २६ मील। और यह १९ मील भावनगर है। यह बीच में है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भावनगर की बात है। यह तो बात करते हैं। अनन्त आनन्दकन्द के समाजरूप भगवान आत्मा भावनगर है। अन्तर में सन्मुख जाना, वह नगर में पहुँचना है। परसन्मुख जाकर, राग करते-करते परसन्मुख जाकर अन्दर नगर में पहुँचना है? अन्दर नगर में पहुँचा जाता है? ऐसे जाने पर ऐसे जाया जाता है? ऐसा

कहते हैं। परन्तु अज्ञानी आचार्यपना कामभोग और बाहर के विषय की बात स्थापित करते हैं। कहो, रतिभाई! आहाहा!

इसलिए... अब कहते हैं, ऐसे कारणों से **कामभोग की कथा तो सबके लिये सुलभ (सुख से प्राप्त) है।** देखो! सुख से (आया)। सुलभ-सुख से प्राप्त है। देखो! अन्दर लिखा है। समझ में आया? ऐसे कारणों से। स्वयं भी विकार के मध्य में पड़ा है और चक्कर लगाया है और तृष्णा प्रगट हुई है और बाहर में दौड़ता है और कहनेवाले भी इसे ऐसे मिलते हैं। और स्वयं दूसरे को कहे और तुझे कहनेवाले दूसरे भी ऐसे ही मिलते हैं। समझ में आया? **इसलिए...** ऐसे कारणों से, ऐसा। अन्दर में शब्द पड़े हैं न? कामभोग की कथा सबको सुलभ है, यह तो योगफल लिया। **परन्तु...** अब लेते हैं। समझ में आया? इस कारण से आत्मा की बात राग से पृथक् सुनना दुर्लभ है, सुलभ नहीं। ऐसे कारणों में रुकने से, ऐसे संयोगों को प्राप्त होने से उसका भाव वहाँ पड़ा है, इसलिए परिभ्रमण कर रहा है। तृष्णा प्रगट होकर ऐसे गयी है। परस्पर बातें करे तो उसकी पुष्टि करता है। इसलिए भगवान आत्मा वह पुण्य-पाप के राग से रहित ऐसा एकत्व स्वभाव, उसे प्राप्त करना सुलभ नहीं, महादुर्लभ है। वह कैसे प्राप्त हो, यह व्याख्या करेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रथम श्रावण कृष्ण अमावस्या, मंगलवार, दिनांक - १६-०८-१९६६
गाथा - ४, प्रवचन - १८

यह समयसार। जीव-अजीव अधिकार, चौथी गाथा चलती है। यहाँ तक कल आया है, देखो! **इसलिए कामभोग की कथा तो सबके लिये सुलभ (सुख से प्राप्त) है।** सुलभ-सुख से प्राप्त। यहाँ तक आया है। है? बहुत कारण कल दिये। अनन्त बार क्या सुना है? अपना स्वभाव पुण्य-पाप के राग से भिन्न होने पर भी अनादि से राग और विकार का इसने वेदन किया है। इस कारण से यह बन्ध की कथा अथवा इच्छा अर्थात् राग और भोग अर्थात् भोगना—ऐसे विकारी भाव का करना और विकारी भाव का भोगना, ऐसी बात अनन्त बार वेदन में आ गयी है। यह दशा वेदन में आ गयी है। इसलिए यह बात अनन्त बार सुनी है और परिचय में आयी है, ऐसा कहा। समझ में आया? निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक दिगम्बर द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि गया, उसकी बात है, हों! सम्यग्दृष्टि अनुभव करके नौवें ग्रैवेयक गये हैं, वे भी अनन्त गये हैं। परन्तु आत्मा के राग का विकल्प जो है, उससे भिन्न अपना स्वरूप अनुभव में प्रत्यक्ष होनेयोग्य है, वैसा प्रत्यक्ष किया नहीं और राग और पुण्य-पाप के भाव के साथ एकत्व करके अन्तर विकार का कर्ता और वेदन होकर अनन्त बार वह बन्धकथा का भाव सुना है, अभ्यास में आया है, आदत पड़ गयी है, आदतन हो गया है, अनुभव में आ गयी है। पण्डितजी! तुम्हारे टेव शब्द आता है? कुटेव। ऐसी टेव पड़ गयी। परिचय में कहते हैं। आदत पड़ गयी। समझ में आया?

तब क्या दुर्लभ है? **परन्तु...** यह तो कल बहुत चला था। अब जरा शान्ति से यह तो (समझने की बात है)। हमारे यह भाई तो सुनने के लिये रुके हैं। अब यह दुर्लभ है। क्या? ऐसी बात पुण्य-पाप के भाव की और कर्ता और भोक्ता की, उसके वेदन की ऐसी बात तो अनन्तबार जीवों ने (सुनी है)। निगोद के जीवों ने सुनी नहीं, परन्तु वेदन किया है, इसलिए उन्होंने सुनी है, ऐसा कहा गया है। **परन्तु निर्मल...** जो अन्तिम शब्द

है, उसे पहले लेते हैं। **निर्मल भेदज्ञान...** पाठ में ऐसा है '**निर्मलविवेकालोकविविक्तं केवलमेकत्वम्**'। यह शब्द पड़े हैं। पण्डितजी! संस्कृत टीका में अन्तिम शब्द। देखो! इसमें जरा माल भरा है। आहाहा!

भगवान आत्मा निर्मल भेदज्ञानरूपी विवेक। देखो! पाठ में विवेक है। अर्थ में भेदज्ञान कहा है। भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु राग से और पुण्य से भिन्न, महाव्रतादि के राग से भी भिन्न भगवान आत्मा है, ऐसा निर्मल विवेक—भेदज्ञान—निर्मल भेदज्ञान किया नहीं। '**निर्मलविवेकालोक**' '**आलोक**' का अर्थ किया है प्रकाश। भाई! गुजराती में प्रकाश है? बराबर है, बराबर है। क्या कहते हैं? यह भगवान आत्मा में एक प्रकाश नाम का गुण है। ४७ गुण हैं—शक्तियाँ हैं—उनमें बारहवीं शक्ति प्रकाशशक्ति है। गुण है न? ४७ आये हैं न? जीवत्व, चिति-चेतन, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, विभुत्व, सर्वदर्शी, सर्वज्ञ, स्वच्छत्व, प्रकाश। बारहवीं शक्ति है। ४७ है न? हमारे (गुजराती में) सुडतालीस कहते हैं, तुम्हारे क्या भाषा है? सैंतालीस। हमारे सुडतालीस कहते हैं। चार और सात। उनमें एक बारहवीं शक्ति भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने ली है। ऐसी एक प्रकाशशक्ति आत्मा में है।

कहते हैं, निर्मल भेदज्ञान—विवेकरूपी प्रकाश से 'भिन्न देखने में आता है...' शब्द तो यह है। अन्दर स्पष्ट नहीं। यहाँ स्पष्टता की आवश्यकता तो है। पहले भी लिखा होगा, पण्डित जयचन्द्रजी ने। क्या कहते हैं? भगवान आत्मा, जो राग और कषाय के चक्र में एकत्व होकर अपना निज स्वरूप तिरोभूत, तिरोभूत-दूर हो गया है। परन्तु उसका स्वभाव है कैसा? निर्मल विवेक, निर्मल विवेक (से ज्ञात हो, ऐसा है)। मन के संग से शुभ रागादि उत्पन्न होते हैं, उनसे भी भिन्न निर्मल विवेक—भेदज्ञान प्रकाश। '**विविक्तं**'। उनसे भिन्न, भिन्न। देखो! '**विविक्तं**' अर्थात् भिन्न। **दिखाई देनेवाला...** दिखाई देनेवाला। '**आलोक**' है न? '**आलोक**' का (अर्थ तो) प्रकाश हुआ। '**विविक्तं**'—**भिन्न दिखाई देनेवाला यह मात्र भिन्न आत्मा का एकत्व ही... 'केवलमेकत्वम्**'। भिन्न आत्मा का मात्र एकत्व ही। क्या कहते हैं? अपने में एक प्रकाश नाम का अनादि-अनन्त गुण है। जैसे आनन्दगुण है, ज्ञानगुण है, दर्शनगुण है, स्वच्छता गुण है, परमेश्वरता

गुण है, ऐसी आत्मा में अनन्त शक्ति है। उसमें एक प्रकाश नाम की शक्ति ऐसी है कि जिससे आत्मा... देखो! यह वर्तमान में विरोध चलता है, उसका भी इसमें स्पष्टीकरण है।

प्रकाशशक्ति नाम का आत्मा में एक गुण पड़ा है। उस गुण का कार्य क्या? कि पुण्य-पाप के राग से भिन्न पड़कर अपना आत्मा पवित्र-शुद्ध है, उसका प्रत्यक्षरूप से प्रत्यक्षता से, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होकर होना, वह प्रकाश नाम के गुण का फल अर्थात् कार्य है। शान्ति से समझना। यह जरा सूक्ष्म बात है। यह समयसार अर्थात् तो चौदह पूर्व का निचोड़ है! केवलज्ञान का कन्द इसमें से निकाला है। भगवान आत्मा कहते हैं कि विकल्प से पुण्य-पाप के भाव हो, परन्तु वह अपनी चीज़ नहीं। उनसे भिन्न अपना विवेक राग से भिन्न करके आलोकन प्रकाश का प्रत्यक्षरूप से आत्मा का स्वसंवेदन हो, वह उसका स्वभाव एकत्व होना है। पर से भिन्न पड़कर अपने स्वभाव में एकत्व होकर प्रत्यक्ष होना, मति-श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष होना, स्वस्वभाव का प्रत्यक्ष होना। अवधि, मन:पर्यय कोई चीज़ नहीं, वह तो बीच में एक ऋद्धि आती है। वह साधकदशा में काम नहीं करती। समझ में आया?

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान जो अन्दर प्रगट है, प्रगट करते हैं तो वह ज्ञान द्वारा आत्मा (प्रत्यक्ष होता है)। प्रकाशशक्ति है। प्रकाशशक्ति का अर्थ स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होना, यह स्पष्ट शब्द में से जरा प्रत्यक्ष (निकाला)। समझ में आया? भगवान! तेरी चीज़ ऐसी है कि तू प्रत्यक्ष हो, ऐसा तेरा गुण है। समझ में आया? आत्मा परोक्ष रहे, ऐसा उसमें गुण है ही नहीं। आहाहा! भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने पूरे समयसार की टीका और शास्त्र में से निकालकर यह ४७ शक्तियाँ वर्णन की हैं। ४७ गुण... गुण। अनन्त गुण हैं, परन्तु वर्णन कितना करे? इतने अनन्त गुण हैं कि केवली भी एक-एक गुण एकसाथ कहे तो भी वह करोड़ पूर्व में पूरा न हो। अनन्तानन्त गुण आत्मा में हैं। उनमें से ४७ का नमूना बताया। उनमें एक बारहवीं शक्ति ऐसी बतायी कि भगवान! तुझमें प्रकाश नाम की एक शक्ति है—गुण है। उस गुण का कार्य, जब प्रकाशशक्ति आत्मा के आधार से रहती है। गुण है, वह आधेय है, भगवान आधार है। भगवान कौन? आत्मा निज भगवान। भगवान आत्मा आधार है। प्रकाशशक्ति उसमें रहती है। ऐसी अनन्त शक्तियाँ रहती हैं।

'**एक दव्वसिया गुणाः**'। एक द्रव्य के आश्रय से गुण रहते हैं। यह श्वेताम्बर का पद आया। एक द्रव्य के आश्रय से। अपने भी वहाँ आया है न? ९३वीं गाथा (प्रवचनसार)। '**अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।**' बोलो तुम, हमको बराबर नहीं आता। '**अत्थो**' पदार्थ है, वह द्रव्यमय है और द्रव्य है, वह गुणमय है और पर्याय है, वह '**तेहिं पुणो पज्जाया**'। द्रव्य और गुण हैं, उनके आश्रय से पर्याय उत्पन्न होती है। यह प्रवचनसार के ज्ञेय अधिकार की पहली गाथा। महासिद्धान्त द्रव्य-गुण-पर्याय का। समझ में आया? '**अत्थो खलु दव्वमओ**' पदार्थ है, वह द्रव्य है और गुण है, वह '**गुणप्पगाणि**' गुणस्वरूप है, गुण है। और '**तेहिं पुणो पज्जाया**' यह द्रव्य और गुण के आश्रय से '**पज्जाया**' पर्याय उत्पन्न होती है। छहों द्रव्य की। छहों द्रव्यों की व्याख्या है। समझ में आया? '**तेहिं पुणो पज्जाया**' द्रव्य और गुण के आश्रय से पर्याय उत्पन्न होती है।

(संवत्) १९७८ में पहली बार समयसार वाँचा न? भाई! ७८। हम जंगल में वाँचने जाते थे। शरीर कोमल था और धूप में बाहर कपड़ा खोलकर बैठते थे। यहाँ वापस आवें वहाँ एकदम लाल हो जाये। इसलिए कोई पूछे, वहाँ धूप थी तो वस्त्र ओढ़कर कहाँ बैठे? जंगल में। क्या वाँचते थे? समयसार। समयसार अर्थात् समझते हो? कहा। फिर उन्हें उनके शास्त्र में से तब बतलाया। २८वें अध्ययन की श्वेताम्बर की एक गाथा है। '**दव्वाणं एकदव्वसया गुणाणं आस्सवो दव्वं**' गुण का आश्रय द्रव्य है। '**एकदव्वसिया गुणाः**' द्रव्य में गुण रहते हैं, गुण का आश्रय द्रव्य है। '**गुणाणं आस्सवो दव्वं एकदव्वसिया गुणाः लक्खणं पज्जवाणंसु**' पर्याय का यह लक्षण है '...'। अपने ९३ गाथा के साथ तुलना है। '...' २८वें उत्तराध्ययन का सूत्र है। यह प्रवचनसार में है, वह समयसार में है। यह प्रवचनसार की बात है। ९३ गाथा है न? हाँ, बस यह।

'**अत्थो खलु दव्वमओ**' जगमोहनलालजी को दो... वहाँ इन्हें बहुत काम पड़ता है। ९३। '**अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।**' भगवान ने कहा है, ऐसा कहते हैं। और '**तेहिं पुणो पज्जाया**'। पर्याय जो उत्पन्न होती है छह द्रव्य में '**तेहिं पुणो**' द्रव्य और गुण के आश्रय से पर्याय उत्पन्न होती है। '**पज्जयमूढा हि परसमया**' अकेली पर्याय को, इतना ही द्रव्य माने वह मूढ़ जीव है। समझ में आया? यह तो महा

प्रवचनसार, समयसार! बापू! एक-एक श्लोक में तो बहुत भरा है। सब सिद्धान्त आ गये। पर्याय किस प्रकार से उत्पन्न होती है (वह आ गया)। निमित्त से निमित्त से कहते हैं, वह सब बात उड़ गयी। पण्डितजी! भगवान! चीज़ ऐसी है, प्रभु! वाद-विवाद की कोई वस्तु नहीं। '**तेहिं पुणो पज्जाया**' ऐसा शब्द श्वेताम्बर के २८वें अध्ययन में आया था। वह पूछते थे, क्या वाँचते हो? समयसार वाँचते हैं। क्या (वाँचा)? मैंने कहा, द्रव्य-गुण-पर्याय की बात है। खबर नहीं? कहा। यह २८वें अध्ययन में नहीं आता? '**गुणाणं आस्सवो दव्वं**' गुण का आश्रय द्रव्य है। '**एकदव्वसिया गुणाः**' एक-एक द्रव्य के आश्रय से गुण रहते हैं। '**लक्खणं पज्जवाणंसु**' पर्याय का लक्षण यह है '....' यहाँ कहा न? '**तेहिं पुणो पज्जाया**'। वहाँ '....' कोई शब्द तो लिया न, इसमें से निकला है तो। कोई तो लिया हो न। समझ में आया? यह पूरी द्रव्य-गुण-पर्याय की व्याख्या है।

प्रत्येक पदार्थ की पर्याय-अवस्था क्षण-क्षण में जब होती है, तब वह दो कारणों से उत्पन्न होती है, ऐसा कहे तो वह प्रमाण का कथन है। यह निश्चय का कथन है। निश्चय के कथन में स्वद्रव्य से पर्याय उत्पन्न होती है, वह निश्चय है। व्यवहार के कथन में निमित्त से उत्पन्न (होती है), ऐसा व्यवहार का ज्ञान कराने के लिये ऐसा कहते हैं। प्रमाण के कथन में दोनों एक साथ दो कारणों से कार्य होता है, ऐसा कथन आता है। समझ में आया? यह निश्चय का कथन है। साथ में जब निमित्त का कथन करना हो तो दो कारण से (उत्पन्न होता है) ऐसा आता है। यहाँ कहते हैं... यह आता है न? अकलंकदेव में। पर्याय... स्वपर्याय परपर्याय... स्व-पर प्रत्यय, स्व-परप्रत्यय शब्द है। सब याद तो रहता नहीं, भाव ख्याल में रहते हैं। यह शब्द है। यह है परन्तु यह तो ... शब्द आता है। दो कारण का वहाँ आता है। स्व-पर पर्याय उभय से होती है, ऐसा अकलंकदेव में आता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। उत्पाद में। उत्पाद की व्याख्या में आता है। उभय निमित्त वशात्। यह तो प्रमाण का ज्ञान कराना है। निश्चय का ज्ञान हो, तब निमित्त कौन है, उसका ज्ञान करना, वह प्रमाण का ज्ञान है।

यहाँ कहते हैं, प्रत्येक पदार्थ अपनी वर्तमान अवस्था, उसमें छहों द्रव्य हैं, छहों द्रव्यों में कोई खाली नहीं। एक परमाणु लो, एक आत्मा लो, एक कालाणु लो, एक धर्मास्तिकाय, एक अधर्मास्तिकाय, (एक) आकाश। अपनी पर्याय अपने से उत्पन्न होती है। एक बात। यहाँ क्या कहते हैं अध्यात्म की दृष्टि में? भगवान आत्मा... भाई! प्रभु तो तेरा तो ऐसा है कि निर्मल भेदविवेकज्ञान—राग से पृथक् होकर अपने में प्रकाश, निज स्वरूप शुद्ध है, ऐसी प्रकाशशक्ति के कारण से द्रव्यस्वभाव के कारण से निज (स्वरूप) प्रत्यक्ष होता है। मति-श्रुतज्ञान में आत्मा प्रत्यक्ष होता है। परोक्ष तो पर की अपेक्षा से मति-श्रुत को कहा है। इसलिए (परोक्ष) है। समझ में आया? आहाहा! भाई! भगवान तो ऐसा है कि तुझे प्रत्यक्ष में सम्यग्दर्शन हुआ तो मति-श्रुत में प्रत्यक्ष हो, ऐसा तेरा गुण है। आहाहा! समझ में आया? तेरी शक्ति ऐसी है। उस गुण का गुण प्रकाश नाम का गुण अन्दर अनादि-अनन्त है। जैसे आनन्द है, ज्ञान है, दर्शन है, प्रभुता है, वैसे प्रकाश नाम का गुण अनादि-अनन्त है। उस गुण का गुण, गुण का गुण अर्थ गुण का कार्य, गुण का कार्य अथवा गुण की पर्याय, कार्य कहो, पर्याय कहो, गुण का गुण कहो... समझ में आया? भगवान! तेरी चीज़ ऐसी है कि तू राग से प्रत्यक्ष हो तो भेदज्ञान में चैतन्यस्वरूप प्रत्यक्ष होता है, उसे यहाँ भेदज्ञान कहा जाता है।

सम्यग्दृष्टि में निज स्वरूप के अनुभवकाल में आत्मा प्रत्यक्ष होता है। आहाहा! अब अभी तो तकरार (करते हैं) कि चौथे गुणस्थान में श्रद्धा होती है और ऐसा होता है। अरे! चल... चल। ऐसी श्रद्धा तो अनन्त बार की। आगम की श्रद्धा और आगम मानते हैं और छह द्रव्य ऐसे हैं, यह श्रद्धा, श्रद्धा नहीं है। समझ में आया? १७-१८ गाथा में आता है न? भाई! जिसका ज्ञान न हुआ, उसकी प्रतीति तो गधे के सींग के समान है। १७-१८ (गाथा) समयसार। टीका में लिया है। जिसका अन्दर भान हुआ कि यह आत्मा है, ऐसा प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हुआ और उसकी प्रतीति करना, वह गधे के सींग के समान है। गधे के सींग नहीं तो दिखते नहीं तो प्रतीति किस प्रकार करना? समझ में आया? धीरे से कहते हैं, बहुत उतावल नहीं करते। इसलिए धीरे-धीरे थोड़ा-थोड़ा विचार करना। यह कथा आत्मकथा है। भाई! इसलिए पहले कहा कि तूने यह बात सुनी नहीं। कभी सुनी नहीं कि परिचय में आयी नहीं तो वेदन में तो कहाँ से आवे?

भगवान आत्मा **निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला...** लो, भाई! है न? समझ में आया? स्पष्ट शब्द के ऊपर से लिया है। परन्तु यहाँ ऐसा कहा न? '**विविक्तं**' भेद—उससे भिन्न '**केवलमेकत्वम्**' भासित होना। केवल एक का भास होना। भास में मति-श्रुतज्ञान से यह अकेला आत्मा शुद्ध है, पूर्ण है। पर्याय में स्वसंवेदन में प्रकाशशक्ति का फल यह है। समझ में आया? बारहवीं प्रकाशशक्ति है न? देखो! स्वसंवेदन का अर्थ यह लिया है, अमृतचन्द्राचार्य ने, हों! यह वस्तु है। अपने बहुत बार लिया है। बारहवीं शक्ति है, देखो!

'**स्वयम्प्रकाशमान**' संस्कृत है। वहाँ संस्कृत होगी। ४७ शक्ति में। अपने आधार देना (पड़े न)। रामजीभाई जज को आधार देते थे। तो तुमको पण्डित को आधार (देना पड़े न)। पीछे ४७ शक्तियाँ हैं न? '**स्वयम्प्रकाशमान**'। गुजराती है या हिन्दी है इनके पास? शक्ति है। बारहवीं, देखो यहाँ है। **स्वयं प्रकाशमान विशद (-स्पष्ट) ऐसे स्वसंवेदनमयी (-स्वानुभवमयी) प्रकाशशक्ति।** यह संस्कृत में है। '**स्वयम्प्रकाशमान-विशदस्वसंवित्तिमयी प्रकाशशक्तिः**' आत्मा में ऐसी प्रकाशशक्ति अनादि की पड़ी है। परन्तु जब वह द्रव्य और गुण का आश्रय-अवलम्बन लेता है, राग और पुण्य के विकल्प से भिन्न करके, भेदज्ञान करके द्रव्य का लक्ष्य और आश्रय करता है तो उसमें गुण का आश्रय आ गया। द्रव्य का आश्रय करने से राग से भिन्न पड़ने से स्वसंवेदन स्वयं प्रकाशमान—अपने से प्रकाश होता है। व्यवहार विकल्प था और राग था, इसलिए प्रकाश हुआ, ऐसा नहीं। व्यवहार था, इसलिए स्व का प्रकाश प्रत्यक्ष हुआ, ऐसा नहीं। स्वयं प्रकाशमान विशद। विशद अर्थात् स्पष्ट, स्पष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष '**स्वसंवित्ति**'—निज अनुभव। हम संस्कृत के शब्द बहुत नहीं जानते। स्पष्ट रखा है। समझ में आया? आहाहा! प्रत्यक्ष ही लिया है। अर्थ किया है। प्रत्यक्ष लिया है। कल ४७ शक्ति का छापने में आया है कल, भाई! कल छपा यहाँ, नहीं? ४७ शक्ति। कल पृष्ठ नहीं आये थे? ४७ शक्ति के आये? नहीं, कलशटीका के आये। यह कलशटीका चलती है न? ४५०० कलशटीका प्रकाशित होती है न। कलशटीका है। अब शक्ति का प्रकाशित होता है।

कहते हैं, भगवान आत्मा राग की एकता की बात और राग की एकता का अनुभव

तो भगवान! तूने निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक गया तो अनन्त बार अनुभव में आया है। परन्तु भगवान आत्मा स्वयं प्रकाशमान '**विशदस्वसंवित्तिमयी**'। **स्वसंवित्तिमयी**'। स्व आत्मा अपने अनुभव, प्रकाशशक्ति से अपना वेदन कभी उसने किया नहीं। समझ में आया? शब्द अन्तिम है, समझे न? भाई! परन्तु उसे पहला करके फिर बतलाना है न? '**नित्यव्यक्ततयान्तःप्रकाशमान**' बाद में लेंगे। उसकी सन्धि के लिये। टीका में पहला है। सन्धि की न! वह तो अनन्त बार पहले कह गये न। समझ में आया?

यह भगवान आत्मा ऐसा है कि इसका गुण ही ऐसा है, गुण का गुणी भी ऐसा है। जब प्रकाशमान प्रत्यक्ष होना, ऐसा गुण है तो प्रत्यक्ष होना, गुण का व्यापकपना लो तो द्रव्य का भी प्रत्यक्ष, गुण का भी प्रत्यक्ष और पर्याय का भी प्रत्यक्ष (हो गया)। क्या कहा, समझ में आया? भारी सूक्ष्म, भाई! परन्तु वह तो प्रकाशशक्ति है, वह तो गुण है। गुण तो द्रव्य के आधार से है। जब राग से पृथक् होकर अपने वेदन में प्रत्यक्ष आया तो प्रकाशशक्ति द्रव्य में व्यापक है, गुण में व्यापक है और पर्याय में व्यापक हो गयी। क्या कहा, समझ में आया? ४७ शक्तियाँ उसमें उतरी हैं। क्या कहलाता है तुम्हारे? टेप रिकॉर्डिंग में बहुत स्पष्ट है। पहले प्रकाशित हुई है वह दूसरी, यह प्रकाशित हुई है यह दूसरी प्रकाशित हुई है। ४७ शक्तियाँ बाहर आयेंगी। एक-एक शक्ति में कितना सार भरा है तो कहते हैं कि भगवान! तू तो आत्मा है न, प्रभु! और आत्मा है, वह अपने से प्रत्यक्ष न हो तो आत्मा कैसा? ऐसा कहते हैं। पर के आश्रय से ज्ञान हो, पर के आश्रय से ज्ञान हो तो पराधीन हो गया। ऐसा तेरा स्वभाव ही है नहीं। आहाहा! देवीलालजी! आहाहा! इसलिए बाद में लेंगे अभी, '**नित्यव्यक्ततयान्तःप्रकाशमान**' वस्तु ऐसी है, ऐसा फिर कहेंगे। यह तो अभी पर्याय के वेदन का कहते हैं।

कैसा है भगवान? यह आत्मा वस्तु है, बालगोपाल सब शरीर में भिन्न भगवान विराजमान हैं। शरीर भिन्न है, कर्म भिन्न है और पुण्य-पाप के विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति तो आस्रवतत्त्व है। उनसे भिन्न भेदज्ञान करने से, वहाँ से हटकर यहाँ आत्मा की ओर का विवेक होने से नित्य प्रत्यक्ष स्वसंवेदन शक्ति से आत्मा प्रत्यक्ष, प्रकाश का वेदन प्रत्यक्ष होता है, ऐसा उसका गुणा है। तो उसे भेदज्ञान हुआ तो सम्यग्दर्शन हुआ,

वहाँ स्वरूप आचरण भी वेदन के साथ हो गया। क्या करे ? वाद-विवाद करे सो अन्धा। भाई! सुन तो सही। वाद-विवाद में क्या है ? थोड़ा समय मुश्किल से मिला। अनन्त काल में निगोद में से निकला, प्रभु! आहाहा! कहाँ निगोद! नित्यनिगोद में से तो कोई जीव त्रस नहीं हुए, इतने जीव पड़े हैं। ओहोहो! भगवान! तू कहाँ आया ? कहाँ त्रस पंचेन्द्रिय और जिनेश्वरदेव की वाणी सुनने तक तो आ गया। आहाहा! समझ में आया ? उस ओर अब भगवान के समीप होकर, जो तूने दृष्टि में दूर रखा है, भगवान आत्मा को तूने दृष्टि में दूर रखा है और... यहाँ आगे कहेंगे, कषायचक्र, भाई! कहते हैं न ? '**कषायचक्रेण**'। तूने राग के साथ एकत्व करके भगवान को दूर रखा है और तूने राग को समीप रखा है। शरीर, वाणी की बात नहीं। क्योंकि एकसाथ एक तत्त्व हो सकते ही नहीं। '**कषायचक्रेण सहैकीक्रियमाणत्वाद**' यह पाठ पड़ा है। समझ में आया ?

भगवान! तूने तेरे स्वभाव को दूर रखा और जो तेरा स्वभाव नहीं, ऐसे पुण्य के विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति को समीप लेकर एकत्व करके तू पड़ा है। विकार को समीप रखा, भगवान को दूर रखा। समझ में आया ? हमारी हिन्दी कोई ऐसी कठिन नहीं, नहीं समझ में आये ऐसा, हों! इसलिए फिर दूसरे को सन्तोष हो। बहुत साधारण गुजराती जैसी, हिन्दी बहुत ऐसी कुछ कठिन नहीं। यह लोग हिन्दी बोलते हैं, वह अपने को ऐसा आता नहीं। अपने को साधारण हिन्दी भाषा आती है। समझ में आया ? कोई महिलाएँ साधारण हो तो न समझे। यहाँ यह नहीं समझ में आता ? भाई! तेरा स्वरूप अन्दर ऐसा है, वस्तु (ऐसी है)। उस वस्तु की समीपता तूने अनादि से छोड़ दी है और पुण्य-पाप के विकार के साथ अनादि से एकत्व करके समीप कर डाला है, विकार को समीप कर डाला है। समीप को दूर किया, दूर को समीप किया। भगवान आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प राग है नहीं। स्वभाव में विकार का अत्यन्त अभाव है। अभाव को स्वभाव के समीप कर डाला कि यही मैं हूँ। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड, पूरी शीतल बर्फ की शिला हो, वैसे प्रभु शरीर में—साढ़े तीन हाथ में पूरी वीतरागी—शीतल शिला पड़ी है। ऐसी उसकी समीपता छोड़कर तूने अनादि से पुण्य और पाप के विकार के साथ एकत्व करके समीप कर डाला है, बस, यही संसार है। चाहे तो त्यागी हो, महाव्रतधारी हो,

भोगी हो, परन्तु अन्दर में राग के एकपने का अनुभव है, वह त्यागी नहीं। धर्म का त्यागी और (कषाय का) भोगी है। यह कहते हैं, काम-भोग बन्धकथा। वह भोगी है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, यह **निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला...** इतना भले लो, भाई! भले स्पष्ट शब्द न लो। परन्तु भिन्न देखने में आता है, इसका अर्थ क्या? '**आलोक**' '**विविक्तं**' दो शब्द पड़े हैं न! प्रकाश और भिन्न। दो शब्द पड़े हैं न? यहाँ से पृथक् देखा। वह जो राग से एकपना देखता था, अनादि से पुण्य-पाप के विकल्प से एकपना देखता था, वह भेद कर डाला। पुण्य-पाप से एकपना देखता था तो विभक्त देखा। टीका कैसी है! '**विविक्तं**'। **भिन्न दिखाई देनेवाला...** भगवान आत्मा **यह मात्र भिन्न आत्मा का एकत्व ही...** भिन्न आत्मा का एकत्व ही असुलभ है अर्थात् सुलभ नहीं। यह बात अनन्त बार सुनी, वेदन की है। यह प्रभु अपने स्वभाव के समीप होकर, राग से विविक्त होकर अपने स्वभाव में एकत्व होकर निज स्वसंवेदन में आत्मा का प्रकाश-वेदन करना, वह एक ही बात सुलभ रही नहीं, वह असुलभ है।

स्वभाव से सुलभ है परन्तु अनादि अनभ्यास से असुलभ है। परन्तु ऐसा अभ्यास करना और वह चीज़ है, ऐसी आवश्यकता भी इसे लगी नहीं। और जिसकी आवश्यकता लगे, उसका पुरुषार्थ करे नहीं, ऐसा नहीं होता। क्या कहा, समझ में आया? जिसकी आवश्यकता इसके ज्ञान में लगे, उस ओर वीर्य की स्फुरणा हुए बिना रहे नहीं। परन्तु इसे अन्दर राग से पृथक् करना और मेरी वस्तु पर से भिन्न मेरा वेदन करना, यही आवश्यकतावाली चीज़ है, ऐसी उसकी रुचि हुई नहीं। समझ में आया? तो रुचि बिना (उसका पुरुषार्थ चला नहीं)। रुचि अनुयायी वीर्य। रुचि अनुसार वीर्य की स्फुरणा-गति होती है। रुचि ही न हो तो अन्दर गति कहाँ से आवे? समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह बात पहली समझ में आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही पहली है। दूसरी, पहली है कहाँ? आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं? प्राणभाई! थोड़ा-थोड़ा। बहुत उत्साह से नहीं आया। सरस बात है? आहाहा!

भाई! तेरे घर की बात है न। भगवान! तूने तेरा घर देखा नहीं। ऐसा कहते हैं न? यहाँ तो देखा, ऐसा कहते हैं, देखो! भगवान! प्रभु! तूने तो विकार को देखा। वह पार चीज़ है, जो विकृत है। वह तेरी चीज में नहीं। जो विकार से स्वभाव अत्यन्त अभावरूप विराजमान है। समझ में आया? ऐसी विकार की कथा तो तूने अनन्त बार सुनी। पारस्परिक सब ऐसा ही कहते हैं। नहीं, ऐसा है, ऐसा है। करणानुयोग में लिखा है या नहीं? व्यवहार करना, व्यवहार करना। भगवान! यह करना है, वह परिणमन अनुभव की दृष्टि हुई होने पर भी (पूर्ण) वीतरागता न हो, तब ऐसा शुभभाव महाव्रत का, भक्ति का आये बिना रहता नहीं। उसका परिणमन देखकर व्यवहारनय से 'करो'—ऐसा शास्त्र में कहा गया है। समझ में आया? बाकी वह लाभदायक है, यह बात तो दर्शनभेदनी कथा—विकथा है। यह कथा, धर्मकथा नहीं। यह कामभोग की कथा दर्शनभेदनी कथा है। सम्यग्दर्शन का, स्वतत्त्व के स्वाश्रय का नाश करनेवाली कथा है। राग से लाभ, राग से लाभ, पुण्य से लाभ, व्यवहार से लाभ। (राग) हो, परन्तु उससे अन्दर लाभ-दृष्टि होती है, यह दर्शनभेदनी कथा है, यह धर्मकथा नहीं। लोग कहते हैं कि हम धर्मकथा सुनने गये थे। भगवान! धर्मकथा किसे कहते हैं, यह बात जरा (समझने जैसी है)।

यह कहते हैं, एकत्व की कथा, पर से भिन्नपने की कथा, यह धर्म की कथा है। समझ में आया? आहाहा! यह भूल इतनी है कि इस भूल का इसको पता ही नहीं लगता। कि कितनी भूल मैं करता हूँ। ऐसे बिना भान के... ओघे ओघे समझते हो? बहुत विचार किये बिना ऐसा का ऐसा (चले)। भेड़ चलते हैं न? घेंटा—भेड़... भेड़ कहते हैं न? भेड़िया। वह चले तो उसके पीछे-पीछे चलते जाये। पहला कुएँ में गिरे तो ऐसे के ऐसे नजर थी तो वह भी कुएँ में गिरे।

इसी प्रकार अनादि काल से अज्ञानी आत्मा, अपना स्वभाव क्या और विभाव क्या, क्या हो सकता है और क्या कर सकता हूँ और क्या कर रहा हूँ, कुछ खबर नहीं। बिना भान के मैं धर्म करता हूँ, ऐसा का ऐसा हो जायेगा। भगवान आत्मा के मार्ग में ऐसे बिना भान के चलना नहीं चलता। समझ में आया?

स्वयं प्रकाशमान भिन्न देखने में आता हुआ मात्र भिन्न आत्मा। मात्र भिन्न आत्मा अर्थात् क्या? मात्र '**विविक्तं केवलमेकत्वम्**'। ऐसा शब्द पड़ा है न? '**विविक्तं केवलमेकत्वम्**'। अकेला भगवान आत्मा। आहाहा! समझ में आया? शुभराग की दिशा पर की ओर है, उस ओर से छूटकर, अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्यप्रभु है, उस ओर ले जाना और भेदज्ञान करके केवल एकत्व का भास होना, दिखाई देना, प्रत्यक्ष वेदन में आना, यह बात कभी इसने सुनी नहीं। समझ में आया? शास्त्र भी पढ़ गया। नौ-नौ अंग। नौ अंग क्या, नौ पूर्व। ग्यारह अंग भी अनन्त बार पढ़ा। ग्यारह अंग पढ़ा। क्या है? एक अंग में... समझ में आया? आचारांग में अठारह हजार पद। एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। एक आचारांग में अठारह हजार पद। एक पद में इक्यावन करोड़ से अधिक श्लोक। ऐसे दोगुने सूयगडांग (में), दोगुने ठाणांग (में) ऐसे दोगुने (-दोगुने)। ग्यारह अंग पढ़ा, उसमें क्या हुआ? आत्मा नहीं हुआ, भगवान! तू आत्मा नहीं हुआ। समझ में आया? यह शास्त्र का परलक्ष्यी ज्ञान है, वह भी परालम्बी ज्ञान है, वह भी बन्ध का कारण है। समझ में आया? चैतन्य राग से भिन्न पड़कर अपना प्रत्यक्ष वेदन करके ज्ञान किया, वही ज्ञान मोक्ष का कारण है। समझ में आया?

कहते हैं, **निर्मल भेदज्ञानरूपी प्रकाश से स्पष्ट भिन्न दिखाई देनेवाला यह मात्र भिन्न आत्मा का...** मात्र अकेला आत्मा **एकत्व ही है...** वह सुना नहीं। अभ्यास किया नहीं और अनुभव में आया नहीं। यद्यपि... अब कहते हैं, कैसा है? अब बीच में चौथी लाईन का आता है। '**इदं तु नित्यव्यक्त**' इसका अर्थ आता है। यद्यपि **जो कि सदा प्रगटरूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है...** देखो! पर्याय में वह प्रकाश नहीं लिया। परन्तु अन्तरंग में तो प्रकाश चैतन्यज्योति अनादि-अनन्त विराजमान है। आहाहा! देखो! सदा। सदा शब्द पड़ा है न? '**नित्य**' है न? '**नित्य**'— सदा '**व्यक्ततया**'। '**व्यक्ततया**' अर्थात् प्रगटरूप से, प्रगटरूप से। '**व्यक्ततया**' अर्थात् प्रगटरूप से। **अन्तरंग में...** '**व्यक्ततयान्तःप्रकाशमान**'। अन्तरंग में प्रकाशमान है भगवान आत्मा तो। द्रव्यस्वरूप से, गुणस्वरूप से शुद्ध प्रकाश का पिण्ड भगवान आत्मा पड़ा है। अकेला चैतन्यसूर्य। चैतन्य के प्रकाश का सूर्यबिम्ब पूरा पड़ा है। दृष्टि वहाँ नहीं, दृष्टि राग में है। समझ में आया? यह कहते हैं, अभी कहेंगे। आहाहा!

कहते हैं, यद्यपि यह एकत्व सुलभ नहीं, ऐसा कहा, तथापि... छतां कहते हैं न ? ऐसा होने पर भी। **सदा प्रगटरूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है...** कल भाई! आया था न ? अन्तरंग प्रगट हुआ। नहीं ? अभ्यन्तर अन्तरंग। अभ्यन्तर अंग प्रगट हुआ। दोपहर में आया था। नियमसार। अभ्यन्तर अंग जो आत्मा शुद्ध चैतन्य है, वह अन्तर में एकत्व होकर पर्याय में अभ्यन्तर अंग प्रगट हुआ। समझ में आया ? आहाहा!

भाई! यह धर्मकथा स्वर्ग के देव ऊपर से सुनने आते हैं, वह कैसी होगी ? पहले देवलोक का देव शकेन्द्र अर्धलोक का स्वामी, ईशानइन्द्र उत्तरलोक का स्वामी। तीन ज्ञान, क्षायिक समकित शकेन्द्र को है। वह भी धर्मकथा सुनने भगवान के पास आता है। कैसी कथा होगी वह! समझ में आया ? साक्षात् भगवान विराजते हैं, वहाँ शकेन्द्र अभी कथा सुनने जाता है। विराजते हैं एकावतारी। एक भवतारी हैं। पति-पत्नी दोनों एकभवतारी है। अन्तिम मनुष्य का भव होकर केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में जानेवाले हैं। शकेन्द्र को क्षायिक समकित है और इन्द्राणी भी वहाँ समकित को प्राप्त हुई है। स्त्रीवेद है। उत्पन्न हुई, तब मिथ्यादृष्टि थी। वहाँ समकित प्राप्त हुई है। इन्द्राणी स्त्री। और दोनों एक मनुष्यभव में आकर मोक्ष जानेवाले हैं। वे भगवान के पास जाते हैं। स्त्री तो वहाँ हुई न! देव होने के बाद। स्त्री मिथ्यात्व लेकर जाती है। वहाँ समकित हुआ है। और यह समकित लेकर गया है, शकेन्द्र समकित लेकर गया है। स्त्री को (इन्द्राणी को) वहाँ समकित हुआ। क्योंकि स्त्रीरूप से वेद उत्पन्न हो, वह मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होता है, समकिती तो उत्पन्न होता नहीं। फिर उसकी योग्यता ऐसी है (कि वहाँ जाकर समकित प्राप्त करती है)। दोनों एकभवतारी हैं। मुझे दूसरा कहना है। वे भी ढाई द्वीप में भगवान के पास, अरे! सन्त कोई हो तो (उनके पास) सुनने आते हैं। ओहो! यह आत्मा..! आहाहा! धन्य प्रभु! धन्य! ऐसा कहे। भाई! वीतरागी कथा अलौकिक होती है। जिसे सम्यग्दृष्टि क्षायिक समकिती तीन ज्ञान के धनी सुनने आते हैं। आहाहा!

यहाँ जरा सुनना हो तो... कोई काम नहीं न ? अब मैं जाऊँ ? सुनने जाऊँ ? सेठ! बेटा! अब कोई काम नहीं न ? तो मैं सुनने जाऊँ। ठीक, तब तेरा सुनने का मार्ग अन्तिम और यह काम करने का मार्ग पहला। ऐ... मलूकचन्दभाई! कुछ काम नहीं न ? स्त्री को

पूछे, कुछ काम नहीं न ? सब्जी-बब्जी आ गयी ? शाक को क्या कहते हैं ? हरिकाय। शाक-बाक आ गयी है ? व्यक्ति (नौकर) सब्जी ले आया ? सब आ गया ? पानी आ गया ? सब आ गया या नहीं ? तो अब मैं जाऊँ ? अच्छा। सुनने का नम्बर अन्तिम, यह नम्बर पहला। समझ में आया ? आहाहा!

इन्द्र ऊपर से इतने वैभव की प्रीति छोड़कर (सुनने जाते हैं)। महाराज! मुनि हों, मुनि। जंगल में आत्मध्यानी ज्ञानी हो। काला शरीर, काला। बबूल, बावळ-बबूल होता है न ? काँटे। (उसके) नीचे बैठे हों। अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में स्थित हैं। इन्द्र निकले हों और नजर पड़े तो नीचे उतर जाये। उल्लंघकर न जाये। आहाहा! धन्य प्रभु! धन्य! परन्तु तेरे पास यह इतना वैभव है न! शकेन्द्र, बड़ा इन्द्र। यह नहीं, यह नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का उग्र स्वसंवेदन करते हैं, यह ऋद्धि मुझे चाहिए है। आहाहा! समझ में आया ?

छह खण्ड का धनी ऐसे हाथी के ऊपर निकला हो। छियानवें हजार हाथी आदि और कोई मुनि ऐसे जंगल में देखे। बबूल के नीचे काँटों के ऊपर बैठे हों। ओहोहो! जो अतीन्द्रिय आनन्द में अन्दर घुस गये हैं। धन्य प्रभु! धन्य! खड़ा रहे। नीचे उतरे। यह हमारी ऋद्धि होने पर भी नहीं चाहिए। आप के पास जो ऋद्धि है, वह हमारे चाहिए। आहाहा! बापू! आत्मा के आनन्द का अनुभव, वह तो अलौकिक चीज़ है! समझ में आया ? ऐ देवीदासभाई!

यहाँ आचार्य महाराज... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य केवली के पेट (अभिप्राय) खोलकर टीका की है! कहते हैं, अरे! भगवान! तेरा आत्मा तो ऐसा है। प्रत्यक्ष होता है और एकत्व हो ऐसी ही तेरी चीज़ है। तथापि **सदा प्रगटरूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है...** यह द्रव्य, द्रव्य-वस्तु की बात चलती है। **सदा प्रगटरूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है, तथापि कषायचक्र (-कषायसमूह) के साथ...** यह आया। कषायचक्र—शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभ, शुभ-अशुभभाव। यह शुभराग आया तो एकत्व हो गया। उससे मुझे लाभ होगा, लाभ होगा। अस्तित्व वहाँ वेदन में आ गया। यहाँ भगवान राग के कषाय के विकल्प से भिन्न स्वभाव पड़ा है, उस पूरे अस्तित्व को दृष्टि

में से खोकर, उसके अस्तित्व में अपनी दृष्टि लगा दी। बस, इतना ही माना है। वस्तु की खबर नहीं कि कौन है आत्मा।

कषायचक्र (-कषायसमूह) के साथ एकरूप जैसा... एकरूप जैसा, हों! एकरूप हो नहीं जाता। आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा राग के साथ एकरूप हो जाये, तद्रूप हो जाये तो कभी भिन्न पड़े नहीं। समझ में आया? इसलिए भगवान आचार्यों ने पुण्य-पाप दया, दान, पंच महाव्रत के परिणाम को संयोगीभाव कहा है। कर्ता-कर्म अधिकार, ६९-७० (गाथा)। संयोगीभाव कहा है। ६९-७० (गाथा की) टीका की। संयोगीभाव है, अपना स्वभावभाव नहीं। संयोगी। जैसे दूसरी वस्तु संयोग में है, वैसे यह भी संयोगी चीज़ है। तेरा स्वभाव नहीं। उस संयोगी चीज़ के साथ **एकरूप जैसा...** ऐसी भाषा है। भाषा है न? '**कषायचक्रेण**' चक्र के साथ। इसीलिए चक्र शब्द लिया? आ गया, हाँ, सच्ची बात है। कषाय का चक्र अर्थात् कषायें। '**सहैकीक्रियमाणत्वादत्यन्त-तिरोभूतं**' क्या कहते हैं? भगवान आत्मा पोताना—अपना... हमारे (गुजराती में) अपना को पोताना कहते हैं। अपना स्वरूप शुद्ध ध्रुव आनन्दकन्द चैतन्य अन्तरंग में तो प्रकाशमान ही है। तथापि, तो भी, ऐसा है न? **तथापि...** उसके ऊपर दृष्टि नहीं करके राग के विकल्प के समूह के साथ **एकरूप जैसा किया जाता है,...** किया जाता है। एकरूप हो, ऐसा मान्यता में करता है। मान्यता करता है। एकरूप हो नहीं जाता। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा जैसे अपने आनन्द और ज्ञान से तादात्म्यस्वरूप है, वैसे विकल्प के साथ कभी तादात्म्यस्वरूप नहीं होता। एक समय की पर्याय में अनित्य में तादात्म्य है, ऐसा मिथ्यादृष्टि मान लेता है। समझ में आया? आहाहा! यह बात। बात तो ऐसी है, प्रभु! क्या हो? समझ में आया? आनन्दघनजी कहते हैं, किसको कहूँ? कहाँ कहूँ? यह बात क्या चीज़ है? कौन सुने? किसको कहूँ? अनुभव की बात क्या करूँ? ऐसा कहते हैं। कौन सुने? किसको कहूँ? कहाँ मांडु चेला? ऐसा कुछ है। समझे न? एक पद है। आनन्दघनजी मस्त हो गये। जरा अन्तर देव-गुरु-शास्त्र में (रह गया), परन्तु मस्ती हो गयी थोड़ी। समझ में आया?

कहते हैं, श्रीमद् भी कहते हैं, सिद्धान्त सम्बन्धी ज्ञान आनन्दघनजी को था। और कुन्दकुन्दाचार्य आत्मा में बहुत स्थित थे। ऐसा लिखा है। कुन्दकुन्दाचार्य तो छठवीं-सातवीं (गुणस्थान की) भूमिका अन्तर दशा भावलिंग दशा में प्रगट परिणमन, प्रगट परिणमन। आहाहा! परमेश्वर को स्वीकार किया, आत्मा को स्वीकार किया। समझ में आया? साम्य को अंगीकार करते हैं, हों! मैं साम्य को अंगीकार करता हूँ। प्रभु! हम वीतरागी पर्याय ऐसे चारित्र को अंगीकार करता हूँ। छठवें गुणस्थान में कषाय का कण आया है, परन्तु उसे उल्लंघ जाते हैं, हमको वह आदरणीय नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, जो कषाय के साथ एकरूप (किया जाता है)। बस, यह महासिद्धान्त, भाई! कर्म और शरीर के साथ तो कभी एक होता ही नहीं। माने भले, माने तो वह झूठ है। मिथ्यात्व में मान सकता है। स्वभाव शुद्ध भगवान आत्मा दृष्टि में अपना पूर्ण अस्तित्व नहीं लेकर, अपना स्वसंवेदन प्रत्यक्ष नहीं करके, कषाय के साथ एकत्व जैसा मानता है। **एकरूप जैसा किया जाता है,...** आहाहा! समझ में आया? इसीलिए, इस कारण से। इसीलिए अर्थात् इस कारण से। राग और कषाय के परिणाम के साथ भगवान आत्मा एकत्व मानता है इसलिए, एकत्व मानता है, इसलिए भगवान अन्तर में प्रकाशमान होने पर भी तिरोभूत हो गया है। समझ में आया? **अत्यन्त तिरोभाव को प्राप्त हुआ है...** समझ में आया? **(-ढँक रहा है)** अत्यन्त तिरोभाव—मानो वस्तु ही नहीं। राग और पुण्य की क्रिया दया, दान, व्रतादि बस मानो वही आत्मा। आहाहा!

कहते हैं, तिरोभूत हो गया। भगवान अन्तर में प्रकाशमान होने पर भी ढँक गया, आड़ मारी। समझ में आया? 'प्रभु तेरे पास रे... हरि नहीं दूर जी। प्रभु तेरे पास रे... हरि नहीं' हरि अर्थात् आत्मा, हों! पापं ओघं हरति इति हरि। पंचाध्यायी में आता है न? पंचाध्यायी में श्लोक है। हरि का श्लोक है, पंचाध्यायी में। पापं ओघं हरति इति हरि आत्मा। 'प्रभु तारी हरि नहीं दूर जी, पण तने रे आयो आडो रे अहंकार...' तुझे अहंकार आड़े आया। विकल्प और राग मैं, (उसमें) तेरा आत्मा ढँक गया। समझ में आया? बाकी चार बातें ग्यारह अंग की करे और नौ पूर्व की करे और लाखों लोग रीझाने की

धुन करे, उसमें कुछ दम नहीं। दूसरों को समझाने का विकल्प भी धर्मी तो ऐसा मानता है कि मुझे लाभ नहीं और विकल्प से पर को भी लाभ नहीं। विकल्प से मुझमें बन्ध होता है—ऐसा मानता है। आहाहा! समझाने का विकल्प उठे, उससे पर को लाभ होता है, ऐसा नहीं मानते और विकल्प से मुझे लाभ है, ऐसा नहीं मानते। समझ में आया? परन्तु बीच में ऐसा राग आता है तो कहते हैं, उस राग से अज्ञानी एकत्व मानता है। इसीलिए द्रव्य भगवान आत्मा ढँक गया है पर्याय में। वस्तु तो वस्तु है। वस्तु को क्या ढाँके? वस्तु को आवरण आता है? वस्तु को आवरण आवे, इसका अर्थ कि वस्तु का अभाव हो जाये। वस्तु को आवरण का नाम वस्तु का अभाव। पर्याय में आवरण (होता है)। पर्याय विकार में रुक गयी है तो वह रुकी, उतना आवरण हुआ, पर्याय एक अंश में। द्रव्य को आवरण कहाँ है? द्रव्य वस्तु तो ऐसी ही है। आवरण आवे तो द्रव्य का अभाव हो जाये। आहाहा! इसलिए कहा, **सदा प्रगटरूप से अन्तरङ्ग में प्रकाशमान है....**

कषायचक्र (-कषायसमूह) के साथ एकरूप जैसा किया जाता है, इसलिए अत्यन्त तिरोभाव को प्राप्त हुआ है (-ढँक रहा है)... अब कैसे ऐसा हुआ? **वह-अपने में अनात्मज्ञता होने से...** अनात्मज्ञता, अनात्मज्ञता। वह राग को ही अपना मानता है, वह अनात्मज्ञपना। अनात्मा का ज्ञान है, आत्मा का ज्ञान नहीं। **अपने में अनात्मज्ञता...** यह राग पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह विकल्प की जाल। उसका ज्ञान। वह तो अनात्मज्ञान है। आस्रव का ज्ञान अनात्मज्ञान है। आत्मज्ञान आस्रव से भिन्न है, ऐसा उसे ज्ञान नहीं। **(-स्वयं आत्मा को न जानने से) और अन्य आत्मा को जाननेवालों की सङ्गति-सेवा न करने से,...** और आत्मज्ञानी जीव मिले तो उनकी संगति अर्थात् उनको क्या कहना है, यह लक्ष्य में लिया ही नहीं। ऐसी बात विशेष आयेगी.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

श्रावण शुक्ल १, बुधवार, दिनांक - १७-०८-१९६६
गाथा - ४ - ५, प्रवचन - १९

समयसार। जीव-अजीव अधिकार चलता है। इसमें चौथी गाथा ऐसी है कि अनन्त काल में, आत्मा राग से पृथक् है, ऐसी बात इसे सुनने में आयी नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्दस्वरूप कषाय के चक्र से भिन्न है। कर्म से और शरीर से तो भिन्न है ही। कषायचक्र के उदयभाव के विकल्प जो राग है, (उसके साथ) अनादिकाल से अनादि अज्ञानी एकत्वबुद्धि कर रहा है। इसलिए अपना आत्मा कषायचक्र में एकत्व होने से स्वरूप ढँक गया है, ख्याल में आता नहीं। वस्तु ढँक गयी है। ढँक गयी समझे? तिरोभूत हो गयी। कषाय पुण्य-पाप के विकल्प के साथ एकत्व होने से भगवान आत्मा राग से भिन्न है, कषाय से भिन्न है, यह बात इसे तिरोभूत हो गयी है, ढँक गयी है। यहाँ तक आया है।

तिरोभाव को प्राप्त हुआ है (-ढँक रहा है) वह... तिरोभूत होने से **अपने में अनात्मज्ञता होने से...** शुद्ध भगवान आत्मा शुद्ध रागरहित, पुण्य-पाप के विकल्परहित। देखो! यहाँ पहले से लिया है। सम्यग्दर्शन में पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न आत्मा का भान होता है। भाई! ऐसा आया न उसमें? यहाँ तो कहे, शुभराग से होता है, शुभराग से होता है। ऐसा नहीं, प्रभु! यहाँ तो कहते हैं, कषाय अर्थात् राग शुभ या अशुभ, मुख्य तो शुभ के साथ अनादि से एकत्व है। कषाय के साथ एकत्व होने से अपना सच्चिदानन्द प्रभु अनन्त आनन्द का स्वभाव ढँक गया है, ढँक रहा है। ख्याल में आया नहीं। वह ढँक रहा है, वह **अपने में अनात्मज्ञता होने से...** उसे आत्मा का तो भान नहीं। राग के एकत्वपने में पुण्य-पाप के विकल्प के चक्र में एकत्व में पड़ा है। तो उसे तो आत्मा क्या है, उसका भान नहीं। समझ में आया? ऐसे कैसे सिर डाला है? ऐ... पोपटभाई! ऐसे क्यों नींद आती है? कहो, समझ में आया इसमें? सभा में तो ध्यान रखना चाहिए न!

क्या कहते हैं ? **अपने में अनात्मज्ञता होने से (-स्वयं आत्मा को न जानने से)...** एक बात। **और अन्य आत्मा को जाननेवालों की... 'अनुपासना'** पाठ में तो ऐसा पाठ है न! **'अनुपासना'** सेवा नहीं की। सेवा का अर्थ क्या ? क्या भगवान के समवसरण में नहीं गया ? सेवा नहीं की अर्थात् क्या पैर दबाना वह (सेवा) है ? सेवा नहीं की, इसका अर्थ क्या ? मुनि धर्मात्मा आत्मज्ञान सन्त मिले, सम्यग्दृष्टि मिले तो कहते हैं कि उनकी सेवा नहीं की, ऐसा कहते हैं। उसमें है न ? पण्डितजी! संस्कृत देखो! **'अनुपासना' 'परेषामात्मज्ञानामनुपासनाच्च'।** आत्मज्ञानी की सेवा नहीं की। सेवा की व्याख्या क्या ? क्या पैर दबाना है ? क्या उसके शरीर की वैयावृत्त्य करना, वह है ? यहाँ तो कहते हैं कि आत्मज्ञ पुरुष ने आत्मा का राग से भिन्न अनुभव किया है। राग कषाय के चक्र से भिन्न अपना स्वीकार किया नहीं, वह उसकी सेवा की नहीं। समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पैर दबाना वह तो व्यवहार की बात है। वह आया नहीं ? इसमें आया है। कल रात्रि में कहा था। १९ गाथा के पहले आया है। आचार्य कहते हैं, देखो!

अब, कोई तर्क करता है कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है,... पृष्ठ-५१। १९वीं गाथा के ऊपर। अमृतचन्द्राचार्य की टीका है। **अब, कोई तर्क करता है कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है, भिन्न नहीं, इसलिए ज्ञान को नित्य सेवन करता ही है...** ज्ञान का तो नित्य सेवन करता है। है ? ५१ पृष्ठ। अन्दर टीका है। टीका देखो! **'ननु ज्ञानतादात्म्यादात्मा'** इसकी टीका है। यह मूल संस्कृत है। परन्तु नीचे इसका अर्थ है। 'अब कोई तर्क करता है कि आत्मा तो ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है... पण्डितजी को मिला या नहीं ? जगन्मोहनलालजी को मिला ? भिन्न नहीं, आत्मा और ज्ञान भिन्न तो नहीं। और तुम कहते हो कि ज्ञान का तो नित्य सेवन करता है और आप कहते हो कि आत्मा ने ज्ञान का सेवन किया नहीं। शिष्य प्रश्न करता है। कहाँ नहीं किया ? यह सेवा, हों! दूसरी सेवा नहीं।

ज्ञान का नित्य सेवन करता ही है; तो फिर उसे ज्ञान की उपासना करने की शिक्षा क्यों दी जाती है ? ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया ? क्या कहा ? ऊपर

कहा था न ? समझ में आया ? **साध्य आत्मा की सिद्धि...** आत्मा की सेवा करना, ऊपर आया था न ? १७-१८ में। आत्मा की सेवा करना (ऐसा कहा) तो आत्मा ज्ञान की सेवा तो अनादि से करता है। क्यों ? कि आत्मा ज्ञान से भिन्न तो है नहीं, आत्मा ज्ञान से भिन्न तो है नहीं, तो आत्मा ज्ञान की सेवा तो करता ही है। (तो कहते हैं), नहीं। सेवा करो ऐसा आपने कैसे कहा ? शिष्य ने प्रश्न किया।

कहते हैं, सुनो ! **यद्यपि आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्यस्वरूप है तथापि एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता...** सेठी ! देरी क्यों लगी ? समझ में आया ? वृद्धा मनुष्य है न इसलिए धीरे-धीरे (आवे)। घरडा को तुम्हारे क्या कहते हैं ? बूढ़ा। क्या कहा ? देखो ! **एक क्षणमात्र भी ज्ञान का सेवन नहीं करता...** आहाहा ! समझ में आया ? आत्मा और ज्ञान तादात्म्यस्वरूप स्वभाव है। तो शिष्य ने प्रश्न किया कि महाराज ! आप आत्मा के ज्ञान की सेवा करो, उपासना करो, ऐसा कहते हो तो हम तो मानते हैं कि आत्मा और ज्ञान तो तादात्म्यरूप एकरूप है। तो उसमें सेवा करना कहाँ रही ? वह तो अनादि से सेवन करता ही है। आत्मा अपने ज्ञानस्वभाव से भिन्न तो एक समय भी रहा नहीं। तो आत्मा ज्ञान की सेवा करे, ऐसा क्यों कहा ? समझ में आया ? यह बाहर की सेवा की बात नहीं, हों ! पर की सेवा कोई कर सकता नहीं। पर के पैर दबाना, वह तो जड़ की क्रिया है। जड़ को क्या आत्मा कर सकता है ? शरीर को हिला सकता है ? बोल सकता है आत्मा ? बिल्कुल नहीं।

यहाँ तो (कहते हैं), ज्ञान की सेवा। तो कहते हैं, एक क्षणमात्र भी ज्ञान की सेवा की नहीं। क्यों ? देखो ! यहाँ भी आया, यही आया, भाई ! **स्वयंबुद्धत्व...** या अपने से भान हो। दो आये। अपने यहाँ आया उसके साथ मिलाना है। **अथवा बोधिबुद्धत्व (दूसरे के बतलाने से जानना) इस कारणपूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति होती है।** समझ में आया ? निसर्गज और अधिगमज या अपने से ज्ञानस्वरूप चिदानन्द है, ऐसा भान होता है, या गुरु से कहा हुआ ज्ञान में लेकर तात्कालिक बोध हुआ तो गुरु से हुआ, अधिगम से हुआ, ऐसा कहने में आता है। होता है तो स्वयं से ही, दोनों में स्वयं से ही होता है। परन्तु गुरु ने कहा कि आत्मा राग से भिन्न सच्चिदानन्द शुद्ध आत्मतत्त्व है।

यह पाँचवीं गाथा में कुन्दकुन्दाचार्य लेंगे। हमारे गुरु ने हमारे ऊपर अनुग्रह करके शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। यह पाँचवीं गाथा में आयेगा। कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, हमारे गुरु ने और सर्वज्ञ परमात्मा ने... पर-अपर गुरु, संस्कृत टीका है। पर गुरु सर्वज्ञ से, अपर गुरु गणधर से लेकर हमारे गुरु, पर-अपर गुरु। ऐसा पाँचवीं गाथा में (आयेगा), विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न है। देखो! हमारे सर्वज्ञप्रभु भी विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न हैं। पाँचवीं गाथा में है। देखो! '**निर्मलविज्ञानघनान्तर्निमग्नपरापरगुरुप्रसादी-कृतशुद्धात्मतत्त्वानुशासनजन्मा**' आहाहा! संस्कृत में है। सर्वज्ञ परमात्मा वे पर गुरु और अपर गणधर से लेकर हमारे गुरु। कैसे थे सब? '**निर्मलविज्ञानघनान्तर्निमग्न**' देखो! सर्वज्ञ के साथ अपने गुरु भी '**निर्मलविज्ञानघनान्तर्निमग्न**' (कहे)। हमारे गुरु भी ऐसे थे, (ऐसा) कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। है, देखो! '**निर्मलविज्ञानघनान्तर्निमग्न-परापरगुरुप्रसादीकृत**' हमारे गुरु तो निर्मल विज्ञानघन में लीन थे, भगवान भी निर्मल विज्ञानघन में (लीन थे)। सब साथ में लेकर लिये। सर्वज्ञ, गणधर और अपने गुरु सन्त। वे सब विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न थे। हमारे ऊपर कृपा करके, देखो!

'**गुरुप्रसादीकृतशुद्धात्मतत्त्वानुशासनजन्मा**' हमारे गुरु ने... यह एक शब्द लिया है, देखो! यह कहते हैं न, षट्खण्डागम की बात करते हैं न? षट्खण्डागम का ज्ञान नहीं। परन्तु यह तो कहते हैं, हमारे गुरु ने हमको एक शब्द दिया, शुद्धात्म, शुद्धात्म, शुद्धात्म। देखो! '**शुद्धात्मतत्त्वानुशासनजन्मा**' ऐसा हमारे गुरु ने और हमारे सर्वज्ञ परमेश्वर से लेकर शुद्धात्मतत्त्व प्रसादी से अनुग्रह करके—कृपा करके (दिया)। मैं पात्र था, ऐसा नहीं लिया। परन्तु गुरु ने हमारे ऊपर कृपा करके प्रसादी से शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया, उससे हमारा आनन्द का वैभव उत्पन्न हुआ है। आहाहा! कितनी बात रखते हैं इसमें एक शब्द में और एक-एक न्याय में!

सर्वज्ञ से लेकर हमारे गुरु, वे सब निर्मल विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न हैं। भले छठवें गुणस्थान में मुनि हैं, तथापि विज्ञानघन निर्मल में अन्तर्निमग्न हैं। राग है, उसका आदर नहीं। पंच महाव्रत आदि का आदर नहीं, उसमें निमग्न नहीं। मुनि, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण आदि का राग है, उसमें निमग्न नहीं। आहाहा! सन्त हमारे गुरु भी ऐसे

थे, ऐसी साक्षी देते हैं। गुरु की खबर पड़ जाती है कि ऐसे हैं? खबर पड़ जाये। पण्डितजी! एक शब्द में कितना लिया है, देखो! अभी पाँचों ही बोल अलौकिक हैं। एक तो अपने शुद्धात्म के ऊपर का लेना है। हमारे गुरु ने हमको शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। उससे हमारे आनन्द के अनुभव का जन्म है, उत्पत्ति है। उससे मैं तुमको आत्मा कहूँगा। हमारे वैभव से तुमको समयसार आत्मा कहूँगा, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **अपने में अनात्मज्ञता होने से....** भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दस्वरूप का बोध नहीं होने से और दूसरी (बात), **अन्य आत्मा को जाननेवालों की सङ्गति-सेवा न करने से,...** सेवा का अर्थ, जो हमारे गुरु या सन्त-ज्ञानी सर्वज्ञ से लेकर सब, वे कहते हैं कि तुम्हारा आत्मा तो आस्रव विकल्प से भिन्न है। उसकी दृष्टि कर तो आत्मा की सेवा की कहलाये। ऐसे गुरु अनन्त तीर्थंकरों से लेकर सब सन्त ले लिये। अनन्त केवली, अनन्त तीर्थंकर, अनन्त सन्त, अनन्त आचार्य, अनन्त उपाध्याय। समझ में आया? वे सब विज्ञानघन निर्मल में अन्तर्निमग्न होकर हमको तो हमारे गुरु ने उपदेश दिया। शुद्धात्मतत्त्व, शुद्धात्मतत्त्व। उस शुद्धात्मतत्त्व का हमको भान हुआ तो हमने हमारे गुरु की सेवा की, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? पोपटभाई! समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... सेवा किसकी करनी है? पैर दबाना है?

मुमुक्षु : गुरु को पैर नहीं होते?

पूज्य गुरुदेवश्री : गुरु को पैर नहीं होते, गुरु को राग होता नहीं। ऐई! सेठी! गुरु को शरीर नहीं, गुरु को कर्म नहीं, गुरु को नोकर्म नहीं, गुरु को राग नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : तब तो गुरु की सेवा नहीं हो सकती।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ सेवा का आया न? पण्डितजी! उन्हें तो शरीर नहीं, उन्हें वाणी नहीं, उन्हें राग नहीं, उन्हें कर्म नहीं तो उनकी सेवा नहीं हो सकती, ऐसा हुआ यहाँ तो। भगवान! उनकी सेवा का अर्थ ऐसा है कि वे जो कहते हैं, प्रभु! तेरा आत्मा

शुद्धात्मा सच्चिदानन्द निर्मलानन्द है। राग की क्रिया से राग के भाव से अत्यन्त भिन्न है। ऐसा जो उन्होंने कहा, उसका स्वीकार न किया तो उनकी सेवा नहीं की, ऐसा कहने में आता है।

यह समयसार अर्थात् इसकी टीका का एक-एक शब्द महा अमृत से भरा है। यह अमृतचन्द्राचार्य हैं। यह कोई वार्ता नहीं, कथा नहीं। यह तो महान भागवत् शास्त्र है। पण्डितजी! उसमें यह आया है। नियमसार है न? अन्तिम गाथा में लिया है। पद्मप्रभमलधारिदेव। यह भागवत शास्त्र है। पाठ लिखा है, हों! यह कहीं घर के शब्द नहीं, टीका में यह शब्द हैं। यहाँ तो कोई भी शब्द शास्त्र के आधार से (कहा जाता है)। उसमें लिखा है, देखो! अन्त में लिखा है, हों! देखो! भागवत लिखा है। (१८७ गाथा की टीका)। **यह (नियमसार शास्त्र) भागवत शास्त्र है।** संस्कृत में है। '**भागवतं शास्त्रमिदं**'। देखो! संस्कृत टीका। '**भागवतं शास्त्रमिदं निर्वाणसुंदरीसमुद्भव**' देखो! यह नियमसार है। नियमसार या समयसार सब एक ही है। यह भागवत शास्त्र है। वे भागवत कहते हैं, वह नहीं, यह भागवत शास्त्र है। सेठी! सात दिन भागवत शास्त्र वाँचे न? सात... सात। पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि कहते हैं कि कुन्दकुन्दाचार्य के शास्त्र भागवत शास्त्र है। भागवत शास्त्र का व्याख्यान चलता है। समझ में आया?

कहते हैं, ऐसा शास्त्र भगवान हमारे गुरु ने हमको कहा, परन्तु उसका स्वीकार नहीं किया तो गुरु की सेवा हमने नहीं की। समझ में आया? आहाहा! दिगम्बर सन्तों की वाणी में कहीं खण्ड नहीं, कहीं पूर्वापर विरोध नहीं, ऐसी सत्य (वाणी) पूरे सत्य को खड़ा कर देती है। समझ में आया? कहते हैं, **अन्य आत्मा को जाननेवालों की सङ्गति-सेवा न करने से,...** जाननेवाले आत्मा की संगति-सेवा नहीं की होने से। जाननेवाला उसका आत्मा है या उसका शरीर है? समझ में आया? वाणी है? कर्म है? राग है? राग जानता है? आत्मा के जाननेवाले, वे राग से भिन्न मेरा आत्मा है, ऐसे शुद्ध आत्मा को जाननेवालों की अज्ञानी ने सेवा नहीं की। अर्थात् वे कहते हैं, उस भाव का स्वीकार नहीं किया। अपने में ज्ञान नहीं और ज्ञानी कहते हैं, उसमें स्वीकार (नहीं करके) अहंपद छोड़ा नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : स्वयं जाने नहीं....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोढ डाह्यो तुम्हारे हिन्दी में कहते हैं न? स्वयं तो जानता नहीं और दूसरे की बात ग्रहण करे नहीं। अपने दोढ़ डाह्यो कहते हैं न? एक तो स्वयं समझता नहीं और दूसरे समझनेवालों की सुनता नहीं। भाई! सुन तो सही! क्या चीज़ है! भाव को सुनना, हों! वाणी तो वाणी है। समझ में आया? आहाहा!

अन्य आत्मा को जाननेवालों की सङ्गति... यहाँ मूल पाठ में '**अनुपासनाच्च**' बस (इतना है)। सेवा नहीं की इतना। संगति का... परिचय तो किया परन्तु सेवा नहीं की अर्थात् यह क्या कहते हैं, उसका परिचय तो नहीं किया। समझ में आया? सुनने गया तो ऐसा लेकर आया कि राग से लाभ होता है, पुण्य से लाभ होता है। यह तो वीतरागमार्ग है। वीतरागमार्ग राग से निरालम्बन अपने स्वभाव से लाभ होता है। ऐसी बात उन्होंने कही, उसे पकड़ा नहीं। शास्त्र में ऐसा लिखा है और दूसरे शास्त्र में (ऐसा लिखा है)। धारा हो न बहुत? धारणा बहुत हो, इसलिए (दलील करे), दूसरे शास्त्र में लिखा है न। यह इसे सुनने में विघ्न डालता है। समझ में आया? दूसरे में आता है या नहीं? व्यवहार कारण नहीं आता? राग कारण नहीं आता? निमित्त कारण आता है या नहीं? हेतु कारण आता है या नहीं? साधन कारण आता है या नहीं? साधन का है या नहीं? ऐसा-ऐसा लक्ष्य में रखकर उसने सुना, तो कहनेवाला कहता है, वैसा सुना नहीं तो इसने सेवा नहीं की। समझ में आया?

ऐसे निज आत्मा का भान नहीं हुआ। भगवान आत्मा कषायचक्र से भिन्न है, ऐसा स्वयंबुद्ध-निसर्ग से भान नहीं हुआ और जिसे भान है, (वहाँ) अपना अहंपद छोड़कर, वह भाव कहते हैं, वह यथार्थ है, ऐसा अन्तर में... अन्तर में रुचिपूर्वक आदर, स्वीकार हुआ नहीं तो उसने पर की सेवा नहीं की। **न तो पहले कभी सुना है,...** इस कारण से... ऐसा भाई! अपने ... किया न। इस कारण से... पण्डित जयचन्द्रजी ने ऐसा लिखा है। इस कारण से **न तो पहले कभी सुना है,...** अरे! परन्तु भगवान के पास गया न? नहीं सुना, प्रभु! वह समवसरण में भी गया बाह्य समवसरण। (भगवान की) ऋद्धि जो केवलज्ञान की है, एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने की जो ऋद्धि

समृद्धि थी, वह बात तुझे ख्याल में नहीं आयी। समझ में आया? आहाहा! तो भगवान के पास गया तो भी सुना नहीं। समवसरण में गया न? अनन्त बार गया। समझ में आया?

न पहले कभी परिचय में आया है... कौन? आत्मा, हों! न पहले कभी आत्मा सुना। न कभी परिचय—अभ्यास में आया। **और न पहले कभी अनुभव में आया है।** वेदन में आया नहीं। **इसलिए...** इस कारण से **भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं है।** लो। '**अत एकत्वस्य न सुलभत्वम्**'। संस्कृत में है। समझ में आया? यह हिन्दी सरल है, अब कल से गुजराती में होगा। यह तो पण्डितजी हैं, बाहर से आये हैं, हमारे धन्यकुमारजी आये। कोई भी आये हम गुजराती में बोलें तो समझे नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! तूने आत्मा की बात सुनी नहीं, हों! किस कारण से? तुझे भान नहीं और जिसे भान है, उसका आदर किया नहीं। तेरा भाव रखकर आदर किया। मैं समझता हूँ, वह बराबर है, मैं समझता हूँ वह बराबर है, मुझे खबर है, बराबर है। यह (भाव) रखकर सुना तो उनका भाव अन्दर आया नहीं।

मुमुक्षु : अपने ही भाव का आदर रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके भाव का आदर रहा। समझ में आया? पोपटभाई! आहाहा! समयसार अर्थात् भरतक्षेत्र का भगवान! भगवान का वाचक यह है। भगवान आत्मा और वाचक यह। वाच्य आत्मा और वाचक यह। अन्त में कहेंगे। पहले भी कहा था, भाई! अभिधेय अभिधान। वाचक-वाच्य। समयसार वाचक है, आत्मा वाच्य है। साकर शब्द वाचक है। साकर। साकर की डली वह वाच्य है। इसी प्रकार समयसार वाचक है, भगवान आत्मा पूर्णानन्द कन्द, वह वाच्य है। समझ में आया? ऐसा यह समयसार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक कहते हैं। यह वाच्य है। ध्येय हो गया शब्द। भगवान! वाच्य तो तेरा आत्मा है। प्रभु! तू आत्मा, वह वाच्य है और यह तो वाचक है। एक विकल्प उठा न? अन्तर्जल्प, वह भी वाचक हो गया। विकल्प उठा कि मैं शुद्ध आनन्द

हूँ, अभेद हूँ, यह विकल्प उठा, वह अन्तर्जल्प का वाचक है, वाच्य भगवान है। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा — ऐसा आठवीं गाथा में आयेगा। उसमें यह कहते हैं कि गुरु ने तुझे सुनाया तो राग को प्राप्त हो, निमित्त को, कर्म को प्राप्त हो, वह आत्मा नहीं, इतना बतलाया। अन्त में इतना संक्षिप्त (बतलाया)।

भगवान! तेरा आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त हो, वह आत्मा। इतना कहकर फिर इतना कहा कि गुरु की वाणी ऐसी आयी तो गुरु को भी व्यवहारनय अनुसरणयोग्य नहीं। कहनेवाले को भी। और सुननेवाले को भी व्यवहार अनुसरणयोग्य नहीं। क्या कहा? उसके ख्याल में आया कि यह आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त है। ऐसा विकल्प आया। उस विकल्प को अनुसरना नहीं। समझ में आया? '**व्यवहारनयो नानुसर्तव्यः**'। यह आठवीं गाथा में अन्त में है। इसका अर्थ कि तुझे गुरु बतावे तो गुरु को भी व्यवहारनय अनुसरण योग्य नहीं। समझाने का विकल्प आ गया, बस इतना। और सुननेवाले को भी भगवान आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र को प्राप्त वह आत्मा, ऐसे भेद को प्राप्त, ऐसा आया तो विकल्प आया, विकल्प आया। परन्तु अब तुझे विकल्प का अनुसरण करना नहीं। अनुसरण करना आत्मा को। आहाहा! समझ में आया? आठवीं गाथा की टीका में ऐसा लिया है। विकल्प है, वह भेद का वाचक हो गया, अभेद को बतलानेवाला। अभेद को बताता है तो अभेद वाच्य हुआ। समझ में आया? भाई! यह तो शास्त्र है और वह भी सन्तों के शास्त्र। दिगम्बर मुनियों के शास्त्र। वही शास्त्र है, दूसरे शास्त्र हैं कहाँ? अज्ञानी के शास्त्र, शास्त्र है नहीं। समझ में आया? आहाहा! एक-एक शब्द में कितनी बात भरी है!

कहते हैं, इसने अपने आत्मा को कषायचक्र के साथ एकत्व किया तो आत्मा ढँक गया। इसलिए अपने आत्मा को जाना नहीं और जाननेवाले को स्वीकार नहीं किया। इसलिए भिन्न आत्मा का एकत्व सुलभ नहीं। राग, विकल्प से भिन्न अपना अनुभव (और) एकत्व-राग से भिन्न अपने स्वरूप का एकत्व, अनुभव स्वसंवेदन से अनुभव होना, ऐसा एकत्व सुलभ नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- इस लोक में समस्त जीव संसाररूपी चक्र पर चढ़कर... जो कहा उसका विशेष (कहते हैं) । **पंच परावर्तनरूप भ्रमण करते हैं। वहाँ उन्हें मोहकर्मोदयरूपी पिशाच...** मोहकर्म का उदय, हों! उदय में जुड़ा। मोहकर्म नहीं। मोहकर्म के उदय में जुड़ा। उदयरूपी पिशाच ने राग में जोड़ा। **पिशाच के द्वारा जोता जाता है, इसलिए वे विषयों की तृष्णारूपी दाह से पीड़ित होते हैं...** यह सब आ गया है। **और उस दाह का इलाज (उपाय) इन्द्रियों के रूपादि विषयों को जानकर उनकी ओर दौड़ते हैं;...** बाहर में दौड़ता है। यह विषय। विकल्प... यह... यह... यह... यह... अतीन्द्रिय भगवान आत्मा है, उसकी ओर गति नहीं होती। **तथा परस्पर भी विषयों का ही उपदेश करते हैं।** विषय शब्द से परस्पर बाहर का लक्ष्य कराने की ही बात करते हैं, अन्तर्लक्ष्य करने की बात करते नहीं। समझ में आया? परस्पर भी विषयों अर्थात् बाह्य पदार्थ, बाह्य विषय— यह भगवान और यह देव और यह गुरु और यह शास्त्र, उसको जानूँ। बाह्य विषयों का ही उपदेश करता है।

इस प्रकार काम (विषय की इच्छा) तथा भोग (उसको भोगना) — इन दोनों की कथा तो अनन्त बार सुनी,... इच्छा, परसन्मुख की दिशा की इच्छा और परसन्मुख की इच्छा का भोग, ऐसी बात अनन्त बार सुनी, **परिचय में प्राप्त की और उसी का अनुभव किया, इसलिए वह सुलभ है।** यह बात तो भगवान! तुझे अनन्त बार सुनने को मिली।

किन्तु सर्व परद्रव्यों से भिन्न... सर्व परद्रव्यों से भिन्न। देखो! सर्व परद्रव्यों से अर्थात् कर्म, शरीर और राग भी वास्तव में परद्रव्य है। अल्प पर्याय का भी आदर नहीं, अल्प पर्याय व्यवहार आत्मा है। समझ में आया? शरीर, कर्म अजीव है और राग विकल्प, दया, दान के विकल्प हैं, वे आस्रवतत्त्व हैं, अनात्म द्रव्य हैं, परद्रव्य हैं। और एक समय की प्रगट अवस्था है, वह व्यवहार आत्मा है, अभूतार्थ है। **भिन्न एक चैतन्य-चमत्कारस्वरूप...** भिन्न एक चैतन्यचमत्कार। देखो! त्रिकाल। **एक चैतन्य-चमत्कारस्वरूप अपने आत्मा की कथा का ज्ञान अपने को तो अपने से कभी नहीं हुआ,...** यह कथा शब्द से भाव। समझ में आया? **और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है...** कथा

शब्द पड़ा है न, इसलिए लिया है। कामभोग बन्ध कथा। कथा तो बात का शब्द है। उसका भाव। समझे?

और जिन्हें वह ज्ञान हुआ है, उनकी कभी सेवा नहीं की;... उसका स्वीकार किया नहीं। अन्तर में अभिमान छोड़कर, मान छोड़कर, पूर्व में जितना परलक्ष्य से जाना-माना, उन सबका अभिमान छोड़कर। परलक्ष्यी जितना ज्ञान, परलक्ष्यी श्रद्धा, परलक्ष्यी आचरण जितना कुछ है, उसमें कुछ लाभ नहीं। लाभ नहीं तो नुकसान ही है। बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? परालम्बी ज्ञान, परालम्बी श्रद्धा, परालम्बी आचरण सब बन्ध का ही कारण है। निश्चय बिना का व्यवहाररत्नत्रय — व्यवहाराभास भी बन्ध का कारण है। और समकिती को भी जितना व्यवहार उत्पन्न होता है, वह बन्ध का ही कारण है। समझ में आया? सुना नहीं। मानो यह सब सेठिया और पण्डित हम। ऐ... सेठी! यह सेठी तो वहाँ बड़े प्रमुख थे। जयपुर। तुम्हारे लिये तो कहते हैं कि दीवान की बहिन के साथ विवाह किया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! भगवान एक चैतन्यचमत्कारस्वरूप अपना आत्मा। बस, आत्मा उसे कहते हैं। एकरूप चैतन्यचमत्कार जिसमें सर्वज्ञपद पड़ा है। सर्वज्ञस्वभावी भगवान चैतन्य चमत्कार, जिसमें अनन्त केवलज्ञान की पर्याय पड़ी है। ऐसे चैतन्यचमत्कार भगवान सर्वज्ञ का, ऐसे अपने सर्वज्ञस्वभाव की—निजात्मा की बात सुनी नहीं। परिचय में आयी नहीं। **इसलिए उनकी प्राप्ति सुलभ नहीं दुर्लभ है।** लो। यह चौथी गाथा हुई। अब पाँच।

★ ★ ★

गाथा - ५

अत एवैतदुपदर्श्यते –

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं ।।5।।

तमेकत्वविभक्तं दर्शयेहमात्मनः स्वविभवेन।
यदि दर्शयेयं प्रमाणं स्खलेयं छलं न गृहीतव्यम् ।।5।।

इह किल सकलोद्भासिस्यात्पदमुद्रितशब्दब्रह्मोपासनजन्मा समस्तविपक्ष–क्षोदक्षमाति निस्तुषयुक्त्यवलम्बनजन्मा निर्मलविज्ञानघनान्तर्निमग्नपरापरगुरु–प्रसादीकृतशुद्धात्मतत्त्वा–नुशासनजन्मा अनवरतस्यन्दिसुन्दरानन्दमुद्रितामन्दसम्वि–दात्मकस्वसम्वेदनजन्मा च यः कश्चनापि ममात्मनः स्वो विभवस्तेन समस्तेनाप्ययं तमेकत्वविभक्तमात्मानं दर्शयेहमिति बद्धव्यवसायोऽस्मि।

किन्तु यदि दर्शयेयं तदा स्वयमेव स्वानुभवप्रत्यक्षेण परीक्ष्य प्रमाणीकर्तव्यम्। यदि तु स्खलेयं तदा तु न छलग्रहणजागरुकैर्भवितव्यम् ।।5।।

अब आचार्य कहते हैं कि इसीलिए जीवों को उस भिन्न आत्मा का एकत्व बतलाते हैं:–

दर्शाऊँ एक विभक्त को, आत्मातने निज विभव से।
दर्शाऊँ तो करना प्रमाण, न छल ग्रहो स्खलना बने।।5।।

गाथार्थ : [तम्] उस [एकत्वविभक्तं] एकत्वविभक्त आत्मा को [अहं] मैं [आत्मनः] आत्मा के [स्वविभवेन] निज वैभव से [दर्शये] दिखाता हूँ; [यदि] यदि मैं [दर्शयेयं] दिखाऊँ तो [प्रमाणं] प्रमाण (स्वीकार) करना, [स्खलेयं] और यदि कहीं चूक जाऊँ तो [छल] छल [न] नहीं [गृहीतव्यम्] ग्रहण करना।

टीका : आचार्य कहते हैं कि जो कुछ मेरे आत्मा का निजवैभव है, उस सबसे मैं इस एकत्वविभक्त आत्मा को दिखाऊँगा, ऐसा मैंने व्यवसाय (उद्यम, निर्णय) किया

है। कैसा है मेरे आत्मा का निजवैभव? इस लोक में प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक और 'स्यात्' पद की मुद्रावाला जो शब्दब्रह्म–अर्हन्त का परमागम–उसकी उपासना से जिसका जन्म हुआ है। ('स्यात्' का अर्थ 'कथञ्चित्' है अर्थात् किसी प्रकार से–किसी अपेक्षा से–कहना। परमागम को शब्दब्रह्म कहने का कारण यह है कि–अर्हन्त के परमागम में सामान्य धर्मों के–वचनगोचर समस्त धर्मों के–नाम आते हैं और वचन से अगोचर जो विशेषधर्म हैं, उनका अनुमान कराया जाता है; इस प्रकार वह सर्व वस्तुओं का प्रकाशक है, इसलिए उसे सर्व व्यापी कहा जाता है, और इसीलिए उसे शब्दब्रह्म कहते हैं।) पुनः वह निजवैभव कैसा है? समस्त विपक्ष–अन्यवादियों के द्वारा गृहीत सर्वथा एकान्तरूप नयपक्ष के निराकरण में समर्थ अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति के अवलम्बन से उस निजवैभव का जन्म हुआ है, पुनः वह कैसा है? निर्मल विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न (अन्तर्लीन) परमगुरु–सर्वज्ञदेव और अपरगुरु–गणधरादिक से लेकर हमारे गुरुपर्यन्त, उनके प्रसादरूप से दिया गया जो शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश उससे निजवैभव का जन्म हुआ है। पुनः वह कैसा है? निरन्तर झरता हुआ–स्वाद में आता हुआ जो सुन्दर आनन्द है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुरसंवेदनरूप स्वसंवेदन से निजवैभव का जन्म हुआ है। यों जिस–जिस प्रकार से मेरे ज्ञान का वैभव है, उस समस्त वैभव से दिखाता हूँ। मैं जो यह दिखाऊँ तो उसे स्वयमेव अपने अनुभवप्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना; और यदि कहीं अक्षर, मात्रा, अलंकार, युक्ति आदि प्रकरणों में चूक जाऊँ तो छल (दोष) ग्रहण करने में सावधान मत होना। (शास्त्रसमुद्र के बहुत से प्रकरण हैं, इसलिए यहाँ स्वसंवेदनरूप अर्थ प्रधान है; इसलिए अर्थ की परीक्षा करनी चाहिए।)

भावार्थ : आचार्य आगम का सेवन, युक्ति का अवलम्बन, पर और अपर गुरु का उपदेश और स्वसंवेदन – यों चार प्रकार से उत्पन्न हुए अपने ज्ञान के वैभव से एकत्व–विभक्त शुद्ध आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं। हे श्रोताओं! उसे अपने स्वसंवेदन–प्रत्यक्ष से प्रमाण करो; यदि कहीं किसी प्रकरण में भूल जाऊँ तो उतने दोष को ग्रहण मत करना। कहने का आशय यह है कि यहाँ अपना अनुभव प्रधान है; उससे शुद्ध स्वरूप का निश्चय करो।।5।।

गाथा - ५ पर प्रवचन

अब आचार्य कहते हैं कि इसीलिए जीवों को उस भिन्न आत्मा का एकत्व बतलाते हैं :- अब आत्मा को, परमात्मा कुन्दकुन्दाचार्यदेव (कहते हैं)। परम आत्मा अर्थात् परमस्वरूप प्राप्त। समझ में आया? कोई कहे कि परमात्मा कैसे कहा? परम स्वरूप प्राप्त को परमात्मा कहते हैं। १४४ (गाथा में) यह भाषा है। १४४ कर्ता-कर्म (अधिकार) में है न? भाई! वहाँ परमात्मा कहा है, भाई! वस्तु प्राप्त को परमात्मा कहा है। १४४ है। देखो! **केवल एक सम्पूर्ण विश्व के ऊपर मानो कि तैरता हो...** २२९ पृष्ठ। **वैसे अखण्ड प्रतिभासमय, अनन्त, विज्ञानघनरूप, परमात्मारूप समयसार को...** परमात्मा समयसार को **जब आत्मा अनुभव करता है...** देखो! **उसी समय आत्मा सम्यक्रूप से दिखाई देता है...** तब सम्यग्दर्शन में यथार्थ श्रद्धान में आता है। समझ में आया? भावार्थ के ऊपर अन्तिम लाईन है। टीका की अन्तिम दो-तीन लाईन है। हिन्दी में २२४ पृष्ठ। टीका है न? **प्रथम, श्रुतज्ञान के अवलम्बन से....** इसकी अन्तिम तीन लाईनें।

आदि-मध्य-अन्तरहित, अनाकुल केवल एक, सम्पूर्ण विश्व के ऊपर मानो कि तैरता हो ऐसे अखण्ड प्रतिभासमय अनन्त... यह तो बहुत... एक-एक का अर्थ तो जब चलेगा, तब करेंगे। **विज्ञानघन, परमात्मारूप समयसार को...** अपना आत्मा वह समयसार। **जब आत्मा अनुभव करता है...** तब उसी समय उसे श्रद्धा—सम्यग्दर्शन कहा जाता है। तब दिखता है। पहले से माने ऐसा नहीं — ऐसा कहते हैं। आहाहा! तब देखा जाता है, **और ज्ञात होता है, इसलिए समयसार ही सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है।** अभी तो यहाँ सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन को... यहाँ परमात्मरूप समयसार आत्मा का अनुभव करता है, उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान कहा। कर्ता-कर्म अधिकार की अन्तिम (गाथा) है न। विकल्प छूट गया। मैं अबद्ध हूँ, शुद्ध हूँ, अशुद्ध हूँ—ऐसे विकल्प छूटकर परमात्मस्वरूप अखण्ड अभेद का अनुभव होता है, तब उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान उस समय कहा जाता है। समझ में आया? तो परमात्मारूप समयसार आत्मा है। कब? अभी। परमात्मा है, परम स्वरूप है। उसकी अन्तर अनुभव में श्रद्धा हो, उसका नाम सम्यग्दर्शन कहा जाता है। ओहोहो!

यह दशा तो मानो कुछ बारहवें गुणस्थान की होगी, ऐसा माने। यह तो अभी सम्यग्दर्शन के अनुभव में ऐसा परमात्मस्वरूप अखण्ड एक... विशेषण बहुत दिये हैं। एक अखण्ड प्रतिभासमय अनन्त विज्ञानघन परमात्मारूप समयसार। यह भगवान आत्मा ऐसा श्रद्धा और ज्ञान में ज्ञेय उस समय होता है। जब उसमें एकाकार होता है तब। तब उसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, उस समय कहा जाता है। ऐसी ... आत्मा है और राग है, उसका नाम श्रद्धा नहीं। उस श्रद्धा को श्रद्धा कहते ही नहीं। समझ में आया?

आचार्य कहते हैं, हम हमारे वैभव से आत्मा कहेंगे, हों! भगवान कहते हैं, इसलिए कहूँगा ऐसा नहीं, हमारे वैभव से कहूँगा, ऐसा कहते हैं। क्योंकि भगवान ने कहा, परन्तु हमारे ज्ञान में भासित हुआ है, ऐसा हम कहेंगे न! अभी तो कहनेवाला मैं हूँ। समझ में आया? तो मुझमें जैसा अन्तर अनुभव-भास हुआ है, वही मैं कहूँगा। समझ में आया? अब आचार्य उसकी बात करते हैं। **जीवों को उस भिन्न आत्मा का एकत्व बतलाते हैं :-** तब कोई कहे, महाराज! परन्तु सीधे ऐसा उपदेश? इतना बड़ा? जीवों को ऐसा उपदेश पहले आप करते हो? इतना बड़ा? थोड़ा दूसरा तो कहो। कषाय मन्द हो, ऐसी कोई क्रिया करो। यहाँ तो कहते हैं, हम जीवों को पर से भिन्न हमारा वैभव जो प्रगट हुआ है, वही बात तुमको कहेंगे। समझ में आया?

तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं॥५॥

दर्शाऊँ एक विभक्त को, आत्मातने निज विभव से।
दर्शाऊँ तो करना प्रमाण, न छल ग्रहो स्खलना बने॥५॥

एक-एक शब्द में बहुत गम्भीरता, बहुत (गम्भीरता)।

टीका :- आचार्य कहते हैं... भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज अपनी छठवीं भूमिका में वीतरागदशा में रमण करते हैं और विकल्प आया है। विकल्प आया है तो कहते हैं कि **जो कुछ मेरे आत्मा का...** जो कुछ मेरे आत्मा का। समझ में आया? **आत्मा का निजवैभव...** देखो! यह वैभव। दुनिया की लक्ष्मी और बँगला-फँगला और धूल वैभव-फैभव है नहीं। ऐई! बालचन्दभाई!

मुमुक्षु : बँगला का क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके घर में रहा। कहाँ घुस गया है? उसमें घुस गया है?

मुमुक्षु : उसके घर में रहे?

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में-जड़ में है। बँगला कहाँ तेरा है? तुझमें है? तेरा हो तो तुझसे भिन्न न रहे। भिन्न रहे वह तेरी चीज़ नहीं। समझ में आया? यह निजवैभव अपने से भिन्न न रहे, वह वैभव अपना है। यहाँ तो राग और व्यवहार विकल्प भी निजवैभव नहीं।

मुमुक्षु : व्यवहार से तो निजवैभव....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। व्यवहार से वैभव थोथा कहो, समझाने के लिये। ऐ... सेठी! यह पैसेवाले करोड़ोंपति और धूलपति कहलाते हैं न। धूल है। धूल है और पुद्गल है। पुद्गल को धूल कहो, पुद्गल कहो, अजीव कहो, अचेतन कहो, जड़ कहो, जो कहो।

भगवान आत्मा का वैभव, आहाहा! वह वैभव पर्याय है, हों! वैभव पर्याय की बात है। वैभव पर्याय की बात है। आत्मा त्रिकाली है, उसका वैभव प्रगट हुआ है। प्रगट हुआ है न यह तो? अपने आत्मा में राग से भिन्न आनन्द का अनुभव जो हो गया है। समझ में आया? प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन, ऐसा पाठ है। प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन। अन्दर है। समझ में आया? '**अनवरतस्यन्दिसुन्दरानन्दमुद्रितामन्दसंविदात्मकस्वसंवेदनजन्मा**' यह पर्याय प्रगट हुई, उसकी बात है। द्रव्य तो त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द है ही। परन्तु हमारी पर्याय में हमारा वैभव जो प्रगट हुआ है, हमारे अतीन्द्रिय आनन्द की झलक अतीन्द्रिय प्रचुर स्वसंवेदन दशा उत्पन्न हुई है, वह हमारा वैभव है। ओहोहो! यह चेला-चेली का वैभव....

यहाँ तो विकल्प उठा है, वह भी हमारा वैभव नहीं, ऐसा साथ में कहते हैं। समझाने का विकल्प आया, वह हमारा वैभव नहीं। हमारा निजवैभव नया उत्पन्न हुआ है, वह नहीं। हमारे आत्मा में से गुरु की कृपा से हमको वाणी मिली है, उसकी हमने सेवा की थी। सेवा का अर्थ, उसमें भाव था, वह हमने समझ लिया था। आहाहा! समझ

में आया? एक-एक शब्द बहुत कठिन है।

कहते हैं कि **जो कुछ मेरे आत्मा का निजवैभव है, उस सबसे मैं...** पूरे क्षयोपशमभाव में आनन्दादि जो प्रगट हुए हैं, उन सबसे मैं **इस एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखाऊँगा,...** यह एकत्व अर्थात् भगवान आत्मा अपने शुद्ध आनन्द की पर्याय से अभिन्न (वह) एकत्व और राग से विभक्त, ऐसे आत्मा को दर्शाऊँगा, दिखाऊँगा। यह मैं तो दिखाऊँगा, कहते हैं। वैभव नहीं होता? पुत्री को दहेज देते हैं न? हमारे (गुजराती में) करियावर कहते हैं। पाँच-पचास हजार, लाख, दो लाख (दे)। फिर सगे-सम्बन्धियों को सबको बुलावे। कन्या को यह देना है, कन्या को यह देना है। खाट पर बिछाये न? पलंग पर बिछाये। कहते हैं या नहीं? सेठ! दो हजार तोला सोना देना है, इतना यह देना है, यह कपड़े, एक मोटर देनी है। अभी मोटर है, पहले कहाँ थी? सब वैभव पूरे परिवार को बतावे। बुलाकर बतावे न? कन्या को ऐसा देना है, कन्या को ऐसा देना है। परन्तु सबको दिखाने के लिये बुलाते हैं कि यह कन्या को देते हैं।

यहाँ भगवान कहते हैं कि हमारा वैभव हे जीवों! तुमको हम दिखलाते हैं! आहाहा! देखो तो सही, ऐसा कहते हैं। देखने तो आओ। समझ में आया? इन सबसे, मैं मेरा वैभव जितना प्रगट हुआ है, सबको मेरे क्षयोपशम से, दृष्टि से, स्थिरता से, आनन्द से, वीर्य से जितना है, उस सबसे मैं एकत्व-विभक्त आत्मा को (कहूँगा)। अपना स्वभाव भगवान राग से पृथक् है और अपने शुद्ध स्वभाव से एक आत्मा है। द्रव्य है, वह स्वभाववान है। अपने शुद्ध स्वभाव से एकत्व है और राग से पृथक् है। भगवान आत्मा स्वभाववान है। तो उसके शुद्ध गुण और शुद्ध निर्मल मुनि की वीतरागी पर्याय, वह हमारा वैभव, वह आत्मा का निज वैभव एकत्व है। और विकल्प आदि हमको उठते हैं अभी बोलने के समय में, शास्त्र लिखने में उस विकल्प से भी मेरा वैभव भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? मैंने विकल्प किया है, मैं वाणी करता हूँ, वह तो मुझमें है ही नहीं। आहाहा!

एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखाऊँगा, ऐसा मैंने व्यवसाय (उद्यम, निर्णय) किया है। है न? कहाँ आया? '**बद्धव्यवसायोऽस्मि**' '**बद्धव्यवसायोऽस्मि**'। मैंने पुरुषार्थ

की जितनी जागृति (की है), उतना मेरा कहने में प्रयत्न चलता है। '**बद्धव्यवसायोऽस्मि**' **(उद्यम, निर्णय) किया है।** ऐसा आत्मा मुझे कहना है, ऐसा मेरे भाव में घोलन वर्तता है, उस समस्त पुरुषार्थ से मैं कहूँगा। यह तो पहले बताया। देखो! '**एकत्वविभक्तमात्मानं दर्शये**' वहाँ यह आया। अब यदि मैं दर्शाऊँ, वहाँ दूसरा शब्द लिया है। यह तो सामान्य बात की। परन्तु अब यदि दिखाऊँ, सुनो! कहते हैं। दिखलाऊँ तो प्रमाण करना। आहाहा! उपादान और निमित्त को एक करते हैं। दिखलाऊँ तो हे श्रोता! अनुभव से प्रमाण करना, हों! अनुभव से प्रमाण करना। अनुभव प्रमाण, वही सर्व प्रमाण में प्रमाण है। समझ में आया?

मैंने व्यवसाय (उद्यम, निर्णय) किया है। तो मैं दिखलाऊँगा। इसमें दो शब्द लिये हैं। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण**' '**जदि दाएज्ज पमाणं।**' ऐसा शब्द लिया है। मैं ... करता हूँ। हे जीवो! मैं जैसे राग से पृथक् भगवान आत्मा के आनन्दवैभव की स्वसंवेदन की प्रचुर दशा में रहा हूँ, ऐसी मुनि की दशा में रहा हूँ, मैं पर को कहूँगा। प्रभु! प्रमाण करना, हों! समझ में आया? यह तो पहली गाथा में शुरु किया था कि मैं समयसार कहूँगा।

'**वंदित्तु**' '**वंदित्तु**' की व्याख्या अमृतचन्द्राचार्य ने इतनी की है कि अनन्त सिद्धों को हमारी ज्ञान की पर्याय में हमने स्थापित किये हैं। उसका नाम '**वंदित्तु**'। हमारी ज्ञान की दशा में अनन्त सिद्धों को हमारे आँगन में विराजमान किया है और मेरे आत्मा में अनन्त सिद्धों को स्थापित किया है। श्रोताओ! तुम्हारी ज्ञान की पर्याय में भी तुम्हारे में और मुझमें अनन्त सिद्धों को स्थापित करता हूँ। ओहोहो! श्रोता ऐसे लिये हैं। समझ में आया? '**वंदित्तु**' का अर्थ अमृतचन्द्राचार्य ने किया है। मुझमें और पर में अनन्त सिद्धों को स्थापित कर, ऐसा लिखा है। क्या कहते हैं? हमारी ज्ञानपर्याय में अनन्त सिद्ध आ गये। स्थापित करते हैं।

अब हमारे राग या अल्पज्ञता नहीं रहेंगे। हमारा लक्ष्य, दृष्टि आत्मा के ऊपर है। अनन्त सिद्धों को पर्याय में स्थापित किया तो दृष्टि तो वहाँ ढल गयी—दृष्टि आत्मा के ऊपर गयी। दृष्टि आत्मा के ऊपर गयी तो अल्पज्ञता और राग है, वह अब नहीं रहेगा।

और श्रोता को कहते हैं कि अरे! श्रोता! अनन्त सिद्धों को मैं (तुम्हारी) पर्याय में स्थापित करता हूँ। अरे भगवान! हमारी क्षयोपशम पर्याय बहुत अल्प है न! अरे! सुन तो सही। इनकार मत कर, इनकार मत कर। समझ में आया? अनन्त सिद्ध भगवान! आहाहा! अनन्त केवलज्ञानी! अनन्त केवलज्ञानी को क्षयोपशम ज्ञान में स्थापित करते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी केवलज्ञान में विवाद। केवलज्ञान किस प्रकार जानता है? और कैसा होता है और... अरे! भगवान! यहाँ तो पहली चोट में अनन्त केवली को अपनी पर्याय में सर्वज्ञों को—सिद्धों को स्थापित किया है। तुम्हारी पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित करता हूँ, फिर सुनो। '**वंदित्तु सव्व सिद्धे वोच्छामि समयपाहुडम**'। पश्चात् मैं समयसार कहता हूँ। यहाँ भी समयसार कहता हूँ। समझ में आया?

उस सबसे मैं इस एकत्व-विभक्त आत्मा को... विभक्त ऐसा कौन? आत्मा। आत्मा उसे कहते हैं कि जो रागादि से विभक्त है और अपने शुद्ध आनन्द आदि स्वभाव से एकत्व है। उसे आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा का हमारी पर्याय में हमको भान हुआ है उसे, मैं तुमको कहूँगा। मेरी साक्षी से कहूँगा। भगवान ऐसा कहते थे और ऐसा होता होगा, (ऐसा नहीं)। समझ में आया? श्वेताम्बर में ऐसा आता है, '....' हे जम्बू! सुधर्मस्वामी कहते हैं, भगवान ऐसा कहते थे, ऐसा मैं तुझको कहता हूँ। ऐसी भाषा है। पहला शब्द। पहले आचारांग की। '....' हे आयुष्यमान शिष्य! भगवान ऐसा कहते हैं कि.... सुना है या नहीं? सुना है। '....' हे आयुष्यमान शिष्य! स्वयं मैंने। मैंने भगवान के पास सुना, वैसा कहता हूँ। यहाँ तो कहते हैं, मैं मेरे अनुभव से कहता हूँ। वाणी में अन्तर है, कथनशैली में अन्तर है। शास्त्र की कथन पद्धति में अन्तर है।

कहते हैं, अपना स्वभाव हमको स्वसंवेदन में आया है। चार कारण से। एक स्वसंवेदन... और तीन कारण दूसरे। आगम की सेवा, अति निस्तुष युक्ति से अन्यमत का खण्डन हमारी दृष्टि में आ गया है। अन्यमत के जितने भी विपरीत हैं, अति निस्तुष युक्ति से हमने खण्डन करके यथार्थ वस्तु हमारी दृष्टि में आ गयी है। समझ में आया? आगम, युक्ति.... समझे? चार बोल हैं न? गुरु परम्परा। गुरु परम्परा का उपदेश। आगमसेवा, गुरु परम्परा का उपदेश और हमारा स्वसंवेदन तथा अन्यमती का एकान्त

क्या है, (उसका) अति निस्तुष तर्क युक्ति से हमने खण्डन करके हमारे आत्मा का वैभव उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? इन चार बातों से मैं कहूँगा, ऐसा कहते हैं।

एकत्व-विभक्त आत्मा को दिखाऊँगा, ऐसा मैंने व्यवसाय... कैसा है मेरे आत्मा का निजवैभव? इस लोक में प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक... है। ऐसा अब आगम की बात करते हैं। अब आगम की बात करते हैं, भाई! निजवैभव इतना। **इस लोक में प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक और 'स्यात्' पद की मुद्रावाला जो शब्दब्रह्म-अर्हन्त का परमागम-उसकी उपासना से जिसका जन्म हुआ है।** सर्वज्ञ की वाणी हमने सुनी, उसकी हमने सेवा की। उपासना है न? उपासना। पहली यह बात कि सर्वज्ञ के आगम होना चाहिए। छद्मस्थ के और अल्पज्ञ के कहे हुए हों, वे नहीं। सर्वज्ञ के अनुसार कहनेवाले हों। पहले सर्वज्ञ लिये, भाई! यहाँ अभी विवाद सर्वज्ञ का। धर्म का मूल सर्वज्ञ। सर्वज्ञ एक समय में तीन काल देखते हैं तो अनियत देखते हैं। जब वह निमित्त आयेगा, कैसा आयेगा तो कैसी पर्याय होगी, ऐसा भगवान को भी अनियत है। आहाहा! समझ में आया? (अपने जैसे भगवान को) मान लिया। स्वयं को ख्याल नहीं कि कब पर्याय होगी। उन्हें भी कैसी होगी उसका ख्याल नहीं। तो अनियत होगी। अनियत का अर्थ क्या? तीन काल के समय में जो समय है और उस समय में जो निमित्त है। दोनों का सम्यक् ज्ञान केवलज्ञान में ज्ञान आ गया है। समझ में आया? आगे-पीछे ज्ञान उन्हें रहा ही नहीं। केवलज्ञान दिव्यज्ञान! ओहो!

जिसे भगवान अनन्त चक्षु कहते हैं। अनन्त चक्षु प्रवचनसार में (आता है)। केवलज्ञान अनन्त चक्षु है। आगमचक्षु, इन्द्रियचक्षु, अनन्तचक्षु। सन्तों को—मुनियों को आगमचक्षु है। आगम के भावज्ञान की आँख खुल गयी है। और इन्द्रिय का ज्ञान, साधारण जीव को इन्द्रियज्ञान है। अवधि को भी साधारण इन्द्रिय है, उसके इन्द्रियज्ञान में, हों! अवधिज्ञान भले हो। अन्तर भावज्ञान, आगमज्ञान अन्तर, वरना इन्द्रियज्ञान, सर्वज्ञ अनन्तचक्षु। असंख्य प्रदेश में अनन्त नेत्र खुल गये हैं। अनन्त केवलज्ञान, दर्शन आदि अनन्त चतुष्टय एक समय में (प्रगट हो गये हैं)। पूरे तीन काल-तीन लोक जैसे व्यवस्थित हैं, ऐसे एक समय में ज्ञान में आ गये हैं। ऐसे भगवान के मुख में से जो वाणी निकली... है?

प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक... भगवान की वाणी समस्त वस्तुओं की प्रकाशक है। समझ में आया? यह शब्दब्रह्म है न? शब्दब्रह्म। आत्मा आत्मब्रह्म है। शब्दब्रह्म वाचक है। **'स्यात्' पद की मुद्रावाला जो शब्दब्रह्म-अर्हन्त का परमागम...** है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की परमागम वाणी निकली, उसकी उपासना से हमारा जन्म हुआ है। हमारा अन्तर वैभव-दशा, हों! पर्याय। वह मोक्षमार्ग की पर्याय। कोई कहे, हमको सम्यग्दर्शन की खबर पड़े? यह क्या कहते हैं मुनि? यह पंचम काल के हैं। हमारे वैभव का जन्म भगवान की सेवा से हुआ है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र प्रगट हुए हैं, ऐसा हम जानते हैं। ऐसा उल्टा मारे। निश्चय समकित ज्ञात नहीं होता, इसलिए व्यवहार क्रिया करो। यहाँ तो कहते हैं, तू स्वानुभव कर। हमारे ज्ञान में हमारी वर्तमान दशा आ गयी है। हमारी दशा, परमागम की सेवा से हमको सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और आनन्द (प्रगट) हुए हैं, ऐसी हमारी पर्याय प्रगट हुई है, द्रव्य में से प्रगट हुई है, ऐसा हमको भान है। समझ में आया? पंचम काल के मुनि अपनी दशा को, प्रत्यक्ष है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उससे मैं समयसार को कहूँगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल २, गुरुवार, दिनांक - १८-०८-१९६६
गाथा - ५, प्रवचन - २०

यह समयसार, जीव-अजीव अधिकार चलता है। इसकी पाँचवीं गाथा चलती है। देखो! आचार्य क्या कहते हैं? कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ऐसा कहते हैं कि मैं तुमको... पहले गाथा में तो ऐसा साबित किया—सिद्ध किया था कि मेरे आत्मा में और पर के आत्मा में अनन्त सिद्ध को स्थापित करके मैं समयसार कहूँगा। समझ में आया? पहली ही गाथा में ऐसा कहा था कि मैं '**वंदित्तु**' अनन्त सिद्ध भगवान, अनन्त केवलज्ञानियों को आत्मा की पर्याय में स्थापित करके मुझमें और श्रोताओं के ज्ञान की दशा में—पर्याय में अनन्त सिद्ध केवलज्ञानी को स्थापित करके मैं समयसार कहूँगा।

यहाँ कहते हैं कि उसमें क्या कहने का है? रागादि पुण्यादि जो भाव हैं, उनसे आत्मा आनन्दस्वरूप भिन्न है। आत्मा अपने आनन्दस्वभाव से एकत्व है और राग और विकल्प, दया, दान, व्रतादि विकल्प व्यवहार से भिन्न है। ऐसा स्वरूप पर से विभक्त, स्व से एकत्व, वह मुझे कहना है। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं, एकत्व-विभक्त को कहूँगा। यही मोक्ष का मार्ग है। भेदज्ञान। भगवान आत्मा अनन्त-अनन्त शुद्ध आनन्द आदि गुण सम्पन्न अपने निर्मल आनन्द की दशा से स्वभाव से अभेद एकरूप और विकार से पृथक् है। यह करने का है। जीवों को मोक्षमार्ग में प्रयोजन यह है। यह प्रयोजन मैं एकत्व-विभक्त का कहूँगा। वह मेरे वैभव से कहूँगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कौनसा वैभव होगा?

यह कहते हैं आचार्य, देखो! **मेरे आत्मा का निजवैभव...** उससे मैं कहूँगा। क्या कहूँगा? एकत्व-विभक्त। उसे दर्शाऊँगा। **ऐसा मैंने व्यवसाय (उद्यम, निर्णय) किया है।** अब पहली बात। मेरे आत्मा का निजवैभव। मेरा आनन्द। पुण्य-पाप के भाव से भिन्न मेरा आनन्द, वह मुझे अन्तर (में) प्रगट हुआ है। उस मेरे निजवैभव में निमित्त

कौन था ? कैसे प्रगट हुआ है ? ऐसा कहते हैं। **इस लोक में प्रगट समस्त वस्तुओं का प्रकाशक और 'स्यात्' पद की मुद्रावाला जो शब्दब्रह्म-अर्हन्त का परमागम...** सेवा से मेरे आत्मा में (वैभव जन्म पाया है)। क्योंकि अर्हंत के परमागम में वह कहने में आया है। समझ में आया ? सर्वज्ञ भगवान के परमागम में वह कहने में आया है। देखो ! यह सब सार कहते हैं। तेरा आत्मा अनन्त गुण आनन्दकन्द स्वरूप स्वभाव से अभिन्न है और विकार से भिन्न है। ऐसे भगवान के कहे हुए परमागम में यह कहा है, उसकी सेवा से अर्थात् उसके भाव को समझने से मुझे मेरे आनन्द का वैभव भेदज्ञान का प्रगट हुआ है। समझ में आया ?

वह आगम कैसा है ? कि '**स्यात्**' पद की मुद्रा-छाप है। अनेकान्त में स्यात्-कथंचित् कहना। आत्मा वस्तु से शुद्ध है, आनन्द है, संसार में पर्याय में दुःख है। ऐसे स्यात् से आनन्द है तो अन्तर त्रिकाल में; दुःख है तो वर्तमान दशा में। ऐसा स्यात् से कहना, ऐसी भगवान के परमागम की मुद्रा-छाप है। उसकी सेवा से यह जन्म हुआ है। देखो ! सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव त्रिलोकनाथ ने कही वाणी, उसके बने परमागम। उन परमागम की मैंने सेवा की। इसका अर्थ यह कि मैंने उनका कहा हुआ मेरे अनुभव में लिया। यह सेवा। आहाहा ! समझ में आया ? यह तीन दिन तो गुजराती चलेगी। अब उलझन में नहीं आना। बहुत अनजाने लोग हैं न ? चार दिन। रविवार से कक्षा चलेगी, तब वापस हिन्दी करना पड़ेगा। यह तो अभी तीन दिन (गुजराती चलेगी)। कहो, समझ में आया ?

कुन्दकुन्दाचार्य महाराज फरमाते हैं, कहते हैं कि मैं जगत के जीवों को शरीर, वाणी, कर्म से तो भगवान आत्मा भिन्न है, परन्तु पुण्य-पाप के व्यवहाररत्नत्रय के राग से भी भगवान आत्मा भिन्न है। और आत्मा अनन्त आनन्द गुण आदि सहित है, वह एकत्व। यह बात तुमको कहने की है और यह बात भगवान ने परमागम में कही थी। उस परमागम में कही थी, उसकी सेवा से मुझे पर से भिन्न और स्व के अनुभव का आनन्द मुझे प्रगट हुआ है। यह मेरा निजवैभव है। समझ में आया ? भगवान के प्रति बहुभाव विकल्प है, वह भी मेरा वैभव नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

मैं मेरे निजवैभव से कहूँगा। वैभव अर्थात् मेरी आनन्ददशा, सम्यक्दशा, सम्यक् चारित्रदशा, सम्यक् अनुभव, स्वसंवेदन प्रचुर दशा। प्रचुर अर्थात्... पाठ है न? भाई! **'अमन्द'। 'अमन्द'** मेरा प्रचुर स्वसंवेदन, मेरा आनन्दभाव, वह मेरा निजवैभव है। रागादि व्यवहार उत्पन्न होता है, वह मेरा निजवैभव नहीं। ऐसा परमागम में कहा था, ऐसा मैंने सेवन किया है, ऐसा कहते हैं। भाई! आहाहा! भगवान सर्वज्ञदेव के त्रिलोकनाथ के दिव्यध्वनिरूप परमागम में ऐसा कहा था, वह वैभव मुझे मुझमें प्रगट हुआ है। उसने परमागम में ऐसा कहा था कि भाई! तेरा स्वरूप तो आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु है। यह राग व्यवहार विकल्प जो है दया, दान, व्रतादि का, उस विकल्प से भी तू प्राप्त हो, ऐसा तू नहीं। आहाहा! समझ में आया? इस राग के अवलम्बन से तू प्राप्त हो, ऐसा तू नहीं, ऐसा परमागम ने मुझे कहा था। आहाहा! और परमागम ने ऐसा कहा, उसकी मैंने सेवा की। उसने कहा हुआ ऐसा मैंने भाव प्रगट किया। पाठ ऐसा है न? **उपासना से जिसका जन्म हुआ है।** देखो! पाठ ऐसा है। **'सकलोद्भासिस्यात्पदमुद्रितशब्दब्रह्मोपासनाजन्म'।** परन्तु वह शब्दब्रह्म कौन? भगवान के कहे हुए परमागम। अज्ञानियों की वाणी (नहीं)। उसकी पहली बात नहीं ली, अज्ञानी की वाणी को तोड़कर मैंने मेरा वैभव प्रगट किया है, यह बाद में कहेंगे। पहले अस्ति से स्थापित किया है। भगवान से सिद्ध किया है। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ की वाणी में परमागम आये। उन परमागम में यह आया था, उसकी मैंने सेवा की। उसमें यह आया था। भगवान के पास गये थे। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज सीमन्धरप्रभु के पास (गये थे)। यहाँ महावीर भगवान की शासन परम्परा में यह मार्ग चला आता था। पहली बात तो आगम मैंने सुने। उस आगम में ऐसा कहने में आया था... समझ में आया? कि तेरा प्रभु पूर्णानन्द का सहजानन्द का नाथ वह राग से, विकल्प से, कर्म, शरीर से तो भिन्न है, परन्तु राग के विकल्प गुण-गुणी का भेद (अर्थात्) मैं एक भगवान आत्मा और मुझमें अनन्त गुण रहे हैं, ऐसा जो विकल्प अर्थात् भेद का राग, उससे भी तेरा स्वरूप भिन्न है, ऐसा परमागम ने मुझे कहा था। आहाहा! समझ में आया? हिन्दी आ गया। चार दिन तो हिन्दी चला न? एक दिन गुजराती चला।

भगवान आत्मा सच्चिदानन्द में, हमको निमित्त था तो वीतराग के परमागम निमित्त थे, ऐसा कहते हैं। उसमें भी कहा हुआ वापस ऐसा। परमागम में, भगवान के परमागम में, दिव्यध्वनि में भगवान ने आगम में ऐसा (कहा हुआ है)। परमागम शब्द प्रयोग किया है न? भाई! समझ में आया? फिर अर्थ में किया है। शब्दब्रह्म का अर्थ परमब्रह्म। परमब्रह्म को बतलानेवाला शब्दब्रह्म। समझ में आया? परमब्रह्म आत्मा, भगवान, यह शब्दब्रह्म वाणी। इस शब्दब्रह्म को व्यापक कहते हैं और इस परमब्रह्म को अन्तर में अनन्त गुण में व्यापक, उसे परमब्रह्म कहते हैं। उस परमब्रह्म को बतलानेवाली भगवान की शब्दब्रह्म की जो वाणी। समझ में आया? उसकी मैंने सेवा की। सेवा अर्थात् वाणी की सेवा की होगी? भगवान ने वाणी में परमागम में हमको कहा था, भाई! तेरा प्रभु तो पूर्णानन्द से विराजमान, विकार के विकल्प से अत्यन्त भिन्न है। उसका अनुभव कर, उसका—आनन्द का वेदन कर। वह तेरा धर्म है और वह तेरा निजवैभव है। आहाहा! समझ में आया? कहो, आज तो यह गुजराती समझ में आता है या नहीं? कितने ही कहे, हम अनजाने हैं। आज तो अब गुजराती सरल भाषा आयी। भाव तो जैसा हो, वैसा आवे न? भाव कहीं हल्के किस प्रकार करना? आहाहा!

अर्हंत के परमागम की उपासना से... शब्दब्रह्म शब्द पड़ा है। शब्दब्रह्म उसे कहते हैं कि भगवान आत्मा परमब्रह्म को बतलानेवाली वाणी को शब्दब्रह्म कहते हैं। इसलिए शब्दब्रह्म का अर्थ अर्थकार ने परमागम कहने में लिया है। समझ में आया? **('स्यात्' का अर्थ 'कथञ्चित' है अर्थात् किसी प्रकार से-किसी अपेक्षा से-कहना। परमागम को शब्दब्रह्म कहने का कारण यह है कि-अर्हन्त के परमागम में सामान्य धर्मों के-वचनगोचर समस्त धर्मों के...** आत्मा के अस्ति आदि, आनन्द आदि। **के-नाम आते हैं और वचन से अगोचर जो विशेषधर्म हैं, उनका अनुमान कराया जाता है;...** भाई! विशेषगुण भी तुझमें अनन्त हैं। सामान्य भी अनन्त हैं। कितने ही सामान्य के नाम देते हैं, कितने ही विशेष के नाम देते हैं। बाकी कितने ही सामान्य-विशेष का परमागम अनुमान कराकर पूर्ण परमात्मा अपना स्वरूप है, उसे यह शब्दब्रह्म बतलाता है। समझ में आया? **इस प्रकार वह सर्व वस्तुओं का प्रकाशक है, इसलिए उसे सर्व व्यापी...**

शब्दब्रह्म को **सर्व व्यापी कहा जाता है, और इसीलिए उसे शब्दब्रह्म कहते हैं।** देखो! शब्दब्रह्म पाठ में पड़ा है, उसका अर्थ किया। शब्दब्रह्म की उपासना।

शब्दब्रह्म किसे कहते हैं? जो सर्व पदार्थों के सामान्य धर्मों को कहे, विशेष को कहे और कितनों को न कहा जाये, उनका अनुमान करावे। आहाहा! समझ में आया? एक-एक शब्द में कितनी बात भरी है! ऐसा का ऐसा वाँच जाये तो पता लगे, ऐसा नहीं। समझ में आया? यह एक बात कही। चार बोल लेंगे। मकान बेचे तब चतुर्दिशा निश्चित करते हैं न? भाई! मकान बेचते हैं न? फिर चार दिशा लिखे कि यह मकान अमुक गाँव में इस स्थान में (आया हुआ है)। और देनेवाला फलाना और इस मकान के चारों ओर में चार दिशा। यह मकान अध्धर से है और देनेवाला मफतलाल है, ऐसा नहीं। इसी प्रकार यहाँ वीतराग की वाणी यथार्थरूप से थी और हम उसके अनुभव करनेवाले हैं, उससे यह वैभव कहा गया है। समझ में आया? चार दिशा कहेंगे। उसमें भी चार बोल लेंगे। आगमसेवा, युक्ति का अवलम्बन, परापर गुरु का उपदेश और साक्षात् स्वसंवेदन। समझ में आया?

अब दूसरी बात। **पुनः वह निजवैभव कैसा है?** निजवैभव का अर्थ—शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र और आनन्द की दशा को निजवैभव कहते हैं। यहाँ द्रव्य-गुण की बात नहीं है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। यहाँ तो जन्मा, जन्मा, प्रगट हुआ, प्रगट हुआ, उसकी बात है। समझ में आया? हमारे आत्मा में पूर्ण शुद्ध आनन्द आदि समृद्धि तो पड़ी ही थी, परन्तु हम हमारी दशा में—अवस्था में परमागम की सेवा से वैभव का जन्म हुआ है। पर्याय में—हमारी दशा में—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र, परमआनन्द आदि दशा हमको प्रगट हुई है। वह निजवैभव पर्याय की बात है, हों! निजवैभव अवस्था की बात है। प्रगट हुए की बात है। आहाहा! समझ में आया?

पुनः वह निजवैभव कैसा है? आहाहा! कितनी बात आचार्य ने डाली है न! **समस्त विपक्ष...** पाठ में है न? '**समस्तविपक्षक्षोदक्षम**'। '**क्षोदक्षम**' बस, इतनी बात है न! समस्त विपक्ष—आत्मा के स्वभाव से विरुद्ध, अनेकान्त से विरुद्ध एकान्त के माननेवाले जितने जैनदर्शन से विरुद्ध दर्शन हैं। उन्हें विरुद्ध कहनेवाले, एकान्त माननेवाले

विपक्ष अर्थात् भगवान ने कहे हुए से समस्त विपक्ष। समस्त विपक्ष। **'क्षोदक्षम' उनके निराकरण में समर्थ... 'क्षोदक्षम'** उनका निराकरण करने में समर्थ। सुनना! भाई! **'अतिनिस्तुषयुक्त्यवलम्बनजन्मा'।** आहाहा! कहते हैं, विपक्ष, जो आत्मा के सर्वज्ञ स्वभाव से कहा हुआ आत्मा, उन्होंने कहे हुए वीतरागी भाव, उनका कहा हुआ निमित्तरूप से राग, उन्होंने कही हुई संयोगी चीज़ें। सब कथन जो भगवान ने कहा, वह अनेकान्त जैसा स्वरूप है, वैसा कहा था। उससे विरुद्ध कहनेवाले एकान्तवादी जितने हैं, उन सबको.... क्या कहते हैं? विपक्ष की व्याख्या इतनी की। **अन्यवादियों के द्वारा गृहीत सर्वथा एकान्तरूप नयपक्ष...** यह विपक्ष की इतनी व्याख्या।

भगवान परमात्मा से विपक्ष अथवा अनेकान्त वस्तु का वास्तविक स्वरूप है, उससे विपक्ष। विपक्ष अर्थात् क्या? **अन्यवादियों के द्वारा गृहीत सर्वथा एकान्तरूप नयपक्ष...** उसे विपक्ष कहा जाता है। कहो, शब्द है या नहीं अन्दर? अब, **'क्षोदक्षम' उनके निराकरण में समर्थ...** भगवान ने कहा हुआ अनेकान्त धर्म। द्रव्य में गुण नहीं, गुण में पर्याय नहीं, पर्याय में पर नहीं, पर में स्व नहीं, विकार में धर्म नहीं, धर्म में विकार नहीं—ऐसा जो अनेकान्त स्वरूप परमात्मा ने कहा, उससे विरुद्ध जितने कहनेवाले परमेश्वर से विपक्ष कि जिन्होंने एकान्त मत ग्रहण किया है, उनके निराकरण में समर्थ। **अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति के अवलम्बन से...** हमको अतिनिस्तुष अखण्ड युक्ति से हमारे ख्याल में बात आयी थी। यह बात एकान्तवादियों की झूठी है, यह हमारी निस्तुष अखण्ड युक्ति से हमने निराकरण करके उसके अवलम्बन से हमारा निजवैभव प्रगट हुआ है। सेठी! आहाहा! क्या कहते हैं?

सर्वज्ञ परमेश्वर ने परमागम में आत्मा कहा, उससे अज्ञानी विरुद्ध कहनेवाले हैं। सब मत, हों! वेदान्त हो, बौद्ध हो, सब एकान्त मिथ्यादृष्टि स्वपक्ष से विपक्ष कहनेवाले हैं, कहते हैं। उसकी व्याख्या—विपक्ष की व्याख्या जयचन्द्रजी ने की है। अन्यवादियों से ग्रहण किये गये एकान्त पक्ष के जो मत हैं, उनका अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति, उसके अवलम्बन से। निर्बाध युक्ति। पर्याय अपने स्वभाव में न हो तो कार्य होता नहीं। द्रव्य त्रिकाल न हो तो पर्याय वहाँ से आती नहीं। समझ में आया? ऐसी निर्बाध युक्ति मैंने प्रगट की। निर्बाध युक्ति से। अतिनिस्तुष—अति अखण्ड। निस्तुष, अति अखण्ड,

जिसमें छिलका नहीं-फोतरा नहीं, अखण्ड वस्तु। जैसे फोतरा समझे न? छिलका... छिलका। तुष है न? अति निस्तुष। अति छिलका बिना की। अर्थात् खण्ड बिना की। अतियुक्ति अखण्ड युक्ति से कि मार्ग ऐसा है। उससे विरुद्ध कहनेवाले झूठे हैं। ऐसा हमारे ज्ञान के अवलम्बन में अन्यमती की युक्ति से विरुद्ध युक्ति उत्पन्न होकर उसका निराकरण किया है। समझ में आया? आहाहा! अन्य क्या कहते हैं, उसे न समझे और उसका निराकरण अन्तर युक्ति में न आवे तो इसमें भी कुछ है, उसमें भी कुछ है। तो उसकी नि:सन्देह दशा—श्रद्धा हो नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति। अतिनिस्तुष की व्याख्या की, अतिनिस्तुष की व्याख्या की—निर्बाध। इसमें बाधा आती नहीं। ऐसी युक्ति के अवलम्बन से एकान्तपक्ष का हमारे न्याय में निराकरण करके और हमारा अन्तर शुद्ध आनन्द का वैभव हमको अन्तर में प्रगट हुआ है। लो, यह मुनि कहते हैं कि हमारा वैभव प्रगट हुआ, उसका मुझे भान है। कितने ही कहते हैं, सम्यग्दर्शन, ज्ञान होता है, वह खबर नहीं पड़ती। मूढ़ है?

मुमुक्षु : वह तो मात्र सर्वज्ञ के ही जानने में आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या कहते हैं यह? अपना वैभव सम्यग्दर्शन, ज्ञान और शान्ति प्रगट हो, वह अपने को खबर पड़ती है, ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं कहते हैं। मुझे निजवैभव प्रगट हुआ है। अनन्त काल में नहीं था, वह पर्याय में प्रगट हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसी बात अन्ध करके रखी है न! निश्चय समकित की अपने को खबर नहीं पड़ती। अब यह करो क्रिया, व्यवहार।

मुमुक्षु : दूसरा ज्ञात होता है और वह ज्ञात नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या परन्तु क्रिया ज्ञात होती है, कौन जानता है? राग की क्रिया और जड़ की क्रिया जाननेवाला स्वप्रकाशक जगे बिना परप्रकाश को जाने कौन? समझ में आया? यह राग है दया, दान, देह की क्रिया जड़ है, यह जाननेयोग्य है, वह कौन जाने? उससे भिन्न आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन और ज्ञान हुआ हो, वह स्व को जानने से यह रागादि पर है, ऐसा जाने। स्व-परप्रकाशक हो, वह जाने। अकेला अन्ध आत्मा के भान बिना क्या जाने? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ एक भी जानता नहीं। अज्ञानरूप से मानता है। यह तो अपने पहले दूसरी गाथा में आ गया न? **'पोग्गलकम्मपदेसट्ठिदं'** वह पर में स्थित हुआ। पर को अपना मानता हुआ, पर को जानता हुआ परिणमता है। यह दूसरी गाथा में आ गया है। पण्डितजी! परसमय की व्याख्या में। अमृतचन्द्राचार्य ने बहुत भर दिया है। समझे? दूसरी गाथा में आ गया है। उसमें आ गया है। क्या कहा? स्वभाव में एकताबुद्धि नहीं **तब पुद्गलकर्म के प्रदेशों में स्थित होने से युगपद् पर को एकत्वपूर्वक जानता हुआ....** देखो! अपने साथ एकरूप से एक काल में जानता हुआ रागादि रूप परिणमता ऐसा वह **'परसमय' है, इस प्रकार प्रतीति की जाती है।** जानता का अर्थ उसे ख्याल नहीं परन्तु ज्ञान में स्वभाव ऐसा है कि राग को जानता है और रागरूप परिणमता है। एकरूप जानता है। राग-विकल्प दया, दानादि को एकरूप जानता हुआ परिणमता है। वह परसमय मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया?

दो बोल लिये। दो बोल लिये। एक तो परमागम की सेवा। उससे हमारे आत्मा का वैभव (प्रगट हुआ है)। आहाहा! पुण्य के परिणाम व्यवहाररत्नत्रय, वह भी हमारा वैभव नहीं, कहते हैं। तो यह शरीर हमारे, यह शिष्य और शिष्यायें और बड़े मकान और बड़ी पाठशालायें, यह हमारा वैभव। वह वैभव सन्तों को तीन काल में नहीं। आहाहा! अधिक शिष्य कों, अधिक परिवार हो तो अधिक वैभव कहलाये। परन्तु वह वैभव जीव का है ही नहीं। अन्दर में पुण्य के परिणाम व्यवहार पंच महाव्रत के उत्पन्न हों, वह भी हमारा वैभव नहीं, ऐसा कहते हैं। हमारा वैभव है? वह तो मैल है। समझ में आया? ओहोहो! एक-एक श्लोक में कितना भरा है गम्भीररूप से!

हम तो अति निस्तुष निर्बाध युक्ति से अन्यमत का खण्डन करके हमने स्वमत को माना है। समझ में आया? पोपटभाई! आहाहा! उनका इस प्रकार से खोटा है, उनका इस प्रकार से खोटा है। उस समय श्वेताम्बर पंथ निकला हुआ था। समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य के समय में। १०० वर्ष हो गये थे। यह तो अमृतचन्द्राचार्य की टीका है, परन्तु पाठ में वह है न। हमारा वैभव। **'सविहवेण', 'सविहवेण'।** यह वैभव

की व्याख्या की। हमारा स्ववैभव, उससे मैं तुमको कहूँगा। आहाहा! हमारे अनुभव के साथ तुमको मैं आत्मा कहूँगा। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **अन्यवादियों के द्वारा गृहीत सर्वथा एकान्तरूप नयपक्ष के निराकरण में समर्थ अतिनिस्तुष निर्बाध युक्ति...** यह लोगों की खोटी बात है। इस प्रकार से एकान्त है। ऐसा मानकर, ऐसा निर्णय करके और हमारे आत्मा का राग से पृथक् शान्ति को, आनन्द को प्रगट करता वैभव हमको प्रगट हुआ है। हमको मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, वह हमारा वैभव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हमको मोक्षमार्ग प्रगट हुआ है, निजवैभव प्रगट हुआ है, ऐसा कोलकरार से कहते हैं। आहाहा! भगवान जाने, भाई, निश्चय समकित होगा या नहीं। यही तो अज्ञान बताता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : मान लिया....

पूज्य गुरुदेवश्री : जाने तो ठीक परन्तु अज्ञान के तीन दोष हैं न? तीन दोष हैं न? पण्डितजी! विमोह, अनध्यवसाय, संशय तीन है, वहाँ अज्ञान है। अज्ञान है, वहाँ मिथ्यात्व है। उसमें प्रश्न कहाँ है? समझ में आया? आहाहा! मैं तुमको मार्ग कहूँगा, वह मार्ग मेरी दशा में मुझे प्रगट हुआ है और वह प्रगट होने में यह तीन निमित्त है। भगवान की वाणी निमित्त हुई है और एक अति निस्तुष युक्ति भी हमको निमित्त हुई है। अन्य की (युक्ति को) तोड़ डालकर हमने निर्णय किया है। अब तीसरा।

पुनः वह (मेरा वैभव) कैसा है? भगवान आत्मा का वैभव-समृद्धि तो द्रव्य-गुण में पड़ा है, अनादि-अनन्त, परन्तु यह प्रगट हुए वैभव की बात करते हैं। अन्तर स्वभाव में तो पूर्ण परमात्मा अनन्त स्थित हैं। क्या कहा? आत्मा में अनन्त परमात्मा स्थित हैं। पर्याय में जो है न? परमात्मा की पर्याय, सिद्ध परमात्मा, उनकी पर्याय एक ऐसी सादि-अनन्त परमात्मा। एक समय की पर्याय का व्यय और दूसरे समय का उत्पाद, व्यय और उत्पाद ऐसे अनन्त परमात्मा की पर्याय मेरे अन्तर द्रव्य में पड़ी है। समझ में आया? यह तो अन्तर का वैभव। परन्तु प्रगटा, (वह कौन सा)? वह तो द्रव्य-गुण कहे। हमने उसे राग से पृथक् करके स्वभाव की एकता द्वारा हमारी दशा में निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय स्वसंवेदनज्ञान, निश्चयचारित्र, शान्ति और परमआनन्द की अमृत के

स्वाद की वैभव दशा हमको प्रगटी है। वह तुमको कहूँगा। वह प्रगट होने में कौन-कौन निमित्त और हमारा उपादान कौन, यह बात करते हैं। समझ में आया?

अब विशिष्टता देखो! यह हमारा वैभव कैसा है? **निर्मल विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न...** सर्वज्ञ परमेश्वर जो महावीर आदि परमात्मा हुए, वे कैसे थे? कि **निर्मल विज्ञानघन आत्मा...** आत्मा की व्याख्या की, भाई! आत्मा कैसा? कि निर्मलविज्ञानघन। आत्मा कैसा? कि निर्मलविज्ञानघन। बस। ऐसा विज्ञानघन जो आत्मा, उसमें अन्तर्निमग्न। देखो! अन्तर्निमग्न (कहा है)। वापस साधारण मग्न नहीं, अन्तर्निमग्न। अर्थात् साधारण चौथे, पाँचवें गुणस्थान की बात यहाँ नहीं लेना। केवली से लेकर अपने गुरु तक की लेना है। केवलज्ञानी से लेकर अपने गुरु तक विज्ञानघन जो आत्मा, विज्ञानघन जो आत्मा, उसमें परमेश्वर अन्तर्निमग्न थे। हम कहते हैं कि हमारे परमेश्वर विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न थे। एक बात।

परमगुरु-सर्वज्ञदेव और अपरगुरु-गणधरादिक... और ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि गणधरदेव भी विज्ञानघन में आत्मा में अन्तर्निमग्न थे। अन्तर्मग्न थे, इतना नहीं; अन्तर्निमग्न थे। हमारे परमेश्वर ऐसे थे। उन्होंने हमको कहा है, ऐसा कहेंगे, हों! परम्परा से हमारे परमेश्वर भी विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न थे। राग में और व्यवहार में, विकल्प में थे और भगवान को समवसरण था, वह कहीं भगवान नहीं। आहाहा! भगवान वाणी करते थे, वे भगवान ऐसा नहीं। भगवान अर्थात् कि विज्ञानघन आत्मा में निमग्न, उन्हें भगवान कहते हैं। समझ में आया? गणधर को भी ऐसा करते-करते हमारे गुरुपर्यन्त। आहाहा! पर-अपर गुरु है न? हमारे गुरु भी विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न थे, ऐसा कहते हैं। प्रभु! तुम्हारे निजवैभव की तो खबर पड़ गयी और गुरु की भी तुमको खबर पड़ गयी? पंचम काल के छद्मस्थ साधु को? सुन न! समझ में आया? ज्ञान की इतनी निर्मलता होती है कि जातिस्मरण में भी सामने दिखता नहीं और जान लेता है।

ऋषभदेव भगवान का आत्मा और श्रेयांसकुमार का आत्मा। पण्डितजी! वह आहार लेने गये, आहार लेने। कैसे देना यह खबर नहीं पड़ती। कमर बाँधकर भगवान के पास गये। भगवान को तो बारह महीने से आहार नहीं था। विघ्न हो गया। एकदम

जातिस्मरण। यह आत्मा आठवें भव में मेरे पति थे। मैं इनकी पत्नी थी। क्या हुआ यह ? अवधिज्ञान नहीं न, मन:पर्ययज्ञान नहीं न। सुन न! जातिस्मरण भी कितनी सामर्थ्य रखता है! यह शरीर वहाँ था नहीं। उनका आत्मा अरूपी दिखता नहीं। यह शरीर तब नहीं था उसे। तब स्त्री का शरीर था, उन्हें पुरुष का था। यही सबसे पहले... ऐसा विचार करते... करते... ओहो! यह आठवें भव में मेरे पति थे और मैं इनकी पत्नी थी। हमने मुनियों को आहार दिया है। आहाहा! वह कैसे याद आया ? किसमें से याद आया ? जातिस्मरण में से। अरे! जातिस्मरण में इतनी ताकत! मतिज्ञान की धारणा, धारणा का बोल स्मृति। परोक्ष में स्मृति। समझ में आया ? स्मृति परोक्ष है न ? पण्डितजी! स्मृति तो परोक्षज्ञान है। धारणा परोक्ष है। आहाहा! बापू! परोक्ष, परन्तु प्रमाण है, प्रमाणज्ञान है। आत्मा दिखता नहीं और तुम क्या करते हो ? हमारे ज्ञान ने निश्चित किया है कि यह मेरे पति आठवें भव में थे। प्रभु! वहाँ अब यह शरीर भी नहीं न। यह शरीर दूसरा है, वह आत्मा अरूपी है। धारणा की स्मृति के निश्चय नि:सन्देह में से आया कि यह मेरे आठवें भव के पति थे, मैं इनकी पत्नी थी। दोनों ने मुनि को आहार दिया था, इस विधि से दिया था, याद आ गया। लाओ रस। गन्ने का (रस)। गन्ना। गन्ने का रस था न ? क्या कहना है ?

एक मति के धारणा की स्मृति का अभी तो राजा राजकुमार है, स्त्री के विषयभोग में पड़ा हुआ है, वैभव में पड़ा है, शरीर महासुन्दर है। समझ में आया ? अन्तिम शरीर है—चरमशरीर है। आहाहा! ऐसा निश्चित है। यह मेरे पति आठवें भव में थे। परन्तु प्रभु! अवधिज्ञान नहीं न ? अरे! सुन न! मतिज्ञान की धारणा का एक अंकुर प्रगट हुआ। नि:सन्देह प्रमाणज्ञान केवलज्ञान को स्वीकार करे, ऐसा ज्ञान प्रगट हुआ है। समझ में आया ? जीव की ज्ञानकला की कितनी कीमत और कितना माहात्म्य है, इसकी जगत को माहात्म्य की महिमा ही नहीं आती। यह और यह (बाहर की महिमा)। ज्ञान का एक अंश प्रगट होने से इतनी सामर्थ्य रखता है कि अपना और पर का क्या स्वरूप है, उसका निर्णय कर सकता है।

यहाँ कहते हैं, हमारे सर्वज्ञ परमेश्वर के बाद गणधर के बाद अपरगुरु हमारे गुरु।

देखो! हमारे गुरु पर्यन्त। अपर की व्याख्या की। पर की व्याख्या सर्वज्ञ। अपर अर्थात् बाद से लेकर अभी तक। सब परम्परा के सन्त, हमारे गुरु भी विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न थे। समझ में आया? **उनके प्रसादरूप से दिया गया...** अब सीधा शब्द आया। इतना तो यह सिद्ध किया कि हमारा निजवैभव राग से भिन्न भगवान और अन्तर आनन्द से अभिन्न स्वरूप जो धर्मरूप से परिणमित आत्मा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी वैभव से प्रगट हुआ, उसमें यह हमारे गुरु जो थे, परगुरु परमात्मा, अपरगुरु गणधर से लेकर यहाँ (तक), वे सब आत्मा विज्ञानघन में निमग्न थे। ओहोहो! कहाँ केवली और कहाँ वर्तमान कुन्दकुन्दाचार्य के गुरु, सबको एकसमान रखा है। विज्ञानघन आत्मा में अन्तर्निमग्न। एक वाक्य सबको लागू किया है। देखो! अन्दर।

'**निर्मलविज्ञानघनान्तर्निमग्नपरापरगुरु**' इतनी व्याख्या चलती है। फिर '**प्रसादीकृत**' पश्चात्। समझ में आया? आहाहा! लादूलालजी! यह पंचम काल के मुनि (ऐसा कहते हैं)। यह अपने को कहीं खबर पड़े? अरे! चल! अन्धा है? समझ में आया? ऐसा लिखे अन्दर कि निश्चय समकित की खबर पड़ती नहीं, व्यवहार अपने मानते हैं, वह सच्चा है। अब व्रत और नियम ऐसा ले लो। भटको! ऐ... पोपटभाई! यहाँ तो कहते हैं, परमगुरु हमारे परमेश्वर, अपरगुरु हमारे वर्तमान गुरुपर्यन्त सब परम्परा के ले लिये। देखो! धारावाही गुरु की परम्परा हमारे टूटी नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सर्वज्ञ से जो मार्ग चला आता है, वह गुरु ने अनुभव किया, करते... करते... करते हमारे गुरु तक पहुँच गया मार्ग है। परन्तु बीच में टूटा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! उसमें है या नहीं? या ऊपर से कहते हैं?

मुमुक्षु : ऊपर से कहे तो भी सच्चा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, परन्तु इसमें है, उसमें से निकालते हैं। आहाहा!

हमारे गुरु पर्यन्त। अर्थात् पर-अपरगुरु। बस, इतना। पर-अपरगुरु की इतनी व्याख्या की। वे कैसे पर-अपर? कि निर्मल विज्ञानघन में अन्तर्निमग्न। उसका विशेषण कहा। आहाहा! तुम्हारे गुरु को पहिचान लिया तुमने? पंच महाव्रत के विकल्प पालते हैं, वे नहीं? नहीं, वे नहीं। वे मुनि हैं ही नहीं। मुनिपना तो विज्ञानघन आत्मा में

अन्तर्निमग्नपना श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र से निमग्नपना, वह मुनिपना और वह साधु है। समझ में आया? आहाहा!

अब **उनके प्रसादरूप से दिया गया...** अब गुरु, परापर गुरु तक व्याख्या हुई। अब '**प्रसादीकृत**' '**प्रसादीकृत**' यह शब्द है। **उनके प्रसादरूप से दिया गया...** उनकी मेहरबानी हमारे ऊपर हुई है। प्रसादी दी हमको। आहाहा! समझ में आया? प्रसादीरूप **प्रसादरूप से दिया गया...** और उस **शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश...** भाई! यह आत्मा ऐसा है, भाई! हों! प्रसाद, प्रसाद कहते हैं न? प्रसाद-मेहरबानी की और अनुग्रह (अर्थात्) हमारे ऊपर कृपा की। आहाहा! हमारे गुरु ने और सर्वज्ञदेव से अभी तक। उनके प्रसादरूप से दिया गया **जो शुद्धात्मतत्त्व का...** यहाँ एक व्याख्या इतनी। शुद्धात्मतत्त्व। इतनी व्याख्या, इतना उपदेश (दिया)। इतने-इतने बारह अंग और सबमें से इतना उपदेश तुमको दिया? अरे! सुन न! हमारे सर्वज्ञ परमेश्वर परगुरु और अपर गणधर से लेकर अभी तक हमारे सन्त, गुरु, उन्होंने शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। अनुग्रहपूर्वक की व्याख्या बाद में करेंगे।

उनके प्रसादरूप से दिया गया... प्रसादरूप से दिया गया। और शुद्धात्मतत्त्व। देखो! कितने ही कहते हैं न? जयधवल और धवल पहले नहीं थे। जयधवल और महाधवल नहीं थे, वहाँ तक उन्हें विशेष स्पष्ट ज्ञान नहीं था। हमको यह समझे, इसलिए विशेष (स्पष्ट ज्ञान हुआ)। अरे! सुन न! शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश, उसमें पूरे बारह अंग और चौदह पूर्व आ जाते हैं। आहाहा! समझ में आया? शुद्धात्मतत्त्व का। **प्रसादरूप से दिया गया जो शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक...** मेहरबानी से हमको (उपदेश दिया कि) भाई! यह वस्तु है। आत्मा ऐसा है न, प्रभु! ऐसे हमारे ऊपर मेहरबानी करके गुरु ने हमको (उपदेश दिया)।

देखो! बहुमान करते हैं अन्दर। समझ में आया? हमने ऐसा का ऐसा झेला है, ऐसा नहीं। बहुमान से। ओहो! यह गुरु अन्तर्मुख विज्ञानघन है और उपदेश में कहते हैं कि तू शुद्धात्मतत्त्व है। इसमें तो सब आ गया कि पर्याय अशुद्ध है। शुद्धात्मतत्त्व का (कहा उसमें) पर्याय अशुद्ध है, उसका ज्ञान आ गया। अशुद्ध है (तो) उसमें

निमित्तरूप से दूसरी चीज कर्म हो, उसका भी ज्ञान आ गया। अशुद्ध टलकर स्वभाव शुद्ध है तो शुद्ध तत्त्व प्रगट हो सकता है तो द्रव्य-गुण आये और पर्याय नयी प्रगट होती है, वह पर्याय भी उसमें आ गयी। समझ में आया? शुद्धात्मतत्त्व कहने से द्रव्य, गुण और पर्याय—विकारी-अविकारी और निमित्त सब ज्ञान उसमें आ जाता है। समझ में आया?

प्रसादरूप से दिया गया... अनुग्रहपूर्वक... भाषा तो देखो! हमारे ऊपर मेहरबानी गुरु ने की, हों! हमारे ऊपर मेहरबानी की, हों! क्या की? कि शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। बस, भगवान ने इतना ही तुम्हें सुनाया? इतना ही? हाँ, इतना। जो बारह अंग में कहने का था, वह हमको भगवान ने एक शब्द में कहा। समझ में आया? यह बारह अंग और चौदह पूर्व में कहने का (है कि) शुद्धात्मतत्त्व है, अशुद्धपने के लक्ष्य में पड़ा है, राग के लक्ष्य में पड़ा है, संयोगी चीज़ है, उसके लक्ष्य में (पड़ा है), वह छोड़ दे। भगवान आत्मा शुद्धस्वरूप विराजमान है, उसकी दृष्टि कर। मिथ्या भ्रम का नाश होगा, सम्यक्त्व की उत्पत्ति होगी, अशुद्धता की उपस्थिति है, उसका ज्ञान होगा, निमित्तरूप से कर्म है, उसका तुझे ज्ञान होगा। समझ में आया? उत्तमचन्दभाई! लो, ऐसा हमको उपदेश दिया। बड़ी-बड़ी बातें और इतने-इतने बड़े पहलू और कितने न्याय और कितनी दलीलें... सुन न अब। यह सब शुद्धात्मतत्त्व में आ जाता है। ऐ... पोपटभाई! लोग नहीं कहते? हमारे गुरु ने मन्त्र दिया। कान में फूँका। बातें करे। यहाँ कहते हैं कि हमारे गुरु अन्तर्निमग्न विज्ञानघन आत्मा में थे, हम कोलकरार करके कहते हैं, उन्होंने हमको शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। आहाहा! बस, इतनी ही बात तुझे की होगी? लादूलालजी! भाई! मक्खन था, वह हमको दिया। लो, आया।

गगनमंडल में गौआ विहाणी वसुधा दूध जमाया,
माखन था सो विरला रे पाया संतो... छाछ जगत भरमाया
अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा... ईण पद का करे रे निवेडा
इण पद का करे रे निवेडा.... गगनमंडल में गौआ विहाणी...

गगनमण्डल में आकाशवाणी निकली। वाणी में से सार ले लिया हमने।

वसुधा दूध जमाया, सहु रे सुनो भाई! वलोणु वलोवे तो... सहु रे सुनो...

वलाणुं वलोवे है न? माखन वलोणुं नहीं करते?

सहु रे सुनो भाई! वलोणुं वलोवे तो तत्त्व अमृत कोई पावे,
अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा... इन पद का करे रे निवेडा...
इन पद का करे रे निवेडा, अवधु सो जोगी गुरु मेरा....

समझ में आया? यह आनन्दघनजी ने कहा है। वह बिलौना तो विलोते हैं शास्त्र का, परन्तु उसमें से मक्खन निकालना चाहिए, वह न निकालकर अकेली छाछ निकाली। छाछ समझे तो न? छाछ। पण्डितजी! मठ्ठा... मठ्ठा। भगवान आत्मा... ऐ... न्यालभाई! कल रात्रि में दृष्टान्त दिया था। कहा, यहाँ हमारे एक सेठ है। सब साधु को कहे कि हमने तो कर-करके दिया, लो। तुम भी कर-करके देते हो। आहाहा! अरे! मार्ग तो बापू! है वैसा रहेगा। दुनिया उल्टा करेगी, इसलिए कहीं मार्ग हो जायेगा? सत्य तो सत्य ही रहेगा। सत्य कभी असत्य होगा नहीं। और असत्य से मार्ग टिकेगा? समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, ओहो! हमारे गुरु ने प्रसादी से दिया गया अनुग्रहपूर्वक उपदेश। दो शब्द कहे हैं। '**प्रसादीकृत**' '**अनुशासनजन्मा**' '**अनुशासनजन्मा**' आहाहा! भाई! भगवान आत्मा! तू तो रागरहित है न, प्रभु! तेरी पर्याय में राग है परन्तु वह तेरा स्वभाव नहीं, वह तेरा स्वभाव नहीं। तू तो शुद्धात्मा है न, भाई! पूर्णानन्द का नाथ है न! ऐसे हमारे गुरु ने हमारे ऊपर कृपा करके—मेहरबानी करके '**अनुशासन**' हमको शिक्षा दी। समझ में आया? किसकी? शुद्धात्मतत्त्व की।

अभी कितने ही कहते हैं न बहुत? भाई! पण्डितजी! टोडरमलजी को धवल का ज्ञान नहीं था। अभी आया न धवल? ऐसा कि पहले नहीं था। फलाने का नहीं था, राजमलजी को नहीं था तो उनकी बात प्रमाण कैसे माने? आहाहा! अरे! भगवान! सुन तो सही। धवल में, जयधवल और समयसार कुछ अलग कहता है? सबमें एक ही बात कहते हैं। सम्पूर्ण जैनशासन के चार अनुयोग में... समझ में आया? दस मिनिट है न? प्रकाश आड़े आता है, हों!... उन सब शास्त्रों ने, चारों अनुयोगों में केवलियों ने कहा हुआ, छद्मस्थ ने कहा हुआ, हमारे गुरु ने कहा, शुद्धात्मतत्त्व। समझ में आया? एक

शुद्धात्म कहने से सब आ गया। शुद्धात्मा। तो अशुद्धपर्याय में है, वह भी आ गया, अशुद्ध की दृष्टि है, वह भी आ गयी, अशुद्ध है तो लक्ष्य पर में है तो कर्म भी आ गये। सब चीज़ें हैं। यहाँ शुद्धात्मा का भान हुआ तो वह बाकी रही हुई अशुद्धता और निमित्त का ज्ञान रहता है। व्यवहार से जाना हुआ प्रयोजनवान ज्ञान वह रह जाता है। बस, इतना। समझ में आया?

शुद्धात्मतत्त्व का अनुग्रहपूर्वक उपदेश, हों! हमको अनुग्रह किया है। ऐसे अनुशासन। हमको अनुसरकर शिक्षा दी, ऐसा कहते हैं। हमको अनुसरकर, ऐसा कहते हैं। भाई! यह आत्मा है, हों! आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तेरा आत्मा तो यह है, हों! अन्तर आनन्दकन्द प्रभु है न! अमृत की शिला है। अतीन्द्रिय अमृत की शिला, वह आत्मा। उसमें दृष्टि कर, अनुभव कर, वह तेरा वैभव है। आहाहा! समझ में आया इसमें? अथवा पूर्व आचार्य अनुसार उपजा। ऊपर से निकाला फिर। वह सब आ गया न? अपरगुरु में आया। उनसे अथवा पूर्वाचार्य अनुसार उपजा वह स्वयं ने डाला। अपर में गुरु तक लेकर इसके अतिरिक्त दूसरे भी आचार्य सभी यही उपदेश करते थे, ऐसा कहते हैं। इसके ऊपर से लिया।

उससे जिसका (निजवैभव का) जन्म हुआ है। जिसका अर्थात् मेरे वैभव का। उससे अर्थात् ऐसे हमारे गुरु जो विज्ञानघन आत्मा में निमग्न थे हमारे सन्त गुरु, उन्होंने हमको शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया। उससे हमारी दशा में हमको अनुभवदशा, आनन्द की दशा, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा हमको प्रगट हुई, वह हमारा वैभव है। समझ में आया? कितनी बात करते हैं! अपने को खबर पड़े, ऐसा कहते हैं। यह वैभव प्रगट हुआ, यह खबर है। भगवान ऐसा कहते थे, यह खबर है, अनन्त तीर्थंकरों का यह मार्ग है, ऐसा कहते हैं, हमारे गुरु भी अन्तर्निमग्न थे, ऐसा हमको निश्चय हो गया, नि:सन्देह कहते हैं, हम पंच महाव्रत के धारी हैं, झूठ बोलते नहीं। पण्डितजी!

यह तो सन्तों की वाणी! दिगम्बर मुनि अर्थात्... आहाहा! परमेश्वर... परमेश्वर... परमेश्वर!! णमो लोए सव्व आईरियाणं। णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व

साहूणं। पाँच पद एक लाईन में हैं। एक पंक्ति। इन्होंने तो डाला भगवान से लेकर हमारे गुरु तक। सब एक ही समान? कम है न? भाई! वह आया था न? नियमसार में। नहीं, नहीं। नियमसार में आया था। भगवान में और मुनियों में हीनता देखता है, (वह) जड़ है। एक श्लोक आया है। नियमसार में। आया था न? हम जड़मति हैं कि उनमें अन्तर देखते हैं। यहाँ देखो, कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं। समझ में आया? अन्तर नहीं देखा। कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं पुकार करके कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य ने उसमें से न्याय निकाला। वैभव में से। समझ में आया? हम तो सर्वज्ञ परमेश्वर परगुरु और अपर, उनसे पूर्ण दशा न हो ऐसे भी हमारे गुरु, सबको एक लाईन में—एक पंक्ति में डालते हैं। विज्ञानघन भगवान में अन्तर्निमग्न। मुनि हैं न! अन्तर्निमग्न हैं। सम्यग्दृष्टि और पाँचवें गुणस्थान में विज्ञानघन आत्मा में मग्न हैं, मग्न हैं। विशेष निमग्न नहीं। यहाँ तो मुनि की दशा लेनी है न! सम्यग्दृष्टि और श्रावक मग्न होते हैं। यह निमग्न हैं। समझ में आया? यहाँ तो चारित्र की प्रधानता में अन्तर्निमग्न लेते हैं। चारित्र अर्थात् क्या! ओहोहो! परमेश्वरपद! जहाँ भावलिंग प्रगट हुआ अन्दर वैभव, उसकी क्या बात करना! ओहोहो! नमूना देखने को नहीं मिलता चारित्र का क्या चीज़ है, (वहाँ) किसे खबर पड़े क्या चीज़ है?

यहाँ कहते हैं कि भाई! हमारे गुरु ने हमको शुद्धात्मा का उपदेश दिया। उससे हमारा जन्म है। जन्म हमारा अर्थात् उस वैभव का। हमारा सम्यग्दर्शन निश्चय, आत्मा की अनुभव में प्रतीति। हमारे आत्मा का स्वसंवेदन अनुभव और हमारे आत्मा की चारित्रदशा और साथ में आनन्द के स्वसंवेदन का, अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन, वह हमारा वैभव, वह हमारा मार्ग, वह हमारा मोक्षमार्ग, वह हमारी दशा, ऐसे गुरु से हमको प्राप्त हुई है। समझ में आया? आहाहा! बीच में शास्त्र टूट गये और उनके ज्ञान में नहीं रहे, ऐसा नहीं कहा। हमको तो ठेठ से भगवान से मार्ग चला आता है, वही हमारे गुरु ने किया और वे हमारे गुरु थे, उसमें हमको कहा हुआ है। भले दूसरा पंथ अन्दर में से निकल गया। समझ में आया? हमको तो ठेठ वस्तु थी, उसमें से यह बात है। इसके अतिरिक्त की दूसरी बात वह इस मार्ग की नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

तीन बोल हुए। अब चौथा। कैसा है हमारा वैभव? **निरन्तर झरता हुआ-स्वाद में आता हुआ... 'अनवरतस्यन्दिसुन्दरानन्दमुद्रितामन्दसंविदात्मकस्वसंवेदनजन्मा'** ओहोहो! अमृतचन्द्राचार्य ने तो कोई गजब टीका की है! ऐसा एक शब्द यह जो है, ऐसा शब्द अभी इस स्थिति की मुनिदशा और इस स्थिति की आत्मा के वैभव की दशा का यह जो वर्णन ऐसा वर्णन, अन्यत्र कहीं नहीं है। कहते हैं कि हमारा निरन्तर झरता। अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है न भगवान आत्मा? उसका हमको अनुभव हुआ है, अनुभव हुआ है। अनु-स्वभाव को अनुसरकर हमारी दशा—वैभव प्रगट हुआ है। वह कैसा है? निरन्तर झरता हुआ। जैसे पर्वत में से पानी झरे प्रवाहरूप से अप्रतिहत गिरे, ऐसा और खण्ड न पड़े, ऐसा और त्रड (टूटक) न पड़े ऐसा। ऐसे हमारे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है—वस्तु—उसकी हमारी अन्तर अनुभवदृष्टि होती है (तो) निरन्तर आनन्द आत्मा की पर्याय में झरता है। आहाहा! '**अनवरत**' निरन्तर झरता हुआ। व्यवहार के विकल्प होने पर भी... आहाहा! हमारा आनन्द निरन्तर अन्दर से झरता है—प्रगट होता है। समय-समय में। आहाहा! छठवें की बात करते हैं। चौथे में होता है परन्तु थोड़ा, मन्द। यह अमन्द है। आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में मन्द आनन्द होता है। थोड़ा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद होता है। अनन्तानुबन्धी के अभाव जितना स्वरूप आचरण की लीनता होती है। उसका यहाँ काम नहीं। यहाँ तो मुनि से बात लेनी है। आहाहा! परन्तु उसमें वह बात जाती है, हों! सम्यग्दृष्टि और पाँचवें गुणस्थान में भी मन्द झरना शान्ति का, आनन्द का झरता है, तब उसे चौथा और पाँचवाँ गुणस्थान कहा जाता है। आहाहा! यह तो कुछ की कुछ बात। भगवान! प्रभु! तेरे मार्ग की बात, तूने कहे हुए तत्त्व... अरे! जगत के कान में न पड़े। कान में न पड़े, वह विचारे कब, सुने कब, रुचे कब और परिणमावे कब? समझ में आया? यह मुनिदशा देखो तो सही। आहाहा!

निरन्तर झरता हुआ (अर्थात् कि) स्वाद में आता हुआ... ऐसे इसकी व्याख्या की। '**अनवरतस्यन्दि**' निरन्तर झरता हुआ। पश्चात् '**सुन्दरानन्दमुद्रित**'। **जो सुन्दर आनन्द है, उसकी मुद्रा से...** हमारा स्वसंवेदन कैसा है? ज्ञान का स्वसंवेदन कैसा है? अतीन्द्रिय

आनन्द की मोहरछापवाला है। अतीन्द्रिय आनन्द की मोहर पड़ी है उसमें। यह नहीं करते? ट्रेडमार्क, सिक्का। ऐसे हमारा स्वसंवेदन—हमारा वैभव कैसा है? प्रचुर स्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन। ऐसा शब्द है। **जो सुन्दर आनन्द...** सुन्दर अर्थात् इस दुनिया के राग का आनन्द और इन्द्रों का, वह नहीं। **सुन्दर आनन्द है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुरसंवेदनरूप स्वसंवेदन...** स्वसंवेदन की इतनी व्याख्या। स्वसंवेदन कैसा? हमारा अन्तर आत्मा का वेदन कैसा? कि सुन्दर जो आनन्द, उसकी छापवाला। और प्रचुर स्वसंवेदनवाला। थोड़ा स्वसंवेदन नहीं। प्रचुर। मुनि है न? छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हैं। ऐसे वैभव से... मुझे यह वैभव प्रगट हुआ है। उससे मैं तुमको बात कहूँगा। आयेगी बात....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल ३, शुक्रवार, दिनांक - १९-०८-१९६६
गाथा - ५, ६ प्रवचन - २१

समयसार की पाँचवीं गाथा चलती है। आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं इस आत्मा का पर से—राग, विकल्प से भिन्न और अपने आनन्द आदि स्वभाव से एकत्व ऐसे आत्मा के वैभव को मैं कहूँगा। मेरे वैभव से उत्पन्न हुए भाव से कहूँगा, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? निजवैभव से कहूँगा। भगवान ने परमागम में कहा था और परम्परा सर्वज्ञ परमेश्वर ने और हमारे गुरु पर्यन्त हमको जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश हमारे ऊपर मेहरबानी करके हमको प्राप्त हुआ और हमने युक्ति से परवस्तु की एकान्तता अज्ञानियों की हमने युक्ति से खण्डन करके हमने अपने निजवैभव को प्राप्त किया है। और प्रचुर स्वसंवेदन। भगवान आचार्यों ने सर्वज्ञ से परम्परा से कहा हुआ हमने सुना—शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश, उसका हमने वेदन किया।

'प्रचुरस्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन...' प्रचुर स्वसंवेदन। प्रचुर—'अपध्ड' शब्द है। स्वसंवेदनस्वरूपरूप स्वसंवेदन। हमको आत्मा का सम्यग्दर्शन, ज्ञान में तो स्वसंवेदन आत्मा का अनुभव मन्द होता है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में आत्मा के आनन्द का स्वसंवेदनभाव मन्द होता है, थोड़ा होता है। मुनि स्वयं कहते हैं कि हम आचार्य मुनि हैं, ऐसा शब्द न लेकर, हमको वह आत्मा का निजवैभव दशा में, दशा में—पर्याय में प्रगट हुआ है, वह प्रचुर स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। आहाहा! हमको बहुत ही अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन का अनुभव प्रगट हुआ है। समझ में आया? उस समस्त वैभव से मैं कहूँगा, ऐसा कहा। यह पहले आ गया है। अन्दर शब्द में-टीका में भी ऐसा है। '**समस्तेनाप्ययं तमेकत्विभक्तमात्मानं**' समझ में आया? इस गाथा से शुरु होता है अभी तो। मैं कहूँगा। क्या कहूँगा? एकत्व-विभक्त (आत्मा)। यह छठवीं (गाथा से) शुरु होता है।

भगवान आत्मा अनन्त आनन्द आदि गुण का पिण्ड प्रभु आत्मा है। पुण्य-पाप के रागरहित हमारे स्वरूप का हमको अभेदरत्नत्रयरूप परिणमन हुआ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भेदरत्नत्रय व्यवहार वह निमित्त है, वह कहीं मूल वस्तु नहीं। भगवान आत्मा शुद्ध सच्चिदानन्द पूर्ण स्वरूप के आश्रय से हमको अन्तर में निज आनन्द का बहुत वेदन, शान्ति का, वीतरागता का प्रचुर स्वसंवेदन, प्रचुर स्वसंवेदन। मुनि के योग्य, आचार्य के योग्य जो दशा है, वह दशा हमको हमारी दशा में हमारा वैभव प्रगट हुआ है। वह हमारा वैभव है। यह वाणी कहना या विकल्प उठना, वह कहीं हमारा वैभव नहीं। समझ में आया? आहाहा!

वाणी निकलना या विकल्प अन्दर होना, वह हमारा वैभव नहीं। हमारा वैभव तो भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की निधि-खान—उसे हम राग से पृथक् करके स्वभाव का एकत्व का अनुभव किया तो हमारी दशा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो निश्चयरत्नत्रय, अभेदरत्नत्रय, अभ्यन्तर रत्नत्रय, राग से व्यवहार से निरपेक्ष रत्नत्रय का हमको वैभवपना पर्याय में प्रगट हुआ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अभेदरत्नत्रय है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभेदरत्नत्रय है यह।

मुमुक्षु : छठवें गुणस्थान में?

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवें गुणस्थान में। पण्डितजी! पण्डितजी तो कहे, रामजीभाई प्रश्न करते हैं।

देखो! इसमें—जयसेनाचार्य की टीका में भी यह शब्द है। समझ में आया? देखो! **'तं एयत्तविहत्तं एकत्व-विभक्तं अभेदरत्नत्रयैकपरिणतं मिथ्यात्वरागादिरहितं परमात्मस्वरूपमित्यर्थः'** अपने आधार भी (देते हैं)। अभेदरत्नत्रय को ही यहाँ प्रचुर स्वसंवेदन कहना चाहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : छठवें में न?

पूज्य गुरुदेवश्री : छठवें में। यह सब बातें करे, भाई! क्या करें? किसका

कहना ? कहाँ (कहना) ? ऐसा कहते हैं न ? भाई ! सामनेवाले बहुत कहते हैं। यह तो पण्डितजी ने सुना है न। पण्डितजी वाँचते नहीं। भरोसा कर लिया है। बहुत गड़बड़ करे। अरे ! भगवान ! आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन आठवें में होता है। भाई ! आत्मा स्वयं अनन्त गुण का पिण्ड आनन्दसहित पिण्ड है। उसका जब अन्तर में अनुभव और प्रतीति, राग से पृथक् करके स्वभाव में एकत्व होता है तो जितने गुण हैं, उसके सब गुणों का एक अंश निर्मल प्रगट—व्यक्त हुए बिना रहता नहीं। आहाहा ! क्या कहे ? पूरा द्रव्यस्वरूप है न ! प्रभुस्वरूप है ऐसा। परमात्मस्वरूप लिया है वहाँ। अभेदरत्नत्रय परिणति। मिथ्यात्व और राग से रहित परमात्मस्वरूप, ऐसा जयसेनाचार्य ने शब्द लिया, भाई ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा परम आत्मस्वरूप पूर्ण निर्विकल्प अकेला वीतरागस्वभाव का पिण्ड प्रभु आत्मा, उसकी हमको अभेदरत्नत्रय परिणति निश्चय स्वभाव के आश्रय में निश्चय सम्यग्दर्शन, स्वआश्रय से स्वसंवेदनज्ञान, स्वस्वरूप में लीनतारूप चारित्र, ऐसा प्रचुर स्वसंवेदनज्ञान उसे अभेदरत्नत्रय कहा जाता है। और वह कहते हैं कि वह स्वसंवेदन हमको '**अमन्द**' है, मन्द नहीं। ऐसा कहकर प्रथम भूमिका में चौथे गुणस्थान में, पाँचवें गुणस्थान में आत्मा का स्वसंवेदनपना आनन्द का अनुभव हो, परन्तु उसे मन्द होता है, थोड़ा होता है। आचार्य और मुनि की दशा में '**अमन्द**' होता है। इसलिए टीका में ऐसा शब्द प्रयोग किया '**अमन्दसंविदात्मकस्वसंवेदनजन्मा**'। आहाहा ! एक-एक शब्द में तो पूरा सिद्धान्त तत्त्व भरा है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ऐसा जो सुन्दर आनन्द निरन्तर झरता हुआ। अन्त में चौथा बोल यह है। आस्वाद में आता हुआ। भगवान आनन्द का पर्वत है, आनन्द का पर्वत है आत्मा। जैसे पर्वत में से पानी झरे, वैसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय रसस्वरूप प्रभु है। समझ में आया ? उसका हमको अन्तर्मुख होकर जो प्रचुर आनन्द प्रगट हुआ, वह निरन्तर झरता है। आहाहा ! वह अन्तर बिना झरता है। पाठ है न संस्कृत में ? '**अनवरत**', '**अनवरत**'। हमारे बड़े पण्डितजी यहाँ रखे हैं। बराबर एक-एक अक्षर का... संस्कृत यहाँ नहीं आती। वे लेंगे। समझ में आया ? आहाहा !

निरन्तर झरता हुआ-स्वाद में आता हुआ... 'अनवरतस्यन्दि' ऐसा है न यह? अर्थात् कि अन्दर आनन्द का अनुभव। अतीन्द्रिय प्रभु है, उसकी हमको दृष्टि हुई, ज्ञान हुआ, चारित्र हुआ, इसका अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद हमको आया। वह सुन्दर जो आनन्द वापस। अनुभव का वेदन किस छापवाला है? मोहरछाप है उसमें। **जो सुन्दर आनन्द है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुरसंवेदन...** अकेला जानना... जानना, ऐसा नहीं। उस जानने में प्रचुर आनन्द के अतीन्द्रिय आनन्द की मोहरछाप पड़ी है। आहाहा! लादुलालजी! यह तो अध्यात्म शास्त्र है। अकेले अध्यात्म के झरने को बतलानेवाला! आहाहा!

कहते हैं, भाई! जिसका सुन्दर आनन्द। जगत की कल्पना का सुख इन्द्रों आदि का तो दुःख और जहर है। यह परमात्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द का रस प्रभु, इसके सन्मुखता की हमको चारित्र की दशा में सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक हमारी रमणता है। इसलिए कहते हैं, सुन्दर आनन्द की मोहरछाप पड़ी है। अकेला वेदन-वेदन करे और आनन्द न हो, वह आत्मा का वेदन है ही नहीं। आहाहा! आहाहा! उस वेदन की छाप में सुन्दर आनन्द की मोहरछाप है। अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन साथ में न हो तो वह स्वसंवेदन ही नहीं। स्वसंवेदन की व्याख्या सुन्दर आनन्द की मोहरछाप है। आहाहा! समझ में आया? देखो न! **'सुन्दरानन्दमुद्रित'।** मुद्रा-मोहर लगायी है भगवान के घर की—आत्मा के घर की, हों! अन्दर। समझ में आया? भगवान आत्मा का सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होने पर सम्यक् स्वरूप के आचरणरूप से चौथा गुणस्थान प्रगट होने पर भी उस स्वसंवेदन में सुन्दर आनन्द की मोहरछाप है। आहाहा! और यह तो चारित्र की दशावाला स्वसंवेदन है। इसलिए कहते हैं कि हमको तो **'अमन्द'** प्रचुर स्वसंवेदन (प्रगट हुआ है), उसमें सुन्दर आनन्द की छाप लगायी है। आहाहा! अरे! बात यह इसके घर की बात सुनने को मिलती नहीं। वह कब विचार करे, कब रुचि करे और कब परिणमावे। सत् का विरह पड़ गया। समझ में आया? बाहर से लगायी। ऐसा करो और यह करो और यह व्यवहारश्रद्धा और व्यवहार यह। बापू! व्यवहार तो सब बन्ध का कारण विकल्प है। वह भी निश्चय का ऐसा भान हो, तब ऐसे विकल्प को व्यवहार कहा जाता है। वरना व्यवहार-फ्यवहार कैसा? अन्ध को व्यवहार कैसा? निश्चय का भान नहीं वहाँ। कहो, देवीलालजी!

कहते हैं, यह ऐसा प्रचुर स्वसंवेदन, **उससे जिसका...** अर्थात् हमारे वैभव की पर्याय है। पर्याय की बात है यह, हों! द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। परन्तु हमारा वैभव, हमारी दशा अनुभव में इस प्रकार से प्रगटी है। ऐसे जिस-जिस प्रकार से मेरे ज्ञान का वैभव... ऐसा कहा है। अन्तिम शब्द है सही न! '**यः कश्चनापि ममात्मनः**'। है न? किसी भी प्रकार से। चार तो मैंने कहे, परन्तु किसी भी प्रकार से कोई मुनियों को किसी शब्द का ख्याल आ गया हो और हमारा वेदन उसमें हुआ हो हमारे कारण से तो वह किसी भी प्रकार से। ऐसे जिस-जिस प्रकार से हमारे ज्ञान का वैभव है... समझ में आया? उस समस्त वैभव से दर्शाता हूँ। उस समस्त वैभव से दिखलाता हूँ। दो शब्द आयेंगे। पहले कहेंगे कि '**दाएहं**'—दिखलता हूँ, इतनी बात। '**जदि दाएज्ज**'। दिखलाता हूँ और यदि, ऐसी बात, ऐसा कहते हैं। '**जदि दाएज्ज**' यदि दर्शाऊँ। स्वयमेव अपने अनुभव प्रत्यक्ष से परीक्षा करके प्रमाण करना। तुम्हारे हे श्रोताओं! मैं जो यह बात करता हूँ कि भगवान आत्मा अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु है, उसे राग से पृथक् करके स्वसंवेदन से अनुभव करते हैं, यह बात तुमको कहूँगा। तुम भी स्वयमेव—अपने आप से (अर्थात्) हमारे शब्द और हमारे अवलम्बन बिना। दर्शाऊँ ऐसा कहा है, दिखलाऊँ ऐसा कहा... समझ में आया? परन्तु यदि दिखाऊँ तो, वाणी द्वारा यह बात आवे तो स्वयमेव, हे आत्मा! हे श्रोताओ! तुम अपने आप अपने अनुभव प्रत्यक्ष से परीक्षा (करना)। पाठ में इतने शब्द प्रयोग किये हैं। समझ में आया? '**स्वयमेव स्वानुभवप्रत्यक्षेण परीक्ष्य प्रमाणीकर्तव्यम्**' इतने शब्द पड़े हैं। आहाहा! एक-एक शब्द में (गम्भीरता है)। हे जीवो! तुम्हारे करने का है तो यह है। समझ में आया?

यह आत्मा बालक हो, वृद्ध हो, नारकी हो, नारकी तो यहाँ सुनने आते नहीं, परन्तु कोई भी प्राणी हो तो हम यह कहेंगे, उसका सार तुमको यह सुनकर अन्तर में भगवान आत्मा को अपने अनुभव—तेरी जाति के आनन्द के अनुभव से प्रत्यक्ष से, हों! प्रत्यक्ष करना। आहाहा! वह राग का अवलम्बन न रहे। मन का न रहे, सीधे मति-श्रुतज्ञान आत्मा के वेदन को पकड़ता हुआ स्व का आश्रय ले, ऐसे अनुभव को अनुभव प्रत्यक्ष से परीक्षा, **अनुभवप्रत्यक्ष से परीक्षा...** भाषा देखो! दूसरे प्रकार से उसकी परीक्षा

है नहीं। समझ में आया इसमें? सूक्ष्म पड़े परन्तु सुनकर समझना तो पड़ेगा या नहीं इसे? आहाहा!

पूरा प्रभु विराजता है न, भाई! जिसमें अनन्ता अनन्त शुद्ध गुण का पिण्ड वस्तु में वास किया हुआ है। वह वस्तु आत्मा उसमें अनन्ता अनन्त गुणों का वास है। उसे वर्तमान दशा में उसका आश्रय करके प्रत्यक्षरूप से अनुभव प्रत्यक्ष से परीक्षा, अनुभव प्रत्यक्ष से परीक्षा करना। राग और अकेले तर्क से और विकल्प से उसकी परीक्षा हो, ऐसा नहीं है। आहाहा! सेठी!

अनुभव रस में रोग न सोगा, लोकवाद सब मेटा,
अनुभव रस में रोग न सोगा, लोकवाद सब मेटा,
केवळ अचल अनादि अबाधित, शिवशंकर का भेटा,
अबधू अनुभव कलिका जागी, मति मेरा आतम सुमरन लागी।
मति मेरी आतम सुमरन लागी।
अबधू अनुभव कलिका जागी,
अनुभव रस में रोग न सोगा, लोकवाद सब मेटा,
दुनिया के झगड़े दुनिया के पास रहे।

'केवल अचल अनादि अबाधित, शिवशंकर का भेटा' 'केवल अचल अनादि अबाधित, शिवशंकर का भेटा' शिव (अर्थात्) निरुपद्रव स्वरूप शंकर आनन्द का कन्द प्रभु। समझ में आया? उसका अन्तर वेदन करके प्रमाण करना, हम कहें इस बात को, ऐसा कहते हैं। आहाहा! परन्तु बहुत जवाबदारी दी एकदम! देवीलालजी! भाई! एकदम कहो या धीरे से कहो, वस्तु तो यह करने जैसी है। समझ में आया इसमें?

अनुभव रत्न चिन्तामणि, अनुभव है रसकूप
अनुभव मार्ग मोक्ष का, अनुभव मोक्षस्वरूप रे...
गुणवंता रे ज्ञानी अमृत वरस्या रे पंचम काल में...

भगवान आत्मा अमृत का सागर प्रभु है। आहाहा! कहते हैं कि हे जीवो! आचार्य महाराज कुन्दकुन्दाचार्यदेव शिक्षा (करते हैं)। आहाहा! भाई! यहाँ तो ऐसे ही

जीव लिये हैं, प्रमाण करना। दो बातें ली। मैं दिखाऊँगा, ऐसा पहले कहा। पहले साधारण बात की। '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं**' इतना। परन्तु '**जदि दाएज्ज**' यदि दिखाने में आवे, तू वहाँ सुनता हो और बैठा हो तो प्रमाण करना। '**जदि दाएज्ज पमाणं**'। प्रमाण करना। यह प्रमाण किस प्रकार से? अनुभव प्रत्यक्षप्रमाण से प्रमाण करना। अनुभव प्रत्यक्षप्रमाण, वही प्रमाण सबमें प्रधान प्रमाण है। बाकी सब प्रमाण गौण हैं। समझ में आया? जयधवल में आता है न यह। यह श्लोक है। यहाँ भी कहेंगे। ... प्रधान है। सब प्रमाण में धर्मात्मा का अनुभव, वह प्रधान प्रमाण है। यह जयधवल में श्लोक है। समझ में आया? यहाँ कहाँ सब पुस्तकें कहाँ से उपस्थित हों? यह जयधवल में है। सब प्रमाणों में सन्तों का अन्तर अनुभव, वह प्रधान प्रमाण है। वह प्रमाण कहे, उसमें सब बात आ गयी। (बाकी सब) बाह्य बातें हैं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि हे आत्मा! हे भगवान! हम राग के-पुण्य के व्यवहाररत्नत्रय के राग से भिन्न बतायेंगे। और भगवान आत्मा वस्तु, उसके अनन्त-अनन्त शान्त, आनन्दरस से अभिन्न है—ऐसा बतायेंगे। आत्मा स्वभाव से अभिन्न है, ऐसा कहते हैं और राग से वह भिन्न है। यह कहेंगे, उसमें तुम तुम्हारे अनुभव प्रमाण से प्रत्यक्ष हाँ करना। अकेली हाँ और श्रद्धा और ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। महाराज भगवान कहे वह सच्ची बात है, हों! ऐसा नहीं। वहाँ तक वह वस्तु प्रमाण नहीं, ऐसा है। समझ में आया? यह आयेगा। देखो न छठवीं गाथा में आयेगा। ऐसे ज्ञायक... ज्ञायक... शुद्ध... शुद्ध करे, ऐसा नहीं होता। कहेंगे छठवीं गाथा में। शुद्ध, उसका जब परद्रव्य से लक्ष्य छोड़कर उपासना करे कि यह शुद्ध आत्मा ज्ञायक है और ऐसी दशा हो, तब उसे शुद्ध है, अज्ञानी को ऐसे शुद्ध-शुद्ध माने शुद्ध है, ऐसा होगा शुद्ध? समझ में आया? छठवीं गाथा में कहेंगे। भगवान! आप शुद्ध किसे कहते हो कि जिसका हमारे अनुभव करना? भाई! वह शुद्ध प्रभु आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द की उपासना—सेवा करे, तब उसे यह शुद्ध है, ऐसा कहा जाता है। शुद्ध की सेवा बिना यह शुद्ध है, ऐसा इसे ख्याल आता नहीं। सेठी! भाई! यहाँ तो बात ऊँचे में ऊँची जो सत्य है, वह है। उसमें हम आत्मा मानते हैं, यह मानते हैं, ऐसे व्यवहार-फ्यवहार की बात उसमें है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, हम कहेंगे परन्तु उसका फल तुझे ऐसा आना चाहिए। अपने अनुभव प्रत्यक्ष से भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु वह राग से, विकल्प से परसन्मुख के विकल्पों की वासना से स्वसन्मुख स्वभाव से भगवान भरपूर आत्मा, उसके सन्मुख होकर अनुभव प्रत्यक्ष से, अपने अनुभव से, सामने का अनुभव नहीं, तेरा अनुभव वह भी प्रत्यक्ष। ऐसा कि कुछ लगता है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? परीक्षा, इस प्रकार से परीक्षा करके। आनन्दस्वरूप यह है, (ऐसा अनुभव करके)।

अर्थात् क्या? पर से विभक्त और स्व से एकत्व स्वस्वभाव से द्रव्य एकत्व, वस्तु अपने शुद्ध स्वभाव से एकत्व अभेद है, पर से भिन्न है। ऐसा तुम्हारे परीक्षा करके प्रमाण करना। अर्थात् कि तुम्हारी दशा में यह दशा प्रगट हो, प्रमाण प्रत्यक्ष अनुभव, वह ऐसा अनुभव हो कि यह आनन्द का वेदन आया कि यह पूरा आत्मा आनन्दमय है। समझ में आया? ऐसे परीक्षा, अनुभव के प्रमाण से परीक्षा करना। 'शुद्धता विचारे ध्यावे, शुद्धता में केलि करे।' आता है न?

वस्तु विचारत ध्यावतैं मन पावै विश्राम,
रस रस रस रस रस रस स्वादत सुख उपजै, अनुभव ताको नाम।

समझ में आया? रस स्वादत। आत्मा का रस। आत्मा का रस कैसा होगा? यह वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श ऐसा रस होगा? भगवान आत्मा महा परमात्मा स्वरूप ही साक्षात् परमात्मा है। द्रव्य वह तो साक्षात् द्रव्यस्वरूप परमात्मा है। पर्याय में साक्षात् करना, वह परमात्मा व्यक्त है। समझ में आया? 'वस्तु विचारत ध्यावतैं मन पावै विश्राम'। विकल्प में विश्राम पाया। 'रस स्वादत' आत्मा के आनन्द के रस के स्वाद में सुख उपजे। 'अनुभव ताको नाम' ऐसे अनुभव से प्रमाण करना, कहते हैं। समझ में आया? यह बनारसीदास का श्लोक है। ओहोहो! गाथा वह भी...! चार बोल से अनुभव हुआ उनको। तीन निमित्त और चौथा उपादान। निमित्त में भी ज्ञान तो हमारा था न, ऐसा कहते हैं। और वेदन हुआ हमको उसमें से हमारी दशा जन्मी। पर्याय जन्मी। द्रव्य में से पर्याय जन्मी। आनन्द जन्मा, सम्यग्ज्ञान जन्मा, शान्ति जन्मी, उत्पाद हुआ, द्रव्य कायम रहा, उसके आश्रय से उत्पाद हुआ। उस हमारे वैभव को हम इसमें—शास्त्र में कहेंगे। हम

कहेंगे तो तत्प्रमाण तू प्रमाण करना। ओहोहो! परन्तु यह पंचम काल के साधारण प्राणी को प्रभु! तुमने इतनी अधिक जवाबदारी! सुनना और ऐसा करना इतनी (जवाबदारी) डालते हो! ऐ.. देवीलालजी! तो कहते हैं, आत्मा में तेरी योग्यता है। सुन तो सही। भगवान आत्मा परिपूर्ण आनन्द से छलाछल लबालब भरा हुआ है। भगवान सिद्ध को जो अनन्त-अनन्त चतुष्टय में अतीन्द्रिय आनन्द एक समय में अनन्त आता है, दूसरे समय में ऐसा, तीसरे समय में ऐसा, अनन्त समय में ऐसा, ऐसा सब अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड वह आत्मा के आनन्दगुण में पड़ा है। आहाहा! अरे! स्वभाव है, उसका क्या कहना? जिसका स्वभाव है, उसका माप क्या? उसे हद क्या? उसकी परिमितता क्या? उसकी विपरीतता क्या? समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा महिमावन्त स्वभाव से अभेद और राग से भेद कहें तो प्रत्यक्ष तू भेदज्ञान करके अनुभव करना। आहाहा! इतनी जवाबदारी! देवीलालजी! ऐसे धार लेना और बात कर लेना और फिर कहना, ऐसा नहीं। आहाहा! यदि कहीं अक्षर मात्रा अलंकार... मूल पाठ तो यह है, '**चुक्केज छलं ण घेत्तव्वं**'। '**घेत्तव्वं**' में अर्थ भरा है। '**घेत्तव्वं**' का। क्या कहते हैं? आचार्य स्वयं अमृतचन्द्राचार्य '**घेत्तव्वं**' का अर्थ करते हैं।

कुछ कहते-कहते थे कोई शब्द में, कोई अक्षर में, कोई विभक्ति में, अलंकार में कोई अन्तर पड़ जाये तो छल ग्रहण करने में सावधान नहीं होना। पाठ क्या है? '**यदि तु स्खलेयं तदा तु न छलग्रहणजागरूकैर्भवितव्यम्**'। '**जागरूक**' का अर्थ क्या? तुझे उस जाति का क्षयोपशम वर्तमान में हो और तुझे ख्याल आ जाये कि इसमें भूले, शब्द में भूले। ऐसा ख्याल आ जाये (तो) '**जागरूक**' नहीं होना, अटकना नहीं वहाँ। उसमें हमारी प्रधानता नहीं। आहाहा! समझ में आया? हम जो अन्तर की बात करते हैं, उस भाव को तू अन्दर में प्राप्त करना। कोई विभक्ति, शब्द, शब्दार्थ, व्याकरण में कहीं भूल रह जाये तो पाठ ऐसा है कि '**छलं ण घेत्तव्वं**'। तू ग्रहण नहीं करना, पकड़ना नहीं। इसलिए टीकाकार ने कहा '**छलग्रहणजागरूकैर्भवितव्यम्**'। उसमें जागृत नहीं रहना। तुझे ख्याल आ जाये (तो) छोड़ देना, इतनी बात। समझ में आया? जीव का क्षयोपशम है, उस जाति का अधिक किसी का, वह कहीं मूल चीज़ नहीं। और तेरे ख्याल में (आ) जाये कि भूतकाल का इस वचन को ऐसा हो गया और ढींकणा का ऐसा हो गया

और फलाना का ऐसा हो गया, अक्षर ऐसा हो गया, युक्ति में ऐसा लग गया। तो कहते हैं कि उसके ऊपर तेरा क्षयोपशम हो कदाचित् पकड़ में (तो) **'छलं ण घेत्तव्वं'** पकड़ रखना नहीं, हों! वहाँ खड़ा रहना नहीं। सेठी!

जयसेनाचार्य ने तो ऐसा कहा कि पकड़कर दुर्जनवत् वहाँ खड़ा नहीं रहना। दुर्जनवत्, ऐसा कहा है। जयसेनाचार्य की टीका में दुर्जनवत (लिखा है)। अमृतचन्द्राचार्य ने इतना (कहा कि) **'छलग्रहणजागरूकैर्भवितव्यम्'।** बस, इतना। मीठी भाषा से (कहा है)। भाई! हमारे आत्मा की बात, विकल्पमात्र गुण-गुणी के भेद का विकल्प, परन्तु उससे पार प्रभु है और अनन्त-अनन्त आनन्द आदि शान्ति के सागर से भगवान अभेद एकरूप स्थित है। वह बात हमारे कहना है। उस बात में तू जागृत होकर अनुभव करना। परन्तु कोई ऐसी धारणा में अटक गया (और) वहाँ तेरा लक्ष्य रहा करेगा तो वह वास्तविक बात है, वह तुझे पकड़ने में नहीं आयेगी। वह रह जायेगी। वहाँ चला जायेगा। यह व्याकरण और न्यायशास्त्र का ऐसा एक शास्त्र है और उसमें से यह अन्तर पड़ा और ढींकणा पड़ा। सेठी! आहाहा! शब्द है कैसा? **'जदि दाएज्ज पमाणं'** ऐसा एक ओर रख दिया। **'चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं'।** कहीं शब्दों में, हों! अनुभव में नहीं। वह तो प्रमाण बराबर है हमारा। परन्तु शब्द में, व्याकरण में, विभक्ति में, भूतकाल में भविष्य आ गया और भविष्य में कोई वर्तमान काल आ गया, ऐसी कोई शब्द में वाणी आयी (तो) **छल (दोष) ग्रहण करने में सावधान मत होना।** सावधान मत होना। तुझे ख्याल आ जाये (तो) खड़ा नहीं रहना। उसकी महिमा नहीं ग्रहण करना, उसकी महिमा नहीं ग्रहण करना। आहाहा! कितनी बात कहना चाहते हैं! तू उसकी महिमा में जाना, ऐसी महिमा में नहीं। हमको कितना बोलना आया। इतना तो इनको बोलना नहीं आता। शब्दों की शैली नहीं, फलाने में ऐसा अलंकार चाहिए, ऐसा चाहिए, ऐसा शब्द ऐसा है और ऐसा है। बहुत अच्छी बात है, भाई!

कुन्दकुन्दाचार्य ने इतना कहा, **'चुक्केज्ज छलं ण घेत्तव्वं', 'ण घेत्तव्वं'।** पकड़ नहीं रखना। तेरे ख्याल में आ जाये। अर्थात् आचार्य ने शब्द ऐसा ही रखा है। समझ में आया? हमारी बात में राग और पुण्य से और विकार से तथा कर्म से और शरीर से

अत्यन्त भिन्न, भगवान अपनी चीज़ में अनन्त गुण से अभिन्न रहकर प्रभु स्थित है, उसका अनुभव करने का हमारे तो यहाँ प्रयोजन है। इसके अतिरिक्त कोई प्रयोजन नहीं। और अनुभव हुआ, उसे सब आ गया, वह केवलज्ञान ले लेगा।

एक बार आये थे न? खूबचन्दजी! प्रश्न हुआ था। वह आता है न? पूर्व ज्ञान हो उसे श्रेणी होती है। पण्डितजी! तत्त्वार्थसार में, तत्त्वार्थसूत्र में पूर्ववित। पूर्ववित होता है, वह श्रेणी माँडता है। ऐसा कि शब्द का ज्ञान तो पहला होना चाहिए। वे और प्यारेलाल भगत थे न? दोनों आये थे। दो-दो घण्टे दोनों आते थे। (संवत्) १९९२ के वर्ष में। शब्दों का... कहा, शब्दों का नहीं, भाई! यहाँ शब्द की बात नहीं। शब्द का ज्ञान चाहिए उसे। अरे! शब्द का ज्ञान न हो और अनुभव में चढ़ जाये। सुन न! शब्द का ज्ञान, वह तो पूर्ववित कहा है तत्त्वार्थसूत्र में, वह तो किसी को बहुत उत्कृष्ट ज्ञान उघड़ गया हो तो उसके लिये बात की है। बाकी तो अन्तर में समिति, गुप्ति अर्थात् कि राग से भिन्न और स्वभाव में—स्वरूप में एकाकार उसका उसे ज्ञान अन्दर हो गया। उस ज्ञान में सब ज्ञान आ गया। केवलज्ञान को पकड़ने का, उत्पन्न करने का वह बीज है। समझ में आया? दूसरा पठन आवे, न आवे, बोलना आवे न आवे; कहना आवे, न आवे, उसकी लहजत और... समझ में आता है न? वह तो जड़ की दशा है। विकल्प उठता है, वह आत्मा को बन्ध का कारण है, नुकसान का कारण है। दूसरा समझे तो उससे यहाँ लाभ हो, यह बात है नहीं।

मुमुक्षु : प्रभावना हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभावना, कौनसी प्रभावना? प्रभावना अपनी होती होगी या पर में होती होगी, वह तो निमित्त की बातें हैं। विकल्प उठा है उपदेश का, वाणी वाणी के कारण से, उपदेश उपदेश के कारण से (होता है)। विकल्प उठा वह रागस्वरूप है। उस राग के कारण से स्व को लाभ है, ऐसा नहीं है। उस राग के कारण से पर को लाभ है, ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो वीतरागमार्ग है, भाई! वे कहें, अपने बहुत प्रभावना करो और उसमें से अपने को लाभ होगा। वहाँ वह धर्म... उससे यहाँ लाभ होगा? दृष्टि में ही बड़ी शल्य है। दूसरे बहुत प्राप्त करें, और उसमें से अपने को कुछ हिस्सा मिले,

ऐसा होगा या नहीं ? अपने राग करते हैं और उसमें शुभभाव में महापुण्य बँध जायेगा और उसके कारण से अपने को कुछ लाभ हो जायेगा। धूल भी नहीं, सुन न! विकल्प उठा है, वह बन्ध का कारण है। वह हमारा वैभव नहीं, ऐसा स्वयं पहले कहा है। समझ में आया ? आहाहा!

भाई! यहाँ ऐसे **शास्त्रसमुद्र के बहुत से प्रकरण हैं, इसलिए यहाँ स्वसंवेदनरूप अर्थ प्रधान है;...** पदार्थ तो यह निकालना है और यह वेदन, यह वस्तु कहने की है। बाकी दूसरी बात धारणा बहुत हो, कम हो, उसके साथ कुछ स्वसंवेदन को सम्बन्ध नहीं है। प्रवीणभाई! यहाँ तो स्वसंवेदन अर्थात् आत्मा वस्तु स्वयं प्रभु, उसका अन्तर्मुख होकर वेदन करना, वह अनुभवप्रधान स्वप्रमाण में बड़ा प्रमाण यह है। **इसलिए अर्थ की परीक्षा करनी चाहिए।** यह स्वसंवेदन के अनुभव से परीक्षा करना। यह आचार्य कहते हैं, वह कैसे है, यह अन्तर में अनुभव करके परीक्षा करना। समझ में आया ?

भावार्थ :- आचार्य आगम का सेवन,... भगवान के शास्त्रों का सेवन अर्थात् वे कहते हैं वैसे भाव का अनुभव, भान। **युक्ति का अवलम्बन,...** खोटी, वीतराग के अतिरिक्त एकान्त माननेवाले। तत्त्व के साथ मेल न खाये, ऐसों के साथ युक्ति के अवलम्बन द्वारा खोटा सिद्ध किया कि नहीं, ऐसा नहीं होता। पर्याय नहीं होती, ऐसा नहीं होता; द्रव्य नहीं हो, ऐसा नहीं होता। विकार न हो, ऐसा नहीं होता। विकार टल सकता है, पर्याय परिणम सकती है इत्यादि युक्ति के अवलम्बन द्वारा। **परापर गुरु का उपदेश...** पर अर्थात् सर्वज्ञ प्रभु, अपर अर्थात् गणधर से लेकर हमारे गुरु का उपदेश हमको मिला। **और स्वसंवेदन...** हमारा अनुभव। **यों चार प्रकार से उत्पन्न हुए...** देखो! उत्पन्न हुए वैभव की बात है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। हमारे आत्मा में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, शान्ति, अभेदरत्नत्रय उत्पन्न हुए हैं, वे अपने ज्ञान के वैभव से—मेरे ज्ञान के वैभव से कहूँगा। भगवान ने कहा है, वह कहा है, परन्तु मुझे यहाँ वेदन में आया हो, तब मैं कहूँ न! समझ में आया ?

आनन्दघनजी एक बार कहते हैं, 'मनडो दुरााध्य तें वश आण्युं, ते आगमथी मति आणुं' आगम से कहूँ।

'मनडो दुराराध्य तें वसि आण्युं, ते आगमथी मति आणुं,
'आनंदघन' प्रभु मारूँ आणुं, तो सांचूं करीने जाणुं हो,
हो कुंथुजिन-मनडुं किम ही बाजे हो।
आगम आगमधरने हाथे,

हाथ में पड़े हों आगम, बोलता हो। 'आगम आगमधरने हाथे' सर्प जैसे टेढ़ा चले... सर्प होता है न सर्प? उसी प्रकार यह मनड़ा मेरा टेढ़ा चलता है। शीघ्र बाहर में चला जाता है। ऐसे मन को वश करने में नाथ! आपने वश किया। यह हमको खबर है परन्तु वह आगम से जाना।

आनंछघन प्रभु मारूं आणुं तो, आनंदघन प्रभु मारूँ आणुं तो
साचुं करीने रे जाणुं, कुंथुजिन मनडुं किम ही न बाजे...

प्रभु! मैं यहाँ मन से रुककर स्थिर होऊँ तब मुझे ख्याल आवे कि आपने मन को रौंधा और परमात्मा हुए। मेरे लिये तो मेरा अनुभव काम आवे। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, शुद्धात्मा का मेरे वैभव से (कथन करूँगा)। देखो! **अपने ज्ञान के वैभव से एकत्व-विभक्त शुद्ध आत्मा का स्वरूप दिखाते हैं। हे श्रोताओं! उसे अपने स्वसंवेदन-प्रत्यक्ष से प्रमाण करो; यदि कहीं किसी प्रकरण में भूल जाऊँ तो उतने दोष को ग्रहण मत करना।** यह तो फिर अर्थ में (ऐसा कहा है), दोष कहाँ, दोष ही नहीं। **यहाँ अपना अनुभव प्रधान है;...** वस्तु की दृष्टि, ज्ञान और अनुभव, वह प्रधान है। **उससे शुद्ध स्वरूप का निश्चय करो।** अनुभव से अन्तर के ज्ञान द्वारा अनुभव करो। बालक, आठ वर्ष की कन्या भी कर सकती है, एक मेंढ़क भी अनुभव कर सकता है। आहाहा! आत्मा है न! आठ वर्ष का बालक स्त्री-कन्या। वह कन्या कब (थी)? वह तो आत्मा है अन्दर। मेंढ़क इतना। ददुर। ददुर क्या कहते हैं? मेंढ़क। वह शरीर है मेंढ़क। आत्मा कहाँ मेंढ़क था। समझ में आया? भगवान के समीप ऐसे सुनता हो अन्दर उतर जाये। रागरहित मेरी चीज़ चिदानन्द प्रभु हम हैं। वह मेंढ़क भी... समझ में आया? अनुभव से प्रमाण करके भगवान के वचन प्रमाण करता है। **ऐसा कहने का आशय है।** लो! यह पाँच गाथा पूरी हुई।

★ ★ ★

गाथा - ६

कोऽसौ शुद्ध आत्मेति चेत् –

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव।।6।।

नापि भवत्यप्रमत्तो न प्रमत्तो ज्ञायकस्तु यो भावः।
एवं भणन्ति शुद्धं ज्ञातो यः स तु स चैव।।6।।

यो हि नाम स्वतः सिद्धत्वेनानादिरनन्तो नित्योद्योतो विशदज्योतिर्ज्ञायक एको भावः स सन्सारावस्थायामनादिबन्धपर्यायनिरूपणया क्षीरोदकवत्कर्मपुद्गलैः सममेकत्वेऽपि द्रव्य–स्वभावनिरूपणया दुरन्तकषायचक्रोदयवैचित्र्यवशेन प्रवर्तमा–नानां पुण्यपापनिर्वर्तकानामुपात्त–वैश्वरूप्याणां शुभाशुभभावानां स्वभावेनापरिणम–नात्प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च न भवति।

एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते।

न चास्य ज्ञेयनिष्ठत्वेन ज्ञायकत्वप्रसिद्धेः दाह्यनिष्ठदहनस्येवाशुद्धत्वं, यतो हि तस्याम–वस्थायां ज्ञायकत्वेन यो ज्ञातः स स्वरूपप्रकाशनदशायां प्रदीपस्येव कर्तृकर्मणोरनन्यत्वात् ज्ञायक एव।।6।।

अब यहाँ यह प्रश्न उठता है कि ऐसा शुद्ध आत्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं:–

नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं, जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वोहि है।।6।।

गाथार्थ : [यः तु] जो [ज्ञायकः भावः] ज्ञायक भाव है वह [अप्रमत्तः अपि] अप्रमत्त भी [न भवति] नहीं और [न प्रमत्तः] प्रमत्त भी नहीं है,– [एवं] इस प्रकार [शुद्धं] इसे शुद्ध [भणन्ति] कहते हैं; [च यः] और जो [ज्ञातः] ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ [सः तु] वह तो [सः एव] वही है, अन्य कोई नहीं।

टीका : जो स्वयं अपने से ही सिद्ध होने से (किसी से उत्पन्न हुआ न होने से)

अनादि सत्तारूप है, कभी विनाश को प्राप्त न होने से अनन्त है, नित्य-उद्योतरूप होने से क्षणिक नहीं है और स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है ऐसा जो ज्ञायक एक 'भाव' है वह संसार की अवस्था में अनादि बन्धपर्याय की निरूपणता से (अपेक्षा से) क्षीर-नीर की भाँति कर्मपुद्गलों के साथ एकरूप होने पर भी द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाय तो दुरन्त कषायचक्र के उदय की (-कषायसमूह के अपार उदयों की) विचित्रता के वश से प्रवर्तमान जो पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले समस्त अनेकरूप शुभाशुभभाव उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता (ज्ञायकभाव से जड़भावरूप नहीं होता) इसलिए प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है; वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ 'शुद्ध' कहलाता है।

और जैसे दाह्य (-जलने योग्य पदार्थ) के आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है; क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ वह स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी, दीपक की भाँति, कर्ताकर्म का अनन्यत्व (एकता) होने से ज्ञायक ही है-स्वयं जाननेवाला है इसलिए स्वयं कर्ता और अपने को जाना इसलिए स्वयं ही कर्म है। (जैसे दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है, और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है, अन्य कुछ नहीं; उसी प्रकार ज्ञायक का समझना चाहिए।)

भावार्थ : अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। उसमें मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप नहीं होता, मात्र परद्रव्य के निमित्त से अवस्था मलिन हो जाती है। द्रव्य-दृष्टि से तो द्रव्य जो है वही है, और पर्याय (अवस्था)-दृष्टि से देखा जाये तो मलिन ही दिखायी देता है। इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्वमात्र है; और उसकी अवस्था पुद्गलकर्म के निमित्त से रागादिरूप मलिन है, वह पर्याय है। पर्यायदृष्टि से देखा जाये तो वह मलिन ही दिखायी देता है और द्रव्यदृष्टि से देखा जाय तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है; यह कहीं जड़त्व नहीं हुआ। यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है। जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं वे परद्रव्य की संयोगजनित पर्याय हैं। यह अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है, व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है, उपचार है। द्रव्यदृष्टि शुद्ध

है, अभेद है, निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है। इसलिए आत्मा ज्ञायक ही है; उसमें भेद नहीं हैं इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। 'ज्ञायक' नाम भी उसे ज्ञेय को जानने से दिया जाता है; क्योंकि ज्ञेय का प्रतिबिम्ब जब झलकता है तब ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है। तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है, क्योंकि जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर ज्ञायक ही है। 'यह जो मैं जाननेवाला हूँ सो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं' – ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्ता स्वयं ही है, और जिसे जाना वह कर्म भी स्वयं ही है। ऐसा एक ज्ञायकत्वमात्र स्वयं शुद्ध है। – यह शुद्धनय का विषय है। अन्य जो परसंयोगजनित भेद हैं वे सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषय हैं। अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी शुद्धद्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है इसलिए व्यवहारनय ही है ऐसा आशय समझना चाहिए।

यहाँ यह भी जानना चाहिए कि जिनमत का कथन स्याद्वादरूप है, इसलिए अशुद्धनय को सर्वथा असत्यार्थ न माना जाये; क्योंकि स्याद्वादप्रमाण से शुद्धता और अशुद्धता-दोनों वस्तु के धर्म हैं और वस्तुधर्म वस्तु का सत्त्व है; अन्तर मात्र इतना ही है कि अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है। अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा है क्योंकि – अशुद्धनय का विषय संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है; जब स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है तब संसार छूटता है और क्लेश दूर होता है। इस प्रकार दुःख मिटाने के लिये शुद्धनय का उपदेश प्रधान है। अशुद्धनय को असत्यार्थ कहने से यह न समझना चाहिए कि आकाश के फूल की भाँति वह वस्तुधर्म सर्वथा ही नहीं है, ऐसा सर्वथा एकान्त समझने से मिथ्यात्व हाता है; इसलिए स्याद्वाद की शरण लेकर शुद्धनय का आलम्बन लेना चाहिए। स्वरूप की प्राप्ति होने के बाद शुद्धनय का भी आलम्बन नहीं रहता। जो वस्तुस्वरूप है वह है-यह प्रमाणदृष्टि है। इसका फल वीतरागता है। इस प्रकार निश्चय करना योग्य है।

यहाँ, (ज्ञायकभाव) प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है ऐसा कहा है। वह गुणस्थानों की परिपाटी में छट्ठे गुणस्थान तक प्रमत्त और सातवें से लेकर अप्रमत्त कहलाता है। किन्तु यह सब गुणस्थान अशुद्धनय की कथनी में है; शुद्धनय से तो आत्मा ज्ञायक ही है।

गाथा - ६ पर प्रवचन

अब यह छठी का लेख बदलाये न बदले। लोगों में कहावत है न? छठी के लेख नहीं कहते? उसी प्रकार यह छठी गाथा के लेख ज्ञायक के भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा, वह भाव जगत में त्रिकाल अफर रहता है। बदलाये नहीं बदलता। देखो! सहज ही छठी गाथा आ गयी है यहाँ। समझ में आया? तब प्रश्न उत्पन्न होता है। '**कोऽसौ शुद्ध आत्मेति**'। बस, इतना प्रश्न है। कौन वह शुद्ध आत्मा? आप जो कहते हो कि भगवान आत्मा पुण्य-पाप के राग से भिन्न; कर्म-शरीर तो कहीं अजीव रह गये, परन्तु पुण्य-पाप का आस्रवतत्त्व है, उससे भिन्न आत्मा और अपने स्वरूप से शुद्ध। भगवान! शिष्य को झंखना हुई है। '**कोऽसौ शुद्ध**' ऐसी शैली ही उठायी है अमृतचन्द्राचार्य ने। नहीं समझना चाहता, उसे कहना, यह कहते हैं कि व्यर्थ है। ऐसी धगश है। प्रभु! यह आपने क्या कहा? वह शुद्ध आत्मा कौन है? शुद्ध आत्मा किसे कहते हो? ऐसी अन्तर की (जिज्ञासा हुई है)। देखो! दूसरा कुछ पूछता नहीं। हमको कैसे पुण्य बँधे? और हम कैसे स्वर्ग में जायें? और कैसे हमको फलाना मिले? कुछ नहीं।

मुमुक्षु : देव-गुरु मिले....

पूज्य गुरुदेवश्री : देव-गुरु-शास्त्र मिले, वह भी नहीं। '**कोऽसौ**' ....

मुमुक्षु : निमित्त तो चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह निमित्त अन्दर आ गया, भगवान! समझ में आया?

यह निश्चय से तो ऐसी बात है कि ध्रुव स्वभाव, वह शुद्ध उपादान है और पर्याय, वह निमित्त है, व्यवहार है इसलिए। यह जरा सूक्ष्म बात है। समझ में आया? यह अर्थ में भी आ गया। सीमन्धर भगवान की स्तुति की है न श्वेताम्बर में? वहाँ ऐसा लिया है। एक व्यक्ति कोई कच्छ का है, उसने ऐसा लिया है। बात सच्ची। पर्याय है, वह व्यवहार है और व्यवहार है, वह निमित्त है। त्रिकाल द्रव्य, वह उपादान शुद्ध है। भगवान आत्मा त्रिकाल शुद्ध प्रभु आत्मा है, उसे पर्याय से प्राप्त होता है। वह पर्याय स्वयं व्यवहार है। निमित्त है पर्याय। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, **ऐसा शुद्ध आत्मा कौन है कि जिसका स्वरूप जानना चाहिए ?** देखो ! जिसका स्वरूप जानना चाहिए। दूसरा कुछ नहीं। दूसरी अनेक बातें हों शास्त्र में—चार अनुयोग में। हमारे तो प्रभु ! यह शुद्ध आत्मा जिसे जानना चाहिए, जिसके जानने से केवलज्ञान होकर ही रहता है, मोक्ष होकर ही रहता है। यह वह कौन शुद्ध है ? ऐसा प्रश्न अन्तर की झंखना से किया है। किसी की कॉपी से नहीं कि अभी आत्मा का चलता है तो अपने आत्मा का पूछो। कि जिससे ऐसा कहा जाये कि हमको आत्मा (चाहिए है)। समझ में आया ? दूसरे प्रकार से कहें तो आचार्य महाराज ऐसा कहना चाहते हैं कि हम किसी के घर कहने नहीं जाते। जो कोई ऐसी झंखना करता आता है कि शुद्ध वह क्या है ? उसे हम कहते हैं। देवीलालजी ! आहाहा !

मुमुक्षु : करुणासागर....

पूज्य गुरुदेवश्री : करुणासागर यह। बलजोरी से घर में देने जाते होंगे वहाँ ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या करे ? चलते-चलते बात होती नहीं। ईर्या समिति। ऐई ! सेठी ! ईर्या समिति में है। उस समय बोलने का हो नहीं सकता। आहाहा !

कहते हैं, यह तो एक-एक शैली में बहुत... समयसार अर्थात् कुन्दकुन्दाचार्य के वचन अर्थात् केवली के वचन ! समझ में आया ? शिष्य का प्रश्न है, प्रभु ! वह शुद्ध कौन है ? इसमें शुद्ध आप किसे कहते हो ? शुद्ध किस प्रकार से कहते हो ? शुद्ध किसे कहते हो ? प्रभु ! शुद्ध क्या है कि जिसे जानना चाहिए ? जिसे जानना चाहिए। कहो, समझ में आया यह ? यह शास्त्र को जानना चाहिए और यह द्वीप समुद्र जानना चाहिए, यह बात नहीं की। यह भगवान 'अेगं जाणई सव्वं जाणई।' ऐसा जो पूछता है, **इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं :—** देखो ! है न ? '**शुद्ध आत्मेति चेत्**'। प्रश्न है। ऐसी ही शैली अमृतचन्द्राचार्य ने रची है। श्रीमद् ने भी ऐसी रची है। छह प्रश्न में, आत्मसिद्धि में। शिष्य का प्रश्न और गुरु का उत्तर, शिष्य का प्रश्न और गुरु का उत्तर। ऐसी शैली ली है। समझ में आया ? जिसे गरज होकर सुनना चाहता है। सुनना चाहता है, हों ! प्यास लगी हो न ? वह सरोवर पर आता है। सरोवर दूसरे के पास नहीं जाता। समझ में

आया ? इसी प्रकार यहाँ तृषा लगी है, प्रभु ! आप शुद्ध कौन कहते हो ? जिसे जानने से सब जाना। जिसे जानने से सब श्रद्धा की, जिसे जानने से सब कल्याण हाथ में आ गया। वह कौन है ? ऐसा प्रश्न होने पर उसका उत्तर (दिया जाता है)।

ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।
एवं भणंति सुद्धं णादो जो सो दु सो चेव॥६॥

नहिं अप्रमत्त प्रमत्त नहिं, जो एक ज्ञायक भाव है।
इस रीति शुद्ध कहाय अरु, जो ज्ञात वो तो वो हि है॥६॥

यहाँ प्रमत्त-अप्रमत्त क्यों लिया ? अपनी दशा में वर्तते बात करते हैं। वरना तो दो भेद करने होते तो संयत-असंयत भी किये जा सकते थे। संयत-असंयत आत्मा नहीं, सयोगी-अयोगी आत्मा नहीं, ऐसा भी किया जा सकता है। परन्तु स्वयं छठवीं-सातवीं भूमिका में झूलते हैं, वहाँ से उठाकर बात करते हैं। समझ में आया ? दो भेद करने हों तो असंयत और संयत ऐसी दो पर्यायें ज्ञायक में नहीं, ऐसा कहा जा सकता है। सयोगी-अयोगी दो दशा नहीं। वह तो एकरूप है। परन्तु यह मुनि अपनी भूमिका में खड़े हैं, वहाँ छठवें-सातवें में बताते हैं। वहाँ प्रमत्त-अप्रमत्तदशा जो आती है, उसका लक्ष्य नहीं, ज्ञायकभाव का लक्ष्य है। उसका निषेध करके ज्ञायक के ऊपर है, ऐसी अपनी भूमिका में रहे हुए की बात कर रहे हैं। समझ में आया ? क्योंकि ऐसे प्रमत्तपना छठवें गुणस्थान में आता है न ? विकल्प आता है। और विकल्प छूटकर अप्रमत्त हो जाते हैं। वह तो पर्याय व्यवहारनय का विषय हो गया। पर्याय का व्यवहारनय का विषय हो गया। उसका निषेध करने से, हम अकेले ज्ञायक हैं। समझ में आया ? ऐसी भूमिका में रहे होने पर भी हम प्रमत्त-अप्रमत्त, प्रमत्त छह (गुणस्थान तक) लिया, अप्रमत्त सातवें से चौदहवें तक। आठ यह और छह यह (गुणस्थान)। दो भाग करके स्वयं कहते हैं, यह नहीं। प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। सातवें से चौदहवें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पहले कहा, सुना नहीं। सात से चौदह भेद व्यवहारनय का विषय है।

मुमुक्षु : कोई भी पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : सभी पर्याय का विषय है। सिद्ध भी पर्याय का विषय हैं, नीचे श्रुतज्ञान की अपेक्षा से। उन्हें प्रमाण हो गया, उनकी कहाँ बात है। जिसे नय हो, उसे विचारने का है न! समझ में आया? आहाहा!

अब इसमें अमृतचन्द्राचार्य आत्मा की बात पहले सिद्ध करते जाते हैं। सिद्ध तो ज्ञायकभाव सिद्ध करना है, हों! ज्ञायकभाव शुद्ध सिद्ध करना है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, जो सम्यग्दर्शन का विषय है। ज्ञायकभाव एकरूप। उस ज्ञायकभाव को कहना है, तथापि उसमें आत्मा की बात सिद्ध करते जाते हैं।

जो स्वयं... भगवान आत्मा **अपने से ही सिद्ध होने से (किसी से उत्पन्न हुआ न होने से) अनादि सत्तारूप है,...** अनादि सत्तारूप (वस्तु) है। अकृत अनादि सत्ता वस्तु है, स्वभाव है, अनादि अस्तिरूप है, अनादि अस्तिरूप है। आदि रहित अनादि अस्तिरूप है। समझ में आया? कैसा है यह भाव? अनादि अस्तिरूप है। पहले नहीं था, ऐसा है? **कभी विनाश को प्राप्त न होने से अनन्त है,...** भविष्य में कभी नाश हो, ऐसा नहीं। अनादि सत्तास्वरूप है, भविष्य में नाश न हो ऐसा है। **कभी विनाश को प्राप्त न होने से अनन्त है, नित्य-उद्योतरूप...** है। कायम वर्तमान प्रगट... प्रगट... प्रगट उद्योतरूप है। अनादि सत्तास्वरूप है, भविष्य में नाश हो, ऐसा नहीं। वर्तमान नित्य प्रकाशमान द्रव्यस्वभाव कायम है। समझ में आया? **नित्य-उद्योतरूप होने से क्षणिक नहीं है**... यह तो स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया? मूल तो इतना है। बस, इतना। '**नित्योद्योतो विशदज्योति**' '**नित्योद्योतो**' इतना। अब किसकी बात चलती है यह? यह आत्मा की।

भगवान आत्मा अनादि होनेरूप सत्तास्वरूप है। अनादि सत्तास्वरूप है। उसकी सत्ता कभी नहीं थी, किसी ने की, ऐसा नहीं है। अनादि अस्तिरूप है। अस्तित्वगुण सिद्ध किया, भाई! कहते हैं न? अस्तित्वगुण का क्या कार्य? अस्तित्वगुण के कारण से कोई द्रव्य नया होता नहीं और उसका नाश होता नहीं। सदा रहता है। लड़कों को, क्या अस्तित्वगुण? ऐई! नहीं? अस्तित्वगुण का आता है न? इसका अर्थ कि जिस शक्ति के कारण कभी उत्पत्ति भी न हो, ऐसा इसका अर्थ है। है अनादि सत्ता, ऐसा पहले सिद्ध

किया है। है... है... है... है... अनादि है। है अनन्त, है वर्तमान। नाश नहीं, है वर्तमान।

त्रिकाल वस्तु भगवान आत्मा और **स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है...** प्रकाश प्रत्यक्ष प्रकाशमान ज्योति। चैतन्यज्योति स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। द्रव्य प्रत्यक्ष प्रकाशमान ज्योति चैतन्यज्योति है। समझ में आया? **स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है...** यहाँ से उठाया, देखा! समझ में आया? '**विशदज्योति**' '**विशदज्योति**' प्रत्यक्ष ज्योति, चैतन्यज्योति। प्रत्यक्ष परन्तु ज्योति शब्द यहाँ प्रयोग किया। समझ में आया? ज्योति। अग्नि की ज्योति कहते हैं न? अग्नि। अग्नि में मूल स्वभाव दाहक, पाचक और प्रकाशक है। अग्नि में मूल गुण दाहक, पाचक और प्रकाशक है। पाचक अनाज को पचावे, प्रकाशक स्व-पर को प्रकाशित करे, दाहक जला डाले। लकड़े आदि को जला डाले। भगवान आत्मा विशद ज्योति है। समझ में आया? श्रद्धा द्वारा पूरे आत्मा की ज्योति को पकड़े। ज्ञान से स्व-पर प्रकाशित करे, चारित्र से राग का नाश कर डाले। ऐसी ज्योति को, यहाँ पहला शब्द उठाया। '**विशदज्योति**' '**विशदज्योति**' ज्ञानज्योति। वह (अग्नि की) ज्योति तो अचेतन जड़ ज्योति है। समझ में आया? विशद-स्पष्ट नित्य उद्योत। विशद-स्पष्ट ज्योति ज्ञायक। ऐसा जो ज्ञायक, ऐसा जो भगवान ज्ञायक एकरूप। देखो! शब्द प्रयोग किया।

'**एको**' ऐसा शब्द है न? '**ज्ञायक एको भावः**'। **ज्ञायक एक 'भाव' है...** देखो! पर्याय आदि, गुणभेद आदि अनेक हैं, वे नहीं। '**एको**' एक भाव, एक भाव। ज्ञायक। आदि नहीं, अन्त नहीं, नित्य स्पष्ट ज्योति उद्योतरूप प्रत्यक्ष और वह एक भावरूप है, एक भावरूप है। समझ में आया? यह मुद्दे की रकम यहाँ से शुरु होती है। आहाहा! कहते हैं कि भगवान आत्मा जो तू शुद्ध पूछता है, वह शुद्ध कैसा है? अनादि सत्ता (रूप है), भविष्य में कभी नाश न हो, नित्य उद्योत वर्तमान स्पष्ट प्रकाश ज्योति ज्ञायक एक भाव है। **एक 'भाव' है....** लो, समझ में आया?

वह... अब अवस्था की बात करते हैं। ऐसा ज्ञायकभाव भगवान एक स्वरूप होने पर भी **संसार की अवस्था में...** अब पर्याय लेते हैं। **अनादि बन्धपर्याय की निरूपणता से (अपेक्षा से)...** कर्म के सम्बन्ध की अपेक्षा से **क्षीर-नीर की भाँति...** दूध और पानी की भाँति, हों! दूध और सफेदाई की भाँति नहीं। दूध और सफेदाई तो एक है। दूध और

पानी एक नहीं। क्षीर और नीर। क्षीर अर्थात् दूध और नीर अर्थात् पानी, दोनों भिन्न चीज़ है। भगवान आत्मा क्षीर, कर्म नीर—दोनों चीज़ भिन्न है। समझ में आया इसमें? यह अनादि बन्ध अपेक्षा से। इतनी बात।

क्षीर-नीर की भाँति कर्मपुद्गलों के साथ... यह उसकी उपमा दी। **एकरूप होने पर भी...** बन्ध की अपेक्षा से दोनों क्षीर और नीर, दूध और पानी की भाँति कर्म के साथ एकरूप पर्याय में सम्बन्ध होने पर भी। एकरूप पर्याय में मानो विकार और पर के साथ एकरूप हो, ऐसा दिखने पर भी, **द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाये...** समझ में आया? '**द्रव्यस्वभावनिरूपणया**' उसमें भी निरूपण किया है, भाई! उसमें भी '**निरूपणया**' भाषा की है। **अपेक्षा से देखा जाये...** निरूपण प्रयोग किया है न भाई ने? टोडरमलजी ने निरूपण प्रयोग किया है। यह भाषा। दो प्रकार से मार्ग निरूपण करने की पद्धति है, दो मार्ग नहीं। निरूपण शब्द प्रयोग किया है। समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु के स्वभाव से देखें, तब तो ज्ञायक वह ज्ञायक रहा है। वह कहीं पुण्य-पाप के भाव अचेतन जो विकार है, उसरूप हुआ नहीं। ऐसा बतलायेंगे। ज्ञायक वह ज्ञायकभाव है। शुभ-अशुभभाव है, वह अचेतन है, जड़ है। चैतन्य के नूर के तेज का इसमें अभाव है। शुभाशुभभावरूप से ज्ञायकभाव हुआ नहीं। ऐसा का ऐसा ज्ञायक है, उसे हम शुद्ध कैसे कहते हैं, यह बात कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल ४, शनिवार, दिनांक - २०-०८-१९६६
गाथा - ६ प्रवचन - २२

आज तो स्पष्ट गुजराती चलेगा। यह समयसार शास्त्र है, इसका जीव-अजीव अधिकार है। इसकी छठवीं गाथा। शिष्य का ऐसा प्रश्न है कि जो आप शुद्ध आत्मा का सेवन करने का कहते हो, वह शुद्ध, वह कौन है? यह प्रश्न है पहला। यह आत्मा... यह समयसार की शुरुआत की पहली ही गाथा है। इस छठवीं गाथा से यहाँ से द्रव्य-वस्तु शुरु होती है। पाँचवीं गाथा में कहा था कि मैं तुमको शुद्ध आत्मा का अर्थात् पर से भिन्न और स्व से एकत्व ऐसे आत्मा की बात करूँगा। तब शिष्य का प्रश्न हुआ कि ऐसा वह आत्मा शुद्ध आप किसे कहते हो कि जो जानना चाहिए? जो जानना चाहिए, जिसका अनुभव करना चाहिए, यह वह शुद्ध आप किसे कहते हो? समझ में आया? इस प्रश्न के उत्तर में यह गाथा चलती है।

जिसे अन्तर में धगश हुई है। प्रभु! यह शुद्ध शुद्ध आत्मा जो आप कहते हो, वह शुद्ध है कौन कि हमारे उसे जानना चाहिए? और उसे जानने से ही उसका कल्याण होगा। इसके बिना कल्याण नहीं। शास्त्र ग्यारह अंग पढ़े, नौ पूर्व पढ़े, चाहे तो पंच महाव्रत के परिणाम की क्रिया भी करे, परन्तु यह आत्मा शुद्ध कौन है, उसे जाने बिना इसका कल्याण होता नहीं। तो शिष्य का ऐसा प्रश्न हुआ कि यह शुद्ध आप किसे कहते हो? उसके उत्तर में कहा... देखो! यहाँ (तक) अपने आ गया है।

ज्ञायक एक 'भाव' है... यहाँ तक (आया है)। भगवान आत्मा अनादि अकृत्रिम अविनाशी भविष्य में नाश न हो ऐसा, वर्तमान नित्य उद्योतरूप और स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। समझ में आया? **ऐसा जो ज्ञायक एक 'भाव' है...** चैतन्य वस्तु एक स्वभाव ऐसा ज्ञायकभाव है। ऐसा भाव होने पर भी **वह संसार की अवस्था में...** वह अनादि संसार कर्म के निमित्त की अवस्था में 'अनादि बन्धपर्याय की निरूपणा से (अपेक्षा

से)....' अपने यह कल आया है परन्तु फिर से लिया है। **क्षीर-नीर की भाँति...** दूध और पानी की भाँति, दूध और पानी की भाँति। दूध और सफेदी की भाँति नहीं। धोळाश समझे? सफेदाई। सफेदाई और दूध की भाँति नहीं। परन्तु दूध और पानी की भाँति, क्षीर और नीर की भाँति। आत्मा और कर्म का सम्बन्ध क्षीर और नीर की भाँति है। समझ में आया? ऐसे **कर्मपुद्गलों के साथ एकरूप होने पर भी...** एक अर्थात् क्षीर-नीर की भाँति, इस प्रकार से एकरूप होने पर भी। यहाँ तक कल आ गया है।

द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाये... भगवान आत्मा का द्रव्यस्वभाव शुद्धस्वभाव ज्ञायकभाव त्रिकालभाव ऐसे द्रव्यस्वभाव वस्तुस्वभाव असली कायम निज चैतन्यस्वरूप की दृष्टि से यदि देखा जाये तो। यहाँ तक आया है। समझ में आया? जिसका मिटना कठिन है, ऐसे कषायचक्र का उदय। कर्म जो बाँधा हुआ है, उसका उदय तो आयेगा। उसका मिटना कठिन है। उदय का मिटना कठिन है, उदय तो आयेगा। क्या कहा, समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा... ध्यान रखना। आज तो यह गाथा पहली ही आयी है। फिर कल से तो और तुम्हारी हिन्दी की (बात आयेगी)। आज तो गुजराती है न सब। नये-नये भी गुजराती हैं आज।

यह आत्मा कि जो शुद्ध कहते हो और उसे ही जानने से कल्याण है, ऐसी जो चीज़ वह शुद्ध आप किसे कहते हो? तब गुरु उसका उत्तर कहते हैं कि भाई! आत्मा जो अनादि है, अनादि सत्तारूप है, भविष्य में नाश हो नहीं, ऐसा अनन्त है और वर्तमान नित्य उद्योतरूप स्पष्ट प्रत्यक्ष ज्ञानमय है। वह आत्मा ज्ञायकभाव एक वस्तु है। ऐसी एक वस्तु अन्दर ज्ञायकभावरूप से जो दृष्टि का विषय है, जिसे शुद्ध कहा जायेगा। ऐसा जो ज्ञायकभाव से—द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से देखें तो वह भगवान आत्मा उसके—वस्तु के स्वभाव की असली निज असली चीज़ से यदि देखें तो जिसका — कषायचक्र का मिटना कठिन है। उदय आवे, वह तो मिटना मुश्किल। उदय तो आयेगा। जैसे यह चीज़ यहाँ ज्ञायकभाव है, ऐसे यहाँ कर्म जो है, उनका उदय तो आयेगा। उस उदय का मिटना कठिन है, ऐसे कषायचक्र। यहाँ मोह न लेकर आचार्य ने कषायचक्र लिया है। वरना कषायचक्र में तो मिथ्यात्व और चारित्रमोह, दोनों मोह आ जाते हैं। समझ में आया?

जिसका—उदय का मिटना कठिन है, उदय का मिटना कठिन है। उदय तो आयेगा। ऐसा जो कषायचक्र। सुनना न्याय, हों! यह तो बहुत सूक्ष्म बात है।

यह मुद्दे की रकम यहाँ से शुरु होती है। भगवान आत्मा जो ज्ञायकभाव से एकस्वरूप क्षीर-नीर की भाँति कर्म के साथ सम्बन्ध होने पर भी वह भिन्नरूप ज्ञायकभाव से एक है। वह भगवान आत्मा जिसे उदय का आना मिटना कठिन है, उदय तो आयेगा। उसके **विचित्रता के वश...** उसके आधीन हुआ भाव। समझ में आया? कर्म उदय भले आवे। वह कहीं जीव को विकार कराता है, ऐसा नहीं। समझ में आया? उस उदय की विचित्रता के प्रसंग में उसके वश में हो जाता है। देखो! यह महासिद्धान्त है। देवीदासभाई! देवीदास, देवीलालजी। देवीदास हो गये हमारे वे पोरबन्दर। एक सेठिया थे। कहो, समझ में आया इसमें? ...भाई!

कहते हैं, भगवान! तेरी बात तो सुन, भाई! वस्तु से ज्ञायकमूर्ति द्रव्यस्वभाव। ऐसे कर्म का उदय मिटना कठिन। क्योंकि उदय तो आयेगा। अब तेरी दृष्टि ऐसे ज्ञायक की ओर न ढलकर ऐसे कर्म के उदय के आधीन हुआ भाव—वश हुआ (भाव)... समझ में आया? वह उदय की विचित्रता के वश हुआ। ऐसा ज्ञायकभाव एकरूप चैतन्य है, उसकी दृष्टि शुद्ध के ऊपर शुद्ध है, वह न करके, उस कर्म के उदय का होना मिटना, वह तो कठिन है, भले हो परन्तु उसके वश प्रवर्तते। भाषा ऐसी है, देखो! संस्कृत में। समझ में आया? है न? **'प्रवर्तमानानां'—'वैचित्र्यवशेन प्रवर्तमानानां'।** यह तो महासिद्धान्त हैं। यह गाथा तो मूल शुरुआत की है। यह बात ही इसने अनन्त काल में लक्ष्य में ली नहीं। ज्ञायकभाव भगवान ज्ञायकभाव वह इसने लक्ष्य में, दृष्टि में लिया नहीं। उसका इसने अनन्त काल में सम्यग्दर्शन का विषय इसे बनाया नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा ऐसा चैतन्यज्योति प्रभु ऐसा ज्ञायकभाव होने पर भी संसार की दशा में क्षीर-नीर की भाँति कर्मपुद्गलों के साथ एक होने पर भी **द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाये तो...** वस्तु, वस्तु भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु ज्ञान का सूर्य, अकेला ज्ञायकसूर्य ऐसी दृष्टि से देखें तो। इतना। तब तो फिर जायेगा अन्यत्र। **समस्त अनेकरूप**

शुभाशुभभाव उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता... ऐसा कहेंगे। समझ में आया? उसके द्रव्य स्वभाव से देखें तो **समस्त अनेकरूप शुभाशुभभाव उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता...** भाई! क्रमसर लेते हैं, हों!

यहाँ तो द्रव्य देखने में आवे तो। वस्तु जो द्रव्य ज्ञायकभाव है, उसे द्रव्य स्वभाव से देखने में आवे तो। वह एक ओर रहा। इस ओर उदय आया। कर्म के उदय का मिटना कठिन है, तथापि उसके विचित्रता के वश हुआ है। उसके आधीन हुआ है। समझ में आया? **जो पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले...** नये जो पुण्य और पाप के कर्म के परमाणु बन्धन हो, उसे उत्पन्न करने में निमित्तरूप **समस्त अनेकरूप...** वापस शुभ-अशुभभाव अनेक हैं। असंख्य प्रकार के शुभ हैं और असंख्य प्रकार के अशुभ हैं। कहते हैं, भगवान आत्मा वस्तु ज्ञायकरूप से प्रभु होने पर भी, होने पर भी, कहते हैं? होने पर हिन्दी में। हमारे होवा छतां (कहते हैं)। यह तो गुजराती है न। कल से हिन्दी देखकर चलेगा। देखकर अभी कैसे है सब लोग। कल की बात कल, इसका अर्थ ऐसा। आज तो यह (गुजराती चलता है)। आज तो यह ही है। आज सब गुजराती है न। शाम तक। कल की बात कल।

भगवान आत्मा ज्ञायकभाव से द्रव्यस्वभाव से ज्ञायकभाव से देखें, द्रव्यस्वभाव से देखें तो। बस इतना। ऐसे कर्म के उदय का मिटना कठिन है, तथापि उसके वश हुआ। कर्म के उदय की विचित्रता के वश से प्रवर्तमान, प्रवर्तते। भगवान आत्मा अपना ज्ञायकस्वभाव शुद्ध ध्रुव है, उसके अन्तर में वश से—उसके आधीन न होकर, ऐसे कर्म के उदय की विचित्रता के आधीन हुआ पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाला। दो लेना है न? ऐसे एकरूप है और यहाँ कर्म में दो उत्पन्न होते हैं। नये कर्म पुण्य और पापरूप बँधते हैं, जड़। उन्हें उत्पन्न करनेवाले समस्त अनेकरूप शुभाशुभभाव। आहाहा! समझ में आया? ऐसी वस्तु ज्ञायक चैतन्य ली है। इस बार तो पन्द्रहवीं बार वाँचन होता है न, इसलिए अधिक (स्पष्टीकरण आता है)। हमारे पण्डितजी की यहाँ उपस्थिति है। यह पहली बार है। समयसार में पहली बार ही यहाँ हैं। यह शुरुआत में कभी तुम्हारी उपस्थिति नहीं थी। समझ में आया?

कहते हैं, प्रभु! वह शुद्ध किसे कहना? नाथ! ऐसी शिष्य पुकार करता है, हों! अन्तर से झंखना से (पूछता है), प्रभु! आप शुद्ध किसे कहते हो? कि जिस शुद्ध की सेवा करने से हमारा कल्याण हो? उसके उत्तर में कहते हैं कि भाई! शुद्ध किसे कहना, यह सुन। वस्तु भगवान आत्मा ज्ञायक की मूर्ति प्रभु है, वह तो चैतन्यज्योति है, चैतन्य की डली है, चैतन्य का ध्रुव तारा है। चैतन्य का ध्रुव ध्रुव तारा है। वह ध्रुव तारा नहीं कहते? वह ध्रुव तारा चलता नहीं। आनन्दघनजी ने ऐसा लिया है 'निरखी ध्रुव की तारी' ऐसा लिखा है। 'निरखी ध्रुव की तारी'। ध्रुव भगवान आत्मा ज्ञायक, वह ध्रुव तारा सम्यग्दर्शन में दिखता है। प्रतीति में आता है, ऐसी ध्रुव तारी। समझ में आया?

भगवान आत्मा ध्रुव ज्ञायकस्वभाव, जिसे यहाँ द्रव्यस्वभाव कहा, जिसे ऊपर ज्ञायक एक भाव कहा, समझ में आया? वह कषायचक्र के उदय की विचित्रता के आधीन हुआ वर्तमान दशा में। वस्तु तो वस्तु है, परन्तु उस वस्तु के स्वभाव-सन्मुख की शुद्धता के भाव को अनादि से चूका हुआ कर्म के उदय की विचित्रता के वश आधीन हुआ। देखो! कोई ऐसा कहे कि कर्म के कारण से उसमें होता है। ऐसा यहाँ इनकार करते हैं। स्वयं उल्टा पुरुषार्थ करके कर्म के आधीन—वश स्वयं होता है। आहाहा! समझ में आया? उसके वश प्रवर्तते, भगवान आत्मा ज्ञायकरूप एकरूप एक स्वभावरूप द्रव्यस्वभावरूप के वश, उसका आश्रय, उसके ध्येय में न प्रवर्त कर ऐसे कर्म के उदय की स्थिति तो है, उसके वश प्रवर्तते। समझ में आया? **पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले...** नये जड़कर्म जो पुण्य और पाप को उत्पन्न करनेवाले। करनेवाले इतना। **समस्त अनेकरूप...** देखो! यहाँ भगवान एकरूप है न इस ओर? तो उसमें समस्त शुभ-अशुभभाव अनेकरूप हैं। शुभ और अशुभ—दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध आदि के परिणाम शुभ और अशुभ अनेकरूप हैं। वे समस्त अनेकरूप, ऐसा विशेषण दिया। किसे? शुभ-अशुभभाव को। शुभ और अशुभभाव जो समस्त अनेकरूप हैं, वे पुण्य-पाप के उत्पन्न करनेवाले, नये कर्म को उत्पन्न करने में ये निमित्त हैं। देवीलालजी! आहाहा! समझ में आया?

ऐसे शुभाशुभभाव, बस। **उनके स्वभावरूप...** कौन? द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से देखा जाये तो **उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता...** किसके स्वभाव से? शुभाशुभभाव

से ज्ञायकभाव नहीं होता। देखो! यहाँ है न? भाई! यह। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' इसमें से (निकाला)। यह प्रमत्त-अप्रमत्त क्यों नहीं? ज्ञायकभाव त्रिकाल है, वह शुभाशुभभाव (रूप) होता नहीं, इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, इस प्रकार आत्मा को शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया? थोड़ा समझ में आये, इसकी दिक्कत नहीं, परन्तु इसे बराबर जैसा है वैसा जानना चाहिए। अधिक भले न हो, परन्तु वास्तविक तत्त्व की मूल स्थिति क्या है, वह यदि इसके समझ में न आये तो सब समझने का व्यर्थ जाये ऐसा है। कहाँ गये ताराचन्दजी? अच्छा, अच्छा, देखा। सागर से पण्डितजी आये हैं। समझ में आया?

कहते हैं, द्रव्यस्वभाव वस्तुस्वभाव ज्ञायकस्वभाव चैतन्य ध्रुव तारा के स्वभाव से देखें तो वह एक ज्ञायकभाव, एक ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभावभाव, वह कर्म के वश—आधीन हुए नये पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले अनेक समस्त शुभाशुभभाव, उसरूप से ज्ञायकभाव—द्रव्यस्वभाव परिणमता नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो गुजराती ऐसी बहुत कठिन नहीं, हों! थोड़ा-थोड़ा समझ ले। यह तो समाधान करना पड़ेगा न थोड़ा? क्यों? कहते हैं, प्रभु! यह तो माल, मूल रकम की बात है। यह मूल रकम... समझ में आया? आनन्दघनजी एक जगह कहते हैं, भाई! 'तलपद पूँजी में आपी सघलीरे, तोहे ब्याज पूरूं नवि थाय।' ब्याज अन्दर में अज्ञान और राग-द्वेष ऐसा ब्याज है। वह चीज़ तो दूसरी है पूरी। 'मूलडो थोडो भाई वाजडो घणो रे... केम करी दीधो रे जाय...' ऐसा एक (आता) है।

भगवान आत्मा मूलरूप जो वस्तु है, वह तो ज्ञायकस्वरूप है। वस्तु द्रव्यस्वभाव है। एकरूप ज्ञायकभाव है। तथापि अनादि संसार अवस्था में क्षीर-नीर की भाँति कर्म पुद्गलों के साथ क्षीर-नीर की भाँति एक जैसा हो रहा है। ऐसे जीव को द्रव्य के स्वभाव से देखें तो कर्म के उदय का आना, वह पुद्गल दशा है। उसका उदय आना, वह मिटता ही नहीं। उसका काल है। परन्तु उसके विचित्रता के वश से प्रवर्तते, उसके वश से प्रवर्तते, उसको नये पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले ऐसे समस्त अनेकरूप शुभ-अशुभभाव, उनके स्वभाव से द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से देखने में आवे तो

शुभाशुभभाव के उनके स्वभाव से परिणमता नहीं। समझ में आया? कहो, वकील! समझ में आया या नहीं यह? हमारे वकील हैं। एल.एल.बी. कुचामन। यह वकालत है। यह सब वकालत तो थोथा। समझ में आया?

भगवान आत्मा, कहते हैं, चाहे वह कर्म के वश में पड़ा स्वयं अपने कारण से अनेक प्रकार के शुभाशुभभाव पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले भले करे, परन्तु वह ज्ञायकभाव उन भाव से परिणमता नहीं। समझ में आया? अब यह स्पष्टीकरण आता है, देखो! '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' भाई! अब आता है यह। इतना स्पष्टीकरण करके फिर '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' यह बात सिद्ध करते हैं। अब यह सिद्ध करते हैं, भाई! समझ में आया? हमारे उन शब्दों का आधार भी लेना पड़े कितना ही। देखो न! ... पड़ा है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

कहते हैं, भगवान! तू तो द्रव्य वस्तु है। वस्तु देखे न तो चैतन्य ध्रुव तारा है। ऐसा जो ज्ञायकस्वरूप, ऐसा जो द्रव्य वस्तु स्वभाव, भले उसकी वर्तमान दशा में कर्म के विचित्रता के वश प्रवर्तता नये पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले अनेक समस्त शुभाशुभभावरूप हो तथापि ज्ञायकभाव, उनरूप हुआ नहीं। समझ में आया? गजब भाई! यह विद्या किस प्रकार की होगी? यह वीतरागी विद्या है, भाई! जिसमें आत्मा की लक्ष्मी आनन्द की प्राप्त हो जाये, वह लक्ष्मी है। धूल में तो कहीं न मिले बाहर में। कहते हैं, आहाहा!

अरे! अमृतचन्द्राचार्य... वर्तमान में कुन्दकुन्दाचार्य ने तीर्थंकर जैसा काम किया, उनके गणधर जैसा काम अमृतचन्द्राचार्य ने टीका (करके किया है)। यह वह टीका है! अकेला मर्म भरा है। दिगम्बर सन्त जिन्हें साक्षात् छठवीं-सातवीं भूमिका में झूलते... यहाँ कहते हैं न? यह क्यों कहा? कल कहा था कि ऐसा क्यों नहीं कहा कि यह आत्मा संयत-असंयत नहीं, सयोग-अयोग नहीं, अरे! संसार-सिद्ध नहीं, भाई! संसार-सिद्ध वह दो पर्याय है। ज्ञायकभाव में संसार-सिद्ध पर्याय का निषेध है, तथापि वहाँ से क्यों नहीं लिया? अथवा संयत-असंयत ऐसा क्यों लिया? संयत-असंयत का निषेध करके ज्ञायक क्यों नहीं लिया? सयोग-अयोग का निषेध करके ज्ञायक क्यों नहीं लिया?

संसार और सिद्ध की पर्याय भी व्यवहार है, उसका निषेध करके ज्ञायकभाव क्यों नहीं लिया? स्वयं भूमिका से प्रमत्त-अप्रमत्त में वर्तते हैं, परन्तु कहते हैं कि प्रमत्त और अप्रमत्तपना, वह ज्ञायकभाव जो है, वह शुभ और अशुभभाव से द्रव्यस्वभाव हुआ नहीं, इसलिए ज्ञायकस्वभाव प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं है। समझ में आया? आहाहा! आहाहा! क्या कहा, समझ में आया इसमें?

इतने तक तो यहाँ बात की। अब सिद्ध तो यहाँ करना है। **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो'** ज्ञायक भगवान आत्मा वस्तु वस्तु चैतन्य ध्रुव तारा, वह वस्तु स्वभाव से देखें तो वह ज्ञायकभाव कर्म के आधीन हुए पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभ समस्त भाव, वे पर्याय में होने पर भी... यहाँ प्रवर्तते, है तो कहा या नहीं? सिद्ध तो किया है या नहीं? तो वे होने पर भी ज्ञायकभाव से जहाँ देखें तो शुभाशुभरूप वह ज्ञायकभाव परिणमा नहीं, इसलिए उसे प्रमत्त-अप्रमत्तपना लागू पड़ता नहीं। समझ में आया? पोपटभाई! आहाहा! यह छठी के लेख की गाथा है। छठी का लेख लिखा बदलाने से बदले नहीं। वह तो बदल भी जाये, यह तो बदले नहीं, ऐसी बात है। ऐई! सेठी! यह तो कल्पना करते हैं न छठी के (लेख की)।

यहाँ कहते हैं, भगवान! भाई! तू ज्ञायक है न प्रभु! चैतन्य का पुंज है न! अकेला चैतन्य का ध्रुव पुंज है, प्रभु! उस चैतन्य पुंज को भले कर्म के साथ क्षीर-नीर की भाँति अवस्था में एकमेक जैसा सम्बन्ध दिखता हो तथापि और उसके द्रव्यस्वभाव से देखें तो कर्म के आधीन हुई अवस्था के शुभाशुभ परिणाम दिखने पर भी वह ज्ञायकभाव शुभाशुभरूप हुआ नहीं, इसलिए आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो!

भाई! तू चैतन्यवस्तु है। ज्ञायकभाव भगवान ज्ञायक वस्तु है। भगवान वह ज्ञायक वस्तु शुभाशुभ परिणाम से पर्याय में हो तो ज्ञायकपना वह शुभाशुभरूप हुआ है? शुभाशुभ तो वास्तव में तो अचेतन है। क्या (कहा)? ध्यान रखना। यह स्पष्टीकरण किया है न? कि **शुभाशुभभाव उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता...** पण्डित जयचन्दजी ने बहुत सरस अर्थ किया है। ज्ञायकभाव से जड़भावरूप होता नहीं।

अर्थात् ? ऐसा अर्थ भी पण्डित जयचन्दजी ने किया, ऐसा अर्थ करनेवाले भी अभी कम हैं। पूर्व के पण्डित अन्दर के मर्म को खोलते थे। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा चैतन्यज्योति ध्रुव, वह अवस्था में शुभाशुभरूप हुआ होने पर भी वह ज्ञायकभाव... ज्ञायकभाव त्रिकालभाव ध्रुवभाव स्वभावभाव द्रव्य स्वभावभाव, वह शुभ-अशुभभाव (रूप) हुआ नहीं। अर्थात् कि शुभ-अशुभ, चैतन्य का नूर जो है, ज्ञायक वह चैतन्य का नूर और चैतन्य का पूर है। द्रव्य जो है, वह चैतन्य का पूर है, ज्ञान की ज्योति है, उस ज्ञान की ज्योति का अंश पुण्य-पाप में आया नहीं। पूरी चीज़ तो आयी नहीं परन्तु ज्ञान की एक प्रकाश की किरण भी शुभ-अशुभभाव में आयी नहीं। क्यों ? शुभ और अशुभभाव राग और विकार है। वह अचेतन है। चैतन्य के ज्ञानानन्द द्रव्य चैतन्य, गुण चैतन्य, उसकी चैतन्य की एक किरण भी शुभाशुभ में आती नहीं। और शुभ और अशुभभाव वास्तव में तो जड़ है। यह ७२ गाथा में आता है, भाई! **'विवरीय' 'असुचित्तं विवरीय दुक्खस्स कारणं'।** यह ७२ गाथा में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने रखा है। समझ में आया ? भगवान आत्मा चैतन्य का पूर है, चैतन्य का नूर है, चैतन्य से भरपूर है। समझ में आया ? ऐसा भगवान आत्मा चैतन्य के पूर और नूर और पिण्ड और भरपूर स्वभाव से (भरा हुआ) है। ऐसा भगवान, उसके ज्ञान का एक अंश भी शुभाशुभभाव में आता नहीं। इसलिए उसको एक न्याय से अज्ञान कहा जाता है। किसे ? शुभाशुभभाव को। अज्ञान अर्थात् ? उसमें ज्ञान का अंश, प्रकाश का अंश नहीं। समझ में आया ?

चैतन्य ज्ञायक के अतिरिक्त पुण्य-पाप के भाव और दूसरे सब द्रव्यों को अज्ञान कहा है। भाई! अज्ञान अर्थात् ज्ञान का गुण नहीं, ज्ञान की पर्याय नहीं, ज्ञान का अंश उनमें नहीं। आहाहा! क्षुल्लक धर्मदास ने तो भाई! अज्ञान ही कह दिया है। एक ज्ञायकज्योति के अतिरिक्त सब अज्ञान है। न्याय से कहा है उन्होंने। समझ में आया ? अज्ञान अर्थात् मिथ्यात्व, ऐसा नहीं। चैतन्यप्रभु ज्ञान का नूर, ज्ञान का पूर, स्वभाव से भरपूर—ऐसा भगवान आत्मा जैसा है, वैसा अनादि से ऐसा का ऐसा है। वह शुभाशुभभाव जो अचेतन है, स्वभाव से विपरीत है, दुःखरूप है, उनरूप ज्ञायकभाव हुआ ही नहीं। समझ में आया ? अर्थात् क्या कहते हैं ?

उनके स्वभाव से... द्रव्यस्वभाव से देखने पर पुण्य-पाप के स्वभाव से। भाषा वापस ऐसी प्रयोग की है, भाई! उनके स्वभाव से। पुण्य-पाप का स्वभाव जो है, शुभाशुभभाव का स्वभाव है, उसरूप ज्ञायकभाव भगवान आत्मा वह उनके स्वभाव (रूप) हुआ ही नहीं। ज्ञायकभाव विभावरूप हो, (ऐसा) तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? अर्थात् शुभ-अशुभभाव-विकारी पर्यायें, **उनके स्वभावरूप...** अर्थात् उनके (स्वरूप से)—उनका पर्याय का भाव, उस स्वभाव (रूप) हुआ ही नहीं। ज्ञायकभाव उसरूप कभी आया ही नहीं। **(ज्ञायकभाव से जड़भावरूप नहीं होता)...** चैतन्य का पुंज प्रभु शुभाशुभभाव, जो चैतन्य के स्वभाव से अभावभाव है, उसरूप ज्ञायकभाव कभी हुआ नहीं। समझ में आया?

इसलिए... देखो! **इसलिए...** अब यहाँ सिद्धान्त आया। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' इस कारण से, इस कारण से। इतने तक उसके सिद्धान्त दिये। अप्रमत्त-प्रमत्त नहीं, यह सिद्ध करने के लिये इतने बोल दिये। समझ में आया? प्रमत्त-अप्रमत्तपना उसकी पर्याय में भेद में है। वह शुभाशुभभाव से परिणमा है, इसलिए उसके दो भेद पड़ जाते हैं। पर्याय। ज्ञायकभाव उसरूप हुआ नहीं। ऐसे उसके अर्थात् शुभ-अशुभभाव के स्वभाव से हुआ नहीं होने से भगवान चैतन्यज्योति जो दर्शन—सम्यग्दर्शन का विषय है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु समादिट्ठी हवदि जीवो**'। भूतार्थ भगवान भूतार्थ कहो या ज्ञायकभाव कहो या एकभाव कहो या वह शुद्ध कहो। परन्तु उसे शुद्ध कब कहा जाता है? यह बात विशेष लेंगे। समझ में आया? राजमलजी!

भगवान! तू तो ऐसा का ऐसा पड़ है न प्रभु अन्दर। तुझे नया करने का नहीं है। श्रद्धा में जैसा है, वैसा दृष्टि में—अनुभव में लेने योग्य है। समझ में आया? ऐसा जो भगवान आत्मा... कहते हैं, इस कारण से। इसलिए ऐसा है न? है न? '**स्वभावेना-परिणमनात्प्रमत्तोऽप्रमत्तश्च न भवति**' इस कारण से भगवान ज्ञायकस्वरूप प्रमत्त-अप्रमत्तभाव से नहीं। प्रमत्त-अप्रमत्तभाव वस्तु स्वरूप में नहीं। समझ में आया?

अब '**एवं भणंति सुद्धं**' तीसरे पद का अर्थ लेना है। यह महासिद्धान्त हैं। इस पद्धति की अन्तर दृष्टि खबर पड़े बिना उसे सम्यग्दर्शन कभी तीन काल में होता नहीं।

समझ में आया ? '**एवं भणंति सुद्धं**' अब उसका अर्थ करते हैं, तीसरे पद का। '**जाणगो दु जो भावो**' इस कारण से, '**ण वि अप्पमत्तो ण पमत्तो**'। प्रमत्त-अप्रमत्त (रूप) ज्ञायकभाव कभी हुआ नहीं, नहीं समझ में आता, ऐसा लक्ष्य में नहीं लेना। वह तो भगवान आत्मा है। ऐसा नहीं लेना कि हमको (समझ में नहीं आता)। अरे! आत्मा तीन लोक का नाथ एक समय में केवलज्ञान लेकर तिरे, ऐसा है, उस आत्मा को पामर कैसे माना जाये ? समझ में आया ? वरांका। पण्डितजी! कल आया था न ? नदी... नदी। जलरववरा। नदी नहीं ? दीन नदी भगवान आपके विरह में रोती है, हों! आहाहा! रव करती है—आवाज करती है, आवाज करती है। प्रभु! आपका यहाँ विरह पड़ा। यहाँ कहते हैं, पर्याय में यहाँ लक्ष्य गया और भगवान का विरह पड़ा। समझ में आया ? इतनी व्याख्या तो दो पद की की। अब तीसरे पद की।

वही... 'उर' ऐसा है न संस्कृत में ? पण्डितजी! '**एष**' है, '**एष**'। '**एष एवाशेष-द्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते।**' देखो! इसमें जरा विशिष्टता है, हों! जरा-सा धीरे से सुनना। आहाहा! **वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से...** समस्त अन्य द्रव्य के भावों से **भिन्नरूप से उपासित होता हुआ...** विशिष्टता देखो यहाँ! कहते हैं कि ऐसा जो भगवान ज्ञायकभाव वस्तु, उसे अन्यद्रव्य के भावों से लक्ष्य छोड़कर, लक्ष्य छोड़कर यहाँ उपासना किये जाने पर द्रव्यस्वभाव की सेवा-उपासना में आने पर। क्या कहते हैं ? **वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से...** भाव शब्द से यहाँ राग-द्वेष आदि नहीं। अन्य द्रव्य। उनसे पृथक् भिन्नरूप से उपासित किये जाने पर। पश्चात् तो पर से ऐसे लक्ष्य छूटा, पर से लक्ष्य छूटा और ज्ञायकभाव यह है, ऐसा उसकी पर्याय में सेवन हुआ। पर्याय में उपासना की गयी। राग की (और) निमित्त की उपासना में पड़ा था... समझ में आया ? उसके सम्बन्ध के वश पड़ा था, वह कर्म आदि **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ 'शुद्ध' कहलाता है।** देखो! जरा विशिष्टता है इसमें। ज्ञायक शुद्ध है, शुद्ध है—ऐसा कब कहलाये ? कब कहलाये ? कि कर्म के लक्ष्य की रुचि छोड़कर ज्ञायक के भाव सन्मुख की वर्तमान पर्याय सेवन में आवे, शुद्धता का पर्याय परिणमन हो, तब शुद्ध पर्याय के परिणमन से यह शुद्ध है, ऐसा कहा जाता है। शुद्ध तो द्रव्य है।

फिर से कहते हैं। यहाँ कहाँ अपने बात जाने देते हैं। तीन-चार बार घोंटते हैं। फिर से। ज्ञायक शुद्ध है, शुद्ध है, परन्तु वह शुद्ध कब? ऐसा शुद्ध है धारणा में लेकर, ऐसा नहीं। उसे शुद्ध है ही नहीं। शुद्ध वह **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से...** सेवन में आता हुआ। उपासना में आता हुआ। ऐसा परसन्मुख का लक्ष्य रुचि छोड़कर ज्ञायकभाव एकरूप द्रव्यस्वभाव, जो प्रमत्त-अप्रमत्तरूप से शुभाशुभभावरूप नहीं हुआ, इसलिए प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, ऐसा ज्ञायकभाव पर से लक्ष्य छोड़कर उसकी ओर के शुद्धता के सेवन से सम्यग्दर्शन, ज्ञान की, शान्ति की पर्याय के सेवन से यह द्रव्य शुद्ध कहने में आता है। शुद्ध तो द्रव्य को कहना है। परन्तु वह द्रव्य शुद्ध कब? कब इसके लक्ष्य में आवे? कि भिन्न पदार्थ हैं, उनका लक्ष्य-रुचि छोड़कर इस ओर के ज्ञायकभाव में लक्ष्य गया, तब उसकी वर्तमान दशा में शुद्धता सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र प्रगट हुआ उस द्वारा यह आत्मा शुद्ध है, ऐसा कहने में आता है।

फिर से, फिर से। अपने यहाँ उतावल कहाँ है? समझ में आया? कोई ऐसा ले कि आत्मा तो शुद्ध है न, भाई! परन्तु वह शुद्ध कब? वह तो शुद्ध है परन्तु तेरी दृष्टि में शुद्धपना प्रगटे नहीं और शुद्धपने की सेवना न करे, तब तक यह शुद्ध है, वह तुझे ख्याल में कहाँ से आया? आहाहा! समझ में आया? ऐसी शैली से बात ली है कि पर्याय से अशुद्धता सब वहाँ नहीं मिटती। परन्तु उस परद्रव्य के वश में जो पड़ा हुआ, रुचि में उसके आश्रय में (पड़ा हुआ), उससे भिन्न सेवन में, उससे लक्ष्य पृथक् करके भिन्न सेवन में आता हुआ। सेवन में आता हुआ ज्ञायक। **अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ...** कौन? ज्ञायकभाव। उस ज्ञायकभाव को ऐसे पर से लक्ष्य छोड़कर अन्तर ज्ञायक के लक्ष्य में जो शुद्ध दृष्टि से लक्ष्य में लिया, संवेदन से लक्ष्य में लिया, स्थिरता से लक्ष्य में लिया, वह शुद्ध परिणति से परिणमता आत्मा, यह शुद्ध है, ऐसा उसके लिये कहा जाता है। समझ में आया इसमें?

यह तो महासिद्धान्त है। समयसार अर्थात् भरतक्षेत्र का अजोड़ शास्त्र! वस्तु को खड़ी करने में महासिद्धान्त! महासिद्धान्त!! भाई! तेरी दृष्टि में, तेरे ज्ञान में यह शुद्ध है, ऐसा कब भासित हो? तेरी दशा पर के सेवन से हटकर ज्ञायकभाव के सेवन के लिये पर्याय में निर्मलता से वहाँ लक्ष्य कर तब निर्मलता की सेवा से यह शुद्ध है, उसके लिये

शुद्ध कहने में आता है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो भगवान आत्मा वस्तु जो है, ज्ञायक चैतन्य ध्रुव आनन्द का पिण्ड अकेला है, उसे परद्रव्य के लक्ष्य से छूटकर स्वद्रव्य के ध्येय के लक्ष्य से वर्तमान पर्याय से उसे सेवन में आने पर उसमें आनन्द आदि का वेदन आया। उस वेदन द्वारा उस आनन्द से, पूरा आत्मा शुद्ध आनन्दमय है (ऐसा वेदन में आया)। वह शुद्ध आत्मा है। समझ में आया? गजब बात भाई ऐसी न!

बहुत से कहते हैं, द्रव्य तो शुद्ध ही है न, भाई! द्रव्य तो शुद्ध ही है। बापू! द्रव्य शुद्ध है, ऐसा कब? तुझे उसके ज्ञान में वह शुद्धता न आवे वहाँ तक शुद्ध है, ऐसा तुझे कहाँ आया है? समझ में आया? उसमें है न? '**एयत्तणिच्छयगदो सुंदरो लोगे**'। राग से और पर से भिन्न पड़कर अपने द्रव्यस्वभाव में वर्तमान पर्याय से एकत्व होकर जो दशा प्रगट हुई, वह शुद्धता सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। उस सम्यग्दर्शन में भी श्रद्धा, ज्ञान और स्वरूपाचरण, वह द्रव्य की सेवा है। वह वस्तु ज्ञायक के ऊपर के ध्येय की सेवा से उत्पन्न हुई पर्याय है। उस पर्याय से उसे मालूम पड़ा कि यह द्रव्य शुद्ध है। शुद्ध तो यहाँ द्रव्य को सिद्ध करना है, पर्याय को सिद्ध करना नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो '**एवं भणंति सुद्धं**' न? किसे? जो '**जाणगो दु जो भावो**'। जो प्रमत्त-अप्रमत्तरूप हुआ नहीं, शुभाशुभरूप परिणमा नहीं, इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त हुआ नहीं, ऐसा जो ज्ञायकभाव, उसे '**भणंति**' '**एवं भणंति**' उसे कहते हैं शुद्ध। कब? '**एवं**' इसलिए फिर कहा। '**एवं**' में से यह व्याख्या निकाली। '**एष एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः शुद्ध इत्यभिलप्यते।**' समझ में आया? कहते हैं कि भाई! यह एक रतन हीरा है, वह बहुत कीमती है। परन्तु उसमें नजर की टकटकी बिना कीमती का ख्याल किस प्रकार से आवे? नजर उसमें टगटग न हो और कहीं फिरी हो, तब तक उसे यह कीमती चीज़ चकचकाटवाली ख्याल कैसे आवे? समझ में आया? इसी प्रकार चैतन्यहीरा ज्ञायकभाव एकभाव शुद्ध है, वह शुद्ध तो वह द्रव्य है, परन्तु वह ख्याल कब आवे? कि परसन्मुख के भाव और (पर) द्रव्य का लक्ष्य छोड़कर भगवान आत्मा की सेवना (करे)। देखो! '**द्रव्यान्तरभावेभ्यो भिन्नत्वेनोपास्यमानः**'। भगवान आत्मा ज्ञायकभाव की सेवा करने से, उपासना करना से। लो, यह उपासना आयी। आहाहा!

समझ में आया? लोग कहते हैं न, सेवा... सेवा (करो)। किसकी धूल की सेवा करे किसी की? सुन तो सही। स्वतन्त्र पदार्थ है उसके कारण से परिणम रहे हैं। उनकी सेवा तू कहाँ करने जाता था? यह सेवा है। इसके लिये तो बतलाना है। अरे! पुण्य का राग उठे, पर की सेवा और दुःख टालने का, वह राग, वह भी असेवा है। आहाहा! आत्मा की असेवा है। असेवा का अर्थ हमारे पण्डितजी बैठे (वे विशेष कहेंगे)। अ कहो या कु कहो। भाई! समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! यह आत्मा है न? जो वस्तु ज्ञायकभाव से है न? जो वस्तु शुभाशुभभावरूप हुई नहीं, वह है न? इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्तरूप हुई नहीं, ऐसी जो है न? ऐसी चीज़ को शुद्ध है, ऐसा कब कहा जाये? आहाहा! पर से लक्ष्य छूटकर ऐसा जहाँ लक्ष्य गया तो पर्याय में निर्मलता प्रगट हुए बिना रहे नहीं। शुद्ध तो द्रव्य है। वस्तु शुद्ध है, एकरूप ज्ञायकभाव है। परन्तु ऐसे अनेकपने के लक्ष्य में जो रुचि पड़ी थी, वह हटकर ऐसे जहाँ ज्ञायकभाव एकरूप है, वह शुद्ध है, ऐसी जहाँ दृष्टि होती है, वहाँ पर्याय में—अवस्था में मोक्षमार्ग निर्मल पर्याय प्रगट हुए बिना उसकी सेवा की और यह शुद्ध है, ऐसा कहने में आता नहीं। समझ में आया? कहो, अब इसमें समझ में आता है या नहीं? ऐसे सामने पुस्तक रखी है। तुम्हारे सामने शब्द-शब्द के (अर्थ होते हैं)। बहुत विवाद उठाते हैं कि तुम ऊपर बैठो और नीचे (पुस्तक रखते हो)। भाई! सब खबर है, बापू! यह शास्त्र का अविनय नहीं। यह शास्त्र के भाव जैसे हैं, वैसा इसे ख्याल में आवे ऐसा एक विनय है। इसके लिये सामने शब्द है। भाई! बापू! तू ऐसा का ऐसा दूसरी नजर से देखे, (ऐसा नहीं चलता)। क्या हो? समझ में आया? ऊपर से कहे तो यह कहाँ का अर्थ करते होंगे? किसका अर्थ यह करते होंगे? इसलिए उसे कहीं अन्दर में मिलान खाये नहीं। पण्डितजी! प्रभु! क्या करे? इसे ख्याल में आवे कि इस शब्द का यह भाव कहा और यह भाव ही यहाँ मिलान खाता है। दूसरा मिलान खाता नहीं। इसलिए वह वास्तव में तो शास्त्र को समझने का वह विनय है। जैसा आशय कहना है मुनियों को, वैसा ही आशय समझना चाहता है, वही शास्त्र का विनय है। आहाहा! ...लालजी! बहुत आलोचना करते हैं, बहुत आलोचना। अरे! भगवान! सुन तो सही! इसमें न्याय क्या है यह। क्या करे?

यह बात तो कोई अलौकिक है! इसके घर की, घर की बातें सुनना मुश्किल है। समझ में आया? उसकी जो पद्धति है, उसे समझने में प्राप्त करने की पद्धति है, वह सुनना मुश्किल पड़े, उसे समझे कब और परिणमे कब? आहाहा! ताराचन्दजी! है? पुस्तक है या नहीं साथ में? देखो! यह किसका अर्थ होता है? आहाहा! भगवान! तुझे इस प्रकार से समझना ही पड़ेगा, हों! वरना दूसरा उपाय नहीं। दूसरे बचाव करना चाहे कि ऐसा हो और वैसा हो। देखो! यहाँ तो बात उड़ गयी। क्या उड़ गयी? व्यवहार पहला और निश्चय बाद में, यह बात इसमें उड़ जाती है। ध्यान रखो। किस प्रकार उड़ती है?

देखो! यहाँ कहते हैं, कब शुद्ध कहलाये? है तो शुद्ध द्रव्य ज्ञायक। परन्तु इसके ध्यान में न आवे, तब तक शुद्ध किस प्रकार? उसे शुद्ध कहाँ आया ज्ञान में? तब वह भगवान आत्मा ध्रुव चैतन्य ध्रुव शुद्ध है, वह यह द्रव्य शुद्ध है (कि) यह इस द्रव्य के (-अन्यद्रव्य का) लक्ष्य और रुचि छोड़कर सीधे इसका लक्ष्य किया, वहाँ निर्मल पर्याय प्रगट होती है, उस द्वारा यह शुद्ध है, ऐसा ज्ञात होता है। वहाँ राग पहला और उपासना बाद में ऐसा नहीं आता। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप है। यह सन्तों ने कहा है, वह घर का नहीं कहा। समझ में आया? यह वस्तु की जो मर्यादा अनादि है, वही वर्णन सन्तों ने (किया है)। दिगम्बर सन्तों ने धर्म के स्तम्भ रोपे हैं। आहाहा! ध्रुवधारा... ध्रुवधारा। दीपचन्दजी लिखते हैं, हम तो आत्मा के श्रद्धा के, ज्ञान के, अनुभव के स्तम्भ—माणेक स्तम्भ रोपे हैं। सन्तों ने मार्ग को सरल कर दिया है। ऐसा लिखा है, हों! सन्तों ने मार्ग को सरल कर दिया है। वह बात हमारे ज्ञान में आ गयी है। हमने माणेक स्तम्भ रोपे हैं। यह विवाह करे तब नहीं रोपते? विवाह करे तब वह लकड़ा नहीं (रोपते)? चार पांसडावाला होता है न? चार गति में भटकना है न! हम माणेक स्तम्भ रोपते हैं। भगवान आत्मा... ऐसी जिसे अन्तर दृष्टि हुई, उसे केवलज्ञान पाकर ही छुटकारा है। समझ में आया? उसकी केवलज्ञान की सन्धि टूटती नहीं।

कहते हैं, ऐसा जो आत्मा... देखो न! कितनी बात सिद्ध करते हैं! ओहोहो! संक्षिप्त में परन्तु शब्द (कैसे आये हैं)! श्रीमद् एक बार कहते हैं कि ज्ञानियों के एक वाक्य में अनन्त आगम रहे होंगे, वे कैसे होंगे? एक प्रश्न किया है। पण्डितजी! एक

शब्द। ज्ञानी के एक वाक्य में अनन्त आगम रहे होंगे, वे कैसे होंगे? ऐसे दूसरे को पूछा है। वह किस प्रकार से होगा? तुमको बैठता है? ऐसा कहते हैं। ज्ञानी के एक वाक्य में अनन्त आगम! आहाहा! यह तो सन्तों की वाणी है। सर्वज्ञ के सन्त अनुभव कर अनुभव कर वस्तुस्थिति कही है, उसमें से निकली हुई वाणी है। अफर वाणी। फिरे नहीं तीन काल, तीन लोक में। इन्द्र, नरेन्द्र, जिनेन्द्र जो कहते हैं, वह वस्तु है, ऐसी पुकार करते हैं।

कहते हैं कि ऐसा पहले राग मन्द हो और फिर आत्मा की सेवा की जाये, यह बात इसमें रहती नहीं। कहो, सेठी! शास्त्र पुकार करते हैं, वस्तु पुकार करती है। शास्त्र वाचक है, वाच्य तो पदार्थ है। ज्ञायकभाव उसे शुद्ध कहते हैं। क्यों? '**एवं भणंति**'। इस प्रकार से। इस प्रकार से अर्थात्? अशेष दूसरे द्रव्यों के लक्ष्य को छोड़कर यह ज्ञायकभाव, उसका लक्ष्य करके उसकी पर्याय में उसका सेवन किया जाये तो शुद्ध श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति की पर्याय द्वारा यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा ज्ञानी को भान में आता है। आहाहा! विकल्प द्वारा शुद्ध है, यह ख्याल में नहीं आता। क्योंकि उसका स्वरूप ऐसा नहीं है। राग के, कषाय के व्यवहार द्वारा निश्चय की प्राप्ति हो, यह वस्तु का स्वरूप नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ स्वभाव के वश है। ऐसे वश हुआ। वह ऐसा था, परद्रव्य की उपासना से हटा। देखो! '**एवाशेषद्रव्यान्तरभावेभ्यो**' परद्रव्य का पूरा लक्ष्य छूट गया। ऐसा स्वभाव के ऊपर लक्ष्य और ध्येय गया। ध्येय गया तब पर्याय में शुद्धता आयी, तब वह द्रव्य की उपासना की, ऐसा कहा जाता है। वह उपासना करनेवाले को आत्मा शुद्ध है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! देवीलालजी! आहाहा! अरे! भगवान! सन्तों की पद्धति क्या है, वह तुझे बैठती नहीं, उसे सुनने की पद्धति के पहलुओं की खबर नहीं होती और वह कहे कि हमको धर्म हो जायेगा। भाई! धर्म वह किस प्रकार से होगा? समझ में आया? समाज का बड़ा भाग भले विरोध करे परन्तु सत्य तो जो सत्य है, वैसा रहेगा। सत्य कहीं दूसरा होगा नहीं, तीन काल में नहीं होगा। कहते हैं, अरे! आहाहा! टीका।

यह '**एवं भणंति**' में से निकाला। '**एवं भणंति**' कहते हैं शुद्ध। यहाँ पर के लक्ष्य को छोड़कर भगवान आत्मा जो प्रमत्त-अप्रमत्तरूप शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं। इसलिए उसे प्रमत्त-अप्रमत्तपना भेदपना लागू पड़ता नहीं। ऐसा जो ज्ञायकभाव का एकपना, उसकी सेवा से अर्थात् उसकी ओर के लक्ष्य से जो निर्मल पर्याय प्रगट हुई, वह उसकी सेवा। उसके द्वारा यह आत्मा ज्ञायक है, शुद्ध है, ऐसा यहाँ कहना चाहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

वही... अर्थात् जो ज्ञायकभाव है वही। **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ...** अन्यद्रव्य के भाव शब्द से यहाँ रागादि नहीं, भाई! ऐई! ऐसा नहीं, अभी यहाँ ऐसा नहीं। यहाँ तो अन्यद्रव्य के भावों अर्थात् अन्यद्रव्य का पूरा स्वरूप। अन्यद्रव्य के भाव अर्थात् दूसरी जगह पुण्य-पाप कहते हैं, वह अभी काम नहीं। यहाँ से लक्ष्य छूटा पूरा और यहाँ गया, बस इतना। इसलिए अन्यद्रव्यों का भाव अर्थात् विकारीभाव नहीं लेना। अन्यद्रव्यों का पूरा स्वरूप। उससे लक्ष्य छोड़कर भिन्नरूप से उपासित किया जाता हुआ, ऐसी दशा में यह भिन्नरूप से सेवन किया तब यह शुद्ध है, ऐसा इसकी दृष्टि में आया। उसे—ज्ञायकभाव को इस प्रकार से शुद्ध कहा जाता है। विशेष लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल ५, रविवार, दिनांक - २१-०८-१९६६
गाथा - ६ , प्रवचन - २३

हिन्दी में। छठवीं गाथा पहले शिष्य का प्रश्न है। महाराज! अमृतचन्द्राचार्य ने प्रश्न-उत्तर की शैली रखी है कि शिष्य का प्रश्न है, उसका उत्तर दिया जाता है। पहली गाथा वास्तव में तो ज्ञायकभाव से शुरु करते हैं। तो शिष्य का प्रश्न है कि प्रभु! वह शुद्ध आत्मा किसे कहते हो? आप शुद्ध आत्मा किसे कहते हो? कि जिस शुद्ध को जानने से अपना हित का प्रयोजन सिद्ध हो, वह शुद्ध आप किसे कहते हो? समझ में आया? पहला ही प्रश्न शिष्य का यह है। '**कोऽसौ शुद्ध**' है न ऊपर शब्द? '**कोऽसौ शुद्ध आत्मेति चेत्**'। प्रश्न ही अन्दर में से लिया है। अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसी शैली की है। भगवान! दूसरी चीज़ बाद में। शुद्ध आत्मा का भान होने से आत्मा को हित होता है और कल्याण की शुरुआत वहाँ से होती है तो वह शुद्ध आत्मा कौन है? और आप शुद्ध किसे कहते हो? और शुद्ध किस प्रकार से ज्ञात हो कि यह शुद्ध है? समझ में आया? जरासा सूक्ष्म अधिकार है परन्तु ध्यान रखने से समझ में आये, ऐसा है।

उसका उत्तर कहते हैं कि ज्ञायकभाव। पाठ में इतना है। इसका अर्थ करते हैं अमृतचन्द्राचार्य। जो स्वयंसिद्ध वस्तु है। स्वयंसिद्ध का अर्थ अनादि सत्ता है और जिसका नाश नहीं होता, ऐसा अनादि स्वयंसिद्ध वस्तु है और वर्तमान उद्योतमान प्रकाशमान विशद प्रकाश चैतन्यज्योति है। समझ में आया? वह एक भाव है। ऐसा ज्ञायक एक भाव है। अन्तरंग स्वरूप अनादि की सत्तास्वरूप, नाश नहीं होनेवाला, वर्तमान में नित्य उद्योतरूप अर्थात् वर्तमान क्षणिक नहीं, नित्य प्रकाशमान और विशद चैतन्यज्योति। विशद अर्थात् ज्ञानज्योति स्पष्ट अपने अनुभव में आवे, ऐसी स्पष्ट ज्ञानज्योति है। समझ में आया? वह एक ज्ञायकभाव है, उसे ज्ञायकभाव कहते हैं। एक। पाठ में एक नहीं, पाठ में ज्ञायकभाव ऐसा लिया है। टीका में उसमें से निकाला एक ज्ञायकभाव। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, हों! गोदीकाजी! पाठ में तो ऐसा है, देखो! '**जाणगो दु**

जो भावो।' ज्ञायक भगवान आत्मा। टीकाकार ने 'एक' क्यों निकाला? क्योंकि उसकी दशा में अनेक भाव होते हैं। उससे विरुद्ध ज्ञायकभाव एक है। समझ में आया? यह मुद्दे की रकम की बात चलती है।

एक ज्ञायकभाव को शुद्ध क्यों कहा? उसकी व्याख्या करते हैं। ऐसी जो ज्ञायकवस्तु चैतन्यज्योति चैतन्य ध्रुव, चैतन्य ध्रुव तारा। तारा समझते हो? यह तारा होता है या नहीं? ध्रुव तारा। ऐसे चैतन्य ज्ञायक वस्तु एक स्वरूप ध्रुव तारा। उसे यहाँ ज्ञायकभाव कहते हैं। अब उसे शुद्ध क्यों कहते हैं? यह समझाने के लिये यह विशेष बात ली। क्या कहते हैं? देखो!

संसार की अवस्था में... ऐसा ज्ञायकभाव तत्त्व भगवान आत्मा वस्तु ज्ञायकभाव अनादि-अनन्त नित्य उद्योत स्पष्ट-विशद चैतन्यज्योति ऐसा एक ज्ञायकभाव। अब अवस्था लेते हैं। **संसार की अवस्था में अनादि बन्धपर्याय की निरूपणता से (अपेक्षा से) क्षीर-नीर की भाँति...** दूध और जल की भाँति। पेठे कहते हैं? भाँति। पेठे अपने गुजराती है। क्षीर-नीर की भाँति एक नहीं हो गये। परन्तु क्षीर-नीर की भाँति। दूध और उसकी सफेदाई तादात्म्य है। उसी प्रकार क्षीर और नीर तादात्म्य नहीं है। समझ में आया? जैसे जल और उसकी ठण्डक तादात्म्य है, एकरूप है। और जैसे दूध और सफेदाई एकरूप है। वैसे आत्मा और कर्म के बीच नहीं है। आत्मा और कर्म में क्षीर-नीर की भाँति (सम्बन्ध है)। क्षीर अर्थात् दूध और नीर अर्थात् जल, ऐसे दो प्रकार के भिन्न पदार्थ हैं। ऐसे क्षीर-नीर की भाँति कर्मपुद्गलों के साथ—निमित्त, एकरूप होने पर भी। उनके साथ एकरूप दिखता है। दोनों एकसाथ, हों! एकसाथ क्षेत्रावगाही।

तथापि... ऐसा होने पर भी **द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से देखा जाये...** भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकमूर्ति शुद्ध आनन्दघन निर्मलानन्द चैतन्यपुर आनन्द से भरपूर और चैतन्य का पिण्ड प्रभु आत्मा है। ऐसे अन्तर द्रव्यस्वभाव की अपेक्षा से देखा जाये तो जिसका मिटना कठिन है। किसका? **कषायचक्र के उदय की...** भगवान ज्ञायकभाव ध्रुवभाव एकभाव है। उसकी संसार अवस्था में कर्म के साथ क्षीर-नीर की भाँति एकपना दिखने पर भी उसमें द्रव्यस्वभाव की दृष्टि से देखने में आवे तो। आवे तो कहते

हैं ? आने पर। बड़ी-बड़ी हिन्दी नहीं आती तुम्हारी जैसी। यहाँ तो साधारण (आती है)। समझ में आया ? निजद्रव्यस्वभाव शुद्धस्वभाव ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि से देखने में आने पर। यह बात वहाँ रही।

यहाँ कषाय का उदय होना, मोह का उदय होना, वह मिटना कठिन है। अर्थात् उदय आता ही है। उदय आता है। इस ओर भगवान आत्मा ज्ञायक है, इस ओर कर्म का उदय आता है। समझने की यह चीज़ है। छठवीं गाथा मूल चीज़ है। जिसमें से सम्यग्दर्शन का विषय कौन और सम्यग्दर्शन कैसे होता है, यह बात है। समझ में आया ? तो कहते हैं, भगवान आत्मा ज्ञायकभाव शुद्धभाव। शुद्ध कैसे कहते हैं, यह बाद में कहेंगे। ज्ञायकभाव एकरूप स्वभाव संसार की अवस्था दृष्टि से देखो तो उदय का मिटना कठिन है। कषाय का कर्म का उदय आना, वह तो उसकी सत्ता का होना, उसका मिटना कठिन है। वह दूर नहीं हो सकता। परन्तु उस उदय की **विचित्रता के वश...** भगवान आत्मा निज ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यप्रभु के वश नहीं होकर, उसका आश्रय नहीं करके, उसके आधीन नहीं होकर कर्म के उदय के आधीन होकर। है ? **(उदयों की) विचित्रता के वश...** कर्म से होता है, ऐसा नहीं। कर्म के उदय की विचित्रता जो कर्म में है, उसके वश। आत्मा उसके वश हो जाता है। वश होता है तो दोष उत्पन्न होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्यज्योति ध्रुव सच्चिदानन्द प्रभु एक स्वरूप वस्तुरूप से होने पर भी संसार अवस्था में कर्म का उदय तो है, मिटना कठिन है। क्योंकि उदय की स्थिति है, जड़ की अवस्था होना, वह तो उसकी सत्ता है, परन्तु उसके वश होना। समझ में आया ? अपना भगवान आत्मा आनन्दकन्द के लक्ष्य से भ्रष्ट होकर। समझ में आया ? अपना चैतन्यस्वरूप शुद्ध ज्ञायक के लक्ष्य से भ्रष्ट होकर कर्म के उदय की स्थिति के वश होने से, आधीन होने से, उसके आधीन अपना पुरुषार्थ करने से। **प्रवर्तमान...** कर्म के उदय के वश होकर प्रवर्तमान। क्या ? **पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले...** नया बन्ध जो पुण्य और पाप, साता-असाता, घाति-अघाति, वह पुण्य-पाप का बन्ध जो जड़ में होता है, वह जड़ की उत्पत्ति में निमित्तरूप। कर्म के उदय के वश होने से नये कर्म बन्धन में निमित्त होनेवाले **पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले समस्त**

अनेकरूप शुभाशुभभाव... देखो! अनेकरूप शुभ-अशुभभाव। आत्मा कर्म के वश होने पर नये कर्म बन्धन में निमित्त होनेवाली शुभाशुभ विकारी पर्याय उत्पन्न करके शुभाशुभरूप पर्याय में—अवस्था में होता है, तथापि **उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं...** भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्य, वह शुभाशुभभाव जो नये कर्मबन्धन में निमित्त हैं, और कर्म के वश उत्पन्न किये हैं, अपनी दशा में शुभ-अशुभभाव, उनरूप ज्ञायकभाव परिणमता नहीं। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यज्योतिस्वरूप है। वह ज्ञान का पिण्ड, ज्ञान का ध्रुव तारा जो सम्यग्दर्शन का विषय ऐसा भगवान आत्मा चैतन्यज्योति ज्ञायकभाव एकरूप भाव चैतन्य की प्रकाशमय ज्योति, शुभाशुभभावरूप ज्ञायकभाव द्रव्यस्वभाव होता नहीं। समझ में आया? अरे! **उनके स्वभावरूप परिणमित नहीं होता (ज्ञायकभाव से जड़भावरूप नहीं होता)...** अर्थात् समझ में आया? भगवान आत्मा... चैतन्यज्योति है, वह पुण्य-पाप के बन्धन को उत्पन्न करने में निमित्त ऐसे शुभाशुभभाव, वह चैतन्य के प्रकाश के नूर का उनमें अभाव है। क्या कहा? यह शुभ-अशुभभाव में चैतन्य भगवान चैतन्यद्रव्य, चेतनद्रव्य, चैतन्यभाव और उसके चैतन्य का निर्मल उपयोग, ऐसी ज्ञान की पर्याय का एक अंश शुभाशुभभाव में आता नहीं। समझ में आया? समझाय छे कांई गुजराती है। समझ में आता है? थोड़ा गुजराती तो अन्दर आवे न।

कहते हैं, शिष्य ने प्रश्न किया है कि हे भगवन! आप शुद्ध आत्मा किसे कहते हो कि जिसके जानने से अपना कल्याण हो। उसके उत्तर में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा कि, '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धं**' अभी इन तीन पद का अर्थ चलता है। '**एवं भणंति सुद्धं**' बाद में आयेगा। यह तो अभी दो पद का अर्थ चलता है। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' इन दो पद अर्थ चलता है। ज्ञायकभाव ध्रुवभाव... 'सिद्ध समान सदा पद मेरो' आता है या नहीं?

चेतनरूप अनूप अमूरति, सिद्ध समान सदा पद मेरा।
मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महा तम घेरौ।

ज्ञानकला उपजी अब मोहि, कहौं गुन नाटक आगमकेरौ।
जासु प्रसाद सधै सिवमारग, वेगि मिटै भववास वसेरौ॥

'कियो परसंग' यह वश हुआ कहा न? बनारसीदास कहते हैं, मेरा स्वरूप तो सिद्ध समान ही है। शुद्ध ध्रुवस्वभाव। पर्याय से नहीं, द्रव्य से। परन्तु मेरी पर्याय में मोह का माहात्म्य करके, परसंग करके विकारीपना शुभाशुभभाव हुए, परन्तु मेरी चीज़ में उससे भिन्न होकर मुझे अब ज्ञानकला जगी है। ज्ञानकला द्वारा मैं समयसार कहूँगा, ऐसा बनारसीदास कहते हैं।

यहाँ भी आचार्य कहते हैं, यह भगवान आत्मा ज्ञायकभाव ध्रुवभाव। भाई! पाठ में है अप्रमत्त-प्रमत्त है और टीका में है प्रमत्त-अप्रमत्त। यह तो पद्य की रचना के लिये कहा है। अप्रमत्त-प्रमत्त। परन्तु वास्तव में तो प्रमत्त और अप्रमत्त है। क्योंकि ऐसे अनादि का प्रमत्त है न। फिर भले प्रमत्त अर्थात् पहले से छठवें। अर्थात् प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? कहते हैं कि भाई! भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप प्रभु, वह शुभाशुभभाव उसकी दशा में—हालत में—पर्याय में—अंश में कर्म का उदय मिटना कठिन है, वह तो परद्रव्य की सत्ता है, परन्तु उसके आधीन होकर, उसके वश होकर अपने चैतन्यस्वभाव के लक्ष्य से भ्रष्ट होकर, कर्म के आधीन होकर, जो अपनी पर्याय में नये कर्मबन्धन के कारण से शुभाशुभभावरूप पर्याय होती है। ज्ञायकभाव उसरूप नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

(ज्ञायकभाव से जड़भावरूप नहीं होता)... अर्थात् चैतन्य की डली, चैतन्य ध्रुवस्वरूप; वह पुण्य-पाप के विकल्प तो अचेतन हैं। अचेतन का अर्थ अज्ञानभाव है। अज्ञानभाव का अर्थ उनमें ज्ञान के नूर का—तेज का एक अंश नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा तो चैतन्य के नूर, चैतन्यपूर, स्वभाव से भरपूर है। गोदीकाजी! यह बात भी कभी सुनी नहीं। कहो, समझ में आया? भगवान आत्मा त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप ध्रुव प्रभु, वह पर्याय में—अवस्था में—वर्तमान दशा में कर्म का निमित्त होने से, निमित्त के आधीन होने से, उसके (-कर्म के) कारण से नहीं, अपनी दशा में शुभ और अशुभभाव हुए, परन्तु वे शुभ-अशुभभाव चैतन्य भगवान के अभाव स्वभावरूप भाव हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं समझ में आया? फिर से कहते हैं। पहले कहा था न? आत्मा द्रव्य भी चेतन है, द्रव्य चेतन है, गुण चैतन्य है, पर्याय चैतन्य की दशा है। ज्ञायक का पूर यह द्रव्य-गुण-पर्याय में व्यापक होना चाहिए। ऐसे अपने द्रव्य-गुण-पर्याय तो चैतन्यस्वरूप है। उनमें से पुण्य-पाप के भाव हैं, वह चैतन्य के अभावस्वभावरूप है। क्योंकि उनमें चेतन का एक अंश नहीं। वे अचेतन हैं, राग जड़ है। जड़ का अर्थ परमाणु नहीं। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाला परमाणु नहीं। परन्तु अज्ञान; अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? कल कहा था। ७२ गाथा। भाई! ७२ है न? उसमें कहा है। ७२, देखो! विपरीत है। देखो!

'**णादूण आसवाण**' ७२। ७२ कहते हैं तुम्हारे? बहत्तर। हमको यह नहीं आता। '**णादूण आसवाण असुचित्तं च विवरीयभावं च।**' देखो! '**विवरीयभावं**' टीका में वह जड़ है, ऐसा लिखा है। समझे? आया? **(क्योंकि जो जड़ हो, वह अपने को तथा पर को नहीं जानता...)** देखो! **आस्रवों के जड़स्वभावत्व होने से...** चौथी लाईन है, चौथी पंक्ति। **आस्रवों के जड़स्वभावत्व होने से वे दूसरों के द्वारा जाननेयोग्य है (-क्योंकि जो जड़ हो, वह अपने को तथा पर को नहीं जानता, उसे दूसरा ही जानता है-) इसलिए वे चैतन्य से अन्य स्वभाववाले ही हैं...** यह विपरीत एक शब्द का अर्थ है। अशुचि का और दुःख का दूसरा अर्थ है। यहाँ तो अपने उसका इतना काम है। समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्य का नूर पूर पुंज है। तो पर्याय में-अवस्था में शुभ और अशुभभाव हैं, वे अचेतन हैं, चैतन्य से विपरीत हैं। (आत्मा) चैतन्य है, तो वे अजीव हैं। यह चैतन्य है तो वे जड़ हैं। आहाहा! समझ में आया? जड़ का अर्थ रंग, गन्ध, रस, स्पर्श वह यहाँ नहीं लेना। परन्तु चैतन्य का नूर—प्रकाश का किरण निकलना चाहिए। प्रकाश का किरण नहीं निकलकर, जो पुण्य-पाप के विकल्प जड़ हैं, अचेतन हैं, ज्ञान के नूर का उनमें अभाव है। समझ में आया? यह तो मूल चीज़ है। यह समझे बिना उसे सम्यग्दर्शन तीन काल में कभी नहीं होता। और सम्यग्दर्शन बिना उसके व्रत और नियम

सब बिना एक के शून्य है। समझ में आया? एकड़ा (बिना) रण में पोक, अरण्य रुदन है। सेठी!

भगवान आत्मा... छठवीं गाथा शुरु की है यहाँ। मुनि है न? तो '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' यहाँ से लिया है। नहितर तो... नहितर की भाषा क्या है? नहीं तो। संयत-असंयत नहीं, ऐसा भी ले सकते हैं। सयोगी-अयोगी नहीं, ऐसा भी ले सकते हैं, संसारी-सिद्ध नहीं, ऐसा भी ले सकते हैं। समझ में आया? परन्तु मुनि अपनी भूमिका में छठवीं-सातवीं भूमिका में झूलते हैं। तो छठवीं-सातवीं भूमिका जो प्रमत्त-अप्रमत्त है, उसका निषेध करके मैं ज्ञायक हूँ, ऐसा अनुभव करते हैं तो वहाँ से लिया है कि मैं प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। समझ में आया? पर्याय का भेद, वह मैं नहीं।

कहते हैं, उनके **स्वभावरूप परिणमित नहीं...** कौन? जो ज्ञायकस्वरूप भगवान ध्रुव द्रव्यस्वभाव वस्तुस्वभाव (परिणमता नहीं), वह शुभ-अशुभ विकल्प है, वे अचेतन हैं, जड़ हैं, चैतन्य से विपरीत हैं। वे भाव चैतन्यस्वरूप (नहीं)। विकार जो जड़ है, उस भाव से द्रव्यस्वभाव उसरूप कभी परिणमता नहीं। समझ में आया? आहाहा! समझ में आता है या नहीं? ऐ... देवीलालजी! यह शिष्य का प्रश्न है, प्रभु! आप शुद्ध किसे कहते हो? और उसे जानने से हमको सम्यग्दर्शन, ज्ञान प्राप्त होता है। पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है, वह चीज़ क्या है? ऐसा शिष्य ने प्रश्न किया है। कहते हैं, सुन तो सही, प्रभु! तेरा ज्ञायक चैतन्यनूर तो अनादि है, वैसा पड़ा है। परन्तु तेरी संसारदशा में कर्म की अस्ति दूसरी चीज़ है, उसके आधीन होकर तू उसके वश होकर, अपना वशपना छोड़ दिया और पर के वश होकर नये कर्म बन्धन में तूने निमित्तपना शुभाशुभ किये। वे शुभाशुभभाव वस्तु स्वभाव से देखो तो भगवान आत्मा शुभाशुभभावरूप कभी हुआ ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : प्रमत्त नहीं, अप्रमत्त तो है?

पूज्य गुरुदेवश्री : अप्रमत्त भी नहीं। उस शुभाशुभभाव के कारण से भेद पड़ता है। पर्यायभेद है। द्रव्य में नहीं। पर्यायभेद द्रव्य में नहीं। द्रव्यस्वभाव एकरूप है। इसलिए पहले कहा ज्ञायकभाव एक है। यह चौदह गुणस्थान के भेद अनेक हैं।

यहाँ तो अभी लेना है कि भगवान आत्मा चैतन्यप्रभु ज्ञायकज्योति, वह शुभाशुभ पर्याय में हुआ; वस्तु से नहीं हुआ। वस्तु ज्ञायक चैतन्य द्रव्यस्वभाव शुभाशुभरूप से परिणमता नहीं। आहाहा! समझ में आया? **इसलिए...** इस कारण से वह **प्रमत्त भी नहीं है और अप्रमत्त भी नहीं है;...** लो, भाई! पाठ में जो लिया था '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' उसका अर्थ ऐसा लिया। पहले पद का अर्थ इतना किया। आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं क्यों? प्रमत्त-अप्रमत्त क्यों नहीं? ज्ञायकभाव त्रिकाल शुद्ध है, वह वर्तमान पर्याय में कर्म के वश—आधीन होकर शुभाशुभ परिणाम नये बन्ध में संयोगरूप से उसमें कारण (रूप) स्वयं उत्पन्न करता है, स्वभाव की एकता उत्पन्न नहीं करता। अपने शुद्ध ज्ञायकस्वभाव की एकता उत्पन्न नहीं करके नये कर्मबन्धन में निमित्त हो, ऐसे संयोग में कारण हो, ऐसे शुभाशुभभाव, जो अचेतन है, जो चैतन्य के नूर के पूर में वे भाव हैं ही नहीं। आहाहा! भैया! समझ में आया? यह तो गाथा बराबर ऐसी आयी है। तुम्हारा पहला दिन है यहाँ। अभी तो शुद्ध में विशेष लेना है।

कहते हैं, ऐसा भगवान... **इसलिए...** यह कारण दिया। इतने तो कारण दिये। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' यह सिद्ध करना है। '**ण वि होदि**' आत्मा पर्याय में जो प्रमत्त-अप्रमत्त है, वह ज्ञायकभाव त्रिकाल प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, ऐसा साबित करना है, ऐसा सिद्ध करना है। यह सिद्ध करने में अमृतचन्द्राचार्य ने पहली इतनी दलील ली। ऐई!

मुमुक्षु : जोरदार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : जोरदार है दलील? यह वकील है न, इसलिए कहते हैं।

इतना कहकर प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, इतना सिद्ध किया। चन्दुभाई! भगवान चैतन्यज्योति द्रव्यस्वभाव। पर्याय में शुभाशुभ परिणाम नये बन्ध में उत्पन्न होनेवाली दशा जो परवश से करता है, (वह) हो, परन्तु वस्तुस्वभाव उसरूप कभी नहीं होता। समझ में आया? ज्ञायकभाव चैतन्यज्योति ध्रुवस्वभाव अनादि-अनन्त नित्य उद्योत (रूप) वर्तमान क्षणिक नहीं। आदि नहीं, अन्त नहीं, वर्तमान क्षणिक नहीं। नित्य त्रिकाल उद्योतरूप प्रभु आत्मा वह वस्तु, वह शुभाशुभ परिणामरूप नहीं होती। इसलिए

वह प्रमत्त भी नहीं और अप्रमत्त भी नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं? ताराचन्दजी पण्डितजी! इन्द्रमलजी! समझ में आया या नहीं? हिन्दी भाषा, अब आज तो हिन्दी में आया। आहाहा!

प्रभु! कुन्दकुन्दाचार्य को शिष्य ने प्रश्न किया। प्रभु! आप शुद्ध किसे कहते हो? शुद्ध किसे कहते हो? शुद्ध कहने में जो उत्तर दिया, उसमें पहले तो यह उत्तर दिया कि भगवान आत्मा ज्ञायकभावस्वरूप जो द्रव्य-वस्तु अनादि-अनन्त प्रभु आदि-अन्त रहित और नित्य प्रगटरूप, वस्तु तो प्रगटरूप है न? वस्तु कहाँ अप्रगट अर्थात् कि नहीं है। ऐसी भगवान चीज़ प्रभु आत्मा ज्ञायकज्योति पर्याय में शुभाशुभभाव होने पर भी, वस्तु उसरूप से हुई नहीं। समझ में आया? एक समय की अनित्य तादात्म्यपर्याय, नित्य तादात्म्य चैतन्य में एकरूप कभी नहीं होती। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **वही...** अब आया। शुद्ध की व्याख्या थी। '**एवं भणंति**' तीसरे पद की व्याख्या करते हैं अब। '**एवं भणंति सुद्धं**'। इसका क्या अर्थ है? इसमें बहुत मर्म है। भगवान आत्मा ऐसा का ऐसा ज्ञायकभाव एक स्वभावरूप त्रिकाल स्थित है। वह पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले शुभाशुभभावरूप होता नहीं। **वही...** वही कौन? जो अप्रमत्त-प्रमत्त नहीं है, ऐसा ज्ञायकभाव। **वही...** जो ज्ञायकभाव वस्तु, जो प्रमत्त-अप्रमत्त शुभाशुभ परिणामरूप नहीं होने से प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है, वही वस्तु। समझ में आया? **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ 'शुद्ध' कहलाता है।** इस लाईन में पूरा अनुभव रख दिया है। क्या कहते हैं? वही प्रभु ज्ञायकभाव वस्तुस्वभाव समस्त अन्यद्रव्य (अर्थात्) कर्म का द्रव्य, कर्म का गुण, कर्म के उदय की पर्याय, वह सब अन्यद्रव्य है। समझ में आया? कर्म है, वह जड़ है, उसके गुण जड़ हैं और उनका उदय जड़ है। उनका उदय जड़ है। उदय जड़ है न? उसकी पर्याय है न? जड़ की पर्याय है न? समझ में आया?

कहते हैं, **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों...** उसकी जो जड़ की पर्याय, उदय की पर्याय जड़ की, हों! अपनी पर्याय में नहीं, जड़ की पर्याय-कर्म की पर्याय से भिन्नरूप से, उसे भिन्न करके **उपासित होता हुआ...** क्या कहते हैं? ज्ञायकभाव एक समय में शुद्ध

ध्रुव है, शुभाशुभरूप हुआ नहीं, उसे हम शुद्ध क्यों कहते हैं ? कि वह ज्ञायकभाव, पर जो अन्यद्रव्य, उनके द्रव्य, गुण और पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, उनके भाव से पृथक् होकर अपना स्वभाव ज्ञायक है, उसके ऊपर लक्ष्य करने से अपनी पर्याय में द्रव्य की सेवा हुई। जो कर्म की सेवा करने से राग-द्वेष उत्पन्न होते थे, वे अपना ज्ञायकभाव है, उसकी सेवा की—उपासना की। उपासना का अर्थ परद्रव्य से लक्ष्य छोड़कर ज्ञायकभाव के ऊपर लक्ष्य किया तो अपनी पर्याय में निर्मल सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो प्रगट हुए, वह उपासना हुई। भाई!

वही... (अर्थात्) जो ज्ञायकभाव है, वह **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से...** उस अन्यद्रव्य के भाव में यहाँ विकारी भाव नहीं लेना। वह विकारी अन्यद्रव्य जो दूसरी जगह आता है (कि) अन्यद्रव्य के भाव विकारी परभाव, वे यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो मात्र अन्यद्रव्य के द्रव्य, गुण, पर्याय अन्यद्रव्य के भाव (लेना है)। ऐसे लक्ष्य है, वह लक्ष्य छोड़कर, परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर जो बहिर् पदार्थ हैं, आत्मा से बाह्य पदार्थ हैं, उनका लक्ष्य छोड़कर, लक्ष्य छोड़कर अन्तर्मुख लक्ष्य करने से (भिन्न उपासना होती है)। समझ में आया? **वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से...** उससे भिन्नरूप से। ऐसे ज्ञायक की ओर लक्ष्य करके, पर का लक्ष्य छोड़कर निज ज्ञायकभाव का लक्ष्य करके **भिन्नरूप से उपासित होता हुआ...** सेवित होता हुआ। वहाँ सम्यग्दर्शन में और सम्यग्ज्ञान में जो शुद्धता प्रगटी है, वह शुद्धता प्रगटी है, वह द्रव्य की सेवा है, वह द्रव्य की उपासना है। समझ में आया?

मुमुक्षु : सेवा धर्म।

पूज्य गुरुदेवश्री : सेवा धर्म यह है। सेवा धर्म कौन दूसरे की सेवा कर सकता है? धूल में? स्वतन्त्र पदार्थ है, उसकी पर्याय कौन कर सकता है? यहाँ तो राग की सेवा करना, वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्ञायक डली—वस्तु चैतन्यपुर चैतन्यनूर आनन्द का पूर ऐसी ज्ञायक चीज़ है, वह परद्रव्य का लक्ष्य... उपासना का अर्थ परद्रव्य से भिन्न। अपने द्रव्य से परद्रव्य जो है, उसके अस्तित्व में जो लक्ष्य था, वह लक्ष्य छोड़कर

भिन्नरूप से उपासित होता हुआ... उससे भिन्नरूप से सेवते अर्थात् द्रव्य की ओर लक्ष्य होने से, उसकी पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ और मति-श्रुतज्ञान से आत्मा प्रत्यक्ष हुआ। भाई! आहाहा! समझ में आया? आत्मा शुद्ध किसे कहते हैं? जब अपनी पर्याय में परलक्ष्य जो था, उसे छोड़कर स्व चैतन्य का लक्ष्य करके अपनी पर्याय में शुद्धता सम्यग्दर्शन हुआ, मति-श्रुतज्ञान हुआ, शान्ति का अंश-चारित्र का अंश (प्रगट) हुआ, वह द्रव्य की उपासना की। ताराचन्दजी!

समयसार भरतक्षेत्र में ऐसा शास्त्र और टीका कहीं नहीं। सर्वज्ञ परमात्मा के पेट (अभिप्राय) खोलकर रख दिया है। दिगम्बर सन्त दिगम्बर मुनि भावलिंगी सन्त थे। ओहोहो! छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलनेवाले! तो कहते हैं, वह नहीं, वह नहीं। यह छठवीं-सातवीं प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय के दो भाग पड़ जाते हैं, वे नहीं। मैं तो ज्ञायक हूँ।

जब पर्यायबुद्धि से हटकर ज्ञायकबुद्धि हुई तो द्रव्य की उपासना हुई। कर्म के निमित्त के लक्ष्य में शुभाशुभ परिणाम विकार की सेवा थी। विकार की सेवा थी, संसार की सेवा थी, परिभ्रमण की सेवा थी। समझ में आया? यह ज्ञायक प्रभु चैतन्यद्रव्य पर का लक्ष्य छोड़कर, परद्रव्य का और परद्रव्य के भाव का, परद्रव्य, हों! विकारी परिणाम नहीं, परन्तु पर का लक्ष्य छोड़कर यहाँ द्रव्य के ऊपर लक्ष्य जाता है तो अपनी पर्याय में विकाररहित शुद्ध द्रव्य की श्रद्धा और सम्यग्ज्ञान में आत्मा में मति-श्रुतज्ञान में प्रत्यक्ष होता है। उस स्वसंवेदन में आत्मा प्रत्यक्ष हुआ, वह स्वसंवेदन हुआ। इस अपेक्षा से कहा कि यह आत्मा शुद्ध है। समझ में आया? यहाँ तो द्रव्य शुद्ध सिद्ध करना है। परन्तु द्रव्य शुद्ध किसे सिद्ध होता है? समझ में आया?

भगवान आत्मा में एक प्रकाश नाम का अनादि-अनन्त गुण है। जैसे आनन्द और ज्ञानगुण है, वैसे चैतन्यपुर में एक प्रकाश नाम का गुण है। उस प्रकाशगुण का कार्य क्या? कि आत्मा को प्रत्यक्ष वेदन में प्रत्यक्ष हो जाये, उसका नाम प्रकाश नाम का गुण है। समझ में आया? प्रथम सम्यग्दर्शन के काल में आत्मा प्रत्यक्ष हो जाता है। आहाहा! समझने की चीज़ है, हों! वर्तमान में गड़बड़ बहुत चलती है।

आचार्य महाराज ने बहुत स्पष्टीकरण किया है। भाई! प्रभु! तू तो ज्ञायक है न,

नाथ! तेरी चीज़ तो त्रिकाल स्वरूप से भरी हुई प्रभु चैतन्य है न। वह चैतन्यनाथ सनाथ वह कहीं पुण्य-पाप के भावरूप वस्तु कभी नहीं होती। उस वस्तु की, परवस्तु का लक्ष्य छोड़कर वस्तु की दृष्टि जब हुई तो भिन्नरूप से उपासना करने से उपासित होता हुआ—सेवित होता हुआ। कौन सेवित होता हुआ? पर से भिन्नरूप से सेवित होता हुआ, निज द्रव्य सेवित होता हुआ, निज द्रव्य में सम्यग्दर्शन हुआ, जहाँ पर का लक्ष्य छोड़ा, सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ, स्वसंवेदन ज्ञान में आत्मा यह शुद्ध है, आत्मा यह शुद्ध है, ऐसा स्वसंवेदनज्ञान में प्रसिद्ध हुआ। समझ में आया?

फिर से। यह तो बात कुछ एक-दो बार में निपटे ऐसी नहीं। आहाहा! यह तो शास्त्र सिद्धान्त है और सिद्धान्त वह सन्तों के कहे हुए। सर्वज्ञ के एक-एक वचन में अनन्त आगम भरे हैं। एक शब्द में अनन्त आगम भरे हैं। आहाहा! समझ में आया? कहते हैं, भगवान! शिष्य ने प्रश्न किया कि प्रभु! शुद्ध किसे कहते हो? सुन! भगवान आत्मा चैतन्यज्योति ज्ञायक है, वह पर का लक्ष्य छोड़कर अपने लक्ष्य में आया, अपने को ध्येय बनाया, अपने को ज्ञेय बनाया... समझ में आया? तो बहिर्मुख जो लक्ष्य था, ऐसे बहिर्मुख था, वह अन्तर्मुख हुआ। बहिर्मुख दिशा में लक्ष्य था, वह (अन्तर्मुख हुआ)। **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों...** वह बहिर् है। उससे भिन्नरूप से। तो बहिर्पने से लक्ष्य छोड़कर बहिर्पने से भिन्न हुआ। अन्तर्मुख गया। अन्तर्मुख होने से द्रव्य का लक्ष्य होता है, द्रव्य का ध्येय होता है, द्रव्य ज्ञान में ज्ञेय होता है। आहाहा! समझ में आया? राजमलजी! गाथा भी पहली ऐसी आयी है। आ गयी। गुजराती था तो कोई नहीं समझे होंगे। हिन्दी में फिर से लो।

भाई! यह तो प्रथम चीज़ की बात है। प्रथम आत्मा का ज्ञान, सम्यग्दर्शन किस प्रकार से हो, यह चीज़ है। समझ में आया? भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने श्लोक कहा और भगवान कुन्दकुन्दाचार्य तो प्रभु के पास गये थे, आठ दिन रहे थे। परमात्मा त्रिलोकनाथ सीमन्धर प्रभु वर्तमान विराजते हैं। उनके पास गये थे, आठ दिन रहे थे। वहाँ से आकर फिर यह शास्त्र बनाये हैं। पोन्नूर हिल। मद्रास से अस्सी मील उस ओर है। वन्देवास गाँव है, उससे पाँच मील दूर पोन्नूर हिल टेकरी है। सोने की टेकरी।

उसका नाम पोन्नूर अर्थात् सोने की टेकरी कहते हैं। पोन्नूर का अर्थ सोना होता है। समझ में आया? वहाँ से भगवान के पास गये थे। वहाँ आस-पास में ताड़पत्र बहुत हैं अभी। यह तो दो हजार वर्ष हो गये। ताड़पत्र के ऊपर सब लिखा है। ओहोहो!

'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो। एवं भणंति सुद्धम्' यह ज्ञायक प्रभु पूर्णानन्दस्वरूप एकरूप। एकरूप कहा है न पहले? भाई! ज्ञायक एक भावरूप। एक भावस्वरूप। यह अनेक भाव के ऊपर जो लक्ष्य था, उससे हटकर, बहिर्मुख जो लक्ष्य था, वह अन्तर्मुख गया। अन्तर्मुख हुआ तो द्रव्य ध्येय हो गया, द्रव्य ज्ञेय हो गया और उसमें चारित्र की स्थिरता हो गयी। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं कि, **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से...** जहाँ पर से भिन्न अर्थात् पर का जहाँ लक्ष्य छूट गया, उसका नाम भिन्नरूप से। और **वही...** वही है न? वही **भिन्नरूप से उपासित होता हुआ...** भगवान आत्मा आठ वर्ष की बालिका को भी सम्यग्दर्शन होता है तो इस प्रकार से होता है और मेंढ़क को भी सम्यग्दर्शन होता है तो इस प्रकार से होता है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ।' समझ में आया?

कहते हैं, भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर सन्त मुनि। जो साक्षात् परमात्मा के पास भरतक्षेत्र में से गये थे। आठ दिन वहाँ रहे थे। वर्तमान प्रभु अभी विराजते हैं, उनके पास गये थे। अभी बहुत वर्ष रहनेवाले हैं। ओहो! अमृतचन्द्राचार्य ने स्वयं और स्वयं प्रश्न उठाया। प्रभु! हमको प्रश्न उठा है कि शुद्ध किसे कहते हो? दूसरा कोई प्रश्न पहले नहीं किया कि महाराज! हमको पुण्य किस प्रकार से बँधे? हमको कषाय की मन्दता पहले किस प्रकार से हो? हमारे व्यवहार की पहले शुद्धि किस प्रकार से हो? ऐसा प्रश्न (नहीं किया)। यह प्रश्नकार शिष्य की पात्रता ऐसी है कि प्रभु! मुझे तो आत्मा शुद्ध आप कहते हो, वह कौन है? बस, यह मुझे जानना है। कोई मान, सन्मान, इज्जत, कीर्ति कुछ मुझे नहीं चाहिए। मुझे तो प्रभु! आप शुद्धात्मा किसे कहते हो? नाथ! आप ज्ञायकभाव को शुद्ध किस प्रकार से कहते हो? मुझे वह चाहिए है। आप समझाओ। उसके उत्तर में मूल मार्ग कहा है। मूल मार्ग अनादि सनातन, सनातन सत्य मार्ग प्रभु का (यह है)।

कहते हैं, भाई! प्रभु! तू तो ज्ञायकभाव रहा है न अनादि से। और तेरी पर्याय में चाहे तो शुभाशुभभाव हो, इससे प्रमत्त-अप्रमत्त के पर्यायभेद पड़ते थे। समझ में आया? परन्तु शुभाशुभभावरूप आत्मा ही हुआ नहीं, द्रव्य नहीं हुआ तो द्रव्य में प्रमत्त-अप्रमततपना लागू नहीं पड़ता। लागू होता कहते हैं न? लागू होता कहते हैं न? घटित नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, **वही समस्त अन्य द्रव्यों के...** क्या कहते हैं? **अन्य द्रव्यों के भावों से...** अर्थात् अन्यद्रव्य जो कर्म आदि के द्रव्य-गुण-पर्याय उदय के भावों से लक्ष्य छोड़कर, भावों से भिन्नरूप से, भावों से भिन्नरूप से। जो उसके आधीन होता था, उनसे भिन्नरूप से। पर का बहिर्मुख लक्ष्य छोड़कर, बहिर्मुख का लक्ष्य छोड़कर भिन्नरूप से उपासित होता हुआ। इसका अर्थ अन्तर्मुख दृष्टि और ज्ञान किया, वर्तमान ज्ञान में ज्ञेय बनाया ध्रुव को, वर्तमान श्रद्धा में ध्येय बनाया द्रव्य को। ऐसे द्रव्य के ध्येय और लक्ष्य से जो अपनी पर्याय में द्रव्य की सेवा हुई अर्थात् जो पुण्य-पाप के भाव उत्पन्न होते थे, वही द्रव्य के लक्ष्य से, द्रव्य की सेवा से सम्यग्दर्शन, सम्यक् श्रुतज्ञान, मतिज्ञान स्वसंवेदन और स्वरूप के आनन्द का अंश, स्थिरता का अंश अनन्त गुण का, जितने गुण हैं, उन अनन्त गुण का पिण्ड जो द्रव्य है, उसकी सेवा करने से, एकत्व करने से अनन्त गुण की व्यक्तता शुद्धता का अंश सम्यग्दर्शन में प्रगट होता है। समझ में आया?

इसीलिए 'सर्व गुणांश, वह समकित', ऐसा कहने में आया है। 'सर्व गुणांश, वह समकित।' समझ में आया? ऐसा क्यों कहा? कि भगवान आत्मा अनन्त गुण जितने हैं... कितने अनन्त गुण हैं? समझ में आया? जीव की संख्या से, सिद्ध की संख्या से संसारी जीव की संख्या अनन्तगुणी है। उसकी संख्या से परमाणु की अनन्तगुणी संख्या है। उनकी संख्या से तीन काल के समय अनन्तगुणे हैं। उनकी संख्या से आकाश के प्रदेश अमाप अनन्तगुणे हैं। उनसे भी अनन्तगुणे एक जीव के गुण हैं। आहाहा! इतने अनन्त गुण का स्वभाव है, उसमें संख्या क्या है? आहाहा!

यह चीज़ तो कभी सुनी नहीं। पहले कहा था न? '**सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा**' यह बात सुनी है, विकल्प करना, भोगना, राग करना, भोगना।

बस, यह पुण्य करना और ऐसे दया पालना। यह करना और भोगना तूने मिथ्यादृष्टिरूप से सुना है। भगवान के पास गया तो यह कथा तूने सुनी है। क्यों? कि तेरी रुचि में तो राग बहिर्मुख विकल्प पड़ा है। उसमें तेरी रुचि है तो तूने भगवान के पास भी वह बात सुनी। भगवान का कहना क्या है, उसे तूने स्पर्श किया नहीं। तूने छूने नहीं दिया, स्पर्शने नहीं दिया। समझ में आया? ताराचन्दजी! आहाहा! शास्त्र पढ़ डाले, ग्यारह अंग पढ़ डाले। पढ़ डाले समझे या नहीं? वाँचकर... तेरे घर में। नौ पूर्व वाँच डाले। परन्तु क्या है? भगवान आत्मा को शुद्ध कैसे कहते हैं? और किस प्रकार से उस शुद्ध का अनुभव होता है? समझ में आया? यह बात इसने रुचि में ली नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि, **अन्य द्रव्य के भावों से....** यहाँ पुनरुक्ति दोष नहीं लगता। समझ में आया? कोई कहे कि दो, पाँच बार क्यों कहते हैं? यहाँ तो लाख बार बात आती है। अन्दर की भावना है न। इस वस्तु को पुनरुक्ति नहीं लगती। क्योंकि बारम्बार अन्दर एकाग्रता करना है, बारम्बार एकाग्रता होना, वह पुनरुक्ति नहीं परन्तु शुद्धि की वृद्धि है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब प्रभु बहिर् का लक्ष्य पर्याय में—अवस्था में—हालत में—दशा में पर का लक्ष्य करता था। तो कहते हैं कि भिन्नरूप से। परद्रव्य के भाव से भिन्नरूप से। पर का लक्ष्य छूट गया, अपने में लक्ष्य हो गया। निज ज्ञायकस्वरूप में लक्ष्य आया तो पर्याय में वह द्रव्य की सेवा हुई। उसका लक्ष्य किया तो उसकी सेवा हुई। पर का लक्ष्य किया तो राग-द्वेष की सेवा हुई। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह तो धीरे-धीरे चलता है। वह बात ऐसी है। जरा इसे विचार भी रहे न।

भगवान आत्मा... कहते हैं, भिन्नरूप से। पर का लक्ष्य छूटने से **उपासित होता हुआ...** सेवन किया हुआ। अर्थात् स्व अन्तर्मुख लक्ष्य, ध्येय किया तो उसकी—द्रव्य की सेवा की। उसका आदर किया। जो पर का आदर था, कर्म के उदय के लक्ष्य में विकार का आदर था, बहिर्मुखी वृत्तियों का आदर था। बहिर्मुखी वृत्ति समझे? शुभाशुभभाव का आदर था, उनका लक्ष्य छोड़कर... उनका आदर गया, यहाँ अन्तर्मुख लक्ष्य किया तो आत्मा का आदर हुआ। आत्मा ज्ञायकभाव का आदर हुआ, लक्ष्य हुआ, ध्येय हुआ... कब? कि उसकी पर्याय में शुद्धता का आत्मा का प्रत्यक्ष अनुभव हुआ। आहाहा!

आत्मा के सम्यग्दर्शन के प्रथम समय में मति-श्रुतज्ञान में आत्मा को पकड़ने में प्रत्यक्ष हो जाता है। जो मति और श्रुत परालम्बी ज्ञान था... समझ में आया? परालम्बी था, वह लक्ष्य छूटा। वर्तमान श्रद्धा—ज्ञान में परालम्बीपना था, वह तो मिथ्याश्रद्धा थी। परालम्बी पुण्य-पाप की श्रद्धा मिथ्याश्रद्धा, पुण्य-पाप का ज्ञान मिथ्याज्ञान, मति-श्रुत में पुण्य-पाप का ज्ञान मिथ्याज्ञान एकान्त ज्ञान, परप्रकाश का ज्ञान मिथ्याज्ञान है। समझ में आया?

इस प्रकार भगवान आत्मा ने... भगवान कुन्दकुन्दाचार्य के अर्थ करते हुए टीकाकार अमृतचन्द्राचार्य, वे भी सन्त मुनि दिगम्बर भावलिंगी सन्त हैं, कहते हैं कि परभाव की सेवा छूट गयी। भिन्नता की, अपने में आया तो 'उपासित होता हुआ 'शुद्ध' कहलाता है।' उपासित होता हुआ शुद्ध कहलाता है। ऐसे का ऐसा द्रव्य शुद्ध है, शुद्ध है (बोले)—ऐसा नहीं। अपनी दृष्टि उसमें लगायी और शुद्ध श्रद्धा, शुद्ध ज्ञान और शुद्ध संवेदन हुआ, आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ तो उस दशा में यह आत्मा शुद्ध है, ऐसा कहा जाता है। आहाहा! वह तो शुद्ध ही है, परन्तु पर्याय में शुद्धता द्वारा अन्दर में लक्ष्य नहीं किया, तब तक उसे 'यह शुद्ध' है—ऐसा प्रतीति में, अनुभव में आया नहीं। पर्याय में अन्दर गुलाँट खाकर श्रद्धा, ज्ञान, शान्ति उत्पन्न हुए, ऐसी शान्ति दशा प्रत्यक्ष ज्ञान और सम्यग्दर्शन, ऐसी दशा हुई, वह उपासना (कहलाती है)। उससे यह द्रव्य शुद्ध है, ऐसा कहने में आता है। नहीं तो वह द्रव्य शुद्ध है, शुद्ध है, उसे कहा नहीं जाता। विशेष लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल ६, सोमवार, दिनांक - २२-०८-१९६६
गाथा - ६ , प्रवचन - २४

छठवीं गाथा चलती है। देखो! इस समयसार की शुरुआत ही यहाँ से होती है। कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने ऐसा कहा कि हमें आत्मा का उपदेश सर्वज्ञ परम्परा से हमारे गुरुपर्यन्त तक जो उपदेश मिला, उससे हमारी अन्तर आत्मऋद्धि / आत्मवैभव आनन्दसहित की जो दशा उत्पन्न हुई है, उस वैभव से हम समयसार कहेंगे। समझ में आया? उपदेश मिला और अन्यमत के एकान्त का अतृट युक्ति से खण्डन करके आत्म सन्मुख में हमारी शान्ति और आनन्द का वैभव हमारी अवस्था में प्रगट हुआ है और तर्क से, आगम से, अन्यमति के खण्डन से और स्वयं के अनुभव से - ऐसी बात की है।

हमारा आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द जो द्रव्य था, द्रव्य था, अन्तर में उस ज्ञायकभाव का आश्रय लेकर हमारी वर्तमान दशा में प्रचुर स्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। प्रचुर—बहुत... मुनि है न! प्रचुर—बहुत स्वसंवेदनरूप स्वसंवेदन प्रगट हुआ है। आहाहा! ऐसा हमारे चैतन्य के वर्तमान आनन्द और स्ववेदन की भूमिका में रहकर हम समयसार सुनाते हैं - ऐसा कहते हैं। सेठी!

शिष्य का प्रश्न हुआ कि प्रभु! मूल शुद्ध जो (आत्मस्वरूप) कहते हो और आपको भी सर्वज्ञ से लेकर आपके गुरुपर्यन्त जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश प्राप्त हुआ तो वह शुद्ध (आत्मतत्त्व) कौन है? देखो! यहाँ मूल प्रयोजनभूत बात की रकम है। समझ में आया? वह शुद्ध कौन है कि जिसे शुद्ध जानने से (सब जाना), ऐसा कहा जाता है? दूसरा सब जाने परन्तु शुद्ध को न जाने तो कुछ नहीं जाना। समझ में आया? तो भगवान! वह शुद्ध कौन है कि जिसे जानने से ज्ञान हुआ और जिसे जानने से आत्मा सफल हुआ? आहा! सेठी! समझ में आया? मूल प्रयोजनभूत रकम की बात पूछता है। आहाहा! यह बात अनन्त काल में इसे मिथ्यादृष्टि का बड़ा पाप और सम्यग्दृष्टि में बड़ा

धर्म है, ऐसी महिमा और मिथ्यात्व में बड़ा पाप है, उसका इसे ख्याल अनन्त काल में नहीं आया। कहते हैं, भगवान! वह शुद्ध किसे कहते हैं? तो कहते हैं, योगफल लिया है।

भगवान आत्मा जो ज्ञायकस्वरूप है, शुद्ध चैतन्यमूर्ति है, द्रव्यस्वभाव है, चैतन्य के नूर का पूर स्वभाव है, वह स्वभाव वर्तमान शुभाशुभभावरूप पर्याय में दिखते हैं, पर्याय में - अवस्था में - हालत में (दिखते हैं) तो भगवान ज्ञायकस्वभाव जो है, वह शुभाशुभ परिणामरूप हुआ ही नहीं। समझ में आया? वह शुभाशुभभावरूप हुआ ही नहीं, ऐसा ज्ञायकभाव त्रिकाल शुद्ध आनन्दकन्द सच्चिदानन्द सिद्धस्वरूप को परद्रव्य से भिन्न, कर्म आदि का लक्ष्य छोड़कर, परद्रव्य से भिन्न... क्या कहा? देखो!

समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ... यह शब्द उसमें सेवित हुआ, ऐसा शब्द है। उसमें भी ऐसा लिया है, सेवित हुआ। यह तो उपासित होता हुआ (कहा है)। पण्डितजी! पण्डितजी को पूछा था। होता हुआ, ठीक है। जयचन्दजी पण्डित ने सामान्य अर्थ किया है परन्तु यह अर्थ अच्छा है। क्या कहा?

भगवान आत्मा शुद्ध है। ज्ञायक जो चैतन्यभाव ध्रुव है, वह शुभ-अशुभभावरूप हुआ नहीं, इसलिए उसे प्रमत्त-अप्रमत्त कहने में नहीं आता। दूसरी दृष्टि से कहें तो अकेला ज्ञायकभाव ही पर्याय की दृष्टि बिना, अवस्था के लक्ष्य बिना ज्ञायकभाव है, वही द्रव्यस्वभाव है। समझ में आया? उसमें पुण्य-पाप का कोई उदयभाव या उपशमभाव या क्षयोपशमभाव या क्षायिकभाव की पर्याय, ज्ञायकभाव जो दृष्टि का विषय है, उसमें वह नहीं आती। समझ में आया?

यहाँ तो पहले इतना सिद्ध किया कि अशुद्धता नहीं है, ऐसा पहले सिद्ध करना है। समझ में आया? अशुद्धता का अर्थ ही यह हुआ कि प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं तो चौदह गुणस्थान का भेद अन्दर में नहीं है। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्य ध्रुव पूर्णानन्द प्रभु, शुभाशुभरूप नहीं हुआ, तो भेदरूप नहीं हुआ, चौदह गुणस्थानरूप नहीं हुआ। समझ में आया? ऐसे ज्ञायकभाव को परद्रव्य से भिन्न अपने में अपने में उपासित होता हुआ। यहाँ वजन है। पण्डितजी को कहा तो पण्डितजी ने कहा, स्वाश्रय ठीक है। स्व आश्रित... उत्पन्न होता है या नहीं?

उपासित होता हुआ... अपने से पुरुषार्थ करके उपासित होता हुआ ऐई! समझ में आया? कोई कर्म का मन्दपना हुआ या ऐसा हुआ तो हमारा आत्मा उपासित हुआ, ऐसा नहीं है। समझ में आया? क्या कहते हैं? **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से...** अन्य द्रव्य के भाव, हों! यहाँ विकार की बात नहीं है। जड़कर्म, उसकी शक्तियाँ, उसकी वर्तमान उदयभाव की दशा, वह सब जड़भाव है। उनसे भिन्नरूप से अर्थात् जो कर्म का उदय है, वह जड़भाव है, जड़ की पर्याय है, उसका जो लक्ष्य था, उस जड़भाव से भिन्न, पर से भिन्न है। उससे लक्ष्य छुड़ाकर अपना ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्यध्रुव है, उसे परभावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ। अपनी सेवा अपने से करता हुआ। आहाहा! पण्डितजी ने बराबर कहा, 'होता हुआ' में स्वआश्रित आता है न? उसमें स्व-आश्रित है, पण्डितजी! यही हमारे अन्दर से निकालना था।

भगवान आत्मा... कोई विकल्प था या निमित्त था या कर्म में कोई मन्दता हो गयी, उस कारण से आत्मा भिन्न लक्ष्य करके उपासने में आया, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ज्ञायकप्रभु ध्रुवस्वरूप, वह पर के लक्ष्य में पर्यायबुद्धि में था, पर्याय की अंशबुद्धि में था तो पर का लक्ष्य था। समझ में आया? जब पर का लक्ष्य छूटा तो पर्यायबुद्धि छूट गयी। अपना ज्ञायकभाव जो शुद्ध है, ज्ञायकभाव है, उसे उपासित होता हुआ, अपने स्वभाव की सेवा करते हुए उस द्रव्य को शुद्ध कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? द्रव्य को, हों! कहना है तो ज्ञायक को शुद्ध, परन्तु उसे शुद्ध कब कहा जाता है? —कि उस ओर लक्ष्य करके अपनी पर्याय में द्रव्य का सेवन करने में, उपासित होता हुआ जो वीतरागी पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, शान्ति की और आनन्द की पर्याय से आत्मा को सेवन में आने पर, उपासने में आने पर, द्रव्य को शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय की शुद्धि भी साथ में?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ पर्याय की शुद्धि नहीं लेना है। पर्याय की शुद्धि तो पूर्ण हो, तब है। परन्तु यहाँ द्रव्य के लक्ष्य से पर्याय की जो शुद्धि होती है, वह अल्प होती है। समझ में आया? पर्याय की शुद्धि द्रव्य के लक्ष्य से हुई, अभी पूर्ण शुद्धि नहीं हुई।

मुमुक्षु : द्रव्य पूरा शुद्ध हो जाए....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो द्रव्य पर्याय में पूर्ण शुद्ध हो जाए, परन्तु ऐसा नहीं है। समझ में आया? यहाँ तो द्रव्य को शुद्ध क्यों कहते हैं? (उसकी बात चलती है)। पर्याय में शुद्ध है, वह तो पूर्ण हो, तब शुद्ध हो जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में चैतन्यबिम्ब प्रभु, जिसमें अनन्त-अनन्त सिद्ध परमात्मा की पर्याय सादि-अनन्त जितनी पर्याय है, वह सब आत्मा में पड़ी है, परन्तु उनका भेद नहीं है। एक भगवान ज्ञायकभाव एकरूप, उस ओर का लक्ष्य करके अपनी पर्याय में द्रव्य को सेवन करने में आने पर, उपासित होता हुआ अपने पुरुषार्थ से अपने आत्मा की सेवा करने में आने पर, द्रव्य को शुद्ध कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? तब सम्यग्दर्शन होता है। सूक्ष्म है, चन्दुभाई! तुम्हें बहुत अभ्यास करना पड़ेगा। शशीभाई! यह हमारे मोढ है, बड़े अभ्यासी थे, हों! मोढ, राणपुर के वैष्णव। गुलांट खा गये। बहुत होशियार है, वैष्णव, सब पलट गया। यह मार्ग है। बहुत विचारक है। समझ में आया? यह तो वे वैष्णव हैं, इसलिए वैष्णव का दृष्टान्त दिया। समझ में आया? आत्मा कोई वैष्णव नहीं और कोई पर्याय में जैन का नाम नहीं लिखा। विष्णु तो ज्ञान स्व-पर का प्रकाशक होता है, इस अपेक्षा से आत्मा को विष्णु कहते हैं। पूरे लोकालोक को जानने की शक्ति रखता है और प्रगट होने पर पूरे लोकालोक को जानता है, इस अपेक्षा से आत्मा को विष्णु कहा गया है। शास्त्र में ऐसा पाठ है, हों! हमारे घर की बात नहीं करते। समझ में आया?

भगवान आत्मा...! ऐसी एक समय की व्यापकता हो, ऐसी अनन्त व्यापकता की पर्याय अन्दर गुण में पड़ी है। आहाहा! एक समय की व्यापकता अर्थात् लोकालोक को जाने, वह तो एक समय की ज्ञान की अवस्था का सामर्थ्य है। ऐसी अनन्त अवस्था का सामर्थ्य अन्दर ज्ञानगुण में पड़ा है। ऐसा एक गुण नहीं परन्तु ऐसे अनन्त गुण का एकरूप ज्ञायक चिदानन्द भगवान की ओर लक्ष्य करके, वह शुभाशुभभावरूप हुआ नहीं, तुझे अब क्या है? ऐसा कहते हैं, भाई! वह शुभाशुभभावरूप तो हुआ ही नहीं तो किसलिए तुझे शुभाशुभभाव पर लक्ष्य करना है? वह वस्तु तो शुभभावरूप हुई नहीं। हुई नहीं, उसे तुझे दृष्टि में लेना है? आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा भेदरूप हुआ नहीं। दूसरी भाषा से कहें तो द्रव्य है, वह पर्याय में आया ही नहीं। आहाहा! ऐई! ऐसी बात है। ***द्रव्य जो वस्तु है, एक समय में स्वभाव का पिण्ड एक समय की पर्याय में आया नहीं। पर्याय में आ जाए तो द्रव्य का नाश हो जाए और एक समय की पर्याय द्रव्य में घुस जाए तो भी पर्याय का नाश हो जाए। समझ में आया? भगवान एक समय का प्रभु उत्पाद-व्यय की पर्याय से रहित है। समझ में आया? आश्रय करनेवाली पर्याय है परन्तु द्रव्य में उस पर्याय का भेद नहीं है। समझ में आया? आश्रय करनेवाली, उपासना होता हुआ तो पर्याय है, सेवा करनेवाली पर्याय है परन्तु जिसकी सेवा करनी है, उसमें वह पर्याय नहीं है।*** प्रगट पर्यायरूप नहीं है। सभी पर्याय की शक्तिरूप वह द्रव्य है। समझ में आया? सूक्ष्म बात है। यह पहली बात है। सम्यग्दर्शन किससे होता है? किस प्रकार होता है? यह बात इसने लक्ष्य में कभी नहीं ली। महान धर्म की पहली शुरुआत यहाँ से होती है। इसके बिना कोई त्याग, वैराग्य... समझ में आया? (वह सब) रण में रुदन करने के समान हैं।

भगवान आत्मा एक समय में कहते हैं, ज्ञायकरूप से पूर्ण प्रभु पड़ा है न! तेरा विश्वास तेरे स्वभाव के ऊपर जाने से, स्वभाव पर तेरी स्थिरता होने से और तेरे ज्ञान ने ज्ञेय को पकड़ने से जो द्रव्य का सेवन हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से सेवन हुआ, तब द्रव्य को शुद्ध कहने में आया। शुद्ध की अंश—पर्याय, पूर्ण शुद्ध (पर्याय) नहीं। समझ में आया?

शुद्धज्ञायकभाव को पकड़ने से पर्याय में अल्प शुद्धता प्रगट आती है। यदि अल्प शुद्धता न आवे तो द्रव्य को सेवन किया है और द्रव्य को दृष्टि में लिया है, ऐसा हुआ ही नहीं। आहाहा! ताराचन्दजी! समझ में आया? यह तो सादी भाषा में बात है। संस्कृत या व्याकरण ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! भगवान आत्मा एक समय में पूर्णानन्द प्रभु है परन्तु वह पूर्णानन्द एकरूप शुद्ध क्यों कहा? पहले ज्ञायक कहा। तो ज्ञायक तो '**एवं भणंति सुद्धं**' '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' ज्ञायकभाव, पश्चात् टीका में 'एक' लिया। ज्ञायकभाव शब्द में से निकालकर अमृतचन्द्राचार्य ने ज्ञायकभाव एक है, एक है, वह शुभाशुभ परिणमनरूप नहीं होता तो अप्रमत्त-प्रमत्तपने का अनेकपना उसमें नहीं आया। एक में अनेक नहीं आया, ऐसा सिद्ध किया है। समझ

में आया ? और वह एकरूप स्वरूप है, उसकी जब सेवा की, पर्याय ने उस ओर झुकाव करके द्रव्यस्वभाव-सन्मुख की सेवा की, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, अभेदरत्नत्रय की पर्याय को उपासना हुई, ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? तब उस आत्मा को शुद्ध कहने में आया। तब यह शुद्ध है, ऐसा इसके ख्याल में आया। अशुद्ध की एकता हो और शुद्ध द्रव्य लक्ष्य में आवे, ऐसा कभी नहीं हो सकता - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? राग और निमित्त में एकता हो और यह ज्ञायकभाव शुद्ध है - ऐसा शुद्ध मानता है तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। गोदीकाजी ! सूक्ष्म बात है। धर्म— सम्यग्दर्शन की बात पहली है। इसके बिना उसका ज्ञान सम्यक् नहीं और इसके बिना उसके व्रत और प्रतिमा-फ्रतिमा बिना एक के शून्य है। चारित्र कहाँ से आया ? कहाँ स्थिर होना है, कहाँ रुकना है, वह चीज़ कहाँ है, कैसी है, वह तो ख्याल में आयी नहीं। समझ में आया ? देवीलालजी !

कहते हैं **उपासित होता हुआ...** स्वतन्त्र आत्मा निमित्त और राग की अपेक्षा छोड़कर, छोड़कर अपने ज्ञायकभाव की अपेक्षा करके अपनी पर्याय में द्रव्य को उपासित होता हुआ शुद्ध कहा जाता है। तब उसे शुद्ध भान में आता है। कहा जाता है, यह तो शब्द है। समझ में आया ? तब वह शुद्ध है, ऐसा इसे भान होता है। लो, यहाँ तक तो कल आया था। इन तीन पद का अर्थ हुआ, चौथा पद रह गया है।

देखो, **'ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।' 'एवं भणंति सुद्धं'** ये तीन पद आये। तीन पद में दो नय का निषेध किया। कौन से ? जो शुभाशुभभाव का निषेध हुआ, भाई ! शुभाशुभभाव वह विकार है, तो यह असद्भूतव्यवहारनय का विषय है। असद्भूतव्यवहार दो प्रकार के हैं—एक उपचरित, एक अनुपचरित। जो राग ख्याल में आता है, वह असद्भूत उपचार है और ख्याल में नहीं आने पर भी होना चाहिए, क्योंकि जब बुद्धिपूर्वक राग ख्याल में आता है, तो वहाँ स्थूल उपयोग है, वहाँ दूसरा अबुद्धिपूर्वक का ख्याल में नहीं आनेवाली कषाय है। ऐसा जानना, वह असद्भूत अनुपचार का विषय है। जानने में आया कि है, इतना। वह असद्भूत उपचार का विषय है। जानने में न आया, वह असद्भूत अनुपचार का विषय है। दोनों का यहाँ निषेध किया। समझ में आया ?

अध्यात्म में व्यवहार के चार नय हैं। सद्भूत-असद्भूत। सद्भूत के दो भेद— उपचार और अनुपचार तथा असद्भूत के दो भेद—उपचार और अनुपचार। हैं तो चारों ही व्यवहार। भगवान आत्मा ज्ञायक शुद्ध है, ज्ञायक है—ऐसा पर का लक्ष्य छोड़कर, अपना लक्ष्य करके द्रव्य की उपासना की। अनादि से राग की उपासना करता था। पुण्य-पाप और विकल्प की उपासना करता था, तब तक तो अशुद्ध लक्ष्य का अनुभव मिथ्यादृष्टि का था। समझ में आया? जब उस पुण्य-पाप का लक्ष्य पर के ऊपर है, उसका भी लक्ष्य छोड़ दिया। लक्ष्य छोड़ दिया तो शुभाशुभभाव का लक्ष्य छूट गया। वह छूट गया तो द्रव्य पर लक्ष्य आया। ज्ञायक चैतन्य प्रभु अपने स्वभाव पर लक्ष्य करने से पर्याय में उसकी सेवा हुई, उसका सेवन करने में आने पर उस द्रव्य को शुद्ध कहने में आता है। समझ में आया? दो नय का निषेध हुआ। सद्भूत उपचार, अनुपचार। आया न? राग विकार है, वह ख्याल में आता है, इस अपेक्षा से असद्भूत उपचार कहते हैं। ख्याल में आवे और जाने कि यह यहाँ है, वह उपचार। ख्याल में नहीं आनेवाला है असद्भूत, वस्तु में नहीं, परन्तु फिर भी ख्याल में आया, इसलिए उसे उपचार कहा। ख्याल में नहीं आता, उसे अनुपचार कहते हैं। दोनों का यहाँ निषेध हो गया।

अब, तीसरे बोल में सद्भूत उपचारनय का निषेध करते हैं, वह अब आयेगा। चौथे पद में सद्भूत उपचारनय का निषेध करते हैं। सातवीं गाथा में सद्भूत अनुपचारनय का निषेध करेंगे। समझ में आया? इन बारह गाथाओं में पूरे समयसार का बीज पड़ा है। पंचाध्यायीकार ने जो यह चार नय निकाले हैं, वे इन बारह गाथाओं में से निकाले हैं। वास्तव में तो छठवीं और सातवीं गाथा में से चार निकाले हैं। ताराचन्दजी! पंचाध्यायी में है न? वह यहाँ से निकाला है। नये लोगों को शब्द थोड़े कठिन पड़े परन्तु ख्याल में रखना कि कुछ है, कुछ कहते हैं, ऐसा तो समझना न! सद्भूत-असद्भूत। क्या कहते हैं? देखो!

अप्रमत्त नहीं, ऐसा शुद्ध कहलाता है। ऐसी दृष्टि जब हुई तो असद्भूत दो प्रकार का विकार आत्मा में नहीं है, ऐसा असद्भूत पर्याय में है, उसका निषेध हो गया। अब चौथे पद का अर्थ आज चलेगा। '**णादो जो सो दु सो चेव**' ज्ञात हुआ वह ज्ञायक ही है,

ज्ञात हुआ वह ज्ञायक ही है; दूसरा नहीं – इतने शब्द का अर्थ अब करेंगे। समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो! चौथे पद का अर्थ चलता है।

और जैसे दाह्य (–जलने योग्य पदार्थ)... जलनेयोग्य पदार्थ के **आकार होने से अग्नि को दहन...** अग्नि को दहन कहा जाता है। जलाती है, इस अपेक्षा से दहन कहा जाता है। जलानेवाली अग्नि जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होती है, तथापि जलनेयोग्य पदार्थरूप नहीं हुई है। अग्नि तो दहन है, जलाती है, ऐसा कहा और दहन है, वह जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होती अग्नि हुई है। जलनेयोग्य पदार्थरूप अग्नि नहीं हुई। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है। आचार्य अमृतचन्द्राचार्य ने दृष्टान्त दिया न? पाठ की बात दृष्टान्त देने से सरल होती है। सरल सुगमता से समझ में आ जाती है। पाठ सूक्ष्म है तो अमृतचन्द्राचार्य दृष्टान्त देकर कहते हैं, प्रभु! कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ ऐसा कहते हैं। '**णादो जो सो दु सो चेव**' जो ज्ञायकभाव प्रसिद्ध है, ज्ञायक... ज्ञायक... इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञायक पर को जानता है, ऐसा हुआ ज्ञायक। उस ज्ञायक में पर को जानता है, ऐसा आया तो क्या वह इतना पराधीन है? पर को जाना, इतना ज्ञेय के आधीन हुआ? इतनी अशुद्धता उसे लागू पड़ी या नहीं? लागू कहते हैं न? लागू पड़ी? – या नहीं? नहीं – यह सिद्ध करना है।

अग्नि का दृष्टान्त दिया कि अग्नि जो है, जलनेयोग्य लकड़ी को जलाती है तो क्या जलानेयोग्य अग्नि जलनेयोग्य पदार्थ के आकार हुई है? – हाँ, परन्तु वह आकार अग्नि का आकार है, पर का आकार नहीं। समझ में आया? जलानेयोग्य पदार्थ का आकार उसमें आया ही नहीं। अग्नि हुई है ऐसी, परन्तु वह तो अपने आकार में अग्नि की पर्याय में अग्नि ऐसी हुई है। अग्नि की अवस्था जलनेयोग्य पदार्थ की अवस्थारूप हुई नहीं। समझ में आया? यह तो दृष्टान्त है। सिद्धान्त तो फिर आत्मा में उतारना है।

'**णादो जो**' ज्ञायक ज्ञात हुआ, वह है। वह पर को जानता है, ऐसा अन्दर आया न? जाननेवाला, जाननेवाला, ऐसा आया न? सुन तो सही। अग्नि पर को – जलानेयोग्य पदार्थ को जलाती है, ऐसा कहा, वह जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होती है। देखो! कण्डे होते हैं न? छांणा (कण्डे का गुजराती शब्द) को क्या कहते हैं? जंगल में सूख

जाते हैं न, उन्हें हमारे यहाँ अडाया कहते हैं, अडाया। वहीं के वहीं सूख जाते हैं और यहाँ थापते हैं, उन्हें कण्डा कहते हैं। गोबर लावे न ? पश्चात् उसे थापते हैं, उसे कण्डा कहते हैं और जो जंगल में सूख जाए, उसे अडाया कहते हैं। अडाया अर्थात् वहीं का वहीं सूख जाए। उन्हें यदि अग्नि में डाले तो अग्नि जलकर उसके आकार हो जाती है। अडाया होता है न ? कण्डा, कण्डा। ...लो, यहाँ तो कण्डे का आकार बहुत सरस लगता है, वह सूख गया हुआ देखे तो खबर पड़े। अग्नि होती है, वह उसके आकार ही अग्नि हो जाती है। जलानेयोग्य पदार्थ के आकार होती है परन्तु जलानेयोग्य पदार्थ के आकार अपनी पर्याय हुई है, पररूप हुई नहीं। जलानेयोग्य पदार्थ के आकाररूप हुई नहीं। आकार अर्थात् उस पदार्थरूप हुई नहीं। उस ओर का अग्नि का अपना जो स्वभाव है, वह अपने आकार में उस आकाररूप हुई है, अपनी पर्याय में उस आकाररूप हुई है; पर की पर्याय में उस आकाररूप हुई है, ऐसा नहीं है। देखो! सूक्ष्म है, शशीभाई!

और जैसे दाह्य (-जलने योग्य पदार्थ) के आकार होने से... देखो, आकार होने से, ऐसा तो कहा। परन्तु कौन आकाररूप होने से ? - कि अग्नि। अग्नि आकाररूप हुई है। अग्नि को दहन कहते हैं, दहन कहते हैं, जलाती है—ऐसा कहते हैं। जलाती है, ऐसा यहाँ ज्ञायक कहना है न ? ज्ञायक-जाननेवाला। ऐसा यहाँ दहन कहते हैं। **तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,...** जलानेयोग्य पदार्थ की आकृति यहाँ नहीं आयी है, यहाँ तो अग्नि की अपनी पर्याय है। दाह्यकृत परपदार्थ की अशुद्धता अग्नि को लागू नहीं पड़ती। समझ में आया ? गुजराती में तो हमारे दो-चार-पाँच भाषा आती है। इसका बहुत नहीं आता, एकाध खास भाषा आती है। उस आकार हुई नहीं, समझे न ? पर का आकार पर में रहा, स्व का आकार स्व में आया। वह अपने आकाररूप हुई है। पर के आकार होने पर भी अपने आकाररूप हुई है, पर के आकाररूप नहीं हुई।

तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,... इतना सिद्ध किया, बस! क्योंकि अग्नि पर को जलाती है तो भी अग्नि अपनी पर्याय में पर के आकाररूप अपनी पर्यायरूप होकर रही है, पर की पर्यायरूप होकर आकाररूप हुई है—ऐसा नहीं है। कहो, यह दृष्टान्त (कहा)। वह सिद्धान्त को सरल करने में कारण है।

उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से... देखो! ज्ञान में रागादि का ज्ञान होता है। समझ में आया? राग, वह भी ज्ञेय है, हों! सुनो! भगवान आत्मा अपने ज्ञायक का भान हुआ तो स्व-परप्रकाशक ज्ञान हुआ, तो उसमें जो राग है, वह पहले तो असद्भूत के दो भेद कहे थे, अब राग के ज्ञान की बात करते हैं कि जैसा राग आता है... यह १२वीं गाथा में कहेंगे। '**तदात्वे**' जाना हुआ प्रयोजनवान है। यह ज्ञान जो है, वह स्व को जानता है और राग आया, उसे जाना। राग सम्बन्धी का जो ज्ञान है, वह ज्ञान परिणमित हुआ, वह राग—ज्ञेय के आकार हुआ परन्तु ज्ञान, रागरूप होकर ज्ञेयाकार नहीं हुआ।

फिर से, **ज्ञेयाकार होने से...** ज्ञेयाकार शब्द से पर तो ठीक परन्तु यहाँ हमारे तो राग लेना है सूक्ष्म। ज्ञान में जैसा राग आता है वैसा ज्ञान, उस सम्बन्धी का ज्ञान, उस प्रकार का ज्ञान यहाँ परिणमित होता है। परन्तु वह ज्ञेयाकार अर्थात् रागरूप होकर राग के ज्ञानरूप हुआ है, ऐसा नहीं है। राग का ज्ञान, ज्ञानरूप रहकर राग का ज्ञान (हुआ है), ज्ञानाकाररूप होकर ज्ञेयाकाररूप हुआ है।

फिर से, जैसे अग्नि पर के आकार हुई है, तथापि पर की पर्यायरूप होकर हुई नहीं है; अपनी पर्यायरूप आकाररूप हुई है। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञायक जो है... तो ऐसा प्रश्न हुआ... देखो! **उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है,...** क्या कहते हैं? जानता है, यह प्रसिद्ध है। राग को ज्ञान जानता है, ऐसी बात प्रसिद्ध है। व्यवहार—राग को जानता है, यह बात प्रसिद्ध है। तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं, राग कृत अशुद्धता नहीं। राग है तो ज्ञान की पर्याय ज्ञानरूप हुई है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

अपना ज्ञानस्वरूप भगवान अपने को ज्ञात हुआ तो उसमें ज्ञायकता है तो पर को, रागादि को भी जानता है, तो जानो, उसमें क्या हुआ? क्या रागरूप होकर ज्ञानरूप ज्ञेयाकार हुए हैं? रागरूप होकर ज्ञान ज्ञेयाकार हुआ है? ज्ञान ज्ञेयाकार रहकर राग को जानता है। भाई! यह सूक्ष्म मूल गाथा है न, इसलिए सूक्ष्म है। समझ में आया? फिर से? क्या कहते हैं यह? वंशमोर! यह वंशमोर है। समझ में आया? यह तो हम भी दो-चार-पाँच बार लिये बिना छोड़ नहीं देते, हों!

वस्तु चैतन्य ज्ञायक की उपासना से शुद्ध कहने में आया तो ज्ञान में ज्ञायक नाम प्रसिद्ध हुआ। जाननेवाला है, जाननेवाला है तो जाननेवाला राग को जानता है, विकार को जानता है, ऐसा प्रसिद्ध हुआ तो होओ, परन्तु आत्मा, जैसे अग्नि जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होने पर भी अग्नि के आकार हुई है; उसी प्रकार भगवान आत्मा राग को जानने पर भी, ज्ञेय के आकार को जानने पर भी, ज्ञान के आकार होकर राग को जानता है, वह ज्ञान के आकार होकर जानता है। रागरूप होकर जानता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया?

प्रमाण कहा है न! प्रमाणज्ञान को सद्भूत उपचारनय का विषय कहा है। पण्डितजी! पंचाध्यायी में चार नय उतारे हैं न? दो तो पहले कह गये। पश्चात् तीसरा ऐसा उतारा है कि प्रमाणज्ञान, वह सद्भूत उपचारनय का विषय है। है प्रमाण, परन्तु विषय है सद्भूतव्यवहारनय का। पर्याय है न! क्या कहा? भगवान आत्मा... अपना ज्ञान हुआ और राग का भाव हुआ तो प्रमाणज्ञान हुआ, प्रमाणज्ञान। समझ में आया? निश्चय और व्यवहार दोनों का ज्ञान, वह प्रमाणज्ञान। वहाँ (पंचाध्यायी में) इस चौथे पद में से लिया है कि प्रमाणज्ञान को सद्भूत उपचारनय कहते हैं। क्यों?—कि ज्ञान अपना है, इतना सद्भूत परन्तु वह (राग को) जानता है, ऐसा कहना वह उपचार है। थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा परन्तु लक्ष्य में तो लेना पड़ेगा या नहीं?

प्रमाण ज्ञान है, वह पर्याय है, स्व को और पर को जाननेवाली पर्याय है। प्रमाण स्वयं सद्भूत उपचारनय का विषय है। क्यों?—कि सद्भूत अर्थात् ज्ञान तो अपना है, अपनी अस्ति है तो पर को जानता है और अपना है तो सद्भूत हुआ परन्तु पर को जानता है, ऐसा कहना वह उपचार है। वास्तव में वह पर को नहीं जानता, अपनी पर्याय को जानता है। आहाहा! थोड़ा-थोड़ा परन्तु समझने की वस्तु है, हों! सूक्ष्म पड़े परन्तु यह समझे बिना इसका कभी छुटकारा नहीं आयेगा। मर जाए, टूट जाए, हजार-हजार वर्ष तप करे... समझ में आया? महाव्रत पाले और व्रत पाले, वह महाव्रत है कहाँ? अनुभव की दृष्टि बिना, सम्यग्दर्शन बिना आये कहाँ से? समझ में आया?

कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को अपने द्रव्य की उपासना हुई तो शुद्ध है, ऐसा दृष्टि में

आया। ज्ञान में स्व-परप्रकाशक रहा है। ज्ञान में स्व-परप्रकाशक रहा तो राग बाकी है, उसे जानता है। जैसा राग आया, दया, भाव का जैसा विकल्प आया, उस प्रकार का यहाँ ज्ञान होता है, परन्तु उस प्रकार का ज्ञान होने पर भी उस ज्ञेयरूप होकर वह ज्ञान नहीं हुआ। वह अपने ज्ञायकरूप होकर वह ज्ञान हुआ है। जैसे अग्नि को दाह्यकृत पदार्थ की अशुद्धता लागू नहीं पड़ती; उसी प्रकार भगवान आत्मा अपने को जानता है, साथ में राग को जानता है तो राग है तो जाना, ऐसी अशुद्धता स्व-परप्रकाशक में धर्मी को लागू नहीं होती। समझ में आया?

फिर से, इसमें पुनरुक्ति नहीं लगती। कुछ न कुछ थोड़ी-थोड़ी बात फिर से आती है। देखो! उसी प्रकार अग्नि के दृष्टान्त से ज्ञेयाकार होने से... जैसा राग आया, विकल्प आया, दया का आया... समझे? ज्ञानी को तो कोई रौद्रध्यान के परिणाम भी होता है। समझ में आया? पाँचवें गुणस्थान में होता है या नहीं? छठवें में नहीं। छठवें में आर्तध्यान होता है, तो कहते हैं कि जिस प्रकार का अशुभ रागादि है, अशुभ रागादि है, उस समय ज्ञान अपनी ज्ञायकता से अपने को जानता है और पर को जानने की पर्यायरूप परिणमित होना उसका स्वभाव है परन्तु वह राग आया और ज्ञेय है, उसकी अस्ति है तो यहाँ ज्ञान का उसरूप परिणमन अस्ति हुआ, ऐसा नहीं है। राग है या परवस्तु है तो यहाँ ज्ञान का परप्रकाशरूप परिणमन हुआ, ऐसा नहीं है। अपने स्वभाव में ज्ञायकरूप से ज्ञान प्रसिद्ध हुआ, वह अपनी पर्याय से प्रसिद्ध हुआ है, पर के कारण से प्रसिद्ध हुआ है, ऐसी अशुद्धता उसे स्व-परप्रकाश में भी लागू नहीं पड़ती। चन्दुभाई! थोड़ा परन्तु जैसा है, वैसा समझना पड़ेगा। यह समझे बिना, सत्य ज्ञान हुए बिना उस सत्य का जवाब नहीं मिलेगा। वह वस्तु ऐसी सत् है। समझ में आया? तो जैसा स्वरूप है, वैसी रुचि और ज्ञान न हो, तब तक जवाब नहीं मिलेगा कि मैं ऐसा शुद्ध हूँ, ऐसा अनुभव नहीं होगा। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान ज्ञेयाकार होने से... यह तो पहले व्यवहार लिया, हों! राग है, वैसा आकार यहाँ हुआ। उस भाव को **ज्ञायकता प्रसिद्ध है,...** राग को जानना, पर को जानना, स्व को जानना और पर को जानना, ऐसा ज्ञायकता प्रसिद्ध है। **तथापि उसके**

ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;... राग है तो जानना हुआ, ऐसी पराधीनता की अशुद्धता ज्ञान को नहीं है। 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारि।' बनारसीदास का श्लोक है। 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारि, ज्ञेयशक्ति द्विविधा परकासी, निजरूपा पररूपा भासी।' बनारसीदास ने बहुत काम किया है, बहुत काम किया है! अनुभवी पुरुष थे। समझे? भले गृहस्थाश्रम में हो, उसमें क्या हुआ? वे गृहस्थाश्रम में हैं ही नहीं। समकिती तो अपनी पर्याय में, द्रव्य-गुण-पर्याय में है। समझ में आया?

कहते हैं 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी' यह हमारी शक्ति है। 'तातैं वचन भेद भ्रम भारि।' कहते हैं इसे जाना, उसे जाना, कोई कहे उसे जाना, उसे जाना - ऐसे वचन के बहुत भेद पड़ते हैं। 'ज्ञेयशक्ति द्विविधा परकासी, स्वरूपा' शक्ति द्विरूपा प्रकाशी। 'स्वरूपा पररूपा भासी।' परन्तु भासित हुआ अपने में। समझ में आया? आहाहा! जिसकी दृष्टि अपने ज्ञायक से, अपनी उपासना से जो शुद्धता प्रगट हुई, उसके द्वारा शुद्ध आत्मा है, ऐसा भास हुआ, उसके ज्ञान में, स्व-परप्रकाशक पर्याय परिणमती है। जैसा राग है, वैसा दया भाव है, जैसा विकल्प उठता है, उस प्रकार का ज्ञान ज्ञेयाकाररूप होता है, परन्तु वह ज्ञेय अर्थात् रागरूप होता है, ऐसा नहीं है। अपने ज्ञान की पर्यायरूप होकर परिणमित होता है। आहाहा! वह ज्ञेय को भिन्न पाड़कर, ज्ञेय को भिन्न रखकर (जानता है)। दूसरी भाषा से कहें तो सम्यग्दृष्टि व्यवहाररत्नत्रय को-परज्ञेय को भिन्न रखकर, परसम्बन्धी का जो अपना ज्ञान, उसरूप ज्ञान परिणमित होता है, पर है तो परिणमित हुआ है, ऐसी अशुद्धता ज्ञायक को लागू नहीं पड़ती। समझ में आया? अरे! गजब बात, भाई! ऐसा मार्ग होगा? यह तो बहुत सूक्ष्म, भाई! एक व्यक्ति कहता था, सूक्ष्म बहुत कातते हो, ऐसा कहता था। सूक्ष्म समझे? डोरा होताा है न? बारीक। सूत नहीं होता? सूत। बहुत बारीक, १२० नम्बर का बहुत बारीक होता है। परन्तु भगवान! तेरा स्वभाव ही बारीक है। सुन तो सही! तेरा द्रव्य सूक्ष्म, तेरा गुण सूक्ष्म, तेरी पर्याय सूक्ष्म। आहाहा! और तेरा स्व-परप्रकाशक का स्वभाव सूक्ष्म है। सुन तो सही, तेरे अस्तित्व को तुझे निश्चित करना है या नहीं? सेठी! आहाहा!

जो मुख्य पहले करना है, उसकी तो दरकार नहीं और इसके अतिरिक्त दूसरा

सरल लगता है तो ऐसा करो, राग मन्द करो, ऐसी क्रिया करो, ऐसा करो। अब वह तो अनन्त बार किया, तेरे स्वरूप के भान बिना। उसमें कहीं जन्म-मरण का अन्त नहीं आया। समझ में आया? लोग तो बाहर से देखते हैं। इसे स्त्री है, इसे लड़का होता है। चक्रवर्ती को छियानवें हजार रानियाँ हैं, उन्हें पुत्र होते हैं। हमेशा भोग करते हैं। अब, सुन तो सही! वह भोग आत्मा का करता है! और तू त्यागी होकर राग में एकत्वबुद्धि करता है तो तू विकार का भोग लेता है, इतना अन्तर है।

यह आता है, पण्डितजी! आता है। नारकी का नहीं? 'बाहिर नारकी कृत दुख भोगत अन्तर सुख की गटागटी' सेठ पहले आये थे न? तो कहा था। सेठ को तो कुछ खबर नहीं थी। अपने तो जैसा है, वैसा (कहते हैं)। जिज्ञासा में थे। पहले कहा था। पहले (संवत्) २००१ के वर्ष में आये थे। २१ वर्ष हुए। गटागटी कहा, तो उन्हें लगा क्या कहते हैं यह? उन्होंने श्लोक नहीं सुना होगा। 'बाहिर नारकी कृत दुख भोगत अन्तर सुख की गटागटी' नारकी, सप्तम नरक का नारकी, अपरिठाणा रौवरौव नरक का नारकी सम्यग्दृष्टि है। वहाँ सम्यग्दर्शन लेकर नहीं जाते और सम्यग्दर्शन लेकर निकलते नहीं, परन्तु बीच के काल में सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं। रौव-रौव नरक में अपरिठाणा नरक में पड़े हैं, अभी हैं। समझ में आया? यह कहते हैं, बाह्य कृत दुःख दिखता है परन्तु अन्दर में उस दुःख की असहनशीलता की पर्याय है, उसका भी यहाँ ज्ञान करते हैं तो वह दुःख की पर्याय है तो उसके कारण से ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। क्या कहा समझ में आया?

ज्ञान, अपनी ज्ञायकता से प्रसिद्ध प्रभु अपना भी ज्ञान करता है और पर का भी ज्ञान करता है परन्तु पर का ज्ञान करने पर भी पर है तो पर का ज्ञान होता है, ऐसा नहीं है। अपने अस्तित्व की भूमिका में, अपने अस्तित्व में अपना जैसे ज्ञान करता है, ऐसे पर का भी अपने अस्तित्व में पररूप हुए बिना, अपनेरूप रहकर स्व-परप्रकाशक ज्ञान ज्ञेय के आकार अपना ज्ञानाकार अपने से अपने कारण से हुआ है। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, पहले बारह गाथा में तो पूरा समयसार भर दिया है। पण्डित जयचन्दजी ने पीठिका लिखी है, पीठिका। यह बारह गाथा पीठिका है। पीठिका समझते हो? वृक्ष

के चारों ओर चबूतरा बाँधते हैं न? चबूतरा। फिर फूल, फल होंगे। कहते हैं... आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य, कुन्दकुन्दाचार्य परमेश्वर के पुत्र! वे कहते हैं न कि ईश्वर का पुत्र, नहीं? कौन? ईशु... ईशु... यह परमेश्वर का पुत्र है। शास्त्र में लिखा है, भाई! हों! सर्वज्ञ का पुत्र लिखा है। धवल में, धवल में पाठ है। सब शास्त्र में लिखा है। सब शास्त्र में पड़ा है। कोई भी शब्द निकलता है, वह शास्त्र में है, ऐसा ख्याल में से निकलता है। सर्वज्ञ के पुत्र कहा है और सम्यग्दृष्टि को भी कहा नहीं? 'ते जग मांहि जिनेश्वर के लघुनन्दन' वह भी पुत्र हो गया, लघु पुत्र है, गौतम बड़े पुत्र हैं। समझ में आया? सन्त, केवलज्ञानी के पुत्र हैं, सर्वज्ञ के पुत्र हैं। अल्प काल में सर्वज्ञ की पर्याय होगी, उनको होगी, सर्वज्ञ होंगे, एकाध भव है, स्वर्ग में गये हैं। कुन्दकुन्दाचार्य स्वर्ग में गये हैं। पंचम काल था, विकल्प का निषेध करके गये हैं।

जो भाव का राग आता है, उस प्रकार का ज्ञान अपनी सत्ता से, अपने अवलम्बन से करते हुए ज्ञान में राग का जानना हुआ तो राग है तो इतनी स्व-पर प्रकाशक ज्ञान के परिणमन में पराधीनता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? भाई! बहुत ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है। एक शब्द बदले तो उसमें सब (बदल जाए ऐसा है)। यह कहीं कोई बात नहीं है। एक शब्द भी आगे-पीछे हो जाए तो तत्त्व बदल जाएगा।

कहते हैं, **तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;...** क्यों? कारण देते हैं। **ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** देखो! ज्ञेयाकार अवस्था में वह ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, भाई! आहाहा! रागादि हैं, उन्हें जानने को तो ज्ञेयाकार अवस्था में भी राग का जानना हुआ, वह अपनी पर्याय में हुआ। उस ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, वह ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ है, रागरूप से ज्ञात नहीं हुआ। आहाहा! ज्ञायकरूप से (ज्ञात हुआ), यहाँ तो द्रव्य-अभेद लेना है न? समझ में आया? यह तो भगवान की भागवत कथा है। नियमसार में लिया है। नियमसार में अन्तिम गाथा में पद्मप्रभमलधारिदेव ने लिया है कि यह नियमसार भागवत शास्त्र है। नियमसार में टीका में है, हों! नियमसार भागवत है तो वह भागवत का भागवत है!! आहाहा!

कहते हैं कि **ज्ञेयाकार अवस्था में...** भाषा क्या है?—कि अग्नि दाह्य के आकार

अवस्था में भी अग्नि ही है। अपने आकार देखो तो भी अग्नि है। इसी प्रकार ज्ञेयाकार रागादि विकल्प है, उनका यहाँ ज्ञान हुआ, उस ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप ज्ञात है, ज्ञायकरूप ज्ञात है; रागरूप ज्ञात है – ऐसा नहीं। **वह स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी, दीपक की भाँति,...** देखो! यह तो स्व के प्रकाशन में भी ज्ञायकरूप भासित होता है। उसके लिये फिर से दृष्टान्त देंगे, हों!

भगवान! ज्ञेयाकार अवस्था में, जैसे अग्नि जलानेयोग्य वस्तु के आकार होने पर भी अग्निरूप ही भासित होती है और अग्नि से देखो तो भी अग्नि, अग्निरूप भासित होती है, उसी प्रकार ***भगवान आत्मा रागादि का ज्ञान करने के काल में भी ज्ञायकरूप ही भासित होता है और अपने को प्रकाशित करने के काल में भी वह ज्ञायकरूप भासित होता है। पर के प्रकाशनकाल में रागरूप भासित होता है, ऐसा आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?*** विशिष्टता तो यह है कि जैसी समय-समय में उपादान में पर्याय होती है।... समझ में आया? वह स्वयं से होती है। निमित्त है तो होती है, ऐसा नहीं है। निमित्त है तो होती है, ऐसा नहीं है। उसी तरह यहाँ अन्दर में व्यवहार भी निमित्त है। व्यवहार भी निमित्त है। शुद्ध उपादान की पर्याय स्वभाव के आश्रय से प्रगट हुई। तो कहते हैं, व्यवहार निमित्त है। व्यवहार है तो उसका ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। भाई! आहाहा! यह व्यवहार है तो निश्चय हुआ, शुद्धि हुई, ऐसा तो नहीं, परन्तु व्यवहार है, उसका ज्ञान किया तो व्यवहार है तो उसका ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है। आहाहा! चन्दुभाई!

फिर से, यहाँ तो ऐसी चीज़ है कि भगवान आत्मा ज्ञायकशुद्ध क्यों कहा? – कि अपने सन्मुख होकर उपासित होता हुआ। पर्याय को अन्तर में झुकाकर सेवा की, शुद्धता प्रगट हुई। तो कहते हैं, ज्ञायक को जानपना प्रसिद्ध है न? पर को जानने का प्रसिद्ध हुआ या नहीं? वह रागादि को जानता है, ऐसी प्रसिद्धता राग के कारण हुई या नहीं?—कि नहीं। उस राग के काल में भी ज्ञान जानता हुआ, राग का स्वरूप है, ऐसे अपने ज्ञेयाकाररूप परिणमित होने पर भी ज्ञायकरूप ही प्रसिद्ध हुआ है, रागरूप प्रसिद्ध हुआ ही नहीं। आहाहा! परन्तु बहुत सूक्ष्म, भाई! लादूलालजी! यह तो महासिद्धान्त है, यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। सर्वज्ञ का पेट खोलकर तत्त्व की बात की है।

भगवान आत्मा को ज्ञायकपना प्रसिद्ध है न! वह ज्ञेयाकार भाव होने से (प्रसिद्ध है) ? नहीं। उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है। वह राग है तो पर का यहाँ ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। वह तो राग का ज्ञान उस समय में अपनी ज्ञान की पर्यायरूप परिणमन के काल में परिणमन हुआ है। अपने ज्ञायक की प्रसिद्धि से प्रसिद्ध हुआ है, वह राग से परप्रकाशक ज्ञान प्रसिद्ध हुआ है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

तीसरी बात कहते हैं कि अपना ज्ञान अपने आश्रय से स्व-परप्रकाशक हुआ, वह अपनी पर्याय में प्रसिद्धि हुई है। उस पर्याय में राग था, उसका ज्ञान राग के काल में उस सम्बन्धी का ज्ञान जानने पर स्व-परप्रकाशक की पर्याय स्वत: प्रगट होती है। वह स्व-परप्रकाशक पर्याय स्वयं से ज्ञायक की प्रसिद्धि करती है। राग है तो ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं है। व्यवहार है तो निश्चय होता है, ऐसा नहीं है। आहाहा! और व्यवहार है तो उसे निमित्त कहने में आया है, परन्तु निमित्त है तो यहाँ निमित्त का ज्ञान हुआ, ऐसा भी नहीं है।

मुमुक्षु : निमित्त से कार्य हुआ, यह तो नहीं परन्तु (निमित्त का) ज्ञान भी नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान नहीं। भाई! ज्ञान का उस समय स्वत: स्व-परप्रकाशक सामर्थ्य का कार्य है। 'ज्ञेयशक्ति द्विविधा प्रकाशी, स्वरूपा पररूपा भासी।' पररूपा भासी परन्तु पररूप होकर भासित नहीं हुई और पर है तो उसके कारण से परप्रकाशक पर्याय यहाँ हुई है, ऐसा नहीं है। भारी सूक्ष्म, भाई! भगवान! तेरी चीज़ ही ऐसी है। तुझे यह समझना ही पड़ेगा, इसके बिना कल्याण का अंश प्रगट नहीं होगा। समझ में आया?

ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, वह स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी, दीपक की भाँति,... अब दृष्टान्त देंगे। दीपक कर्ता और प्रकाश उसका कर्म है। इसी प्रकार भगवान आत्मा ज्ञायक कर्ता और परप्रकाश की अपनी पर्याय अपने से हुई, वह अपना कर्म है। राग उसका कार्य नहीं। यह बात विशेष आयेगी....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल ८, मंगलवार, दिनांक - २३-०८-१९६६
गाथा - ६ , प्रवचन - २५

यह समयसार की छठवीं गाथा चलती है। छठी कहते हैं न? क्या कहते हैं? शिष्य ने ऐसा प्रश्न किया था, प्रभु! आपने, परमात्मा आदि सन्तों ने जो शुद्धात्मतत्त्व का उपदेश दिया था, उससे आपने शुद्धात्मा का अनुभव किया, तो वह शुद्धात्मा आप किसे कहते हो कि जिसे जानने से आत्मा का कल्याण होता है? और उसे जाने बिना कभी कल्याण नहीं होता। ऐसा शिष्य का प्रश्न था। यही प्रश्न किया, दूसरा कोई प्रश्न नहीं किया। आप शुद्ध किसे कहते हो, कि जिसे जानने से आत्मा का मोक्षमार्ग प्रगट होता है और मोक्ष होता है?

उसके उत्तर में तीन पद में ऐसा कहा कि भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति एक स्वरूप प्रभु ध्रुव विराजमान है। वह आत्मस्वभाव शुभ-अशुभावरूप नहीं होता। शुभ-अशुभभाव... कर्मरूप नहीं होता। शरीररूप हो, यह तो प्रश्न ही नहीं है, परन्तु उसकी एक समय की तादात्म्य शुभाशुभ विकारी पर्याय है, उसरूप भगवान आत्मा कभी हुआ नहीं। समझ में आया? शरीररूप, कर्मरूप, पररूप या एक समय की अवस्थारूप पररूप तो कभी हुआ नहीं, परन्तु भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकज्योति जो सम्यग्दर्शन का विषय है, वह आत्मा ध्रुव चैतन्य ज्ञायक; शुभाशुभरागरूप नहीं तो आत्मा उन प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं है। प्रमत्त-अप्रमत्तरूप नहीं तो वही आत्मा परद्रव्य का सर्व लक्ष्य छोड़कर, अपने स्वभाव का लक्ष्य करके अपनी पर्याय में आत्मा के दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से सेवन हुआ, उस आत्मा को शुद्ध कहा जाता है। समझ में आया? यह तो तीन पद का अर्थ अपने हो गया। अब आज चौथे पद की व्याख्या है। ज्ञातः सो ज्ञातः—यह चौथा पद है न? **'णादो जो सो दु सो चेव'।**

फिर से, **'शुद्ध' कहलाता है।** यहाँ तक आ गया। दृष्टान्त दिया था, वह फिर से।

और **जैसे...** सूक्ष्म विशय है, परन्तु लोगों को यह जानना तो पड़ेगा न? **जैसे दाह्य...** अर्थात् जो जलनेयोग्य पदार्थ है, वह **आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं...** अग्नि जलानेयोग्य पदार्थ को जलाती है। उस आकार अग्नि होने से अग्नि को दहन कहा जाता है। **तथापि उसके दाह्यकृत अशुद्धता नहीं होती,...** जलनेयोग्य पदार्थ के आकार होने पर भी, पर के आकाररूप अग्नि हुई नहीं है। समझ में आया? वह तो अग्नि अपने आकाररूप ही हुई है। अग्नि, अग्निरूप रही है। अग्नि, जलानेयोग्य पदार्थ के आकार होने पर भी अग्नि, अग्निरूप रही है; अग्नि, ईंधनरूप हुई नहीं है। जलानेयोग्य पदार्थरूप अग्नि कभी हुई नहीं। यह तो दृष्टान्त हुआ। समझ में आया?

उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से... भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय में, वे ज्ञेयाकार जैसे राग-द्वेषादि है, वैसे ज्ञान की पर्याय में उस सम्बन्धी अपने ज्ञानाकाररूप ज्ञान परिणमित होता है। समझ में आया? यह तो अन्तर का विषय है, भाई! सूक्ष्म है। ऐसे बाह्य क्रियाकाण्ड कर लेने से या यह कर लेने से या वह कर लेने से कोई तत्त्व की उपलब्धि नहीं होती।

भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप में ज्ञेयाकार होने से ज्ञायकपना प्रसिद्ध है, प्रसिद्ध है। वह **ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के साथ ज्ञायकता प्रसिद्ध है, तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;...** तथापि ज्ञायकभाव उस ज्ञेय की पर्यायरूप कभी हुआ नहीं। समझ में आया? अग्नि, जलानेयोग्य पदार्थ के आकार होने पर भी, वह अग्नि ईंधन या जलानेयोग्य पदार्थ के आकार हुई नहीं। वह तो अग्नि स्वयं के आकार परिणमती है तो पर के कारण से उसे अशुद्धता लागू नहीं पड़ती। समझ में आया? सूक्ष्म सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ है कि यह तो आत्मा जाना तो (मुक्त हो गया)। मिथ्यात्व, वह संसार और सम्यग्दर्शन, वह मोक्ष—ऐसा आता है। मिथ्यात्व, वही संसार है। अपरिमित संसार। फिर थोड़े राग-द्वेष रहते हैं, वह तो परिमित संसार है, थोड़ा संसार है और सम्यग्दर्शन है, वह द्रव्य मुक्तस्वरूप है तो मुक्त का अनुभव भान हुआ तो वह आत्मा मुक्त ही है। थोड़े राग-द्वेष रहते हैं, वह तो अल्प है। उन्हें यहाँ गिनती में न लो तो वे राग-द्वेष ज्ञान का ज्ञेय रह जाते हैं। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि वे राग-द्वेष जो हैं, वे ज्ञान में ज्ञात हुए तो ज्ञान, ज्ञेयाकाररूप हुआ। ज्ञेयाकाररूप हुआ तो ज्ञेय है, उसके कारण से हुआ या अपने कारण से ज्ञानाकार ज्ञेयाकाररूप अपनी प्रसिद्धि में ज्ञानाकार स्वयं के कारण से हुआ है? अमरचन्दजी! आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी चैतन्य ज्योति; उसको वर्तमान में ज्ञेय के जानने से उसे ज्ञायकपना प्रसिद्ध है। परन्तु प्रसिद्धि होने पर भी... हमारी हिन्दी में थोड़ा शब्द का अन्तर आता है। होने पर भी, होते छतां, यह समझ लेना। क्योंकि अभ्यास नहीं। जो थोड़े शब्द आते हैं, वे आते हैं। साधारण हिन्दी है। समझ में आया?

भगवान आत्मा! चैतन्य-अंगार। जैसे अग्नि अंगार है, वह अग्नि पर आकार होने पर भी, अग्नि जलानेयोग्य पदार्थ की पर्याय के आकार हुई नहीं, अपने आकार हुई है; उसी प्रकार चैतन्य-अंगारा, ***भगवान चैतन्य ज्योति रागादि को जानने पर भी, रागरूप ज्ञान परिणमा नहीं है। रागसम्बन्धी अपना जो ज्ञान, वह ज्ञान ज्ञेयाकाररूप, ज्ञेय जैसे रागादि हैं, वैसा अपने ज्ञानाकार ज्ञान परिणमित हुआ है। समझ में आया?*** आहा! राग के पार, शरीर से पार, कर्म से पार उस वस्तु की दृष्टि किये बिना इसका कल्याण कभी नहीं होगा। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के...** भाव के कौन? ज्ञायकपने को, **ज्ञायकता प्रसिद्ध है,...** ज्ञायकपना प्रसिद्ध है। **तथापि उसके ज्ञेयकृत...** अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य जो पदार्थ है तो यहाँ ज्ञानरूप परिणमन हुआ है, ऐसी अशुद्धता उसे लागू नहीं पड़ती। पैसा-बैसा तो पुण्य के कारण मिल जाए, परन्तु यह पुरुषार्थ के बिना नहीं मिलता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! **ज्ञेयाकार होने से उस 'भाव' के ज्ञायकता प्रसिद्ध है,...** उस भाव को अर्थात् ज्ञायकपने को। **तथापि उसके ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है;....** ***इस रागरूप ज्ञान का परिणमन हुआ ही नहीं। ज्ञान का परिणमन ज्ञानाकार की स्वपर्यायरूप परिणमन हुआ है। समझ में आया?***

क्योंकि ज्ञेयाकार अवस्था में... रागादि के विकल्प आदि जो ज्ञेय हैं, उनकी अवस्था जाननेयोग्य अपना ज्ञान हुआ तो **ज्ञेयाकार अवस्था में जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ...** उस अवस्था में जाननेवाला जाननेरूप से ज्ञात हुआ। वह जाननेवाला जाननेरूप

से ज्ञात हुआ। जाननेवाला ज्ञेयरूप ज्ञात हुआ, ऐसा नहीं। समझ में आया? जैसे अग्नि जलानेयोग्य (पदार्थ) के काल में भी अग्निरूप प्रसिद्ध हुई है। अग्निपने के भावरूप अग्नि प्रसिद्ध हुई है; इसी प्रकार ज्ञायक भगवान आत्मा रागादि, पुण्यादि, व्यवहार विकल्प आदि वे ज्ञेय जो हैं, उन आकार अपनी ज्ञानपर्याय में परिणमने पर भी वह ज्ञायकपना उस ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ, ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ। भाई! आहाहा! उस रागरूप और व्यवहाररूप नहीं ज्ञात हुआ। व्यवहाररूप ज्ञात नहीं हुआ; ज्ञायक, ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान, ज्ञेय का ज्ञान करने पर भी ज्ञेयरूप नहीं हुआ।

मुमुक्षु : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बाद में, यह दूसरी बात है। अभी यहाँ तो इतना लेना है। फिर दूसरी बात आयेगी। वह दूसरे बोल में आयेगी। यह तो एक-एक शब्द महासिद्धान्त है।

कहते हैं, ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ, इतनी बात है। उस समय भी ज्ञायकरूप से ज्ञायक प्रसिद्ध हुआ, ज्ञेयरूप से प्रसिद्ध नहीं हुआ। समझ में आया?

अब, **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी,...** अब आया। समझ में आया? अकेला स्वरूप लिया है, भाई! स्वरूप शुद्ध ज्ञायक, अकेला स्वरूप चैतन्य प्रभु अभेद ज्ञायकमूर्ति, वह स्वरूप-प्रकाशन की अवस्था में **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में...** धीरे-धीरे भी समझने की वस्तु तो यह है। बाकी सब बातें ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ लिये, उसमें क्या हुआ? समझ में आया? भगवान आत्मा...! सवेरे भगवान आत्मा बहुत आता था, नहीं? ५०वीं गाथा में। क्षायिकभाव का निषेध करना था न! बहुत सूक्ष्म आया। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भाई! यह चैतन्यज्योत प्रभु आत्मा विराजमान है न! उसके अस्तित्व की -मौजूदगी की प्रतीति कब होती है? उसके अस्तित्व की प्रतीति कब होती है? कि अपने ज्ञान में उन रागादि के ज्ञेयाकाररूप ज्ञान होने पर भी, ज्ञान तो अपने कारण से ज्ञानरूप हुआ है। ज्ञेयाकार परिणमन होने पर भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, ज्ञायकरूप

से ज्ञात होता है। ज्ञायक रागरूप ज्ञात होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? वही **स्वरूपप्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में...** अब थोड़ा उससे भी सूक्ष्म है। भगवान आत्मा स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में। अवस्था तो ली है। भगवान आत्मा स्वरूप चैतन्यमूर्ति जब सम्यग्ज्ञान, मति -श्रुतज्ञान और सम्यग्दर्शन के काल में मति-श्रुतज्ञान से जब ज्ञेय हुआ, स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में अपने मति-श्रुतज्ञान की पर्याय में प्रत्यक्ष ज्ञेय हुआ तो स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में... समझ में आया? **स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी,...** स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में 'भी'... 'भी' क्यों कहा? वह ज्ञेयाकार ज्ञानाकार होने पर भी ज्ञायक तो ज्ञात हुआ, ज्ञायकपने ज्ञात हुआ है। रागपने ज्ञायक प्रसिद्ध हुआ है, ऐसा नहीं है। अब **स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी, दीपक की भाँति,...** दीपक की भाँति। **कर्ताकर्म का अनन्यत्व (एकता) होने से ज्ञायक ही है...** कर्ताकर्म का एकपना होने से ज्ञायक ही है। ध्यान रखना! भगवान आत्मा दीपक की भाँति... दीपक का दृष्टान्त देंगे, समझे?

(दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है, और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है,...); वैसे ही भगवान आत्मा चैतन्य ज्योति ज्ञेय का ज्ञान करने के काल में भी ज्ञायक, ज्ञायकरूप से, ज्ञानरूप से प्रसिद्ध हुआ; रागरूप से नहीं। फिर स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में भी **स्वयं जाननेवाला है...** स्वयं जाननेवाला है। **इसलिए स्वयं कर्ता...** आहाहा! **अपने को जाना, इसलिए स्वयं ही कर्म है।** देखो! क्या कहते हैं? ***भगवान आत्मा अपने को जाननेवाला आत्मा, वह कर्ता और जाननेवाले ज्ञायक कर्ता ने अपने को जाना, ज्ञायक को जाना। ज्ञायक कर्ता और ज्ञायक को जाना, वह ज्ञायक जाना, वह इसका कर्म है। कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा!*** गाथा में बहुत समाहित कर दिया है! इस जड़ का कार्य आत्मा का, पर के कार्य आत्मा के... अभी तो ऐसी चर्चा (चलती है कि) आत्मा दूसरे को समझा सकता है या नहीं? अरे! धूल में समझा सकता है? भाषा जड़ की है, कौन समझा सके? समझ में आया?

यहाँ तो अन्दर विकल्प उठे, उसका ज्ञाता, विकल्प के ज्ञेयाकाररूप ज्ञान हुआ तो वहाँ ज्ञान की प्रसिद्धि हुई है, विकल्प की नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में

आया ? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप प्रभु, अनन्त चैतन्यज्योति से भरा हुआ भरपूर प्रभु, उसकी ज्ञान की दशा में वह ज्ञेय अर्थात् राग, हों! ***राग उसका कर्म नहीं, राग उसका कार्य नहीं, परन्तु राग को जाननेवाली पर्याय हुई है, वह भी यहाँ कर्ता का वास्तविक कर्म नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?***

भगवान चैतन्य प्रभु अपने शुद्धस्वरूप के प्रकाशन काल में, स्वरूप-प्रकाशन काल में अर्थात् निर्विकल्प अनुभव के काल में। विकल्प के काल में भी ज्ञेयाकार का ज्ञान स्वयं से हुआ तो उस समय भी ज्ञायकरूप से ही प्रसिद्ध होता है, रागरूप से प्रसिद्ध नहीं होता। अब स्वरूप-प्रकाशन काल में भी... समझ में आया ? जब निर्विकल्प शुद्ध-उपयोग से स्वरूप प्रकाशन करता है, तब भी... आहाहा! स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में... राग की प्रकाशन अवस्था, पर की प्रकाशन की अवस्था-पर्याय की बात अभी नहीं है। भगवान आत्मा चैतन्यज्योति अभेद के प्रकाशन की अवस्था में भी, दीपक की भाँति कर्ता-कर्म का एकपना है। अनन्यपना, अन्यपना नहीं। अनन्यत्व, अनन्यत्वपना, अन्यपना नहीं है। **अनन्यत्व होने से ज्ञायक ही है...** क्यों ? **-स्वयं जाननेवाला है इसलिए...** स्वरूपप्रकाशन के काल में भगवान आत्मा ही जाननेवाला। समझ में आया ? शशीभाई! परन्तु बहुत सूक्ष्म। आहाहा! अरे! भगवान! तू इतना सूक्ष्म है, ऐसा अनुभव किये बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता और सम्यग्दर्शन बिना जो कुछ करे, वह सब चार गति में भटकने का कारण है। डालचन्दजी!

कहते हैं, प्रभु! तेरा सामर्थ्य सुन तो सही। तेरा सामर्थ्य! भगवान आत्मा जब अपने को जानता है तो स्वयं अपना जाननेवाला कर्ता, स्वयं जाननेवाला है, इसलिए स्वयं कर्ता है और अपने को जाना। देखो! राग को नहीं, पर को नहीं, अकेली पर्याय को जाना - ऐसा भी नहीं। भाई! स्वरूपप्रकाशन के काल में... ओहोहो! बात सूक्ष्म पड़े, इसलिए कहे, यह सब पण्डिताई की बात है। यह तो सब जानपना है। मूल हमारे करना क्या, वह कहो न! यह राग करो, दया करो, भक्ति करो... अब धूल भी नहीं, सुन न अब। पहले करने का कर्तव्य यह है। समझ में आया ? इसे ख्याल में आवे न! ख्याल में आवे, वह ठीक पड़े। यह तो अनादि से ख्याल में आता है। वह तो पर ख्याल में आता है। तुम्हारा आत्मा उस समय कहाँ ख्याल में आया ? समझ में आया ? अपने

आत्मा की प्रसिद्धि हुए बिना तेरे कल्याण का बीज के अंकुर कहाँ से आयेंगे ? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा चैतन्यज्योति स्वरूपप्रकाशन के काल में जाननेवाला आत्मा कर्ता और जाना भी स्वयं को। समझ में आया ? स्वरूपप्रकाशन की अपेक्षा से अपने को जाना, इसलिए स्वयं कर्म। आत्मा ही कार्य हुआ, यह कर्म हुआ। आहाहा! समझ में आया ? प्रवचनसार में ९६ गाथा में भी आता है न ? द्रव्य की सिद्धि करने के लिये। वहाँ द्रव्य की सिद्धि-साबित करने के लिये (कहा है)। द्रव्य की सिद्धि करने के लिये उत्पाद-व्यय और जो गुण-पर्याय है, वह कर्ता है और द्रव्य कर्म है। आहाहा! प्रवचनसार में ज्ञेय अधिकार की ९६ गाथा में है। खबर है या नहीं ? चन्दुभाई! थोड़ा-थोड़ा याद है। यह ठीक कहा। पूछे तो और... ? पारस्परिक सिद्ध करते हैं। द्रव्य के आधार से गुण-पर्याय है और द्रव्य का कार्य गुण-पर्याय है और दूसरे प्रकार से कहें तो गुण-पर्याय कर्ता और द्रव्य कर्म है। गुण-पर्याय आधार और द्रव्य आधेय है। गुण-पर्याय साधन और साध्य यह द्रव्य। ऐसे लें तो द्रव्य साधन और गुण-पर्याय साध्य। ऐसे लें तो गुण-पर्याय साधन और यह (द्रव्य) साध्य। ऐसा ९६ गाथा में ज्ञेय को सिद्ध करने के लिये अमृतचन्द्राचार्य ने ऐसी टीका ली है। समझ में आया ? स्वतन्त्र पदार्थ सिद्ध करना है न! पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

यहाँ तो ऐसा कहा कि भगवान आत्मा स्वरूप... स्वरूप... स्वरूप... स्वरूप-प्रकाशन की दशा में अर्थात् अनुभव के काल में आत्मा के स्वरूप अनुभव निर्विकल्पदशा के काल में अपने शुद्ध उपयोग से आत्मा का अनुभव हुआ, उसी काल में ज्ञायकभाव, वह अपना कर्ता और ज्ञायकभाव को ज्ञान ने जाना, वह ज्ञायकभाव उसका कर्म है। भारी सूक्ष्म, भाई! यह तो कर्ताकर्म का अन्दर डाला है। चन्दुभाई! आहाहा! पहले थोड़ा ऐसा अर्थ लेते कि राग को जाने, ऐसी ज्ञान की पर्याय... परन्तु वह कर्ताकर्म में आयेगा। यहाँ तो अकेला अभेद (लेना है)। नहीं तो ज्ञानपर्याय जो ज्ञात हुई, राग नहीं, व्यवहार नहीं, जानने में आयी, वह कार्य और आत्मा कर्ता परन्तु यह भी भेद हुआ। समझ में आया ? पहले ऐसा अर्थ (करते थे) परन्तु यह...

यहाँ तो आत्मा जाननेवाला स्वरूपप्रकाशन के काल में कर्ता भी भगवान आत्मा और अपने को जाना, अपने को जाना; इसलिए स्वयं वह कार्य हुआ। कर्म, वह आत्मा।

कर्ता भी आत्मा और कर्म भी आत्मा, दोनों अभेद हो गये।... समझ में आया? समझ में आये ऐसा है, हों! न समझ में आये, ऐसा नहीं है। न समझ में आये, ऐसा नहीं है। यह तो इसके अन्दर मान लिया है कि यह हमें नहीं समझ में आयेगा, ऐसी शल्य, दृष्टि समझने नहीं देती और इतनी पात्रता न हो कि समझ में नहीं आवे इतना। फिर रुचि करना और परिणमन करना, वह अलग बात है, परन्तु पद्धति क्या है? विधि क्या है? प्रकार क्या है? स्वरूप की दृष्टि करने में क्या पद्धति है, यह पद्धति भी ख्याल में न ले तो पद्धति का प्रयोग किस प्रकार करेगा? समझ में आया? और अन्दर प्रयोग किये बिना उसे अनुभव नहीं होगा और सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप प्रभु, वह स्वस्वरूप की दशा में, स्वस्वरूप के प्रकाशन के काल में... अवस्था में लिया है न? भाई! देखो! अवस्था में लिया है। **स्वरूपप्रकाशन की अवस्था में....** समझ में आया? '**स स्वरूपप्रकाशनदशायामं**' है, ऐसा कहते हैं। संस्कृत में है। पहले यह लिया था, '**यतो हि तस्यामवस्थायां**' अर्थात् राग को जानना आदि। '**अवस्थायां**' '**ज्ञायकत्वेन यो ज्ञातः स स्वरूपप्रकाशनदशायामं**' समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप निर्विकल्प अभेद है, ऐसे अभेद के प्रकाशनकाल में आत्मा ज्ञायक, वह कर्ता और अपने को जाना, वह आत्मा उसका कर्म - कार्य हुआ। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो कहाँ अभी परद्रव्य के काम करना, परद्रव्य का कर सकते हैं, (ऐसा माने)। ऐई! गोदीकाजी! यह मकान-बकान बनते हैं, यह किसने बनाये? गोदीकाजी ने बनाये, ऐसा लोग कहते हैं। ऐई! पोपटभाई! लोग कहते हैं कि बड़ा पाँच लाख का मकान जयपुर में बनाया है, वह गोदीकाजी ने बनाया है, ऐसा कहते हैं। बोलणी है? ऐई सेठी! क्या हुआ? पर्याय से उसके कारण से बना है, तेरे कारण से बिल्कुल नहीं। आत्मा का वह व्यवहारकर्म भी नहीं है। व्यवहारकर्म तो ज्ञायकभाव द्रव्य और निर्मल पर्याय, वह व्यवहारकर्म हुआ। इतना भेद पड़ा न? भगवान आत्मा ज्ञायकपना, वह स्वभाव कर्ता और वीतरागी श्रद्धा, ज्ञान, रागरहित पर्याय, वह उसका कर्म है। एक में उपचार से-व्यवहार से कहना, तब कर्ता-कर्म ऐसा होता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप के प्रकाशनकाल में, अनुभव के

काल में शुद्ध ज्ञेय-ज्ञायक-ज्ञाता का भेद छोड़कर अकेले स्वरूप प्रकाशन के शुद्ध उपयोग की अवस्था के काल में स्वयं कर्ता, स्वयं जाननेवाला भगवान है तो आत्मा ही कर्ता और स्वयं अपने को जाना तो आत्मा कर्ता और अपने को जाना, वह की वह चीज़ है। **इसलिए स्वयं ही कर्म है।** आहाहा! अभेद बताना है न? समझ में आया?

पहले में विकल्प था, उसका ज्ञान हुआ, तो भी ज्ञानाकार ज्ञान हुआ है, विकल्पाकार नहीं—ऐसा पहले कहा। अब स्वरूपप्रकाशन के काल में ज्ञातः '**जो सो दु सो चेव**' इसमें से टीका में निकाला है। समझ में आया? टीका, यह टीका है न! अमृतचन्द्राचार्य.. आहाहा! अमृत... अमृत... टीका! ऐसी टीका करनेवाले, ऐसी सर्वोत्कृष्ट टीका अन्यत्र कहीं नहीं है। वस्तु के मूल मर्म को, वाच्य को वाचकरूप से प्रगट करना, अनुभव हो, मोक्षमार्ग की दशा हो, तथापि उसकी क्षयोपशम दशा में ऐसा प्रगट करना, यह बहुत विशेष क्षयोपशम है। समझ में आया? आहाहा! है तो दिगम्बर मुनि, जंगल में बसनेवाले। आहाहा! वनवासी, आत्मवासी!

भगवान आत्मा... कहते हैं, जब रागादि है, पुण्य-पाप का, व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, उस समय भी ज्ञान स्व-परप्रकाशक होने से ज्ञायकरूप से ज्ञान रहा है, ज्ञायकरूप से ज्ञात है, ज्ञायकरूप से ज्ञान ज्ञात होता है, रागरूप से नहीं और स्वरूपप्रकाशन की अपेक्षा में अपने स्वरूप के अनुभव में आया तो आत्मा स्वयं कर्ता और अपने को जाना, वह उसका कर्म है। आहाहा! समझ में आया? कहो, राजमलजी! बुद्धिवालों को यह बात पकड़ने जैसी है। आहाहा!

स्वयं कर्ता और अपने को जाना, इसलिए स्वयं ही कर्म है। (जैसे दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक है,...) घट-पट प्रकाशित करने के काल में भी दीपक घट-पटरूप हुआ है? दीपक तो दीपक ही रहा है। **(और अपने को-अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में...)** देखो, समझ में आया? यह स्पष्टीकरण किया है। '**प्रदीपस्येव**' है न? पश्चात् इसमें स्पष्टीकरण आना चाहिए न? कर्ताकर्म का अभेद आना चाहिए न? यह तो दृष्टान्त है। '**स्वरूप-प्रकाशनदशायां प्रदीपस्येव**' इसका अन्दर निकालना चाहिए न कि प्रदीप अर्थात् क्या? दीपक घट-पट के प्रकाशनकाल में दीपक, दीपकरूप रहकर दीपक को प्रकाशित

करता है। दीपक कोई घट-पटरूप नहीं होता और अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करता है। **(प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है,...)** उसकी पर्याय की बात है। **(शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है,...)** पूरी ज्योति ली है, भाई! यह पूरी ज्योति ही है, पर्याय नहीं। **(अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की...)** पूरा दीपक। उसकी **(अवस्था में भी दीपक ही है, अन्य कुछ नहीं; उसी प्रकार ज्ञायक का समझना चाहिए।)** लो, समझ में आया? **'कर्तृकर्मणोरनन्यत्वात् ज्ञायक एव'**

भाई! यह वस्तु ऐसी है और इस प्रकार इसकी पद्धति है, दूसरी पद्धति कहाँ से आवे? किसी को लगे कि यह तो बहुत सूक्ष्म है, हमारे क्या करना? परन्तु यह करना। समझ में आया? यह किये बिना इसका कभी निबेड़ा नहीं आयेगा। लाख बातें करे। छहढाला में यह आया न? 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो' अमरचन्दजी! छहढाला में आता है या नहीं? भाई! तुझे वस्तु की खबर नहीं। क्या चीज़ में वस्तु है? कर्ता कौन है? काम कैसा है? इसकी खबर नहीं और तुझे धर्म हो जाए! कहाँ से धूल में धर्म होगा? धूल में अर्थात् पुण्य भी अच्छा नहीं बँधेगा—ऐसा कहते हैं। सम्यग्दर्शन के काल में जो शुभभाव आता है और यह जो पुण्य बँधता है, वह दूसरे प्रकार का है। अनन्त काल में नहीं बँधा, ऐसा वह प्रकार है। समझ में आया? यह तो मूल वस्तु की खबर नहीं, मूलवस्तु किस प्रकार प्राप्त हो, इसकी खबर नहीं, मूलवस्तु प्राप्त हो तो क्या होता है, इसकी खबर नहीं। समझ में आया? मूल चीज़ की प्राप्ति के काल में दशा कैसी होती है? उस दशा में दशावान कैसा प्रतीति में आता है? यह तो मूल चीज़ यह है, कहो, पोपटभाई!

मुमुक्षु : स्वयं जाननेवाला और अपने को जाने...

पूज्य गुरुदेवश्री : ***स्वयं अपने को जाननेवाला और स्वयं अपने को ज्ञात हुआ।*** स्वयं अपने को ज्ञात हुआ। पोते समझाये छे? हमारी गुजराती भाषा आयी। पोते अर्थात् अपने को जाना। जाननेवाला भी आत्मा और जाना, वह भी आत्मा। भावार्थ - थोड़ा भावार्थ लेना है या नहीं? पूरा-पूरा। लो! राजकोट में यह सब छोड़ दिया था। अब क्या कहते हैं? देखो!

पण्डित जयचन्द्रजी टीका का भावार्थ गूढ़ है, उसे प्रचलित भाषा में लिखते हैं। पण्डित जयचन्द्रजी प्रचलित भाषा में लिखते हैं, हों! उसमें भी बहुत मर्म है। कितने ही तो मूल पढ़ते हैं, अर्थ समझते नहीं और भावार्थ (पढ़ते नहीं क्योंकि) वह तो पण्डित ने किया है, अपने क्या? वह भी पण्डित और अपने भी पण्डित। टीका में से निकाल नहीं सकते और भावार्थ में मर्म है, उसे पढ़ते नहीं, (इसलिए) पता नहीं लगता। समझ में आया?

एक पण्डित था। उससे कहा, 'भूयत्थेणाभिगदा जीवाजीवा व पुण्णपावं च। आसवसंवर णिज्जर बंधो मोक्खो य सम्मत्तं॥' करो अर्थ। ... अरे! भगवान! क्या करता है तू? रामस्वरूप नहीं? क्या नाम? वह तो बेचारा गुजर गया। अब कहाँ है? रामप्रसादजी, वह तो बेचारे गुजर गये। मौजूदगी होती तो नाम नहीं लेते। वह गुजर गये बेचारे, हों! फिर तो कहते थे कि हमारी और तुम्हारी सब बात एक सरीखी है। मैंने कहा, बापू! बहुत अन्तर है। क्योंकि एक होने (के लिये बात आवे)। बापू! एक नहीं हुआ जाता, भाई! बात में बहुत अन्तर है। कहते हैं कि 'भूयत्थेण अभिगथाः' भूतार्थ से नहीं जाना हुआ तत्त्व। बापू! नहीं जाने हुए की बात नहीं है। टीका तो देखो! तो कहे, हम तो सब टीका पढ़ गये हैं, हम भी पण्डित हैं। परन्तु टीका में से समझे नहीं और भावार्थ में उसका मर्म खोला है, उसे पढ़े नहीं। देखो!

अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। यह शब्द है। भगवान आत्मा में अशुद्धता स्वद्रव्य के आश्रय से नहीं आती। स्वद्रव्य और गुण में (नहीं है)। अशुद्धता, मलिनता, राग-द्वेष, दया, दान के विकल्प जो होते हैं, भ्रान्ति, मिथ्यात्व, अव्रत, रागादि वह अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से आती है। ऐसा कहने में क्या कहना है?—कि परद्रव्य का निमित्त है, उसके आश्रय से होती है। स्वद्रव्य के आश्रय से अशुद्धता नहीं होती। समझ में आया? संयोग से ऐसा कहा है, देखो! परद्रव्य के संयोग के लक्ष्य से पर्याय में अशुद्धता, मिथ्यात्व, अज्ञान, राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं।

उसमें मूल द्रव्य तो अन्य द्रव्यरूप नहीं होता,... परन्तु ज्ञायकभाव जो द्रव्य है, वह संयोग के लक्ष्य से जो शुभाशुभ परिणमन कहा था, वह संयोग (के लक्ष्य) से होता अवश्य है, परन्तु द्रव्य उसरूप नहीं होता। समझ में आया? **मात्र परद्रव्य के निमित्त**

से... संयोग का अर्थ निमित्त किया है। **मात्र परद्रव्य के निमित्त से...** ज्ञायकभाव तो ज्ञायकभाव द्रव्य तो द्रव्य ही है, परन्तु मात्र परद्रव्य के संयोग से कहा था, अब कहा निमित्त से। **अवस्था मलिन हो जाती है।** आत्मा की पर्याय-अवस्था-हालत-दशा मलिन होती है। वस्तु तो वस्तु रहती है। वस्तु मलिन नहीं होती। आहाहा! कहो, यह तो समझ में आता है या नहीं? यह तो प्रचलित भाषा है। टीका में अमृतचन्द्राचार्य की बहुत गूढ़ बात है, तो उसे प्रचलित भाषा में (भावार्थ) लिखा है।

द्रव्य-दृष्टि से तो द्रव्य जो है, वही है,... वस्तु जो वस्तु ज्ञायकभाव त्रिकाल है, उस द्रव्य की दृष्टि से देखो, द्रव्य शुद्ध है, उसकी दृष्टि से देखो तो द्रव्य जो है, वही है। समझ में आया? **और पर्याय (अवस्था)-दृष्टि से देखा जाये तो मलिन ही दिखायी देता है।** अवस्था में-हालत में-दशा में देखा जाए तो मलिन दिखता है। वस्तुदृष्टि से देखो तो द्रव्य जो है, वह है; वह मलिन नहीं हुआ। **पर्याय-दृष्टि से देखा जाये तो मलिन ही दिखायी देता है।** 'मलिन ही' शब्द पड़ा है, हों! ऊपर में है। **द्रव्य जो है, वही है,...** वस्तु तो द्रव्यदृष्टि से ज्ञायक चैतन्य ज्योति है, वही है। पर्यायदृष्टि से-अवस्थादृष्टि से, हालत से देखने में आवे तो मलिन ही दिखायी देता है। मलिन पर्याय संसार की बात है न यहाँ? समझ में आया? राग-द्वेष शुभाशुभ परिणाम, दया, दान, व्रत, वह सब अशुद्धपर्याय है, वह मलिन पर्यायदृष्टि से देखने में आवे तो मलिन है। **इसी प्रकार आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्वमात्र है;...** भगवान आत्मा का स्वभाव ज्ञायकत्व-जानपना-जाननेवाला इतना मात्र स्वभाव है। **उसकी अवस्था पुद्गलकर्म के निमित्त से रागादिरूप मलिन है,...** उसकी दशा... ज्ञायकद्रव्य तो जो है, वही है परन्तु उसकी दशा अनादिकाल से कर्म के संग से राग, दया, दान, पुण्य-पाप, काम-क्रोध से मलिन है, **वह पर्याय है।** वह अवस्था है, वस्तु तो वस्तु है। उस पर्याय में अंश में एक समय की दशा में एक समय की दशा...

मुमुक्षु : संगति का असर....

पूज्य गुरुदेवश्री : संगति का असर नहीं, संगति का लक्ष्य करता है। असर-फसर नहीं। यह संग करता है। 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पाई।' यह स्तुति में आता है, स्तुति में। 'कर्म विचारे कौन भूल

मेरी अधिकाई, अग्नि सहै घनघात लोह की संगति पाई।' अग्नि अकेली हो तो घन नहीं मारते, परन्तु अग्नि लोहे का संग करके उसमें घुस जाती है, घन पड़ते हैं। ऐसे अकेला आत्मा अपना संग करे तो उसमें राग-द्वेष नहीं होते, दुःख नहीं होता, घन नहीं पड़ते परन्तु वह अपने स्वभाव का लक्ष्य छोड़कर पर के संग का लक्ष्य करता है तो चार गति के दुःख-घन सहन करना पड़ते हैं। समझ में आया? उसमें है, अर्थ में बहुत आता है। परन्तु अर्थ करे कौन? ऐसे के ऐसे हाँकते जाते हैं। जाओ! 'कर्म विचारे कौन भूल मेरी अधिकाई,' पढ़ जाए।

मुमुक्षु : यह तो जयमाला में आवे, तब बोल जाए।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोल जाए। समझ में आया?

पर्यायदृष्टि से देखा जाये तो वह मलिन ही दिखायी देता है... वर्तमान अवस्था के लक्ष्य से देखो तो राग, द्वेष मलिन ही है। कर्म से नहीं, कर्म के कारण से नहीं, तेरी दशा ही मलिन है। आहाहा! मलिन है। कितने ही कहते हैं कि सोनगढ़वाले शुद्ध-शुद्ध सिद्धसमान कहते हैं। अब सुन तो सही! सिद्धसमान किस प्रकार कहते हैं? वह तो द्रव्य अपेक्षा से बात है। पर्याय में मलिन है। आहाहा! यह तो ऐसा कहते हैं, शुद्ध-शुद्ध सिद्धसमान है, जाओ! हो गया सिद्ध! कहाँ से हुआ? सुन तो सही।

द्रव्य 'सिद्धसमान सदा पद मेरो।' 'मोह महातम आतम अंग कियो परसंग महातम घेरो।' समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप ज्ञायक द्रव्य से तो शुद्ध ही है, वह तो भावरूप मलिनरूप हुआ ही नहीं। द्रव्य कहाँ से (मलिन) होगा? एक समय की दशा, हालत कर्म के संयोग के, निमित्त के लक्ष्य से मलिनता उसमें स्वयं से आयी है। आहाहा! समझ में आया? स्वयं से आयी है। विकार पर्याय स्वयं से आयी है, उसकी पर्याय में है। पर का क्या काम है? परचीज़ पर में रही।

मुमुक्षु : दोष किसका?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोष कर्म का है न? तुझे तो महन्त रहना है। टोडरमलजी ने कहा है, तुझे तो महन्त रहना है और तू दोष कर्म के ऊपर डाल देता है। जिन-आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है, ऐसा उसमें लिखा है। जहाँ-तहाँ से ऐसा निकाले परन्तु

वस्तु ऐसी है। तू तो महन्त रहना चाहता है और दोष होता है, तब कहता है, कर्म का उदय आया तो हमारे विकार करना पड़ा।

एक बहुत बड़ा पण्डित था, वह बालकों को-विद्यार्थी को मारता था। अरे! परन्तु क्या करता है? (वह कहे) तुम्हें खबर नहीं, तुमने गोम्मटसार देखा नहीं। चारित्रमोह का उदय आवे तो क्रोध आये बिना नहीं रहता। बहुत अच्छा सीखा! समझ में आया? विद्यार्थी को मारे। यह क्या है? बेचारे छोटे बालक हैं। वह कहे, तुम्हें खबर नहीं, तुमने गोम्मटसार देखा है? गोम्मटसार देखा है? (उसमें आता है), चारित्रमोह से विकार होता है। ताराचन्दजी! अरे, भगवान! ऐसा नहीं है। तू विकार करता है तो होता है। चारित्रमोह से विकार होता है, ऐसा बचाव करता है? मूढ़! तुझे (विकार) कभी नहीं छूटेगा। यह तो सुना है, हों! एक व्यक्ति कहता था। बना हुआ बनाव है। अनबनी हुई नहीं, बनी हुई बात है। नाम-स्थान नहीं देते। मारता था। (वह कहे), तुमने गोम्मटसार देखा है? ज्ञानावरणीय से ज्ञान रुकता है, दर्शनावरणीय से दर्शन रुकता है, अन्तराय से वीर्य का विकास नहीं होता, मोह से विकार होता है। तुम्हें खबर नहीं? यह गोम्मटसार सीखा! शून्य सीखा है। समझ में आया?

कहते हैं **पर्यायदृष्टि से देखा जाये तो...** पर्याय, उसकी अपनी पर्याय में। **मलिन ही दिखायी देता है और द्रव्यदृष्टि से देखा जाये तो ज्ञायकत्व तो ज्ञायकत्व ही है;...** लो, वस्तु की दृष्टि से देखा जाए तो वस्तु तो ज्ञायकपना, भावस्वभावपना ही है। स्वभाववान स्वभावपने से ही है। ज्ञायक चैतन्यभावपने से अनादि से भरपूर है। **यह कहीं जड़त्व नहीं हुआ।** देखो! शब्द लिया। टीका में है न! जड़त्व नहीं हुआ, इसका अर्थ शुभाशुभ-रागरूप ज्ञायक नहीं हुआ। ज्ञायकपना चैतन्यज्योत चैतन्य की डली है, वह शुभाशुभ परिणामरूप नहीं हुई। जड़ नहीं हुआ।

यहाँ द्रव्यदृष्टि को प्रधान करके कहा है। देखो! पहले दो बातें की। यहाँ इस गाथा में वस्तु की दृष्टि को मुख्य करके कहा है। देखो! मुख्य करके कहा है। प्रधान अर्थात् मुख्य। पर्याय को गौण करके कहा है, पर्याय का अभाव करके नहीं। आहाहा! **जो प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं, वे परद्रव्य की संयोगजनित पर्याय हैं।** द्रव्य की दृष्टि,

द्रव्य-वस्तु ज्ञायक की दृष्टि कराने के लिये, वस्तु की दृष्टि करो, वह प्रधान दृष्टि है। उसे प्रधान करके कहा है कि **प्रमत्त-अप्रमत्त के भेद हैं, वे परद्रव्य की संयोगजनित पर्याय हैं।** देखो! **यह अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है,...** देखो! गौण आया, अभाव नहीं। विशिष्टता है।

वस्तु शुद्ध अखण्ड है, उसे मुख्य करके निश्चय कहा। मलिन पर्याय आदि को... यहाँ मलिन की बात है, नहीं तो सब पर्याय को। गौण करके उन्हें व्यवहार कहा है। समझ में आया? **अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है,...** पर्याय में मलिनता है, पुण्य-पाप के विकार हैं, वह भी वस्तुदृष्टि में पर्याय को गौण किये बिना मुख्य का लक्ष्य अर्थात् दृष्टि नहीं होती। पर्याय में मलिनता है, उसे गौण किये बिना; होने पर भी, गौण अर्थात् लक्ष्य छोड़े बिना द्रव्य की दृष्टि नहीं होती। समझ में आया? पण्डित जयचंदजी ने बहुत अच्छा लिखा है। समयसार के अर्थ करनेवाले उस समय मिले। अभी तो गड़बड़ कर डाले, ऐसी यह वस्तु है।

मुमुक्षु : बड़ा समयसार तैयार होवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह बड़ा समयसार होता है। अन्दर घर की गड़बड़ डालेंगे। यहाँ तो एक न्याय बदले तो पूरा तत्त्व पलट जाए, ऐसी वस्तु है। समझ में आया?

अशुद्धता-मलिनता है अवश्य, पर्याय में-अवस्था में मिथ्यात्व का उदयभाव है, राग का उदय है, असिद्धभाव जीव की पर्याय में है, वह अशुद्धता है परन्तु द्रव्यदृष्टि में उसे गौण कर डाला। गौण व्यवहार है। गौण है, वह व्यवहार है, ऐसा नहीं कहा। अशुद्धता द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से व्यवहार है, ऐसा नहीं कहा। अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है। समझ में आया? पर्वत के ऊपर जाना हो तो तलहटी को गौण करना पड़ता है, लक्ष्य छोड़ना पड़ता है। तुम अभी गये थे या नहीं? गौण करना; है तो सही। इसी प्रकार भगवान आत्मा में मलिनता की पर्याय, है पर्याय तलहटी में है। गौण है। द्रव्यदृष्टि में गौण है, वहाँ नहीं रहना। अन्दर द्रव्य में जाना है। आहाहा!

व्यवहार है, अशुद्धता गौण है, अशुद्धता व्यवहार है, इतने शब्द लेना। अशुद्धता अभूतार्थ है। आगे-आगे जाते हैं। अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। किस अपेक्षा से? द्रव्यदृष्टि

में, गौण है, व्यवहार है, अभूतार्थ है। वजन यहाँ है—अभूतार्थ है। है ही नहीं। द्रव्यदृष्टि में अशुद्धता है ही नहीं। समझ में आया? **असत्यार्थ है,...** देखो! असत्यार्थ का अर्थ 'है ही नहीं' ऐसा नहीं है। द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से अशुद्धता को; त्रिकाल की दृष्टि कराने के लिये, त्रिकाल भूतार्थ की दृष्टि में व्यवहार होने पर भी, मलिनता होने पर भी असत्य है। वह त्रिकाल सत्य है और यह असत्य है, ऐसा। है नहीं, ऐसा नहीं। आहाहा! उन्होंने बहुत स्पष्ट कर दिया है। समझ में आया?

अ—भूतार्थ। अ अर्थात् नहीं, विद्यमान अर्थ। ऐसा शब्दार्थ है। द्रव्यदृष्टि में वस्तु अभेद एकाकार है। उस दृष्टि में व्यवहार अशुद्धता अभूत अर्थ है। वह पदार्थ है ही नहीं। है नहीं, तब तक तो ठीक परन्तु असत्यार्थ है। दो शब्द पृथक् कर डाले। विद्यमान नहीं। अविद्यमान अर्थात् है ही नहीं। असत्य है, है ही नहीं, असत्य है। समझ में आया? वस्तु दृष्टि में, द्रव्यदृष्टि में मलिनता पर्याय में है। उसे गौण, व्यवहार, अभूतार्थ, है ही नहीं, असत्यार्थ है, उपचार है—(ऐसा कहा)। असत्यार्थ का अर्थ लेंगे। है तो शुद्धाशुद्धधर्म आत्मा की पर्याय है। पर्याय इसकी है, इसमें है। नहीं है, ऐसा नहीं है। अशुद्धता न हो तो स्वभाव के आश्रय से अशुद्धता का नाश करना नहीं रहता। लादूलालजी! यहाँ के नाम से बहुत उड़ाते हैं, बहुत उड़ाते हैं। आहाहा! अरे, भगवान! तूने सत्य बात सुनी नहीं। सुनना ही नहीं चाहते। आहाहा!

भाई! वस्तु के स्वरूप की दृष्टि की अपेक्षा से उसे असत्यार्थ कहा है। पर्याय की दृष्टि से... यह तो पहले कहा, पर्यायदृष्टि से देखा जाए तो मलिन ही दिखता है, मलिन है। समझ में आया? यह आत्मकथा है। जरा सूक्ष्म पड़े परन्तु यह तो इसके प्रभु की कथा है न! मलिनता बिल्कुल नहीं है, ऐसा कहनेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। द्रव्य में नहीं परन्तु पर्याय में भी विकार नहीं, अशुद्धता नहीं, जैसा द्रव्य शुद्ध है, वैसी पर्याय शुद्ध है (-ऐसा माने तो) मूढ़ है। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। असत्यार्थ कहो, है उसे नहीं माननेवाला असत्यार्थ दृष्टि है। कहो, ताराचन्दजी! ऐसा है या नहीं? या नहीं? परन्तु द्रव्यदृष्टि में असत्यार्थ है।

द्रव्यदृष्टि शुद्ध है,... अब आमने-सामने लिया। अशुद्धता थी न? वस्तुदृष्टि है वह शुद्ध है। अखण्ड ज्ञायक अभेदस्वरूप, वह शुद्ध है, अभेद है... एकरूप है। समझ

में आया? **निश्चय है,...** वही निश्चय है, द्रव्यदृष्टि ही निश्चय है। वस्तु एकरूप अखण्ड, वही निश्चय है। **भूतार्थ है,...** अर्थात् है, विद्यमान पदार्थ है। छता को क्या कहते हैं? विद्यमान पदार्थ है, वही विद्यमान पदार्थ है, और सत्यार्थ है।.... द्रव्यदृष्टि सत्यार्थ है। अशुद्धता द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से असत्यार्थ है और द्रव्य सत्यार्थ है। समझ में आया? **परमार्थ है।** लो!

मुमुक्षु : अभेद अर्थात् अशुद्धता आ गयी... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। अशुद्धता कहाँ है? अभेद द्रव्य अकेला। और कहाँ से आयी गड़बड़? भेद की कहाँ बात है। अकेला द्रव्य अभेद शुद्ध अभेद है। और अशुद्धता कहाँ आयी? यहाँ अशुद्धता पर्याय में है।

मुमुक्षु : वर्तमान पर्याय को उसमें दाखिल करके....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं, नहीं। खोटा है। किसने कहा? नहीं, नहीं। किसने कहा? सब खोटा है, वह तो पाखण्ड है। एक द्रव्यस्वभाव। द्रव्यदृष्टि से शुद्ध है, कहा न? द्रव्य अर्थात् वस्तु। एक समय में त्रिकाल वस्तु वह शुद्ध है। समझ में आया? वह अभेद है, निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ और परमार्थ है। आहाहा! ***द्रव्यदृष्टि में पर्याय आ गयी, ऐसा नहीं है। मलिन पर्याय भी नहीं और निर्मल पर्याय भी नहीं। द्रव्यवस्तु त्रिकाल ज्ञायक है, वह शुभाशुभरूप हुई नहीं। ऐसी चीज़ है, वही सत्यार्थ है। आहाहा! समझ में आया?*** किस प्रकार से है? सुरेन्द्रनाथजी! यह समझना पड़ेगा।

यहाँ तो **द्रव्यदृष्टि शुद्ध है, अभेद है,...** अभेद अर्थात् विकार सहित नहीं। द्रव्यदृष्टि वस्तु, वह अभेद और शुद्ध है। आहाहा! उसमें भेद कैसा? **निश्चय है, भूतार्थ है, सत्यार्थ है, परमार्थ है। इसलिए आत्मा ज्ञायक ही है;...** इस प्रकार आत्मा ज्ञायक ही है, **उसमें भेद नहीं हैं...** लो! वस्तु ज्ञायकस्वरूप भगवान प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, इसका स्पष्टीकरण किया। **इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है।** अब चौथे पद का स्पष्टीकरण जो टीका में आया था, वह स्वयं कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल ९, बुधवार, दिनांक - २४-०८-१९६६
गाथा - ६, प्रवचन - २६

... प्रचलित भाषा में पण्डित जयचन्दजी ने इसका स्पष्टीकरण (किया है)। यहाँ तक आया है। **परमार्थ है। इसलिए आत्मा ज्ञायक ही है; उसमें भेद नहीं हैं, इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है।** यहाँ तक आया है। ऐई... सेठी! भावार्थ। क्या कहा, समझ में आया? आत्मा ज्ञायकस्वरूप ध्रुव निश्चय भूतार्थ सत्यार्थ वह एक ही वस्तु है। उसकी दृष्टि में वर्तमान पर्याय गौण करके अभूतार्थ कहकर असत्यार्थ कहकर हेय कहने में आयी है। समझ में आया? भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्य ध्रुव अनन्त गुण की एकरूप वस्तु, वही सम्यग्दर्शन का विषय है। समझ में आया? उसे यहाँ भूतार्थ कहा है। भूतार्थ अर्थात् विद्यमान पदार्थ। विद्यमान शब्द है न? विद्यमान। छतो शब्द नहीं आता? पण्डितजी! छतो शब्द नहीं आता? हिन्दी में नहीं आता। (हिन्दी में) विद्यमान (आता है)। छतो अर्थात् है। परिपूर्ण ज्ञायक भूतार्थ भूत... भूत... भूत विद्यमान अर्थ त्रिकाल। वही निश्चयनय का विषय, उसे सत्यार्थ कहा गया है। यह कहते हैं। देखो! एक बात हो गयी।

अब **'ज्ञायक' नाम भी उसे ज्ञेय को जानने से दिया जाता है;...** यहाँ से शुरु होता है। भगवान आत्मा जाननेवाला है **उसे ज्ञेय को जानने से दिया जाता है; क्योंकि ज्ञेय का प्रतिबिम्ब जब झलकता है...** यह तो व्यवहार से समझाया है, हों! ज्ञेय का प्रतिबिम्ब कहीं ज्ञान में पड़ता नहीं। परनतु ज्ञान की पर्याय में जैसा ज्ञेय है, वैसा स्व ज्ञान आकार अपनी पर्याय में ज्ञान हो जाता है। तो कहते हैं कि **तब ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है।** जैसा राग आया, विकल्प है तो उस सम्बन्धी अपना ज्ञान ज्ञानाकार होकर अपने को ज्ञानरूप बतलाता है। रागरूप नहीं, व्यवहाररूप नहीं। शशीभाई! यह छठवीं गाथा सूक्ष्म है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञेय आया नहीं। अपनी ज्ञान की पर्याय में ज्ञेय सम्बन्ध का जो अपना परप्रकाश का भाव था, वह अपने में अपने से आया। पर से आया ही नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **तब ज्ञान में वैसा ही अनुभव होता है।** क्या? जैसे पुण्य-पाप के भाव, दया, दान का राग आया तो उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने में से ज्ञेयाकार ज्ञान, ज्ञेयाकार ज्ञान अपने आकाररूप हुआ है। ज्ञेयाकाररूप हुआ नहीं। **तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है,...** चाहे तो ज्ञेय का ज्ञान यहाँ हुआ, वह ज्ञान अपना है। वह ज्ञेय का ज्ञान हुआ तो उसके कारण से अशुद्धता आ गयी, ऐसा नहीं, वह तो निज ज्ञायक से ही अपने से अपने को जाना और अपने में अपने अस्तित्व में अपने सामर्थ्य से राग को, व्यवहार को जाना तो पर की अशुद्धता पर के कारण से अशुद्धता आयी, ऐसा है नहीं। समझ में आया? लालचन्दजी! यह सूक्ष्म विषय है। गाथा यह आ गयी है। सहज आ गयी है, हों! चलते-चलते। ११ से शुरु हुई है। श्रावण शुक्ल ११। पहले श्रावण शुक्ल न? तब समयसार शुरु (हुआ)। सभा में यह १५वीं बार शुरु हुआ है।

कहते हैं, **उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं है, क्योंकि जैसा ज्ञेय ज्ञान में प्रतिभासित हुआ...** जैसा ज्ञेय—रागादि ज्ञान में भासित हुए **वैसा ज्ञायक का ही अनुभव करने पर...** जाननेवाला मैं हूँ, ऐसा अनुभव करने से **ज्ञायक ही है।** वह ज्ञायक कहीं रागरूप हुआ नहीं। व्यवहाररूप हुआ नहीं, निश्चयरूप अपनी... अपने को जानकर पररूप जानने की पर्यायरूप रहकर ज्ञायक ही रहा है, पररूप हुआ नहीं। बहुत सूक्ष्म।

'यह जो मैं जाननेवाला हूँ... अब अभेद करते हैं। **यह जो मैं जाननेवाला हूँ, सो मैं ही हूँ, अन्य कोई नहीं' - ऐसा अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ, तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्ता स्वयं ही है,...** अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ। शुद्ध चैतन्य ध्रुव के ऊपर लक्ष्य करके अभेद का अनुभव पर्याय में हुआ तो कहते हैं, **अपने को अपना अभेदरूप अनुभव हुआ, तब इस जाननेरूप क्रिया का कर्ता स्वयं ही है,...** जानने की क्रिया का... भाई! यहाँ क्रिया ली है, जानने की क्रिया। परन्तु जानने की

क्रिया होकर उसका कर्ता ज्ञायक है। **और जिसको जाना...** जिसे जाना। ज्ञायक ने जाना। ज्ञायक ही कर्म हुआ। जाननेवाला भी कर्ता और ज्ञात हुआ आत्मा, वह भी कर्म। सूक्ष्म है। अभेद हो गया, अभेद।

मुमुक्षु : जिसको चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, जिसको चाहिए, शब्द में अन्तर है। अन्तर है, अन्तर है। ख्याल में है। मैंने अर्थ दूसरा किया न! वहाँ जिसने की जगह जिसको चाहिए। शब्द में अन्तर है। मैंने तो अर्थ ऐसा किया न। जिसको किया। शब्द में जिसने है, वह जिसने नहीं चाहिए। **जिसको जाना वह कर्म भी स्वयं ही है।** ऐसा शब्द होना चाहिए। समझ में आया? अर्थ में ऐसा कहा था कि जिसको अर्थात् आत्मा को। आत्मा ज्ञायकस्वरूप अभेद, वह जाननेवाला। वही ज्ञात हुआ। जाननेवाला भी वही, और जानने में आया वही। उसका नाम अभेद कहा जाता है। समझ में आया?

ऐसा एक ज्ञायकत्वमात्र स्वयं शुद्ध है। ऐसा भगवान ज्ञायकत्व स्वभावमात्र, वह शुद्ध है। **यह शुद्धनय का विषय है।** वह शुद्धनय का विषय है अर्थात् सम्यग्दर्शन का विषय है। आहाहा! **अन्य जो परसंयोगजनित भेद हैं...** अपनी पर्याय में प्रमत्त-अप्रमत्त आदि भेद हैं, **वे सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषय हैं।** क्या कहते हैं? देखो! भगवान आत्मा अपना ज्ञायक त्रिकाल शुद्ध ध्रुव की दृष्टि करने से ज्ञायक भी आत्मा और ज्ञात हुआ, वह भी आत्मा। अब कहते हैं कि जितने पर्याय में—अवस्था में भेद पड़ते हैं, **वे सब अशुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषय हैं।** भाषा देखो! आत्मा में चौदह गुणस्थान, रागादि भाव, प्रमत्त-अप्रमत्तभाव, वह संयोगजनित भेद का विषय व्यवहारनय का विषय है। पहले अशुद्धद्रव्यार्थिकनय का विषय कहा, भाई! क्यों कहा? उसकी पर्याय है तो अशुद्धद्रव्यार्थिक पहले कहा। क्या कहा, समझ में आया? पहले अशुद्धद्रव्यार्थिक क्यों कहा? वरना है तो वह व्यवहारनय का विषय। ज्ञायक जो एकस्वरूप त्रिकाल है, शुद्ध ध्रुव, वह शुद्धनय का विषय है और उसका आश्रय करने से ही सम्यग्दर्शन होता है और उस ज्ञायक में जितने वर्तमान पर्याय में भेद दिखते हैं, गुणस्थान रागादि भेद, वे संयोगजनित भेद, वह सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय का (विषय है)। यह क्यों

लिया ? यह द्रव्य तो अपना एकरूप है। वही द्रव्य पर्याय में अशुद्ध द्रव्य अपनी पर्याय में अपने कारण से भेदरूप हुआ है। यह बतलाने के लिये अशुद्धद्रव्यार्थिक का विषय कहा गया है। समझ में आया या नहीं ?

फिर से। अपने यहाँ पुनरुक्ति नहीं लगती। यहाँ **अन्य परसंयोगजनित भेद हैं...** भगवान चैतन्यप्रभु ज्ञायकस्वरूप, वही दृष्टि का विषय, वही अभेद। उसकी पर्याय में भेद दिखते हैं न ? चौथा गुणस्थान, पाँचवाँ गुणस्थान, छठवाँ गुणस्थान, रागादि, प्रमत्त-अप्रमत्त भेद दिखते हैं न ? वे भेद वास्तव में तो संयोग के लक्ष्य से संयोग के निमित्त से अपने में भेद पड़ जाते हैं। वे अपने में पड़ते हैं, यह बतलाने के लिये वे सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय का विषय बतलाया। वह द्रव्य ही अपनी पर्याय में अशुद्धरूप से भेदरूप से हुआ है। पुस्तक सामने है या नहीं ? इसके लिये तो पुस्तक रखते हैं कि किस शब्द का क्या अर्थ होता है। समझ में आया ? लोग आलोचना तो करते हैं कि नीचे पुस्तक (रखते हैं)। भगवान! सुन तो सही, भाई! अरे प्रभु! तुझे क्या चीज़ है, यह समझना, शब्द में क्या वाच्य है, वह वाच्य कहने में समझ में आये तो (उसको) शास्त्र का विनय कहा जाता है। वह वास्तविक विनय है। समझ में आया ?

कहते हैं, भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन अथवा शुद्धनय का विषय अभेद एकरूप एकाग्र होने से एकरूप जिसका विषय-ध्येय है। तब कहते हैं कि यह पर्यायभेद दिखते हैं न ? उसकी दशा में संयोगजनित-संयोग के लक्ष्य से होनेवाले, उसमें दिखते हैं न ? तो संयोगजनित भेद, ऐसा कहकर सब भेद अशुद्धद्रव्यार्थिकनय का (विषय है), ऐसा कह दिया। संयोग कर्म के निमित्त के संग में जो भेद पड़ जाता है, अपने पुरुषार्थ से, द्रव्य की अपनी पर्याय में, तो उसे अशुद्धद्रव्यार्थिकनय का विषय कहा। पण्डित जयचन्द्रजी ने हिन्दी में प्रचलित भाषा में भी वास्तविकता रखी है। लोग ऐसा नहीं समझ जाये कि आत्मा की पर्याय में वह पर्याय पर से हुई है, पर से हुई है अथवा पर में है, ऐसा न समझ ले। ऐसा नहीं। भगवान आत्मा ज्ञायक चिदानन्द प्रभु, वह शुद्ध द्रव्य का विषय है और आत्मा की उपासना करने से उसे शुद्ध कहा तो पर्याय में भेद है न ? यह गुणस्थान है, राग है, दया, दान, काम, क्रोध के विकल्प आदि हैं, अशुद्धता है, ज्ञानगुण आदि की पर्याय हीन है, वीर्य हीन है, रागादि विपरीत है, दर्शन हीन है, वह क्या है ? वह भेद

संयोग के लक्ष्य से (हुए हैं)। संयोगजनित शब्द पड़ा है। स्वभावजनित नहीं, ऐसा बतलाने के लिये बात है। यह कहा न? स्वभावजनित नहीं। इस अपेक्षा से संयोगजनित कहा। संयोगजनित कहकर स्पष्ट करते हैं कि वह सब अशुद्धद्रव्यार्थिकनय का विषय है। वह द्रव्य ही अपनी पर्याय में अशुद्धरूप से परिणमा है। इसीलिए स्पष्टीकरण किया है। समझ में आया? संयोगजनित जो शब्द पड़ा है, वह स्वभावजनित नहीं, इतना बतलाने के लिये (कहा है)। और संयोगजनित का अर्थ, संयोग के लक्ष्य से उसके आश्रय से चौदह गुणस्थान के भेद पड़ते हैं, चौथा, पाँचवाँ, छठवाँ वे सब भेद हैं। वे भेद अथवा रागादि भेद हैं, उन सब भेदरूप... देखो! **वे सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय के विषय हैं।** वह द्रव्य ही अपनी पर्याय में अशुद्धरूप से परिणमा है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अशुद्ध पर्याय उत्पन्न हुई। अपने में उत्पन्न हुई, यह बतलाने के लिये कहा। अपने में अपने से द्रव्य शुद्ध है, पर्याय को अशुद्धद्रव्यार्थिकनय से कहा कि द्रव्य ही अपनी पर्याय में भेदरूप परिणमा है। आहाहा! समझ में आया? अमरचन्दजी!

भगवान! यह पर्याय है नहीं? पर्याय है, भेद है, गुणस्थानभेद है। यदि भेद न हो तो तीर्थ का नाश हो जाये। तीर्थ भी चौथे, पाँचवें, छठवें में शुद्धि बढ़े-घटे, वह सब व्यवहार का विषय है। ज्ञायक का तो एक विषय है। शुद्धनय का दृष्टि का (विषय तो) एक अभेद अखण्डानन्द ज्ञायक विषय है। उसके साथ भेद जो गुणस्थान के हैं, वह अशुद्धद्रव्यार्थिक है। द्रव्य ही अशुद्धरूप से हुआ है। नहीं कि कर्म से अशुद्धपना हुआ है। यह बतलाने के लिये सब भेदरूप अशुद्धद्रव्यार्थिकनय का विषय है। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? इसमें समझ में आता है अर्थात् यह कहा जाता है इसमें। कहो, राजमलजी!

अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी... अब स्पष्टीकरण किया। देखो! **अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी...** वर्तमान में जितने भेद पड़ते हैं, दया, दान, व्रत के विकल्प या गुणस्थानभेद, वह शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में, **शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में पर्यायार्थिक ही है...** वह पर्यायार्थिक ही है।

समझ में आया? यह तो मर्म की बात है। मूल चीज़ की बात है। उड़ा दे कि भेद है ही नहीं तो प्रमाण का विषय पूरा नहीं होता। समझ में आया? और द्रव्य का विषय अभेद है, यदि उसका लक्ष्य न करे तो ज्ञायक से-निज तत्त्व से जो दृष्टि उत्पन्न होनी चाहिए, वह होती नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी...** अर्थात्? अर्थात् द्रव्य में अपने द्रव्य की पर्याय में ज्ञायक तो द्रव्य शुद्ध ही है, वह दृष्टि तो हुई, परन्तु पर्याय में भेद रहते हैं, राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं, गुणस्थानभेद होते हैं, उन्हें अशुद्धद्रव्यार्थिकनय से कैसे कहा? कि अपना द्रव्य अपने से संयोगजनित के लक्ष्य से अशुद्धरूप से हुआ, यह बतलाने के लिये अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा। और वह अशुद्धद्रव्यार्थिक भी शुद्ध दृष्टि की अपेक्षा से पर्यायार्थिक है। पर्यायार्थिक ही है। ताराचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... यह तो सादी भाषा है। यह कहीं कोई संस्कृत, व्याकरण की ऐसी नहीं हमारे पास। यह तो सादी सरल भाषा से बात है। है?

आत्मा एक समय में भूतार्थ सत्यार्थ त्रिकाल जो कहा, वह तो दृष्टि का विषय, शुद्धनय का विषय (हुआ)। तो उसमें कुछ बाकी रहा या नहीं? या इतना ही आत्मा है? समझ में आया? तो कहते हैं, पर्याय में-अवस्था में-हालत में-दशा में चारों ही एक बोल है। संयोग के लक्ष्य से जो भेद पड़ते हैं, स्वभाव के लक्ष्य से भेद क्यों पड़ें? तो संयोगजनित कहने में आया है। स्वभावजनित नहीं। संयोगजनित उत्पन्न हुए। उसमें निमित्त का लक्ष्य करने से भेद पड़ गया। गुणस्थान का, दया, दान का, व्यवहाररत्नत्रय आदि का (भेद), वह सब अशुद्धद्रव्यार्थिक है। अपनी पर्याय परिणमी है, इसलिए अशुद्धद्रव्यार्थिक है। और **अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी शुद्धद्रव्य की दृष्टि में...** त्रिकाल ज्ञायक की दृष्टि में **पर्यायार्थिक ही है...** पर्याय ही है। अशुद्धद्रव्यार्थिक कहो, पर्याय ही है। वह तो अशुद्धद्रव्यार्थिक क्यों कहा था? कि द्रव्य अपनी पर्याय में अपने से अशुद्ध हुआ है, इसलिए अशुद्धद्रव्यार्थिक कहने में आया है। आहाहा! पानाचन्दभाई! इन्होंने प्रश्न किया था न संयोगजनित का?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समस्त चौदह ही गुणस्थान। आत्मा में सब भेद पड़ते हैं, इसलिए पर्यायदृष्टि का विषय है। भाई! समझ में आया? यह तो मूल मुद्दे की रकम है न। शुरुआत यहाँ से होती है।

कहते हैं, भगवान! भगवान कहते हैं परन्तु अभी तो तुझे सम्बोधन करके भगवान कहते हैं, हों! प्रभु! तेरी ऋद्धि कैसी है, सुन तो सही! तेरी ऋद्धि तो अन्दर एकरूप अखण्डानन्द है, वह तेरा द्रव्य शुद्धनय का विषय और सम्यग्दर्शन का विषय है। परन्तु इतने में पूरा द्रव्य आ गया? नहीं। कहा न कि नय है। तो नय एक अंश को पकड़ता है। भले शुद्धनय हो, परन्तु नय है न? नय ने तो एक अंश को पकड़ा है, त्रिकाल ध्रुव अंश को पकड़ा है। दूसरा अंश बाकी रहता है या नहीं? ब्रह्मचारीजी! दूसरा अंश रहता है या नहीं? प्रमाण है यह? नय, नय है। नय एक अंश को पकड़ता है। तो शुद्ध द्रव्य की दृष्टि एक अंश से ध्रुव अभेद को पकड़ा है। एक अंश आया। तो दूसरा अंश है या नहीं? समझ में आया? दूसरा अंश है, जो व्यवहारनय का विषय है, वह तो द्रव्य अपने से अशुद्धरूप परिणमा है, यह बतलाने के लिये अशुद्धद्रव्यार्थिक का विषय कहने में आया है। और उसका स्पष्टीकरण करते हुए (कहा कि), जब शुद्ध द्रव्य को शुद्धनय का विषय कहा तो पर्याय अशुद्ध रह गयी है। वह **अशुद्धद्रव्यार्थिकनय भी...** पर्याय और रागादि तो व्यवहारनय का विषय है ही। परन्तु अशुद्धद्रव्यार्थिक जो पर्याय अपनी परिणमी, इस अपेक्षा से इसमें अशुद्ध कहा, वह भी शुद्ध द्रव्य की दृष्टि में, त्रिकाल ज्ञायक की दृष्टि में **पर्यायार्थिक ही है...** वर्तमान अवस्था ही है। समझ में आया? **इसलिए व्यवहारनय ही है....**

तीन बोल लिये। देखो! अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा, उसे पर्यायार्थिक कहा, उसे व्यवहार कहा। तीन अपेक्षा आयी। कौन सी तीन अपेक्षा? एक तो त्रिकाल ज्ञायक चैतन्य को पकड़ा, एक अंश को-शुद्ध को-ध्रुव को-ज्ञायक को, तो वह शुद्धनय का विषय हुआ। तो अब एक अंश भेद का बाकी है या नहीं? तो उसका भेद उसमें है, यह बताने के लिये अशुद्धद्रव्यार्थिक कहा। उस अशुद्धद्रव्यार्थिक को वर्तमान अंश है तो उसे पर्यायार्थिक

कहा और वह अंश त्रिकाल का अभेद का भेद है, उसे व्यवहार कहा। समझ में आया? **इसलिए व्यवहारनय ही है, ऐसा आशय समझना चाहिए।** ऐसा आशय-अभिप्राय समझना चाहिए। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह भी जानना चाहिए... अब विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। **कि जिनमत का कथन स्याद्वादरूप है,...** द्रव्य को शुद्धनय का विषय बनाया तो अशुद्धता उसमें है ही नहीं, ऐसा नहीं। **स्याद्वादरूप है, इसलिए अशुद्धनय को सर्वथा असत्यार्थ न माना जाये;...** क्या कहते हैं? कि भाई! ध्रुव को भूतार्थ कहा। ज्ञायक त्रिकाल को सत्यार्थ कहा, भूतार्थ कहा, परमार्थ कहा। तो पर्याय को अशुद्ध को अभूतार्थ असत्यार्थ है, है ही नहीं, ऐसा नहीं समझना। असत्यार्थ कहा था। त्रिकाल ज्ञायक की अपेक्षा से दृष्टि के विषय में भूतार्थ है, इस अपेक्षा से पर्याय को अशुद्धता को असत्यार्थ कहा, अभूतार्थ कहा, अपरमार्थ कहा। परन्तु उसका अर्थ ऐसा नहीं कि (वह) है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? न समझ में आये तो रात्रि में पूछना। अब तो चलता है न? रात्रि में सब बात पूछना। छोड़ना नहीं, छेड़ना। छेड़ना अन्दर में कि क्या कहते हैं? लालचन्दजी! कोई बात छोड़ना नहीं। कोई बात छोड़ना नहीं। सब बातों का स्पष्टीकरण होना चाहिए।

कहते हैं, भगवान आत्मा को शुद्ध कहा, अभेद कहा। तो अशुद्धनय का विषय सर्वथा असत्यार्थ नहीं है। पहले यह कहा था, '**ववहारोऽभूदत्थो**' आगे आयेगा। व्यवहार अभूतार्थ है। अभी आ गया, ऊपर आ गया न? **अशुद्धता द्रव्यदृष्टि में गौण है, व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है,...** भगवान आत्मा में रागादि, गुणस्थानभेद असत्यार्थ कहे है, वे सर्वथा असत्यार्थ नहीं मानना। त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ कहा है। समझ में आया? समझ में आया? **अशुद्धनय को...** वर्तमान में अशुद्धता अपनी पर्याय में मैल है, राग है, भेद है। सर्वथा झूठा नहीं मानना। **क्योंकि स्याद्वादप्रमाण से...** स्याद्वादप्रमाण से **शुद्धता और अशुद्धता-दोनों वस्तु के धर्म हैं...** क्या कहा? जैसा त्रिकाल शुद्ध जो वस्तु का धर्म है, वैसा ही अशुद्धता भी वस्तु का धर्म है। वस्तु का पर्याय में उसका धर्म है। कर्म का धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं, **स्याद्वादप्रमाण से शुद्धता और अशुद्धता-दोनों वस्तु के धर्म हैं...** जैसे

ज्ञायक अभेद शुद्ध चिदानन्द प्रभु जैसा वस्तु का धर्म है, वैसा ही अशुद्धता वस्तु का धर्म है। वह सामान्य है और यह अंश है, इतना अन्तर है। है तो दोनों वस्तु के धर्म। दोनों वस्तु ने धारण किये हैं। धर्म क्यों कहते हैं? अभेद और रागादि भेद, वह वस्तु ने धारण किये हैं। वस्तु में धारण (हुए) हैं, वस्तु में हैं। कर्म के कारण से नहीं, कर्म में नहीं। समझ में आया? ताराचन्दजी! पण्डित जयचन्द्रजी कितना स्पष्ट करते हैं। क्या कहा? देखो!

स्याद्वाद प्रमाण से... प्रमाण लेना है न? अकेला अभेद अंश ही है और पर्याय नहीं है? स्याद्वाद कथंचित् अपेक्षा से अभेद को सत्यार्थ कहा और भेद को असत्यार्थ कहा। तो स्याद्वाद प्रमाण से शुद्धता और अशुद्धता दोनों वस्तु के धर्म हैं। **और वस्तुधर्म वस्तु का सत्त्व है;...** भाषा देखो! कितना स्पष्ट करते हैं! जो त्रिकाल ज्ञायक है, वह भी वस्तु का सत्त्व है, सत् का सत्त्व है। सत् का सत्त्व है। उसी प्रकार अशुद्धता भी सत् का ही सत्त्व है। समझ में आया? यह गाथा तो सबके बीच में तो अभी वाँचन होती है। वरना किसी समय कोई हो और कोई न हो। यह तो सबके बीच में सहज गाथा आयी है। समझ में आया? यह तो सब हैं, २५० लोग आ गये। क्या है इसका अर्थ समझना चाहिए या नहीं?

दृष्टि के विषय में व्यवहार को असत्यार्थ कहा तो सर्वथा असत्यार्थ है, ऐसा नहीं मानना। क्यों? **और वस्तुधर्म वस्तु का सत्त्व है;...** अशुद्धता, मलिनता, राग-द्वेषता, भेद, वह वस्तु का सत्त्व है। वस्तु में है। वस्तु का धर्म है, वस्तु ने धार रखा है। आहाहा! यह कर्म ने अशुद्धता धार रखी है, ऐसा नहीं। अशुद्धता कर्म का धर्म है, ऐसा नहीं। समझ में आया? शुद्धता-अशुद्धता वस्तु का धर्म है। स्याद्वाद प्रमाण से दोनों वस्तु के धर्म हैं। वस्तु का धर्म वस्तु का सत्त्व है, वस्तु का धर्म वस्तु का सत्त्व है। जैसे अभेद एकाकार सम्यग्दर्शन का विषय वस्तु का सत्त्व है, वैसा ही अशुद्धता, मलिनता, विकारता, मिथ्यात्व, रागादि भाव वस्तु का धर्म है और वस्तु का सत्त्व है।

मुमुक्षु : विभाविक शक्ति?

पूज्य गुरुदेवश्री : विभाविक शक्ति की यहाँ बात नहीं। विभाविक शक्ति तो त्रिकाल है। वह तो सिद्ध में भी है। यह बात यहाँ नहीं। विभाविक शक्ति पर के आधीन

हुई है, वह पर्याय की बात है। वह पर्याय की बात है। विभाविक शक्ति तो त्रिकाल है। वह विभाविक शक्ति त्रिकाल तो सिद्ध में भी है, परन्तु विभाविक शक्ति अपने से कर्म के निमित्त के लक्ष्य से भेदरूप से जो हुई है, वह अपना धर्म-पर्याय धर्म है। यह पर्याय धर्म की बात चलती है। विभाविक शक्ति तो त्रिकाल गुण है। समझ में आया? विभाविक तो त्रिकाल गुण है। वह गुण निमित्त के लक्ष्य से विकाररूप हुआ और दूसरे गुण भी साथ में विकाररूप हुए न? अकेला विभाविक (गुण) कहाँ (हुआ है)? श्रद्धा, चारित्र, आनन्द, वे सब पर्याय में विकाररूप हुए हैं। वह वस्तु का सत्त्व है। वह वस्तु का-पर्याय का-अवस्था का सत्त्व है। आहाहा! समझ में आया?

अन्तर मात्र इतना ही है। अब देखो! भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप अभेद जो अन्तर एकाकार होकर शुद्धता का सेवन करने से जो शुद्ध लक्ष्य में आया, वह एक सत्त्व है। परन्तु शुद्धता जो प्रगट हुई और पर्याय में भेद आदि है, वे भेद हैं न? शुद्धता भी भेद है। समझ में आया? तो वह भेद और अशुद्धता, उस भेद को भी अशुद्धता कहते हैं, वह वस्तु का धर्म है। **और वस्तुधर्म वस्तु का सत्त्व है;...** अपना सत्त्व है, कर्म का सत्त्व नहीं। पुण्य और पाप, दया और दान, मिथ्यात्व और अज्ञान, राग और द्वेष, वह वस्तु का सत्त्व है, वस्तु की पर्याय का सत्त्व है, सत् का सत्त्व है। सत् का वह सत्त्व अभेद, एक दूसरा सत्त्व भेद। एक सत्त्व शुद्ध, एक सत्त्व अशुद्ध। समझ में आया?

कहते हैं, अन्तर इतना ही है कि **अन्तर मात्र इतना ही है कि अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है।** यह। अशुद्धता स्वद्रव्य के आश्रय से नहीं होती। पर के लक्ष्य से... पण्डितजी! '**परसंग एव**' वह अपने कुछ पूछा था। पण्डितजी कहे, '**पर एव**' नहीं। हम तो पहले से कहते हैं, '**पर एव**' नहीं, '**परसंग एव**'। पण्डितजी ने भी कहा था। '**परसंग एव**'। पर से नहीं। वहाँ २७८ गाथा में ऐसा आता है। बहुत गड़बड़ करते हैं। उसमें भी बहुत गड़बड़ हो गयी है न अभी। परद्रव्य के कारण से आत्मा को विकार होता है। देखो! ऐसा नहीं। २७८ गाथा है न? स्फटिकमणि। स्फटिकमणि जैसे अपने से स्वच्छ है तो अपने से लाल नहीं होती। परद्रव्य से लाल होती है, ऐसा वहाँ पाठ है। इसका अर्थ क्या? कि अपनी पर्याय में सफेदाई छोड़कर लाल आदि झाँई पड़ती है, वह परद्रव्य के संग से होती है। होती है अपने में। उसी प्रकार भगवान आत्मा चैतन्य स्फटिक-रत्न

जैसा निर्मलानन्द प्रभु दृष्टि का विषय शुद्ध चैतन्य-स्फटिक है परन्तु पर्याय में राग-द्वेष आदि विकार होता है '**परसंग एव**' पर का संग करने से अपनी पर्याय के सत्त्व में अशुद्धता उत्पन्न होती है, इतना अन्तर है। वह अशुद्धता स्वसंग से उत्पन्न हुई नहीं।

मुमुक्षु : संगदोष ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, संगदोष नहीं। दोष तो उसका ही है। यहाँ तो पर का संग (करता है)। चैतन्य का संग करे, तब तो शुद्धता उत्पन्न हो जाये। परन्तु पर का लक्ष्य है। पर के लक्ष्य से... देखो न! इतना अन्तर कहा न ? वस्तु का सत्त्व तो दोनों है। शुद्ध भी सत्त्व है, अशुद्ध भी सत्त्व है। सामान्य भी सत्त्व है, विशेष भी सत्त्व है। ध्रुव भी सत्त्व है, उत्पाद-व्यय भी सत् का ही सत्त्व है और सत् ने धारण किया है। निज सत् ने धारण किया है, पर ने नहीं। **अन्तर मात्र इतना ही है कि अशुद्धता परद्रव्य के संयोग से होती है।** बस। परद्रव्य के लक्ष्य से-आश्रय से उत्पन्न होती है।

अशुद्धनय को यहाँ हेय कहा है... यह पर के संग से उत्पन्न होनेवाले राग-द्वेष, पुण्य-पाप व्यवहार हेय कहा। क्यों ? 'क्योंकि अशुद्धनय का विषय संसार है...' विकार संसार है। अशुद्धनय का विषय संसार है। पुण्य-पाप, काम, क्रोध, दया, दान के जो विकल्प हैं, वह अशुद्धनय का विषय संसार है। वही संसार है। उससे संसार की उत्पत्ति होती है। संसरण इति संसार। प्रवचनसार में पाठ है। भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में से हटकर—संसरण होकर विकार करता है, वही संसार है। समझ में आया ? **अशुद्धनय का विषय संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है;...** विकारी भाव अशुद्धनय का विषय, वह संसार है। संसार तो क्लेश है। संसार शब्द से विकारी भाव। स्त्री, पुत्र संसार नहीं। स्त्री, पुत्र परद्रव्य हैं। उनमें अपना संसार कहाँ से आया ? अपनी पर्याय का संसार पर में कहाँ से आया ? अपनी पर्याय में जो अज्ञान से राग-द्वेष, भ्रम और मिथ्यात्व करता है, वही संसार है। अपनी दोष की दशा अपनी पर्याय में रहती है या दोष की दशा पर में रहती है ? स्त्री, पुत्र संसार, यह शरीर संसार है ? बँगला संसार है ? धूल बड़ी पाँच लाख-दस लाख के बँगले बनाते हैं। शरीर संसार है ? वह तो धूल है। वह संसार हो तो देह छूटे, तब सब पड़ा रहता है। तो संसार पड़ा रहा और मुक्ति हो जायेगी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से मिटे ? मूढ़ हो जाये। शरीर, स्त्री, कुटुम्ब, मकान, इज्जत, कीर्ति, जवाहरात, कपड़े, यह यदि संसार हो तो देह छूटने के काल में सब छूट जाता है। तो उसका अर्थ कि संसार छूट गया। उसकी मुक्ति होनी चाहिए। वह संसार नहीं। आहाहा! समझ में आया ? उसकी पर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव है, वह संसार है। उदयभाव, वह संसार है। आहाहा! ... परन्तु है अपना न ? है अपने में, वह संसार है। समझ में आया ? परलक्ष्य से किया किसने ? स्वयं ने। बस, बात यह है। समझ में आया ?

अशुद्धनय का विषय संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है;... विकार, विकार, विकार। निगोद से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक गया, जैन दिगम्बर मिथ्यादृष्टि साधु। पुण्य-पाप का भाव, वह तो संसार है। शुक्ललेश्या की। नौवें ग्रैवेयक गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' वह भी संसार था। उस द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि को बाह्य से स्त्री, परिवार कुछ नहीं। अट्ठाईस मूलगुण चुस्त पालन करे, परन्तु उसमें मिथ्यात्व-राग, वह मेरी क्रिया है, राग के ऊपर दृष्टि है अन्दर जो रागभाव है, वही संसार है। आहाहा! समझ में आया ? वह संसार इसने छोड़ा नहीं। बाहर से तो छोड़ दिया। हजारों रानियाँ छोड़ी। राजकुमार बालब्रह्मचारी हो। उसमें क्या हुआ ? भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द का अवलम्बन लेकर अशुद्धता का व्यय करना चाहिए, उसके बदले अशुद्धता का आदर किया। स्वभाव का आदर नहीं, अशुद्धता का आदर है। अशुद्धता का आदर है, वह ही मिथ्यात्व और वही संसार है। समझ में आया ? अपना संसार पर में रहे ?

एक दृष्टान्त दिया है, भाई! उसमें है। दर्पण में दिखता है न ? दर्पण में। यहाँ मैल है। उसमें दिखता है। दर्पण में मैल दिखता है न ? मैल। मैल समझे ? शरीर का मैल। दाग लग जाते हैं। तो वहाँ दिखता है। वहाँ दर्पण में घुसता है ? मैल तो यहाँ है। समझ में आया ? इसी प्रकार स्त्री, पुत्र, दुकान-बुकान संसार है, उसे छोड़ दो। परन्तु वह तो परचीज़ है। उसमें क्या हुआ ? तेरा संसार का दाग तो तेरी पर्याय में है। दाग समझे ?

दाग कहते हैं ? दाग-मैल। दाग कहते हैं ? दाग। यह दृष्टान्त दिया है, हों! दर्पण घसे ? इसी प्रकार स्त्री छोड़ो, पुत्र छोड़ो, धूल छोड़ो। तेरा काल चला जायेगा। यह संसार नहीं। शरीर को जीर्ण करो, अपवास कर-करके पतला करो। वह पतला हो, उसमें तेरा संसार कहाँ घट गया ? समझ में आया ? राग को अपना मानना और स्वभाव को दृष्टि में से छोड़ना, इसका नाम मिथ्यात्व और इसका नाम संसार। मुख्य संसार मिथ्यात्व है, राग-द्वेष संसार गौण है। जो मिथ्यात्व है, एक राग को अपना मानना अथवा एक अंश जितनी वर्तमान व्यक्तता है—ज्ञान की व्यक्तता क्षयोपशम, दर्शन की व्यक्तता क्षयोपशम, वीर्य की व्यक्तता क्षयोपशम, राग की विपरीतता उदय, इतना मैं हूँ, उसके ऊपर दृष्टि है, वह मिथ्यात्व है, वही संसार है। समझ में आया ? भारी सूक्ष्म, भाई! समझ में आया ? भाई! पण्डितजी! समझ में आया ? क्या कहते हैं ? कितना स्पष्टीकरण किया है!

भाई! अशुद्धता और शुद्धता दोनों आत्मा के ही धर्म हैं, आत्मा ने धारण किये हैं। अशुद्धता कोई दूसरे ने धारण की है, ऐसा नहीं। तो वस्तु के दोनों धर्म हैं। उनमें अन्तर कितना ? कि अशुद्धता परसंग से उत्पन्न हुई है, वह संसार है, विकार है। अशुद्धनय का विषय संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है। यह राग और पुण्य विकल्प को अपने मानकर, अपने अस्तित्व में है परन्तु उतना मैं हूँ—ऐसा मानना, वह संसार है, क्लेश है। चार गति में इसीलिए दुःख भोगता है। निगोद में भी ऐसा कहा। समझ में आया ? भावकलंक पहुरा। गोम्मटसार में पाठ है। निगोद में क्यों रहा ? भावकलंक पहुरा। प्रचुर भावकलंक, ऐसा कहा है। कर्म-फर्म नहीं, कर्म तो परचीज़ है। निगोद का संसार... निगोद का जीव तो द्रव्य से शुद्ध है, वह शुद्धनय के विषय की तो उसे खबर नहीं, परन्तु पर्याय में भावकलंक पहुरा। भावकलंक प्रचुर जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष है, वही उसका संसार है। समझ में आया ? इसलिए वह वहाँ दुःख भोगता है, कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! क्या कहा ? देखो!

अशुद्धनय का विषय संसार है... अशुद्धनय का विषय कहाँ रहा ? अशुद्धनय का विषय कहाँ रहा ? कर्म में रहा ? अपनी पर्याय में राग-द्वेष और भ्रमणा, वह अशुद्धनय का विषय है। यहाँ शुद्धनय का विषय त्रिकाल और अशुद्धनय का अपने में पर्याय का

विषय बतलाना है। **अशुद्धनय का विषय संसार है और संसार में आत्मा क्लेश भोगता है; जब स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है...** देखो! पर का संग, लक्ष्य छोड़े, तब संसार छूटता है। देखो! आया न? क्या आया? **जब स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है, तब संसार छूटता है...** परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर... पहले आया न उसमें? परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर, ऐसा आया या नहीं उसमें? छठवीं चलती है न? देखो!... कहाँ आया? उपासित। **समस्त अन्यद्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ...** इसका अर्थ यहाँ होता है।

आत्मा में जितने भेद विकार आदि हैं, वही संसार है, क्लेश है, दुःख है। वह अशुद्धनय का विषय अपनी पर्याय में है। उससे तो संसार में चार गति में और निगोद आदि में दुःख भोगना पड़ता है। जब परद्रव्य से भिन्न पड़े। देखो! यहाँ आया। 'जब स्वयं परद्रव्य से...' वापस ऐसा कहा है, जब। ऐसा नहीं कि जब कर्म मन्द पड़े, तब और तेरी काललब्धि पके तब। वह तो तेरा पुरुषार्थ वहाँ लग गया तो तेरी काललब्धि पक गयी है। समझ में आया? है तो काललब्धि, परन्तु काललब्धि का इसे लक्ष्य नहीं करना है। आत्मा का लक्ष्य करना है। समझ में आया? केसरीचन्दजी! इस बार समय बहुत हो गया, हों!

जब... यह शब्द पड़ा है। **स्वयं...** देखो! स्वयं ऐसा लिया है। अपने से **परद्रव्य से भिन्न होता है...** स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है। अपने पुरुषार्थ से परद्रव्य का लक्ष्य जो अनादि का है, उससे वह अशुद्धता उत्पन्न होती है, वह क्लेश है, दुःख भोगता है। यदि दुःख भोगना छोड़ना हो तो परद्रव्य का लक्ष्य स्वयं छोड़ता है। समझ में आया? **जब स्वयं परद्रव्य से भिन्न होता है, तब संसार छूटता है...** तब क्लेश का स्वामीपना छूट गया तो क्लेश भी छूट जाता है। राग से रहित ज्ञायकभाव की दृष्टि हुई तो जो रागादि है, उनका स्वामित्व छूट गया। पश्चात स्वरूप की स्थिरता करके वह क्लेश भी छूट गया। तो क्लेश छूटने से सुखी होता है। **क्लेश मिटता है।**

इस प्रकार दुःख मिटाने के लिये... भाषा देखो! **इस प्रकार...** इस प्रकार **दुःख मिटाने के लिये शुद्धनय का उपदेश प्रधान है।** शुद्धनय का उपदेश प्रधान है। पर्याय का उपदेश गौण करने का है। क्योंकि उससे तो क्लेश भोगता है। समझ में आया? पुस्तक

है या नहीं ? सबके पास है। इस शब्द का अर्थ होता है। **शुद्धनय का उपदेश प्रधान है।** भगवान! तेरा शुद्ध भगवान चिदानन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि कर, तेरे मिथ्यात्व का क्लेश नाश हो जायेगा और उसमें स्थिरता कर (तो) अस्थिरता का क्लेश नाश पा जायेगा। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। समझ में आया ? कहो, नेमिदासभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो आ गया न ? परद्रव्य का लक्ष्य छोड़ना। उपदेश का भी लक्ष्य छोड़ना। ऐसा है या नहीं ? परद्रव्य से भिन्न होता है। परद्रव्य में क्या बाकी रहा ? शब्द भी परद्रव्य रहे, कर्म भी परद्रव्य रहे, राग भी वास्तव में परद्रव्य है। उसका लक्ष्य छोड़कर स्वभाव में आना। अपने शुद्धस्वभाव की दृष्टि करके स्थिर होना, वही उसका कर्तव्य दर्शन और चारित्र है। ज्ञान साथ में हो गया। समझ में आया ? आहाहा! मूल चीज़ का पता नहीं और ऊपर-ऊपर से पत्ते तोड़े। पांदडा तोड़े समझते हो ? पत्ता। मूल तो ऐसा का ऐसा सुरक्षित। आंबली होती है न ? क्या कहते हैं ? आंबली-इमली। इतने पत्ते। बहुत से तोड़ डाले। सूख जायेंगे। क्या सूख जायेंगे ? मूल सुरक्षित है। सब पल्लवित हो जायेंगे। हमारी भाषा में पांगरी कहते हैं। पल्लवित होते हैं। दो महीने में पल्लवित हो जायेंगे। अंकुर तो उगे परन्तु दो महीने में ऐसी और ऐसी। जिसका मूल काट डाला, करोड़ों पत्ते हों, दो मास, पन्द्रह दिन में तो सूख जायेंगे।

इसी प्रकार जिसने मिथ्यात्वरूपी मूल संसार का काट दिया, फिर थोड़ा चारित्र का दोष राग-द्वेषादि रहे, वे छूट जायेंगे, सूख जायेंगे। परन्तु राग-द्वेष मन्द करने का प्रयत्न करते.. करते... करते... अनन्त काल गया। समझ में आया ? परन्तु मूल काटा नहीं तो संसार छूटा नहीं। समझ में आया ? यह कहते हैं, देखो! यहाँ पण्डित जयचन्द्रजी ने इसमें से प्रचलित भाषा में शब्दार्थ किया। समझ जाये ऐसी भाषा में।

शुद्धनय का उपदेश प्रधान है। अशुद्धनय को असत्यार्थ कहने से यह न समझना चाहिए कि आकाश के फूल की भाँति वह वस्तुधर्म सर्वथा ही नहीं है,... ऐसा नहीं समझना कि असत्यार्थ (कहा, इसलिए) पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत है ही नहीं। ऐसा नहीं समझना। है। ऐसा नहीं समझना कि... **असत्यार्थ कहने से यह न समझना चाहिए**

कि आकाश के फूल की भाँति वह वस्तुधर्म सर्वथा ही नहीं है,... ऐसे आत्मा की पर्याय में विकार है ही नहीं, ऐसा नहीं समझना। समझ में आया? कितने पहलुओं से बात करते हैं! एकान्त वेदान्त न हो जाये, एकान्त राग का आश्रय न कर ले, शुद्ध का आश्रय करे, राग को लक्ष्य में रखे। आहाहा! समझ में आया?

मूल दरकार की नहीं। न समझ में आये, ऐसी चीज़ नहीं। वह तो अन्तर्मुहूर्त में... आगे कहते हैं, अन्तर्मुहूर्त में अनुभव हो सकता है। इतनी ताकत उसमें है। अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) ले सकता है, अन्तर्मुहूर्त में केवल (ज्ञान) ले सकता है। अनादि निगोद का जीव मनुष्य होकर आठ वर्ष का होकर केवल (ज्ञान) प्राप्त करे। अनादि सान्त निगोद और सादि अनन्त सिद्ध। बीच में आठ वर्ष मनुष्य के। ओहोहो! समझ में आया? अनादि सान्त निगोद। निगोद में से निकला और आठ वर्ष मनुष्य के। सुना और सुनकर अन्दर से पावर प्रस्फुटित हुआ! जैसे तालाब में बहुत पानी भरा हो और फिर एक लाईन करे थोड़ी वहाँ सडसडाहट पानी निकले। उसी प्रकार भगवान आत्मा में आनन्द आदि छलाछल पूरे भरे हैं। ऐसे आठ वर्ष में एकाकार होकर केवल (ज्ञान) पाकर मोक्ष में जाता है। सादि-अनन्त सिद्ध, अनादि सान्त निगोद, बीच में आठ वर्ष (मनुष्य के)। इतनी सामर्थ्य आत्मा में है। रात्रि में किसी ने प्रश्न किया था न? सेठ ने, लालचन्दजी सेठ। प्रश्न किया था न? निगोद में से निकलाय, उसमें क्या पुरुषार्थ किया? उसमें क्या पुरुषार्थ? वह तो राग मन्द है। यहाँ आकर पुरुषार्थ किया। बाहर निकला तो मोक्ष में कारण हुआ, ऐसा है ही नहीं। वह तो राग की मन्दता हुई तो मनुष्य हुआ। बस, इतनी बात। उसमें कुछ नहीं। वह तो अभव्य भी होता है। मनुष्य अभव्य है या नहीं? वह भी मुनिपना पालता है, बाह्य क्रियाकाण्ड (करता है)। नौवें ग्रैवेयक जाये ऐसी क्रिया (करता है)। उसमें क्या हुआ? यह आत्मा वहाँ से निकला। फिर अन्तर में अन्तर में शुद्ध चिदानन्द भगवान... समझ में आया?

यह बात आती है न? भरत चक्रवर्ती का पुत्र, नहीं? कितने हैं? दस हजार? भरत के। कितने? दस हजार या कितने? एक साथ दस हजार निगोद में से निकले न? बोलते नहीं। कितने? दस हजार। द्रव्यसंग्रह में है। दस हजार। ९२७ दूसरे। ... ये दूसरे

हैं। यह तो राजा के दस हजार पुत्र हुए। बोले नहीं। भाषा नहीं। भरत को ऐसा हुआ कि यह भाषा बोलते क्यों नहीं? हमारे घर में आये। राजकुमार रूप से पुण्यवन्त हैं। देखो तो महातेज है। बोलते नहीं। पहले से बोलते नहीं। द्रव्यसंग्रह में है। भगवान के पास गये, भरत और सब पुत्र समवसरण में (गये)। प्रश्न किया, प्रभु! यह हमारे घर में आये। ओहो! बोलते नहीं। भाषा नहीं। भगवान कहते हैं, अभी बोलेंगे। बोले तो यह बोले, भगवान! दीक्षा दो। पहले में पहले बोले। जिन्दगी में पहली बार। द्रव्यसंग्रह में पाठ है। भरत प्रभु को पूछते हैं, प्रभु! यह हमारे घर में आये, मैं चक्रवर्ती। दस हजार पुत्र। राजकुमार मणिरत्न की पुतली देख लो। आहाहा! कोई भोले नहीं, मूर्ख नहीं। बोलते नहीं। भरत! दिव्यध्वनि में आया, अभी बोलेंगे। दस हजार। प्रभु! हम संसार से दुःखी हैं। दीक्षा दो। दीक्षित हो गये और केवल (ज्ञान) प्राप्त करके मोक्ष में चले गये। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा की सामर्थ्य पड़ी है। पूर्णानन्द प्रभु। विश्वास नहीं, इसे विश्वास नहीं। कहाँ से केवलज्ञान आयेगा और कहाँ से सिद्धपद होगा? भगवान! तेरे पास सब पड़ा है। देखो!

कहते हैं कि अशुद्धता है, परन्तु शुद्धता पूर्ण पड़ी है। उसका भान करके अशुद्धता का नाश करने के लिये शुद्धनय का उपदेश दिया गया है। आहाहा! देखो! शब्द क्या पड़े हैं? **आकाश के फूल की भाँति वह वस्तुधर्म सर्वथा ही नहीं है,...** (ऐसा) एकान्त नहीं। द्रव्य में नहीं। सर्वथा नहीं, ऐसा कैसे कहा? कि द्रव्य में अशुद्धता नहीं। पर्याय में अशुद्धता है। कथंचित् अशुद्धता नहीं। किसमें? कि द्रव्य में नहीं। पर्याय में है, स्वयं के कारण से है। आहाहा! **ऐसा सर्वथा एकान्त समझने से मिथ्यात्व होता है;...** देखो! मिथ्यात्व दृढ़ होता है। राग-द्वेष अपनी पर्याय में है, अपने सत्त्व में है। और जहाँ शुद्धनय का उपदेश सत्यार्थ कहा और उसे असत्यार्थ कहा तो बिल्कुल असत्यार्थ मान ले तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया? विकार दिखता है, वह तो कर्म का है, कर्म का है, हमारे क्या? मूढ़ हो, मर जायेगा।

मुमुक्षु : शास्त्र में लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में ऐसा नहीं लिखा।

मुमुक्षु : करणानुयोग के शास्त्र में बड़े अक्षर से लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बड़े अक्षर से लिखा हो तो क्या हुआ? गोम्मटसार है न? पण्डितजी! इतने चार भाग हैं न? उसमें बड़े अक्षर में है। इतने आते हैं। गोम्मटसार चार भाग, पाँच भाग आते हैं। बड़े अक्षर में लिखा हो तो क्या लिखा है उसमें? वह तो निमित्त बतलाया है कि जब राग-द्वेष हो, तब चारित्रमोह का उदय है। इतना बतलाया है। परन्तु क्या उदय में राग-द्वेष हुए हैं? जड़ के उदय में हुए हैं? जड़ के उदय की सत्ता जड़ की है। उदय की पर्याय जड़ की है और राग-द्वेष चैतन्य का आभास है, विकार है। क्या उसमें हुए हैं? केसरीचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : करा देते हैं। ठीक कहते हैं सेठिया। वांक नहीं। सेठिया चुस्त है, महन्त है। दोष अपना और लगाना कर्म के ऊपर। तू तो महन्त रहना चाहता है। ऐसा लिखा है, हों! केसरीचन्दजी! टोडरमलजी ने लिखा है। तू तो महन्त रहना चाहता है और तेरा दोष कर्म के ऊपर डालता है। मर जायेगा। जिनाज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भवे नहीं। समझ में आया? है या नहीं? कहाँ है? कितने पृष्ठ पर है? ३२३? ३१३।

देखो! **तथा तत्त्वनिर्णय न करने में किसी कर्म का दोष तो है नहीं परन्तु तेरा ही दोष है।** (ऐसा कहे कि), निर्णय करना है, क्या कहते हैं? कर्म निर्णय करने नहीं देता। निर्णय करने का भाव (है परन्तु) कर्म निर्णय नहीं करने देता। वह दोष तो तेरा ही है। 'तू स्वयं तो महन्त रहना चाहता है...' केसरीचन्दजी!

मुमुक्षु : सेठिया का कोई दोष होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : सेठ कहना किसे? यह सेठ कहना किसे? यह तो लिखा नहीं अपने सेठिया ने? अपने स्वरूप का साधन समझे तो सेठ, बाकी सब अनुचर। सब भिखारी है। समझ में आया? उसमें है। पुस्तक नहीं। उस पुस्तक में है। वह पुस्तक दी थी न? दीपचन्द सेठिया की भक्ति की (पुस्तक)। उसमें है। दी थी। उसमें ऐसा है, दो जगह है। अपना स्वरूप सम्हाले, वह सेठ। अपना स्वरूप सम्हाले, वह सेठ। बाकी सब अनुचर भिखारी है। केसरीचन्दजी! शब्द है। पुस्तक नहीं। एक भी नहीं। सब रखते हैं,

परन्तु यहाँ कितने रखें? आया? 'गुणीजन सम्हाल सोही छे सेठ, अन्य तो अनुचर जाणजो जी... मारा ज्ञान।' यह सेठिया के पुत्र का छोटा पुत्र मर गया था। मुर्दा पड़ा था। लड़के की माँ, उसके पुत्र की बहू, सेठिया ने कहा, तुम्हारे रोना है? पुत्र मर गया है। बड़े गृहस्थ का घर। रोना है? नहीं, पिताजी। घर में ३० मनुष्य। मैं बोलता हूँ उसे गाओ। मुर्दा पड़ा है। वह गाया। देखो! पहले से यह आया है।

'गुणीजन वंदुं श्री अरिहंत सिद्ध, पाऊँ तो शांति जीवमें जी... मारा ज्ञान।' यह महिलायें रोती हैं न? मेरा पुत्र, मेरा पुत्र नहीं करते? मरे तब ऐसा कहे, मेरा पुत्र। मेरा पेट... मेरा पेट। महिलायें बहुत रोवे। ऐई! सेठी! मरे तब (बोले), मेरा पेट। अब तेरा पेट कहाँ था? पेट तो धूल का है। धूल में कहाँ से आयी तू? यहाँ तो कहते हैं, 'पाऊँ तो शान्ति जीव, मारा ज्ञान... गुणीजन सम्हाले सोई छे सेठ।' पुत्र की माँ बोलती थी। गृहस्थ का घर। सब आये। रोते हो क्या? फिर सब गायन बोले। रोना क्या? वह तो स्थिति पूरी हो गयी, चला गया। उसमें क्या है? द्रव्य की स्थिति कोई पलटा सकता है तीन काल में इन्द्र-नरेन्द्र? क्या करना है तुझे? रोना है? 'गुणीजन सम्हाल सोही सेठ, अन्य तो अनुचर जाणजो जी... मारा ज्ञान...' अन्य तो अनुचर जानना। 'गुणीजन दुःख सुख छे जी विलाप, आतमसुख जीतियो जी... मारा ज्ञान...' यह स्त्री का गायन है, बड़ा, हों! दूसरी जगह।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं, देखो! **जिनआज्ञा माने तो ऐसी अनीति संभवे नहीं।'** विकार कर्म कराता है, ऐसा दोष निकालता है? **तुझे विषय-कषायरूप ही रहना है, इसलिए ऐसा झूठ बोलता है।** लिखा है। तुझे विषय-कषायरूप रहना है, इसलिए झूठ बोलता है। कर्म हमारे दोष कराते हैं। दोष तू करता है और पर के ऊपर डालता है? ऐसी अनीति जिनाज्ञा में? जिनआज्ञा माने तो ऐसा सम्भव नहीं। अशुद्धता अपनी पर्याय में है। समझ में आया? उसे छुड़ाने को शुद्ध का उपदेश दिया गया है। परन्तु अशुद्धता है ही नहीं, ऐसा कहने का उपदेश नहीं। विशेष आयेगा.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल १०, गुरुवार, दिनांक - २५-०८-१९६६
गाथा - ६, ७, प्रवचन - २७

समयसार की छठवीं गाथा का अन्तिम अधिकार थोड़ा बाकी है। कहाँ तक आया है खबर है? **आकाश के फूल की भाँति वह वस्तुधर्म सर्वथा ही नहीं है, ऐसा सर्वथा एकान्त समझने से मिथ्यात्व होता है;...** क्या कहते हैं? छठवीं गाथा में ऐसा कहा, जो ज्ञायकभाव शुद्ध ध्रुव एकरूप है, उसे ही आत्मा कहते हैं। और उसका आश्रय करने से ही सम्यग्दर्शन होता है। उसमें कर्म के संग से जो आत्मा की पर्याय में अशुद्धता है, गुणस्थानभेद है, उसे यहाँ असत्यार्थ कहा था। असत्यार्थ कहा था। त्रिकाल ज्ञायक -स्वभाव सत्यार्थ की अपेक्षा से अशुद्धता का भाव, मलिन भाव और गुणस्थानभेद भाव सबको असत्यार्थ कहा था। ऐसे सर्वथा असत्यार्थ है, ऐसा नहीं मान लेना। समझ में आया? आकाश के फूल जैसी वह वस्तु नहीं। आत्मा में मलिनता है, पर्याय में राग-द्वेष विकार है। वह तो ज्ञायक की शुद्ध की दृष्टि कराने को अशुद्धता को असत्यार्थ कहकर, गौण करके, व्यवहार कहकर उसका निषेध किया है। समझ में आया?

कहते हैं, **इसलिए स्याद्वाद की शरण लेकर...** स्याद्वाद का अर्थ कि अपनी पर्याय में मलिनता है, गुणस्थानभेद है, ऐसा लक्ष्य रखकर **शुद्धनय का आलम्बन लेना चाहिए।** ऐसे ज्ञान में लाकर फिर ज्ञायकस्वभाव शुद्धनय का आश्रय करना चाहिए। पर्याय में अशुद्धता है ही नहीं और गुणस्थानभेद है ही नहीं, ऐसा मानने से शुद्धनय का आश्रय नहीं हो सकता। समझ में आया? **स्याद्वाद की शरण लेकर...** अपनी पर्याय में अशुद्धता है, मलिनता है, वस्तु का वह पर्याय का अशुद्ध धर्म है। ऐसा स्वीकार—लक्ष्य में लेकर फिर शुद्धनय का आश्रय करना। ज्ञायकस्वरूप चिदानन्द है, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी उत्पन्न होती है। समझ में आया?

मुमुक्षु : शरण लेने का अर्थ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरण का अर्थ दृष्टि करना। ज्ञायक के ऊपर दृष्टि करना, अभेद के ऊपर दृष्टि करना, भेद को लक्ष्य में से छोड़ देना। समझ में आया? एकरूप सामान्य चैतन्य ज्ञायक परमस्वभाव, एक स्वभाव का आश्रय करना, उसका नाम उसका शरण लिया कहा जाता है। समझ में आया?

स्वरूप की प्राप्ति होने के बाद शुद्धनय का भी आलम्बन नहीं रहता। पूर्ण शुद्ध दशा हो गयी, फिर स्वभाव-सन्मुख का एकत्व झुकना है, वह नहीं रहता। जब तक अपूर्ण दशा है, तब तक शुद्धनय का अर्थात् स्वभाव की ओर झुकना रहता है। जब पूर्ण दशा की प्राप्ति हो जाती है, पश्चात् शुद्धनय का अवलम्बन नहीं रहता। **जो वस्तुस्वरूप है, वह है-यह प्रमाणदृष्टि है।** पश्चात् तो सामान्य और विशेष दो को जानना, वह प्रमाणज्ञान है और वह प्रमाणज्ञान ही वीतरागभाव है। उसे फल कहा है। **इस प्रकार निश्चय करना योग्य है।** छठवीं गाथा बहुत दिन चली। अब सातवीं गाथा इससे भी सूक्ष्म है। समझ में आया? अब यहाँ थोड़ा छठवीं का स्पष्टीकरण करते हैं।

यहाँ, (ज्ञायकभाव) प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है, ऐसा कहा है। भगवान आत्मा शुद्ध ध्रुव चैतन्यस्वभाव जो अन्तर आश्रय करने से सम्यग्दर्शन का विषय (होता है), वह भाव प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं, ऐसा कहा। समझ में आया? इसमें भेद नहीं। गुणस्थानभेद नहीं, अशुद्धता नहीं। **गुणस्थानों की परिपाटी में छट्ठे गुणस्थान तक प्रमत्त और सातवें से लेकर अप्रमत्त कहलाता है।** (प्रमत्त के) छह और (अप्रमत्त के) आठ (गुणस्थान) **किन्तु यह सब गुणस्थान अशुद्धनय की कथनी में है;...** आहाहा! क्या कहा? गुणस्थान के भेद भी अशुद्धनय वर्तमान पर्याय में भेद (है वह) भेददृष्टि का अशुद्धनय का कथन है। जानने के योग्य है, आदर के योग्य नहीं। समझ में आया? एक चैतन्य वस्तु ज्ञानभण्डार परमात्मा अपना निज एक स्वभाव, वही शरण लेने योग्य उपादेय और वह एक ही आधार है। सम्यग्दर्शन का वही आधार है। गजब बात, भाई! समझ में आया?

गुणस्थानभेद अशुद्धनय की कथनी में है। कथनी का अर्थ अशुद्धनय का विषय है। परन्तु उस अशुद्धनय के विषय का आश्रय करने से तो राग होता है, बन्ध होता है।

उसमें आत्मा के सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं होते। इसलिए यहाँ उस गुणस्थानभेद को और मलिनता को त्रिकाल सत्यार्थ की अपेक्षा से उसे असत्यार्थ-अभूतार्थ कहा है। परन्तु स्याद्वाद की शरण लेकर शुद्धनय का आश्रय करना। इसका अर्थ कि पर्याय में अशुद्धता है, भेद है—ऐसा लक्ष्य करके ज्ञायक के ऊपर दृष्टि करना। समझ में आया? पर्याय में है ही नहीं, कुछ है ही नहीं—ऐसा मानकर शुद्धनय की शरण होती ही नहीं। यह (बात) यहाँ रही। अब सातवीं गाथा जरा इससे सूक्ष्म है।

★ ★ ★

गाथा - ७

दर्शनज्ञानचारित्रवत्त्वेनास्याशुद्धत्वमिति चेत् –

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो।।7।।

व्यवहारेणोपदिश्यते ज्ञानिनश्चरित्रं दर्शनं ज्ञानम्।
नापि ज्ञानं न चरित्रं न दर्शनं ज्ञायकः शुद्धः।।7।।

आस्तां तावद्बन्धप्रत्ययात् ज्ञायकस्याशुद्धत्वं, दर्शनज्ञानचारित्राण्येव न विद्यन्ते। यतो ह्यनन्तधर्मण्येकस्मिन् धर्मिण्यनिष्णातस्यान्तेवासिजनस्य तदवबोध–विधायिभिः कैश्चिद्धर्मैस्त–मनुशासतां सूरिणां धर्मधर्मिणोः स्वभावतोऽभेदेऽपि व्यपदेशतो भेदमुत्पाद्य व्यवहारमात्रेणैव ज्ञानिनो दर्शनं ज्ञानं चारित्रमित्युपदेशः। परमार्थतस्त्वेकद्रव्यनिष्पीतानन्तपर्यायतयैकं किञ्चि–न्मिलितास्वादमभेदमेकस्व–भावमनुभवतो न दर्शनं न ज्ञानं न चारित्रं, ज्ञायक एवैकः शुद्धः।।7।।

अब, प्रश्न यह होता है कि दर्शन, ज्ञान और चारित्र को आत्मा का धर्म कहा गया है, किन्तु यह तो तीन भेद हुए; और इन भेदरूप भावों से आत्मा को अशुद्धता आती है? इसके उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं:–

चारित्र, दर्शन, ज्ञान भी, व्यवहार कहता ज्ञानि के।
चारित्र नहिं, दर्शन नहीं, नहिं ज्ञान, ज्ञायक शुद्ध है।।7।।

गाथार्थ : [ज्ञानिनः] ज्ञानी के [चरित्रं दर्शनं ज्ञानं] चारित्र, दर्शन, ज्ञान–यह तीन भाव [व्यवहारेण] व्यवहार से [उपदिश्यते] कहे जाते हैं; निश्चय से [ज्ञानं अपि न] ज्ञान भी नहीं है, [चरित्रं न] चारित्र भी नहीं है, और [दर्शनं न] दर्शन भी नहीं है; ज्ञानी तो एक [ज्ञायकः शुद्धः] शुद्ध ज्ञायक ही है।

टीका : इस ज्ञायक आत्मा को बन्धपर्याय के निमित्त से अशुद्धता तो दूर रहो, किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी विद्यमान नहीं हैं; क्योंकि अनन्त धर्मोंवाले एक धर्मी में जो निष्णात नहीं हैं ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को, धर्मी को बतलानेवाले कितने

ही धर्मों के द्वारा, उपदेश करते हुए आचार्यों का–यद्यपि धर्म और धर्मी का स्वभाव से अभेद है तथापि नाम से भेद करके–व्यवहारमात्र से ही ऐसा उपदेश है कि ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। किन्तु परमार्थ से देखा जाये तो अनन्त पर्यायों को एक द्रव्य पी गया होने से जो एक है ऐसे कुछ–मिले हुए आस्वादवाले, अभेद, एक स्वभावी (तत्त्व) – का अनुभव करनेवाले को दर्शन भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है, एक शुद्ध ज्ञायक ही है।

भावार्थ : इस शुद्ध आत्मा के कर्मबन्ध के निमित्त से अशुद्धता होती है, यह बात तो दूर ही रहो, किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भी भेद नहीं है, क्योंकि वस्तु अनन्तधर्मरूप एकधर्मी है। परन्तु व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते हैं, धर्मी को नहीं जानते; इसलिए वस्तु के किन्हीं असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर अभेदरूप वस्तु में भी धर्मों के नामरूप भेद को उत्पन्न करके ऐसा उपदेश दिया जाता है कि ज्ञानी के दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। इस प्रकार अभेद में भेद किया जाता है, इसलिए वह व्यवहार है। यदि परमार्थ से विचार किया जाये तो एक द्रव्य अनन्त पर्यायों को अभेदरूप से पी कर बैठा है, इसलिए उसमें भेद नहीं है।

यहाँ कोई कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य के ही भेद हैं, अवस्तु नहीं; तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है? उसका समाधान यह है – यह ठीक है, किन्तु यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है। अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है। इसलिए भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। यहाँ यह अभिप्राय है कि भेददृष्टि में भी निर्विकल्प दशा नहीं होती और सरागी के विकल्प होते रहते हैं; इसलिए जहाँ तक रागादिक दूर नहीं हो जाते वहाँ तक भेद को गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है, वहाँ नय का आलम्बन ही नहीं रहता।

गाथा - ७ पर प्रवचन

अब शिष्य की ओर से प्रश्न होता है। शिष्य भी अब तो इतना समझता है। महाराज! यह ज्ञायकस्वरूप शुद्ध चैतन्य, वही सम्यग्दर्शन का विषय है। सब क्रियाकाण्ड, भेद, रागादि, छह कारक और छह कारक की पर्याय के भेद सब व्यवहारनय का विषय

हो गया। समझ में आया? एक ज्ञायकभाव आप कहते हो तो हमको तो एक शंका होती है। शिष्य कहता है। **दर्शन, ज्ञान और चारित्र को आत्मा का धर्म कहा गया है,...** भगवान! अशुद्धता तो एक ओर रही, चलो। शिष्य कहता है। शिष्य को इतना ख्याल आया। प्रश्न करता है, देखो! '**दर्शनज्ञानचारित्रवत्त्वेनास्याशुद्धत्वमिति चेत्**'। महाराज! विकार की दशा है, गुणस्थानभेद की दशा है, वह तो आप अशुद्ध (कहते हो), त्रिकाल शुद्ध का आश्रय कराने के लिये उसे असत्यार्थ कहा। त्रिकाल सत्यार्थ है और भेद असत्यार्थ है, ऐसा कहा। तो हमको तो ऐसी शंका होती है, तुमने तो अशुद्ध कहा परन्तु एक आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीन प्रकार के धर्म हैं और **यह तो तीन भेद हुए;...** आत्मा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र ऐसे तीन भेद हुए और **इन भेदरूप भावों से आत्मा को अशुद्धता आती है...** यह प्रश्न किया है। भेदरूप भाव से अशुद्धता आती है या नहीं? पर की अशुद्धता एक ओर रहो। निर्मल त्रिकाल ज्ञायक की अपेक्षा से अशुद्धता पुण्य-पाप के मलिनभाव, वह तो गौण करके तुमने छोड़ दिये। असत्यार्थ कहकर त्रिकाल ज्ञायक को सत्यार्थ कहा। इस एक में तीन (भेद) करना, वह भी अशुद्ध है। वह भी भेद हो गया। भेद भी अशुद्ध हो गया। समझ में आया? भगवान एकस्वरूप है, उसमें दर्शन, यह ज्ञान, यह चारित्र ऐसे प्रभु! भेद करना, उसमें भी अशुद्धता आती है। है न? **यह तो तीन भेद हुए; और इन भेदरूप भावों से...** अभेद एकाकार में भेदभावों से तो अशुद्धता आती है। उसके **उत्तरस्वरूप गाथासूत्र कहते हैं:—** समझ में आया? बहुत सूक्ष्म।

साधारण अशुद्धता निकाल डाली; कर्ता, कर्म विकार के, वे भी निकाल डाले, शुद्ध की पर्याय मैं करता हूँ और मेरा कार्य है, ऐसा भी भेद नहीं। समझ में आया? परन्तु यह आत्मा एक स्वरूप है, उसमें तीन बोल से तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र मोक्षमार्ग है तो तीन वाला आत्मा है, ऐसा तो कहने में आता है या नहीं? दर्शन को प्राप्त हो, ज्ञान को प्राप्त हो, चारित्र को प्राप्त हो, तीनों को प्राप्त हो, इतना भेद तो आता है या नहीं? इतने से भेद आया तो हमको तो लगता है कि अशुद्धता आयी। उसका उत्तर कहते हैं कि वह अशुद्धता ही है। सुन! समझ में आया? गाथा।

ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं।
ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो॥७॥

नीचे हरिगीत।

चारित्र, दर्शन, ज्ञान भी, व्यवहार कहता ज्ञानि के।
चारित्र नहिं, दर्शन नहीं, नहिं ज्ञान, ज्ञायक शुद्ध है॥७॥

इसकी टीका। छठवीं गाथा से भी जरा सूक्ष्म है। यह सद्भूतव्यवहारनय का, अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय का निषेध करते हैं। छठवीं गाथा में असद्भूतव्यवहारनय का निषेध किया और सद्भूत उपचारिक का निषेध किया। यहाँ सद्भूत अनुपचार— गुण-गुणी भेद और पर्यायभेद, वह अनुपचरित सद्भूतव्यवहार है। उसका भी यहाँ निषेध करते हैं।

टीका :- इस ज्ञायक आत्मा को... भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्यज्योति चैतन्यसूर्य अकेला एक स्वभाव, उस आत्मा को। देखो! **ज्ञायक आत्मा को...** एक स्वभाव ज्ञायक -स्वभावरूप आत्मा को **बन्धपर्याय के निमित्त से...** बन्ध की पर्याय के निमित्त से **अशुद्धता तो दूर रहो,...** अशुद्धता तो निकाल डाली है। अशुद्धता तो दूर रहो। क्योंकि वह कुछ सम्यग्दर्शन में आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया? अशुद्धता जो है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। उसे अशुद्धता कहकर दूर रहो, असत्यार्थ कहो, यह ठीक। **किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी विद्यमान नहीं हैं;...** देखो! भगवान आत्मा एक ज्ञायकस्वभाव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र असत्यार्थ है। समझ में आया? पहले ज्ञायक एकरूप चैतन्यस्वभाव का आश्रय करने से ही सम्यग्दर्शन होता है। इस कारण सम्यग्दर्शन का विषय जो एकरूप ज्ञायक, वह सत्यार्थ है। और गुणस्थानभेद और मलिन दशा, दया, दान, व्रतादि के परिणाम आदि शुभ, वे सब असत्यार्थ हैं। स्वभाव की दृष्टि कराने के लिये। परन्तु यहाँ कहते हैं कि एकरूप भगवान आत्मा सत्यार्थ है। उसमें तीन भेद डालना, वह असत्यार्थ है, विद्यमान नहीं, सत्य नहीं। भाई! आहाहा! लालचन्दजी! स्पष्टीकरण आयेगा, हों! सबका स्पष्टीकरण (आयेगा)। एकदम छोड़ नहीं देंगे। अभी दो-तीन बार, चार बार घोंटन करके (कहेंगे)। यह तो घोंटन की बात है न अन्तर की।

भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप एक समय में ज्ञायकज्योति है। अशुद्धता की बात तो दूर रहो, उसे तो आपने असत्यार्थ कहा। आचार्य कहते हैं, हम तो (ऐसा कहते हैं), एक स्वरूप भगवान आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद भी विद्यमान नहीं। उस एक में तीन नहीं। एक में तीन हो, वह असत्यार्थ है। समझ में आया? विद्यमान नहीं, ऐसा कहा न? विद्यमान नहीं कहो या असत्यार्थ कहो या है ही नहीं, ऐसा कहो। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञायक चैतन्य एकरूप अनन्त गुणरूप एकरूप वही आत्मा और उसे ज्ञायक कहा और वही सत्यार्थ है, ऐसा कहा। वही सच्चा स्वरूप है, ऐसा कहा। समझ में आया? और उसमें दर्शन, ज्ञान के भेद डालना, दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद डालना, एक स्वभाव में तीन के भेद डालना, उस अभेद में भेद दिखते नहीं। और अभेद की दृढ़ श्रद्धा कराने के लिये, भेद का एकान्त निराकरण कराने के लिये, वे भेद हैं, एकान्त है, उनका निराकरण कराने के लिये, अन्तर ज्ञायक अभेद की दृष्टि कराने के लिये ज्ञायक में दर्शन, ज्ञान, चारित्र विद्यमान नहीं, है ही नहीं।

(यह) वाँचकर एक साधु था। सातवीं देखी। यह गाथा देखी। अरे! ज्ञानी को दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं तो क्या जड़ को दर्शन, ज्ञान, चारित्र है? अरे! भगवान! भाई! समझ में आया? नियमसार में लिया था न? अपने रिकॉर्डिंग में आया था। ४१ गाथा में। आत्मा में क्षायिकभाव नहीं। वहाँ एक स्थानकवासी साधु था, उसने वाँचकर (कहा), क्षायिकभाव नहीं? क्षायिकभाव तो सिद्ध में भी है। भगवान! सुन तो सही! अरे भाई! यहाँ अभेद में भेद नहीं, यह बतलाने के लिये (कहा)। वहाँ नियमसार में शुद्धभाव अधिकार है। वहाँ ४१वीं गाथा में ऐसा लिया है। क्षायिकभाव आत्मा में नहीं। क्योंकि वह पर्याय है। त्रिकाल द्रव्य में वह पर्याय-फर्याय नहीं। आहाहा! परमेश्वर का मार्ग समझने में बहुत प्रयत्न चाहिए। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, कि भगवान आत्मा ज्ञायकभाव में अशुद्धता और गुणस्थान भेद और प्रमत्त-अप्रमत्त और शुभाशुभराग, उनको तो आपने असत्यार्थ कह दिया। और इस अपेक्षा से असत्यार्थ है, क्योंकि त्रिकाल में है नहीं। एक समय की भेद दृष्टि को असत्यार्थ कह दिया। परन्तु यहाँ तो आचार्य कहते हैं कि हमने एक में तीन (भेद)

डालना, उसे भी हम झूठा कहते हैं। समझ में आया? उसे... का अर्थ आत्मा को। आत्मा को है न? **इस ज्ञायक आत्मा को बन्धपर्याय के निमित्त से अशुद्धता तो दूर रहो, किन्तु उसके...** उसके अर्थात्? आत्मा को। भगवान आत्मा को **दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी...** 'भी' क्यों लिया? अशुद्धता का तो निषेध किया। भेद का और अशुद्धता का, गुणस्थानभेद का तो निषेध किया, परन्तु गुण के भेद भी उसमें नहीं। समझ में आया? **उसके...** उसके अर्थात् आत्मा को। यहाँ तो शब्द शब्द का अर्थ चलता है। नहीं तो... उसके अर्थात् आत्मा को। **दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी...** भी का अर्थ क्या? समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप में अशुद्धता और भेद विकल्प के भेद और गुणस्थान के भेद तो नहीं, परन्तु एक स्वरूप भगवान आत्मा अभेदरूप आत्मा की दृष्टि अभेद करने से ही सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे सम्यग्दृष्टि को अथवा धर्म (करने) वाले को अभेद के ऊपर लक्ष्य कराने के लिये उस अभेद में ज्ञान, दर्शन, चारित्र भी नहीं है। समझ में आया? ओहोहो!

भगवान आत्मा में कर्म, शरीर, परद्रव्य तो है ही नहीं। एक बात। इस अपेक्षा से, आत्मा की अपेक्षा से पर, कर्म, शरीर को असत्यार्थ कहा। भाई! क्या कहा? ध्यान रखो। यह बात भावार्थ में आयेगी। आत्मा की अपेक्षा से शरीर, कर्म, सब द्रव्य, अद्रव्य है, असत्यार्थ है। निजस्वरूप सत्यार्थ है, उसकी अपेक्षा से वे असत्यार्थ हैं। उनकी अपेक्षा से भले सत्यार्थ हो। समझ में आया? परन्तु निज आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, निज आत्मा की अपेक्षा से, यह सत्य है तो वे असत्य हैं। उनकी अपेक्षा से। और त्रिकाल ज्ञायकभाव सत्य है तो अशुद्ध का भेद भी असत्य है। अब अपनी पर्याय में आये। समझ में आया? परद्रव्य तो...

भगवान आत्मा एक स्वरूप विराजमान प्रभु, उसकी अपेक्षा से तो एक समय की पर्याय में कर्म, शरीर आदि है ही नहीं। एक समय की पर्याय में भी वे हैं नहीं। कौन? कर्म, शरीर, वाणी, भगवान-परमेश्वर आदि पर। अपनी एक समय की अवस्था में भी नहीं। इस अपेक्षा से यह सत्य है तो वे असत्य हैं। दूसरा, उसकी अशुद्धता, मलिनता पुण्य-पाप की पर्याय में है, गुणस्थानभेद है; त्रिकाल ज्ञायकभाव की अपेक्षा से वह

सत्यार्थ है तो वे असत्यार्थ हैं। अब, एकरूप ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा से, एकरूप ज्ञायकस्वभाव सत्यार्थ है। और उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद डालना, वह असत्यार्थ है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा? देखो!

उसके... भगवान आत्मा को। है न भाई इसमें? बराबर समझ लेना, हों! वरना वहाँ बाहर में लोग गड़बड़ करेंगे। कहेंगे, क्या लाये? वस्तु ऐसी है न, इसलिए लोगों को (ऐसा लगे), क्या नहीं? दर्शन, ज्ञान, चारित्र नहीं? झूठे हैं? किस अपेक्षा से सुन तो सही, प्रभु! राग-द्वेष नहीं? क्या राग-द्वेष बिना आत्मा सिद्ध हो गया? सुन तो सही। जैसे अपनी चीज़ में अपने स्वद्रव्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में, निज द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव में पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नहीं। तो अपने सत्य की अपेक्षा से वह सब असत्य हुआ। अपने द्रव्य की अपेक्षा से सब द्रव्य अद्रव्य हुए। अपने क्षेत्र की अपेक्षा से सब क्षेत्र अक्षेत्र हुए, अपनी पर्याय के काल की अपेक्षा से अकाल हुए, अपने भाव की अपेक्षा से सब भाव अभाव हुए। अभाव हुए—यह भाव नहीं, अभाव हुआ। आहाहा! समझ में आया? यह एक ओर रखो।

अब रहे एक द्रव्य में दो भाग। एक द्रव्य में दो भाग। सामान्य और विशेष। पर के साथ कुछ नहीं, उसे निकाल डाला। एक पदार्थ में द्रव्य और पर्याय। तो पर्याय में जितनी अशुद्धता है, मलिनता है, गुणस्थानभेद है, वे हैं सही, परन्तु त्रिकाल ज्ञायक की अपेक्षा से उन्हें असत्यार्थ कहा, अभूतार्थ कहा। त्रिकाल ज्ञायक को भूतार्थ सत्यार्थ कहा, विद्यमान कहा तो पर्याय को अविद्यमान कहा। गुणस्थानभेद को अविद्यमान कहा। अविद्यमान कहो, असत्य कहो, अभूतार्थ कहो। भगवान ज्ञायक आत्मा को विद्यमान कहो, सत्यार्थ कहो, भूतार्थ कहो। समझ में आया?

अब तो ऐसी गाथा आयी है कि भगवान आत्मा ज्ञायकस्वरूप को दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी विद्यमान नहीं। आहाहा! चिल्लाहट मचाये न लोग। असत्यार्थ है। अविद्यमान का अर्थ असत्यार्थ है। आहाहा! समझ में आया? भगवान ज्ञायक एकरूप स्वभाव, एकरूप स्वभाव वह भूतार्थ और सत्यार्थ है। और उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद डालना, वह असत्यार्थ है, अभूतार्थ है। समझ में आया? वास्तव में ज्ञायक की अपेक्षा

से वे भेद अवस्तु हैं। भाई! भगवान ज्ञायकस्वरूप एकरूप की अपेक्षा से गुणभेद, यह एकरूप स्वभाव वस्तु है तो अनेकरूप भेद, वे अवस्तु हैं। एकरूप सत्यार्थ है तो अनेकरूप भेद डालना, वह असत्यार्थ है। एकरूप विद्यमान है तो अनेकरूप अविद्यमान (अर्थात्)—नहीं। ऐसा पहली लाईन में लिया। लीटी समझे न? पहली पंक्ति। समझ में आया? ऐ... केसरीचन्दजी! बहुत वर्षों में आये हैं। वहाँ स्वाध्याय करते थे या नहीं? करते थे। समझ में आया?

भगवान आत्मा अभेद में भेद दिखाई दे तो अभेद दिखता नहीं। अभेद की दृष्टि करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। तो अभेद में भेद है ही नहीं, असत्यार्थ है। अभेद की दृढ़ श्रद्धा कराने के लिये, भेद का एकान्त निराकरण कराने के लिये अभेद ही है, भेद नहीं (निश्चय)। अभेद की दृढ़ श्रद्धा कराने के लिये, और अभेद में लक्ष्य कराने के लिये अभेद में भेद नहीं, ऐसा व्यवहारनय से कहा कि निश्चय अभेद है, उसमें भेद है वह व्यवहार है, असत्यार्थ है, अभूतार्थ है। समझ में आया? क्यों? अब कारण देते हैं। उड़ा दिया। क्यों उड़ा दिया इतना? अरे! भगवान! तुम तो कहाँ ले जाते हो! समझ में आया? परद्रव्य उड़ा दिये, अपने में नहीं। विकल्प आदि मलिनता अपने में नहीं, उड़ा दी। अब गुणभेद भी नहीं, उड़ा दिये। कहाँ ले जाते हो तुम? आहाहा! मणिभाई! यह बात ऐसी है, प्रभु! तेरी अभेद वस्तु दिखलाने के लिये और अभेददृष्टि हुए बिना कभी सम्यग्दर्शन होता नहीं। पर के आश्रय से होता नहीं, अशुद्ध के आश्रय से होता नहीं, गुण-गुणी भेद के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, नेमिचन्दजी! तुम्हारे नेमिचन्दजी गुजरातीवाले। हिन्दीवाले नेमिचन्दजी... गजब बात आयी! है न, देखो न, है न भाई! यह वस्तु सत्य है। सत्य है, हों! मुनि के मुख में से निकला, सर्वज्ञ से कहा हुआ और वस्तु की स्थिति बतलानेवाला। समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! तू तो ज्ञायक है न! आगे अन्त में लेंगे। एक स्वभाव अनुभवता हुआ। एक स्वभाव। आगे लेंगे न? एक स्वभाव है न अन्त में? भाई! अन्तिम शब्द है। छेल्लो अर्थात् अन्तिम। एक स्वभाव, एक स्वभाव। ऐसा अनुभव करनेवाले को भेद दिखता नहीं। समझ में आया? अपने स्वभाव में एकाकार होने से अभेद में भेद

दिखाई दे तो अभेद रहता नहीं। समझ में आया ? अभेद में अनन्त गुण है। एकरूप वस्तु में अनन्त गुण है। यह तो तीन से बात की है। परन्तु एक के ऊपर लक्ष्य करने से अनन्त ख्याल में आवे और अनन्त ख्याल में आवे तो एक ख्याल में आवे, ऐसा होता नहीं। अनन्त जहाँ ख्याल में आये, वहाँ भेद उत्पन्न हो गया, विकल्प उत्पन्न हो गया। निर्विकल्प सम्यग्दर्शन भेद के आश्रय से नहीं होता, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया ? अर्थात् ज्ञायकभाव वही आत्मा सत्य है। उसमें गुणभेद करना, वह असत्य है, ऐसा कहना है। ओहोहो!

कहते हैं, भगवान! अशुद्धता तो दूर रहो, परद्रव्य तो दूर रहो। परद्रव्य तो दूर ही है। तो दूर रहो। अब अशुद्धता इसकी पर्याय में है, वह भी दूर रहो। आहाहा! परन्तु एक स्वरूप में तीन भेद डालना, वह दूर रहो। वह नहीं। आहाहा! लालचन्दजी! ऐसी वस्तु है। अब यह लोगों को सुनने को मिलती नहीं। और ऐसे के ऐसे धर्म हो जाये, धर्म हो जाये... क्या करे ? ख्याल भी नहीं कि कैसी पद्धति है, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की पद्धति क्या है, कला क्या है। समझ में आया ? वह पद्धति भी सुनने को मिलती नहीं तो प्रयोग कब करे और अनुभव कब हो ? मान ले, मानो तो माने। अनादि से मानता है, कौन उसे रोकता है ? समझ में आया ?

भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के मुख में से वाणी आयी है, वही सन्त कहते हैं और ऐसा ही है। प्रभु! तू तो ज्ञायक चैतन्यमूर्ति वस्तु है न! अनन्त गुणरूप एक, एक। एक का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। इस अपेक्षा से एक में भेद डालना कि यह दर्शन है, यह ज्ञान है, चारित्र है, यह भेद डालना, वह झूठा है। वह विद्यमान नहीं, वह असत्यार्थ है। आहाहा! अमरचन्दजी! अरे! भगवान! तेरी एकरूप (चीज़), ऐक्को, ऐक्को कहते हैं न ? इक्का जीतता है न ? तुम्हारे में क्या आता है ? इक्का। क्या कहलाता है वह ? गंजी को हमारे कहते हैं। ताश में इक्का। उसमें वह कौनसा ? हुकम का इक्का। ऐसा आता है या नहीं ? यह हुकम का इक्का है। आहाहा! समझ में आया ?

भगवान आत्मा एक समय में एकरूप अभेद को यहाँ सत्यार्थ आत्मा कहा है। सत्यार्थ आत्मा वह है। गुणभेद असत्यार्थ आत्मा है, भाई! आहाहा! विकार तो असत्यार्थ

आत्मा है, परन्तु गुणभेद असत्यार्थ आत्मा, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भगवान चैतन्यप्रभु परमात्मा निज स्वरूप से विराजमान एकरूप। उसकी अपेक्षा से तीन भेद विद्यमान ही नहीं न। है ही नहीं न। कौन कहते हैं कि है? अरे! प्रभु! क्या उड़ाते हो? एक ओर कहते हो कि एक आत्मा में अनन्त अनन्त गुण। कितनी बात करते हो, ऐसे तीन काल और ऐसे सिद्ध भगवान के द्रव्य से संसारी जीव अनन्त गुणे, संसारी जीव से अनन्त गुणे पुद्गल, उससे अनन्त गुणे त्रिकाल के समय, उससे अनन्तगुणे आकाश के प्रदेश, उनसे अनन्त गुणे एक जीव में गुण। इतनी एक ओर बात करते हैं। (वापस ऐसा कहे), नहीं, नहीं, सुन! ऐ... चन्दुभाई! यह इंजेक्शन दूसरे प्रकार के हैं। आहाहा! यह सातवीं गाथा अपने वहाँ नहीं वाँची। छठवीं वाँची, ग्यारहवीं और पन्द्रहवीं तीन अभी वाँची। राजकोट।

कहते हैं, भगवान आत्मा... यह तो शान्ति की वस्तु है। वस्तु की ओर एकरूपता के ऊपर दृष्टि हुए बिना एकाग्रता होती नहीं। एकाग्रता में एक लक्ष्य हुए बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। समझ में आया? कहाँ गये सुरेन्द्र? मुम्बई में चलता है न बहुत। सम्यग्दर्शन में पर्याय इकट्ठी हो और पर्याय इकट्ठी हो, वह द्रव्य कहलाये, यह चर्चा चलती है वहाँ। समझ में आया? पूरा द्रव्य लेना, पर्यायसहित का द्रव्य लेना। वह द्रव्य तो प्रमाण का विषय हुआ। यहाँ तो अकेले द्रव्य के विषय की (बात है)।

मुमुक्षु : ऐसा नहीं कहते, ... तो प्रमाण ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भेद का ज्ञान करते हैं, भेद ज्ञान करनेयोग्य है। अभेद तो दृष्टि करनेयोग्य है, ऐसा हुआ।

मुमुक्षु : अभी तो विचार....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। बिल्कुल विचारनेयोग्य नहीं। अभेद एक दृष्टि का विषय है। उसमें भेद आते ही नहीं। भेद पर्याय है, वह जाननेयोग्य है, आश्रय करनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : भेदरूप पर्याय त्रिकाली में नहीं, अभेदरूप पर्याय तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अभेद कौनसी पर्याय? कहाँ है? अभेद पर्याय है कहाँ? पर्याय है, वह ही भेद है। क्षायिकभाव पर्याय वह भी भेद है। त्रिकाल ज्ञायक की अपेक्षा

से अंश पर्याय, वह भेद है। भेद है, वह व्यवहारनय का विषय, पर्यायनय का विषय है। यह तो कल आया था न? अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय के विषय को पर्याय का कहकर व्यवहारनय का विषय कहा है। समझ में आया? अमुलखचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं, परन्तु अज्ञानी मानता है कि नहीं, ऐसा नहीं। ... अशुद्धता है ऐसा लक्ष्य रखकर उसे असत्यार्थ कहना। त्रिकाल को सत्यार्थ कहना। और एक में भेद दिखते नहीं, इसलिए उसे एक कहना। इस अपेक्षा से भेद को असत्यार्थ कहना है। भेद है सही, परन्तु वह व्यवहारनय का विषय हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा व्यवहार है ही नहीं तीन काल में। सब झूठ है। यह तो पहले कहा न। स्याद्वाद का शरण लेकर कहना, यह तो पहले शुरुआत में आ गया। पर्याय में है, अशुद्धता है, पर्याय स्वयं भेद है। ११वीं गाथा में ऐसा कहा कि व्यवहार अभूतार्थ है। तो व्यवहार में पर्याय भी अभूतार्थ आ गयी है। अपनी पर्याय अभूतार्थ है। क्यों? पर्याय का आश्रय करनेयोग्य नहीं, इस अपेक्षा से। पर्याय नहीं है—ऐसा नहीं। समझ में आया? वेदान्त के साथ एक भी बात मिलती नहीं। यहाँ तो वस्तु की स्थिति की बात है। किसी के साथ मिलती नहीं। तीन काल-तीन लोक में सर्वज्ञ से कहा हुआ, उसके साथ किसी का किंचित् मिलता नहीं। समझ में आया? समन्वय दूसरे के साथ करे, ऐसी चीज़ है ही नहीं।

मुमुक्षु : .... न्यारा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान का ... न्यारा है। वह कहते हैं न? मथुरा का पिण्ड, ऐसा कुछ कहते हैं। मथुरा के पेड़े? पेड़ा कहते हैं? पेंड़ा? पंड्या। उसका पंड्या अलग है। पेड़ा कहते हैं, हों! पेड़ा कहते हैं। पण्डितजी कहते हैं, पेड़ा कहते हैं। मैंने पेड़ा सुना है। उसे ... है न। सुना है। मथुरा में सेठ के घर में उतरे थे न, ऐसे भगवान के घर के पेड़ा अलग प्रकार के हैं।

कहते हैं, सुन! परद्रव्य है। (मेरी) अपनी अपेक्षा से नहीं। अपनी अपेक्षा से

नहीं। उसकी अपेक्षा से है। अशुद्धता त्रिकाल ज्ञायक शुद्ध की अपेक्षा से नहीं, उसकी अपेक्षा से है, ऐसे एक ज्ञायकस्वभाव में दर्शन, ज्ञान, चारित्र अभेद में नहीं। परन्तु भेद करने से विकल्प उठता है तो विकल्प से भेद है। परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। इसलिए उसे दर्शन, ज्ञान, चारित्र को असत्यार्थ, अविद्यमान, झूठा कहा है। विद्यमान नहीं कहो, असत्यार्थ कहो, झूठा कहो, अभूतार्थ कहो—सब एक बात है। परन्तु इस अपेक्षा से, हों! अरे!

क्योंकि... अब कारण देते हैं। **अनन्त धर्मोंवाले एक धर्मी में जो निष्णात नहीं हैं...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अनन्त धर्मोंवाला है, अनन्त गुणवाला है। प्रभु अनन्त गुणस्वरूप है। ऐसा एक धर्मी। धर्मी एक वस्तु। अनन्त धर्मोंवाला, अनन्त गुणवाला। धर्म शब्द क्यों लिया है? धार रखें हैं, इस अपेक्षा से। गुण-गुण में लोगों को ऐसा हो जाये कि गुण कोई दूसरी वस्तु है, द्रव्य कोई दूसरी वस्तु है। द्रव्य गुणों को धारता है तो उसे धर्मी शब्द लिया है। धर्मी ने धर्म को धारा है। अनन्त धर्मवाला एक धर्मी। अनन्त धर्मोंवाला। भगवान आत्मा में अनन्त धर्म हैं। ज्ञान, दर्शन, अस्तित्व, वस्तुत्व (आदि) अनन्त धर्म हैं। देखो! अनन्त आया, भाई! अनन्त आया, अनन्त। भगवान आत्मा... **अनन्त धर्मोंवाले...** यहाँ तो अपने अभी एक में अनन्त लेना है न सामने। अनन्त धर्मोंवाले। कौन अनन्त धर्मोंवाले? एक धर्मी, एक आत्मा, एक वस्तु। उसमें जो निष्णात नहीं। उसे जो जानता नहीं, उसमें निपुण नहीं। एक धर्मी उसमें अनन्त धर्मोंवाले, अनन्त गुणवाला, अनन्त गुणों को धारक, उसे धरनेवाला धर्मी। उसमें जो निष्णात नहीं (अर्थात् कि) अनादि का अज्ञानी।

ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को,... अन्तेवासी (निकटवर्ती) शिष्य लिया है। संस्कृत में '**अंतेवासि-जनस्य**'। '**अंतेवासिजनस्य**' में मर्म है। ज्ञानी किसी को सुनाने बाहर नहीं जाते। जिज्ञासु होकर समझने आया है, अन्तेवासी। क्षेत्र से नजदीक है और समझने के योग्य अन्तेवासी नजदीक में है, समीप में। अन्ते अर्थात् समीप में रहनेवाला। समीप में निकटवर्ती, समीप में वास करनेवाला।

मुमुक्षु : एक ही कमरे में रहनेवाले....

पूज्य गुरुदेवश्री : कमरा-बमरा नहीं। ऐसा कहते हैं कि एक कमरे में दोनों रहते हैं? परन्तु सुनने आया है, जिज्ञासा है, धर्मलोभी है। समझ में आया? धर्म समझने का लोभी है। वह आता है न? टोडरमलजी में। धर्मलोभी जीव को देखकर जरा शुभराग आता है तो आचार्य उपदेश करते हैं। ऐसा... देखो! शिष्य की इतनी योग्यता है कि गुरु की ऐसी वाणी सुनने के लिये समीप है। समझ में आया? जहाँ गुरु रहते हैं, वहाँ सुनने आया है, ऐसा बताते हैं।

दूसरी बात, अन्तेवासी। समीप में बसनेवाला है तो उसे कहते हैं। महाराज! आत्मा किसे कहते हैं? आत्मा किसे कहते हैं? एक धर्मी—अनन्त धर्म का धारक आत्मा किसे कहते हो? उस धर्मी को समझते नहीं, धर्मी को तो समझते नहीं, द्रव्य को समझते नहीं। अनन्त धर्मवाला, धर्म धारक एक को तो समझते नहीं। तो अन्तेवासी शिष्यों को... समझ में आया? इसमें तो देशनालब्धि, ज्ञानी, सब लागू पड़ते हैं। ज्ञानी की देशनालब्धि होती है, सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता में। इसके लिये वहाँ अन्तेवासी शब्द लिया है। यह तो अध्यात्म शास्त्र है। मार्मिक अध्यात्म से पूरा शास्त्र भरा है। उसमें अमृतचन्द्राचार्य की टीका! इस क्षेत्र में भरत (क्षेत्र) में ऐसी टीका करनेवाला कोई (है नहीं)। ऐसी टीका! साक्षात् परमात्मा का हृदय दुहा है। दुहा समझे? भैंस के आँचल में दूध होता है न? ऐसे खींचा है। समझ में आया? ऐसे दूध नहीं निकलता, हों! यह खड्डा है न खड्डा? उसमें आँचल ले और यह अंगूठे का, ऐसा जोर दे तो दूध निकले। ऐसे-ऐसे करे तो निकलता होगा वहाँ? समझ में आया? यह खड्डा है न खड्डा? उसमें आँचल ले, फिर ऐसा करे। इसी प्रकार सुतर्क से जो अन्दर भाव भरे हैं, उन्हें अमृतचन्द्राचार्य ने निकाला है। समझ में आया?

कहते हैं, अनन्त धर्मवाला एक धर्मी। धर्मी अर्थात् द्रव्य। धर्मवाला। अनन्त धर्मवाला एक धर्मी। देखो! भेद किया। **जो निष्णात नहीं...** एक धर्मी में निष्णात नहीं, ज्ञान भी नहीं, ख्याल भी नहीं, क्या चीज़ है। **ऐसे निकटवर्ती शिष्यों को,...** अन्तेवासी का अर्थ किया है। निकटवर्ती शिष्य। क्षेत्र से निकट है और समझने की योग्यता भी अब निकट है। भाई! आहाहा! समझ में आया? ऐसे ही लिये हैं, दूसरे नहीं। ऐसे शिष्यजन

को। शिष्यजन को एक (वचन नहीं)। शिष्यजन को। पण्डितजी! बहुवचन। शिष्यों को। बहुत शिष्यों को अर्थात् एक नहीं परन्तु बहुत हैं। **धर्मी को बतलानेवाले...** देखो! अब पहिचान क्या कराना है? धर्मी द्रव्य। धर्मी अर्थात् द्रव्य बतलाना है, आत्मा बतलाना है। **धर्मी को बतलानेवाले कितने ही धर्मों के द्वारा,...** समझ में आया? **'तदवबोधविधायिभिः कैश्चिद्धर्मैं'** ऐसा है न? **'कैश्चिद'** शब्द पड़ा है। **'कैश्चिद'** है। **'कैश्चिद'** अर्थात् कोई धर्म। कितने ही धर्म, सब धर्म नहीं। खास-खास मुख्य धर्म से बतलाना है। अस्तित्व है और वस्तुत्व है, वह कुछ नहीं। खास धर्म में दर्शन, ज्ञान, चारित्र खास है, खास है। **'कैश्चिद' कितने ही धर्मों के द्वारा, उपदेश करते हुए... 'अनुशासतां'** का अर्थ है। **'अनुशासतां' आचार्यों का-यद्यपि धर्म और धर्मी का स्वभाव से अभेद है...** भगवान आत्मा धर्मी है और अनन्त गुण धर्म हैं। दोनों अभेद है, असंख्य प्रदेश में अभेद है। किसी धर्म के प्रदेश भिन्न हैं, क्षेत्र भिन्न है और धर्मी का क्षेत्र भिन्न है, ऐसा है नहीं। असंख्य प्रदेश में भगवान आत्मा जहाँ आत्मा है, वहाँ अनन्त गुण है, अभेद है। प्रदेशभेद है नहीं, क्षेत्रभेद है नहीं, नामभेद है। यह कहेंगे। समझ में आया?

यद्यपि धर्म और धर्मी का स्वभाव से अभेद है... स्वभाव से अभेद है, हों! **तथापि नाम से भेद करके...** देखो! समझ में आया? **'व्यपदेशतो'** ऐसा पाठ है। स्वभाव **'स्वभावतोऽभेदेऽपि व्यपदेशतो भेदमुत्पाद्य' 'व्यपदेश'** समझे? कथन करने में **व्यवहारमात्र से ही ऐसा उपदेश है कि ज्ञानी के दर्शन है,...** भाई! ज्ञानी शब्द से आत्मा, हों! ज्ञानी शब्द से यहाँ आत्मा लेना। आत्मा को **दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है।** एकरूप पदार्थ को अनन्त काल में अनादि से जिसने जाना नहीं। ऐसे अनन्त धर्मवाले एक धर्मी को—द्रव्य को नहीं जाननेवाले, उसे ज्ञानी निकटवर्ती शिष्य को एक धर्मी में नाममात्र धर्म के भेद करके व्यपदेश करके। नाममात्र। वहाँ भेद नहीं हो जाते। अन्दर में भेद नहीं हो जाते। अनन्त गुणरूप भगवान में यह ज्ञान और दर्शन—ऐसा करने से वहाँ भेद नहीं हो जाते। जैसे यह सूखड़ की लकड़ी है, सूखड़। सूखड़ है न? सूखड़ की है। सुगन्धित, कोमल, गोल ऐसी शक्ति एकसाथ है। कोमल है। कोमल कहने पर उसमें

कोमलता भिन्न रह जाती है ? एकसाथ है। इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुणरूप एक है। एक गुण भिन्न बताया तो कहीं एक गुण भिन्न नहीं पड़ जाता। समझ में आया ? मक्खन गाथा है, हों! ६, ७ सब गाथायें ऐसी कोई आ गयी है। श्रावण शुक्ल ११ (से) शुरु हुआ है। आज एक महीना हो गया। श्रावण शुक्ल ११ (से) शुरु हुआ है। गुरुवार। आज कौनसा वार हुआ ? गुरुवार। २९ दिन हुए। गुरुवार से शुरु हुआ है। श्रावण शुक्ल ११, पहली गाथा (चली)।

कहते हैं, भगवान! निकटवर्ती शिष्य को धर्मी-द्रव्य-वस्तु क्या है, उसकी खबर नहीं। निष्णात नहीं, ख्याल नहीं। उसे आचार्य उपदेश करते हुए (कहते हैं), धर्म-धर्मी का स्वभाव में तो भेद नहीं। 'नाम से भेद उपजाकर..' देखो! कथनभेद करके। **व्यवहारमात्र से ही ऐसा उपदेश है...** आत्मा को दर्शन है। श्रद्धा करे, वह आत्मा; ज्ञान करे, वह आत्मा; रमणता करे वह आत्मा। राग-बाग करे वह आत्मा नहीं। राग को तो निकाल डाला। समझ में आया ? तो कहते हैं, आत्मा कौन ? हिले-चले वह आत्मा। त्रस किसे कहते हैं ? हिले-चले वह त्रस। और स्थिर रहे वह स्थावर। ऐसी व्याख्या चलती थी न ? ऐसा है नहीं। यहाँ तो आत्मा उसे कहते हैं, हिले-चले तो कहीं रह गया। उसमें राग-द्वेष भी कहाँ रहे ? परन्तु उसे गुणभेद भी व्यवहार से कहा जाता है।

मुमुक्षु : व्यवहारमात्र....

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहारमात्र से कहा न ? पृथक् नहीं पड़ता इसलिए। नाम करना पड़ते हैं। नाम करना कि यह आत्मा दर्शन, यह ज्ञान, यह चारित्र। ऐसे कथनमात्र। व्यवहार के कथनमात्र से उसे समझाने में आता है। व्यवहारमात्र का अर्थ नाममात्र कहा है न ? है न ? **नाम से भेद करके-व्यवहारमात्र से ही...** मात्र नाम संज्ञाभेद से। नामभेद है न ? नामभेद से भेद है न ? स्वभावभेद नहीं। आत्मा तो दर्शन, आत्मा तो ज्ञान, आत्मा तो चारित्र—ऐसा नामभेद हो गया न ? स्वभावभेद नहीं। असंख्य प्रदेश में साथ में है। परन्तु नामभेद करके व्यवहारमात्र से ही ऐसा उपदेश है कि आत्मा को दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। व्यवहार से है।

किन्तु परमार्थ से देखा जाये... इसका अर्थ करते हैं। विद्यमान नहीं है। विद्यमान

नहीं है, क्योंकि ऐसा करके शुरु किया है न? पहले कहा न? **ज्ञायक आत्मा को बन्धपर्याय के निमित्त से अशुद्धता तो दूर रहो, किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी विद्यमान नहीं हैं;...** नहीं इसका यह कारण दिया। क्योंकि ऐसा करके इस बात को सिद्ध करते हैं। समझ में आया? यह तो बराबर लक्ष्य बिना समझ में भी नहीं आये। बात ऐसी है। कोई कथा हो न तो ध्यान रखे या ध्यान न रखे तो हो जाये पूरी। यह तो भगवान की कथा है। भगवान आत्मा... कहते हैं, **परमार्थ से देखा जाये तो अनन्त पर्यायों को...** अनन्त भेदों को **एक द्रव्य पी गया होने से...** अनन्त भेद एक अभेद में सब आ गये। पी गया अन्दर में।

मुमुक्षु : वर्तमान पर्याय भी आ गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। कहाँ आ गयी है? अभेद हो गये उसमें। पर्याय शब्द से यहाँ भेद है। पर्याय शब्द से यहाँ भेद है। पर्याय शब्द से गुण और पर्याय सब द्रव्य में एकाकार है। वर्तमान पर्याय है, वह नहीं। अभेद में भेद है नहीं। अभेद भेद को पी गया है। पानी पीते हैं न? तो मुख बड़ा और पानी छोटा। उसी प्रकार एक द्रव्य अनन्त गुणभेद को पी जाता है। एक द्रव्य में सब समा गये हैं, बाकी रहते नहीं। समझ में आया? यहाँ पर्याय का अर्थ भेद है।

परमार्थ से देखा जाये तो अनन्त पर्यायों को एक द्रव्य पी गया होने से जो एक है... एक है ऐसा **कुछ-मिले हुए आस्वादवाले,...** क्या कहते हैं? अनन्त गुण हैं तो प्रत्येक गुण का स्वाद भिन्न है। वस्तुदृष्टि से एक है, गुण स्वभाव से भेद है। **एक है ऐसे कुछ-मिले हुए आस्वादवाले,...** ज्ञान का आनन्द, दर्शन का आनन्द, चारित्र का सबका भेद आस्वाद है। एकरूप इतना, बस। **कुछ-मिले हुए...** अर्थात् कि कोई कोईक गुण हो नहीं गया। गुण (दूसरे) गुणरूप नहीं हुआ। गुण तो गुण भिन्न ही है। परन्तु एकरूप द्रव्य की अपेक्षा से सब अभेद हैं। समझ में आया? इसलिए एकरूप, बस इतना। **कुछ-मिले हुए...** अर्थात् प्रत्येक गुण का स्वाद भिन्न-भिन्न है। द्रव्य का एकरूप है, द्रव्य की अपेक्षा से। **कुछ-मिले हुए...** सर्व गुण एक ही गुणरूप हो गये हैं, ऐसा नहीं। द्रव्य की अपेक्षा से एकरूप अभेद है। भिन्न-भिन्न स्वाद है। एकमेक मिल गया हुआ आस्वाद।

अभेद, एक स्वभावी... देखो! भगवान आत्मा अभेद, इसका स्पष्टीकरण किया। पाठ में है न? '**किञ्चिन्मिलितास्वादभेदमेकस्वभावमनुभवतो**'। भगवान आत्मा एकरूप चैतन्य। किंचित् एकमेक मिल गये हुए। सर्वथा एकरूप नहीं हुए। गुण एकरूप नहीं हुआ, द्रव्यरूप से एक है, ऐसा कहते हैं, भाई! द्रव्यरूप से एक है। सब गुण अनन्त हैं तो अनन्त गुण एकरूप हो गये, गुण एकरूप हो गये, ऐसा नहीं। द्रव्यरूप से एक है।

ऐसे कुछ-मिले हुए आस्वादवाले, अभेद, एक स्वभावी... वस्तु का तो उसने स्पष्टीकरण किया है। पाठ में वस्तु शब्द नहीं। पाठ में इतना है। '**अभेदमेकस्वभाव-मनुभवतो**' बस। मूल तो वस्तु का अनुभव कहना है न, इसलिए फिर वस्तु, ऐसा स्पष्टीकरण किया। अभेद एक स्वभाव वस्तु का... वस्तु... वस्तु... वस्तु एकरूप वस्तु। पाठ में इतना है कि अभेद एक स्वभाव अनुभव करनेवाला। अनुभव करनेवाला। अनेक शब्द नहीं। ज्ञानी शब्द पहले पड़ा था न? उसका अर्थ किया कि ज्ञानी को यह नहीं। ऐसा कहा था न? ज्ञानी को तीन का अनुभव नहीं, ऐसा बतलाना है।

पण्डित पुरुष को अर्थात् ज्ञानी पुरुष को—आत्मा को **दर्शन भी नहीं है, ज्ञान भी नहीं है, चारित्र भी नहीं है,...** आहाहा! एकरूप वस्तु की दृष्टि में अभेद के दर्शन में ज्ञानी को-विवेकी को-धर्मी को पर्याय का लक्ष्य अभेद के ऊपर है तो धर्मात्मा को अथवा आत्मा को दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं, चारित्र नहीं। समझ में आया? ज्ञानी पुरुष को **दर्शन भी नहीं,...** वह चिल्लाहट मचाये। एक स्थानकवासी साधु था। यह क्या कहते हैं? ज्ञानी को दर्शन नहीं, ज्ञान नहीं, चारित्र नहीं। ज्ञानी जड़ है? जड़ को दर्शन, ज्ञान, चारित्र होगा? अरे! सुन तो सही! भगवान आत्मा एक स्वरूप की दृष्टि करनेवाले आत्मा को एक स्वभाव अभेद का अनुभव करनेवाले आत्मा को उसमें—अभेद में भेद दिखता नहीं। अभेद में भेद की श्रद्धा छुड़ाने को अभेद में अभेद की दृढ़ श्रद्धा कराने को कहते हैं कि धर्मी को तीन बोल अन्दर में दिखते ही नहीं। समझ में आया? ज्ञान, दर्शन, चारित्र (ऐसे) गुणभेद अभेद में दिखते नहीं। सूरजमलजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर है, वह तो भेद है, व्यवहार है।

मुमुक्षु : अनन्त गुण द्रव्यात्मक एक वस्तु....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक वस्तु ली है। कहा न? एक वस्तु।

मुमुक्षु : अनन्त पर्याय में वर्तमान पर्याय आ गयी न?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। पर्याय नहीं आयी। पर्याय आयी नहीं। यहाँ तो अन्दर गुण आये हैं। गुण को यहाँ पर्याय कहा है। समझ में आया? देरी है। समझ में आया? सामने प्रश्न उठता है, इसलिए देरी है, ऐसा कहता हूँ। समझ में आया? ऐ... हीरालालजी! यहाँ तो भाई बात ऐसी है।

यहाँ तो गुणभेद नहीं। ज्ञान है, ज्ञान गुण है, गुण है? नहीं। कौन कहता है गुण है? दर्शन है? सम्यग्दर्शन है अन्दर? नहीं। सम्यग्दर्शन त्रिकाल श्रद्धा, हों! नहीं। चारित्र है उसमें? नहीं। समझ में आया? पर्यायभेद तो उसमें निकाल दिये। भाई! वह तो अशुद्धता में चौदह गुणस्थान और पर्यायभेद निकाल दिये। समझ में आया? यहाँ तो गुणभेद नहीं। पर्याय तो, चौदह गुणस्थान तो पहले छठवीं गाथा में निकाल दिये। सब चौदह गुणस्थान नहीं। चौदह गुणस्थान और निर्मल पर्याय भी नहीं। समझ में आया? वह तो अशुद्धनय का विषय है।

मुमुक्षु : गुणस्थान की पर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : गुणस्थान की पर्याय चौदह में नहीं? उस प्रकार की उसकी पर्याय है या नहीं? स्वभाव के ऊपर दृष्टि हुई तो अभेद में भेद दिखते नहीं तो अभेद एक भगवान ज्ञायक ही है। विशेष आयेगा....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल ११, शुक्रवार, दिनांक - २६-०८-१९६६
गाथा - ७, प्रवचन - २८

वस्तु है, वैसा आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन वह पर्याय है। परन्तु उसका विषय-ध्येय अभेद चैतन्यस्वरूप एकरूप वह सम्यग्दर्शन का विषय है। सम्यग्दर्शन का विषय कहो या शुद्धनय का विषय कहो (दोनों एकार्थ है)। समझ में आया?

भावार्थ :- कहते हैं कि, भगवान आत्मा **इस शुद्ध आत्मा के कर्मबन्ध के निमित्त से अशुद्धता होती है,...** कर्म का निमित्त और उसके लक्ष्य से भेद, पर्याय के भेद पड़ते हैं। प्रमत्त-अप्रमत्त आदि चौदह गुणस्थान, निमित्त के लक्ष्य से, निमित्त के आश्रय से एक चीज़ में चौदह प्रकार के भेद पड़ते हैं, वह भी यहाँ निषेध किया गया है कि वह आत्मा नहीं। समझ में आया? सम्यग्दर्शन का हेतु शुद्ध आत्मा, वह चौदह गुणस्थान की पर्यायरूप वह आत्मा नहीं। समझ में आया? **यह बात तो दूर ही रहो,...** अब कहते हैं कि भगवान आत्मा एक समय में एक स्वरूपी अभेद अनन्त गुण का पिण्ड, उसमें यह पर्याय—तेरहवाँ गुणस्थान और चौदहवाँ गुणस्थान और सब भेद हैं, वह तो पर्याय है, उन्हें निकाल दिया। उस शुद्ध आत्मा में नहीं। समझ में आया?

कर्म के निमित्त से... '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य का वचन है, उसमें पर्याय के भेद तो निकाल दिये। वस्तु अभेद चैतन्यप्रभु, उसमें वह पर्याय है नहीं। उस पर्याय को आत्मा ही कहते नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। अन्त में लिया न? चौदह गुणस्थान में अन्त में पुद्गल परिणाम। ६८ गाथा है अन्त में। पण्डितजी! 'मोहयोग संभवात्' बोले थे न? गोम्मटसार मोहयोग संभवात् चौदह गुणस्थान मोह और योग से उत्पन्न हुए हैं। समझ में आया? मोह का बारहवें तक, योग तेरह और चौदह। भले योग है और चौदहवें में नहीं। परन्तु वह मोह योग से चौदह गुणस्थान के भेद पड़ते हैं। गोम्मटसार में भी ऐसा लिया है। तो उसका यहाँ निषेध कर दिया। समझ

में आया? इतने चौदह पर्यायभेद वस्तु में नहीं। समझ में आया? ओहो!

यह बात तो दूर ही रहो, किन्तु उसके दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भी भेद नहीं है,... भगवान आत्मा में सम्यग्दर्शन—दर्शन, ज्ञान और चारित्र गुण, है अनन्त गुण, यहाँ मुख्य तीन लिये हैं। उसमें आत्मा में जिसे आत्मा शुद्धनय का विषय कहते हैं, सम्यग्दर्शन का ध्येय कहते हैं, ऐसे आत्मा में पर्यायभेद तो नहीं, परन्तु भगवान आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र—ऐसे भेद भी उसमें नहीं। सूक्ष्म विषय है। ६-७वीं गाथा पूरे समयसार का स्तम्भ है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... दर्शन पर्याय है, ऐसे ज्ञान भी पर्याय है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ गुण की बात है। यहाँ पर्याय की बात नहीं। पर्याय तो पहले कह दिया न। चौदह गुणस्थानपर्याय, वह द्रव्य में है ही नहीं। यहाँ तो आत्मा में दर्शन, ज्ञान, चारित्र जो गुण है, वह गुणभेद भी वस्तु में अभेद में नहीं। समझ में आया?

यह नय है न? भाई! नय है, वह शुद्धनय है। तो नय का विषय पूरा द्रव्य नहीं हो सकता। पण्डितजी! नय है न? नय तो अंश है। चाहे तो सामान्य का विषय कहो, परन्तु वह नय है। तो नय में एक अंश सामान्य त्रिकाल अभेद आता है। उसकी पर्यायसहित लो तो प्रमाण का विषय हो जाता है। समझ में आया? उस शुद्धनय का विषय पर्याय नहीं। शुद्धनय का विषय गुण-गुणी का भेद भी नहीं। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुणरूप वस्तु है। उसमें गुण-भेद है परन्तु अभेद में वे भेद दिखते नहीं। गुण हैं। गुण, हों! पर्याय नहीं। पर्याय को निकाल दिया पहले छठवीं गाथा में। समझ में आया?

भगवान आत्मा एक समय में निमित्त से जो चौदह भंग पर्याय के होते हैं, वह तो अशुद्धनय की कथनी में आये। वह अशुद्धनय का विषय आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! और यहाँ तो विशेष (कहते हैं), वह बात तो दूर रही। पर्याय के भेद की बात तो दूर ही रह गयी। परन्तु भगवान आत्मा में एकरूप सम्यग्दर्शन का विषय अभेद, जो शुद्धनय का अंश विषय, जिसे पर्याय के अंश की अपेक्षा से अंशी-सामान्य भी कहते हैं, बाकी है तो सामान्य भी एक अंश। भाई! आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म विषय है, भाई!

प्रमाण का विषय दो—सामान्य और विशेष। वह प्रमाण का विषय दो है। नय के विषय में दो आते नहीं, नय के विषय में एक ही अंश आता है। समझ में आया? तो कहते हैं कि शुद्धनय का विषय अथवा सम्यग्दर्शन का विषय जो आत्मा, उसमें चौदह गुणस्थान के भेद की बात तो दूर रहो, वे तो हैं नहीं, परन्तु उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र भी नहीं। एकरूप वस्तु में तीन भेद विद्यमान ही नहीं। आहाहा! अमरचन्दजी! सूक्ष्म विषय है, प्रभु! यह विषय ऐसा है। एकरूप सामान्य चैतन्य। उत्पाद-व्यय की सब पर्याय व्यवहारनय का विषय हो गया। उत्पाद-व्यय की पर्याय, केवलज्ञान की उत्पत्ति, वह भी सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? ध्रुव एक समय में सामान्य जो अभेद एकरूप है, उसमें उस पर्याय के भेद तो निकाल दिये। वह दृष्टि का विषय नहीं। शुद्धनय का ध्येय नहीं—विषय नहीं। परन्तु भगवान आत्मा एकरूप स्वरूप प्रभु, जो शुद्धनय का विषय अन्तर परमात्मा—कारणपरमात्मा, कारणपरमात्मा नियमसार की अपेक्षा से कारणजीव। समझ में आया? ज्ञायकभाव एकरूप स्वभाव, उसमें तीन भेद भी नहीं। 'चारित्र के भी...' शब्द पड़ा है न? चौदह गुणस्थान तो नहीं, परन्तु गुणभेद भी नहीं। इसलिए 'भी' लिया है। एक 'भी' आगे अधिक है। खोटा है। समझ में आया?

प्रभु आत्मा एकरूप परमात्मा। द्रव्यसंग्रह में भी लिया है न? भाई! बन्ध और मोक्ष, वह उसका (जीव का) स्वरूप ही नहीं। बन्ध और मोक्ष एक समय की पर्याय वह जीव का स्वरूप ही नहीं, ऐसा लिया है। परमात्मप्रकाश में तो एकदम लिया है, उत्पाद-फुत्पाद, व्यय-ब्यय उसका स्वरूप ही नहीं। आहाहा! अभी सब व्याख्यान हो गये न! अन्दर पड़े हैं, निकले तब सही। समझ में आया?

आत्मा उत्पाद-व्यय है, एक समय की अवस्था संसार या सिद्ध, वह भी व्यवहारनय का विषय है। समझ में आया? ध्रुव एकरूप स्वरूप का कन्द पिण्ड अभेद। उसमें पर्यायभेद तो छठवीं गाथा में निकाल दिये। विषय सूक्ष्म है, भाई! परन्तु समझा जा सके ऐसा है, न समझ सके ऐसा नहीं। भगवान आत्मा एक स्वरूप प्रभु अभेद है, उसमें भेद है ही नहीं, भेद विद्यमान ही नहीं। क्यों? कारण देते हैं। वस्तु भगवान आत्मा अनन्त धर्मस्वरूप एक धर्मी है। अनन्त गुणरूप एक गुणी है। अनन्त गुणरूप एक गुणी है।

अनन्त धर्म... धर्म शब्द क्यों प्रयोग किया है? वह धर्म उसने धारण किया है, इस अपेक्षा से। अशुद्धता को भी धर्म कहा है। धर्म अर्थात् अपनी आत्मा की पर्याय में धारण किया है। अशुद्धता भी धर्म है। यह पहले छठवीं में आ गया था। वस्तु का सत्त्व। छठवीं में आया था न? भगवान आत्मा जैसा सत्त्व त्रिकाल शुद्ध ध्रुव स्वयं ने धारा है, वैसे पर्याय में अशुद्धता संसारभेद भी पर्याय स्वयं ने धारी है, उसका धर्म है, उसने धारण किया है।

यहाँ तो सम्यक् शुद्धनय का विषय बतलाना है। '**ववहारोऽभूदत्थो**' ११वीं गाथा में आयेगा। व्यवहार सब ही अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भूतार्थ त्रिकाल ज्ञायक को शुद्धनय कहते हैं। शुद्धनय तो ज्ञान का अंश है। समझ में आया? परन्तु यहाँ अध्यात्म में '**भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। भूतार्थ को ही शुद्धनय कहा गया है। क्या कहा, समझ में आया? '**ववहारोऽभूदत्थो**' पर्याय, गुणभेद सब अभूतार्थ है। है ही नहीं एक न्याय से, त्रिकाल की अपेक्षा से। पर्याय की अपेक्षा से भले हो। समझ में आया? व्यवहार को अभूतार्थ कहकर '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ**'। शुद्धनय का विषय, ऐसा नहीं लिया, भाई! भूतार्थ एकरूप त्रिकाल स्वभाव, उसे भगवान आचार्य कहते हैं, उसे ही हम शुद्धनय कहते हैं। नय तो ज्ञान का अंश है, परन्तु वह वस्तु उसका विषय है। तथापि वह विषय और विषयी दो भेद भी अध्यात्म में नहीं। अभेद है। पाठ ऐसा है। '**भूदत्थो देसिदो**' भूतार्थ को कहा शुद्धनय। भूतार्थ ऐसा आया न? पण्डितजी! भूतार्थ। ज्ञान की पर्याय है। नय अंश है। नय ज्ञान का एक अंश है। प्रमाण नहीं। नय प्रमाण नहीं। प्रमाण तो एक समय में ज्ञान सामान्य को जाने, भेद को और विशेष को एकसाथ जाने, उसे प्रमाण कहते हैं। अब जो प्रमाणज्ञान है, उसका भाग है—अवयव है, वह नय है। तो चाहे तो शुद्धनय हो या चाहे तो व्यवहार हो, परन्तु प्रमाण का वह भाग है। उसमें यहाँ शुद्धनय जो है, तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि, '**भूदत्थो सुद्धणओ**'। भूतार्थ एक समय में अभेद स्वरूप है, उसे हम शुद्धनय कहते हैं।

मुमुक्षु : शुद्धनय का विषय नहीं कहते?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। यहाँ विषय नहीं कहते। समझ में आया? यहाँ तो यह बतलाना है। परन्तु वह वस्तु ही त्रिकाल ज्ञायकरूप ध्रुव एक स्वरूप अभेद को ही हम शुद्धनय कहते हैं। जाननेवाला और ज्ञात हो, ऐसे दो भेद अध्यात्म में है ही नहीं। नय कहो या नय का विषय, उन दोनों को एक ही कहा है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा शुद्धनय का विषय जो अभेद चैतन्यज्योति, जिसके आश्रय से सम्यग्दर्शन (होता है)। आश्रय से तो पर्याय उत्पन्न होती है, परन्तु पर्याय उत्पन्न होती है त्रिकाल अभेद के आश्रय से। भेद के आश्रय से उत्पन्न नहीं होती। निमित्त के आश्रय से, चौदह गुणस्थान भेद के आश्रय से या गुण-गुणी के भेद के आश्रय से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की नयी पर्याय उसके आश्रय से उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया? तो कहते हैं, गुणस्थानभेद तो दूर रहो, परन्तु... (गुण के भेद नहीं)। क्यों? वस्तु तो अनन्त गुणरूप एक धर्मी है। वस्तु तो एक है। सामान्य स्वरूप एक है।

परन्तु... समझ में आया? परमात्मप्रकाश में ध्रुव एक जीव का स्वरूप ऐसा लिया है। उत्पाद-व्यय स्वरूप नहीं। व्यवहार है न? तो अभूतार्थ कहकर निकाल दिया। एकरूप स्वरूप। द्रव्यसंग्रह में भी ऐसा है। यह दृष्टान्त आता है, पुरुष का। पुरष है उसे बाँधा है। यहाँ (पैर में) बाँधा है। छूट गया। वह तो एक समय की पर्याय है। वह पुरुष का वास्तविक स्वरूप नहीं। पुरुष तो एकाकार है। एक समय का बन्ध और छूटा, वह वास्तविक स्वरूप (नहीं है), वह तो एक समय की दशा हुई। भगवान अनादि-अनन्त एकरूप, उसमें एक समय का बन्ध और एक समय के बन्ध का व्यय, वह तो पर्याय है, व्यवहारनय। वस्तु अनादि-अनन्त एकरूप है, वह वस्तु है। आहाहा! समझ में आया? वेदान्त हो जाता है—ऐसा लोगों को लगता है।

पर्याय है अवश्य। एकरूप परमात्मस्वरूप में पर्याय का अभाव है। और उसमें अनन्त गुण होने पर भी एक धर्मी है। एक धर्मी है। अब क्या कहते हैं? **परन्तु व्यवहारीजन धर्मों को ही समझते हैं,...** अनादि का अज्ञानी प्राणी, धर्मी एकरूप वस्तु, धर्मी एकरूप वस्तु क्या है, उसे समझता नहीं। द्रव्य का उसे अनादि से लक्ष्य ही नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा धर्मी अनन्त गुणरूप एक, इसका उसे अनादि से लक्ष्य

है नहीं, ख्याल है नहीं। तो वह **धर्मी को नहीं जानते...** देखो! **धर्मों को ही समझते हैं।** धर्मों को ही समझते हैं। ज्ञान, यह जानना, जाने, माने, देखे, तो वह धर्मी को नहीं जानकर धर्म को ही जानता है। जानना-देखना, ऐसा धर्म-गुण को जानता है। धर्मी को नहीं जानता। **इसलिए...** इस कारण से, इस कारण से। **वस्तु के कोई...** वस्तु के कोई **असाधारण धर्मों को...** खास धर्मों को। अस्तित्व आदि दूसरे तो अनन्त हैं, वे नहीं। उसके खास धर्म जो दूसरे में नहीं और उसमें भी खास-खास मुख्य धर्म को **उपदेश में लेकर...** आचार्य उपदेश में लेकर **अभेदरूप वस्तु में भी...** वस्तु तो एकरूप है। कल लकड़ी का दृष्टान्त दिया था। एकरूप ही है। समझे? पर्याय भेद न रखो। परन्तु उसमें कोमलता, सुंवाळुं कहते हैं न? मुलायम, सुगन्ध ऐसे गुण के उसमें भेद नहीं। वह तो असंख्य प्रदेश में एकरूप है। यह कोमल है, यह सुगन्ध है, ऐसे नामभेद करके कहा जा सकता है। उसमें भेद है नहीं।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अनन्त गुणरूप एकरूप वस्तु है। तो कहते हैं, उसमें—अभेदरूप वस्तु में भी **असाधारण धर्मों को उपदेश में लेकर अभेदरूप वस्तु में भी...** वस्तु अभेद है तो भी **वस्तु में भी...** ऐसा लिया है न? **धर्मों के नामरूप भेद को...** देखो! 'धर्मों के नामरूप भेद...' यह तो पाठ में आया था। नाम से भेद करके, पाठ आया था। नाम से भेद, कथन से भेद करना, वाणी में। यह ज्ञान, यह दर्शन, ऐसे नाम से भेद करके। टीका में आया था। प्रचलित भाषा में स्पष्ट किया है। लोग संस्कृत नहीं समझते? संस्कृत की गूढ़ता (नहीं समझते), इसलिए प्रचलित भाषा में (कहा है)। **धर्मों के नामरूप...** नाम। धर्मी तो अभेद एकरूप है। नाम लेकर, संज्ञा लेकर कहा कि यह ज्ञान है, यह दर्शन है, यह चारित्र है, वह आत्मा। **उत्पन्न करके... नामरूप भेद को उत्पन्न करके...** भेद है नहीं अन्दर।

ऐसा उपदेश दिया जाता है... ऐसा उपदेश किया जाता है **कि ज्ञानी को...** ज्ञानी अर्थात् आत्मा। आत्मा को **दर्शन है,...** आत्मा को **ज्ञान है,...** आत्मा को **चारित्र है।** ऐसे अभेदस्वरूप में भेद नहीं, वस्तु तो अभेद है, परन्तु अभेद का लक्ष्य और दृष्टि अनादिकाल से अज्ञानी को नहीं। उस धर्मी को—अभेद को लक्ष्य में लेते नहीं तो भेद से उसे

समझाते हैं। भाई! यह जानता है न? जानता है कौन? यह जाने, वह आत्मा। श्रद्धा कौन करता है? श्रद्धा करता है, वह आत्मा। स्थिरता करता है, वह आत्मा। ऐसे गुण-गुणी के भेद है नहीं, नामभेद से उत्पन्न करके कहा। आत्मा में ... ज्ञानी अर्थात् आत्मा; दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है। समझ में आया? ओहोहो! देवीलालजी! पर्याय का क्या हुआ? गुणभेद विलय हो गये। गुणभेद से विकल्प उत्पन्न होते हैं। रागी प्राणी है, (इसलिए)। अभी सब स्पष्टीकरण करेंगे, हों! बहुत सरस स्पष्टीकरण (दिया है)। पाठ में है, उसे प्रचलित भाषा में कहा है।

इस प्रकार अभेद में भेद किया जाता है,... यह अर्थ है। ऐसे भगवान आत्मा एकरूप अभेद चैतन्यमूर्ति एक स्वरूप प्रभु अभेद में भेद किया जाता है। अभेद में भेद किया जाता है। **इसलिए वह व्यवहार है।** अभेद में भेद करना, वह व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। आहाहा! भारी सूक्ष्म बात, भाई! लोग शान्ति से समझना चाहे तो समझ सकते हैं, ऐसी वस्तु है। नहीं समझ में आये, ऐसी वस्तु नहीं। समझ में आया? परन्तु अपनी कल्पना से जो मान रखा है, उस दृष्टि से शास्त्र सुने और वाँचे तो कहीं पता लगे नहीं। ताराचन्दजी! यह तो मूल रकम की बात है।

भगवान आत्मा... कहते हैं, **इस प्रकार अभेद में भेद किया जाता है,...** अभेद में एकरूप में अनेकपने का नाम लेकर दर्शन, ज्ञान, चारित्र ऐसा कहते हैं तो व्यवहार हो गया। समझ में आया? व्यवहार हुआ तो वह असत्यार्थ हो गया। असत्यार्थ हुआ तो अभूतार्थ हुआ, अभूतार्थ हुआ तो अभेद में है नहीं। भाई! अभेद में है नहीं, ऐसा हुआ। आहाहा! भगवान आत्मा एकरूप स्वभाव में भेद करके कहना, वह अन्दर में है ही नहीं। व्यवहार कहो या अन्दर में है ही नहीं। यहाँ तो गुण नहीं। द्रव्य में गुण नहीं, गुणी में गुण नहीं। एकरूप है। आहाहा! समझ में आया?

(यदि) **परमार्थ से विचार किया जाये तो...** एक द्रव्य, अनन्त पर्याय अर्थात् भेद, अनन्त जो गुण के भेद **अभेदरूप से पीकर बैठा है,...** एकरूप धर्मी में अनन्त गुण तो पड़े हैं, पीकर बैठा है। उससे भिन्न नहीं। समझ में आया? यह वह धर्म किस प्रकार का? लोग धर्म धर्म करते हैं परन्तु धर्म कहाँ से होता है और धर्मी कैसा है, उसके

ख्याल बिना धर्म कैसे होता है? आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग जो फरमाते हैं, ऐसी वस्तु यहाँ कुन्दकुन्दाचार्य ने स्पष्ट करके रखी है। भाई! भगवान तो ऐसा कहते हैं और ऐसा है। प्रभु! आत्मा में जो शुद्धनय का विषय है, उसमें कर्म तो है ही नहीं,... चिल्लाहट मचाते हैं। कर्म नहीं? सुन तो सही! कर्म अभी नहीं। अरे! सुन तो सही। अरे! कर्म नहीं? ऐसे चिल्लाहट मचाते हैं। भगवान! कर्म तो निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध का व्यवहारनय का विषय का सम्बन्ध है, वस्तु में कर्म-बर्म नहीं। वस्तु में कर्म नहीं, वस्तु में शरीर नहीं, परन्तु वस्तु में पर्याय के भेद नहीं और वस्तु में गुण-गुणी के भेद नहीं। भगवान! तुझे (समझना पड़ेगा)। लालचन्दजी! आहाहा!

यह तो प्रभु का मार्ग है, भाई! तू परमेश्वर है। तेरी चीज़ परमेश्वर से पूरी भरी पड़ी है। उसमें वर्तमान शुद्धनय का विषय करने से—ध्येय करने से वर्तमान... समझ में आया? वर्तमान पर का लक्ष्य छोड़कर अपने द्रव्य का लक्ष्य करने से वह शुद्धनय का विषय है, उसमें वर्तमान कर्म, शरीर तीन काल में है ही नहीं। और चौदह गुणस्थान के भेद भी वर्तमान शुद्धनय का अभेद के विषय में है ही नहीं। तदुपरान्त गुणी भगवान एकरूप में गुण विद्यमान है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन पड़े लोगों को। तब किसमें गुण होंगे? दूसरे में होंगे किसी में?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ गुण लेना। पर्याय शब्द से भेद लेना। भेद। पर्याय शब्द से भेद। अनन्त धर्म के भेद। एक धर्मी में अनन्त धर्म के भेद समाहित हो गये हैं। पीकर बैठा है, भिन्न है नहीं। समझ में आया? **परमार्थ से विचार किया जाये तो एक द्रव्य अनन्त पर्यायों को अभेदरूप से पीकर बैठा है,...** पर्याय तो पहले निकाल दी। चौदह गुणस्थान आदि तो अशुद्धनय की कथनी में निकाल दी। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... होवे तब या अभी?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अभी। जगजीवनभाई! अभी। ऐसे त्रिकाल शुद्धनय का विषय भगवान अभी... अभी कहते हैं न? अभी। वर्तमान में यह भगवान आत्मा अभेद शुद्ध शुद्धनय का विषय वर्तमान में है। करे उसे है। न करे उसे क्या? वह तो राग को

और पुण्य को और भेद को मानता है तो मानो, वह तो अनादि का विषय है। समझ में आया? आहाहा!

परमार्थ से विचार किया जाये तो... एक भगवान आत्मा में अनन्त पर्याय अर्थात् भेद **अभेदरूप से पी कर बैठा है,...** अभेद में सब भरा है। **इसलिए उसमें भेद नहीं है।** इस कारण से उसमें—अभेद में भेद नहीं। इतना स्पष्टीकरण किया। अब शिष्य की ओर से एक शंका उठायी। देखो! इसमें बहुत मर्म है।

यहाँ कोई कह सकता है कि... यहाँ कोई कह सकता है, कह सकता है, क्योंकि जब गुणी में गुणभेद भी नहीं, ऐसा जब कहते हो, तब कोई कह सकता है कि **पर्याय भी द्रव्य के ही भेद हैं,...** यह सब गुण भी द्रव्य के ही भेद हैं, वस्तु में हैं, वे गुण वस्तु में हैं। वस्तु में ज्ञान, दर्शन, आनन्द गुण है। कोई बाहर में नहीं। शिष्य का प्रश्न है। सुनो! प्रश्नकार का हेतु क्या है, यह पहले सुनो। प्रश्नकार ऐसा कहता है कि भगवन्त! कोई कहे कि पर्यायभेद भी द्रव्य के ही भेद, वस्तु के भेद हैं। वस्तु है, उसके ही सब गुण हैं, वस्तु के ही गुण उसके ही भेद हैं। **अवस्तु तो नहीं;...** क्या कहते हैं? वस्तु में गुण है, वह अवस्तु नहीं, अवस्तु नहीं। अवस्तु किसे कहते हैं? कि अपनी अपेक्षा से सब वस्तु अवस्तु है, पर है। अवस्तु को व्यवहार कहो। शिष्य कहता है कि अवस्तु को व्यवहार कहो। अवस्तु का अर्थ, जो अपने में है नहीं, उस दूसरी वस्तु को तुम व्यवहार कहकर अवस्तु कहो। जरा गूढ़ अर्थ है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो वस्तु का स्वभावभाव है न! अभेद का भाव अन्दर पड़ा है, पहले कहते हैं। और अवस्तु तो उसे कहते हैं कि जो उसमें न हो। शरीर, कर्म, परपदार्थ नहीं तो अपनी अपेक्षा से उसे अवस्तु कहो। तो अवस्तु को व्यवहार कहो। अवस्तु को व्यवहार कहो। व्यवहार कहकर उसे अवस्तु कहो। परन्तु यह तो अन्दर में है। समझ में आया? नटुभाई! यह बहुत सूक्ष्म है, हों! तुम्हारी वकालत की अपेक्षा। वकालत में तो गोला मारे आड़े-टेढ़े। रामजीभाई इनकार करते हैं कि ऐसा नहीं। मारे आड़े-टेढ़े। कहो, समझ में आया? यह सब जीत जाते हैं। देखो न! अभी जीते और

कहीं बड़े पैसे मिले। क्या कहा, समझ में आया? वहाँ तो चले। यहाँ चले, ऐसा नहीं।

भगवान आत्मा... शिष्य के मुख में प्रश्न इन्होंने और इन्होंने उठाया। किन्होनें? पण्डित जयचन्द्रजी ने प्रश्न उठाया। **यहाँ कोई कह सकता है कि...** ऐसा कहकर उठाया। **यहाँ कोई कहता है कि...** क्यों? कि वे गुण तो अपने में हैं। वस्तु में है। वह कहीं पर में नहीं और पर नहीं। तो कहते हैं, कि गुण और भेद भी द्रव्य के ही प्रकार हैं, द्रव्य की चीज़ है, पदार्थ की वह चीज़ है। गुण ज्ञान, दर्शन, वह पदार्थ की चीज़ है। अवस्तु नहीं। अवस्तु का अर्थ, वह पर नहीं। समझ में आया? अवस्तु का अर्थ वह पर नहीं। वह वस्तु में है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, वह यहाँ है-वस्तु में है। वस्तु में है, उसे व्यवहार कैसे कहते हो? वस्तु में न हो, पर हो तो उसे अवस्तु कहो। अवस्तु को व्यवहार कहो। सेठी! समझ में आया?

गुण भी, ऐसे भेद भी द्रव्य के ही भेद हैं। **अवस्तु तो नहीं; तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है?** देखो भाषा! अवस्तु को व्यवहार कहो। अपने में चीज़ न हो और पर हो तो उसे अवस्तु कहकर व्यवहार कहो। समझ में आया? प्रश्नकार का प्रश्न पण्डित जयचन्द्रजी ने उठाया है। अपने द्रव्य की अपेक्षा से अपना द्रव्य है। अपने द्रव्य की अपेक्षा से परवस्तु अद्रव्य है। अपनी वस्तु की अपेक्षा से अपनी वस्तु है। और अपनी वस्तु की अपेक्षा से अपने अतिरिक्त सब चीज़ अवस्तु है। समझ में आया? तो अवस्तु है, अपने में नहीं, ऐसी अवस्तु को व्यवहार कहो। समझ में आया? राजमलजी! आहाहा! **अवस्तु तो नहीं; तब फिर उन्हें...** अवस्तु नहीं। वह तो अपने में है। अपने में ज्ञान, दर्शन, आनन्द अपने में है। अवस्तु नहीं। अपने में नहीं, ऐसा नहीं। **तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है?** इस प्रश्न का रूप समझे? प्रश्नकार का क्या हेतु है, वह समझते हो? प्रश्नकार कहता है, प्रभु! आत्मा है। उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द है, है। नहीं, ऐसा नहीं। परवस्तु जो शरीर, कर्म, रजकण, वे तो आत्मा में है ही नहीं। शरीर, कर्म, वाणी, वह तो आत्मा में है ही नहीं। आत्मा में है ही नहीं, उसे तुम व्यवहार कहो। क्योंकि वह आत्मा में नहीं तो अवस्तु (हुई)। आत्मा की अपेक्षा से अवस्तु है। अवस्तु को व्यवहार कहो। समझ में आया? धीरे से समझना, परन्तु बराबर समझना, हों! पण्डितजी! बराबर है?

देखो! प्रश्नकार में कितना रखा है! भगवान आत्मा है न, प्रभु? आत्मा में ज्ञान, दर्शन, आनन्द नहीं? है न। तो है उसे तुम व्यवहार कैसे कहते हो? उसमें न हो, उस वस्तु को तुम व्यवहार कहकर अवस्तु कहो। स्वद्रव्य की अपेक्षा से पर को अद्रव्य कहो। स्ववस्तु की अपेक्षा से पर को अवस्तु कहो। स्वकाल की अपेक्षा से पर को अकाल कहो। स्वगुण—भाव की अपेक्षा से पर को अभाव कहो। यहाँ की अपेक्षा से पर को अवस्तु कहो और अवस्तु कहकर उसे व्यवहार कहो। निश्चय स्व में है और व्यवहार पर है, ऐसी वस्तु है, महाराज! शिष्य प्रश्न करता है। समझ में आया? उसमें है, उसे निश्चय कहो; अपने में नहीं, उसे व्यवहार कहो। महाराज! अपने में तो है न? ज्ञान, दर्शन, आनन्द है न! तो व्यवहार कहो तो अवस्तु हो जाता है। समझ में आया?

अवस्तु तो नहीं;... ऐसा शब्द है। अपने में है, अवस्तु नहीं। इसलिए अपने में नहीं, ऐसा नहीं, अपने में नहीं — ऐसा नहीं। अपने में है तो उसे अवस्तु क्यों कहा? वह अवस्तु नहीं। तो उसे व्यवहार क्यों कहते हो? महाराज! आपकी बात बहुत कठिन पड़ती है। समझ में आया? **तब फिर उन्हें व्यवहार...** है **उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है?** उसमें न हो, (ऐसे) पर को व्यवहार कहो। स्वआश्रय निश्चय, पराश्रय व्यवहार। समझ में आया? पर सब व्यवहार है। **कैसे कहा जा सकता है?** ऐसा शिष्य का प्रश्न है। समझ में आया?

उसका समाधान :- यह अपने आप वाँचे तो कुछ समझ में आये, ऐसा नहीं अन्दर कि यह क्या कहते हैं। ताराचन्दजी! बापू! यह तो अध्यात्म शास्त्र है। इसके एक-एक शब्द में मर्म है। एक शब्द ऐसा का ऐसा वाँच जाये, ऐसी यह चीज़ नहीं। एक मनुष्य ऐसे कहता था कि तुम कहते हो कि समयसार बहुत... मैंने तो १५ दिन में पूरा समयसार वाँच लिया। बहुत अच्छा, भाई! वाँच डाला। नौ तत्त्व की बात है, उसमें क्या? बात तो नौ तत्त्व की है। १५ दिन में वाँच लिया। (हमने) कहा, १५ दिन क्या चौबीस घण्टे वाँचे तो आठ दिन में समाप्त हो जाये। उसमें क्या है परन्तु? 'वाँचे पण नहीं करे विचार, वह समझे नहीं सघला सार।' हमारे एक दलपतराम कवि हो गये। दलपतराम कवि। क.द.डा. कदडा अर्थात् कवि दलपतराम डाह्याभाई। हमारे समय में

पहले थे, हों! हमारे समय में नहीं थे, हमारे पहले। वे कहते थे कि 'वाँचे पण नहीं करे विचार, वह समझे नहीं सघला सार।' समझ में आया? गुजराती। वाँचे पण नहीं करे विचार कि क्या वस्तु है। मनन करे नहीं, तुलना करे नहीं तो सार समझे नहीं। क्या कहना है, वह सार समझे नहीं। बराबर है? भाई!

यह प्रश्न किया उसका स्वरूप समझे? प्रश्नकार का प्रश्न करने का रूप क्या है? कि जब भगवान ने ऐसा कहा कि भगवान! आत्मा अनन्त गुण का एकरूप है न! उस एकरूप में सर्व धर्मों को पी गया है, एक में। तो उसमें दर्शन, ज्ञान, चारित्र भेद करना, नाम से भेद किये हैं तो उसे व्यवहार कहते हैं। भगवान! व्यवहार तो (उसे कहते हैं कि) उसमें गुण न हो, उसमें अस्ति न हो, उसमें मौजूदगी न हो, उस परचीज़ को तुम व्यवहार कह सकते हो। परन्तु अपने में तो प्रभु है न। समझ में आया? आत्मा है तो ज्ञान, दर्शन, आनन्द वह सब है न! है, उसे आप व्यवहार कैसे कह सकते हो? व्यवहार तो अपने में न हो, उसे आप व्यवहार कहो। समझ में आया? यह प्रश्न का रूप। हमारे सेठ ठण्डे व्यक्ति हैं न! वरना वन्स मोर करते हैं कितने ही बार। फिर से कहो। नहीं? यह तो अभी प्रश्न का रूप बाँधा।

पण्डित जयचन्द्रजी ने शास्त्र में से निकालकर (स्पष्ट किया है)। '**ववहारेणु-वदिस्सदि णाणिस्स चरित्त दंसणं णाणं। ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं**' ऐसा जब आपने कहा तो प्रभु! क्या उसमें वह नहीं? यह पाठ में है, हों! पाठ में से (कहा है)। नहीं? आप तो उसे व्यवहार कहते हो। '**ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स**' आत्मा को। '**णाणि**' अर्थात् आत्मा। आत्मा को व्यवहार से कहते हैं कि दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। महाराज! वह गुण तो है न? गुण है, उसे व्यवहार क्यों कहा? न हो, उसे व्यवहार कहो। पर को व्यवहार कहो, स्व में है, उसे व्यवहार कैसे कहते हो? यह तो आशंका है, हों! आप खोटा बोलते हो, ऐसी बात नहीं। शंका तो उसे कहते हैं कि तुम कहते हो वह बात झूठ है। आशंका (अर्थात्) आप क्या कहते हो, मुझे समझ में नहीं आता। समझ में आया? महाराज! आप कहते हो, वह बात तो सच्ची है, परन्तु हमको बैठती नहीं। क्यों? कि आप कहते हो कि भगवान आत्मा में ज्ञान, दर्शन, चारित्र है ही नहीं।

तो क्या अन्दर नहीं है ? है या नहीं ? है न ! तो तुम कहते हो कि उसे व्यवहार कहो। व्यवहार तो कब कहलाये ? कि उसमें न हो तो व्यवहार कहो। उसमें न हो, ऐसी परचीज़ को व्यवहार कहते हैं। स्व वस्तु को व्यवहार कैसे कहा ? समझ में आया ?

उसका समाधान यह है - यह ठीक है,... तेरी बात तो एक अपेक्षा से ठीक है। अपने में है, उसे व्यवहार नहीं कहा जाता। पर में है तो अपनी अपेक्षा से पर नहीं तो उसे व्यवहार कहो। इस अपेक्षा से तेरी बात ठीक है। परन्तु हमारा अभिप्राय दूसरा है। **परन्तु यहाँ...** देखो अब। समझ में आया ? **परन्तु यहाँ... यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है।** भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज '**ववहारेणुवदिस्सदि णाणिस्स**' आत्मा को '**चरित्त दंसणं णाणं। ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो॥**' भगवान कुन्दकुन्दाचार्य महाराज ने **यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके...** यह तीन शब्द लेना। द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसकी दृष्टि से अभेद, अभेद—एकरूप को **प्रधान करके उपदेश दिया है। अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही...** क्या (कहते हैं), देखो ! अभेददृष्टि में एकरूप वस्तु में भेद को। अन्दर ज्ञान, दर्शन है। परन्तु उसे गौण कहने से ही, भेद का लक्ष्य छोड़ने से **भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है।** क्या कहते हैं ? वस्तु की अभेद दृष्टि में भेद को गौण करने से। भेद उसके साथ बतावे तो अभेद की दृष्टि तो हुई नहीं। अभेद में भेद देखने जाये तो व्यवहार हो जायेगा। अभेददृष्टि में दिखते नहीं, अभेद में भेद दिखते नहीं। अभेद में भेद दिखते नहीं और अभेद में यदि भेद कहे तो अभेद दिखता नहीं। अभेद में भेद को गौण करने से। भेद अन्दर होने पर भी, होने पर कहते हैं न ? होने पर भी गौण करने से। अभाव नहीं, उसमें गुण का अभाव नहीं। हमारी भाषा बहुत ऐसी नहीं आती, भाई ! साधारण आती है। यह तो तुम सब हिन्दी हो, इसलिए (हिन्दी में चलता है)।

अभेददृष्टि में... भगवान आत्मा एक स्वरूप की दृष्टि में, द्रव्यदृष्टि में अभेद को -एक को मुख्य करके भेद को गौण करके, भेद होने पर भी उन्हें गौण कहने से ही **अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है।** समझ में आया ? आहाहा ! शान्ति से विचार न करे, मनन न करे। क्या वस्तु की स्थिति है ? एकदम मान ले कि एकान्त है। भाई ! क्या

एकान्त ? सुन तो सही। अरे... भगवान! तुझे दृष्टि का विषय है, क्या है, कैसे है, इसकी खबर नहीं और तू कहाँ से रुचि करेगा और कहाँ से श्रद्धा और समकित होगा ? समझ में आया ? हीरालालजी! भीलवाड़ा। ऐसी चीज़ है, भाई!

कहते हैं, भगवान! भगवान ने—कुन्दकुन्दाचार्य ने ऐसा कहा कि द्रव्यदृष्टि में **द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके...** देखो! उसे मुख्य करके और **अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही...** दो भाषा ली। मुख्य करके। प्रधान शब्द प्रयोग किया है। एकरूप अभेद की द्रव्यदृष्टि में अभेद को मुख्य करके। देखो! अभेद को मुख्य करके, हों! **अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति...** एकरूप चीज़ दृष्टि में भलीभाँति से आती है। द्रव्यदृष्टि में द्रव्यदृष्टि से—वस्तुदृष्टि से अभेद को—एकरूप को प्रधान करके उपदेश दिया है और अभेद में भेद को गौण करने से अभेद भलीभाँति मालूम पड़ता है। अभेद में भेद को गौण करके अभेद भलीभाँति मालूम पड़ता है। परन्तु अभेद में भेद रखकर लक्ष्य करे तो अभेद मालूम नहीं पड़ता। समझ में आया? आहाहा! देखो! यह बात ऐसी है। आहाहा!

भाई! प्रभु! यह तो आत्मा के घर की बात है। इस बात में ऐसी कोई गम्भीरता है तो कहते हैं, भगवान! **भेद को गौण करके कहने से ही...** कहने से ही। अभेद में यदि भेद कहे तो अभेद मालूम नहीं पड़ता। द्रव्यदृष्टि से अभेददृष्टि किये बिना, अभेद को मुख्य किये बिना, भेद गौण किये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! अभी तो सम्यग्दर्शन अभेद को मुख्य करे तब होता है। यहाँ तो अभी सम्यग्दर्शन राग से होता है और कषाय की मन्दता से होता है और निमित्त से होता है, ऐसा कहीं की कहीं गप्प चलती है। अमरचन्दजी! क्योंकि यह बात बाहर आयी न। चलती नहीं थी, इसलिए लोगों को उलझन हो गयी कि यह मेरी बात चलती नहीं। इनकार करते हैं ऐसा नहीं, ऐसा नहीं। भगवान! सुन तो सही, प्रभु!

तेरी चीज़ तुझे प्राप्त कराने के लिये एकरूप को प्राप्त कराने के लिये अभेद को मुख्यरूप से प्राप्त कराने के लिए उसमें ज्ञान, दर्शन, आनन्द होने पर भी गौण कर डाला। लक्ष्य छुड़ा दिया। लक्ष्य छुड़ाकर अभेद भलीभाँति दृष्टि में आवे, इसलिए अभेद में भेद

नहीं, ऐसा कहकर अभेद की दृष्टि करायी है। आहाहा! समझ में आया? पुस्तक हाथ में रखी हो तो (खबर पड़े)। इसके लिये पुस्तक रखते हैं, भाई! एक-एक शब्द का क्या अर्थ है। वरना तो हमको खबर नहीं, प्रभु! नीचे शास्त्र और ... परन्तु दूसरा उपाय नहीं। शास्त्र का विनय, उसमें जो भाव कहना है, उसे समझे, वही वास्तव में शास्त्र का विनय है। ऐसे ... वन्दन करे परन्तु उसमें कहना है, उसकी तो खबर नहीं तो विनय कहाँ आया तेरा? बाबूभाई! आहाहा! अरे भगवान! और शास्त्रकार ने जिस अभिप्राय से कहा है, वही उसे शब्द में से वाच्य ख्याल में आवे तो ही शास्त्र का विनय किया। आहाहा! क्या करे?

कहते हैं, 'अभेद भलीभाँति मालूम पड़ सकता है।' देखो! भले प्रकार से। एकरूप द्रव्यदृष्टि कराने के लिये एकरूप दृष्टि हुए बिना एकाग्र होता नहीं। एक में एकाग्र हुए बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं।

ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो॥११॥

११वीं गाथा में लिया है। यहाँ से शुरु किया है, वहाँ विशेष कहेंगे। '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' भूतार्थ अर्थात् अभेद। अभेद का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। अभेद में भेद को गौण करके व्यवहार कहा है। क्या कहा? देखो!

इसलिए... इसलिए (कहा) वापस। अब व्यवहार क्यों कहा, इसका स्पष्टीकरण करते हैं। **अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है। इसलिए...** इस कारण से। **भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है।** भेद को गौण करके व्यवहार कहा है। अभाव करके व्यवहार नहीं। समझ में आया? उसमें प्रधान करके कहा था न? यहाँ गौण करके (कहा)। द्रव्यदृष्टि से वस्तुदृष्टि से अभेद को मुख्य करके उपदेश दिया। **अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है।** इतना सिद्धान्त कहा। इस कारण से भेद को गौण करके। भगवान! अभेद में ज्ञान, दर्शन आदि भेद तो है। परन्तु ऐसा लक्ष्य करे तो व्यवहार हो जाता है, विकल्प उत्पन्न होता है। आत्मा का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। गुणी में गुण का भेद लक्ष्य करने

से अपना प्रयोजन सम्यग्दर्शन प्राप्त करना, वह सिद्ध नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! फिर से?

'**भूदत्थमस्सिदो खलु**' यहाँ द्रव्यदृष्टि ली है। द्रव्यदृष्टि कहो या '**भूदत्थ**' कहो, वह तो एक ही बात है। द्रव्यदृष्टि से अभेद को मुख्य करके उपदेश दिया। **अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही...** उसमें गौण करने से ही, लक्ष्य छोड़ने से ही **अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है।** भेद का लक्ष्य छोड़ने से ही अभेद बराबर मालूम हो सकता है।

मुमुक्षु : ही कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ही है न। '**कहने से ही**' यह कहा न? गौण करने से ही। मुख्य में और गौण साथ में ले लेवे, मुख्य में साथ में ले तो अभेद मालूम कैसे हुआ?

भगवान आत्मा एक स्वरूप प्रभु अभेद है, उसमें भेद गौण करने से ही, उसे गौण कर डालना, भेद की ओर का लक्ष्य छोड़ देने से ही अभेद दृष्टि में आता है। समझ में आया? यहाँ तो कहा, अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही। अभेद में भेद करे तो अभेद मालूम कहाँ से पड़े? गौण कहने से ही अभेद चैतन्यप्रभु एकरूप भलीभाँति जैसा स्वरूप है, ऐसी दृष्टि होती है। समझ में आया? राजमलजी! आहाहा! यह तो बराबर श्लोक आया है तुम्हारे। ६-७ गाथा। आहाहा!

भाई! मूल चीज़ की प्राप्ति अभेद की दृष्टि होती है। यहाँ ऐसा लिया है। पद्मनन्दि में ऐसा लिया है, '**भूदत्थमस्सिदो खलु**' मुनिपना होता है, वहाँ ऐसा लिया है। वहाँ ... यह है। वहाँ भी ऐसा लिया है। यहाँ सम्यग्दृष्टि से शुरु किया है। पद्मनन्दि आचार्य में यही गाथा है। '**ववहारोऽभूदत्थो भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ। भूदत्थमस्सिदो खलु**' मुनिपना-यति, ऐसा कुछ शब्द है। यतिपना साधुपना परन्तु चारित्रदशा भी अभेद के आश्रय से उत्पन्न होती है। जैसे सम्यग्दर्शन अभेद के आश्रय से उत्पन्न होता है, वैसे चारित्र भी पंच महाव्रत के विकल्प से उत्पन्न नहीं होता। पंच महाव्रत विकल्प, राग है, पर निमित्त है। चारित्र भी '**भूदत्थमस्सिदो खलु**'। अभेद चिदानन्द प्रभु का उग्ररूप से आश्रय लेने से। पहला आश्रय लिया उसमें सम्यग्दर्शन हुआ। फिर उग्ररूप से आश्रय

लेने से चारित्र प्रगट होता है। पण्डितजी! कितने बड़े पण्डित हैं। सब ब्रह्मचारी ऐसे नहीं है। यह तो पण्डित है। समझ में आया? वहाँ पद्मनन्दि में ऐसा लिया है। '**भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी**' लिया न? वहाँ '**भूदत्थमस्सिदो**' मुनि होते हैं, ऐसा लिया है। पद्मनन्दि में। अभेद के आश्रय से सम्यग्दर्शन, अभेद के आश्रय से सम्यग्ज्ञान, अभेद के आश्रय से चारित्र, अभेद के आश्रय से शुक्लध्यान, अभेद के आश्रय से केवलज्ञान। समझ में आया? आहाहा! ऐसी तेरी वस्तु प्रभु! कहते हैं, अभेदरूप है न भगवान! ऐसे अन्तर में दृष्टि करना, वही सम्यग्दर्शन का कारण है। आहाहा!

इसलिए भेद को गौण करके... शिष्य ने प्रश्न किया था न? उसमें भेद है तो उसे व्यवहार कैसे कहते हो? अवस्तु को व्यवहार कहो। परवस्तु अपनी अपेक्षा से अवस्तु को व्यवहार कहो। हमारी वस्तु में है, उसे तुम व्यवहार कैसे कहते हो? इसका उत्तर दिया कि भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। समझ में आया? उसका अभाव करके उसमें है ही नहीं, ऐसा नहीं कहा। है परन्तु अभेद की मुख्यता—दृष्टि कराने के लिये भेद को गौण करके व्यवहार कहा है। जैसे दूसरी वस्तु को—अवस्तु को व्यवहार कहते हैं, ऐसे भेदरूप गौण किया तो वस्तु में वह भेद है ही नहीं। भाई! आहाहा! अभेद में भेद को अवस्तु कहा है। अभेद को वस्तु कहा। समझ में आया? **भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है।** समझ में आया? अब विशेष बात है। समय हो गया है। थोड़ी लम्बी बात है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

द्वितीय श्रावण शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक - २७-०८-१९६६
गाथा - ७, प्रवचन - २९

सातवीं गाथा चलती है, उसका भावार्थ। क्या कहा? देखो! छठवीं गाथा में। छठवीं गाथा कहते हैं? छठवीं गाथा में ऐसा कहा कि ज्ञायक एक भाव ही आत्मा शुद्ध द्रव्यनय का विषय है। शुद्धनय निश्चयनय का विषय अकेला ज्ञायकभाव ध्रुवभाव स्वभावभाव परमपारिणामिकभाव है। उसमें गुणस्थानभेद और राग शुभाशुभ परिणाम के कारण प्रमत्त-अप्रमत्त भेद भी गौण कर दिये। वह पर्याय उसमें है नहीं। पर्याय को गौण किये बिना द्रव्य की-अभेद की दृष्टि यथार्थ नहीं होती। समझ में आया? पर्याय को निकालकर, ऐसा नहीं। कल ऐसा प्रश्न आया था कि पर्याय को छोड़ दो। छोड़े क्या? पर्याय है न! पर्याय का लक्ष्य छोड़ना। भेद का, पर्याय का लक्ष्य छोड़कर अकेला ज्ञायकभाव है, उसकी दृष्टि करना। इससे यहाँ पर्यायनय को अभूतार्थ-असत्यार्थ कहकर हेय कहा है।

यहाँ सातवीं गाथा में उससे आगे ले गये। भगवान आत्मा अनन्त गुणरूप स्वरूप है। उसमें गुण-गुणी का भेद करना, वह भी व्यवहार है। समझ में आया? भगवान चैतन्यप्रभु ज्ञायकभाव। पाठ लिया है न? '**ण वि णाणं ण चरित्तं ण दंसणं जाणगो सुद्धो**'। ज्ञायक शुद्ध एकरूप स्वभाव में तीन भेद करना, वह व्यवहार हो गया। भेद व्यवहार हो गया। व्यवहार हुआ तो व्यवहार पर्यायनय का विषय हो गया। समझ में आया? तो कहते हैं, गौण कर दे, व्यवहार को गौण कर दे, भेद का लक्ष्य छोड़ दे। अकेला ज्ञायकभाव है, उसकी दृष्टि करके आत्मा का अनुभव होता है, तब सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

यहाँ तक अपने आया है। **इसलिए भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है।** भेद नहीं है—ऐसा नहीं। परन्तु अभेद में दृष्टि कराने के लिये, भेद को साथ ले तो भेद

की दृष्टि तो व्यवहार हो गयी। गुणभेद का लक्ष्य तो विकल्प हो गया। उसमें निर्विकल्प दृष्टि का अनुभव नहीं होता। भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा। गौण करके व्यवहार कहा। **अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है।** अब यहाँ महा तात्पर्य आया।

यहाँ यह अभिप्राय है कि... यहाँ यह अभिप्राय है कि... शास्त्र बराबर जाँचो। **भेददृष्टि में...** यहाँ 'भी' नहीं चाहिए। 'भी' है? गुजराती में नहीं। इसमें छप गया है, हिन्दी में छपा है। 'भी' नहीं चाहिए। **यहाँ यह अभिप्राय है कि...** यहाँ कहाँ? भगवान आत्मा ज्ञायक शुद्ध किसे कहते हैं? यह छठवीं गाथा में आ गया। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर निज द्रव्य का लक्ष्य करके पर्याय में उपासनीय भाव हुआ, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय से दृष्टि हुई, लक्ष्य हुआ। तो उपासना द्रव्य के ऊपर आयी। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर निज द्रव्य के ऊपर लक्ष्य आया। इसका अर्थ कि अपनी वर्तमान पर्याय में जो पर के ऊपर लक्ष्य था, उसे छोड़ दे। इसका अर्थ कि उस पर्याय को अन्तर में झुका। तो जहाँ बाहर का लक्ष्य छूट गया, अन्तर में आया तो सामान्य द्रव्य के ऊपर उसका लक्ष्य रहा। समझ में आया? आहाहा!

वस्तु है, वस्तु। एक समय में शुद्ध ध्रुव। पर्याय भी है। यहाँ कहते हैं कि प्रमत्त-अप्रमत्त भाव का लक्ष्य छोड़ दे। अर्थात् ऐसा शब्द आया था न? कि परद्रव्य का। समझ में आया? उपासित होता हुआ। **समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ 'शुद्ध' कहलाता है।** अर्थात् भगवान आत्मा परद्रव्य अर्थात् बहिर्मुख जो वृत्ति थी, वस्तु पूरी अन्तर्मुख है, उसकी यहाँ पर्याय में वर्तमान में बहिर्मुख दृष्टि थी, वह मिथ्यादृष्टि था। उसे अस्तित्व मानता था। भेद को अथवा अंश को अथवा राग को अपना अस्तित्व मानकर मिथ्यादृष्टि, पर्यायबुद्धि—मिथ्यादृष्टि था। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़कर अन्तर्मुख हुआ, यहाँ से लक्ष्य छोड़कर अन्तर्मुख हुआ, अन्तर्मुख हुआ तो वह दृष्टि—वह पर्याय द्रव्य के ऊपर-सामान्य के ऊपर गयी। समझ में आया? ऐसी उपासना हुई। अन्तर सामान्य में गयी तो पर्याय में निर्मलता हुई। निर्मलता, द्रव्य के लक्ष्य से निर्मलता हुई। पर के लक्ष्य से बाह्य में विकार उत्पन्न होता था। भाई! आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि प्रभु आत्मा ध्रुव जो एक स्वरूप है, सामान्य द्रव्य एक स्वभाव नय का विषय है न यहाँ? तो यहाँ जो विषय परद्रव्य था, उससे हटकर अन्तर में आया, अन्तर में जहाँ लक्ष्य हुआ तो पर्याय में एकता हुई। निर्मलता हुई, उस निर्मलता द्वारा यह आत्मा शुद्ध है, ऐसा लक्ष्य में आया। भारी बात, भाई! समझ में आया? इस सातवीं में विशेष निकाल दिया। कहते हैं कि भाई! आत्मा गुणी है और उसमें गुण है, उसमें मुख्य तो दर्शन, ज्ञान, चारित्र है। ऐसा भेद करके (कहा)। वस्तु में भेद नहीं। नाम से भेद उत्पन्न किये, ऐसा शब्द है। नाम से, कथन से। यह दर्शन, यह ज्ञान। वस्तु में तो एक है। नाम से कथन करने से लक्ष्य हो तो भेद हो गया। तो उसे गौण कर दे, लक्ष्य को गौण कर डाल, गुण-गुणी के भेद का लक्ष्य गौण कर दे। अकेला गुणी ज्ञायक है, उस ओर ढलने से भेद को व्यवहार कहकर, भेद को गौण करके, गौण करके व्यवहार कहा। भेद को व्यवहार कहकर गौण कर, ऐसा नहीं। शब्द में बहुत अन्तर है। पहले आया था न? **द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके...** प्रधान है तो अभेद कर, ऐसा नहीं; अभेद को प्रधान कर। निश्चय को प्रधान करके। समझ में आया? निश्चय को प्रधान करके, ऐसा नहीं। निश्चय तो स्वद्रव्य, गुण, पर्याय तीनों है, परन्तु अभेद को प्रधान करके उसे मुख्य करके, उसे निश्चय कहा और गुण-गुणी के भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा। आहाहा! गजब बात, भाई! यह समाज को... यह बात ऐसी है कि अन्तर से बात (बैठे बिना) इसका निवेड़ा आता नहीं। अमरचन्दजी! आहाहा!

भगवान! यहाँ निश्चय को मुख्य, ऐसा यहाँ नहीं लिया, भाई! अभेद को मुख्य लिया है। बात में अन्तर है। निश्चय को मुख्य कहे तो निश्चय तो निज द्रव्य, गुण, पर्याय तीनों निश्चय है और पर व्यवहार है। परन्तु यहाँ मुख्य को निश्चय करके अर्थात् मुख्य को—अभेद को निश्चय करके, अभेद को प्रधान करके। एकरूप स्वरूप है, उसे प्रधान करके और भेद को गौण करके व्यवहार कहा। समझ में आया? भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। धीरे-धीरे समझना, हों! परन्तु यह समझे बिना इसका निवेड़ा नहीं है। लाख शास्त्र वाँच डाले, समझे? ग्यारह अंग अनन्त बार पढ़ गया, नौ पूर्व पढ़ा। परन्तु वह चीज़ ज्ञायकस्वरूप एकरूप अभेद है, उसका लक्ष्य और दृष्टि किये बिना और

गुणभेद के व्यवहार को गौण करके अर्थात् उसका लक्ष्य छोड़कर अभेद की अन्तर में दृष्टि होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है। उस सम्यग्दर्शन का विषय वह सामान्य द्रव्य है।

यहाँ यह अभिप्राय है कि... अब कहते हैं कि **भेददृष्टि में निर्विकल्पदशा नहीं होती...** देखो! यह कहना है। यदि आत्मा की पर्याय के ऊपर लक्ष्य रहे, गुणस्थान के ऊपर लक्ष्य रहे, प्रमत्त-अप्रमत्त के ऊपर लक्ष्य रहे तो निर्विकल्प अनुभव नहीं होता। निर्विकल्पदशा नहीं होती। यह गाथायें ऐसी बारीक-सूक्ष्म है। मूल रकम की बात है। समझ में आया? बनिया मूल रकम कहते हैं या नहीं? मूल रकम लाओ, ब्याज तो बहुत लिया। पाँच लाख दिये हैं... मूल रकम कहते हैं न? मुद्दल। पाँच लाख दिये हैं, लाओ। छह आना के हिसाब से ब्याज तो बहुत खाया, रकम लाओ। इसी प्रकार भगवान मूल रकम ज्ञायकभाव। समझ में आया? वह क्यों कहा? **भेददृष्टि में भी निर्विकल्प दशा नहीं होती...** सुनना, हों! इन चार पंक्तियों में बहुत भर दिया है। जब तक उसका पर्याय के ऊपर लक्ष्य रहेगा, वह भेद है। गुण-गुणी का लक्ष्य रहेगा, वह भी भेद है।

भेददृष्टि में निर्विकल्पदशा नहीं होती... भेददृष्टि में रागरूप विकल्प की दशा, विकारीदशा होती है। भेददृष्टि में निर्विकल्पदशा नहीं होती और प्रयोजन निर्विकल्पदशा करने का है। ऐसा नहीं कहा कि यह द्रव्य है और पर्याय जानना, ऐसा जानना। ऐसा नहीं। यह द्रव्य है, सामान्य द्रव्य है, उसकी पर्याय है, ऐसा नहीं। प्रयोजन सिद्ध करना है। प्रयोजन सिद्ध करना अर्थात् क्या? निर्विकल्प दृष्टि की दशा प्रगट करनी है। ऐ.. चुनीभाई! सूक्ष्म है यह, हों! थोड़ा-थोड़ा सुनना। सुनते रखना। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में एकरूप अभेद है। ऐसी दृष्टि हुए बिना निर्विकल्पदशा नहीं होती। निर्विकल्पदशा बिना अपना हित सिद्ध नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? भाई! यह बात तो ऐसी है कि अकेले शास्त्र का वाँचना या पढ़ना, ऐसी चीज़ नहीं। यह तो अन्तर की चीज़ है, ऐसी (बात गाथा) ६ में, ७ में रखी है कुन्दकुन्दाचार्य ने (कि) यह अनुभव की वस्तु है। पाँचवीं गाथा में कहा न कि मैं कहूँगा तो अनुभव से प्रमाण करना। हमारे वैभव से कहूँगा, प्रमाण करना। नकार नहीं करना। स्वानुभव प्रत्यक्ष करके प्रमाण करना। अन्तर में झुककर 'यह आत्मा' ऐसा अनुभव करना। ऐसा पाँचवीं गाथा में कहा था। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भेददृष्टि में निर्विकल्प स्वरूप की एकता की वीतरागदशा, वीतरागदशा (नहीं होती)। निर्विकल्प कहो या वीतरागदशा कहो। भेददृष्टि में राग की दशा होती है और राग में एकत्वरूप से रुककर अनादिकाल से उसमें रुककर भटकता है। समझ में आया? इसलिए वहाँ कहा न? पर्यायमूढा परसमया। ज्ञेय अधिकार, पहली गाथा (प्रवचनसार गाथा ९३)।

अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया॥९३॥

एक समय की पर्याय के ऊपर लक्ष्य रखनेवाला, भेद के ऊपर लक्ष्य रखनेवाला परसमय मूढ़ है। उसमें बड़ा विवाद हुआ है न। श्वेताम्बर के एक यशोविजय हैं। उसमें से भूल निकाली है। पर्यायमूढा परसमया हो तो वेदान्त हो जायेगा। ऐसी भूल निकाली है। ९३ गाथा। समझ में आया? पर्याय उसकी नहीं? पर्याय नहीं तो उसे तुम पर्यायमूढ़ कहते हो? अरे! भगवान! पर्यायमूढ़ा। एक समय की पर्याय में अपना सर्वस्व माननेवाला मूढ़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अकेली समय की पर्याय मानता है, उसे ही आत्मा मानता है। समझ में आया? द्रव्य जो अखण्डानन्द प्रभु है, उसकी दृष्टिसहित पर्याय को जानना, वह तो दृष्टि का विषय करके जाना तो वह तो प्रमाण का विषय हो गया। बड़ी चर्चा हुई है। यशोविजयजी ने दिगम्बर की ८४ भूलें निकाली हैं। भूलें निकाली हैं, दिग्पट्ट ८४ भूल। उसमें एक बोल यह निकाला है। ९३ गाथा का निकाला है। तुम कहते हो कि पर्यायमूढ़ तो वेदान्त हो जायेगा। द्रव्य कहाँ गया? पर्यायमूढ़ तो द्रव्य अकला रहा, ध्रुव अकेला रहा। वह तो वेदान्त है। समझ में आया? परन्तु ऐसा कहने का आशय वहाँ नहीं है। वहाँ तो ज्ञेय की पूर्ण दशा और एक समय की दशा, एक समय की दशा में लीन है, वह मूढ़ है। समझ में आया? पर्यायमूढा परसमया। गजब बात, भाई!

यहाँ कहते हैं कि ऐसी **भेददृष्टि में...** पर्यायदृष्टि में, गुणस्थानभेद की दृष्टि में, गुण-गुणी की भेददृष्टि में **निर्विकल्पदशा नहीं होती...** निर्विकल्प समझे? स्वभावसन्मुख रागरहित स्वभाव में एकत्व होना, रागरहित स्वभाव में एकत्व होना, वह भेददृष्टि से नहीं होता। समझ में आया? वह गुणस्थानभेद या गुण-गुणी भेद की दृष्टि से निर्विकल्प

दृष्टि नहीं होती। आहाहा! **और सरागी के विकल्प होते रहते हैं;...** यह देखो, सिद्धान्त। भेद देखने से राग होता है और पर्याय देखने से राग होता है, ऐसा नहीं। क्योंकि भेद को देखने से और पर्याय को देखने से राग होता हो तो केवली तो सब देखते हैं। समझ में आया? यहाँ तो उपयोग अल्प है और रागी प्राणी है। निचली दशा में उपयोग मन्द है और राग है। देखो!

यहाँ यह अभिप्राय है कि भेददृष्टि में निर्विकल्पदशा नहीं होती... ओहोहो! **सरागी को...** भाषा यह है। ऐसा नहीं कि भेद को जानना या पर्याय को जानना, वह राग का कारण है। ऐसा नहीं। ऐसा होवे तो केवलज्ञानी सबको जानते हैं। तो उनको भी राग होना चाहिए। जानने से राग कहाँ होता है? परन्तु **सरागी के विकल्प होते रहते हैं;...** रागवाला प्राणी है तो भेद के लक्ष्य में, पर्याय के लक्ष्य में रागी प्राणी है तो राग की उत्पत्ति होती है। समझ में आया? आहाहा! भेद तो वस्तु की वस्तु (स्वरूप) है। अभेद और भेद वस्तु का स्वरूप है। द्रव्य अभेद है और पर्याय भेद, दोनों वस्तु का स्वरूप है। तथापि भेद की दृष्टि में सराग के कारण से रागी प्राणी होने के कारण, मोही के कारण से अपनी दशा में परसन्मुख की विकल्पदशा है, इसलिए भेद के ऊपर लक्ष्य करने से, पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से सरागी को विकल्प होते रहते है। देखो! जरा अन्तर है। भाषा इतनी रखी है पण्डित जयचन्द्रजी ने। वरना भेद से विकल्प होता है, ऐसा नहीं। ताराचन्दजी! भेद से विकल्प होता है, ऐसा नहीं। भेद से विकल्प हो तो पर्याय उसका धर्म है तो केवलज्ञानी सब देखते हैं। द्रव्य-पर्याय सब देखते हैं। परन्तु सरागी को यहाँ निर्विकल्पदशा (होती नहीं)। उपयोग मन्द है, राग है तो भेद के ऊपर लक्ष्य करने से, पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से विकल्प उत्पन्न होता है, राग ही उत्पन्न होता है, निर्विकल्प सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, रागी है इसलिए। रागी है, इसलिए राग उत्पन्न होता है, ऐसा कहा न? छद्मस्थ तो बारहवें गुणस्थान तक है। रागी है, इसलिए राग होता है। शब्द इतने पड़े हैं। भेद को और पर्याय को देखता है, इसलिए राग होता है, ऐसा नहीं।

छद्मस्थ है, इसलिए (राग होता है, ऐसा भी नहीं)। छद्मस्थ तो बारहवें गुणस्थान तक है। रागी है, इसलिए भेद के ऊपर लक्ष्य करने से विकल्प होता है। सिद्धान्त पूरा बड़ा अन्तर। समझ में आया? कल छोड़ दिया था। क्या कहते हैं? यह क्या कहते हैं, सुनो न! कहते हैं। बात तो चलती है। यह क्या कहते हैं? दो-तीन बार आया।

सरागी-रागी प्राणी है। इसका तो अर्थ चलता है। पहले भी कहा, रागी प्राणी है, रागवाला जीव है तो रागवाले के कारण से भेद और पर्याय के ऊपर लक्ष्य होगा तो राग ही उत्पन्न होगा। सम्यग्दर्शन कभी होगा नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो मक्खन की चीज़ है। समझ में आया? ... चार लाईनें छोड़ दी थी। एकदम लेने जैसी नहीं, कहा। वाँच जाओ, एक मिनिट में पूरा हो जाये। भाई! भाषा को पूरा करना है? पुस्तक को पूरा करना है? या उसका प्रयोजन क्या है, वह पूरा करना है? समझ में आया?

कहते हैं, भगवान! रागी प्राणी है न? तो राग के कारण से भेद और पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से उसे राग होता है। राग के कारण से, हों! रागी है इस कारण से। **सरागी के विकल्प होते रहते हैं;...** रागी को राग की मौजूदगी में उपयोग मन्द है तो पर्याय और भेद के ऊपर लक्ष्य जाता है तो रागी को राग उत्पन्न होता है। इसलिए उसे अभेददृष्टि कराने को... देखो! **इसलिए...** इसलिए, इस कारण से **जहाँ तक रागादिक दूर नहीं हो जाते...** जहाँ तक, जहाँ तक रागादि, द्वेषादि पूर्ण दूर न हो, नाश न हो जाये **जब तक...** वहाँ तक। वहाँ तक रागी को राग के कारण से भेद के ऊपर और पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से राग उत्पन्न होता है इसलिए, इस कारण से। **इसलिए जहाँ तक रागादिक दूर नहीं हो जाते...** जब तक उसे राग का अभाव होकर वीतराग न हो, तब तक **भेद को गौण करके...** जहाँ रागादि बिल्कुल न हो, वहाँ तक **भेद को गौण करके...** गुण-गुणी भेद और पर्याय के लक्ष्य को गौण करके **अभेदरूप...** अभेदरूप त्रिकाल ज्ञायक एकस्वरूप ऐसा **अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है।** आहाहा! समझ में आया?

जब तक राग है तो रागी का राग, भेद के ऊपर और पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से अनादि का उसका लक्ष्य वहाँ है। रागी है तो राग उत्पन्न होता है। अब करना है

सम्यग्दर्शन। अथवा वीतरागदशा अथवा निर्विकल्पदशा। दशा निर्विकल्प करनी है तो पर्याय और गुणभेद के ऊपर लक्ष्य होने से निर्विकल्पदशा नहीं होती। क्योंकि रागी प्राणी है। भेद के ऊपर लक्ष्य करने से राग ही उत्पन्न होगा। पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से राग ही उत्पन्न होगा। आहाहा! समझ में आया? यह मक्खन की बात है, मक्खन है। आनन्दघनजी कहते हैं, एक में कहा था न?

गगन मंडल में गउआ विआणी, वसुधा दूध जमाया,
गगन मंडल में गउआ विआणी, वसुधा दूध जमाया,
माखन था सो विरला पाया, संतो छाछ जगत भरमाया।

इससे धर्म होगा, पर्याय का लक्ष्य करके धर्म होगा, राग का लक्ष्य करके धर्म होगा, भेद का लक्ष्य करके धर्म होगा, ऐसा अनादि से माना है।

गगन मंडल में अधबीच कुआ, वहां हे अमी का वासा,
गगन मंडल में अधबीच कुआ, संतो वहां है अमी का वासा,
सगुरा होवे सो भरभर पीवे, संतो नगुरा जावे प्यासा।

समझ में आया? डालचन्दजी! 'गगन मंडल में अधबीच कुआ' अध्धर कुआ। यह आत्मा तो अध्धर है। नीचे आलम्बन नहीं, ऊपर आलम्बन नहीं, कोई आलम्बन नहीं। 'गगन मंडल में अधबीच कुआ, वहां है अमी का वासा' अन्दर में अमृत भरा है। अतीन्द्रिय अमृत।

अमी का वासा, सगुरा होवे सो भरभर पीवे,
संतो नगुरा जावे रे प्यासा, अवधू सो जोगी रे गुरु मेरा।
इन पद का करे रे निवेडा, इन पद का करे रे निवेडा,
अवधु सो जोगी रे गुरु मेरा।

समझ में आया? भगवान आत्मा अमृत का कुण्ड अभेद चैतन्यप्रभु मूर्ति है। समझ में आया? उसे भेद और पर्याय का लक्ष्य छुड़ाकर द्रव्य के ऊपर गुरु ने दृष्टि करायी है। आहाहा! समझ में आया? वाद-विवाद करे सो अन्धा, सद्गुरु कहे सहज का धन्धा। समझ में आया?

भगवान आत्मा... रागी प्राणी है, इसलिए भेद और पर्याय के ऊपर लक्ष्य जाने से उसे राग उत्पन्न होगा। यह तो अनादि से उत्पन्न होता है। उसमें नया क्या किया? समझ में आया? उसे अभेद दृष्टि, जब तक रागादि दूर न हो जाये। जब तक राग की विकल्प की धारा का अभाव न हो, **वहाँ तक भेद को गौण करके अभेदरूप** अन्तर में एकाकार होने को **अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है।** अन्तर में एकरूप प्रभु ज्ञायकभाव की ओर दृष्टि कराकर अभेद का अनुभव कराया है। अभेद का अनुभव, उसका अर्थ भेद का अनुभव जो राग का था, वह अभेद के ऊपर गया तो अनुभव अभेद का (हुआ इसका) अर्थ अभेद में एकाकार हुआ तो निर्विकल्प श्रद्धा और आनन्द की पर्याय प्रगट हुई। अभेद पूरी चीज़ एक समय में अनुभव में नहीं आती। परन्तु उस भेद का अनुभव था, राग और विकल्प का था तो यहाँ निर्विकल्प द्रव्य की ओर एकाग्र हुआ तो निर्विकल्प जो अनुभव हुआ, वह अभेद का अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव (हुआ)। देखो! अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव। वस्तु जो त्रिकाल अभेद है, वह दूसरी बात, भाई! यह तो अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव। पर्याय की बात करते हैं। समझ में आया?

वस्तु तो अभेद है। उस पूरी चीज़ का एक समय में अनुभव नहीं आता। परन्तु उस भेद का जो अनुभव था, पर्याय के ऊपर लक्ष्य (था), संयोग के ऊपर का (लक्ष्य) तो कहीं रह गया। राग, कर्म के ऊपर और ऐसे ऊपर और वैसे ऊपर, परन्तु एक अंश के ऊपर लक्ष्य था, उसका अंश, हों! रागी है तो राग उत्पन्न हुए बिना रहता नहीं। **जहाँ तक रागादिक दूर नहीं हो जाते, वहाँ तक भेद को गौण करके...** वहाँ तक उसका लक्ष्य वहाँ से छुड़ाया है। **अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव...** क्या कहते हैं? अन्तर में अभेद तो त्रिकाली द्रव्य है, परन्तु जहाँ भेद का अनुभव छूट गया तो अभेद के ऊपर आया तो पर्याय में अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। पर्याय द्रव्य में एकत्व हुई तो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का वेदन हुआ। वही मोक्षमार्ग है। आहाहा! समझ में आया?

जब तक रागादिक विकार पर्याय पूर्णरूप से अभाव न हो, तब तक भेद का लक्ष्य छुड़ाकर गौण करके, अभेद चैतन्य में अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया

है। अभेद चीज़ में एकाकार होना, वह अभेद निर्विकल्प अनुभव है। उस निर्विकल्प अनुभव में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र आ गये हैं। आहाहा! सेठी! समझ में आया?

मुमुक्षु : एक समय में?

पूज्य गुरुदेवश्री : एक समय में। जिस समय में हुआ, उस समय में दर्शन, ज्ञान, चारित्र एकसाथ है। आनन्द भी साथ में है, सब (गुण) साथ में है। अनन्त जितने गुण हैं, उतने में जब अभेद में एकाकार हुआ, पर्याय एकाकार होती है, परन्तु वह पर्याय परसन्मुख के लक्ष्य में थी तो रागी के कारण से राग उत्पन्न होता था। तो राग का अनुभव, वह तो मिथ्यादृष्टि अनादि से करता ही है। नया क्या किया उसमें? जब तक रागी को राग रहता है, वहाँ तक राग का अभाव कराने को अभेद का अनुभव कराया है। चैतन्य एकरूप है, उस ओर एकाकार हो, वह तुझे निर्विकल्प अनुभवपर्याय होगी। उसमें तेरा प्रयोजन सिद्ध होगा। समझ में आया?

मुमुक्षु : यह धर्म....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्म है। एक समय में पूरा अभेद द्रव्य नहीं आता। परन्तु पूरे द्रव्य की सब पर्याय जितने गुण हैं, उनके अंश, जितने गुण हैं उनका व्यक्त अंश, अनन्त (गुण का) व्यक्त अंश एक समय में आयेगा। वेदन एक समय में (आता है)।

अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। द्रव्य का वेदन नहीं होता। द्रव्य का वेदन नहीं होता। द्रव्य तो ध्रुव है। परन्तु ध्रुव में एकाकार होने से पर्याय में निर्विकल्प वेदन होता है। आहाहा! समझ में आया? ध्रुव का ज्ञान होता है, परन्तु वेदन नहीं होता। पूरा द्रव्य वेदनरूप पर्याय में आ जाये? तो दूसरे समय में क्या वेदना? आहाहा! समझ में आया? थोड़ा समझना, धीरे से समझना, परन्तु यथार्थ समझना। क्यों अमरचन्दजी!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यही वस्तु है। भगवान आत्मा एक स्वरूप सामान्य धर्म जिसका है, जिसे यहाँ द्रव्यार्थिक (नय का विषय कहा)। द्रव्य अर्थात् सामान्य, द्रव्य अर्थात् सामान्य। सामान्य-विशेष तदत्व प्रमाण। सामान्य और विशेष दोनों प्रमाण का विषय है। उसमें से सामान्य द्रव्य त्रिकाली ज्ञायक है, उसकी दृष्टि करायी। क्योंकि भेद

के ऊपर लक्ष्य तो अनादि का है। रागी प्राणी को भेद और पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से तो राग उत्पन्न होता है। समझ में आया? बहुत सरस बात है। पाठ में ऐसा है, हों! उसमें से निकाला। है न? **'न ज्ञायकः शुद्ध'** तीन नहीं है, ज्ञायक शुद्ध है, उसमें से निकाला। एकरूप भगवान तीन भेद भी (नहीं)। भेद की दृष्टि, भेद कहो, व्यवहार कहो (वह छुड़ाया है)। समझ में आया?

यह तत्त्वार्थसार में लिया है न? भाई! अभी लिया न। तत्त्वार्थसार है। यह तो (संवत्) १९८८ के वर्ष में बहुत चर्चा हुई थी। हमारे पास तो बहुत आते थे न। पोपटलाल आये थे। पोपटलाल। भोगीभाई के पिता, नहीं? भाई! वडवावाले। १९८८ के वर्ष। हम बाहर रहते थे, नदी के किनारे, आरोग्य भुवन। राजकोट। देखो! अमृतचन्द्राचार्य तत्त्वार्थसार में ३९वीं गाथा में कहते हैं।

अनुप्रवृत्तिः सामान्यं द्रव्यं चैकार्थवाचकाः।
नयस्तद्विषयो यः स्याज्ज्ञेयो द्रव्यार्थिको हि सः॥३९॥

द्रव्य नाम वस्तु का भी है और वस्तु का सामान्य स्वभाव में एक स्वभाव का भी है। जब प्रमाण के विषय में द्रव्य नाम उच्चारित किया जाता है, तब उसका अर्थ वस्तु, ऐसा करना चाहिए। पूरी वस्तु—द्रव्य और पर्याय दोनों। परन्तु जब नय के प्रकरण में द्रव्यार्थिक इत्यादि नाम कहा हो, तब उस द्रव्य का अर्थ सामान्यात्मक धर्म, ऐसा करना चाहिए। यह तो (संवत्) १९८८ के वर्ष में चला था। कितने वर्ष हुए? ३४ (वर्ष)। पहले राजकोट में थे हम। भाई! आये थे न! पोपटलालभाई! आरोग्य भुवन में। आये थे, एक पारसी भगत था। साथ में बहुत सब थे। बाहर रहते थे, वहाँ आये थे। सामान्य दूसरा है, विशेष दूसरा है। एक द्रव्य पूरा द्रव्य है, वह प्रमाण का विषय है। परन्तु जो यहाँ द्रव्यार्थिक का विषय जो द्रव्य है, द्रव्यार्थिक का द्रव्य, वह द्रव्य-पर्याय नहीं। द्रव्यार्थिकनय का द्रव्य सामान्य है। देखो! यहाँ पाठ में कहा है। अनुप्रवृत्ति कहो, सामान्य कहो, द्रव्य कहो। **'नयस्तद्विषयो'**। सामान्य एक अंश है। समझे?

द्रव्य का अर्थ सामान्य करना चाहिए। अनुप्रवृत्ति, सामान्य... यहाँ तो दूसरे बोल लेना है। द्रव्य, नित्य, ध्रुव इत्यादि शब्दों का एक सामान्यात्मक धर्म (अर्थ) करना

चाहिए। समझ में आया ? और दूसरी गाथा है—'**व्यावृत्तिश्च विशेषश्च पर्यायश्चैकवाचकाः**' व्यावृत्ति, विशेष, पर्याय, अनित्य। अनित्य और भेद। यहाँ तो हमारे लेना था। यह भेद आया है न ? भेद। भेद इत्यादि शब्दों का अर्थ एक ही होता है। वस्तु अभेद द्रव्य की भाँति एक अंश है। पर्याय को ग्रहण करनेवाले ज्ञान को पर्यायार्थिक कहते हैं। भेद को ग्रहण करनेवाले को पर्यायनय कहते हैं। समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, **जहाँ तक रागादिक दूर नहीं हो जाते, वहाँ तक भेद को गौण करके...** भेद शब्द से अनित्यता, पर्याय, गुण-गुणी भेद, यह सब पर्यायनय का विषय है। उसमें दो के बीच में दिक्कत है न ? गुणार्थिकनय क्यों कहा नहीं ? एक द्रव्यार्थिकनय, पर्यायार्थिकनय और गुणार्थिकनय, तीन चाहिए। ऐसी बड़ी चर्चा है। नहीं, गुणभेद करके कहना, वह पर्यायनय का विषय हो गया। वह तो यहाँ कहा, अनन्त गुणरूप एकरूप वह द्रव्यार्थिकनय का विषय है। परन्तु उसमें एक यह गुण, एक यह गुण, ऐसा भेद करके कहना, वह पर्यायनय का विषय हो गया। यह यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? गजब बातें, भाई! ऐसा सब समझना पड़े न, बड़ी गड़बड़ उठी। बाबूभाई! भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण स्वरूप सामान्य, हों! वह द्रव्यार्थिकनय का विषय। ज्ञायकभाव, वह द्रव्यार्थिकनय का विषय द्रव्य। उसमें भेद पाड़ना, गुण-गुणी का भेद पर्यायनय का विषय है। तीसरे गुणार्थिक की आवश्यकता नहीं। दो के बीच बड़ी चर्चा है। श्वेताम्बर और दिगम्बर के बीच। भाई! यह तो बात अन्तर की है। ऐसे विवाद करे और वाद-विवाद से पार नहीं पड़े।

यहाँ कहते हैं, जब तक रागी प्राणी है और राग है, उसे छुड़ाने को **भेद को गौण करके अभेदरूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है।** अभेद के ऊपर ढल जाओ, अभेद के ऊपर ढल जाओ। एकाकार अभेद के ऊपर होओ, उसमें तेरा प्रयोजन सिद्ध होगा। **वीतराग होने के बाद...** देखो! राग होता था, वहाँ तक तो अभेद का (अनुभव) कराया। क्योंकि शुद्धनय का अवलम्बन जब तक राग है, तो इस ओर ढलना-झुकना रहता है। राग रहा नहीं फिर इस ओर ढलना रहता नहीं। समझ में आया ? **वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है,...** फिर क्या रहा ? अभेद का ही जानना

रहा और पर्याय का भेद है, उसका ज्ञाता हो गया। फिर उसे गौण-मुख्य करने का रहा नहीं। देखो!

वहाँ नय का आलम्बन ही नहीं रहता। देखो! इस शब्द में तर्क है। वीतराग होने के बाद भेदाभेद वस्तु का ज्ञाता हो जाता है। वीतराग हो गया, केवलज्ञान (हुआ), तो अभेद को भी जानता है और गुणभेद और पर्यायभेद को भी जानता है। जानने में कोई राग का कारण नहीं। **वहाँ नय का आलम्बन ही नहीं रहता।** देखो! यह एक शब्द पड़ा है। इस ओर ढलना है। ऐसे ढलना है न, वहाँ तक शुद्धनय का अवलम्बन है। परन्तु वहाँ ढलना ही नहीं रहा, पूर्ण हो गया, वीतराग हो गया, फिर यहाँ ढलना रहता नहीं। अभेद का अनुभव करना फिर रहा नहीं। पूर्ण हुआ, अभेद की पूर्ण दशा हो गयी। समझ में आया? इन चार पंक्तियों में बहुत भरा था, इसलिए कल छोड़ दिया था। पौन घण्टा हुआ इसमें। देखो! समझ में आया?

भाई! यह तो अन्तर की चीज़ है, बापू! प्रभु! सामान्य अंश जो है, ध्रुव का अंश है, नित्य अंश है, वह तो यहाँ शुद्धनय का विषय है। यहाँ तो विषय और विषयी दो भेद भी नहीं किये। ११वीं गाथा में। **'भूदत्थो देसिदो दु सुद्धणओ'।** सामान्य जो है, वही शुद्धनय है, बस। विशेष है, वह व्यवहारनय। समझ में आया? विशेष पर्याय, पर्याय उसकी, हों! यह व्यवहारनय। अभूतार्थ कह दिया है, भाई! उसमें लिया है न! ११वीं गाथा। पण्डित जयचन्द्रजी ने बड़ा अर्थ किया है। देखो! (भावार्थ)। **यहाँ व्यवहारनय को अभूतार्थ और शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। जिसका विषय विद्यमान न हो, असत्यार्थ हो, उसे अभूतार्थ कहते हैं। व्यवहारनय को अभूतार्थ कहने का आशय यह है कि - शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप नित्य द्रव्य है।** शुद्धनय का विषय अभेद एकाकार नित्य द्रव्य है। है ११वीं गाथा? भावार्थ, ११वीं गाथा का भावार्थ। **शुद्धनय का विषय अभेद एकाकाररूप नित्य द्रव्य है। उसकी दृष्टि में भेद दिखाई नहीं देता, इसलिए उसकी दृष्टि में भेद अविद्यमान, असत्यार्थ ही कहना चाहिए।** नहीं है— ऐसा कहना चाहिए।

ऐसा नहीं समझना कि भेदरूप कुछ वस्तु ही नहीं। यदि ऐसा माना जाये तो

जैसे वेदान्तमतवाले भेदरूप अनित्य को... देखो! भेदरूप अनित्य (कहा है)। वे लोग पर्याय का इनकार करते हैं। भेदरूप अनित्य। पर्याय है, वह भेदरूप अनित्य है। **भेदरूप अनित्य को देखकर अवस्तु मायास्वरूप कहते हैं और सर्वव्यापक एक...** क्षेत्र से एक। समझे? गुण से एक पर्याय से **अभेद नित्य शुद्धब्रह्म को वस्तु कहते हैं...** ऐसा नहीं है। इसमें बहुत अर्थ है, आयेगा तब चलेगा। समझ में आया? यह एक कहते हैं, सर्वव्यापक कहते हैं, अभेद कहते हैं, नित्य कहते हैं। ऐसा नहीं है। यहाँ तो पर्याय का लक्ष्य करने से राग होता है, इसलिए पर्याय को अनित्यता को भेद को असत्यार्थ कहा है। परन्तु वे नहीं हैं, ऐसा नहीं, वस्तु है। समझ में आया? परन्तु है, तथापि वह शुद्धनय का विषय नहीं। समझ में आया? शुद्धनय का विषय तो अभेद एकाकार नित्य द्रव्य है, नित्य द्रव्य है, पर्याय नहीं। समझ में आया? अमरचन्दजी! यह बराबर समझने की वस्तु है, हों! मूल चीज़ यह है। सब समझे परन्तु यह समझे नहीं, तब तक उसकी रुचि द्रव्य के ऊपर जायेगी नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... सत्य की बात है यहाँ तो। यहाँ तो नित्य द्रव्य के ऊपर जाये। ठीक प्रश्न करते हैं। स्पष्टीकरण करने के लिये।

यहाँ क्या कहते हैं? निश्चय अर्थात्, यहाँ निश्चय अर्थात् अभेद दृष्टि करना। अभेद को यहाँ निश्चय कहते हैं, भेद को व्यवहार कहते हैं। भेद का-व्यवहार का पक्ष तो अनादि का है। उसे क्या करना है? मैं एक समय का अंश हूँ, मैं पर्याय हूँ, मैं इतना हूँ, मैं इतना हूँ। ज्ञान का विकास का अंश है, दर्शन का विकास अंश है, वीर्य का विकास अंश है और मोह में राग-द्वेष की विपरीतता है। इतने अंश में आत्मा मानता है, वह तो पर्यायबुद्धि हुई। उस भेदबुद्धि को छुड़ाने के लिये अभेदबुद्धि कराने का प्रयोजन है। छुड़ाकर भेद का लक्ष्य छुड़ाकर अभेद के ऊपर, चैतन्यप्रभु अभेद एकाकार नित्य, हों! उसमें अनित्य नहीं आया, पर्याय नहीं आयी; पर्याय अभूतार्थ में गयी, व्यवहार में गयी। आहाहा! गौण करता है, अभाव नहीं। पर्याय का अभाव नहीं। गौण करके वहाँ नित्य द्रव्य के ऊपर दृष्टि करायी है। आहाहा! यह सब समझने की अपेक्षा कुछ करने

लगे तो बेचारा ठिकाने पड़ जायेगा, ऐसा माने। लोगों को यह द्रव्य और यह अभेद और यह अभेद की दृष्टि करना, और उसमें भेद को गौण करना, क्या कहते हैं यह ? समझ में आया ? समझना कठिन पड़े, इसलिए अनादि से दूसरा रास्ता पकड़ लिया है। यह करो, यह करो, यह करो, कषाय मन्द करो, भक्ति करो, पूजा करो, व्रत पालो, अणुव्रत लो। है, राग मन्द हो परन्तु मिथ्यादृष्टि सहित राग मन्द है। अनादिकाल की है, ऐसी की ऐसी दशा है।

मुमुक्षु : कुछ अन्तर नहीं पड़े ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जरा, अन्तर सूक्ष्म एक समय का भी नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, यह कैसे कराया ? कि रागी प्राणी है तो राग के कारण से भेद के ऊपर लक्ष्य करने से, पर्याय के ऊपर लक्ष्य करने से राग की उत्पत्ति होती है और उसमें लाभ मानता है तो मिथ्यात्वसहित का राग हुआ। और वह भेददृष्टि का एकान्त का निराकरण करने... ऐसा शब्द है उसमें, भाई, हों! पहला ऐसा है। यह थोड़ा अपने नहीं डाला। नहीं डाला। कितने में है ? सातवीं। .....

यहाँ कोई कह सकता है कि पर्याय भी द्रव्य के ही भेद हैं, अवस्तु तो नहीं; तब फिर उन्हें व्यवहार कैसे कहा जा सकता है ? उसका समाधान यह है - यह ठीक है, परन्तु यहाँ द्रव्यदृष्टि से अभेद को प्रधान करके उपदेश दिया है। अभेददृष्टि में भेद को गौण कहने से ही अभेद भलीभाँति मालूम हो सकता है। इसलिए भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहा है। नहीं आया, हों! यह इसमें है, मेरे में लिखा है, हों! थोड़ा नीचे लिखा है। लिखा था, उसमें से निकाला होगा। स्वामी कार्तिकेय। अभेद में भेद दिखते नहीं। अभेद में एकाकार करने को भेद का एकान्त निराकरण कराने को। स्वामी कार्तिकेय में है। यह भी पण्डित जयचन्द्रजी का ही अर्थ है। भेद का एकान्त निराकरण करने के लिये, एकान्त भेद के ऊपर का लक्ष्य छुड़ाने के लिये वहाँ अभेद को द्रव्य कहा है और अभेद का लक्ष्य कराया है। वहाँ बहुत अच्छी बात है। दो-तीन पृष्ठ भरकर है। स्वामी कार्तिकेय में। समझ में आया ? स्वामी कार्तिकेय की (पुस्तक) वहाँ है, यहाँ नहीं। मेरे पास यहाँ नहीं। देखो! यहाँ लिखा है। अभेददृष्टि में यह विषय नहीं। इसलिए अभेदनय

की दृढ़ श्रद्धा कराने के लिये कहा। पर्यायनय है, वह व्यवहार है, अभूतार्थ है, असत्यार्थ है। इसलिए भेदबुद्धि का एकान्त निराकरण करने के लिये यह कहा है, ऐसा जानना। ऐसा उसमें है। ख्याल है (कि) कुछ है सही। समझ में आया? क्या कहा?

यहाँ अभेद की दृष्टि करायी, वह एकान्त भेद का निराकरण करने के लिये। एकान्त भेद है, इतनी ही वस्तु है, ऐसा नहीं। एकान्त भेद है, पर्याय है, इतनी ही वस्तु है, ऐसा नहीं। चन्दुभाई! एकान्त भेद का निराकरण करने के लिये, अभेद के ऊपर दृष्टि लगाने के लिये भेद को अभूतार्थ कहा है। समझ में आया? नहीं है—ऐसा नहीं। व्यवहारनय का विषय पर्याय है। व्यवहारनय का विषय गुण-गुणीभेद है। नहीं है—ऐसा नहीं। परन्तु एकान्त पर दृष्टि पड़ी है, उसका निराकरण करने को, अभेद की ओर झुकाने के लिये भेद को असत्यार्थ कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? यह वहाँ होगा लम्बा, निकाला है? उसमें बहुत लम्बा है। वहाँ ऐसा नहीं कि यह भेद है, वह असत्यार्थ कहा, इसलिए वस्तु का स्वरूप नहीं, पर्याय नहीं, ऐसा नहीं है। देखो! यहाँ यह कहा है।

इसी आशय से अध्यात्म कथनी में मुख्य को तो निश्चय कहा और गौण को व्यवहार कहा। व्यवहार को गौण कहा, ऐसा नहीं। निश्चय को मुख्य कहा, ऐसा नहीं। मुख्य को निश्चय कहा। बहुत सरस बात ली है। मुख्य कहो या अभेद कहो। गाथा है — ३११-३१२। ३११-३१२ गाथा में इसका बहुत स्पष्टीकरण है। यहाँ बहुत चला था। पहले वे आये थे न? कौन वे? ईसरी में रहते थे। छोटेलालजी। और वर्णी। वर्णीजी गुजर गये। सुमेरचन्द वर्णी। यहाँ आये थे। बहुत चर्चा हुई थी। देखो! उस समय स्वीकार करे, वापस बदल जाये। और जहाँ दूसरा संग मिले तो बदल जाये। भाई! हमारे भाई भी कल कहते थे कि यहाँ बराबर... लगे और बाहर जाये वहाँ बदल जाये। और विचार आवे कि तपसा निर्जरा है न? तपसा निर्जरा है न?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा समझना और श्रद्धा करना, तत्त्वनिर्णय करना। तत्त्वनिर्णय करना, यही उपाय है। मोक्षमार्गप्रकाशक में लिया है कि व्रत, तप पाले, दया, दान करे,

देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करे, परन्तु जब तक तत्त्वनिर्णय न करे, तब तक समकित नहीं होता। वह कारण ही नहीं। समझ में आया? कहाँ है, ऐई? तत्त्वनिर्णय का अधिकार कहाँ है? अपने को कुछ सब याद है? नौवें में कहीं है। समझ में आया? वहाँ तक उसका—तत्त्वनिर्णय का अधिकारी नहीं। ऐसा लिखा है, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : थोड़ा शुद्ध है ही नहीं। सम्यग्दर्शन वही शुद्ध है। पूर्ण शुद्ध चारित्रसहित वीतरागता हो, वह शुद्ध है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या ले? परन्तु शुद्धता सम्यग्दर्शन ले? वह शुद्धता है। राग की शुद्धता है ही नहीं। ठीक, प्रश्न तो करते हैं न। कितने पृष्ठ पर है? २६५। सातवें अधिकार में आया। यहाँ आया, **देखो! तत्त्वविचार की महिमा! तत्त्वविचार रहित देवादिक की प्रतीति करे,...** भले देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति करे। **बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादिक पाले, तपश्चरणादि करे, तथापि उसे तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं...** भाई! मोक्षमार्गप्रकाशक। टोडरमलजी ने तो शास्त्र का निचोड़ निकालकर कहा है। घर की कोई बात नहीं की, हों! कोई भले झूठा ठहरावे, अपने अभिमान से। अभिमान से। **तत्त्वउच्चाररहित देवादि की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, व्रतादि पाले, तपश्चरणादि करे...** बस, व्यवहार करो। **तथापि उसे तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं और तत्त्वविचारवाला इनके बिना भी...** शास्त्र के अभ्यास बिना, व्रत, तपादिक बिना, देवादिक की प्रतीति बिना **सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।** समझ में आया? पहले तत्त्व का निर्णय करना, यही उपाय है। वह तो करना नहीं और दूसरे में लग जाये। स्वतन्त्र है, अनादि से करता है, उसमें क्या आया?

मुमुक्षु : न हो तब तक तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : न हो तो यह निर्णय करने का प्रयत्न करना, वह नहीं?

मुमुक्षु : तत्त्वविचार करना, उसमें मानो शुभभाव आता ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तत्त्वविचार में शुभभाव विकल्प नहीं आते ? मोक्षमार्गप्रकाशक है न ? देखो ! उसमें है। सातवें (अधिकार) में है। तुम्हारे आयेगा न उसमें ? उसमें है, देखो ! (हिन्दी संस्करण) २६० पृष्ठ पर। तुम्हारे दोपहर में आयेगा।

'देखो ! तत्त्वविचार की महिमा ! तत्त्वविचार रहित देवादिक की प्रतीति करे,...' तत्त्वविचाररहित देवादिक की प्रतीति करे। देव-गुरु-शास्त्र की प्रतीति करे। बहुत शास्त्रों का अभ्यास करे, बड़े व्रतादिक, नियमादिक पाले, तपश्चरणादि करे, उसे तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं। अधिकार नहीं। उसे तो राग की कर्तृत्वबुद्धि पड़ी है।

मुमुक्षु : करोड़ों रुपये के दान किये और मन्दिर बनाये नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी मन्दिर बनाये नहीं। कौन बनाता है ?

तत्त्वविचारवाला इनके बिना भी... इनके बिना भी, इनके बिना अर्थात् कौन-कौन ? देवादिक की प्रतीति न करे, पहली। अन्तर्दृष्टि में आ गया। शास्त्र का अभ्यास न करे, व्रतादिक न पाले, तश्चरणादिक न करे, तथापि... समझे ? **इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकारी होता है।** दूसरी बात है।

वीतराग होने के बाद भेदाभेदरूप वस्तु का ज्ञाता हो जाता है, वहाँ नय का आलम्बन ही नहीं रहता। देखो ! पूरा प्रमाण हो गया। फिर स्वभाव-सन्मुख ढलना रहा नहीं, अभेद की ओर ढलना रहा नहीं। वहाँ नय का अवलम्बन रहा नहीं। वहाँ तो भेदाभेद का ज्ञान हो जाता है। जब तक राग का पूर्ण अभाव न हो, तब तक अभेद के ऊपर झुकाव करके शुद्धनय का अनुभव करने की बात की है। उससे आत्मा का प्रयोजन सिद्ध होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

હું પરમાત્મા છું એમ નક્કી કર.
હું પરમાત્મા છું એમ નિર્ણય કર.
હું પરમાત્મા છું એમ અનુભવ કર.